ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।



विशेष सूचना:—जो लोग अपना हिसाब अंग्रेजी सनके अनुसार रखते हैं उनके पूर्वांक लिए सं० १९७७ का और हिसाबमें आगामी दिसम्बरके पूर्व ही भेज जायगा। पहली जनवरी सन् १९२० से लेकर १५ अप्रैल तकके पृष्ठ इसके भरनेमें लगे रहेंगे जिसमें वह पहली जनवरी १९२० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यका सरकारी मसविदा।

१—यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका अब वृथा कष्ट न देवें। उसे इस भारी भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—स्त्री और पुरुषको—राजनीतिक ज्ञान परम आवश्यक है।

भारतसचिव और वाइसरायने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अंग्रेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कागजात सदा अंग्रेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उसके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्याकांक्षी अंग्रेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी० ए०, एल-एल. बी. (केम्ब्रिज) बार-एट्-ला के संपादनसे तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ६८०, मूल्य १।।।) एक रुपया बारह आने।

अब्राहम लिंकन।

२—इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पठनने निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुटकारा दिलाकर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उच्चपद दिलाया है।

अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उन्हींमेंसे एक है। मृतक मनमें भी पुनः प्राणका संचार करनेवाला है। उनके जीवनसे हम सीखते हैं कि एक रंक किस तरह राजा बन सकता है। गुलामोंके वंशमें उत्पन्न हो कर, दरिद्र और कंगाल होते हुए, स्कूलमें केवल एक वर्ष शिक्षा पाकर भी अब्राहम किस प्रकारसे एक प्रसिद्ध वक्ता, लेखक और राजनीतिज्ञ बना। यही नहीं, एक साधारण कुलमें उत्पन्न होकर वह अमरीका सदृश स्वतन्त्र राष्ट्रका राष्ट्रपति भी बन गया। अब्राहमने वहांके गुलामोंका असह्य कष्ट किस प्रकार दूर किया, आदि अनेक शिक्षाएं ग्रहण करने योग्य हैं। अमेरिकामें लाखों प्रतियां प्रतिवर्ष बिकती हैं। इस देशके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। इसकी उपयोगिताहीके कारण मध्यप्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें स्वीकार किया है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १६२, मूल्य ।।) आने।

सरल रसायन।

२—इसमें रसायनशास्त्रके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय, तत्वोंका वर्णन, धातु, अधातु तथा उपधातुओंका भेद, सब प्रकारके तेजाब, लवण, संयोग वियोगके परिणाम, संकेत, सूत्र, शक्ति, अणु, परमाणु, भार इत्यादिका वर्णन कहानीके रूपमें अत्यन्त रोचकतासे दिया गया है। पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—वार्निश और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

७—**जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष**— कारीगरोंके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। भिन्न भिन्न व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिये माल कैसे तयार करना चाहिये, बातें मालूम होती हैं। संग्रहकर्त्ता बा० ठाकुरप्रसाद खत्री। पृष्ठसंख्या ४२५ मूल्य ५) पांच रुपया।

८—**देशी करघा**—इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएँ तथा अन्य बहुत सी जरूरी बातोंका वर्णन है। पृष्ठसंख्या ११०, मूल्य ॥) आना।

९—**सीनेकी कल (सचित्र)**—पृष्ठसंख्या ५६ मूल्य ॥) आना।

१०—**भारतिनम**— यूरोपीय महायुद्धके वास्तविक रहस्यका इससे पता लगता है। पुस्तक बड़े मार्केकी है। अनुवादक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध लेखक अध्यापक रामदासजी गौड़ एम. ए. हैं। मूल्य १॥)

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्य पर २० व्याख्यान अंगरेजीमें। मूल्य ॥) आना।

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना अंगरेजीमें। मूल्य ≈) आना।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उनपर जमानतका मुकद्दमा हिन्दीमें। पृ० सं० १०२ मू० ।॥) रु०

१४—मानस मुक्तावली—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य ।≈)

१५—भूमण्डलके प्राणी—श्रीयुत राधाचरणप्रसाद द्वारा सम्पादित। पृ० सं० [illegible]

१६—स्वर्णकी पुस्तक। मूल्य १) रुपया।

१७—डाक्टर सर जगदीशचन्द्र बसु तथा उनके आविष्कार। मूल्य ।≈) आना।

१८—राष्ट्रीयता विज्ञान तथा संसारकी स्वाधीनता, मू० ॥)

१९—दिव्य जीवन। मूल्य ॥=) आने।

२०—श्रीमती इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी रिपोर्टका हिन्दी अनुवाद। मू० [illegible]

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त।

मिलनेका पताः—

संचालक, ज्ञानमण्डल,
काशी।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजके दो अपूर्व ग्रन्थ

१ साम्यवाद

हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके रचयिता बाबू रामचन्द्र वर्मा और प्रस्तावना-लेखक स्वार्थसम्पादक, काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके प्रोफेसर प० जीवनशंकर याज्ञिक एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। पृष्ठसंख्या ५०० रु… सजिल्दका ३)

इसमें प्राचीन साम्यवाद, फ्रान्सीसी साम्यवाद, अंगरेजी साम्यवाद, जर्मन साम्य… मतवाद, व्यापारसंघवाद, अराजकतावाद, और बोल्शेविज्म आदि सब प्रकारके साम्य… स्वरूप, उनके जुदा जुदा सिद्धान्त उनका साहित्य, उनके उत्पादकोंका परिचय और उनके… विकासका तथा जुदा जुदा देशोंमें प्रचलित होनेका इतिहास खूब विस्तारके साथ लिखा… है। इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली दिसम्बर सन् १६१६ तककी प्रायः सभी घटना… इसमें समावेश किया गया है। इस एक ही ग्रन्थके पढ़नेसे सारे संसारके समष्टिवाद… साम्यवादका स्वरूप समझा जा सकता है। यूरोपकी और समस्त जगतकी वर्तमान अवस्थाको और गत महायुद्धके परिणामोंको समझनेके लिए यह ग्रन्थ दर्पणका काम दे… यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकोंके अनेक ग्रन्थोंके आधारसे यह सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ लिखा गया…

२ देश-दर्शन

यह ग्रन्थ अभी हाल ही दूसरी बार छपकर प्रकाशित हुआ है। अधिक प्रचार… इच्छासे इस महँगाईके समयमें भी लागत मूल्य ३) की जगह २।) कर दिया गया है और वि…

ओम
वन्देमातरम्

स्वार्थ

अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति तथा इतिहास

का

मासिक पत्र

वर्ष १ खण्ड २

बैशाख १९७७ से आश्विन १९७७ तक

सम्पादक—
अध्यापक जीवन शङ्कर याज्ञिक,
एम. ए., एल. एल. बी.

प्रकाशक—
ज्ञानमण्डल, काशी

वार्षिक मूल्य ४)] [इस खण्डका २।)

विषय-सूची

वर्ष १ खण्ड २

—:0:—

ओम् वन्देमातरम्



प्रथमवर्ष १ खण्ड | मार्गशीर्ष १९७६ | संख्या २ पूर्ण संख्या २

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्थाका विषय बड़े गौरवका है क्योंकि इस देशके तीन चौथाई लोगोंपर उसका प्रभाव साक्षात् पड़ता है। वर्ण-विभागके वर्तमानरूपसे उसका गुण सब लुप्त हो गया है, उससे बहुत प्रकारकी बुराई पैदा हो गई है, और सच पूछिये तो परस्पर ईर्ष्याके कारण हमारी राष्ट्रीय उन्नति बन्द हो गई है और कुछ अशोंमें तो निश्चय अवनति हो रही है। इसकी दुर्व्यवस्थाके कारण हिन्दुओंके सिवाय भारतकी अन्य सम्प्रदायोंमें भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है और हिन्दुओंके द्वारा असर उनपर भी आता है।

परन्तु यह सब हानि वर्णके प्रचलित स्वरूप वा प्रथाके कारण है। यदि इसकी सुव्यवस्था बुद्धिपूर्वक की जाय तो केवल भारतीय ही नहीं बल्कि सारे संसारके मनुष्यमात्रका इससे कल्याण हो सकता है। इससे शिक्षा-सम्बन्धी, राजनैतिक, आर्थिक और व्यावसायिक, गृहस्थी और समाजसम्बन्धी, लौकिक और पारलौकिक प्रश्न, जिनके कारण आज मनुष्यमात्रका मन चञ्चल हो रहा है, वे सब उत्तीर्ण हो सकते हैं। यह अवश्य असम्भव सा प्रतीत होता है और ऐसा विचार केवल कल्पना मालूम होता है, परन्तु विज्ञानकी जितनी बड़ी बड़ी बातें आविष्कृत हुई हैं जिनसे कि मनुष्यका समस्त जीवन ही परिवर्तित हो गया है जैसे रेल, तार, बारूद, बिजली और मिट्टीके तेलका प्रताव, छापा, लप, लालटेन, टांकखाना, जेबी और बड़ी घड़ियां, फोटोग्राफ, फोनोग्राफ, जहाज, कलके कारखाने, पैरगाड़ी, मोटर, हवाई विमान, आदि, वे सब आरम्भमें पुरुषविशेषोंके मनकी कल्पनाके ही रूपमें उत्पन्न हुई थीं, और पहिले उन्हें भी साधारण लोग पागलपन ही कहते थे। इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि अध्यात्मज्ञानकी इस बातको समझकर कार्यरूपमें परिणत करनेसे मनुष्यका जीवन अधिक उपयोगी और स्थायी प्रकारसे परिवर्तित हो जाय।

पश्चिमीय कविने कहा है "सभी मानव मानुष्य एक शरीर रूप" अर्थात् सब मानव एक ही शरीरके अंग हैं। वैदिक तत्वदर्शी ऋषिने इस "मानव" अर्थात् शरीरके अंगोंका विस्तृत बड़ी सुन्दर और सच्ची उपमा अथवा उत्प्रेक्षाके रूपमें किया है। उनका कहना है कि चार प्रकारके मनुष्य विराट् पुरुष ब्रह्माके चार अंगोंसे निकले। अर्थ इसका यह कि शारीरिक और मानसिक स्वभाव, आध्यात्मिक प्रकृति, के अनुसार मनुष्य स्वभावतः चार विभागमें विभक्त होते हैं। अर्थात् ज्ञानप्रधान, क्रियाप्रधान, इच्छाप्रधान, और मनुष्य जिनमें आत्म प्रकट करनेकी शक्ति अभी नहीं है अर्थात् इस जन्ममें उद्बुद्ध नहीं हुई है। समाजके ये चार अंग शरीरके सिर, हाथ, ऊरु-उदर अथवा धड़, और पैरके बराबर हैं, और जैसे शरीरमें भिन्न भिन्न अंगोंके कर्तव्य भिन्न हैं उसी प्रकार समाजके अंगोंके भी कर्तव्य भिन्न भिन्न हैं।

मुख यस्य भुजौ यस्य कृत्स्नमूरूदरं विशः।
पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः॥ (श्रीमद्भागवत)

वास्तवमें सब समाजोंमें ये चार प्रकारके मनुष्य पाये जाते हैं। इनके नाम भिन्न भिन्न देश और कालमें भिन्न भिन्न होते हैं जैसे कि आलिम, आमिल, ताजिर और मजदूर, या अंगरेजीमें क्लर्जी, नोबिलिटी, कामन्स अथवा मर्चेन्टस, और वर्कमेन, अथवा जैसा आजकल कहा जाता है, शिक्षित पेशाओंके लोग, राजनैतिक और राज्यप्रबन्ध अथवा सैनिक प्रबन्धके लोग, व्यापारी महाजन अथवा धनी, और अन्तमें मजदूर।

हिन्दुओं और संसारके अन्य समाजोंमें, विशेषकर पाश्चात्य देशोंमें, इतना भेद है कि पश्चिममें इस विषयकी कोई व्यवस्था विशेष नियम द्वारा नहीं की गई है। "जन्मना" केवल इतना ही मान रक्खा है कि सामान्यतः पिताका धन पुत्रको मिलना चाहिये। और सब कार्य्य, पेशा, व्यवसाय, रोजगार आदि, केवल "कर्मणा" है, अर्थात् हरेक आदमीके ऊपर छोड़ दिया है कि वह अपने भाग्य और शक्तिके अनुसार खोजले। इस कारणसे कितने ही लोग सारा जीवन क्लेशमें बिताते और कामयाबी नहीं पाते हैं, क्योंकि ऐसे पेशोंमें पड़ जाते हैं जिनके वे योग्य नहीं होते। ठीक इसीके विरुद्ध भारतीय हिन्दुओंमें केवल "जन्मना" पर वर्णव्यवस्था रख दी गई है। इसका फल यह होता है कि वर्णानुसार उचित रोजगार तो इस नये जमानेमें मिलते नहीं और जात पांतके अनन्त झगड़े और रुकावटें ऊपर से उठानी पड़ती हैं, और पाश्चात्य देशोंकी तरह, क्या इस देशकी वर्त्तमान सर्वथा हीन दशामें वरन् बहुत अधिक, भारतमें भी अधिकांश लोग अनेक कष्ट उठाते हैं और कितनों ही को चित्तानुकूल व्यवसाय नहीं मिल रहा है। अब हिन्दूलोग वर्णव्यवस्थाके मार्मिक सिद्धान्तोंको तो भूल गए हैं, [illegible] विचार करके सामाजिक दशाकी उन्नतिका यत्न नहीं करते, लीक पीटने ही में कर्त्तव्य समझते हैं, उनके हृदयमें क्षुद्रस्वार्थ घुस गया है, और केवल अपनी अथवा अपनी अवान्तर जातिके ही फिकरमें लगे हुए हैं, और चरित्रका दिनोंदिन ह्रास हुआ जा रहा है। अतः जो यह वेदकी गौरवयुक्त उपमा है उसका भावार्थ भूलकर शब्दार्थ ही पकड़ने लगे हैं। जैसे फौजी कानून अर्थात् मार्शल ला सेनानायकोंकी आज्ञामात्र है, बुद्धिमें उससे उच्च मतलब नहीं, उसी प्रकार आज कल [illegible] [illegible]र्म

गुणोंकी [illegible] है, उसमें बुद्धिसे काम नहीं लिया जाता। [illegible] भी अभी तक कोई ऐसी [illegible] नहीं निकली है जिसमें "जन्मना" और "कर्मणा" इन दोनों प्रवृत्तियोंके नियमोंका पालन करते हुए कोई सर्वांगीण सामाजिक व्यवस्था बनाई जाय।

इस प्रसंगमें इन नियमोंका कुछ और विस्तारसे विवेचन करना आवश्यक है। [illegible] की [illegible] [illegible] नाश होना यही [illegible] है, यह तो सब दर्शनोंका सिद्धान्त है। पाश्चात्य विद्वानोंने जो यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि [illegible] इस जगत्‌में जो कुछ विभिन्नता देख पड़ती है उसका क्रमशः विकास हुआ है, उसको इसी [illegible] [illegible] जानना चाहिए। इसको अंग्रेजी भाषामें "एवोल्यूशन थियरी" अर्थात् विकासवाद अथवा [illegible] कहते हैं। इस वादके पक्षपाती पश्चिमी पंडितोंका कहना है कि वर्णविभागके प्रकारके नियामक दो नियम हैं। एक नियम यह है कि सन्तति अपने उत्पादकके सदृश होती है, यह तो सबकी ही बात है। पर यह भी प्रत्यक्ष है कि सर्वथा सदृश नहीं होती, प्रत्युत विसदृश होती है, अर्थात् दूसरा नियम यह है कि सन्तति स्वभावतः विकारी होती है।

अंग्रेजोंने इन नियमोंको "ला आफ हेरिडिटी" और 'ला आफ स्पान्टेनियस वेरिएशन्" कहते हैं। पाश्चात्य विज्ञानाचार्योंका मत है कि स्थावरसे जंगम, उद्भिज्जसे स्वेदज, उससे अंडज, उससे पिंडज, इत्यादि जीवनिकायों और चतुर्विध भूतग्राम की सृष्टि क्रमशः इन्हीं दो नियमोंके अनुसार हुई। यह दो नियम ही क्यों प्रवृत्त हुए इसका विचार वे दार्शनिकों पर छोड़ते हैं। *सांख्यने यों निश्चय किया है कि पुरुष की संनिधिमात्रसे प्रकृतिमें क्षोभ होकर* विकृति उत्पन्न होती है, समताके स्थानमें विषमता प्रकट होती है। विकृतियाँ मध्यमें ही अंशतः प्रकृतिके सदृश अंशतः असदृश होती हैं। वैषम्यका अर्थ ही यह है। इसी वस्तुगतिका वर्णन *पाश्चात्य पंडितोंने पूर्वोक्त दो नियमोंके नामसे किया है। संस्कृत शास्त्रमें वर्णव्यवस्थाके सम्बन्धमें* मानवजाति की शारीर और मानस कहिए, अथवा बहिष्करण और अंतःकरण कहिए, अथवा स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर कहिए, इन दोनों की प्रकृतिविकृति की दृष्टिसे इन दोनों नियमों का वर्णन कई द्वंद्वात्मक शब्दोंसे किया गया है। अर्थात् जन्मना और कर्मणा, जाति और वृत्ति, कुलेन और शीलेन, योन्या और तपसा, इत्यादि। इन शब्दद्वंद्वोंमें जन्म और कर्म यही इस समयके हमारे प्रयोजनके लिए विशेष उपयोगी हैं। महाभारतादि प्राचीन ग्रंथोंमें जहाँ वर्णव्यवस्थाके मूलतत्त्वों पर विचार किया है वहाँ ऐसे शब्दोंका प्रयोग अधिकतर है। प्रकृतमें हमारा कहना यह है कि चित्तरूप प्रकृति की तीन मुख्य विकृति हैं अर्थात् ज्ञान, इच्छा और क्रिया, और इसी हेतुसे तीन प्रकारके मानवजीव होते हैं, ज्ञानप्रधान, क्रियाप्रधान और इच्छाप्रधान। चौथा भेद मन्दबुद्ध लोगोंका है। इस मूलतत्त्व पर ध्यान देकर वर्णव्यवस्था आदिमें चली और फिर अब चलना चाहिए। तभी जगत्‌का कल्याण हो सकता है। इस बीजमंत्रके प्रयोगमें यह बात सर्वदा स्मरण रहना चाहिए, जिस बात को वैदिक आर्षकविने उत्प्रेक्षा द्वारा कहा, कि एक ही पिता ब्रह्मासे चार विभिन्न स्वभाव के मानवजीव पैदा हुए और भिन्न भिन्न कामोंमें लग गए। और अब भी यही दिन दिन देख पड़ता है कि एक ही पिता मातासे भिन्न स्वभावके

प्राप्त होते हैं। तो वर्णव्यवस्थामें अर्थात् सामाजिक कार्योंके विभजनमें और भिन्न स्वभावके आदमियों को भिन्न वृत्तियोंमें लगानेमें जन्मना और कर्मणा दोनों नियमों पर ध्यान देना चाहिए।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टा हि कर्मभिर्वर्णतां गताः॥ म० भा०, शांति, अ० १८८
जात्या न क्षत्रियः प्रोक्तः क्षतत्रायं करोति यः।
चातुर्वर्ण्यविहितोऽपि स एव क्षत्रियः स्मृतः॥ म० भा०, शांति०, अ० ८१
श्रृणु यक्ष कुलं नैव न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे तु वृत्तमेव तु कारणम्॥ म० भा०, वन०, अ० ३१८
जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते॥
शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते॥ मनु०, अ० २, इत्यादि।

पर जैसा ऊपर कह आए, भारतवर्षमें अब वर्णनाम केवल जन्मना पड़ता है और रोजगार से उससे अब कुछ संबंध नहीं रह गया। और पश्चिममें तो कोई वर्णव्यवस्था है ही नहीं, केवल कर्मणा प्रत्येक व्यक्ति बहुत परस्पर द्रोह और समर्दसे अपना अपना रोज़गार पकड़ पाता है।

यद्यपि विज्ञानकी वहां इतनी वृद्धि है तथापि पश्चिम देशोंमें समाजमें जो कार्य-विभाग हम आज पाते हैं वह समझ बूझकर नहीं किया गया। कई कारणोंसे अपने आपही जैसा है बन गया है।

आवश्यकता इस बातकी है कि समाजकी सुव्यवस्था करनेके लिए मनुष्यके स्वभाव, मनुष्यकी मुख्य मुख्य कामनाओं अथवा एषणाओं तथा विशेष योग्यताओं,के अनुसार संसारके समस्तमनुष्यों की श्रेणियाँ बनाई जायं, परन्तु अभी तक ऐसे विभाजनकी कोई तरकीब पाश्चात्य विद्वानोंने नहीं पाई है। यही कारण है जिससे आजकल आपसकी ईर्ष्या, द्वेष, और झगड़े श्रेणी श्रेणी और जाति जातिके फैले हुए है, जिससे राष्ट्रीय जीवनका ह्रास हो रहा है, और यदि इनका सुधार न हुआ तो सम्भव है कि थोड़े ही दिनोंमें इतना भयंकर युद्ध चारों ओर संसार भरमें श्रेणी श्रेणीमें आरंभ होगा कि जिसके सामने यह भयकर युरोपीय महाभारत जो अभी समाप्त हुआ है वह छोटा मालूम पड़ेगा। इसका नमूना रूसदेशमें कुछ दिखाई दे रहा है।

इस समय मनुष्यसमाजकी व्यवस्थाके सुधारके कितने ही प्रस्ताव सुननेमें आते हैं। कोई लोग यह चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब कार्य केवल परार्थबुद्धिसे करे और स्वार्थ-को सर्वथा त्याग दे। यदि ऐसा हो सकता तो फिर क्या कहना था, पृथ्वी नरकतुल्य न रहकर स्वर्गतुल्य हो जाती। परन्तु समस्त मनुष्योंकी प्रकृतिको इस प्रकार बदलना किसी तरह सम्भव नहीं है। दूसरे लोग जिनको पेशेवर नीतिज्ञ कह सकते हैं, जो अपनेको चतुर और योग्य राज-नीतिज्ञ समझते हैं, वे केवल इसी उद्योगमें लगे रहते हैं कि जीवननिर्वाहकी आवश्यक वस्तु भोजन वस्त्रादिक पदार्थ देशमें सब लोगोंमें उचित प्रकार बट जाय।

अब तक तो इनके उद्योगोंका नतीजा यही हुआ है कि निरन्तर हड़तालें होती हैं। हड़तालके रोकनेके लिये बहुत सी जाती है। लेकिन चाहे जितना कम किया जाता है,

जैसे जहाँ पहिले मज़दूर दिन में आठ घंटा मिहनत करते थे वहाँ साढ़ेसात ही करें, जहाँ साढ़े सात वहाँ सात ही, इत्यादि, और दैनिक भृति अर्थात् मज़दूरी या उजरत बढ़ाई जाती है। फिर सब चीज़ों का दाम बढ़ता है, और कर अर्थात् सरकारी टिक्स बढ़ता है। फिर हड़ताल होती है, फिर बढ़ती होती है इसी प्रकारसे सर्वदा चक्र चला जाता है। भय तो यह मालूम पड़ता है कि कहीं एक दिन समाज के सिर में इस चक्रके कारण घुमटा पैदा होकर समस्त समाजका पतन न हो जाय।

प्रत्युत इसके, हमारे देशकी जो पुरानी विधि थी उसमें मनुष्यकी मानसिक और शारीरिक वासनाओंपर विचार किया गया था, और स्वार्थ और परार्थ दोनोंको मिलानेका यत्न किया था। किसीसे यह नहीं कहा जाता था कि तुम सर्वथा नि.स्वार्थी हो। इतना ही कहा जाता था कि तुम यहां तक स्वार्थी हो, उससे अधिक नहीं। ज्ञानप्रधान जीव से कहा जाता था कि तुम सम्मान प्रतिष्ठा इज़्ज़त की आकांक्षा अवश्य रक्खो, परन्तु तुम्हें चाहिये कि ज्ञानके संचय और वितरणमें सदा लगे रहो, विद्यादान और तपस्यासंचयसे सम्मान के योग्य बनो। तुमको अधिकार, अर्थात् हुकूमत और इख़्तियार, धन अर्थात् दौलत, खेल कूद अर्थात् शारीरिक विलासकी, लालच नहीं होनी चाहिये। क्रियाप्रधान जीव से कहा जाता था तुम अधिकारकी आकांक्षा अवश्य करो, परन्तु तुम उसके योग्य उसी समय होगे जब तुम अलेको धुरेसे बचाने का, सत् की रक्षा और असत् मनुष्योंके निवारण का, यत्न सर्वदा करो, और सबको अपने अपने उचित धर्म कर्म व्यवहार जीविका में लगाये रखनेका उद्योग करो, न कि अपने ऐश और शान को बढ़ानेके लिये गरीब और कमजोर को दुख पहुँचाओ। तुमको सम्मान प्रतिष्ठा, धन, और विलासकी लालसा, नहीं करनी होगी। इच्छाप्रधान जीवसे कहा जाता था कि तुम धनकी आकांक्षा अवश्य करो परन्तु तुम उसका संचय उचित प्रकारसे करो। दूसरोंको दु.ख पहुँचाकर, ठगकर, झूठे इश्तिहारोंसे, या बाजारको चालाकीसे चढ़ा गिराकर, धन न कमाओ। तुमसे यह आशा की जायगी कि अपने धनका अधिक अंग तुम दानमें धार्मिक और सार्वजनिक संस्थाओंपर खर्च करोगे। तुमको यह प्रबन्ध करना होगा कि सारे समाजके प्रत्येक व्यक्तिको उचित मूल्यपर सब शारीरस्थितिकी आवश्यक वस्तु अन्न वस्त्रादि मिल जाँय, और तुमको इज़्ज़त, हुकूमत, और खेल तमाशेकी, लालसा नहीं करनी होगी। मज़दूर से कहा जाता था कि तुम क्रीड़ा खेल तमाशा कर लो। तुमको अन्न, वस्त्र, रहने का कष्ट नहीं होगा। परन्तु तुम्हें परिश्रम उचित और निर्विघ्न करना होगा और तुम इज़्ज़त हुकूमत और दौलत की लालसा मत करो।

मनुष्यकी प्राकृतिक वासनाओंका न तो सर्वथा मूलोच्छेद हो सकता है और न यही उचित और सहनीय है कि वे मनमानी उच्छृङ्खलतासे बढ़ने पावें, अर्थात् उचित यह है कि उनको नियमबद्ध करना चाहिये। पूर्वोक्त रीति ही वर्णव्यवस्थाके आर्थिक पक्षके अनुसार एक ऐसी रीति है जिसमें मनुष्यकी प्राकृतिक वासनाएँ अनियन्त्र प्रबल नहीं होने पातीं, और साथही उनको नियमबद्ध करनेका यत्न किया जाता है। उनका और उनकी पूर्ति करने वाले पदार्थोंका बटवारा कर देना ही समाजके सब अङ्गोंमें परस्पर अनुराग बनाये रखनेका एकमात्र

उपाय है। आज कल जो प्रथा चल रही है वह यह है कि बटवारा न करके प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है और यत्न करता है कि सब प्रतिष्ठा सब हुकूमत सब धन दौलत और सब आमोद प्रमोद भी हमी को मिल जाय। और इसी हेतुसे संसार भर अनंत परस्पर ईर्ष्या और विद्रोह फैल और बढ़ रहा है। यह नहीं समझना चाहिये कि मनुष्यकी इन आकांक्षाओंका नियमन नहीं किया जा सकता। जैसे और वासनाएँ परिमित और नियंत्रितकी गई हैं वैसे ये भी हो सकती हैं। सब कानूनसे आजकल मनुष्यकी वासनाओंको रोकना और नियमन करनेका ही तो प्रयत्न किया जाता है। यदि आकांक्षाओं और उनके परितोषकोंका विभाग बुद्धिपूर्वक निश्चित कर दिया जाय और साथ ही साथ उचित औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध भी कर दिया जाय तो फल बहुत अच्छा होगा। तब वर्ण-व्यवस्थाका वास्तविक पुरातन अर्थ फिरसे खुलेगा और उसका उपयोग होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभावके अनुकूल उचित वर्ण अथवा श्रेणीमें चला जायगा। पूर्वोक्त तीन परितोषकोंमेंसे जिस परितोषकको वह अधिकतम पसन्द करेगा वही उसके नैसर्गिक वर्ण अथवा वर्ग का निर्णायक लक्षण होगा। इज्जत चाहनेवाला ब्राह्मण वर्गमें गिना जाय, ब्राह्मण वृत्तसे रहे, ब्राह्मण जीविका पावे। हुकूमत चाहने वाला क्षत्रियवर्ग-वृत्त-जीविकाका भाजन हो। दौलत चाहने वाला वैश्यवर्ग-वृत्त-जीविकाका पात्र हो। खेल तमाशा चाहने वाला शूद्रवर्ग-वृत्त-जीविकाका अधिकारी हो। प्रतिष्ठा, अधिकार, और धनके एकत्रित होनेसे जो व्यक्तिविशेष अपना लाभ और दूसरोंकी हानि कर सकते हैं वह बहुत कम हो जायँगे। मनुष्योंकी इच्छा ऐसे चाल व्यवहार रहन सहन परिश्रमकी ओर आकर्षित होगी जिससे कि वे अपनी आकांक्षाओंको पूरा करते हुए समाजका भी भला करते रहें, क्योंकि बिना तदनुरूप समाजकी सेवा सहायता किये उनको तत्परितोषक नहीं मिल सकेगा।

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥ (गीता)

"यज्ञ" के अर्थ प्रसंगमें ज्ञानप्रचार, रक्षाप्रचार, अन्नप्रचार, और सेवाप्रचार लेना चाहिए।
यथा—आरंभयज्ञाः क्षत्राश्च हविर्यज्ञा विशः स्मृताः ।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च, जपयज्ञा द्विजातयः ॥ म० भा०, शांति०, अ० २३७,

धनसे कोई [illegible] अथवा अधिकार खरीद नहीं सकेगा अतएव उसको बटोरनेकी [illegible] कम हो जायगी। और अत्यन्त धनी और अत्यन्त दरिद्रका जो आज कल अन्तर हो रहा है वह [illegible] अर्थात् न कोई अत्यन्त धनी होगा और न कोई अत्यन्त दरिद्र, और [illegible] उचित प्रकारसे सब मनुष्योंमें विभक्त हो जायगी। पार्टी बंदकी लड़ाई, [illegible] लड़ाई, [illegible] लड़ाई, [illegible] लड़ाई, [illegible] लड़ाई, स्त्री पुरुषकी लड़ाई, [illegible] लड़ाई, [illegible] और [illegible] लड़ाई, [illegible] लड़ाई, [illegible] और [illegible] लड़ाई, [illegible] और [illegible]। [illegible] लड़ाई, [illegible] और [illegible] आजकल [illegible] रही है [illegible] ।

प्राकृतिक बातोंको देखनेसे भी ऐसा विभाग करना उचित प्रतीत होता है। वास्तवमें ऐसा विभाग ही नैसर्गिक है, क्योंकि बिना जाने बूझे भी, बिना बुद्धि पूर्वक आयास और प्रबन्ध किये भी, मनुष्यसमाज प्रत्येक देश और कालमें स्वतः चार अंगोंमें विभक्त हो ही जाता है।

और उनमें इन चार वासनाओं और परितोषकोंका भी बटवारा यथा कथंचित् देख पड़ता है। भेद यही है कि अबुद्धिपूर्वक होनेके कारण अंगविभाग और परितोषक विभाग परस्परके मनमिलाव और खुशी राज़ीसे नहीं होता किन्तु छीनने और झपटनेसे। और इसी कारणसे उस विभाग में जो शान्ति और शोभा और परस्पर आनुकूल्य होना चाहिये वह न होकर प्रत्युत बड़ा विरोध और संघर्ष देख पड़ता है।

ज्ञानप्रधान ब्राह्मणप्रकृतिक जीव इस इन सब ही देशोंमें सबसे अधिक सम्मान पाता है। आंग्ल देशमें कन्टर्बरीके आर्चबिशपको यहाँके मुख्य ब्राह्मण और प्रधान पुरोहित हैं, और जिनको ब्राह्मणः शान्तिमय ब्राह्मण सर्वभूतहितेच्छु होना चाहिये—चाहे व्यवहार में हो या नहीं—उनको राजसभामें सम्राट् और राजवंशके बाद सबसे अधिक सम्मानका आसन मिलता है। इंग्लैंड राजा जो शान्तिके समयमें सबसे श्रेष्ठ क्रियाप्रधानजीव है, और सेनापति जो लड़ाईके समय सबसे अधिक क्रियाप्रधानजीव हैं, इनको सब स्थानोंपर सबसे अधिक अधिकार दिया गया है। इंग्लैंड सबसे बड़ा धनी कोई वणिक्जी होता है, राजा भी नहीं। और जिस आनन्दके साथ मजदूर दुखी बना रहता है वैसे और कोई नहीं बना रहता। मालूम पड़ता है कि पूर्वोक्त मनुष्यमें जब पुराने ईसाई धर्म, रोमन कैथोलिक शाखा प्रारम्भ था उस समय इस देश विभाग अधिक स्पष्ट रूपमें किया गया था वैसा आजकल था। ऐसा अनुमान होता है कि [illegible] इनके पूर्वजोंमें यह बटवारा पूरी तौरसे जानके रखा गया था परन्तु अब [illegible] विज्ञान और उसके ऊपर निर्मित और कल्पित नई व्यवस्था नहीं हुई हैं।

चीज़, बर्तन और औज़ार बनानेके धातु, मकान बनानेका सामान, तथा लकड़ी कोयला तेल, इत्यादिके ही खरीद फरोख्त और फेरके दांव पेचसे वस्तुओं को कमी करके किसी किसीके पास अत्यधिक दया कर लेनेसे (धन) एकत्रित होता है। इसी कारण से सांसारिक आवश्यकताएं सबको उचित प्रकारसे नहीं मिल सकतीं। यदि दुष्कारण ही हटा दिया जाय, यदि इतने मनुष्य एक ही प्रकारकी आकांक्षा रखने पावें जैसे कि यह प्रायशः एक ही पत्नीका पातिव्रत कर सकता है, तब यह सब दुष्परिणाम भी आप ही आप दूर हो जायँ और मनुष्योंकी समानता अधिक दिखाई पड़ने लगे, अर्थात् अत्यंत धनी अत्यंत दरिद्र आदिका अत्यंत भेद कम हो जाय, और मनुष्यमात्र स्नेहकी सांकलमें बँध जायँ और संसार भी आनन्दमय हो जाय।

यदि ये सब विचार ठीक हैं तो आधुनिक वर्णविभागकी दुर्व्यवस्था छोड़ कर उसकी उचित प्रकारकी सुव्यवस्थाकी ओर हमको चलना चाहिये, जो छोटी छोटी बहुतसी उपजातियां उपस्थित हो गई हैं उन्हें प्रधान प्रधान जातिमें संघटित कर लेना चाहिये, उपयोगी धंधे संबंधी जो वर्णविभागकी विशेषता थी उसे फिर स्थापित करना चाहिये, उसका "जन्म" रूप कुछ कम करना चाहिये, "कर्म" रूप कुछ बढ़ाना चाहिये, और साथ ही शिक्षाको जीविका के उपयोगी बनानेका भी विचार सदा रखना चाहिये।

वर्णव्यवस्थाका मूल कारण तो जीविकाका ही विभाग है पर अब यह लुप्तप्राय हो गया है। इससे समाजके ज्ञान, इच्छा, क्रिया सबमें दोष आ गया है। अर्थात् समाजका ज्ञान-संग्रह बहुत क्षीण हो गया है, अधिकतर जीव अशिक्षित हैं, जहाँ प्राचीन द्विजत्वनियमके अनुसार चारमें तीन हिस्सा मनुष्यों को साक्षर होना चाहिए वहाँ अब प्रायः दस हिस्सेमें एक हिस्सा भी साक्षर नहीं है, तथा परस्परके आत्मीयवत् स्नेहभाव और सहायशीलताके स्थानमें होड़ और एक दूसरे को हानि पहुंचाने ही की इच्छा फैल रही है, और सब प्रकारकी व्यापारकी क्रियाएं व्यवसाय अत्यंत मंद हो रहा है। आत्मा तो चला गया, शरीर मात्र रह गया है। सब मनुष्योंके हृदयोंको परस्पर बांधने वाली स्नेह और धर्मकी रस्सीतो जल गई, केवल दर्प, द्वेष, और झूठे जातिमदकी ऐंठन मात्र रह गई है।

उसका क्या कर्तव्य और क्या अधिकार, क्या फ़र्ज़ और क्या हक़ है, इसका निर्णय उसके स्वभावपर है। जैसा गीतामें कहा है—

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ॥
> कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

और, जैसा पहिले कह आये, प्रतिव्यक्तिका स्वभाव कुछ तो उत्पादकके सदृश और कुछ विभिन्न और कभी कभी बहुतही विभिन्न होता है तो इन सिद्धांतोंके अनुसार प्रत्येक मनुष्यके स्वभाव देखकर तदनुरूप उसके कर्तव्य और अधिकारका निर्णय करते हुए उसके वर्णका निर्णय यदि होगा तो इसमें जन्मनेव वर्णः यह विचार कुछ ढीला करना पड़ेगा क्योंकि यद्यपि जन्मसे कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है पर उसी प्रकारका प्रभाव अपने स्वच्छन्द विकारसे भी पड़ता है, और पुत्र अपने पितासे शक्ति और वासनामें अक्सर भिन्न होता है, पिताके व्यवसायमें उसको अक्सर रुचि नहीं होती, और उसमें दूसरी प्रकारकी योग्यता होनेसे उसको दूसरा व्यवसाय शायद सहजमें प्राप्त हो सकता है।

यह कभी कभी कहा जाता है कि वर्णविभागसे ही हिन्दू-समाज जीता बचा है, नहीं तो नाश हो गया होता। पर ध्यानसे देखना चाहिये कि ऐसे कथनका अर्थ क्या है। क्या यह अर्थ है कि वर्ण विभाग न होता तो नस्ल टूट जाती, सन्तानपरम्परा उच्छिन्न हो जाती, हिन्दुस्तान में अब जो तीस कोटिकी बस्ती में प्रायः बाईस कोटि हिंदू हैं वे न होते और बस्ती केवल आठ कोटिकी होती। स्पष्ट है कि यह अर्थ नहीं हो सकता। मानवसन्तान कायम रखनेकी शक्ति यदि केवल वर्णविभाग ही में होती तो जिन देशों में इस प्रकारका केवल जन्मना वर्णविभाग नहीं है वहां मनुष्य सृष्टि ही न होती। और भी, भारत वर्ष ही में जो आठ करोड़ मुसलमान, ईसाई आदि हमारे भाई वर्तमान हैं वे कैसे बिना वर्ण विभागके जीवित बचे हैं। तो यह अर्थ नहीं हो सकता। उक्त कहने वालों का यही अर्थ है कि हिंदू आचार विचार, हिंदू शास्त्र और ज्ञान आदि, जो बच रहे हैं वे वर्ण विभागके कारण। पर इसके उत्तर में प्रतिपक्षियोंका कहना है कि इससे बहुत अधिक बचता यदि वर्णोंकी अवद्व्यवस्था केवल जन्मनाही न होगई होती। जो कुछ उसके सत् शास्त्रोंका, ज्ञान और विद्याका, लोप और सद्भाव और परस्पर स्नेह प्रीतिका ह्रास, परस्पर ईर्ष्या द्वेष और स्वार्थ परताकी वृद्धि, सब व्यवसाय और स्वाधीनताका नाश हुआ वह इसी केवल जन्मना वर्णसे हुआ है।

यदि इस हिंदुत्व अर्थात् सनातन आर्य वैदिकधर्मका कुछ भी उत्तम अंश बचा है तो उसका यही कारण है कि विशेष जातियोंने अपना कर्तव्य थोड़ा बहुत अवश्य पालन कर्मणा-वर्णके अनुसार किया है, और जितना उन्होंने पालन किया है उतनेही अंशमें हिन्दु-समाजको जीवित समझना चाहिये। और जहां तक इस वर्णविभागके कारण हिन्दू-समाज तन मनसे दूसरोंका दास बन गया है, और आपसमें झगड़े करता है, और उसकी जातियां एक दूसरेकी जीविका और रोजगार छीननेकी धुनमें एक दूसरेसे बैर करके सब कर्मोंसे निश्चित करती है, उतनाही वह निर्जीव सा है। [illegible]

इस स्थान पर यह भी याद रखना चाहिये कि यद्यपि हिंदु समाज अर्थात् बनाये हुए है कि जन्मना एव वर्णः, तथापि सब लोग जानते हैं कि छुपके छुपके समारोहसे छोटे छोटे समुदाय अपना वर्ण परिवर्तन करते ही जाते हैं। यह विचार हुआ है समाजका काम होता ही रहता है। पुराणकी कथा प्रसिद्ध है कि परशुरामने नये ब्राह्मण तथा चार प्रकारके अग्निकुल क्षत्रिय अर्थात् सोलंकी, पमार आदि नये क्षत्रिय बने। लोग अब अपनी गिनती क्षत्रियों में करने लगे हैं। तथा कूर्मी लोग कूर्मवंशी क्षत्रि-यो कहलाते हैं। तथा भाटिया लोग भी जिन्होंने किसी विशेष कारणसे क्षत्रवृत्ति छोड़ वाणिज्य वृत्ति उठाली। तथा भार्गव लोग जो पहिले वैश्यों में गिने जाते थे अब अपने को ब्राह्मणों में गिनते हैं। कई वर्ष हुए काशी में एक छोटी पुस्तक स्वार्थप्रकाशिका छपी थी, जिसको कहा जाता है कि वैकुण्ठवासी राजा शिवप्रसादने छपवाई थी, उसने दिखाया था कि ऐसे ही कई समुदाय जो ब्राह्मणों कि अवांतर जातियों में गिने जाते हैं थोड़े ही दिन पहिले दूसरे वर्णों में गिने जाते थे। सरकारी रिपोर्टों और मर्दुमशुमारीके अंकों से भी इसकी पुष्टि होती है। तो जब ऐसा वर्णपरिवर्तन स्वभावकी और देश काल निमित्त के प्रेरणासे होता ही है तो यह छिपे लुके और असत् प्रकारसे क्यों किया जाय जिसमें तरह तरह की भूल होती है, हेतुगर्भ सत्कारणप्रयुक्त नियम बांध कर खुले तौरसे क्यों न किया जाय, जैसा शास्त्रका आशय है अर्थात् यह कि जिस वर्णके उचित जिसका आचार व्यवहार गुण और जीविका हो उसी में उसकी गिनती हो।

हम लोग सदा कार्य और कारणको उलटा समझ लेते हैं। घोड़ेके आगे गाड़ी जोत देते हैं। यह न कह कर कि अमुक पुरुष बड़ा धार्मिक और विद्वान् है इस कारण इसको ब्राह्मण कहना चाहिये, अमुक साहसी और उद्योगी है इस कारण इसको क्षत्रिय कहना चाहिये, अमुक व्यापार व्यवसायमें बड़ा पटु है इस कारण इसको वैश्य कहना चाहिये, अमुक खिलवाड़ी है परन्तु कार्यमें लगानेसे कार्य करता है इस कारण शूद्र है, ऐसा न कह कर हम उलटे यह कहते हैं कि अमुक जन्मना ब्राह्मण है अतएव उसको विद्वान और तपस्वी मान लेना चाहिये और उसका उचित आदर करना चाहिये, अमुक जन्मना क्षत्रिय है अतएव उसको शूरवीर समझना चाहिये, अमुक जन्मना वैश्य है अतएव उसको धनी समझना चाहिये अमुक जन्मना शूद्र है अतएव उसे शारीरिक श्रम करना चाहिये इत्यादि तरह हो।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः ॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात् मनुष्यमात्र चार प्रकारोंमें ही बंटे होते हैं और पांचवें प्रकारका मनुष्य होता ही नहीं। तथा इस आर्यावर्तका अग्रजन्मा अर्थात् ज्योतिष्मान् सात्त्विक ज्ञानवान् जो ब्राह्मणवृत्तिसे रहता हो और इस नामके योग्य हो उससे सब पृथिवीमण्डलके सब मनुष्य मात्रको चातुर्वर्ण्यात्मक अपना अपना कर्तव्य और अधिकार सीखना चाहिए। इन श्लोकोंसे स्पष्ट है कि मनुजीने जिनकी [illegible] समस्त मानवमात्र है धर्मशास्त्र केवल भारतवासियोंके निमित्त नहीं रचा किंतु पृथिवीमंडलके सब मनुष्योंके लिये, और उन्होंने सब मनुष्योंको चातुर्वर्ण्यके अन्तर्गत किया।

तो कोई कारण नहीं है कि हम ईसाई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, मुसल्मान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, पारसी और यहूदी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको न मानें, और उनको उतने ही इज्जत हुकूमत दौलत और सेवा आदिके अधिकारी न समझें, जितने कि हिन्दू ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंको मानते हैं। ऐसा मानना ही उन सबको अपने निकट लानेका और सबके हृदयोंको स्नेहके बंधनमें बाँधनेका और सर्वलोकसंग्रह करनेका और समस्त पृथिवी सौमनस्य शान्ति तुष्टि पुष्टि फैलानेका सर्वोत्तम यत्न है। इस तरह जितने सच्चे ब्राह्मण हैं, अर्थात् जितने संसारके वैज्ञानिक विद्वान पंडित आचार्य अध्यापक और धर्मोपदेशक हैं सब साथ मिलकर कार्य कर सकेंगे, आपसका भेद कम हो जायगा, और जात पाँत देश और रंगका अन्तर कम होते हुए आपसमें स्नेह बढ़ेगा, सब मिलकर सारे संसारके लाभके अर्थ ज्ञान और धर्मका प्रचार करेंगे। इसी प्रकार सब देशोंके सब सच्चे क्षत्रिय सज्जनोंको दुर्जनोंसे बचानेके लिये यत्न करेंगे ताकि संसार भरमें सुख और शान्ति रहे। इसी प्रकार सब देशोंके वैश्यवर्ग सब मनुष्योंके जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये यत्न करेंगे और सब देशोंके सब लोगोंको सुख पहुचानेका प्रबन्ध करेंगे।

इसी प्रकार सब देशोंके सब शूद्रलोग मिलकर शारीरिक श्रमसे अन्न वस्त्रका उत्पादन अन्य वर्णोंके निर्देशके अनुसार करेंगे जिससे कि संसारके प्राणिमात्रका कल्याण हो।

इसका यह मतलब नहीं है कि सबलोग मिलकर ख्वाहमख्वाह अपनी इच्छाके विरुद्ध भी आपसमें भोजन अवश्य करें अथवा सबलोग सबसे शादी ब्याह करें। अपने अपने अभ्यास और संस्कारानुसार जिसका जी किसी दूसरेके साथ खानेको नहीं चाहे तो अवश्य मत खाओ। किसीसे विवाह करनेको नहीं चाहते तो अवश्य मत करो। इसमें कोई बलात्कार तो है नहीं। इसका मतलब वास्तवमें केवल यही होगा कि सब देश जाति सम्प्रदाय और समुदायके लोगोंमें पेशेके नामका प्रयोग अधिक होने लगेगा, और अपने आन्तरिक इच्छा योग्यता आदिके कारण जिस रोजगारमें जो लगेगा उसी रोजगारके नामसे वह पुकारा जायगा। मेरा यह नम्र निवेदन है कि ऐसाही करनेसे धर्म-व्यवस्थाकी आन्तरिक स्वाभाविकतामूलक विशेषता और जीविकाकी उपयोगिता प्रकट होगी और संसार भरमें स्नेह और भाईचारा फैलेगा। क्योंकि नाम, रूप, भाषा और पहिरावेमें बड़ी शक्ति है। यहां तक कि वेदान्तका सिद्धान्त ही है कि नाम और रूपकी मायासे ही संसार है। एक नाम, एक भाषा और एक आकारसे एका फैलता है। हमारा धर्म और समाज जो बहुत कुछ संकुचित हो गया है वह फिर जाग्रत् होकर विस्तृत हो सकता है। आज धर्मके मर्म और हेतुशून्य झगड़ेसे खिन्न होकर बहुत हिन्दूजन प्रतिवर्ष दूसरे मुसलमान ईसाई आदि सम्प्रदायोंका अवलम्बन प्रतिवर्ष कर लेते हैं इसकी आवश्यकता ही न रह जाय यदि वर्णविभाग कर्मणा होने लगे, बल्कि अन्य सम्प्रदायोंके सब मनुष्य इस सनातन वैदिक आर्य धर्मकी मातहत जातियोंमें गिने जाने लगें और इसका मङ्गल पृथिवीमंडलके समान [illegible]

माजवा वर्णविभाग करना चाहते हैं, और उन्हींके कथनानुसार समाजका ठीक संग्रथन और सच्चा
लोकसंग्रह हो सकता है, यदि उनका कथन ठीक प्रकारसे समझा जाय।

अछूत जातियोंकी भी बात इन्हीं उसूलोंपर तै हो सकती है और बड़ी सरलतासे
अनेक सामाजिक कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं।

यदि हम रीति रस्मोंके कारणोंको ढूंढ़ने लगें तो यह देख पड़ेगा कि जिन्हें हम उच्च
जातियां कहते हैं उनमें भी नर नारी समय समयपर विशेष कारणोंसे अछूत हो जाती हैं जैसे
कि अशौचमें अथवा मासधर्मसे। इसी प्रकारसे जाति विशेष भी विशेष कारणोंसे अछूत हो
सकती है और अछूत भी वह तब ही तक रहती है जब तक कि वे कारणविशेष भी लगे हों।
यदि कोई पुरुष या पुरुषसमाज शुद्ध आचरण करे और मैले तरीकोंको छोड़ दे तो अन्य
लोगोंकी तरह उससे भी व्यवहार करना पड़ेगा और उसकी योग्यता और रोजगारके अनुसार
उसका आदर होगा। सब व्यवस्थाका मूलमंत्र स्वयं मनुने कहा है—

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

भगवानदास



भारतके आर्थिक इतिहासका दिग्दर्शन

(२)



र्थके पूर्व अङ्कमें भारतके प्राचीन भौगोलिक स्थितिकी विवेचना करते हुए हमने यह सिद्ध किया था कि भारतमें इसके प्राचीन नगरों और ग्रामीण पर नगर और उनकी आबादीके बहुत कुछ प्रमाण वर्तमान थे। वैदिक युगके बाद एक ऐसा परिवर्तित युग आया जब हम एक नये युगमें प्रवेश करते हैं जिसकी ऐतिहासिक सामग्री रामायण और महाभारतके विशाल साहित्यमें वर्तमान है। रामायणके युगमें भारतकी सभ्यता किस श्रेणी तक पहुँच चुकी थी इसके जाननेके लिए इस विशाल साहित्यमें अभी बड़े खोजकी आवश्यकता है। तथापि हम उस युगकी आर्थिक व्यवस्था और उसके महत्त्वपूर्ण बातोंकी कुछ दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा करते हैं।

शान्तिपर्वके राज-धर्मसे ज्ञात होता है कि उस समय राष्ट्रके धनकी रक्षा और अभिवृद्धि करना राजाका परम कर्तव्य समझा जाने लगा था। राजापर प्रजाके "योगक्षेम" का उत्तर-दायित्व था। प्रजाकी जीविका सुलभ करनेका प्रयत्न करना परम राजधर्म था। नारदके युधिष्ठिरसे पूछे हुए प्रश्नोंसे इस बातका दृढ़तर प्रमाण मिलता है। उनका प्रश्न यह था कि प्रजाकी जीविका सुखसाध्य बनानेके लिये क्या तुमने भले पुरुष नियुक्त किये हैं या नहीं*! क्योंकि राज्यकी अच्छी आर्थिक व्यवस्था होनेपर राष्ट्रका सुख और वैभव बढ़ता है।

महाभारतमें 'वार्ता' शब्द आज कलके अर्थशास्त्रके तात्पर्यमें प्रयोग होता था। कौटिल्यका अर्थशास्त्र जो विक्रम संवत्से तीन शताब्दी पूर्वका अद्भुत राजनैतिक ग्रन्थ है उसमें भी वार्ता शब्द आधुनिक अर्थशास्त्रके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। आन्वीक्षिकी (दर्शनशास्त्र), त्रयी (षडंग वेद), वार्ता और दण्डनीति—इस क्रमसे कौटिल्यने विद्याके चार विभाग माने हैं†। "अर्थानर्थौ वार्तायाम्" जिसमें अर्थ और अनर्थ सम्बन्धी चर्चा हो उस शास्त्रकी संज्ञा वार्ता है। कौटिल्यने दण्डनीति और वार्ताको अध्येय विद्याओंमें बड़ी उच्च पदवी दी है। राजनीतिविशारद विख्यात चाणक्यका कथन है कि धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गमें एक दूसरेका घनिष्ट सम्बन्ध है और तीनों ही समान महत्वके हैं क्योंकि यदि इस त्रिवर्गमेंसे किसी एक पर अत्यासक्ति हो तो तीनों धर्म, अर्थ, काम अनर्थक होंगे और शेष दोनोंका ह्रास होकर नाश होगा। इस गम्भीर उपदेशके पश्चात् कौटिल्य यह मानते हैं कि इस त्रिवर्गमें अर्थ ही प्रधान है, क्योंकि धर्म और काम अर्थमूलक हैं‡। "कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता" कृषि, पशु-

* कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥ (शां० ५०७४)

† आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः । (अर्थशा०अ० १)

‡ समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम् । एकोह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति । 'अर्थ एव प्रधानः' इति कौटिल्यः—अर्थमूलो हि धर्मकामाविति ॥ (अर्थशास्त्र १ अधिकार) ॥

पालन, वाणिज्य इन विषयोंका अनुशीलन वार्ताके ग्रन्थोंमें प्राचीनकालमें हुआ करता था। दुर्भाग्यवश वार्ताविषयक ग्रन्थोंका भारतीय साहित्यसे बिलकुल लोप हो गया। महाभारत तथा कौटिल्यके समयमें वार्ताके ग्रन्थ अवश्य वर्तमान रहे होंगे। शुक्रनीतिमें भी वार्ताविषयक विद्याका परिशीलन करना राजाका श्रेष्ठ धर्म माना गया है:—

> आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।
> विद्याश्चतस्र एवैता अभ्यसेद् नृपतिः सदा॥ (१ अध्याय, १५१)
> कुसीदकृषिवाणिज्यगोरक्षा वार्तयोच्यते।
> सम्पन्नो वार्तया साधुर्न वृत्तेर्भयमृच्छति॥ (१५६)

सूद, कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा इत्यादि अर्थोपार्जनके मुख्य साधनोंका विज्ञान वार्ताका विषय था। जिसे इस शास्त्रका ज्ञान है उसको जीविका और लोकयात्रामें किसी तरहकी आशंका व भय नहीं॥

कृषि-विद्या जिसकी वार्तामें प्रधानतया चर्चा होती थी उसकी अवस्था महाभारतके समयमें वैसी ही थी जैसी इस समयमें है। धान्य जिनकी पैदावार आज होती है वे प्रायः सभी उस समय होते थे। उपनिषदोंमें दस प्रकारके अनाजकी खेतीका उल्लेख मिलता है। गन्ने और नीलकी भी खेती उस समय खूब होती थी। कपास (कार्पास) तो भारतहीकी पैदावार है। उपनिषदोंमें ऐसा उल्लेख है कि सींक और रुईकी भाँति ज्ञानीके पाप भस्म हो जाते हैं। कृत्रिम नहर और कूओंसे खेती सींची जाती थी। सभापर्वमें नारदने युधिष्ठिरको यही सलाह दी कि कृषि केवल वर्षापर ही निर्भर न रहनी चाहिये बल्कि राज्यमें स्थल स्थलपर कूप सरोवर निर्माण कर कृषि-सेचनका समुचित प्रबन्ध करना परम श्रेयस्कर है। वर्षा न होनेसे भारतमें अबतक दुर्भिक्ष प्रायः होते रहते हैं। अतएव कृषिके लिए कृत्रिम जल-सेचनके उपाय भारतको दुर्भिक्षसे रक्षा करनेके लिये उस युगमें आविष्कृत हो चले थे।

नारदके युधिष्ठिरके किए हुए प्रश्न बड़े गंभीर और महत्त्व-पूर्ण हैं। उन प्रश्नोंसे स्पष्ट विदित होता है कि राजाको ऋणग्रस्त किसानोंकी रक्षा करनी चाहिये, उन्हें सूदखोरोंके अत्याचारसे बचाना चाहिये और बीजादिककी सहायता देकर उन्हें कृषिकार्यमें प्रोत्साहित करना चाहिये*। आज भी हमारे राजा नारदके गंभीर उपदेशको आदर्श बना भारतीय किसानोंका भला कर सकते हैं परन्तु हाय! इस दुर्भाग्यमय भूमिमें भारतीय किसानको भरपेट भोजन भी नहीं मिलता, ऋणग्रस्त होनेसे उन्हें सुखसे नींद भी नहीं आती, उनकी दारुण दरिद्रता देख पत्थर भी रोता है और वज्रका हृदय भी फट जाता है—'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'—

---

* त्वया वा परिहेयत राष्ट्रे कच्चित्पुष्टाः कृषीवलाः
कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहन्ति च।
भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका
कच्चित् बीजं च भक्तं च कर्षकस्यावसीदति
प्रत्येकं च शतं वृद्ध्या ददास्यृणमनुग्रहम्॥ (सभापर्व)

कृषिके सिवा उद्यान-विद्या-पुष्पगुल्म वाटिकाओंके लगानेमें भी उस समयके लोग चतुर थे। इस विषयका यद्यपि कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ तथापि कतिपय बातोंसे यह मालूम होता है कि हिन्दू उद्यान-विद्यामें बड़े विलक्षण थे।

कृषिकी भाँति गो-अश्वादिके पालन-पोषणमें बड़ा ही ध्यान दिया जाता था। यह एक हुनर समझा जाता था। तन्तिपालके वेषमें जब सहदेव विराट्के पास आ गायकी नौकरी करना चाहता था तब उसने यह कहा था कि 'मैं पशु-पालन-विद्यामें इतना दक्ष हूँ कि मेरे निरीक्षणमें गौओंकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी होती है और उन्हें कोई रोग नहीं हो सकता है'*। नकुलनेभी विराट्के सम्मुख हाथी घोड़ोंके विषयके ज्ञानका परिचय देते हुए यह कहा कि मैं घोड़ोंकी प्रकृति और उनके वशमें करनेके हुनरको भली भाँति जानता हूँ और उनके दोष और रोगोंके दूर करनेके सभी उपाय मुझे मालूम हैं†। इन सब विद्याओंके अनुशीलनके लिए उस समय ग्रन्थ विद्यमान थे। नारदके प्रश्नसे ज्ञात होता है कि इन विषयोंका सूत्ररूपमें साहित्य उस युगमें मौजूद था।

कृषि और गोरक्षाके अतिरिक्त वाणिज्य भी वार्ताका प्रधान विषय है। वाणिज्य अर्थवृद्धिका परम साधन है। दूसरे देशोंका धन वाणिज्य द्वारा ही अपने देशमें लाया जा सकता है। अपने देशकी पैदावार वाणिज्य द्वारा ही देशान्तरोंमें भेजी जा सकती है और अपनी कारीगरी और उद्योग-धन्धोंसे जो वस्तुएँ बनाई जायँ उनका विनिमय दूसरे देशोंसे हो सकता है। वाणिज्यपर विचार करते हुए हमारा ध्यान इस देशकी पुरानी कारीगरी और उद्योग धन्धों-की ओर आकृष्ट होता है। यह तो हम सिद्ध कर चुके हैं कि हमारे देशमें जुलाहे अपने काममें बड़े दक्ष थे। तन्तु पटका दृष्टान्त दर्शन-शास्त्रोंमें प्राचीन कालसे दिया जाता है। किन्तु महाभारतके समयमें बहुत सुन्दर बारीक कपड़ा बनाया जाता था और ईरान, तुर्किस्तान, यूरोप आदि देशोंको भेजा जाता था। इस बातका विदेशीय इतिहास-लेखक उल्लेख करते हैं। ग्रीसदेशके इतिहास-लेखक हिरोडोटस और टेसियस इस देशमें रूईके बने हुए कपड़ोंके उपयोग होनेकी साक्षी देते हैं। रूईके कपड़े बुने जा सकते हैं इस बातपर अचम्भित हो उन्होंने यह लिखा कि भारतके लोग वृक्षपर उगने वाले ऊनके बने वस्त्र पहिनते हैं।

राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरके लिए दूर दूरसे लोगोंने भाँति भाँतिके उपहार भेजे थे। भरुकच्छ निवासियोंने कपासके वस्त्रोंको पहनी हुई दासियोंको भेट किया था। भड़ोच आज-कलकी तरह उस समय भी रूईके लिये मशहूर होगा। भारतके दक्षिणके चोल पाण्ड्य देश भी उस समय सूक्ष्म वस्त्रोंके लिए विख्यात थे। उत्तरके राजाओंने ऐसे सुन्दर रेशमी और ऊनी वस्त्र जिनमें मच्छरके एक तन्तुका भी भेद न था, युधिष्ठिरको उपहारमें दिये। चीनके रेशमी

---

* नित्यं च गावो बहुला भवन्ति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन ॥ विराट् १०।१४

† अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं च चिकित्सितम् ॥ विराट् पर्व, १२-२८

और काश्मीरके ऊनी वस्त्र तब भी मशहूर थे। कम्बोजके राजाने भेड़ और बिल्लीके बालके बने हुए सुनहरी कामदार कपड़े उन्हें भेंट किये थे*।

कपड़े बनानेका हुनर बहुत ऊँचे दर्जेका था। इसमें सन्देह नहीं राजा द्रव्यसे कारीगरोंकी सहायता अवश्य करता होगा। चन्द्रगुप्तके समयमें कारीगर और शिल्पियोंकी सहायता राज्य करता था इस बातकी साक्षी ग्रीसके राजदूत मेगास्थनीज़ने भी दी है। नारदने युधिष्ठिरसे यह भी पूँछा था कि क्या तुम द्रव्य और उपकरणसे राज्यके शिल्पियोंकी सदा मदद करते हो :—

द्रव्योपकरणं कच्चित् सर्वदा सर्वशिल्पिनाम् ।
चातुर्मास्यावरं सम्यङ्नियतं संप्रयच्छसि ॥ सभा. ५, ११८

उस समय ऐसे राज-कर्मचारी नियत किये जाते थे जो कारीगरोंको प्रोत्साहन और धनकी सहायता देकर उनकी सदा हितचिन्तना करते थे। राज्यमें एक ऐसा शासन विभाग था जो प्रजाकी आर्थिक सुख-समृद्धिके उपायोंकी निरन्तर आयोजना किया करता था। राजाके रक्षण और निरीक्षणके कारण प्राचीन भारतके उद्योग-धन्धे और कला-कौशल उन्नतिकी पराकाष्टापर पहुँच गये थे। अपने औद्योगिक इतिहासका दिग्दर्शन कराते हुए यदि महर्षि नारदका "प्रश्न"† हम अपने सम्राट्से पूँछें तो जैसा उत्तर उनसे मिलना चाहिये उसका पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। कदाचित् वे लज्जावनत मुखसे यही कहेंगे कि हमारी जातिने तुम्हारे उद्योग-धन्धोंके प्रति राजधर्मका अवलम्बन न कर, स्वार्थ-सम्पादन मात्र ही किया।

(क्रमश.)

गंगाप्रसाद मेहता

---

* सभापर्व ५१ । ३, ५१-१० और ५२-१२.

† कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥ (सभापर्व)

३

प्रजातंत्र शासनका आधार



राजनीतिक दृष्टिसे, वर्तमान काल प्रजातंत्र राज्योंका युग है। प्रजातंत्र शासनके आधारभूत तत्त्वोंका ज्ञान होता है कि उसके दो मुख्य लक्षण हैं। पहिला लक्षण है व्यावहारिक स्वाधीनता, जिसका अर्थ यह है कि जनताको मनुष्योंके कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त होने चाहिये, जिनमें किसी दूसरे व्यक्ति या शासनको हस्तक्षेप करनेका अधिकार न हो। यह अधिकार साधारणतः पांच हैं—व्यक्तिगत स्वाधीनता, नियमसम्बन्धी समानता, सम्पत्ति सम्बन्धी स्वाधीनता, विचार तथा अभिव्यक्तिकी और नैतिक स्वाधीनता। इनमें सबसे मुख्य है नियमसम्बन्धी समानता, जिसका अर्थ यह है कि नियम या कानूनकी दृष्टिसे सब बराबर हैं। प्रजातंत्र देशोंमें यह अधिकार थोड़े बहुत सबको प्राप्त रहते हैं। दूसरा लक्षण राजनैतिक स्वाधीनता है, जिसका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्तिको राष्ट्रके शासनमें भाग लेनेका अधिकार हो। इसलिये प्रजातन्त्र राष्ट्र वे ही हैं, जहाँ नियमकी दृष्टिसे सब समान हैं, और जहाँ राष्ट्रशासन करनेमें नागरिक थोड़ा बहुत भाग ले सकते हैं।

इन दोनों लक्षणोंको ध्यानमें रखते हुए आदर्श प्रजातंत्र राष्ट्र वे ही हैं, जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता अपहरण करनेवाला कोई कानून नहीं है, और जहाँ प्रत्येक व्यक्ति नागरिक शासनमें पूरा भाग लेता है। परन्तु संसारके इतिहासमें, आज तक, किसी राष्ट्रको भी, इस आदर्श तक पहुँचनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। पाश्चात्य संसारमें, राजनैतिक स्वाधीनताके जन्मदाता, एथेन्स नगरके मस्तकपर भी, स्त्रियों और दासोंको इन अधिकारोंसे वंचित रखनेका कलंकका टीका लगा ही रहा। आजकल भी स्वाधीनताके मदमें चूर अमरीकाके उज्ज्वल मुख-मण्डलपर भी कहीं कहीं नागरिक अधिकारोंसे रहित निवासी हबशियोंकी कालिमा दिखाई दे रही है। यह हार्दिक संकीर्णता चाहे कभी दूर भी हो जाय, पर तब भी राजनीतिक इतिहासमें पूर्ण प्रजातन्त्र शासन एक आदर्शमात्र ही रहेगा। कारण यह है कि व्यवहारमें ऐसी अवस्था असम्भव है। राष्ट्रका क्षेत्रफल, कितना ही संकुचित क्यों न हो, पर तब भी सबको शासनमें एकसा भाग लेनेका अवसर देना असम्भव है। विस्तृत राष्ट्रोंके विषयमें तो इसकी चर्चा तक भी नहीं हो सकती। इस असुविधाको दूर करनेके लिए, प्रतिनिधि शासनपद्धतिका सहारा लेना पड़ा है। सारी प्रजा कुछ प्रतिनिधि चुनती है, और वे प्रतिनिधि, उसी प्रजाकी ओरसे, उसपर राज्य करते हैं। इसलिए कोई राज्य या राष्ट्र कहाँ तक प्रजातन्त्र है, [illegible]

जब सारे शासन यन्त्रका सञ्चालन अधिकांश प्रजाके हाथमें रहता है, और शासन-नीतिपर प्रजा-मतका प्रभाव बराबर पड़ता है, तभी यह कहा जा सकता है कि प्रजाको भी शासनमें भाग लेने-का अधिकार है।

आजकल किसी देशकी राजनैतिक उन्नतिका मुख्य लक्षण वहाँकी प्रजाको प्रतिनिधि चुननेका अधिकार है। जिस प्रजाको यह अधिकार जितने विस्तारसे प्राप्त है उतनी ही वह उन्नत समझी जाती है। राष्ट्रोंमें नागरिक और अनागरिकका भेद सदासे रहा है। प्राचीन समयमें इसका आधार जातिभेद था। प्रत्येक जाति अपने समाजको शुद्ध रखना चाहती थी, किसी अन्यजातीय मनुष्यको अपने समाजमें मिलाना पाप समझा जाता था, इसलिये राजनैतिक अधिकार स्वभावतः जातिवालोंहीको प्राप्त रहते थे। परन्तु जब जनसंख्याकी वृद्धि हुई तथा कई एक ऐतिहासिक कारणोंसे जाति-बन्धन ढीले पड़ गए, और सामाजिक संगठनने राज्योंका रूप धारण किया, तब जातीयताका आधार भी जाता रहा। यह राज्य छोटी छोटी जागीरोंमें बंटे थे, इनकी शासन-नीतिमें जागीरदारोंका ही बोलबाला था, इसलिए इनकी जो कोई अधीनता स्वीकार करता, वही किसी न किसी तरह शासनमें भाग लेनेका अधिकारी समझा जाता था। जो लोग जागीरदारोंके आधीन न थे, उनका समाजमें कोई स्थान न था। पर जातियाँ एक तरहकी "चलती फिरती राष्ट्र थीं," पशु-पालक अवस्थामें होनेके कारण उनका कोई निश्चित स्थान न था। अपना डेरा डण्डा लिए हुए, आज यह एक जगह हैं, तो कल दूसरी जगह। कृषिके प्रचारके साथ भूमिसे नाता बढ़ने लगा, भिन्न भिन्न स्थानोंपर भिन्न भिन्न जातियाँ बस गई। समय पाकर यह सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो गया कि इसके सामने स्वर्ग भी तुच्छ जँचने लगा, 'जननी जन्मभूमिश्चस्वर्गादपि गरीयसी' का भाव जाग्रत हो उठा। आगे चलकर राजनैतिक उथल पथलमें जागीरदारोंका भी अन्त हो गया, राजाओंकी विजय हुई और राजनैतिक अधिकारोंका सम्बन्ध भी भूमि या देशसे हो गया। इसलिए आजकल सिद्धान्त है कि देशमें रहनेवाले सब राष्ट्रके आधीन हैं, और उसके द्वारा रक्षाके अधिकारी हैं।

परन्तु इनमें भी भेद है। एक श्रेणी तो उन लोगोंकी है, जो राष्ट्रमतको प्रकट करनेमें भाग लेनेके अधिकारी हैं, और दूसरी श्रेणी उन लोगोंकी है, जिनको यह अधिकार नहीं है। पहिली श्रेणीकी संख्या प्रायः नियमित अर्थात् थोड़ी रहती है। पाश्चात्य राजनीतिशास्त्रके गुरु अरस्तूके मतानुसार केवल इसी श्रेणीके लोग राष्ट्रके नागरिक कहे जानेके योग्य हैं। यूनान और रोमके नगर-राष्ट्रोंमें, अधिकांश जनताको कुछ नियमोंके अन्तर्गत शासनाधिकारमें भाग रहता था। परन्तु रोमको एक छोटेसे नगरकी राजसत्तामें सन्तोष न था। अपनी सीमाओंको बराबर विस्तृत करते रहनेकी प्रबल लालसा उत्पन्न हो जानेसे यह फल अवश्य हुआ कि एक दिन संसारके अधिकांश भागपर रोमकी विजयपताका फहराने लगी। पर यही उसके अन्तका कारण भी हुआ। शरीरकी असाधारण स्थूलता अच्छे स्वास्थ्यका चिन्ह नहीं है, अच्छे स्वास्थ्यके लिए आवश्यकता रहती है शरीरके प्रत्येक अवयवको दृढ़ बनानेकी। प्रतिनिधि प्रथाका ज्ञान न होनेसे रोम अपने विस्तृत साम्राज्यके शासनमें भाग लेनेकी स्वाभाविक आकांक्षा भी पूरी न कर

सका। परिणाम यह हुआ कि विख्यात रोमसाम्राज्य भी कालका ग्रास बन विलीन हो गया। रोमने यदि स्वाधीनताके भावोंको दबाया था तो उसने नियमोंकी शृंखलाका भी निर्माण किया था। इसी लिए उसके अन्तके साथ ही साथ, नियमोंके बन्धन भी टूट गये, और सारे यूरोपमें घोर अराजकता दिखाई देने लगी। कुछ काल पश्चात् जब शान्ति स्थापित हुई, तो सबसे प्रथम इंग्लिस्तानके राष्ट्रीय राज्यमें, स्वाधीनताके प्राचीन भाव फिर जाग्रत हुए। परन्तु इस बार इनका स्वरूप दूसरा ही था। वहाँकी प्राचीन रीतियोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि गाँव और नगर, जिनके आधारपर राज्य संगठित था, स्थानिक कार्य्योंमें स्वतंत्र थे। इसके सिवा प्रत्येक नगरके लोग, प्रान्तीय सभाओंमें भाग लेनेके लिए, चार प्रतिनिधि और एक गावका मुखिया चुना करते थे। जब जागीरदारी प्रथाका सूत्रपात हुआ, तब श्रेष्ठताका चिन्ह भूमि सम्पत्ति समझी जाने लगी, इस लिए वोट देने या प्रतिनिधि चुननेका अधिकार प्रायः ऐसे ही लोगोंके पास रह गया जिनके पास कुछ भूमिसम्पत्ति थी। आजकल भी कहीं कहीं वोट देनेके अधिकारके लिए किसी तरहकी भूमिसम्पत्ति होना आवश्यक माननेमें उस समयके भावोंकी झलक दिखाई देती है।

अठारहवीं शताब्दीमें यूरोपमें एक नया राजनैतिक परिवर्तन हुआ। ऊँच नीचका भाव लोगोंको अखर होने लगा। 'स्वाभाविक अधिकार' 'मनुष्यकी समानता' 'प्रजाकी राजसत्ता' ऐसे सिद्धान्तोंसे सारा यूरोप गूँज उठा। फ्रान्समें इन सिद्धान्तोंको व्यवहारमें लानेका भी प्रयत्न किया गया। अन्तमें इन भावोंने, सारी पुरुष प्रजाको, चुननेका अधिकार देनेके लिए घोर आन्दोलनका रूप धारण किया। अमरीकाके संयुक्त राज्यमें, जहाँ बहुत कुछ अंगरेजी शासन-पद्धतिका अनुसरण किया गया था, पर जहाँ जागीरदारीका कभी प्रचार नहीं हुआ था, ऐसे सिद्धान्तोंका थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा, और राय देनेके अधिकारकी सीमा बहुत कुछ विस्तृत हो गई। इंग्लिस्तानमें, इसके लिए बराबर आन्दोलन होता रहा, कई एक सुधारके नियम बनाये गए, जिनमें सन् १८८४ में वहाँ भी बहुतसे लोगोंको यह अधिकार प्राप्त हो गया। अब प्रायः सभी देशोंमें इसका विस्तार बढ़ता जाता है, पर तब भी इसको और भी विस्तृत बनानेके लिए सब जगह आन्दोलन होता रहता है।

वोटका समय नियत किया गया है। पर इसी नियमके अपनेके कारण, आधी प्रजा इस अधिकारसे वंचित रह जाती है।

२—स्त्री पुरुष भेद—राज्यकी उत्पत्ति बहुत करके इन प्रयोगोंसे हुई है, इसलिए इसका सम्बन्ध अधिकतर वीर योद्धाओंसे रहा है। यूनान और रोममें पहिले इन्हीं लोगोंको यह अधिकार प्राप्त था। आधुनिक राष्ट्रोंके उन्नतकाल तक स्त्रियां राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टिसे पुरुषोंहीके आधीन थीं। यह बात अवश्य है कि स्त्रियोंने सभी देशोंमें, कभी कभी रानीपदपर रहकर, राज्यके अधिकारका संचालन किया है, पर स्त्रीवर्ग राजनैतिक जीवनसे अलग ही रहा है। फ्रान्सके राज्यपरिवर्तन के समयमें, जब इस अधिकारको विस्तारकी बनानेकी पुकार मची, तबसे स्त्रियोंको वोटका अधिकार देनेकी बात चली। इसके पहिले किसीका इस ओर ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डमें स्त्रियोंको यह अधिकार पूर्णरूपसे प्राप्त है। अमरीकाके ६ राज्योंने भी यह अधिकार स्त्री और पुरुषोंको समान रूपसे दे रक्खा है, बाकी राज्योंमें, केवल स्थानिक या शिक्षा सम्बन्धी प्रतिनिधियोंहीके चुनावके लिए स्त्रियाँ अधिकारिणी हैं। इङ्गिलस्तानमें अभी तक कुछ स्त्रियोंको स्थानिक पदाधिकारियोंके चुनावमें वोट देनेका अधिकार था, पर वहाँ स्त्रियोंने ऐसा आन्दोलन मचाया कि पिछले वर्ष उनको पार्लिमेण्टमें भेजनेके लिए प्रतिनिधियोंके चुननेका अधिकार भी देना ही पड़ा। फ्रान्समें भी इसके लिए खूब आन्दोलन हो रहा है। यह उचित है या अनुचित, या इसका परिणाम क्या होगा, इन बातोंसे यहां कुछ सम्बन्ध नहीं है। इतना अवश्य है कि इसकी नींव पड़ गई है, और दिन प्रतिदिन उन्नतिके ही लक्षण दिखाई देते हैं।

३—नागरिकता—प्रत्येक राष्ट्रमें बहुतसे विदेशी भी रहते है। तो अब प्रश्न यह होता है कि इन लोगोंको उस राष्ट्रके नागरिकोंके अधिकार प्राप्त होने चाहिए या नहीं। फ्रान्समें नेपोलियनने यह नियम बनाया था कि जो उस देशमें पैदा हो, वह वहांका नागरिक समझा जाय। कुछ फेर फारके साथ यह नियम बहुत जगह पाया जाता है। अमरीकाके बहुतसे राज्यों-में नियम है कि यदि कोई विदेशी कई वर्ष तक वहां रहा हो, और नागरिक बननेकी प्रार्थना करे, तो उसको यह अधिकार दे दिया जाय। कई जगह बहुत काल तक बसनेसे वह नागरिक समझ लिया जाता है। इंगलिस्तानमें वोट देनेके लिए जिन बातोंका होना आवश्यक समझा जाता है, वह बातें यदि किसी विदेशीमें है, तो वह वोट दे सकता है। सभ्यताकी इतनी उन्नति हो जाने-पर भी अभी जाति भेदका ख्याल गया नहीं है। नागरिक बननेमें सब जगह बाधाडालनेकी चेष्टाएँ की जाती हैं। अमरीका जैसे उदार राष्ट्रकी कुछ रियासतोंमें विचित्र नियम है। कुछ जातियां सब आवश्यक बातोंके होते हुए भी इस अधिकारसे रहित रहती है। कैलीफोर्निया और नेवादामें मंगोलजातिके लोगोंको यह अधिकार कभी नहीं मिलता। इसी तरह बहुतसी रियासतोंमें हबशी इस योग्य नहीं समझे जाते हैं। दक्षिणी अफरीकामें, बस जाने पर भी, भारतवासियोंके साथ कैसा नीच व्यवहार किया जाता है, इसको बतलानेकी आवश्यकता नहीं है।

४–सम्पत्ति–राय देनेकी आधुनिक चालका सूत्रपात जागीरदारी समयमें हुआ था। तब भूमिसम्पत्तिका बड़ा महत्व था। इसलिए यह अधिकार ऐसेही लोगोंको मिलता था, जिनके पास कुछ भूमि होती थी। इंग्लिस्तानमें प्राचीन कालसे गत शताब्दीके प्रारम्भ तक यह नियम था कि जिसके पास ३० रुपये वार्षिक आयकी भूमि सम्पत्ति हो, वही इसका अधिकारी है। कुछ लोगोंका मत है कि समाजमें बहुत कुछ भाग भूमि सम्पत्तिवालोंका है, इसलिए वोट देना ऐसे लोगोंका अधिकार है न कि नागरिकोंका। परन्तु इस मतके अनुयायी अब बहुत कम रह गए हैं, पर तो भी इसके चिन्ह विद्यमान हैं। किसी तरहका भूमि कर देना अब भी आवश्यक समझा जाता है। इंग्लिस्तानमें इसका बहुत ध्यान रक्खा जाता है। प्रशियामें टैक्सका ध्यान रखकर यह अधिकार दिया जाता है। अनाथ या मोहताज सब जगह इससे वंचित रक्खे जाते हैं। चुनावमें भाग लेनेवालोंके पास भूमि सम्पत्तिका होना अब इतना आवश्यक नहीं समझा जाता अतएव इसके विरुद्ध आन्दोलन हुआ करता है।

५–मानसिक या आचरण सम्बन्धी दोष—पाश्चात्य देशोंमें, आजकल राजनैतिक बातोंमें धर्म बाधा नहीं डालता। पहिले धार्मिक विचारोंका बड़ा ध्यान रहता था। जिस मतके अनुयायियोंका शासन होता था, वे दूसरे मतके अनुयायियोंको नीचा दिखानेका सदा प्रयत्न किया करते थे। पाश्चात्य देशोंमें धार्मिक विचार स्वाधीनताके इतिहास पृष्ठोंपर रक्त रंजित हैं। पर अब किसीका धर्म या मत कुछ भी हो, वह इस अधिकारसे विमुख नहीं किया जाता है। परन्तु यह सुन कर आश्चर्य होगा कि अमरीकाके कई राज्योंमें अधिकारके अभिलाषीको ईश्वरवादी होना अब भी आवश्यक समझा जाता है। जेलमें रहनेवाले कैदी, किसी घोर अपराधके लिए दण्डित अपराधी, और पागल भी इस अधिकारके योग्य नहीं माने जाते हैं। कुछ समयसे कहीं कहीं थोड़ी बहुत शिक्षाका होना आवश्यक समझा जाता है।

इन साधारण नियमोंके सिवा कुछ देशोंमें एक या दो बातोंपर और ध्यान दिया जाता है। इंग्लिस्तानमें, प्राचीन नियमानुसार, जिसके पास बी.ए. की डिगरी है, वे भी इसके अधिकारी हैं। लन्दनमें व्यापारी कम्पनियोंको यह अधिकार प्राप्त है। पर साथ ही साथ कुछ पादड़ी, सरकारी कर्मचारी, और नगरका सरकारी मुखिया, पार्लिमेन्टमें भेजनेके प्रतिनिधियोंके चुनावमें अपना मत प्रकट नहीं कर सकते हैं। कुछ राष्ट्रोंमें, युद्धमें प्रवृत्त सैनिक उतने कालके लिए इस अधिकारसे वंचित रहते हैं। बात यह है कि इन साधारण नियमोंको छोड़कर, देशकाल प्रथाके अनुसार, थोड़ा बहुत सब जगह हेरफेर रहता है। इन नियमोंके अनुसरणसे ही, बहुतसी प्रजा प्रतिनिधियोंके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट नहीं कर सकती, पर इसके अतिरिक्त वोट देनेके समय, जिन लोगोंको यह अधिकार प्राप्त है, उनमेंसे भी सब लोग भाग नहीं लेते हैं, कोई बीमार पड़ जाता है, कोई किसी विशेष कारणसे जान बूझ कर अलग रहता है। इस तरह देखा गया है कि साधारणतः इस अधिकार प्राप्त जनसंख्यामें ७५ या ८० प्रति सैकड़ा से अधिक लोग वोट नहीं देते। व्यवहारमें आदर्श प्रजातन्त्र कितना असम्भव है, यह अब स्पष्ट समझमें आ जाता है।

कहीं कहीं कुछ शब्दोंमें, जो राष्ट्र भरके लिए एकही नियम चालू होता है, स्थानिक भेदोंका ध्यान नहीं रहता है। कहीं इसकी उन्नति धीरे धीरे होती है। इंग्लिस्तानमें इसके लिए बराबर आन्दोलन होता रहा और कई एक कानून पास किये गए, तब कहीं जाकर यह अपनी वर्तमान अवस्थाको पहुँच गया है। (क्रमशः)

गंगाशंकर मिश्र



भारतीय प्रजाकी कुछ आवश्यकताएँ •



भारतीय प्रजाकी दशा अति शोचनीय हो रही है। जान देकर यद्यपि परिश्रम करनेपर भी पेटभर खाना नहीं मिलता। यहाँकी उर्वरा भूमि हरे भरे खेत प्राकृतिक छटा और जलवायुमें विभेद देखकर आगन्तुक दर्शक आने मनमें यही कहता होगा कि यहाँकी जनता अति समृद्ध तथा सुखी होगी। पर उसे वास्तविक दशाका क्या ज्ञान। यदि भारतके प्रत्येक मनुष्यकी आमदनी किसी अन्य देशके प्रत्येक मनुष्यकी आमदनीसे मिलाई जाय तो यहाँकी हीनावस्था देखकर अत्यन्त क्षोभ होता है। इतने भारी उपजाऊ देशमें जहाँ करोड़ोंका पालन हो सकता है जनताके पेट भरनेका भी सामान नहीं। अस्तु, इस विपरीत दशाका कारण क्या है ?

संक्षेपमें हम यहाँपर यह दिखाना चाहते हैं कि भारतकी भूमि उर्वरा होने पर भी अन्य देशोंसे कम अन्न क्यों उत्पन्न करती है। पहिले तो कृषिके लिए पानी चाहिए। यहाँके कृषक अधिकतर वर्षाके सहारे रहते हैं ? परिणाम यह होता है कि कभी तो अतिवृष्टि सारी फसल डुबो देती है, अथवा बहा ले जाती है और कभी अनावृष्टिसे अंकुर तक निकलनेका अवसर नहीं आता। अकाल वृष्टि भी कभी कभी किसानोंकी आशापर पानी फेर देती है। इस विपत्तिको दूर करनेके लिए सरकारको क्या करना चाहिए। इसके निवारणके किसी उपायकी किसानोंसे आशा करना व्यर्थ है; क्योंकि एक तो वे दरिद्र, दूसरे संगठन वे जानते नहीं। सरकारने अनेक नहर तथा कूएँ बनवाये, पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता। अभी इस ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। जबतक सरकार पूरी तरहसे कमर कसकर इस कामके लिए तैयार नहीं हो जाती भारतकी दशा नहीं सुधर सकती क्योंकि व्यवसायके अभावमें भारतीयोंको कृषिका ही सहारा है। यदि इसकी पूरी तरहसे उन्नति की जाय तो केवल कृषिसे भारत समृद्ध हो सकता है जैसे कनेडा तथा आस्ट्रेलिया हो रहे हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि पानीके लिए सरकारने जो प्रबंध किया है वह काफी नहीं है। हाँ यहाँपर एक बातका उल्लेख कर देना चाहिए। पानीके दुःखको निवारण करनेके लिए जो कुछ उपाय सरकार करती भी है उसमें अधिकतर अपने ही लाभका ध्यान रखती है। जैसे, नहर इत्यादि खोदनेके, दो व्यवस्था हैं। एक तो 'रक्षार्थक और दूसरी उत्पादनार्थक।' देखनेमें आया है कि हमारी सरकार रक्षार्थक नहरोंके खोदनेका नाम भी नहीं लेती क्योंकि इसमें उसे अधिक आमदनीकी आशा नहीं रहती। यदि सरकार जो कुछ करती भी है वह रक्षार्थक हो तोभी किसानोंको वहीं अधिक लाभ हो सकता है।

दूसरी बड़ी अविद्या। संसारमें कृषिकर्ममें क्या क्या परिवर्तन हो गए हमारा विचारा किसान कुछ जानता ही नहीं। वह तो वही बाबा आदमके समयका हल लेकर दिनभरमें १५ मिनिट गहरा एक बीघा तक अमीन जोत सकता है। खेतोंके जोतनेके लिए जो नए नए

हल बनाये गए हैं उनको तो वह जादू समझता है। इन सबोंके प्रयोगसे खेतीमें कितनी आसानी तथा किफायत हो सकती है वह क्या जाने। जहाँतक हम जानते हैं, बीजकी भी उचित पहचान करनेकी उसमें शक्ति नहीं, कभी तो वह सड़े बीज भी बो देता है क्योंकि देखनेमें आता है कि एक ही खेतमें कोई किसान प्रति बीघे यदि आधमन अनाज डालता है तो दूसरा पौनमन डालेगा और कोई कोई तो मन, सवामन तक बो देते हैं। अन्यदेशीय सरकारने किसानोंकी प्रारम्भिक शिक्षाके लिये पाठशालाएं तथा कृषिविद्यालय खोल रक्खे हैं जहाँ भावी किसानोंको विविध भाँतिकी शिक्षा दी जाती है जिससे वे अपने खेतोंको विशेष उपजाऊ तथा उपयोगी बना सकते हैं, और अनेक उपायोंसे एकही खेतमें अनेक प्रकारके अन्न उत्पन्न कर सकते हैं। किसी विदेशी कृषिविद्या-विशारदका कथन है कि भारतीय किसान प्रत्येक बीघेमें जितना अन्न पैदा करता है उससे कहीं अधिक उत्पादन करनेकी उन खेतोंमें शक्ति वर्तमान है जो बिना उपयोगके ज्यों की त्यों पड़ी है। कारण हमारी सरकार कानमें तेल डाले बैठी है और किसानोंको आवश्यक बातें बतलानेका कोई भी प्रबन्ध नहीं करती। उसे इस बातकी परवाह ही क्या। किसी न किसी तरह लोटा थाली नीलाम कराकर जिमींदारलोग मालगुजारी वसूल कर सरकारी कर दे ही देते हैं बस सरकारको तो इतने से ही मतलब है। बड़ी हिम्मत की तो कहीं एक दो विद्यालय खोल भी दिए पर वह भी व्यर्थ, क्योंकि जिस व्यवस्था पर वे चलाए जाते हैं उनसे लाभकी आशा नहीं की जा सकती। जैसे पूसाका कृषि कालेज। सुननेमें आता है कि उसमें कई लाख रुपये लगाए गए हैं पर विद्यार्थियोंकी संख्या जो उसमें शिक्षा पाते हैं बतलाते लज्जा आती है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि इसके लिए क्या उपाय होना चाहिए। इसमें अनेक राय हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि किसानोंको आधुनिक औजारोंका प्रयोग तथा उनकी उपयोगिता समझा दीजिये, वे उससे लाभ उठाने लगेंगे। अन्य लोगोंका मत है कि इस विषयके छोटे छोटे निबन्ध छपवाकर उनमें बटवाये जाँय और समय समय पर मुख्य मुख्य स्थानोंमें प्रदर्शिनी खोली जाय, जहाँ सभी किसान बुलाये जायँ और उनका ध्यान आधुनिक औजारोंकी तरफ खींचा जाय। इन दोनों उपायोंसे काम तो खूब हो सकता है पर इससे तो केवल वर्तमान किसान ही लाभ उठा सकते हैं, उनकी भावी सन्तान तो जैसी की तैसी अनभिज्ञ रह जायगी। इसके लिये एक बात और करना होगा अर्थात् कृषिविद्यालय खोलकर उन्हें शिक्षा दी जाय। इस कमीको पूरी करनेके लिये जो कुछ हमारी सरकारने किया है उसमें विशेष सफलताकी सम्भावना नहीं है क्योंकि पहिले तो जिस व्यवस्था पर सरकार इन विद्यालयोंमें काम चला रही है उससे उसका प्रयत्न सच्चा किसान बनानेका नहीं प्रतीत होता है, केवल अपने कृषि विभागके लिए नौकर तैयार करनेका ही प्रयत्न करती है, क्योंकि इन कालेजोंमें शिक्षाका माध्यम अंग्रेजीभाषा है जिससे दो कठिनाई उपस्थित होती हैं। पहिले तो अंग्रेजी शिक्षा हमारे नवयुवकोंको "बाबू" बना देती है, किसान तो उन्हें गंवार प्रतीत होने हैं और कृषिको वे घृणासे देखने लगते हैं, दूसरे अंग्रेजीभाषाकी शिक्षा ही कहीं किसानोंको मिली है। अंग्रेज सरकारने जो विद्यालय खोले गए हैं वहाँ तक साधारण किसान पहुँच ही नहीं सकता।

इससे सरकार यदि कृषिमें किसी तरहकी सहायता विद्यालयों द्वारा देना चाहती है तो उसे उन बातोंका ध्यान रख उसे शिक्षाके समयका भी विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे कृषि कर करते हुए भी लोग समय समय पर जाकर उससे लाभ उठा सकें। कमसे कम हिन्दू विश्व-विद्यालयसे इस बातकी पूरी आशा थी कि वह कृषिकालेज शीघ्र खोल देगा और कमसे कम इस प्रान्तके कृषक उससे लाभ उठाने लगेंगे पर वहाँ भी अबतक कृषि शिक्षाका अभाव है। देखें उसके सञ्चालक कृषिकालेज कबतक खोलना सम्भव तथा उचित समझते हैं।

साथ ही साथ सरकारको एक और भी उपयोगी बातकी ओर ध्यान देना चाहिये। देहातोंमें प्रारम्भिक शिक्षाके लिये जो स्कूल खोले जाते हैं उनमें साहित्यकी चर्चा न करा प्रकृति विज्ञान तथा कृषि सम्बन्धी किताबें पढ़ाई जायें। यदि "कुत्ता और रोटीका टुकड़ा" वाली कहानी न पढ़ाकर "खेतकी मिट्टी कैसे मुलायम बनाई जाती है" यह पाठ पढ़ाया जाय तो किसानके बालक उससे कहीं अधिक लाभ उठा सकें। जर्मनी आदि अन्य देशोंकी भाँति यदि यहाँ भी प्रत्येक स्कूलके साथ छोटे छोटे बगीचे रहें जिनमें मास्टरलोग लड़कोंसे काम भी लिया करें तो और भी अच्छा हो, क्योंकि व्यवहारिक शिक्षा तथा प्रयोगका प्रभाव कहीं अधिक पड़ता है।

तीसरी आवश्यकता पूँजीकी है। ऊपर कह आए हैं कि भारतीय किसान कितने दरिद्र होते हैं। उनके पास एक टका भी नहीं बचता। औजारोंकी बात तो जाने दीजिए फसल बोनेके समय उन्हें बीज भी उधार ही लेना पड़ता है। निर्दयी महाजन उनके साथ जो व्यवहार करता है, कहनेसे लज्जा मालूम होती है। बड़े तिरस्कारके साथ किसी न किसी तरह उन्हें ऋण मिलता भी है तो २५ से लेकर ७५ प्रति सैकड़े उन्हें सूद देना पड़ता है।*

फसल तैयार हुई कि महाजनोंके नौकर यमदूतकी तरह बिचारे किसानोंके सिरपर सवार होकर अपना दाना दाना वसूल कर लेते हैं। कहीं कहीं तो खलियानसे अनाज घर लानेकी भी बारी नहीं आती। जो कुछ बच रहता है उसीसे उन्हें वर्ष भर काटना पड़ता है। मालगुजारी इत्यादि देकर उनके लिए जो कुछ बचता है वह दो महीने भी नहीं चलता। लाचार होकर उन्हें पुनः उसी महाजनकी शरण लेनी पड़ती है। वे भी इनको लाचार पाकर बेचारोंका मन माने खून चूसते हैं। इन महाजनोंके चंगुलसे बिचारे किसान कभी भी मुक्त नहीं होते। धीरे धीरे इस ऋणका बोझ इतना बढ़ जाता है कि उनकी बची बचाई पैतृक सम्पत्ति भी—यदि दो चार बीघे खेत—बिक जाते हैं। एक तरफ तो किसान निर्जीव होता जा रहा है और दूसरी

* देहातोंमें डेढ़ियाकी प्रथा वर्तमान है, अर्थात् कार्तिकमें बोनेके समय यदि एक मन अनाज लिया जाय तो बैसाखमें डेढ़ मन देना होगा, अर्थात् सात महीनेमें आधा मन, पचास प्रति सैकड़े हुआ। हिसाब लगानेसे ८६ प्रति सैकड़े प्रति वर्ष पड़ता है। भला बतलाइये कि जहाँके किसानोंको इतना अधिक सूद देना पड़ता है वहाँ सपूत किसान कैसे दिखाई देंगे और कृषि कैसे लाभदायक हो सकती है। ऐसी अवस्थामें दूसरी प्रतिष्ठा न होना भी उचित ही है।

तरफ उनीका रक्त चूस चूसकर महाजन मालामाल होता जाता है। यहाँपर सरकारको सहायता देनी चाहिये। सहयोग समितियाँ* खोली गई हैं पर इनसे विशेष लाभ अभी नहीं हो सका है। सरकारको स्वयं किसानोंकी सहायता करनी चाहिये। वाजिब सूद पर उन्हें रुपया दिया जाय और किस्तसे वसूल कर लिया जाय। इस संबंधमें सरकारको ध्यान रखना पड़ेगा कि पूरा पूरा धन किसानोंके पास पहुँच जाता है और बीचमें छोटे छोटे अहलकार उसमेंसे हिस्सा नहीं लगा लेते।

इसके लिए दो उपाय भी हैं जिससे सरकारको विशेष प्रयास नहीं करना पड़ेगा। कृषकोंको ऋण देनेके लिये यदि नियम बनाया जाय तो अवश्य बड़ा लाभ हो। सरकार उसके अनुसार ऋण दे सकती है। अथवा यह न कर दूसरे तरहसे भी सहायता कर सकती है। हम लोगोंने देखा है कि केवल बीज खाद तथा औजारोंके ही लिए कृषकोंको द्रव्यकी आवश्यकता पड़ती है। सरकार इसका प्रबन्ध कृषिविभाग द्वारा करवा सकती है और मालगुजारीके साथ साथ अपना रुपया वसूल कर सकती है। यदि सरकार यह प्रबन्ध करे तो हम लोगोंको पूरी आशा है कि जब तक सहयोग समितियाँ देश भरमें नहीं फैल जातीं कुछ न कुछ कृषिको लाभ अवश्य होता रहेगा।

यदि इन आवश्यकताओंको पूरा कर दिया जाय तो भारतीय किसान विदेशी किसानोंकी बराबरी प्रत्येक भाँतिसे कर सकेंगे और उनके ऊपर जो अनेक दोष लगाये जाते हैं वह मिथ्या हो जायेंगे क्योंकि जैसे जैसे उनकी आर्थिक दशा सुधरेगी उसी प्रकार उनकी उन्नति होती जायगी।

यह तो रही ७२ प्रति सैकड़े या इससे भी अधिक प्रजाकी दशा। अब अन्य लोगोंकी हालत देखिये। व्यवसायकी क्या स्थिति है। पहले तो यहाँ भारी भारी कारखानोंका नाम भी नहीं है यदि वे हैं भी तो वही पुराने ढंगके। आधुनिक प्रथापर चलाये ही नहीं जा सकते। व्यवसायिक उन्नतिके लिये चारों ओरसे शोर मच रहा है। अखबारवाले अलग तान मार रहे हैं, नेता लोग अलग व्याख्यान दे रहे हैं पर अभी तक काम विशेष नहीं किया गया है। प्रत्येक वर्ष व्यवसायिक सभाएँ हुआ करती हैं। लम्बे लम्बे आशाजनक व्याख्यान दिए जाते हैं, पर परामर्श तथा विचारके अतिरिक्त अभी तक उन्होंने कोई भी महत्वका कार्य नहीं किया। सरकार हमारी सहायताके लिए तैयार नहीं है। यदि संसारका व्यवसायिक इतिहास उठाकर देखा जाय तो विदित होगा कि विदेशियोंने अपने व्यापारकी जड़ जमानेके लिये क्या क्या चालें चली हैं, कैसे कैसे नियम बनाये हैं। आँग्लदेशने तो वर्षों तक करोड़ोंका घाटा सहा था। पहलेकी बात जाने दीजिये, अभी हालमें ही अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दीमें जर्मनी तथा जापानने ही अपने अपने व्यवसायको पनपनेके लिए क्या क्या उपाय नहीं किये। यदि भारत सरकारसे पूछा जाय कि उसने व्यवसायिक शिक्षाके लिये कितने छात्र विदेश भेजे अथवा देशी कम्पनियोंको खोलनेके लिए क्या क्या सुविधाएँ दी तो हमारी उदार सरकार छिपा चुप रहनेके

* को-आपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियां।

और कर ही क्या सकती है। यहाँ तो भाईबन्दीका ख्याल इस तरह गला दबाये हुए है कि साँस तक नहीं लेने देता फिर बोलना कहाँसे हो सकता है। जब तक सरकार निष्पक्ष भावसे भाई-बन्दियोंका ख्याल छोड़कर भारतके लाभका ख्याल कर अपनी नीति नहीं बदलती तब तक न तो वह अपने कर्त्तव्यसे उऋण हो सकती है और न यहाँकी प्रजा अपनी आर्थिक दशा सुधार सकती है।

स्थानाभावसे यहाँ इससे अधिक नहीं लिखा जा सकता। समय समय पर इस विषयकी चर्चा उदार पाठकोंके सन्मुख होती रहेगी।

छविनाथ पाण्डेय



किसानोंकी दरिद्रता और उसका प्रतीकार



य: समस्त संसारके किसान दरिद्रताके समुद्रमें डूबे हुए हैं। श्रमजीवियोंकी अपेक्षा स्वतंत्र और स्वाधीन होते हुए भी घोर दरिद्रता में फँसे हुए हैं और ऋणके भारसे तो ऐसे दबे हैं कि उससे मुक्त होना असम्भव जान पड़ता है। अति निर्दयी और पाषाणहृदय महाजनोंसे बचना उनके लिये केवल कठिन ही नहीं किन्तु प्राय: असम्भवसा हो गया है। धनवान और उन्नतिप्राप्त यूरोपीय देशोंमें भी किसानजन अन्य व्यवसायी लोगोंकी अपेक्षा आज बीसवीं सदीमें भी अति दीन हीन अवस्था में हैं। इंगलिस्तान, फ्रान्स, जर्मनी, इटली इत्यादि सभी पाश्चात्य देशों में किसानोंकी दशा शोचनीय है। जब आधुनिक सभ्यता तथा शिक्षाके केन्द्रस्वरूप देशोंमें ग्लैडस्टन और गुल्ड-हेलिन्स जैसे उदारहृदय महात्माओंके निरन्तर परिश्रमके बाद भी किसानोंकी आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था ऐसी है तब अविद्याके घोर अन्धकार में पड़े हुए तथा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दुरवस्थाको भोगने वाले भारतवर्षके किसानोंकी कैसी दशा हो सकती है उसका यथार्थ वर्णन सहजमें नहीं हो सकता। लेखनी उनकी शोचनीय दशाका चित्र खींचने-में सर्वथा असमर्थ है।

ऐसी अवस्थामें इस देशके प्रत्येक व्यक्तिका यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अर्थका सञ्चय करे। अर्थागमनसे ही निर्धनताका नाश हो सकता है और ऋणभारसे छुटकारा मिल सकता है। किसानोंकी दरिद्रताको दूर करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता है कि ऐसी संस्थाएँ स्थापित की जावें जिनसे उनको खेती करके अर्थका सञ्चय करनेमें सहायता मिले। खेती करनेके हेतु किसानोंको धनकी आवश्यकता होती है। धन न रहनेसे उन्हें महाजनोंसे सूद दर सूदपर ऋण लेना पड़ता है। इस प्रकार उधार लिए धनसे खेती करके जो कुछ लाभ होता है वह सब ऋणका सूद चुकाने हीमें स्वाहा हो जाता है और कृषकजन दरिद्रके दरिद्र ही रह जाते हैं। प्रायः मूलधन चुकाने में असमर्थ होनेके कारण उन्हें गिर्वी रक्खी हुई भूमिसे भी हाथ धोना पड़ता है और फिर या तो गली गली भीख माँगनी पड़ती है या अफरीका तथा फिजीमें कुली बनकर अनेक दुःख सहना पड़ता है। इन सब कारणोंसे यही उपयुक्त जान पड़ता है कि किसानोंको अल्प सूदपर आवश्यक ऋण देनेका भार सरकार अपने सिरपर ले। इस प्रकार वे क्रूर महाजनोंके चंगुल से बच जावेंगे और साथ ही साथ अल्प सूदपर लिए हुए धनसे बीज,खाद,हल तथा चौपाये इत्यादि मोल लेकर क्रमशः अर्थका सञ्चय करेंगे और थोड़े ही समयमें ऋणमुक्त होकर अर्थवान हो जावेंगे। इसी अभिप्रायसे भारतसरकारने भी सवत् १८८० ई० में भूमिसुधार कानून और संवत् १८८४ में किसानोंको ऋण देनेका कानून बनाया था। इन नियमोंके अनुसार सरकार लाभकारी कार्योंके हेतु किसानोंको अल्प सूदपर रुपया देती है।

किन्तु इन कानूनोंसे अधिक सफलता नहीं हुई। सरकारसे ऋण देनेका काम ठीक ठीक नहीं हो सका। प्रायः मनुष्यको दो प्रकारके कार्योंके हेतु ऋण लेनेकी आवश्यकता होती है। एक तो उत्पादक कार्य जिनमें व्यवसायिक रीतिसे रुपया लगानेसे लाभ होता है, अर्थकी प्राप्ति होती है और दूसरे अनुत्पादक कार्य जो आवश्यक होते हुए भी धन प्राप्तिके साधन नहीं होते। दोनों प्रकारके कार्योंके लिए किसानोंको ऋण लेना पड़ता है। विवाह, श्राद्ध, तीर्थयात्रा, मुकदमे-बाजी आदिके लिए धनकी आवश्यकता होती है परन्तु इनसे आर्थिक लाभ न होते हुए ऋण लेकर भी यह सब काम करने पड़ते हैं। इसलिए यह समझ लेना कि किसानलोग केवल लाभकारी कार्योंके लिए ही ऋण लेंगे, ठीक नहीं है। किसानोंके लिए ऋण लेनेका मार्ग बिना किसी रुकावटके खोल देना अज्ञान बालकके हाथमें तलवार पकड़ा देनेके समान है। प्रायः किसान अनुत्पादक कार्यके लिए ही अधिक ऋण लेते हैं इस कारण यह उपयुक्त दीखता है कि उनको अपनी भूमि गिर्वी रखकर ऋण लेनेका अधिकार ही छीन लेना चाहिए। इस तरह वे सूदखोरोंसे बच जावेंगे। और मानो निकम्मा ऋण लेनेका अवसर ही न रहेगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। इसी विचारसे पंजाब और बुन्देलखण्डमें संवत् १८८० में यह कानून बना दिया गया कि किसान जन भूमि गिर्वी रखकर महाजनोंसे ऋण न ले सकेंगे। किन्तु इस तरह ऋण लेनेका मार्ग बिलकुल ही बन्द कर देना भी ठीक नहीं है। लोगोंमें पूँजी न होनेके कारण ही किसानजन ऋण लेते हैं। बुआईके समयमें बीज, खाद, हल इत्यादि चीजोंके लिए उन्हें धनकी आवश्यकता होती है। समय समय और भी अन्य लाभकारी कार्योंके लिए उन्हें धन चाहिए। इसमें यदि किसानोंको

ऋण नहीं मिलेगा तो वे खेती कहांसे करेंगे। धन लगाए बिना लाभ कैसे हो सकता है। जब धीगणेश करनेके लिए ही अर्थ नहीं तब आगे क्या होगा। इसलिए लाभकारी कार्योंके लिए किसानोंको धन मिलनेका प्रबन्ध परमावश्यक है।

यही विकट समस्या है। किसानोंका ऋण लेनेका अधिकार छीन लिया जाय तो हानि और यदि न छीना जाय तो भी हानि। यदि उनको कम सूदपर आवश्यक ऋण न मिले तो उनका काम न चले और यदि ऐसी सुविधा कर दी जाय तो आवश्यकतासे अधिक ऋण लेनेका अवसर मिल जाता है और इससे अपव्यय बढ़नेकी शंका रहती है। अतएव एक ऐसे उपायकी आवश्यकता है जिससे कि किसानोंको ऋण भी मिल जावे और उनकी उधार लेनेकी आदत भी छूट जावे। अर्थात् साँप मरजावे पर लाठी न टूटे। ऐसा अद्भुत कार्य करनेवाली संस्था सभूय व्यवसाय या सहोयोग है। सहोयोगके अनुसार सहकारी ऋण सभाके द्वारा किसानोंका उद्धार हो सकता है और उनकी आर्थिक अवस्था सुधर सकती है। इस बातको मानकर भारत सरकारने भी संवत् १९६१ में ऋणसभा स्थापनार्थ एक कानून बनाया और इस प्रकार लार्ड कर्जनके समयमें सभूय व्यवसायका, जिसने कि यूरपमें सर्वसाधारणके सामाजिक तथा आर्थिक जीवनमें बड़ा परिवर्तन कर दिया है और जिससे अभी भविष्यमें बड़ी बड़ी आशाएँ की जाती हैं, भारत वर्षमें भी प्रचार हुआ। सोलह वर्षके अल्पकालमें इसने भारतवर्षमें भी अद्भुत कार्य कर दिखाया है। इस सहोयोग प्रथाने जर्जरित भारतके ग्रामीण जीवनमें एक नई स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। प्रायः समस्त सूबोंमें जैसे बंगाल, बिहार, संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई और मदरासमें इसने किसानोंकी आर्थिक दशा सुधार दी है और ऐसी आशा की जाती है कि सहकारिताने डेन्मार्क और जर्मनीमें जैसी आशातीत सफलता प्राप्त की है वैसी ही सफलता और कुछ अंशमें उससे भी बढ़कर उसे भारत में भी प्राप्त होगी।

सहोयोगका मूलउद्देश आर्थिक असमानताका नाशकर अर्थकी कमीसे जो समाजमें निर्बलता आ गई है उसको दूर करना है। संसारमें आर्थिक असमानताके कारण जो अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो गई हैं उनका नाश करनेके लिए फ्रान्समें फूरियरने और इंगिलस्तानमें राबर्ट ओवनने उन्नीसवीं सदीमें संभूय व्यवसायका प्रचार किया। संभूय व्यवसाय दो प्रकारका है। एक ऐच्छिक और दूसरा अनैच्छिक। अनैच्छिक सभूय व्यवसायका दूसरा नाम समष्टिवाद है जिससे कि हमारा यहांपर कोई संबंध नहीं है। ऐच्छिक सभूय व्यवसायके दो मुख्य भेद हैं, एक ऋण लेनेवाली समितियाँ और दूसरी ऐसी समितियाँ जिनका कि उद्देश्य ऋण लेना नहीं है। यहाँपर हमें ऋण लेनेवाली समितियोंसे ही अधिक काम है। ऐसी समितियोंका प्रचार पहले पहल जर्मनीमें रैफायसन और शूल्जडेलिस्सने किया था। कोई पचास वर्षका समय व्यतीत हुआ जब कि रैफायसनने किसानोंकी घोर दरिद्रताको दूर करनेके लिए अति निर्धन, उजाड़ और दुर्भिक्षसे सदा आक्रान्त 'वेस्टरवाल्ड' नामके जर्मनीके गाँवमें ऋण लेनेवाली समिति स्थापित की थी। इस गाँवके कृषक अति निर्धन तथा ऋणग्रस्त थे किन्तु रैफायसन द्वारा स्थापित समितिने थोड़े ही समयमें उनका ऋण अदा करके उन्हें धनवान बना दिया। फिर क्या था

एकदम ऐसी समितियाँ खोली जाने लगीं और फ्रान्स, इटली, स्विट्ज़रलैन्ड, डेन्मार्क इत्यादि सभी यूरोपीय देशोंमें जहाँ जहाँ इनका प्रचार हुआ वहाँ वहाँके किसानोंकी आर्थिक अवस्था बदलने लगी। जिस प्रकार सूर्यके उदयसे अन्धकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार रैफ़ायसन द्वारा स्थापित समितियोंके प्रचारसे कृषक जनोंकी दरिद्रताका नाश हो गया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतीय सरकारने भी किसानोंकी दरिद्रताको दूर करनेका अन्य कोई उपाय न देखकर सन् १९०४ में संभूय व्यवसायका हमारे देशमें प्रचार कराया। प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें रजिस्ट्रार नामका एक सरकारी कर्मचारी नियत किया गया जिसका कर्तव्य संभूय व्यवसायका प्रचार करना है। गाँवोंमें किसानोंको ऋण दिलानेके लिए समितियाँ स्थापित की गई। कमसे कम दस व्यक्ति मिलकर एक समिति खोल सकते हैं। इस प्रकार खोली गई समिति प्रत्येक सभासदकी सम्पूर्ण जायदादकी जमानतपर सरकारसे अथवा किसी बंक, महाजन या किसी अन्य समितिसे ही अन्य सूदपर ऋण लेकर अपने सभासदोंको लाभकारी कार्योंके लिए ऋण देती है। समिति इस बातकी निगरानी रखती है कि सदस्य उधार लिए हुए धनका अपव्यय न करने पावें। सदस्योंको ऋण देनेके सिवा समिति उनके आपसके झगड़ोंका भी निर्णय करती है और इस प्रकार उन्हें मुकदमेबाजीसे बचाती है। कई समितियोंने सामाजिक कुरीतियोंका भी त्याग किया है जैसे उन्नाव और बनारसकी कई चमारों और पासियोंकी समितियोंने मदिरा पानका त्याग किया है। समितिका काम बिना वेतन लिए सदस्य ही करते हैं। इससे उनमें कार्यकुशलता, दक्षता तथा कर्तव्यता इत्यादि गुणोंका प्रचार होता है। ऐसा भी देखनेमें आया है कि समितिका लिखने और हिसाब रखने- का कार्य करनेके लिए वयोवृद्ध किसान अक्षरारम्भ करते हैं। इससे पाठकोंको विदित होगा कि संभूय व्यवसायके अधिकतर प्रचारके लिए कृषकजन कैसे लालायित हैं और समितिका कार्य करनेका उनमें कितना उत्साह है।

कुछ ही कालमें संभूय व्यवसायका खूब प्रचार हो गया। ऋण लेनेवाली समितियोंके सिवा अन्य प्रकारकी भी समितियाँ खोली गईं जिनका उद्देश्य केवल सदस्योंको ऋण दिलाना ही नहीं है बल्कि धनोपार्जन भी है। और भी समितियाँ दूसरे उद्देश्योंसे भी खोली गई हैं। जैसे संभूय अर्थ पैदा करनेवाली समितियाँ हैं। पुराने कानूनमें इस प्रकारकी समितियोंके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी इसलिए सन् १९१२ में सरकारने एक दूसरा कानून बनाया। संभूय अर्थ पैदा करनेवाली और संभूय अर्थोपभोग करनेवाली समितियोंके प्रचारमें भी सरकारने योग दिया। इनके प्रचारमें भी किसानोंको बड़ी सहायता मिली। खेती करनेके उपकरण जैसे हल, बीज, खाद इत्यादिके सस्ता मोल लेनेके हेतु उन्होंने समितियाँ खोल दीं, इससे उन्हें पहलेसे सस्ती तथा अच्छी वस्तुएँ मिलती हैं। कपास, अन्न, घी, दूध इत्यादि बेचनेके लिए भी किसानोंने समितियाँ स्थापित कर दी जिससे कि बाजार भाव उन्हें न ठग सके। इस प्रकार सरकारकी सहायतासे संभूय व्यवसायका खूब प्रचार हो रहा है। इसके प्रचारसे आज दिन किसानोंकी आर्थिक अवस्था थोड़ी बहुत सुधर गई है।

किसानोंकी दरिद्रता और उसका प्रतीकार।

इतने बड़े देशमें अभी समितियोंका प्रचार जितना चाहिए उतना नहीं हुआ है। भारतके किसानोंकी दरिद्रता इतनी अधिक है कि एकमात्र संभूय व्यवसायके प्रचारसे उसका नाश होना कठिन है। इस चालसे तो वे कमसे कम सौ वर्षमें ऋणमुक्त हो सकेंगे। भला इतने काल-पर्यन्त उन्हें ऋणग्रस्त रहने देना कब उचित हो सकता है। यह बला तो जितनी जल्दी टले उतना ही अच्छा। इसलिए सरकारका संभूय व्यवसायपर ही निर्भर होकर किसानोंकी दरिद्रता तथा ऋण-भारके विषयमें उदासीन रहना उचित नहीं है। यूरोपीय देशोंमें किसानोंकी दरिद्रता तथा कर्जदारीका नाश करनेमें सहकारी बंक और ऋणके अतिरिक्त अन्य संस्थाओंने भी योग दिया है। साधारण रीतिकी बंक, भूमि बंधक रखनेवाली बंक आदि संस्थाएँ और मकान इत्यादि बनानेवाली समितियोंने भी जनसाधारणका बड़ा उपकार किया है। इन संस्थाओंके सिवा विद्याके प्रचारने भी जातिकी आर्थिक दशाको सुधारनेमें सहायता दी है। जब यूरोपमें इन संस्थाओंको बनानेकी आवश्यकता हुई तब भारतका क्या पूछना है। यहाँ तो ऐसी समितियोंके प्रचारकी और भी विशेष आवश्यकता है जिस प्रकार सरकारने संभूय व्यवसायका प्रचार करानेमें बड़ा उद्योग किया उसी प्रकार उसको ये संस्थाएँ स्थापित करके इनका भी निर्धन किसानोंमें प्रचार कराना चाहिए। इसके सिवा सरकारको विद्याका भी प्रचार कराना चाहिए। अविद्याके कारण ही किसानोंकी आर्थिक दशा ऐसी शोचनीय हो रही है। इस हेतु विद्याका प्रचार कर दरिद्रताके मूल कारणका ही नाश करना सर्वथा उचित है। विद्याके अभावसे संभूय व्यवसायका ठीक ठीक रीतिपर प्रचार नहीं हो रहा है इसलिए सरकारको शीघ्रही कमसे कम प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार कराना चाहिए।

किसानोंकी दरिद्रताको दूर करनेके लिए सरकारको मालगुजारी भी कम करनी चाहिए। हमारे नेताओंका कथन है कि किसानोंसे बहुत ज्यादा मालगुजारी ली जाती है। इससे उनके पास कुछ भी नहीं बचता। फिर यदि वे निर्धन तथा ऋणग्रस्त नहीं होंगे तो कौन होगा। किन्तु सरकार स्वयं इस बातको नहीं मानती। उसका कथन है कि वह उचित ही मालगुजारी लेती है। अब इन दोनोंमें किसका कथन सत्य है इसमें भिन्न मत होना स्वाभाविक बात है। किन्तु जो हो किसानोंके लाभके लिए भारतीय सरकारको मालगुजारी घटा देनी चाहिए।

शिक्षित भारतीय नवयुवकोंका भी यह कर्तव्य है कि वे संभूय व्यवसाय तथा अन्य ऊपर कही गई संस्थाओंका प्रचार करें और कृषकोंकी आर्थिक दशाको सुधारें। देशसेवा और राजनैतिकताका आदर्श अपने सम्मुख रखकर उन्हें नई नई योजनाएँ स्थापित करनी चाहिए जिससे कि जातीय धन बढ़े और देशका कल्याण हो। यदि वे इस ओर झुकेंगे तो वे भारत-माताकी अधिक सेवा कर सकेंगे। यह अधिक आशा है कि उनके उद्योगसे दरिद्रता तथा कर्जदारीका शीघ्र नाश होगा और देश धनधान्य-पूर्ण होगा। उनकी सहायतासे शिल्प, शिक्षा, आन्दोलनका प्रचार होगा। इनके प्रचारसे सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनमें जो अनेक त्रुटियाँ उत्पन्न हो गई हैं उनका नाश होगा, और इनके नाश होनेसे भारतवर्ष पुनः स्वतन्त्र तथा शिक्षाका केन्द्र होकर मनुष्यमात्रका उपकार करेगा।

शिवदत्त तिवारी।

पुस्तकावलोकन ।

लोकल गवर्नमेन्ट इन एन्शेन्ट इंडिया—लेखक विद्यावैभव डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी, एम० ए०, पी० एच-डी, अध्यापक मैसूर विश्वविद्यालय। प्रकाशक क्लेरेंडन प्रेस ऑक्सफोर्ड। मूल्य १०॥=)

संसारमें अनेक जातियाँ समय समयपर उत्पन्न हुईं, उन्नतिके शिखरपर पहुँचीं और फिर अन्तमें नाशको प्राप्त हो गईं। अब उनका इतिहासमात्र अवशेष रह गया है। परन्तु हिन्दू जाति अनेक आपत्ति और संकट सहन करती हुई, उन सबसे प्राचीन होती हुई, सहस्रों वर्षोंसे इस देशमें आज तक विद्यमान है। इस जातिका इतने काल पर्य्यंत जीवित रहना इतिहासकी एक आश्चर्यमयी घटना विशेष है। इसका कारण खोज निकालना इतिहास प्रेमियोंका मुख्य कर्तव्य है। प्राचीन इतिहास तथा सामाजिक जीवनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उस कालकी संस्थाओंका हाल जानना आवश्यक है। समाजकी सुव्यवस्था संस्थाओंपर अवलम्बित होती है और यह कुछ लाभकारी संस्थाओंका ही फल है जो हिन्दू जाति आज भी संसारमें जीवित है। उनके इतिहाससे यहाँकी उन्नत सभ्यता, सुशासन विधान और क्रमिक सुव्यवस्थाका दिग्दर्शन होता है और जिन सफल साधनोंद्वारा हिन्दू सभ्यता जीवित रही है उनका यथार्थ ज्ञान होता है। एक मुख्य संस्था जिससे हम अत्यंत ऋणी हैं स्थानीय शासनकी थी। प्रस्तुत पुस्तक—"प्राचीन भारतमें स्थानीय शासन"—उसी संस्थाका इतिहास है। हमारे वर्तमान शासक प्रायः कहा करते हैं कि प्राच्य देशोंमें प्रजातन्त्र शासन एक अनोखी

चर्चा सब ओर सुनाई देती है और प्रजातंत्र शासनकी उमंग जनसाधारणके हृदयमें उठ रही है तो इस पुस्तकके अवलोकनसे उत्साहहीन लोगोंके चित्तमें भी उत्साह उत्पन्न होना संभव है। पुस्तक मौलिक है और बड़ी खोजसे लिखी गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजनैतिक तथा ऐतिहासिक साहित्यमें यह एक बहुत उच्च स्थान प्राप्त करेगी। हम आशा करते हैं कि लेखक महाशय अपनी विद्वत्ता और खोजके फलका लाभ बहु-संख्यक हिन्दी पाठकों तक पहुँचानेका भी प्रयत्न करेंगे।

—:o:—

पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इन्डिया—लेखक लाला लाजपतराय।

लाला लाजपतरायको अमरीकासे स्वदेश लौट आनेकी आज्ञा सरकारने नहीं दी है। यूरोपीय महायुद्धका अन्त हो गया, सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर हो गए परन्तु फिर भी भारतसरकार लालाजीका अपने देशमें आना अभी उचित नहीं समझती। उनको इस बातका मार्मिक कष्ट है कि वे देश सेवासे वंचित हो रहे हैं। परन्तु उनके देशवासियोंको तो इतना सन्तोष अवश्य है कि वे अमरीकामें रहते हुए भी पुस्तकें लिख कर देशकी बड़ी सेवा कर रहे हैं। अमरीकामें इस देशकी दशाका हाल जो कुछ लोगोंको मालूम हुआ है और हम उनकी सहानुभूतिके अधिकारी बन सके हैं वह सब लालाजीके उद्योगका फल है। "भारतवर्षकी भावी राजनैतिक दशा" नामक पुस्तक लिखकर लालाजीने यहाँके शासनका यथार्थ वर्णन करते हुए हमारे उद्वेगोंको बतलाया है। जितने राजनैतिक प्रश्न और समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हैं उनको बड़ी रोचक और सरल भाषामें लिख कर स्पष्ट समझाया है। हालमें जो शोचनीय घटना पंजाबमें हुई है उसका उल्लेख भी बड़ी निर्भीकतासे किया है। हमको पूरी आशा है कि स्वतंत्रताके सच्चे उपासक और स्वभाग्य निर्णय सिद्धान्तके जन्मदाता अमरीकावासी इस पुस्तकको पढ़कर भारतके प्रति न्याययुक्त व्यवहारके पक्षपाती बनेंगे। पुस्तकके पढ़नेसे हमारी वर्तमान दशाका यथावत् हाल मालूम हो जाता है।

—:o:—

भारतवर्षमें सरकारी नौकरियाँ-अनुवादक पं० माधवराव सप्रे, बी० ए०। प्रकाशक भारतबन्धु कार्यालय, हाथरस। मूल्य ।।।)

भारत सेवक समितिके सुयोग्य सदस्य पंडित हृदयनाथ कुंजरूकी लिखी हुई अंगरेज़ी पुस्तकका यह अनुवाद है। जब मूल पुस्तक प्रकाशित हुई थी तो देशके नेता तथा समाचार-पत्रोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी और पुस्तक इस प्रशंसाके सर्वथा योग्य भी है। अतएव प्रकाशक हिन्दी पाठकोंके अनेक धन्यवादके पात्र हैं। राजनैतिक प्रश्नोंको समझने और उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ऐसी ही पुस्तकोंकी बड़ी आवश्यकता है। सरकारने समय समयपर इस बातको अनेकबार कहा है कि सरकारी पदोंपर नियुक्त होनेका बेरोक टोक अधिकार भारतवासियोंको प्राप्त है। परन्तु जैसा प्रत्यक्ष व्यवहार देशी भाइयोंसे किया जाता है वह सर्वथ

वचन विरुद्ध है। अंगरेज़ोंके साथ सरकार बड़ा पक्षपात दिखाती है और यह इस [illegible] काग़ज़ोंसे स्पष्ट प्रमाणित है। हमारे साथ सरकार कैसा अन्याय करती है यह इस पुस्तकसे सुलभतासे मालूम हो जाता है। सरकारी पदोंकी जाँचके लिए जो रायल कमीशन [illegible] बैठा था उसके विवरणकी समालोचनाने पुस्तककी उपयोगिताको बढ़ा दिया है। कौंसिल प्रश्नका इसमें बड़ा अच्छा वर्णन है बल्कि उसका पूरा इतिहास है। अनुवादकी भाषा उत्तम है। ऐसी उपयोगी पुस्तकको हिन्दी संसार अवश्य अपनावेगा।

—:०:—

श्यामा—लेखक बा० शिवदास गुप्त। मिलनेका पता पन्नालाल गुप्त, नीचीबाग काशी। मूल्य ।।।)

यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसकी भाषा बड़ी सरल है। प्रारंभ लेकर अंत शिक्षाप्रद है। समाजकी दुरवस्था और प्रचलित कुरीतियोंके दुष्परिणामकी ओर उपन्यास [illegible] कोंका ध्यान विशेष ध्यान जाता है। यह सन्तोषकी बात है। हिन्दी साहित्यकी सेवामें [illegible] अनेक सहायक पहिले ही दे चुके हैं। आशा है कि आप निरन्तर साहित्य-सेवा करते रहेंगे।

—:०:—

प्रह्लाद—राष्ट्रीय पाक्षिक पत्र । काशीसे प्रकाशित । वार्षिक मूल्य ३)

'प्रतापके आकारका पत्र है। तीन अंक अभीतक निकले हैं। लेख कविता अच्छे हैं। लोकप्रिय बनानेके लिए समाचारोंको विशेष स्थान देना उचित है। कुछ उत्साही सज्जनोंने इसको जन्म दिया है। उच्च विचारोंके फैलानेमें यह पत्र समर्थ होगा ऐसी आशा है।

—:o:—

श्रिजली—इटावासे प्रकाशित मासिक पत्रिका । सम्पादक पं० उदयनारायण वाजपेयी । वार्षिक २)

यह पत्रिका आठ महीनेसे निकल रही है। आकार सरस्वतीका है। लेख कविता पढ़ने योग्य हैं। छपाई सुन्दर है।

—:o:—

सम्पादकीय

स्त्री-शिक्षा

समाज और देशके कल्याणके लिए स्त्री-शिक्षाका प्रश्न बड़े महत्त्वका है। हमारी उन्नतिके लिए स्त्री समाजका सुशिक्षित होना कितना आवश्यक है इस बातके बतानेके लिए अब किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। जो इसके पक्षपाती नहीं वे अपनी उन्नतिके सहायक नहीं समझे जा सकते। स्त्री-शिक्षाके अभावमें देशकी अवनत दशाका प्रत्यक्ष परिचय मिल जाता है। इस विषयमें जनसाधारणकी उदासीनता हृदय बेधक है। स्वयं सरकारने स्त्री-शिक्षाकी शोचनीय दशाको स्वीकार कर गत साल एक विज्ञप्ति प्रकाशित किया है। शिक्षा पानेवाली लड़कियोंकी संख्या लड़कोंकी संख्यासे कहीं कम है। इसके सरकारने तीन मुख्य कारण बताए हैं एक तो अध्यापिकाओंकी कमी, दूसरे [illegible] पाठ्यक्रम, और तीसरे परीक्षाओंकी असुविधा। [illegible] यह भी मालूम हुआ है कि कहीं तो आर्थिक कठिनाईके कारण [illegible] शिक्षा प्रबन्ध नहीं हो सकी और कहीं पर लोगोंकी उदासीनता और सामाजिक असुविधाएं शिक्षा प्रचारमें बाधक हो रही हैं। इसके बाधके लिए हम ही दोषी हैं, सरकार नहीं। यदि सरकार समुचित प्रबंध करने और आर्थिक सहायता पहुँचानेमें [illegible] करती है तो हम उसका समर्थन करते हैं परन्तु [illegible] और सामाजिक [illegible] दूर करनेके [illegible] दिखाने। [illegible] सरकारने इस ओर विशेष ध्यान देकर [illegible] किया है। [illegible] स्त्री-शिक्षाके प्रचारके लिए [illegible] किए हैं। [illegible] लिए [illegible] शिक्षा [illegible] हो रहे हैं [illegible] है। [illegible]

समुचित प्रबंध और नई पाठशाला तथा कालिजकी स्थापना द्वारा इस गिरते हुए कार्यमें बहुत कुछ सहायता की जा सकती है। हमको आशा है कि सरकार और जनता इस ओर का उचित ध्यान देगी क्योंकि स्त्री-शिक्षाका अभाव होते हुए हमको उन्नतिका स्वप्न देखनेका अधिकार नहीं है।

एक उपयोगी संस्था

भारतमें शिशु तथा बालक जातिकी अमूल्य सम्पत्ति हैं। भावी उन्नतिके वे आधार हैं। जो आज बालक हैं वही कल युवावस्था प्राप्त होनेपर देशकी सत्ताके कर्णधार होंगे। उनकी विद्या, मानसिक तथा शारीरिक शक्ति, स्वदेश प्रेम तथा उच्चादर्श ही देशोन्नतिके रूपमें संसारके सम्मुख प्रकट होंगे। बालक कैसे युवा बनेंगे यह केवल उनके लालन पालन और शिक्षापर अवलम्बित नहीं है बल्कि उनकी माताओंके स्वभाव, स्वास्थ्य और विचारोंका भी उनपर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। परन्तु इस निर्धन देशमें असंख्य माताएँ प्रसवकालमें आवश्यक उपचारोंके अभावसे अपने प्राण गँवाती हैं अथवा सदाके लिए अपना स्वास्थ्य खोकर चिररोगिणी बनजाती हैं। उनकी मृत्युसंख्या बड़ी भयंकर है। स्वास्थ्य नाशसे उनकी सन्तान भी निरोग और बलवान नहीं हो सकती। इसका यह फल होता है कि शक्तिशाली और निरोग मनुष्य कम उत्पन्न होते हैं और एक वंशश्रेणीसे दूसरी श्रेणी और भी हीन आयु और दुर्बल होती है। अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे देशके लिए इससे बढ़कर कोई बात हानिकारक नहीं हो सकती। एक साधारण भारतवासी आयु, शारीरिक बल और मानसिक शक्तिमें अन्य देशवासियोंकी बराबरी सहन नहीं कर सकता। बालकोंकी मृत्युसंख्या भी यहांपर बहुत बड़ी है। कोरा लाख बालक शैशवावस्थामें ही कालके ग्रास बने जाते हैं। इस भीषणताके कई कारण हैं। छोटी अवस्थामें प्रायः स्त्रियोंका विवाह हो जाता है। माताके कर्तव्य, शिशुका पालन और उसके स्वास्थ्यकी रक्षा उनको ठीक आती नहीं। जैसा भोजन मिलना चाहिए मिलता नहीं। प्रसवकालमें जानकार दाई मिलती नहीं और न उपचारका ही ठीक प्रबंध होता है। इस भयंकर दशाको दूर करनेके लिए और माता तथा शिशुकी रक्षाके लिए लेडी चेम्सफोर्डने एक संस्था स्थापित की है। यह उचित शिक्षाका प्रचार करेगी और दाइयोंको अपने काममें आवश्यक शिक्षा देनेका प्रबंध करेगी। लेडी डफरिनने जैसे स्त्रियोंके अस्पताल खोल कर एक चिरस्मरणीय कार्य किया था वैसा ही हम आशा करते हैं कि लेडी चेम्सफोर्ड भी भारत महिला और उनकी सन्तानोंके हितके लिए कर सकेंगी और हमारे उपकार की भागी बनेंगी।

हमारा व्यापार

२० फी सदी मामद अपने हाथमें ले ली। अर्थात् जितनेका माल जापान पहिले यहां भेजता था उसका दसगुना गतवर्ष यहांपर भेजा जिसका मूल्य अब ३३ करोड़ रुपयेके लगभग है। यह बड़ी आश्चर्यजनक व्यापारोन्नतिका फल है। इसी प्रकार अमरीकाके भागमें हमारा आयात ३ फी सदी था जो अब बढ़कर १० फी सदी पहुँच गया है। जो माल यहाँसे बाहर जाता है उसका हाल सुनिए। युद्धसे पहिले हमारे निर्यातका ४२ प्रति सैकड़ा अंगरेजोंकि देशोंको जाता था, गतवर्ष उन्होंने ६२ फी सदी लिया। जापानने ८ की बजाय १२ प्रति सैकड़ा गतवर्ष माल लिया और अमरीकाने भी ७ से १३ फी सदी बढ़ा दिया। अलग अलग व्यापारोंके अंकोंको देखनेसे यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि जापानकी तरह यदि यहां भी लड़ाईके दिनोंमें औद्योगिक उन्नतिके लिए पूरा प्रयत्न किया जाता तो हमको इतना पछतानेका अवसर न आता।

शक्करके लिये कमीशन

हिन्दुस्तानके बराबर न तो कहीं शक्कर बनाई जाती है और न कहीं उसकी इतनी खपत है। सूती सामानको छोड़कर और किसी वस्तुपर हम इतना रुपया खर्च नहीं करते जितना शक्करके लिए। १२, १३ करोड़ रुपयेकी शक्कर हमको बाहरसे मगानी पड़ती है हालांकि यहाँ ८ करोड़ २० लाख मन पैदा होते हैं। गन्नेकी खेती भी कम नहीं हो रही है। तो फिर यह एक विचित्र बात है कि हमको शक्करके लिए अन्य देशोंका आश्रय लेना पड़े। शक्करका भाव बराबर बढ़ता जा रहा है और उसके सस्ते होनेकी हालमें कोई आशा नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि यहां शक्करके व्यापारको उत्तेजना देनी चाहिए जिससे कि यहाँकी माँग पूरी करके हम शक्कर बाहर भेजकर लाभ उठा सकें। सरकारने शक्करके व्यापार सम्बन्धमें पूरी जाँच करनेके लिए एक कमीशन नियत किया है। उसके प्रमुख मि० मैकेना बनाए गए हैं। तीन विशेषज्ञ विलायतसे बुलाये गए हैं। श्रीमान् लल्लुभाई शामलदास भी उसके एक सदस्य हैं। कमीशनको आठ नौ महीने जाँचमें लगेंगे और उसके विवरणसे यह मालूम होगा कि गन्नेकी खेती किस प्रकार विशेष लाभदायक बन सकती है, किन किन उपायोंके अवलम्बनसे शक्कर हमारी आवश्यकतासे अधिक बनाई जा सकेगी और विदेशी शक्करसे यह कहाँ तक सस्ती पड़ सकेगी। शक्करका व्यापार चमक उठे तो इस देशको बड़ा ही लाभ होगा।

लखनऊमें विश्वविद्यालय

इस प्रान्तके छोटे लाट शिक्षा प्रचारके बड़े पक्षपाती हैं। अभी थोड़े दिन हुए उन्होंने [illegible] महाशयोंको लखनऊमें विश्वविद्यालय बनानेके [illegible] विचार करनेके लिए [illegible] किया था। स्वयम् छोटे लाट उसके सभापति बने। [illegible] प्रकाशित किया है और उसको छोटेलाट [illegible] है। उसके [illegible] [illegible] निर्धारित किये गये हैं। एम० ए० तक [illegible] [illegible] [illegible]

के लिए शायद उनको कोई आपत्ति नहीं है । इसके अनुसार बी. ए. की पढ़ाई करनेके लिए एक वर्ष और विशेष लगा करेगा । लखनऊसे बाहरके कालेज प्रस्तावित विश्वविद्यालयसे संबंध न रख सकेंगे। शिक्षा-प्रचारमें तो इससे सहायता अवश्य मिलेगी परन्तु एफ़. ए. का दर्जा कालेजसे तोड़ देने और एक साल पढ़ाई बढ़ा देनेमें हमको आपत्ति है । विलायतमें जिन परीक्षाओंके लिए भारतवासी जाते हैं उनमेंसे, जिनमें उमरकी कैद है एक वर्ष विशेष लगानेसे हानि होगी।

लखनऊके बाद आगरेमें भी इसी ढंगका विश्वविद्यालय बनानेका शीघ्र प्रस्ताव होगा। थोड़े ही समयमें इन प्रान्तोंमें पांच विश्वविद्यालय—प्रयाग, काशी, लखनऊ, आगरा और अलीगढ़में होजायँगे ।

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रयाग विश्वविद्यालयके सिनेटका पिछला अधिवेशन जो अभी हुआ था उसमें बी. ए. की परीक्षा खण्ड खण्डसे उत्तीर्ण करनेका प्रस्ताव मुंशी नारायण प्रसादजी अस्थानाने उपस्थित किया था । उनका प्रस्ताव था कि जो परीक्षार्थी बी. ए. के एक विषयमें उत्तीर्ण न हो परन्तु उसमें ४५ फी सदीसे कम नम्बर अन्य विषयोंमें न पाये हों उसको दूसरी बार उस एक ही विषयमें परीक्षा देनेका अधिकार देना चाहिए । इस प्रस्तावपर कुछ लोगोंने आपत्ति की परन्तु उनका अभिप्राय हमारी समझमें नहीं आता । मद्रास और पंजाबमें ऐसा नियम पहिलेसे ही है । अन्तमें डाक्टर तेज बहादुर सप्रूके संशोधक प्रस्तावपर यह निश्चय हुआ कि इस प्रश्नको विचार और सम्मतिके लिए सिन्डीकेटके पास भेजना चाहिए । देखिए यहांसे क्या फल निकलता है । डाक्टर सुलैमानका प्रस्ताव कि परीक्षार्थीको अपने नम्बर पूछनेपर बता दिये जांय, किसी प्रकार अनुचित नहीं था । परन्तु मेम्बरोंने इस प्रश्नको परीक्षकोंकी दृष्टि से देखा और उसको अस्वीकार कर दिया । यदि परीक्षार्थीकी निगाहसे प्रस्ताव देखा जाता तो उनका निश्चय दूसरा ही होता ।

पीपलसबंक लाहौर

लाला हरकिशन लालजी एक अत्यंत व्यापार कुशल सज्जन हैं । उनकी योग्यता और बंकके कारबारमें निपुणता सबको एक स्वरसे स्वीकार है । स्वदेशी आन्दोलनके दिनोंमें पीपलस-बंककी नींव भी लाला हरकिशन लालजीने डाली थी । दुर्भाग्यवश और बंकोंकी चपेटमें आकर यह बंक भी दिवाला निकाल गया । छः सात वर्षसे मुकदमेबाजी चल रही थी और बंकके बिगड़नेका कारण लाला हरकिशन लालजी बताए जाते थे । अब सब लोगोंका १६ आने भुगतान हो जानेपर बंकके पास सोलह लाख रुपया बचा है । ऐसी आशा किसीको नहीं थी । लाला हरकिशन लालजीपर यदि किसीको सन्देह था तो अब बिलकुल दूर हो गया । उनके शत्रु भी इस विषयमें उनपर कोई दोष नहीं लगा सकते । बहुत लोगोंका कहना है कि बंकका काम बिगाड़नेमें राजनैतिक कारण भी उपस्थित थे। स्वदेशी व्यवसायकी उन्नति और लाला हरकिशन लालका सफल उद्योग बहुत लोगोंकी आँखोंमें खटकता था और दूसरे कारणोंके साथ यह भी एक कारण बंकके नाशका था । अन्तमें लालाजीका मुख उज्ज्वल रहा और उनकी कीर्तिपर कोई धब्बा न रहा ।

सम्पादकीय

संयुक्त प्रान्तमें बम्बईके व्यवसायी

श्रीयुत अम्बालाल साराभाई बम्बईके एक बड़े प्रसिद्ध और धनी सेठ हैं जो कई कारखानोंके मालिक हैं। वे एक ऐसी व्यावसायिक सम्मितिके अध्यक्ष हैं जो नए व्यापार और कारखाने देशमें खोलना चाहती है। सुना है कि उन्होंने संयुक्त प्रान्तमें काँच, कागज़, तेल, रोगन, आदिके कारखाने खोलना निश्चय किया है। यहाँके सरकारी अफसर डाइरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज़के कहनेसे वे यहाँ नए व्यवसाय खोलना चाहते हैं क्योंकि संयुक्त प्रान्तके धनी लोग अपनी पूँजी निकालकर व्यवसायोंमें लगाना नहीं चाहते। उनको नए कामोंमें रुपया लगानेकी हिम्मत नहीं, क्योंकि वे जोखिम सहनेसे डरते हैं। कुछ अंशोंमें तो यह बात सत्य है क्योंकि बम्बई आदि जैसे बड़े शहरोंमें जैसी औद्योगिक जागृति और साहस देखनेमें आते हैं वैसे यहाँ नहीं दीख सकते। कारण स्पष्ट है फिर भी हम अपने धनवान पूँजीवालोंसे इतना अवश्य कहेंगे कि यदि वे स्वयं अग्रसर होकर नए व्यवसाय और कारखाने स्थापित नहीं करना चाहते तो कमसे कम अन्य प्रान्तकी कम्पनियोंके—जो यहाँ काम करना चाहती हैं—हिस्से अवश्य खरीदें जिससे कि पूँजी लगानेकी झिझक जाती रहे और अनुकूल अवसर पाकर वे भी व्यापारमें वही उन्नति कर दिखावें जो आजकल बम्बई, अहमदाबाद और कलकत्तेमें दिखाई देती है।

कलकत्ता और बम्बईके व्यापारी

कलकत्ता और बम्बई दोनों व्यापारके बड़े केन्द्र हैं। जन-संख्या, विद्या, धन और शिक्षामें ये अन्य नगरोंसे आगे बढ़े हुए हैं। परन्तु इन दोनों नगरोंमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनमें समता नहीं है। उनका उल्लेख करते हुए एक लेखकने भारतवासियोंका इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। कलकत्तेका व्यापार विशेषतः अंगरेजोंके हाथमें है। उनके बड़े बड़े कार-खाने उनकी पूँजीसे चलते हैं, वे ही उनके मालिक हैं और उन्हींको इस व्यवसायसे लाभ होता है। कोयलेकी खानें जो बंगालमें हैं उनमेंसे बड़ी बड़ी अंगरेजोंके हाथमें हैं। आसाममें चाह और बिहारमें नीलके व्यवसायोंमें भी यही हाल है। अतएव कलकत्तेके व्यापारमें अंगरेजों-का पद हिन्दुस्तानी भाइयोंसे ऊँचा है। देशी लोग व्यापारमें सहायक हैं परन्तु स्वाधीन नहीं हैं। इस कारण उनका रोब, दबदबा और प्रभाव व्यापारपर इतना नहीं है जितना कि होना चाहिए। अंगरेजोंका बर्ताव भी यहाँके हिन्दुस्तानी व्यापारियोंसे बराबरीका नहीं होता। परन्तु बम्बईमें दशा इसके विपरीत है। वहाँका व्यापार मुख्यतः देशी भाइयोंके हाथमें है। अंगरेजों-

का व्यापार इतना बढ़ा चढ़ा नहीं है जितना भारतवासियोंका। इससे अंगरेजोंको उनके साथ बर्ताव भी अच्छा करना पड़ता है। बम्बईके देशी व्यापारियोंमें शिक्षा प्रचार विशेष है। उतना कलकत्तेमें नहीं पाया जाता और यह बात ध्यान देने योग्य है। अंगरेजी पढ़े लिखे लोगोंको बहुत कम वेतनकी नौकरियाँ कलकत्तेमें मिलती हैं फिर भी व्यापारकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता। सर प्रफुल्लचन्द्र राय शिक्षा-प्राप्त बंगाली नवयुवकोंको व्यापारी बननेके लिए सलाह देते हैं। जब तक शिक्षा-प्राप्त लोगोंको व्यापार करनेका अवसर न मिलेगा उनमें अशान्ति बढ़ती ही जायगी। इसके लिए सुयोग और सब प्रकारकी सुविधा होनी चाहिए।

विलायतमें सरकारी व्यय

यूरोपीय युद्ध तो शान्त हो गया परन्तु संसारमें अभीतक कहीं शान्ति नहीं दिखाई देती। कोई देश ऐसा नहीं जहां हड़ताल, आपसके झगड़े, आर्थिक समस्याएँ हलचल न मचा रही हों। अभीतक कहीं सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं हो पाई है जिससे लोग अपने साधारण काममें लगें और समाज अपनी सीधी चालसे चल सके। अंगरेज़ लोगोंने जर्मनीपर विजय तो पाई है और सन्धिपत्रपर भी हस्ताक्षर हो गए, फिर भी उनके देशमें भी अभी पूरी अशान्ति है। यह सन्देह तो सबको है कि सन्धिपत्रका कुछ यथार्थ मूल्य अंतमें क्या रहेगा। और फिर अमरीकाके निश्चयने तो और भी गोलमाल कर दिया है। ऐसी दशामें इंगलिस्तानकी आर्थिक दशा और भी चिन्ताका कारण हो रही है। युद्ध बन्द हो जानेपर भी वहाँ बराबर २ करोड़ ५५ लाख रुपयेका प्रतिदिन व्यय आमदनीसे अधिक हो रहा है। जर्मनीपर जुर्माना किया गया है उसके वसूल होनेकी आशा कम है। जो मित्रदलको ऋण दिया गया उसपर सूद नहीं मिल रहा है। आयरलैण्ड चैन नहीं लेने देता। इनमें विलायतकी प्रजाके बड़ी विकट समस्याएँ उपस्थित हैं। व्यय कम करनेके लिए सब ओरसे लोग पुकार और मन्त्रिमण्डलसे असन्तोष प्रकट करते हैं। जबतक व्यापारकी उन्नति अच्छी तरह और खर्चमें कमी न की जायगी विलायतकी दशा चिन्ताजनक बनी रहेगी।

सकता। देशी रियासतोंमें सभी अंक एकत्र करनेपर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। वहाँपर गणना-शास्त्रके जाननेवाले हैं भी कम। और यहाँ भी ऐसे बहुत नहीं हैं। इस कारण मि० सीराजने गणना-शास्त्रकी शिक्षाका कुछ प्रबंध अपने दफ्तर कलकत्तेमें किया है। वहाँपर विशेषज्ञों द्वारा लोगोंको गणना-शास्त्र और अंक एकत्र करने और उनको उपयोगमें लानेकी शिक्षा दी जायगी। खड़ी फसलसे उपजका कैसे अनुमान करना, कृषिसंबंधी अंक किस प्रकार जमा करना, पदार्थोंके मूल्य और उनके भावमें घटाबढ़ीके अंक किस प्रकार उपयोगमें लाना और ऐसी ही आवश्यक बातोंके बारेमें ब्यौरेवार समाचार एकत्र करना, इन सब बातोंके सीखनेका अवसर मि० सीराजके उद्योगसे मिलेगा। यह बड़ा आवश्यक है कि रियासतोंके और यहाँके लोग इससे लाभ उठाकर शिक्षा प्राप्त करें।

हैदराबादमें औद्योगिक जागृति

कुछ देशी रियासतोंने अपने यहाँ नये व्यवसाय खोलनेका प्रबंध किया है जिससे कि उनकी प्रजाकी आर्थिक अवस्था सुधरे और देशमें उद्योग धन्धोंकी वृद्धि हो। महाराज ग्वालियर, बड़ौदा, ट्रावनकोर, और विशेषकर महाराज मैसूरका इधर विशेष ध्यान है। मैसूरने जैसी शिक्षा, शासन प्रणाली आदिमें उन्नति कर दिखाई है वैसीही उद्योग धंधोंमें भी की है। यह वहाँके सुशासन और महाराजकी उदार नीतिका परिणाम है। और यह उनके देशवासियोंके लिए गर्वका कारण है। अंगरेजी सरकारको शिक्षा पानेके लिए भी एक आदर्श है। हैदराबाद सबसे बड़ी रियासत है। वहाँ अनेक खनिज पदार्थ मिल सकते हैं और औद्योगिक उन्नतिके लिए पूरे सुयोग प्राप्त हैं। परन्तु अभीतक वहाँके शासकका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे नहीं गया था। मैसूरकी सफलता देखकर अब दो वर्षसे वहाँ भी औद्योगिक हलचल प्रारम्भ हुई है और निज़ाम साहबने दो वर्षसे इसके लिए एक अलग विभाग खोल दिया है। जो कुछ इन दो वर्षोंमें हुआ है वह आशाजनक है। इतनी बड़ी रियासतमें जिस दिन उद्योगकी पूरी वृद्धि हो जायगी और प्रकृति-दत्त सम्पत्तिका पूरा उपयोग होने लगेगा वहाँकी प्रजाको अवश्य अपनी आर्थिक दशापर गर्व करनेका कारण होगा। शासन और उद्योग दोनों ही विभागोंमें हैदराबाद यथेच्छ उन्नति दिखायेगा यह हमको पूर्ण आशा है।

पूर्वीय बंगालमें तूफान

दो महीने हुए पूर्वीय बंगालमें जो अभूतपूर्व तूफान आया था उसका हाल समाचार पत्रों द्वारा समस्त पाठकोंको ज्ञात हो चुका है। बड़ी भारी वर्षाके बाद एकदम ऐसा

तूफान आया कि जो कभी किसीके विचारमें भी नहीं आ सकता था। यह एक दारुण दैवकोपका ही परिणाम कहा जा सकता है। असंख्य कच्चे पक्के घर गिर पड़े, गाँव बह गये, नावें डूब गई और न जानें कितनेकी हानि हुई। जीव नाश और धन हानि जो हुई है उसका पूरा अनुमान करना कठिन है। ऐसी दारुण विपत्तिमें हमारे देशभाई जो नितान्त असहाय हो गये हैं, उनकी मदद करना हमारा कर्त्तव्य है। प्रत्येक मनुष्यको यथाशक्ति योग देकर इस सहायता करनी चाहिए। सहायक-समितियाँ खुल गई हैं और बराबर काम कर रही हैं। उनको धनकी आवश्यकता है। अंगरेजोंने और बंगालकी सरकारने भी प्रजाकी मदद की है। हमें सन्तोष है कि बंगाल सरकारने स्वयं प्रजाके दुःख निवारणका उद्योग किया है और भारत सरकारसे भी सहायता ली है। बंगालके गवर्नरकी यह आज्ञा कि—आगामी मासमें विजयके उपलक्षमें जो खुशी मनाई जायगी उसमें रोशनी, आतिशबाजी इत्यादि पर धन फूँकनेके बदले प्रजाकी पीड़ा दूर करनेमें सहायताकी जायगी—बड़ी सन्तोष जनक है और अन्य प्रान्तके शासकोंके लिए अनुकरणीय है।

भारत सरकारकी औद्योगिक नीति

थोड़ा समय हुआ औद्योगिक कमीशनने जो सरकारने जाँचके लिए बिठाया था अपना रिपोर्ट और सलाहें सरकारके पास भेज दिया। इस बातको पाठक जानते होंगे। उसके अनुसार और उसकी सलाह मानकर सरकारने अपनी औद्योगिक नीतिके विषयमें बयान प्रकाशित किया है। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण विषय है और सरकारकी नीति और कार्यप्रणाली [illegible] करना भी उतना ही ज़रूरी है। क्योंकि बिना औद्योगिक उन्नतिके देशका कल्याण होना सम्भव नहीं। सरकार किस नीतिका किस प्रकार अवलम्बन करेगी इसका वर्णन आगेके अंकमें किया जायगा।



ज्ञातव्य विषय तथा अंक

[illegible] विदेशी व्यापार—वैसाख १९७६ से आसाढ़ १९७६ तक

वस्तुएँ	आयात [illegible]	आयात [illegible]	आयात [illegible]	निर्यात १९७४	निर्यात १९७५	निर्यात १९७६
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
१, [illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१७,६३,४५,३६०	१८,७६,७६,५६७	८,३६,१४,६२४
२, [illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२०,६४,८३,३४६	२१,५१,४१,८२५	२६,०५,८०,७४१
३, [illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	०६,१६,०४,८६५	१७,०२,०२,६६०	२०,८७,८६,७६६
४, [illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४७,०५,१७३	४८,४३ ७७०	६७,६२,६०३
जोड़	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१,८२,०१,४५७	२,५१,२५,५४[illegible]	५,५०,४१,०४५
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१६,८८,८६७	४०,३६,४२६	२८,३६,७०१
कुल जोड़	[illegible]	[illegible]	[illegible]	५७,३६,२४,८६७	६०,७३,२६,८५८	६४,७६.५५,५२३

यह तीन महीनेके अंक हैं। युद्ध समाप्त होते ही आयातका मूल्य बढ़ने लगा है। पहिले ३५ करोड़ था फिर ४१ से ४३ करोड़ हो गया है। इसी प्रकार निर्यातके मूल्यमें भी वृद्धि है। पहिले वर्ष निर्यातका आयातसे मूल्य २२ करोड़ विशेष था और अब ३१ के ऊपर है।

भारतमें काचके सामानकी आमद

नाम	१९७३	१९७४	१९७५
	रु०	रु०	रु०
चूड़ियाँ	८० लाख	४३ लाख	३५ लाख
दाने, तथा झूँठे मोती	२४ ,,	२१ ,,	२४ ,,
लम्पका सामान	१७ ,,	११ ,,	१८ ,,
शीशी तथा बोतलें	२० ,,	२५ ,,	३७ ,,
चौलटेके काच	२२ ,,	२८ ,,	२३ ,,
सामान सजायट	८ ,,	७ ,,	१० ,,
फुटकर	१९ ,,	१५ ,,	१५ ,,
जोड़	१९० ,,	१५० ,,	१६२ ,,

तीन वर्षमें जितना काचका सामान यहाँ प्रदेशोंसे आया उसके मूल्यकी तुलना करनेसे मालूम होता है कि युद्धसे पहिले जितनेका सामान आया उसके बराबर अभी नहीं पहुँचा। युद्धकालमें तो आयातका कम होना अनिवार्य था। अब फिर १६२ लाख तक पहुँच गया है।

हिन्दू जन-संख्याका ह्रास

(१०,००० की मनुष्य संख्यामें)

संवत्	१९३८	...	१९४८	...	१९५८	...	१९६८
हिन्दू	७४३२	...	७२३१	...	७०३४	...	६९३१
सिक्ख	७३	...	६७	...	७५	...	९६
जैन	४८	...	४९	...	४५	...	४०
मुसलमान	१९७४	...	१९९६	...	२१२२	...	२१२६
ईसाई	७३	...	७९	...	९९	...	१२४

महायुद्धमें उपनिवेशोंका व्यय—गत चार वर्षोंमें यूरोपीय महायुद्धमें उपनिवेशोंका लगभग इस प्रकार व्यय हुआ:—

कनाडा	रु०	३,८२,५०,००,०००
आस्ट्रेलिया	„	४,३६,५०,००,०००
न्यू जीलैण्ड	„	१,१३,९२,५०,०००
दक्षिण अमरीका	„	१४,५०,००,०००
न्यू फाउण्डलैण्ड	„	३,००,०००
जोड़ ...	...	९,९७,१५,५०,०००

—:0:—

बालकोंकी मृत्यु-संख्या—इंगलैंड तथा वेल्समें नीचे लिखे हुए चार वर्षोंमें एक वर्षके बालकोंकी प्रति सहस्र इस प्रकार मृत्यु हुई:—

संवत्	संख्या	प्रति
१९६१	...१४५	१०००
१९६३	...१३२	„
१९६५	...१२०	„
१९६७	...१०५	„

इन अंकोंसे मृत्यु-संख्याका बराबर कम होना प्रत्यक्ष है। रहन सहनका उत्तम ढंग तथा स्वास्थ्य-रक्षाकी ओर विशेष ध्यान घटावका मुख्य कारण है।

—:0:—

सर डी० ई० वाचाने हालमें करेंसी अवस्थाका हिसाब लगाया है कि संवत् १९७० में जितना रुपया विदेशमें आया उसके हिसाबसे प्रति मनुष्यके पीछे १३ ६ मन करेंसी खर्च हुई परन्तु यूरोपीय महायुद्धके आरम्भसे आज संवत् १९७६ के अन्त तक इन पाँच वर्षोंमें घट कर ९·७१ मन रह गई। अर्थात् एक मनुष्यके पीछे ४ ३७ मनकी खिराक कम हुई।

डॉकघर सेविंग बंकका गतवर्ष हिसाब इस प्रकार था:—

कुल खाते या रुपया जमा करने वालोंकी संख्या	१,६७७,४०७
कुल रुपया जो वर्षके अंतमें जमा रहा	१८,८२,००,०००
फ़ी आदमीका औसत रुपया जमा	१२० रु०

इन अंकोंको देखनेसे मालूम होता है कि लगभग २२ फ़ी सैकड़ा खाते नए हुए और कुल रुपया जो वर्षके अन्तमें जमा निकला उसमें पहिलेसे २ करोड़ २४ लाखकी वृद्धि हुई। फी आदमी पहिले रु० १०१ जमा था जो बढ़कर १२० हो गया अर्थात् डॉकघरकी बंकमें पहिलेसे रुपया विशेष जमा होने लगा है।

मनी आर्डरका हिसाब गतवर्ष यह था:—

कुल मनी आर्डर		३,६०,००,०००
रुपये भेजे गए	रु०	७६,५०,००,०००
कुल देशी मनी आर्डर		३,५०,००,०००
रुपये देशी मनी आर्डर द्वारा भेजे गए		६६,७५,००,०००
डॉकघरको कमीशन मिला		७६,२५,०००

मनी आर्डरोंकी संख्यामें इससे पहिले वर्षसे लगभग ३ फी सदीकी वृद्धि हुई है। और जो रुपए उनके द्वारा भेजे गए हैं उनमें १२ फी सदीके लगभग वृद्धि हुई है।

पंजाबका भूमिमार्गसे विदेशी व्यापार

	आयात	निर्यात
सं०	रु०	रु०
१६६८–७०	१७,७०,४०७	८,२१,१७८
१६७०–७१	४१,८४,५११	४६,६६,१७४
१६७१–७६	५८,०६,६२१	८८,१२,४८६

इन अंकोंसे मालूम होता है कि पंजाबका व्यापार अफ़गानिस्तान, मध्यएशिया, तथा तिब्बत आदि देशोंसे बढ़ता जाता है। पिछले तीन वर्षोंमें ३३ करोड़ रुपयेका अधिक माल भारतने आयातसे विशेष भेजा है। अफ़गानिस्तानमें शान्ति स्थापित होनेपर इस व्यापारके और भी अधिक वृद्धि होनेकी सम्भावना हो गई है इससे देशको आर्थिक लाभ अवश्य होगा।

कपास इस वर्ष १८,८२,००० एकड़ भूमिमें बोई गई है। पिछले वर्षसे ११ फी सदी रकबा कपासकी खेतीमें बढ़ गया है।

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।

———:०:———

विशेष सूचना:—जो लोग अपना [illegible] अनुसार रखते हैं उनके सुभीतेके लिए सं० १९८७ का [illegible] पूर्व ही दिया जायगा। पत्री जनवरी सन् १९३० से लेकर १५ महीने तकके पृष्ठ इसके अन्तमें लगे रहेंगे जिससे यह पत्री जनवरी १९३० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यकी सरकारी [illegible]।

१—यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान् राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीकी सत्ताकी बागडोर थामनेका भार वृथा कर न देवें। उसे हम भारी आगे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है।

मांटेग्यचेम्स और चेम्सफर्डने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अंग्रेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कागजात सदा अंग्रेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उनके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्याकांक्षी अंग्रेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी. ए., एल-एल. बी. (कैम्ब्रिज) बार-एट-ला के सम्पादनमें तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ६८०, मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

अब्राहम लिंकन।

२—इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेने निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुटकारा दिला-कर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उच्चपद दिलाया है।

अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उसीमेंसे एक है। मृतक मनमें भी पुनः प्राणका सञ्चार करनेवाला है। उनके जीवनसे हम सीखते हैं कि एक रंक किस तरह राजा बन सकता है। गुलामोंके घरमें उत्पन्न हो कर, दरिद्र और कंगाल होते हुए, स्कूलमें केवल एक वर्ष शिक्षा पाकर भी अब्राहम किस प्रकारसे एक प्रसिद्ध वक्ता, लेखक और राजनीतिज्ञ बना। यही नहीं, एक साधारण कुलमें उत्पन्न होकर वह अमरीका सदृश स्वतन्त्र राष्ट्रका राष्ट्रपति भी बन गया। अब्राहमने वहाँके गुलामोंका अपार कष्ट किस प्रकार दूर किया, आदि अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने योग्य हैं। अमेरीकामें लाखों प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। इस देशके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १६२, मूल्य ॥) आठ आने।

बिहारीकी सतसई।

३—कवि सम्राट् बिहारीके सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० पद्मसिंह शर्माकी अपूर्व समालोचनाने सोनेमें सुगंध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू कवितायोंसे तुलनात्मक लेख बड़ेही चित्ताकर्षक हैं। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो किसी समय सरस्वतीमें छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरस और सजीव है। समालोचना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) २७८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

[दूसरे भागमें बिहारीके प्रसिद्ध दोहोंपर उक्त पंडितजी कृत संजीवन भाष्य होगा। शीघ्रही छपनेवाला है।]

सौर रोजनामचा सं० १९७६।

४—यह जेबी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पञ्चांग, हिन्दीका प्रचार, राष्ट्रीय संस्थाएँ, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक लेख, नीतिके उत्तम उत्तम दोहे आदि कई नयी नयी बातें दी गयी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पञ्चांग सं० १९७६।

५—यह बड़े बड़े सुन्दर अंकोंमें छापा गया है। भीतपर लटकाने लायक है। इसके ऊपरी भाग और पीठपर पढ़े पंचांगकी सारी बातें घण्टों तथा मिनिटोंमें दी हैं। इसको प्रायः सभी लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, यह ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक तारीखें भी दी गई हैं। मोटे सफेद कागजपर छपा है। मूल्य ।=) छः आने।

छप रही हैं शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

६—इटलीके विधायक महात्मागण।
७—जापानकी राजनैतिक प्रगति।
८—भारतवर्षका प्राचीन इतिहास।
९—पश्चिमी यूरोपका इतिहास।
१०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।

वास्तवमें मिट्टीसे सोना बनाते हैं। कोयलेके धूएँसे, कूड़े करकटसे भाँति भाँतिकी उपयोगी वस्तुएँ तैयार करके मालामाल हो रहे हैं। देशी भाषा जाननेवालोंके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १४०। मूल्य १) एक रुपया।

सरल रसायन।

२—इसमें रसायनशालाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय, तत्वोंका वर्णन, धातु, विधातु तथा उपधातुओंका भेद, सब प्रकारके तेज़ाब, लवण, संयोग वियोगके परिणाम, संकेत, सूत्र, शक्ति, अणु, परमाणु, आदि इत्यादिका वर्णन कहानीके रूपमें अत्यन्त रोचकतासे दिया गया है। पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—वार्निश और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

जगत् व्यापारिक-पदार्थ-कोष।

७—इस ग्रन्थके नामहीसे इसके अन्तर्गत विषयका परिचय मिल जाता है। इस पुस्तकका लक्ष्य यह है कि केवल देशी भाषा जाननेवालोंको भिन्न भिन्न पदार्थोंका व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिए माल कैसे तैयार किये जायँ इत्यादि बातोंका ज्ञान प्राप्त हो। कारीगरोंके लिए भी यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। इस कोषसे कितना लाभ पहुँच सकता है इसका वर्णन करना कठिन है। केवल एक बार देखनेसे ही सब बातें मालूम हो सकती हैं। सम्पादकर्त्ता बाबू ठाकुरप्रसाद। पृष्ठ संख्या ४२५, मूल्य ५) पाच रुपया।

देशी करघा।

८—भारतवर्षमें सब व्यवसाय और व्यापारकी ओर लोगोंका झुकाव देखकर चित्तको हर्ष होता है। स्थान स्थानपर छोटे छोटे मिल, कारखाने और करघे खुल रहे हैं। मगर लोगोंको आशातीत सफलता नहीं होती। इसका कारण इस विषयको न जानना है। इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएं तथा अन्य जानने योग्य बातोंका वर्णन है। इसे पढ़कर काम करनेसे मालिकको धोखा नहीं हो सकेगा और बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। पृष्ठ संख्या ११०, मूल्य ॥) आठ आना।

मोजेकी कल (सचित्र)।

९—पृष्ठ संख्या ५६, मूल्य ॥) आठ आना।

भारी भ्रम।

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान अंगरेज़ीमें मूल्य ।॥) बा० आ०

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना। अंगरेज़ीमें मूल्य =) दो आना।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उनपर जमानतका मुकदमा हिन्दीमें। पृष्ठ संख्या ३०२, मूल्य १।) सवा रुपया।

मानस मुक्तावली।

१४—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य ।=) छः आना

भूमण्डलके प्राणी।

१५—श्रीयुत राधाचरणसाह द्वारा सम्पादित। (डिमा

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरि

ओम् वन्देमातरम्

स्वार्थ

प्रथम वर्ष १ खण्ड	पौष १९७६	संख्या ३ पूर्ण संख्या ३

वर्तमान युगकी समस्याएँ

१ समस्याओंका आधार



स भाँति प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनकालमें कुछ कठिनाइयोंका सामना अवश्य करना पड़ता है उसी प्रकार प्रत्येक युगमें समाजके सम्मुख कुछ जटिल प्रश्न उपस्थित होते हैं। व्यक्तिगत कठिनाइयाँ भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं उसी तरह सामाजिक समस्याएँ भी अनेक भाँतिकी होती हैं। यदि मनुष्यको सामाजिक प्रश्नोंके हल करनेका प्रयत्न न करना पड़े और उसको अपनी वर्तमान स्थितिमें पूर्ण सन्तोष हो जाय तो वह किसी प्रकार परिश्रम ही न करे और समाजका अधःपतन आरम्भ हो जाय।

समाज विप्लव, राज्य-क्रान्ति, भयानक युद्ध मनुष्यकी सामाजिक स्थितिमें परिवर्तनके मुख्य कारण होते हैं। संसारमें विचार-क्रान्तिका भी प्रादुर्भाव इसी प्रकार होता है। यूरोपीय महायुद्ध जिसकी भयंकरताने चार पाँच वर्ष तक संसारको बेचैन रक्खा एक नवीन युगका प्रवर्तक है। युद्धकाल समाज और राष्ट्रोंके लिए परीक्षाका समय था। उसने संसारमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है परन्तु सभी प्रश्न जो युद्धके पूर्व हल होने चाहिये थे वे हल नहीं हो सके। नवीन युगके आरम्भमें प्राचीन समस्याओंका पुनर्विचार आवश्यक है और इन बातोंके लिए यही अवसर उपयुक्त है।

उन्नीसवीं शताब्दीके जो सबसे बड़े प्रश्न उपस्थित हुए उनकी उत्पत्ति दो कारण है, [illegible] ने बड़े बड़े राष्ट्रोंका अभ्युदय और दूसरे औद्योगिक क्रान्ति। [illegible]

११—[illegible] मूल्य [illegible]

१२—[illegible] मूल्य [illegible]

१३—[illegible] पृष्ठ संख्या [illegible], मूल्य [illegible]

मानस मुक्तावली ।

१४—श्रीयुत [illegible] कृत मूल्य [illegible] सं. भाषा ।

भूमण्डलके प्राणी ।

१५—श्रीयुत [illegible] द्वारा सम्पादित । (डिमाई ८ पेजी ७८ पृष्ठ) मूल्य [illegible]

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त ।

मिलनेका पताः—

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल,

गुरुधाम

काशी ।

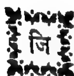
ओम् वन्देमातरम्

स्वार्थ

प्रथमवर्ष 1 खण्ड | पौष १९७६ | संख्या 3 पूर्ण संख्या 3

वर्तमान युगकी समस्याएँ

1 समस्याओंका आधार



जिस भाँति प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनकालमें कुछ कठिनाइयोंका सामना अवश्य करना पड़ता है उसी प्रकार प्रत्येक युगमें समाजके सम्मुख कुछ जटिल प्रश्न उपस्थित होते हैं। व्यक्तिगत कठिनाइयाँ भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं उसी तरह सामाजिक समस्याएँ भी अनेक भाँतिकी होती हैं। यदि मनुष्यको सामाजिक प्रश्नोंके हल करनेका प्रयत्न न करना पड़े और उसको अपनी वर्तमान स्थितिमें पूर्ण सन्तोष हो जाय तो वह किसी प्रकार परिश्रम ही न करे और समाजका अधःपतन आरम्भ हो जाय।

समाज विप्लव, राज्य-क्रान्ति, भयानक युद्ध मनुष्यकी सामाजिक स्थितिमें परिवर्तनके मुख्य कारण होते हैं। संसारमें विचार-क्रान्तिका भी प्रादुर्भाव इसी प्रकार होता है। यूरोपीय महायुद्ध जिसकी भयंकरताने चार पाँच वर्ष तक संसारको कँपा रक्खा एक नवीन युगका प्रवर्तक है। युद्धकाल समाज और राष्ट्रोंके लिए परीक्षाका समय था। उसने संसारमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है परन्तु सभी प्रश्न जो युद्धके पूर्व हमारे सामने थे वे हल नहीं हो सके। नवीन युगके आरम्भमें कतिपय समस्याओंका पुनर्विचार आवश्यक है और इस कार्यके लिए यही अवसर उपयुक्त है।

प्राचीन है परन्तु अब उसका सम्बन्ध राजनैतिक उन्नतिसे इतना घनिष्ठ हो गया है कि उसपर पृथक् विचार करना सम्भव नहीं है। विजय प्राप्त करनेके लिए या अपने देशकी सीमा बढ़ानेके लिए सम्पूर्ण संसारमें युद्ध बन्द हो गया है और साथ ही प्रत्येक राष्ट्र अन्य देशोंके आक्रमणसे सुरक्षित भी है अतएव युद्ध सामग्री और सैन्यबल बढ़ानेकी ओर लोगोंका ध्यान पहिलेके बराबर नहीं है। प्रजाकी अपनी उन्नतिका विशेष ध्यान है अपने अधिकारोंको विस्तृत और दृढ़ करनेका उनका मुख्य उद्देश है। जितने आन्दोलन संसारमें आजकल हो रहे हैं उन सबका उद्देश प्रजा या जन साधारणको अधिकार प्राप्त कराने और उनकी सामाजिक स्थितिमें यथोचित परिवर्तन करानेका है। प्रजाके मन व बुद्धिका विकास, सुख, शान्ति और शिक्षापर निर्भर है। इसी बातको जान कर जन साधारण सामाजिक दुरवस्थाओं और अनीतियोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें उत्सुकतासे अग्रसर हो रहे हैं।

इस कारण उपस्थित प्रश्नोंका हल करना ही नव-युवका परम कर्त्तव्य है। भविष्यमें अनेक कठिन प्रश्नोंका सामना करना पड़ेगा सही। परन्तु उनका विचार यहाँ आवश्यक नहीं है। उपस्थित प्रश्न ये हैं। राजा तथा प्रजामें क्या सम्बन्ध होना चाहिए। राजाके क्या अधिकार हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रतामें उसका कितना हाथ है। राष्ट्रके लिए प्रत्येक प्रजाका क्या धर्म है। प्रजाको राजाके लिए कहाँ तक कष्ट सहन करना चाहिए*। और दूसरे, मालिक और मजदूरमें परस्पर क्या सम्बन्ध होना चाहिए। पूँजीवालोंका श्रमजीवियोंपर क्या अधिकार है और श्रमजीवियोंको पूँजीवालोंका कहाँ तक साथ देना चाहिए।

---

* राष्ट्रपति वुडरो विलसनने अपनी "स्टेट" नामी पुस्तकमें सरकारके कर्त्तव्योंके दो विभाग किए हैं—प्रधान अर्थात् रक्षा-सम्बन्धी और गौण अर्थात् भरणपोषण-सम्बन्धी। पहिले विभागमें उनके अनुसार निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—(१) शान्तिकी स्थापना और प्रजाके जान और मालको चोरों और डाकुओंसे बचाना। (२) पति पत्नी, पिता माता और सन्ततिका आपसका सम्बन्ध निश्चित करना। (३) धनके रखने, बाँटने और बदलनेका प्रबन्ध करना। (४) आपसके वादे पूरे कराना। (५) दीवानी अदालतोंमें न्याय करना। (६) जुर्मकी परिभाषा निश्चित करना। (७) नागरिकोंके राजनैतिक कर्त्तव्यों, अधिकारों और परस्परके सम्बन्धको निर्णय करना। (८) अन्य राष्ट्रोंसे राष्ट्र विशेषका व्यवहार स्थिर करना, बाहरी शत्रुओंसे उसे बचाना। दूसरे विभागमें निम्नलिखित कर्त्तव्य रक्खे गए हैं—(१) व्यापार और व्यवसायकी व्यवस्था करना। (२) मजदूरोंकी स्थिति निश्चय करना। (३) सड़कोंकी मरम्मत करना। (४) डाक और तारका प्रबन्ध करना। (५) उचित और पर्याप्त रोशनी और पानीका प्रबन्ध करना। (६) स्वास्थ्यकी रक्षा करना। (७) शिक्षाका प्रचार करना। (८) दरिद्रों और अपाहिजोंकी रक्षा करना। (९) वैज्ञानिक आविष्कार प्रबन्ध करना। (१०) मोजनादिका व्यापारिक उत्पादन रोकना।

२ राजा+ और प्रजा

जब तक कोई गिरोह अस्थिर अवस्थामें एक स्थानको छोड़कर दूसरे स्थानोंमें जा रहा है अथवा परस्पर युद्ध हो रहा है तब तक तो नेता ही प्रधान व्यक्ति है और उसके अधिकारका विरोध कोई नहीं कर सकता। चाहे नेताको राजा, सम्राट् या राष्ट्रपति कहिए, उसकी आज्ञाका सबको पालन करना पड़ता है और उसकी बुद्धिपर सबको भरोसा रखना होता है। यदि संसारका इतिहास देखा जाय तो यह व्यवस्था प्रायः सभी युगोंमें पाई जायगी। जिस समय रोमसाम्राज्य उन्नतिके शिखरपर आरूढ होकर प्रजातन्त्रशासनमें रत था, और जब वहाँकी प्रजा राष्ट्रपरिषद्की रक्षा ही अपना मूलधर्म समझती थी, उस समय भी यदि कोई ऐसी विपत्ति उपस्थित हो जाती थी जिससे कि राष्ट्रपरिषद्के सदस्य प्रजारक्षाके लिए अपनेको असमर्थ पाते थे तो राष्ट्रका सारा अधिकार किसी एक व्यक्तिके* हाथमें दे दिया जाता था, और जब तक आपत्ति नहीं टलती थी वही एक मात्र शासक माना जाता था। लेकिन जब कोई राष्ट्र सब प्रकारसे स्वस्थ हो जाता है और अन्तरंग तथा बहिरंग शान्ति पूर्ण रूपसे विराजने लगती है, उस समय यह प्रश्न भीषणरूपसे उठता है कि राजा तथा प्रजा अर्थात् जिनके हाथमें शासनका भार है तथा सर्वसाधारणमें परस्पर क्या सम्बन्ध रहना चाहिए।

शासक तथा अधिकारीवर्ग तो प्राचीन प्रथाको ही प्रचलित रहने देना श्रेयस्कर समझते हैं। उसके अनुसार वे लोग सारा अधिकार अपने हाथमें रख उसका भेद भी किसीपर नहीं खोलना चाहते। वे चाहते हैं कि प्रजा बिना कुछ कहे सुने उनकी आज्ञापालन कर दिया करे। उधर प्रजा शासन-व्यवस्थामें अपना भी हाथ चाहती है। और ज्यों ज्यों उसकी शिक्षा बढ़ती जाती है त्यों त्यों वे इसके लिए और भी आतुर हुए जाते हैं और अब वे लोग अपने शासनका सारा भार राजा तथा मन्त्रीके हाथमें ही नहीं छोड़ देना चाहते।

होता है। अब प्रजातन्त्रताका अधिकार हो गया है जो इसका निषेध करना भा... राष्ट्र-भी इससे प्रजाका क्या भला होगा।

साथही साथ यह प्रश्न उठता है कि व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यतामें हस्तक्षेप करनेका राष्ट्रको क्या अधिकार है। यह कोई असम्भव बात नहीं है कि अब प्रत्येक राष्ट्रका फौजदारी कानून इस प्रकार बदल दिया जाय कि उसकी कठोरता कम होकर मानव-जातिमें प्रेम उत्पन्न करनेमें वह अनुकूल बना लिया जाय। एक यह भी प्रश्न उठता है कि प्रत्येक प्रजाको राजा बलात् सेना-विभागमें ले सकता है या नहीं। इसके लिए राजाका कहना है कि हमने अनेक प्रकारकी सुविधा देकर प्रजाको इस भाँति बढ़ाया है और हम पहिलेसे उनकी रक्षा करते आए हैं और भविष्यमें भी ऐसा ही करेंगे। ऐसी दशामें आपत्ति निवारण करनेमें प्रजाका धर्म है कि राजाका साथ दे। यदि राष्ट्रकी रक्षा हो गई तो सबकी उन्नति होगी, और यदि उसका नाश हुआ तो सब कोई गए। पर दूसरी ओरसे इसका विरोध भी किया जा रहा है। भावी सन्ततिके सामने यह प्रश्न, पूर्ण रूपसे उपस्थित होगा।

एक तरफ़से तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी आवाज़ आ रही है और दूसरी ओरसे समाज-सुधार, दुर्बलोंकी रक्षा, धनियोंके ऊपर दबाव तथा व्यवसायको सर्वसाधारणजनित कर देनेके लिए उद्योग हो रहा है। कानून द्वारा धनी और निर्धनमें तो न्याय हो जाता है परन्तु अभी इसकी कोई व्यवस्था नहीं हो पाई है कि लोग अपनी विद्या और बुद्धिका दुरुपयोग अपनेसे कम विद्वान और बुद्धिमान लोगोंके साथ न कर सकें अथवा अपनी उन्नत मानसिक शक्तियोंका अनुचित लाभ न उठा सकें।

३ मालिक और मजदूर

व्यावसायिक परिवर्तनने संसारकी पुरानी स्थितिमें हलचलसी मचा दी है। संसारकी

---

† स्विट्जर्लैंडमें यह व्यवस्था है कि यदि ५० सहस्र मताधिकारी एकमत होकर किसी प्रस्तावके लिए अनुरोध करते हैं तो वह सर्वसाधारण की अनुमतिके लिए प्रकाशित किया जाता है। और सर्वसाधारणने यदि उसे अनुमोदित किया तो राष्ट्रसभाके प्रतिकूल भी वह प्रयोगमें आता है। इसीको उपक्रम (इनीसियेशन) का अधिकार कहते हैं।

‡ स्विस वासियोंके पास पर्यालोचन (रेफरेंडम) का भी अधिकार है। यदि २० सहस्र सम्मति देनेवाले एक राय होकर किसी नियमका पर्यालोचन अथ... उसको निकलवाना चाहते हैं तो वह सर्वसाधारणके सामने अनुमतिके लिए पेश कि... जाता है और उसीके अनुसार उसका व्यवहार किया जाता है।

सभी प्राचीन व्यवस्थाएँ बेकाम हो गईं, और नए युगका संचार हुआ। घरके सभी कारबार उठ गए। हाथकी बनी हुई वस्तुओंकी पूछ नहीं रही, बड़े बड़े यन्त्रोंका प्रयोग होने लगा, जिससे कारखाने खुलने लगे। ये सब केवल धनी ही कर सकते थे। अब चारों ओरसे मज़दूर कामके लिए कारखानोंमें इकट्ठे होने लगे। व्यक्तिगत कारीगरीका लोप होने लगा, क्योंकि कारखानोंके खुल जानेसे तथा यन्त्रोंके प्रचारसे अब लोग बड़े बड़े शहरोंमें इकट्ठे काम करने लगे। इन बातोंसे दो प्रश्न उपस्थित हुए हैं जिनपर विचार करना नए युगका कर्तव्य है। पहला प्रश्न तो न्यायके आधार-पर है। यह प्रश्न बहुधा उठता है कि क्या धन तथा श्रमका सम्बन्ध जैसेका तैसा रहने देना चाहिए? अर्थात् क्या यह उचित है कि सारी सम्पत्ति उन्हीं गिने गिनाए लोगोंके हाथोंमें छोड़ देनी चाहिए जो मज़दूरोंके कठिन परिश्रमके सारे सुखका उपभोग करते हैं, चाहे मज़दूर स्वयं जन्मभर विपत्तिहीमें दिन काटते हैं और पेट भर अन्न भी नहीं पाते। समष्टिवादियोंका मत है कि पूँजीवालोंकी कोई निर्दिष्ट श्रेणी नहीं होनी चाहिए। इनके भी दो दल हैं। एकका मत है कि कारखानोंका प्रबन्ध सरकारके हाथमें आजाना चाहिए और दूसरे दलका कहना है कि उनका लाभ सबमें बराबर बाँट दिया जाय। एक विचारवानने* कारखानोंमें सरकारी प्रबन्ध हो जानेके प्रस्तावका विरोध करते हुए लिखा है—"जहाँपर प्रत्येक व्यक्तिके काम को कड़े निरी-क्षणका प्रबन्ध न रहेगा, वहाँके कर्मचारी निश्चय ही अयोग्य, आलसी, बेईमान तथा कार्यकी हानि करनेवाले हो जायँगे, और जब ऊँचेसे ऊँचे कर्मचारीसे लेकर छोटेसे छोटे तक सर्वसाधारणके लिए काम करेंगे, और जब उनके कामकी एक स्वामीकी ओरसे कड़ी निगरानी नहीं की जायगी और जब उन्हें दण्ड पानेका कोई भय नहीं रह जायगा, तो उपर्युक्त बातोंकी मात्रा और भी बढ़ती जायगी और उत्पत्तिकी मात्रा घटती ही जायगी। बल्कि प्रत्येक श्रेणीके लोग दूसरी श्रेणीके लोगोंकी शिकायत करते फिरेंगे।"

चार्ल्स फूरियरका भी यह मत था कि राजा सब व्यवसायोंका प्रबन्ध नहीं कर सकता। उसका मत था कि प्रत्येक दो सहस्र मनुष्योंको मिलाकर एक दल बना लिया जाय। प्रत्येक दलके पास आवश्यक औज़ार तथा कारखाने हों। और जो कुछ उत्पन्न हो वह इस भाँति बाँटा जाय। रुपया लगानेवालेको ४/१२, श्रमजीवीको ५/१२, प्रबन्धादि करनेवालोंको ३/१२ दिया जाय।

साथही साथ समष्टिवादके विरोधी तथा व्यक्तिगत सम्पत्तिके पक्षपातीका कहना है—"इसमें हमारा क्या दोष है कि लोग हमारा धन काममें लाना चाहते हैं। हम किसीकी आव-श्यकता अथवा स्थितिके ज़िम्मेदार नहीं। और जिस तरह मज़दूरकी अनुमति बिना [illegible] उससे काम नहीं करा सकते, उसी प्रकार हमारी अनुमति बिना वह हमारे धनको भी हाथ नहीं लगा सकता। चाहे धन किसी कामके लिए क्यों न संचित किया गया हो किसी दूसरेको हमारे धनपर किसी तरहका अधिकार नहीं है। अपने मालपर सूद या मुनाफा लेनेसे हमें वंचित करना, हमारे अधिकारको छीनना है।"

* रिकमन, "द केस अगेन्स्ट सोशलिज़म" (सर्वोदयकी स्टट

इस बातके बड़े गम्भीर [illegible] हुआ करते हैं और इनसे [illegible] [illegible] उपस्थित कर रहे हैं। [illegible] [illegible] है और यदि उचित प्रबन्ध न किया जायगा तो इसमें अनेक प्रकारके उत्पात उपस्थित हो सकते हैं। इसीके कारण रोज हड़ताल है और अन्य कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। इसी लिए इस बातपर इतना जोर दिया जाता है कि और कुछ करनेके पूर्व ही नए युगको इसपर विचार कर इसे हल कर लेना चाहिए। क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दीके उपस्थित प्रश्नोंमें मालिक तथा मजदूर-सम्बन्धी प्रश्न सबसे विकट है। व्यवसाय-प्रधान सभ्यताका मूल प्रश्न यह ही है।

४ राष्ट्र और राष्ट्र

दूसरा प्रश्न राष्ट्रोंके परस्पर सम्बन्धका है। अन्तर्राष्ट्रीय नियम, सन्धिपरिषद् तथा हेगकी विचार-सभा इतनेसे अधिक और कुछ कार्य नहीं कर सकीं कि उन्होंने लोगोंके दिलमें यह ख्याल उत्पन्न कर दिया है कि समाजके लिए भाईचारा भी जातीयता तथा राष्ट्रीयताके भावसे कम आवश्यक नहीं है।

अब यह प्रश्न उठता है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताकी रक्षा करता [illegible] और अपनी राष्ट्रीयताको बिना खोये हुए अन्य राष्ट्रोंसे किस प्रकार सम्बन्ध रख सकता [illegible] जिन लोगोंके हाथमें इस समय संसारकी पुनर्व्यवस्थाका भार है उनके सामने सबसे पहले यही उपस्थित होगा कि प्रत्येक राष्ट्रकी स्थिति अलग अलग होनी चाहिए या नहीं। यदि थोड़ी [illegible] मान लिया जाय कि होनी चाहिए तो यह स्थिर कर लेना आवश्यक है कि अन्तर्रा- [illegible] युद्ध तथा शान्तिके समय कैसा होना चाहिए और हर राष्ट्रको कितनी सेना रखनी चाहिए। यदि इस विषयमें कोई उचित व्यवस्था नहीं की गई तो

१ युद्ध निष्प्रयोजन हुआ।

२ एक देशके लोगोंका दूसरे देशमें भ्रमण, निवास तथा व्यवसाय [illegible] होने चाहिए। प्रवासीको स्वदेशी मान लेनेकी प्रथा तो सर्वत्र प्रच- [illegible] यूरोपवालोंको ही है। उन्हें केवल यूरोपके देशों [illegible] अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारोंको लेते हुए [illegible] है और अपने देशोंमें उन्हें आनेसे रोका [illegible] [illegible] दे दिए जायँ। सबको चाहे जहाँ [illegible] [illegible] किसीको असुविधा न हो।

५ पूर्व और पश्चिम

एक और भी विकट प्रश्न उपस्थित है। पूर्व तथा पश्चिमका भी सम्बन्ध निश्चित कर देना चाहिए। जब पश्चिमीय सभ्यता तथा शिक्षाका प्रभाव पूर्वमें इतने दिनों तक प्रधान रहा है तो पश्चिमीय आध्यात्मिक विचारमें पूर्वका भी हाथ इस समय देख पड़ता है। इस प्रश्नके दो अंश हैं। पहले तो पूर्वको पाश्चात्योंका शिकार नहीं बना रखना चाहिए, और दूसरे पाश्चात्योंको पूर्व वालोंकी तरफसे अपना विचार एक दम बदल देना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दीने तो मान रखा था कि पूर्व और पश्चिमकी समता तो अलग रही, दोनोंका परस्पर सम्बन्ध होना पहले तो असम्भव है और यदि हुआ भी तो पश्चिमकी प्रधानता रहेगी। बड़े बड़े इतिहासज्ञोंने भी यही स्वप्न देखा था कि थोड़े ही दिनोंमें पश्चिमवाले सारे एशियाखण्डको हड़प कर आपसमें बाँट लेंगे। पर बीसवीं शताब्दीके आरम्भहीमें उन लोगोंका स्वप्न टूट गया क्योंकि उन्होंने देखा कि पूर्वकी जापान सरीखी छोटी शक्तिने रूस जैसी इतनी बड़ी पश्चिमीय शक्तिके दाँत खट्टे कर दिये। कई शताब्दियोंके बाद यह ऐसा अवसर मिला कि पूर्वने यूरोपको अपना महत्व दिखाया। इससे यूरोपवालोंका मिजाज कुछ ठिकाने आया, पर इसका प्रभाव केवल जापानके लिए था। डिकिन्सन सरीखे विद्वान, जापानको पश्चिमीय शक्ति मानते हैं। और एशियाके देश बर्बर समझे जाते हैं। टेनिसन कविके कथनानुसार यूरोपका ५० वर्ष पूर्वके युगोंसे अधिक शिक्षाप्रद है। उदाहरणार्थ फारसको देखिये। भिन्न भिन्न यूरोपीय राष्ट्र अपना अधिकार जमानेके लिये यहाँके देशवासियोंके पूछे बिना समय [illegible] आपसमें लड़नेको भी तैयार हो गये हैं।

यूरोपीय युद्धमें पूर्वने पश्चिमको कितनी सहायता दी है। जापान, भारत, [illegible] [illegible] सैनिक तथा विपुल धनसे [illegible] शक्तियोंकी सहायता की है। अब यही आशा की जाती है कि शान्ति होने [illegible] पश्चिम भी पूर्वके प्रति अपना भाव [illegible]।

विशिष्ट तथा साधारण जन

इस समय समानताकी चर्चा इस प्रकार फैल रही है कि विशिष्ट व्यक्तियोंका तो कोई ख्याल ही नहीं करता, और उनकी ओर जनसाधारणकी श्रद्धा भी कम हो रही है। यह एक सोचकी बात है। यदि विचार किया जाय तो संसारके महत्त्वके कारण यही लोग हैं। यदि समानताकी तृष्णा इतनी अधिक हो जाय कि बड़े बड़े विद्वानोंकी वृद्धि हो ही न सके तो समझ लीजिए कि अब प्रलयके दिन आ ही गए हैं, क्योंकि इनके बिना संसार नीरस हो जायगा। संसारका इतिहास केवल बड़े लोगोंके कार्योंकी गाथा ही तो है। यदि इन्हीं लोगोंको निकाल दिया जाय तो बाकी रहेगा क्या? वीर पुरुषोंकी उपासना आवश्यक है। इससे आत्मबल बढ़ता है। मनुष्यको योग्यायोग्यका विचार होता है। संसारमें अच्छे अच्छे कार्योंकी मात्रा बढ़ती है।

गस्टाव ले बानने उन समाज-सुधारकों तथा प्रजातन्त्रवादियोंके बारेमें जो कि समानताके मदमें विशिष्टताको एकदम भूल जाते हैं, अनेक आक्षेपजनित बातें कही हैं। हम केवल चन्द बातोंका उल्लेख यहाँपर करेंगे।

"प्रजातन्त्र-प्रेमियोंकी अभिलाषा समानता स्थापित करनेकी है; पर प्रकृतिसे ही व्यक्तिगत असमानता निश्चित की गई है। इस परस्पर विरोधको मिटाना एक कठिन कार्य है। प्रजातन्त्र प्रेमियोंकी आकांक्षाका प्रकृति क्या उत्तर देती है। उनके प्रस्तावोंने प्राचीन समयसे लेकर आज तक संसारमें कितनी ही बार हलचल मचाई है पर स्वाभाविक असमानतासे उनका वश न चल सका। समानता तो प्रकृतिके शब्द-कोषमें है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बल तथा अन्य गुणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। इन असमानताओंको निर्मूल करनेकी कोई व्यवस्था भी नहीं है। इससे जबतक परम्परागत क्रममें किसी तरहका परिवर्तन न होगा, प्रजातन्त्रवादियोंके प्रस्ताव और विचार कभी कार्यान्वित नहीं हो सकते। वे पुस्तकोंमें रह जायेंगे।

"केवल यही बात नहीं है कि प्रकृतिमें समानताका अभाव है बल्कि आदिकालसे ही यह प्रतीत है कि उन्नति केवल असमानतासे हो सकती है। समाजमें भी असमानताका प्राधान्य है। जो लोग बुद्धिका प्राधान्य मान कर छोटी जातियोंमें बुद्धिमानोंको चुनते हैं वह एक नए प्रकारसे विशिष्ट जाति तैयार करते हैं और सामयिक उसको नीचा कर रहे हैं। इसमें समानता कहाँ है?

"प्रकृतिके नियमोंकी तरहसे आधुनिक उन्नति भी देती है। विज्ञान तथा [illegible] बुद्धिमानोंकी अधिक आवश्यकता होने लगी है। इसमें मानसिक [illegible] तथा सामाजिक स्थितिमें पारस्परिक अन्तर बढ़ता जाता है।

"यह [illegible] उपस्थित हुआ है। [illegible] [illegible] दूर कर रही है, परन्तु अन्तरा दिनों दिन इसको और भी बढ़ती जा रही है। [illegible] देशमें मानसिक भेद बहुत [illegible] नहीं था। पर [illegible] [illegible] [illegible] और मजदूरमें बड़ा अन्तर है। उन्नतिका [illegible] कारण [illegible] है। और इससे [illegible]

ो दिनों दिन बढ़ते जायँगे और साधारणलोग जहाँके तहाँ रह जायँगे। ऐसी दशामें नियम बनानेसे क्या लाभ हो सकता है? अयोग्योंका यह कहना सर्वथा असंगत है कि हमारी संख्या अधिक है, इससे हममें बल भी अधिक है। इन लोगोंको जो कुछ लाभ होता है सब विशिष्ट मस्तिष्कवालोंके कारण ही है। यदि उनकी स्थिति उठा दी जाय तो इनका भी पतन हो जायगा।

"आधुनिक समयमें विशिष्ट जनोंके महत्वके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। जहाँ दोनों प्रकारके लोग वर्तमान हैं (अर्थात् सभ्य तथा असभ्य) वहाँ सभ्यलोगोंकी प्रधानता केवल बुद्धिमत्ताके कारण होती है। समष्टिवादियोंका मूल आधार विशिष्ट जनोंके प्रति घृणा करना ही है। पर वे लोग भूल जाते हैं कि संसारकी उन्नतिके कारण केवल वे ही विशिष्ट जन हैं। केवल इन्हींका प्रताप है कि आजकल पहलेसे कहीं अधिक आनन्दकी सामग्री मिल रही है और जो विलास पहिले बड़े बड़े राजा और साहूकारोंको नहीं मिलता था वह आज सर्वसाधारणको मिलता है*।"

इसी तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने लिखी हैं। आशा की जाती है कि नवयुग इन विशिष्ट मस्तिष्कवालोंका आदर करेगा। सर्वसाधारणका निरादर कौन करता है। उनके ही कारण सब कार्य निबाहा जाता है। पर नए नए मार्गोंको निकालनेवाले विशिष्ट मस्तिष्कवाले ही हैं। सारांश यह है कि दोनों ही समाजके लिए आवश्यक हैं।

८ नगर तथा ग्राम

सभ्यताकी बढ़तीमें नगरोंका भी महत्व बढ़ गया है। उनके प्रति लोगोंमें रुचि बढ़ती जा रही है और ग्रामके प्रति लोगोंकी श्रद्धा घटती जा रही है। पर अधिक संख्या ग्राममें ही रहती है और शरीरपोषणका एक मात्र सहारा भी वहींसे प्राप्त होता है। क्योंकि अन्न वहीं पैदा होता है। पर विद्याके केन्द्र नगर ही हैं। वहीं कारखाने हो सकते हैं, अनेक प्रकारके विद्यालय खुल सकते हैं, छापाखाने तथा न्यायालय हो सकते हैं, कला तथा विज्ञानकी चर्चा की जा सकती है। और लोगोंका ध्यान भी आजकल विशेषकर इसी ओर जा रहा है। मनुष्यकी प्रधान आवश्यकता, [illegible] । पर यह देखकर क्षोभ होता है कि [illegible]

[illegible]रियोंको दूर करनेका प्रबन्ध नगरोंके [illegible]

७ विशिष्ट तथा साधारण जन

[illegible] समय समानतावादी चर्चा इस प्रकार फैल रही है कि विशिष्ट जने इज्जत ही नहीं करता, और उनकी ओर जनसाधारणकी श्रद्धा भी कम हो रही है लोगोंकी बात है। यदि विचार किया जाय तो समाजके महत्वके कारण यही लोग समानताकी तृष्णा इतनी अधिक हो जाय कि बड़े बड़े विद्वानोंकी कद्र हो ही न सके लीजिए कि अब प्रलयके दिन आ ही गए हैं, क्योंकि इनके बिना संसार नीरस है संसारका इतिहास केवल बड़े लोगोंके कार्योंकी गाथा ही तो है। यदि इन्हीं लोगों दिया जाय तो बाकी रहेगा क्या? वीर पुरुषोंकी उपासना आवश्यक है। इससे मालूम है। मनुष्यको योग्यायोग्यका विचार होता है। संसारमें अच्छे अच्छे कार्योंकी भाषा

प्रस्ताव से मानने उन समाज-सुधारकों तथा प्रजातन्त्रवादियोंके बारेमें जो मताके भरमें विशिष्टताको एकदम भूल जाते हैं, अनेक आक्षेपजनित बातें कही हैं। चन्द बातोंका उल्लेख यहाँपर करेंगे।

"प्रजातन्त्र-प्रेमियोंकी अभिलाषा समानता स्थापित करनेकी है; पर प्रकृ व्यक्तिगत असमानता निश्चित की गई है। इस परस्पर विरोधको मिटाना एक कठिन का प्रजातन्त्र प्रेमियोंकी आकांक्षाका प्रकृति क्या उत्तर देती है। उनके प्रस्तावोंने प्राचीन लेकर आज तक संसारमें कितनी ही बार हलचल मचाई है पर स्वाभाविक असमानतासे बस न चल सका। समानता तो प्रकृतिके शब्द-कोषमें है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बल तथा अन्य गुणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। इन असमानताओंको निर्मूल [illegible] कोई व्यवस्था भी नहीं है। इससे अबतक परम्परागत क्रममें किसी तरहका परिवर्तन न हो प्रजातन्त्रवादियोंके प्रस्ताव और विचार कभी कार्यान्वित नहीं हो सकते। वे पुस्तकोंमें जायेंगे।

"केवल यही बात नहीं है कि प्रकृतिमें समानताका अभाव है बल्कि आदिकालसे यह प्रतीत है कि उन्नति केवल असमानतासे हो सकती है। समाजोंमें भी असमानताका प्राधान्य है। जो लोग बुद्धिका प्राधान्य मान कर छोटी जातियोंसे बुद्धिमानोंको चुनते हैं वह एक प्रकारसे विशिष्ट जाति तैयार करते हैं और सामयिक उन्नतिको नीचा कर रहे हैं। इसमें समानता कहाँ है?

"प्रकृतिके नियमोंकी गवाही आधुनिक उन्नति भी देती है। विज्ञान तथा व्यवसायमें बुद्धिमानोंकी अधिक आवश्यकता होने लगी है। इससे मानसिक असमानता तथा सामाजिक स्थितिमें पारस्परिक अन्तर बढ़ता जाता है।

"एक विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ है। कानूनी सम्पत्ति तो व्यक्तिगत असमानता दूर कर रही है, परन्तु सभ्यता दिनों दिन इसको और भी बढ़ाती जा रही है। [illegible] तथा रैयतमें मानसिक भेद बहुत विशेष नहीं था। पर आजकल किसी कारखानेके और मजदूरमें बड़ा अन्तर है। उन्नतिका विशेष कारण योग्यता है। और इसके

तो दिनों दिन बढ़ने लगेंगे और साधारणलोग जहाँके तहाँ रह जावेंगे। ऐसी दशामें नियम बनानेसे क्या लाभ हो सकता है? भद्रोमभ्योंका यह कहना सर्वथा असंगत है कि हमारी संख्या अधिक है, इससे हममें धन भी अधिक है। इन लोगोंको जो कुछ लाभ होता है सब विशिष्ट मस्तिष्कवालोंके कारण ही है। यदि उनकी स्थिति उठा दी जाय तो इनका भी पतन हो जायगा।

"आधुनिक समयमें विशिष्ट जनोंके महत्त्वके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। जहाँ दोनों प्रकारके लोग वर्तमान हैं (अर्थात् सभ्य तथा असभ्य) वहाँ सभ्यलोगोंकी प्रधानता केवल बुद्धिमत्ताके कारण होती है। समष्टिवादियोंका मूल आधार विशिष्ट जनोंके प्रति घृणा करना ही है। पर वे लोग भूल जाते हैं कि संसारकी उन्नतिके कारण केवल वे ही विशिष्ट जन हैं। केवल इन्हींका प्रताप है कि आजकल पहलेसे कहीं अधिक आनन्दकी सामग्री मिल रही है और जो विलास पहिले बड़े बड़े राजा और साहूकारोंको नहीं मिलता था वह आज सर्वसाधारणको मिलता है"* ।"

इसी तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने लिखी हैं। आशा की जाती है कि नवयुग इन विशिष्ट मस्तिष्कवालोंका आदर करेगा। सर्वसाधारणका निरादर कौन करता है। उनके ही कारण सब कार्य निबाहा जाता है। पर नए नए मार्गोंको निकालनेवाले विशिष्ट मस्तिष्कवाले ही हैं। सारांश यह है कि दोनों ही समाजके लिए आवश्यक हैं।

८ नगर तथा ग्राम

सभ्यताकी बढ़तीसे नगरोंका भी महत्त्व बढ़ गया है। उनके प्रति लोगोंमें रुचि बढ़ती जा रही है और ग्रामके प्रति लोगोंकी श्रद्धा घटती जा रही है। पर अधिक संख्या ग्राममें ही रहती है और शरीरपोषणका एक मात्र सहारा भी वहींसे प्राप्त होता है। क्योंकि अन्न वहीं पैदा होता है। पर विद्याके केन्द्र नगर ही हैं। वहीं कारखाने हो सकते हैं, अनेक प्रकारके विद्यालय खुल सकते हैं, छापाखाने तथा न्यायालय हो सकते हैं, कला तथा विज्ञानकी चर्चा की जा सकती है। और लोगोंका ध्यान भी आजकल विशेषकर इसी ओर जा रहा है। मनुष्यकी प्रधान आवश्यकता, नगरोंमें उत्पन्न नहीं हो सकती। पर यह देखकर शोक होता है कि बीमारियोंसे गाँवके गाँव स्वाहा हो जाते हैं। परन्तु बीमारियोंको दूर करनेका प्रबन्ध नगरोंमें अधिक होनेके कारण वहाँके लोग कम कष्ट पाते हैं।

व्यतीत युद्धने इतना तो अवश्य सिखलाया है कि अन्तमें हमलोगोंको भूमिसे उत्पन्न अन्नपर भरोसा करना पड़ता है। जिस समय इंगलिस्तानका खाद्य पदार्थ युद्धकालमें समाप्त हो चला था, उस समय उसके उन्नत व्यवसायोंसे काम नहीं चला। तब यह विदित हुआ कि भोजनके लिए उसे दूसरोंका ही मुँह ताकना पड़ता है। कारखाने इन वस्तुओंको नहीं बना सकते। और इसी ख्यालसे इंगलिस्तानमें कृषिकी उन्नतिकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान आकर्षित हो रहा है। आशा यही की जाती है कि नवयुग कृषि और व्यवसाय दोनोंपर बराबर ध्यान देगा, जिससे दोनों समान उन्नति पाकर जातीयताको बढ़ाते रहें और परस्पर विद्रोहका बीज न उत्पन्न होने पावे।

* गुस्ताव ले बान, "दी साइकालोजी आफ़ रेवोल्यूशन" (राष्ट्रविप्लवके समयका मनोविज्ञान)

७ विशिष्ट तथा साधारण जन

इस समय समानताकी चर्चा इस प्रकार फैल रही है कि विशिष्ट जनोंका तो कोई ख्याल ही नहीं करता, और उनकी ओर जनसाधारणकी श्रद्धा भी कम हो रही है। यह शोककी बात है। यदि विचार किया जाय तो संसारके महत्वके कार्य यही लोग हैं। यदि समानताकी तृष्णा इतनी अधिक हो जाय कि बड़े बड़े विद्वानोंकी वृद्धि हो ही न सके तो समझ लीजिए कि अब प्रलयके दिन आ ही गए हैं, क्योंकि इनके बिना संसार नीरस हो जायगा। संसारका इतिहास केवल बड़े लोगोंके कार्योंकी गाथा ही तो है। यदि इन्हीं लोगोंको निकाल दिया जाय तो बाकी रहेगा क्या? वीर पुरुषोंकी उपासना आवश्यक है। इससे आत्मबल बढ़ता है। मनुष्यको योग्यायोग्यका विचार होता है। संसारमें अच्छे अच्छे कार्योंकी मात्रा बढ़ती है।

मस्ताव ले चलने उन समाज-सुधारकों तथा प्रजातन्त्रवादियोंके बारेमें जो कि समानताके मदमें विशिष्टताको एकदम भूल जाते हैं, अनेक आक्षेपजनित बातें कही हैं। हम इन चन्द बातोंका उल्लेख यहाँपर करेंगे।

"प्रजातन्त्र-प्रेमियोंकी अभिलाषा समानता स्थापित करनेकी है; पर प्रकृतिसे ही व्यक्तिगत असमानता निश्चित की गई है। इस परस्पर विरोधको मिटाना एक कठिन कार्य है। प्रजातन्त्र प्रेमियोंकी आकांक्षाका प्रकृति क्या उत्तर देती है। उनके प्रस्तावोंने प्राचीन समयसे लेकर आज तक संसारमें कितनी ही बार हलचल मचाई है पर स्वाभाविक असमानतासे उनका वश न चल सका। समानता तो प्रकृतिके शब्द-कोषमें है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बल तथा अन्य गुणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। इन असमानताओंको निर्मूल करनेकी कोई व्यवस्था भी नहीं है। इससे जबतक परम्परागत क्रममें किसी तरहका परिवर्तन न होगा, प्रजातन्त्रवादियोंके प्रस्ताव और विचार कभी कार्यान्वित नहीं हो सकते। वे पुस्तकोंमें रह जायँगे।

"केवल यही बात नहीं है कि प्रकृतिमें समानताका अभाव है बल्कि [illegible] भी यह प्रतीत है कि उन्नति केवल असमानतासे हो सकती है। समाजमें भी असमानताका प्राधान्य है। जो लोग बुद्धिका प्राधान्य मान कर छोटी जातियोंमें बुद्धिमानोंको चुनते हैं वह एक प्रकारसे विशिष्ट जाति तैयार करते हैं और सामाजिक उसको [illegible] कर रहे हैं। इसमें समानता कहाँ है?

"प्रकृतिके नियमोंकी [illegible] उन्नति भी [illegible] है। [illegible] तथा [illegible] बुद्धिमानोंकी अधिक आवश्यकता होने लगी है। इससे [illegible] असमानता तथा [illegible] [illegible] बढ़ता जाता है।

"[illegible] हुआ है। [illegible] दूर कर रही है, [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] है। और [illegible]

तो दिनों दिन बढ़ते जायेंगे और साधारणलोग जहाँके तहाँ रह जायेंगे। ऐसी दशामें नियम बनानेसे क्या लाभ हो सकता है? अयोग्योंका यह कहना सर्वथा असगत है कि हमारी संख्या अधिक है, इससे हममें बल भी अधिक है। इन लोगोंको जो कुछ लाभ होता है सब विशिष्ट मस्तिष्कवालोंके कारण ही है। यदि उनकी स्थिति उठा दी जाय तो इनका भी पतन हो जायगा।

"आधुनिक समयमें विशिष्ट जनोंके महत्वके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। जहाँ दोनों प्रकारके लोग वर्तमान हैं (अर्थात् सभ्य तथा असभ्य) वहाँ सभ्यलोगोंकी प्रधानता केवल बुद्धिमत्ताके कारण होती है। समष्टिवादियोंका मूल आधार विशिष्ट जनोंके प्रति घृणा करना ही है। पर वे लोग भूल जाते हैं कि संसारकी उन्नतिके कारण केवल वे ही विशिष्ट जन हैं। केवल इन्हींका प्रताप है कि आजकल पहलेसे कहीं अधिक आनन्दकी सामग्री मिल रही है और जो विलास पहिले बड़े बड़े राजा और साहूकारोंको नहीं मिलता था वह आज सर्वसाधारणको मिलता है"।"

इसी तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने लिखी हैं। आशा की जाती है कि नवयुग इन विशिष्ट मस्तिष्कवालोंका आदर करेगा। सर्वसाधारणका निरादर कौन करता है। उनके ही कारण सब कार्य निबाहा जाता है। पर नए नए मार्गोंको निकालनेवाले विशिष्ट मस्तिष्कवाले ही हैं। सारांश यह है कि दोनों ही समाजके लिए आवश्यक हैं।

८ नगर तथा ग्राम

सभ्यताकी बढ़तीसे नगरोंका भी महत्व बढ़ गया है। उनके प्रति लोगोंमें रुचि बढ़ती जा रही है और ग्रामके प्रति लोगोंकी श्रद्धा घटती जा रही है। पर अधिक संख्या ग्राममें ही रहती है और शरीरपोषणका एक मात्र सहारा भी वहींसे प्राप्त होता है। क्योंकि अन्न वहीं पैदा होता है। पर विद्याके केन्द्र नगर ही हैं। यहीं कारखाने हो सकते हैं, अनेक प्रकारके विद्यालय खुल सकते हैं, छापाखाने तथा न्यायालय हो सकते हैं, कला तथा विज्ञानकी चर्चा भी हो सकती है। और लोगोंका ध्यान भी आजकल विशेषकर इसी ओर जा रहा है। मनुष्यकी प्रत्येक आवश्यकता, नगरोंमें उत्पन्न नहीं हो सकती। पर यह देखकर शोक होता है कि [illegible] जीवन और स्वास्थ्य [illegible] हो जाते हैं। परन्तु बीमारियोंको दूर करनेका प्रबन्ध नगरोंमें अधिक होनेके कारण वहाँके लोग कम मर जाते हैं।

[illegible] युद्धने इतना तो अवश्य सिखलाया है कि [illegible] उत्पन्न

५ विशिष्ट तथा साधारण जन

इस समय समानताकी चर्चा इस प्रकार फैल रही है कि विशिष्ट जनोंका तो कोई ख्याल ही नहीं करता, और उनकी ओर जनसाधारणकी श्रद्धा भी कम हो रही है। यह एक शोककी बात है। यदि विचार किया जाय तो संसारके महत्वके कारण यही लोग हैं। यदि समानताकी तृष्णा इतनी अधिक हो जाय कि बड़े बड़े विद्वानोंकी वृद्धि हो ही न सके तो समझ लीजिए कि अब प्रलयके दिन आ ही गए हैं, क्योंकि इनके बिना संसार नीरस हो जायगा। संसारका इतिहास केवल बड़े लोगोंके कार्योंकी गाथा ही तो है। यदि इन्हीं लोगोंको निकाल दिया जाय तो बाकी रहेगा क्या? वीर पुरुषोंकी उपासना आवश्यक है। इससे आत्मबल बढ़ता है। मनुष्यको योग्यायोग्यका विचार होता है। संसारमें अच्छे अच्छे कार्योंकी मात्रा बढ़ती है।

गस्टाव ले बानने उन समाज-सुधारकों तथा प्रजातन्त्रवादियोंके बारेमें जो कि समानताके मदमें विशिष्टताको एकदम भूल जाते हैं, अनेक आक्षेपजनित बातें कही हैं। हम केवल चन्द बातोंका उल्लेख यहाँपर करेंगे।

"प्रजातन्त्र-प्रेमियोंकी अभिलाषा समानता स्थापित करनेकी है; पर प्रकृतिसे ही व्यक्तिगत असमानता निश्चित की गई है। इस परस्पर विरोधको मिटाना एक कठिन कार्य है। प्रजातन्त्र प्रेमियोंकी आकांक्षाका प्रकृति क्या उत्तर देती है। उनके प्रस्तावोंने प्राचीन समयसे लेकर आज तक संसारमें कितनी ही बार हलचल मचाई है पर स्वाभाविक असमानतासे उनका वश न चल सका। समानता तो प्रकृतिके शब्द-कोषमें है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बल तथा अन्य गुणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। इन असमानताओंको निर्मूल करनेकी कोई व्यवस्था भी नहीं है। इससे जबतक परम्परागत क्रममें किसी तरहका परिवर्तन न होगा, प्रजातन्त्रवादियोंके प्रस्ताव और विचार कभी कार्यान्वित नहीं हो सकते। वे पुस्तकहीमें रह जायँगे।

"केवल यही बात नहीं है कि प्रकृतिमें समानताका अभाव है वल्कि आदिकालसे ही यह प्रतीत है कि उन्नति केवल असमानतासे हो सकती है। समाजमें भी असमानताका प्राधान्य है। जो लोग बुद्धिका प्राधान्य मान कर छोटी जातियोंसे बुद्धिमानोंको चुनते हैं वह एक नए प्रकारसे विशिष्ट जाति तैयार करते हैं और सामाजिक उनको नीचा कर रहे हैं। इसमें समानता कहाँ है?

"[illegible] नियमोंकी भाँति आधुनिक उन्नति भी देती है। विज्ञान तथा व्यवसायमें बुद्धिमानोंकी अधिक आवश्यकता होने लगी है। इससे मानसिक असमानता तथा सामाजिक स्थितिमें पारस्परिक अन्तर बढ़ता जाता है।

"एक विचित्र द्वन्द्व उपस्थित हुआ है। कानूनी संस्थाएँ तो व्यक्तिगत असमानता दूर कर रही हैं, परन्तु जनता दिनों दिन इसको और भी बढ़ाती जा रही है। जमींदार तथा रैयतमें अधिक भेद बहुत दिनोंसे नहीं था। पर आजकल किसी कारखानेके व्यवस्थापक [illegible] बढ़ गया है। जमींदार विशेष करके सोचता है। और इसके अनुसार अपना

तो दिनों दिन बढ़ते जायँगे और साधारणलोग जहाँके तहाँ [illegible] जायँगे। ऐसी दशामें नियम बनानेसे क्या लाभ हो सकता है ? मजोरोयोंका यह कहना सर्वथा असगत है कि हमारी संख्या अधिक है, इससे हममें बल भी अधिक है। इन लोगोंको जो कुछ लाभ होता है सब विशिष्ट मस्तिष्कवालोंके कारण ही है। यदि उनकी स्थिति उठा दी जाय तो इनका भी पतन हो जायगा।

"आधुनिक समयमें विशिष्ट जनोंके महत्वके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। जहाँ दोनों प्रकारके लोग वर्तमान हैं (अर्थात् सभ्य तथा असभ्य) वहाँ सभ्यलोगोंकी प्रधानता केवल बुद्धिमत्ताके कारण होती है। समष्टिवादियोंका मूल आधार विशिष्ट जनोंके प्रति घृणा करना ही है। पर वे लोग भूल जाते हैं कि ससारकी उन्नतिके कारण केवल वे ही विशिष्ट जन हैं। केवल इन्हींका प्रताप है कि आजकल पहलेसे कहीं अधिक आनन्दकी सामग्री मिल रही है और जो विलास पहिले बड़े बड़े राजा और साहूकारोंको नहीं मिलता था वह आज सर्वसाधारणको मिलता है* ।"

ऐसी तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने लिखी हैं। आशा की जाती है कि नवयुग इन विशिष्ट मस्तिष्कवालोंका आदर करेगा। सर्वसाधारणका निरादर कौन करता है। उनके ही कारण सब कार्य निबाहा जाता है। पर नए नए मार्गोंको निकालनेवाले विशिष्ट मस्तिष्कवाले ही हैं। सारांश यह है कि दोनों ही समाजके लिए आवश्यक हैं।

८ नगर तथा ग्राम

सभ्यताकी बढ़तीसे नगरोंका भी महत्व बढ़ गया है। उनके प्रति लोगोंमें रुचि बढ़ती जा रही है और ग्रामके प्रति लोगोंकी श्रद्धा घटती जा रही है। पर अधिक संख्या ग्राममें ही रहती है और शरीरपोषणका एक मात्र सहारा भी वहींसे प्राप्त होता है। क्योंकि अन्न वहीं पैदा होता है। पर विद्याके केन्द्र नगर ही हैं। वहीं कारखाने हो सकते हैं, अनेक प्रकारके विलास्न सुन सकते हैं, छापाखाने तथा न्यायालय हो सकते हैं, कला तथा विज्ञानकी चर्चा की जा सकती है। और लोगोंका ध्यान भी आजकल विशेषकर इसी ओर जा रहा है। मनुष्यकी प्रधान आवश्यकता, नगरोंमें उत्पन्न नहीं हो सकती। पर यह देखकर शोक होता है कि बीमारियोंके लोगोंके जीव ज्यादा हो जाते हैं। परन्तु बीमारियोंको दूर करनेका प्रबन्ध नगरोंमें अधिक होनेके कारण वहाँके लोग कम [illegible] पाते हैं।

[illegible] युद्धने इतना तो अवश्य सिखलाया है कि [illegible] भूमिके उत्पन्न अन्नपर भरोसा करना पड़ता है। जिस समय इंग्लिस्तानका [illegible] युद्धकालके [illegible] था, उस समय उसके उत्तम व्यवसायोंसे काम नहीं चला। तब यह निश्चित हुआ कि [illegible] लिए उसे दूसरोंका ही मुँह ताकना पड़ता है। कारखाने इन वस्तुओंको नहीं बना सकते। और इसी कारणसे इंग्लिस्तानमें कृषिकी उन्नतिकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान आकर्षित हो रहा है। इसका यही अर्थ है कि [illegible] कृषि और व्यवसाय दोनोंपर बराबर ध्यान देना [illegible] दोनों [illegible] उन्नति [illegible] और परस्पर [illegible] हैं।

* [illegible], "[illegible]" ([illegible])

७ विशिष्ट तथा साधारण जन

इस समय समानताकी चर्चा इस प्रकार फैल रही है कि विशिष्ट जनोंका तो कोई ख्याल ही नहीं करता, और उनकी ओर जनसाधारणकी श्रद्धा भी कम हो रही है। यह एक शोककी बात है। यदि विचार किया जाय तो संसारके महत्वके कारण यही लोग हैं। यदि समानताकी तृष्णा इतनी अधिक हो जाय कि बड़े बड़े विद्वानोंकी वृद्धि हो ही न सके तो समझ लीजिए कि अब प्रलयके दिन आ ही गए हैं, क्योंकि इनके बिना संसार नीरस हो जायगा। संसारका इतिहास केवल बड़े लोगोंके कार्योंकी गाथा ही तो है। यदि इन्हीं लोगोंको निकाल दिया जाय तो बाकी रहेगा क्या? वीर पुरुषोंकी उपासना आवश्यक है। इससे आत्मबल बढ़ता है। मनुष्यको योग्यायोग्यका विचार होता है। संसारमें अच्छे अच्छे कार्योंकी मात्रा बढ़ती है।

गस्टाव ले बानने उन समाज-सुधारकों तथा प्रजातन्त्रवादियोंके बारेमें जो कि समानताके मदमें विशिष्टताको एकदम भूल जाते हैं, अनेक आक्षेपजनित बातें कही हैं। हम केवल चन्द बातोंका उल्लेख यहाँपर करेंगे।

"प्रजातन्त्र-प्रेमियोंकी अभिलाषा समानता स्थापित करनेकी है; पर प्रकृतिसे ही व्यक्तिगत असमानता निश्चित की गई है। इस परस्पर विरोधको मिटाना एक कठिन कार्य है। प्रजातन्त्र प्रेमियोंकी आकांक्षाका प्रकृति क्या उत्तर देती है। उनके प्रस्तावोंने प्राचीन समयसे लेकर आज तक संसारमें कितनी ही बार हलचल मचाई है पर स्वाभाविक असमानतासे उनका वश न चल सका। समानता तो प्रकृतिके शब्द-कोषमें है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बल तथा अन्य गुणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। इन असमानताओंको निर्मूल करनेकी कोई व्यवस्था भी नहीं है। इससे जबतक परम्परागत क्रममें किसी तरहका परिवर्तन न होगा, प्रजातन्त्रवादियोंके प्रस्ताव और विचार कभी कार्यान्वित नहीं हो सकते। वे पुस्तकोंमें रह जायँगे।

"केवल यही बात नहीं है कि प्रकृतिमें समानताका अभाव है बल्कि आदिकालसे ही यह प्रतीत है कि उन्नति केवल असमानतासे हो सकती है। समाजमें भी असमानताका प्राधान्य है। जो लोग बुद्धिका प्राधान्य मान कर छोटी जातियोंसे बुद्धिमानोंको चुनते हैं वह एक प्रकारसे विशिष्ट जाति तैयार करते हैं और सामयिक उन्नतिको सीमा कर रहे हैं। इसमें समानता कहाँ है?

"प्रकृतिके नियमोंकी गवाही आधुनिक उन्नति भी देती है। विज्ञान तथा व्यवसायमें बुद्धिमानोंकी अधिक आवश्यकता होने लगी है। इससे मानसिक असमानता तथा सामाजिक स्थितिमें पारस्परिक अन्तर बढ़ता जाता है।

ने किये [illegible] और [illegible] उन्हें नहीं [illegible]। ऐसी दशामें विचार [illegible] हो सकता है ? बहुतोंका यह कहना [illegible] है कि हमारी [illegible] है, [illegible] अधिक है। इन लोगोंको भी कुछ लाभ होता है सब विशिष्ट मस्तिष्कवालोंके कारण ही है। यदि उनकी सिद्धि उन्हीं तक रहे तो इनका भी पतन हो जायगा।

"आधुनिक समयमें विशिष्ट जनोंके मानके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। जहाँ दोनों प्रकारके लोग वर्तमान हैं (अर्थात् सभ्य तथा असभ्य) वहाँ सभ्यलोगोंकी प्रधानता केवल बुद्धिमत्ताके कारण होती है। समष्टिवादियोंका मूल आधार विशिष्ट जनोंके प्रति घृणा करना ही है। पर वे लोग भूल जाते हैं कि सभ्यताकी उन्नतिके कारण केवल वे ही विशिष्ट जन हैं। केवल इन्हींका प्रताप है कि आजकल पहलेसे कहीं अधिक आनन्दकी सामग्री मिल रही है और जो विलास पहिले बड़े बड़े राजा और साहूकारोंको नहीं मिलता था वह आज सर्वसाधारणको मिलता है"।"

इसी तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने लिखी हैं। आशा की जाती है कि नवयुग इन विशिष्ट मस्तिष्कवालोंका आदर करेगा। सर्वसाधारणका निरादर कौन करता है। उनके ही कारण सब कार्य निबाहा जाता है। पर नए नए मार्गोंको निकालनेवाले विशिष्ट मस्तिष्कवाले ही हैं। सारांश यह है कि दोनों ही समाजके लिए आवश्यक हैं।

८ नगर तथा ग्राम

सभ्यताकी बढ़तीमें नगरोंका भी महत्व बढ़ गया है। उनके प्रति लोगोंमें रुचि बढ़ती जा रही है और ग्रामके प्रति लोगोंकी श्रद्धा घटती जा रही है। पर अधिक संख्या ग्राममें ही रहती है और शरीरपोषणका एक मात्र सहारा भी वहींसे प्राप्त होता है। क्योंकि अन्न वहीं पैदा होता है। पर विद्याके केन्द्र नगर ही हैं। वहीं कारखाने हो सकते हैं, अनेक प्रकारके विद्यालय खुल सकते हैं, छापाखाने तथा न्यायालय हो सकते हैं, कला तथा विज्ञानकी चर्चा की जा सकती है। और लोगोंका ध्यान भी आजकल विशेषकर इसी ओर जा रहा है। मनुष्यकी प्रधान आवश्यकता, नगरोंमें उत्पन्न नहीं हो सकती। पर यह देखकर शोक होता है कि बीमारियोंसे गाँवके गाँव स्वाहा हो जाते हैं। परन्तु बीमारियोंको दूर करनेका प्रबन्ध नगरोंमें अधिक होनेके कारण यहाँके लोग कम कष्ट पाते हैं।

व्यतीत युद्धने इतना तो अवश्य सिखलाया है कि अन्तमें हमलोगोंको भूमिसे उत्पन्न अन्नपर भरोसा करना पड़ता है। जिस समय इंग्लिस्तानका खाद्य पदार्थ युद्धकालमें समाप्त हो चला था, उस समय उसके उन्नत व्यवसायोंसे काम नहीं चला। तब यह विदित हुआ कि भोजनके लिए उसे दूसरोंका ही मुँह ताकना पड़ता है। कारखाने इन वस्तुओंको नहीं बना सकते। और इसी ख्यालसे इंग्लिस्तानमें कृषिकी उन्नतिकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान आकर्षित हो रहा है। आशा यही की जाती है कि नवयुग कृषि और व्यवसाय दोनोंपर बराबर ध्यान देगा, जिससे दोनों [illegible] रहें और परस्पर विरोधका बीज न उत्पन्न होने पावे।

९. विज्ञान और कला

इस युगमें विज्ञानकी अवश्य विशेष उन्नति हुई है। परन्तु कलाकी दशा अवनत होती जा रही है। अब यदि देखा जाय तो सुन्दर भवन तथा कारीगरी बहुत कम देखनेमें आती है। कारीगरीके प्रेमी तो अब रह ही नहीं गए, और कारीगर, भूखों मारे मारे फिरते हैं। प्राचीन शिल्पकारोंके निर्मित भवनोंकी जगह अब भद्दे मकान दिखाई देने लगे हैं। सुन्दर पेड़ोंके स्थानपर अब कारखानोंके धूम्रांकम स्थापित हो गए हैं विज्ञानने कलाके स्थानपर एवं अधिकार जमा लिया है। परन्तु सौन्दर्यके बिना जीवनको नीरस समझना चाहिए। द्रव्य तो केवल मनुष्यकी अभिलाषाकी पूर्तिका एक साधन है। सारा झंझट धनको केवल एकत्रित करनेके लिए नहीं किया जा सकता। फिर भी सौन्दर्यका ध्यान छोड़ अब लोग केवल उपयोगितापर ध्यान रखते हैं। इसके विरुद्ध कितनी आवाजें भी उठ चुकी हैं। इसका भी भार नवयुगके ऊपर ही है कि वह कलाको उचित स्थान दे और उसे विज्ञान तथा उपयोगिताके ग्राससे बचावे।

१० उपसंहार

इसी तरहके अनेक प्रश्न हैं जिनको हल करना अत्यावश्यक है। नए युगके लोगोंपर बड़ा भारी भार है। यद्यपि समस्या विकट है पर है रुचिकर। हमलोगोंको इसको हल करनेमें उचित सहायता देनी चाहिए। आइये अब हमलोग नए युगका स्वागत करें जो अपने साथ भिन्न भिन्न प्रकारके प्रश्न उपस्थित करेगा, जिनपर भविष्यमें विचार होता रहेगा। इस समय तो विशेष ध्यान उन सब समस्याओंपर देना है जो राष्ट्र राष्ट्रके पृथक् होने और व्यवसाय प्रधान सभ्यताके कारण मनुष्य समाजके सम्मुख उपस्थित हुई हैं।

श्रीप्रकाश



भारत-सरकारकी आर्थिक नीति

ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नीतिने भारतकी कृषि कलाकौशल व्यापार तथा व्यवसायको भी धक्का पहुँचा कर विनाश किया नहीं है। भारतीय व्यवसायमें राज्यका हस्तक्षेप बहुत कालसे एकसा बना हुआ है। राज्यकी यह नीति है कि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश ही रहे। यही कारण है कि भारतीय व्यापारियों तथा व्यवसाइयोंको राज्यकी ओरसे वह सहायता नहीं मिलती है जो वे राज्यकी ओरसे पानेके अधिकारी हैं। लांकाशायरवालोंसे प्रेरित होकर अंगरेजोंने भारतके वस्त्र व्यवसायोंपर सन् १८९६ में ३½ प्रति सैकड़ाका कर लगा दिया। उचित तो यह था कि इन कारखानोंको राज्यके धन द्वारा तथा आयात करके द्वारा सहायता पहुँचाई जाती। परन्तु राज्यने उलटा उनकी उन्नतिको रोक दिया।

अब अंगरेजोंकी नीति यह है कि किसी प्रकार भारतमें संरक्षक कर लगाया जाय जिसके अनुसार साम्राज्यके अन्तर्गत प्रदेशोंमें अन्य प्रदेशोंकी अपेक्षा करकी दरमें कुछ रिआयत रहेगी। इसका परिणाम यह होगा कि भारतको विदेशीय कारखानोंसे जो सस्ता माल मिल रहा है वह भी न मिला करेगा। यदि यह कहें कि इससे भारतीयोंको नये नये कारखाने खोलनेका अवसर प्राप्त हो जायगा तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि यह कौन कह सकता है कि अंगरेज़ी राज्य भारतीय कारखानोंपर कर न लगा देगा और इंगलिस्तानका बना माल अधिकसे अधिक बिके इसके लिए प्रबल प्रयत्न न करेगा? सारांश यह है कि अंगरेजी राज्यका भारतीयोंके साधारणसे साधारण कार्यमें हस्तक्षेप है। यदि यह हस्तक्षेप भारतीयोंके हितमें होता तब तो खुशीकी बात थी। शोक तो यही है कि यह हस्तक्षेप हमारे स्वार्थमें नहीं है। इस दशामें क्या किया जाय? भारतीयोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अपनी जातिके आय व्ययपर भारतीयोंहीका प्रभुत्व हो। यही न्याययुक्त बात है। इसके बिना उन्नति करना बालूपर महल बनानेके सदृश है। अतएव प्रचलित नीति हमारे लिए बड़ी हानिकारी है। सामुद्रिक करका

मुख्य परिणाम भारतपर परोक्ष करका बढ़ जाना होगा। सापेक्षिक सामुद्रिक करकी नीतिके द्वारा जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, रूस, जापान आदिका माल भारतमें स्वतन्त्र तौरपर न आ सकेगा। उसपर बाधक या सापेक्षिक सामुद्रिक करके लगनेसे वह भारतवर्षमें महँगा बिकेगा। प्रश्न होता है कि विदेशीय मालको सामुद्रिक करके द्वारा किस हद तक भारतमें महँगा किया जायगा। क्या उसको भारतके व्यवसायोंको सामने रख कर या इंग्लिस्तानके व्यवसायोंको सामने रख कर महँगा किया जायगा? यदि इंग्लिस्तानके व्यवसायोंको सामने रखकर विदेशीय माल को महँगा किया जायगा (जो कि बहुत संभव है) तब तो एक प्रकारसे यह भारतीयोंपर अप्रत्यक्ष करका रूप धारण करेगा। दुःखकी बात तो यह है कि राज्य-कर भारतीय दें और उससे इंग्लिस्तानके व्यवसायकी उन्नति हो। यहाँपर एक प्रश्न यह भी है कि जिन चीजोंके भारतमें व्यवसाय हैं ही नहीं क्या उन चीजोंपर भी सापेक्षिक सामुद्रिक करका प्रयोग किया जायगा या उनको भारतमें खुले तौरपर आने दिया जायगा। यदि भारत सरकारने ईस्ट इंडिया कम्पनी वाली नीतिको पूर्ववत् जारी रक्खा तब तो उन चीजोंपर भी सापेक्षिक करका उपयोग किया जायगा। क्योंकि इसमें उन्हीं चीजोंके इंग्लिस्तानके कारखानोंको लाभ पहुँचेगा अर्थात् भारतीय राज्य कर देंगे और महँगा माल काममें लाएँगे। यह भी इसीलिए कि स्वदेशीय व्यापारियोंके प्रफुल्लित होनेके स्थान पर इंग्लिस्तानके व्यापार प्रफुल्लित हों। पिछले वर्षोंके स्वतन्त्र व्यापारसे भारतको बहुत ही अधिक धन सम्बन्धी नुकसान रहा। यदि भारतमें बहुत समय पूर्व ही इंग्लिस्तानके करोड़के कारखानोंके माल पर बाधक सामुद्रिक करका उपयोग किया जाता (क्योंकि एक इसी चीजके कारखाने भारतमें हैं) तो भारतकी आय व्यय सम्बन्धी समस्या बहुत कुछ हल हो जाती। अंगरेजी माल पर राज्यकर लगनेसे जो आय होती उससे मौलिक लगानकी मात्रा कम कर दी जाती और भारतमें दुर्भिक्ष रक्षाके लिए चिंता हो जाता।

भारतमें रेल, तार, नहर आदि पर राज्यका ही प्रभुत्व है। रेलोंका व्यवसाय

भारत-सरकारकी आर्थिक नीति

व्यापार व्यवसायकी उन्नतिमें सिक्केका बड़ा भारी भाग है। भारतमें चाँदीका सिक्का चलता है उसमें युद्धसे पूर्व चाँदी वास्तविक मूल्यसे कम थी। भारतीयोंके लिए टकसालें खुली नहीं हैं। सिक्कोंकी संख्या अधिक बन जानेसे भारतमें पदार्थोंकी कीमतें चढ़ गई हैं। भारतीयोंकी इच्छा है कि भारतमें सोनेका सिक्का चलना चाहिए और टकसालें सबके लिए खोल दी जायँ। भारतका खजाना इंगलिस्तानमें "स्वर्णकोष"के नामसे रक्खा हुआ है। भारतमें कोई राष्ट्रीय बंक नहीं है जिसमें कि इस खजानेको रक्खा जा सके। इसी प्रकार नोटोंका जारी करना भी सरकारके ही हाथमें है। भारतीयोंकी इच्छा है कि फ्रांसके सदृश भारतमें एक राष्ट्रीय बंक खोली जाय और उसीमें भारतके खजानेको रक्खा जाय, न कि उसको विलायतमें जमा कराया जाय।

आजकल प्रेसीडेन्सी बंक आपसमें ही मिलना चाहती हैं और साम्राज्यके एक बड़े बंकका रूप धारण करना चाहती हैं। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि क्या यह आपसमें मिल करके भी भारतीय बंकका पूरा पूरा काम कर सकेंगी? इन बंकोंको जो लाभ होगा क्या वह भी अंगरेज़ पूँजीवालोंकी जेबोंमें ही जायगा या भारतमें रहेगा। भारतकी व्यापारिक तथा व्यवसायिक आवश्यकताको यह बंक कहाँ तक पूरा कर सकेगी? कहीं यह बंक पूर्ववत् यूरोपीय लोगोंको ही केवल रुपयोंसे सहायता न दे? देखें क्या होता है। समय स्वयही सब बातोंको स्पष्ट कर देगा।

राज्यने भारतीयोंको हथियाररहित कर दिया है। अर्थात् जितना सैन्यबल प्रजापर विश्वास करनेसे इस कमीको दूर करनेके लिए सहजमें प्राप्त हो सकता है उतनेसे सरकारने अपनेको स्वयं वंचित कर रक्खा है। सरकारने स्थिरसेना रखना शुरू किया है। इससे राज्यका खर्चा बहुतही अधिक बढ़ गया है। भारतीयोंकी इच्छा है कि स्थिर सेना बहुतही कम कर दी जाय। लोगोंको हथियार दे दिये जायँ। प्रत्येक भारतीयको कुछ कालके लिए सैनिक बननेके लिए बाध्य किया जाय। और सेना विभागसे जो इस प्रकार बचत हो वह लोगोंकी शिक्षा तथा भारतीय व्यापार व्यवसायकी उन्नतिमें लगाई जाय। व्यापारीय नहरें बनाई जायँ जिससे लुप्त व्यापार पुनर्जीवित हो।

ऊपर लिखित दोषपूर्ण सरकारी नीतिका परिणाम भारतके लिए दिन पर दिन भयंकर हो रहा है। सरकारको राष्ट्रके खर्चोंको पूरा करना है परन्तु वह कहाँसे धन प्राप्त करे जिससे कि खर्च चल सके। इस प्रश्नको हल करनेके लिए सरकारने अपने संपूर्ण करोंका भार भूमिपर डाल दिया है। यहाँपर यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि भूमिपर राज्यका भार किस प्रकार डाला जाय? क्योंकि भूमि तो राज्यकी सम्पत्ति नहीं है जो वह उसको अपनी सम्पत्ति समझ कर उससे जितना धन चाहे निचोड़े? भारतमें चिरकालसे भौमिक लगान उत्पत्तिका १/६ भाग और युद्ध कालमें १/४ से १/२ भाग तक नियत था*। यह बड़ा ही कैसे जा सकता है?

---

* पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥ मनु० अध्या० ७ श्लो० १३०
कृषक राज्यको उत्पत्तिका १/१०, १/८, १/६ भाग दे दे। गौतम धर्मशास्त्र।१०।२४।
धर्म नियमोंके अनुसार राज्य करनेवाले राजाको १/६ भाग लेना चाहिए।
वाशिष्ठ धर्मसूत्र।१।४२।

मुख्य परिणाम भारतपर परोक्ष करका भार जाना होगा । सापेक्षिक सामुद्रिक करके [illegible] द्वारा जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, रूस, जापान आदिका माल भारतमें [illegible] सकेगा । उसपर बाधक या सापेक्षिक सामुद्रिक करके लगनेसे यह भारतमें [illegible] प्रश्न होता है कि विदेशीय मालको सामुद्रिक करके द्वारा किस हद तक महंगे [illegible] जायगा। क्या उसको भारतके व्यवसायोंको सामने रख कर या इंग्लिस्तानके [illegible] रख कर महंगा किया जायगा ? यदि इंग्लिस्तानके व्यवसायोंको सामने रखकर [illegible] को महंगा किया जायगा (जो कि बहुत सम्भव है) तब तो एक प्रकारसे यह [illegible] रक्षा करका रूप धारण करेगा। दुःखकी बात तो यह है कि राष्ट्र-कर भारतीय [illegible] इंग्लिस्तानके व्यवसायकी उन्नति हो। यहींपर एक प्रश्न यह भी है कि जिन चीजोंके [illegible] व्यवसाय हैं ही नहीं क्या उन चीजोंपर भी सापेक्षिक सामुद्रिक करका प्रयोग [illegible] उनको भारतमें सस्ते मोलपर आने दिया जायगा । यदि भारत सरकारने [illegible] वाली नीतिको पूर्णतः [illegible] तब तो उन चीजोंपर भी सापेक्षिक करका प्रयोग [illegible] जायगा । क्योंकि इससे उन्हीं चीजोंके इंग्लिस्तानके कारखानोंको लाभ पहुँचेगा [illegible]

अंगरेजी राज्यके पूर्व दुर्भिक्षोंकी संख्या

शताब्दी	दुर्भिक्ष
११वीं	२
१२वीं	१
१३वीं	३
१४वीं	२
१५वीं	३
१६वीं	३
१७वीं	३
१८वीं (संवत् १८०२ तक)	४

अंगरेजी राज्यमें दुर्भिक्षोंकी संख्या

शताब्दी	दुर्भिक्ष
१८०२ से १८५७ तक	४
१९वीं तथा २०वीं का प्रथम भाग	३१

केवल ४७ वर्षोंमें अर्थात् सं० १९११ से लेकर १९५८ तक दुर्भिक्षके कारण २ : ८८ लाखसे अधिक मनुष्य कालके कवल हुए।

भूमिके सदृश राज्यने भारतके जंगलों तथा खानोंकी ओर भी दृष्टिपात किया। लिए भारतकी भूमि जंगल तथा खानोंपर राज्यने अपना प्रभुत्व प्रकट किया है। भार- सियों राज्यका यह हस्तक्षेप पसन्द नहीं है। हम लोगोंकी यह इच्छा है कि या तो राज्य त्तदायी हो जाय और इस प्रकार भारतकी जातीय सम्पत्तिपर अपना प्रभुत्व प्रकट करे या र, जंगल, खान आदिपर अपना प्रभुत्व छोड़ दे। जो राज्य जातिका प्रतिनिधि नहीं यह तीय सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति बना ही कैसे सकता है? इन सब बातोंपर विचार करनेके न्तर यही परिणाम निकलता है कि भारतीयोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। समें भारतका हित है, क्योंकि इसके बिना राष्ट्रीय आयव्ययका प्रबन्ध भारतके हितके लिए हीं होसकता।

भारतसरकारने एक ओर मादक द्रव्योंका क्रय विक्रय आमदनीके लिए करना शुरू क्या है और इसीलिए उसपर अपना एकाधिकार स्थापित किया है और दूसरी ओर यूरोपीय लोगोंको अधिक अधिक तनखाहें देकर भारतके धनका दुरुपयोग किया है।

अस्तु, भारतीय सरकार भौमिक लगानको दिनपर दिन बढ़ाती जा रही है। इसका प्रभाव बहुतही बुरा पड़ रहा है। सामुद्रिक करका प्रयोग भी भारतीय व्यवसायके लिए हितकर नहीं है। इससे देशी व्यवसायको बहुत धक्का पहुँचा है।- इस नीतिसे केवल विदेशियोंको

क्योंकि ऊपर लिखित मतलबका क्रम भारतमें कभी भी बदला न गया। मेगास्थनीज़, ह्यूनसंग आदि विदेशी यात्रियोंकी सम्मति भी इसी प्रकार है। फाहियानकी सम्मतिमें तो भौमिक लगान या कृषिजन्य पदार्थोंकी उत्पत्तिका कुछ भाग भी उन्हींको देना पड़ता था जो कि राजाकी धरतीको जोतते थे। उसने लिखा है कि जो लोग राज्यकी भूमि जोतते हैं उन्हींको भूमिके उपजका कुछ अंश देना पड़ता है। यही सम्मति ह्यूनसंगकी है। उसके भी यही शब्द हैं कि "जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका छठा भाग करकी भाँति देना पड़ता है"। भारतमें भूमि पर राजाका स्वत्व कभी भी नहीं माना गया है। बंगालमें जमींदारोंके जो पुराने हक हैं वे भी इस बातके साक्षी हैं। महर्षि जैमिनिने मीमांसामें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—"न भूमिः स्यात् सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात्" अर्थात् राजाका भूमिपर स्वत्व नहीं है क्योंकि वह तो प्रजाकी मिलकियत है।

मुसलमानी कालमें भारतीयोंका भूमिपरसे कुछ स्वत्व कम हुआ। मुसलमान राजाओंने भारतीय भूमिपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। परन्तु उन्होंने भी इस स्वत्वका दुरुपयोग नहीं किया। उन्होंने भी भौमिक करको अति सीमा तक नहीं बढ़ाया। जामी अरा सागीरमें लिखा है कि विजित भूमि—यदि उसमें अनाज उत्पन्न होगा तो उसपर राज्यकर लिया जायगा। सम्राट् अकबरने अधिकसे अधिक कर उपजका ⅓ भाग नियत किया था, परन्तु वास्तवमें जो कर उसको मिलता था वह उपजका ⅓ भागसे कुछही अधिक था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य जब भारतपर हुआ, उसी समयसे बंगालके लगानके सहारे भारतको जीतना शुरू किया। युद्धके खर्चोंकी वृद्धिके साथ साथ उसने भौमिक लगानको बढ़ाना शुरू किया। जब बंगालके जमींदारोंने इस बातका विरोध किया तो कम्पनीने उनकी जमीनोंको नीलाम कराना आरम्भ कर दिया। इससे बंगालका बहुतसा भाग उजड़ गया। काश्तकार लोग इधर उधर भाग गए। इससे जब लगानको और अधिक बढ़ानेकी आशा कम्पनीको न रही तो उसने बंगालमें स्थिर लगान नीतिका अवलम्बन किया। बंगालके उपरान्त ही धीरे धीरे अन्य भारतीय प्रान्तोंको भी निचोड़ा गया। अंगरेज़ी राज्यने अपने आपको ही सारीकी सारी भारतीय भूमिका मालिक बना लिया और भौमिक करको लगानका नाम देकर मनमानी तौरसे उसे बढ़ाया। भारतका व्यापार व्यवसाय नष्ट हो चुका था, युद्धों द्वारा भारतके अन्य प्रान्तोंको विजय करने और युद्धोंका व्यय किसी भाँति पूरा करनेके लिए भूमि कर बढ़ाये बिना काम न चल सकता था। दूसरी तरकीब ऋण लेनेकी थी। अंगरेज़ी राज्य दोनोंही तरीकोंको काममें लाया। यही कारण है कि भौमिक लगान तथा तज्जन्य दुर्भिक्षकी बढतीके साथ ही साथ भारतपर जातीय ऋण बढ़ा है। सम्वत् १८४६ में भारतपर जातीय ऋण १०६,०००,००० रुपये था। यह धीरे धीरे बढ़ता हुआ सं० १९७० में ४ अरब, ५२ करोड़ ६० लाखसे अधिक हो गया।

इसी प्रकार भौमिक लगान भी बढ़ते बढ़ते २२३५८२०० रुपये तक पहुँच गया। आश्चर्यकी बात है कि भौमिक लगान तथा जातीय ऋणकी वृद्धिके साथ ही साथ दुर्भिक्षोंकी संख्या भी बढ़ती गई। देखिए—

अंगरेज़ी राज्यके पूर्व दुर्भिक्षोंकी संख्या

शताब्दी	दुर्भिक्ष
११वीं	२
१२वीं	१
१४वीं	३
१५वीं	२
१६वीं	३
१७वीं	३
१८वीं (संवत् १८०२ तक)	४

अंगरेज़ी राज्यमें दुर्भिक्षोंकी संख्या

शताब्दी	दुर्भिक्ष
१८०२ से १८५७ तक	४
१९वीं तथा २०वीं का प्रथम भाग	३१

केवल ४७ वर्षोंमें अर्थात् सं० १९११ से लेकर १९५८ तक दुर्भिक्षके कारण २ करोड़ ८८ लाखसे अधिक मनुष्य कालके कवल हुए।

भूमिके सदृश राज्यने भारतके जंगलों तथा खानोंकी ओर भी दृष्टिपात किया। इसकेलिए भारतकी भूमि जंगल तथा खानोंपर राज्यने अपना प्रभुत्व प्रकट किया है। भारतियोंको राज्यका यह हस्तक्षेप पसन्द नहीं है। हम लोगोंकी यह इच्छा है कि या तो राज्य उत्तरदायी हो जाय और इस प्रकार भारतकी जातीय सम्पत्तिपर अपना प्रभुत्व प्रकट करे या भूमि, जंगल, खान आदिपर अपना प्रभुत्व छोड़ दे। जो राज्य जातिका प्रतिनिधि नहीं वह जातीय सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति बना ही कैसे सकता है! इन सब बातोंपर विचार करनेके अनन्तर यही परिणाम निकलता है कि भारतीयोंको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। इसीमें भारतका हित है, क्योंकि इसके बिना राष्ट्रीय आयव्ययका प्रबन्ध भारतके हितके लिए नहीं होसकता।

भारतसरकारने एक ओर मादक द्रव्योंका क्रय विक्रय आमदनीके लिए करना शुरू किया है और इसीलिए उसपर अपना एकाधिकार स्थापित किया है और दूसरी ओर यूरोपीय लोगोंको अधिक अधिक तनख्वाहें देकर भारतके धनका दुरुपयोग किया है।

अस्तु, भारतीय सरकार भौमिक लगानको दिनपर दिन बढ़ाती जा रही है। इसका प्रभाव बहुतही बुरा पड़ रहा है। सामुद्रिक करका प्रयोग भी भारतीय व्यवसायके लिए हितकर नहीं है। इससे देशी शिल्पकलाको बहुत धक्का पहुँचा है। इस नीतिसे केवल विदेशियोंको

विशेष कर अँगरेज़ोंको बहुत लाभ हुआ है। सेना विभागका व्यय भी बहुत बढ़ा चढ़ा है। यूरोपियों-को अधिक वेतन दिया जाता है यदि भारतीयोंको उत्तरदायी पदपर नियुक्त किया जाय तो इसमें बहुत कुछ कमी हो सकती है। मादक द्रव्योंकी बिक्री केवल आयके ख़यालसे की जाती है। इसमें प्रजाके लाभका ख़्याल नहीं किया जाता है। रेलनिर्माणकी विधि अहितकर है। इस पर नहरोंकी अपेक्षा अधिक धनव्यय किया जाता है। आयव्यय पर भारतीयोंका कुछ भी अधिकार नहीं है। इससे जातीय ऋण दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। राज्य देशी व्यवसायों-को धनसे सहायता नहीं करता। इससे हमलोगोंके व्यवसायकी उन्नति जैसी चाहिए वैसी नहीं हो रही है। यदि भारतसरकार उपरोक्त नीतिको त्याग भारतीय प्रजाके हितसाधनके लिए अपनी नीति परिवर्तन करे तभी इस देशका कल्याण हो सकता है।

प्राणनाथ



प्रजातन्त्र शासनका आधार

(२)



प्रतिनिधियोंको चुननेके अधिकारको ध्यानमें रखते हुए, यह दिखलाया जा चुका है कि भिन्न भिन्न आधुनिक राष्ट्रोंमें क्या भेद है। अब प्रजातन्त्र शासनके दूसरे लक्षणको लेना चाहिए, अर्थात् यह देखना चाहिए कि इन लोगोंका वास्तविक शासनमें कितना भाग है। वास्तविक शासनमें भाग लेनेकी इच्छा उत्पन्न होनेके बहुत पहले लोग इस बातके लिए उत्सुक थे कि राज्यका हाथ जीवनके सब विभागोंमें न लगने पावे, जहां तक हो सके, शासनाधिकारका विस्तार कम ही रहे। इसकी चेष्टा करते करते अब सीधे भाग लेनेकी लालसा उत्पन्न हो गई है। सच पूछा जाय तो इस अधिकारका वास्तविक लाभ तो तभी है, जब साधारण शासकोंपर प्रजामतका गहरा प्रभाव पड़ सके। प्राचीन कालमें प्रजाके राजसभाका भाव लोगोंको अज्ञात न था, पर व्यवहारमें इसका प्रयोग तभी होता था जब सब नागरिक किसी एक सभामें एकत्रित होकर शासन-नियम बनाते थे। यूनानकी प्राचीन सभाओंमें, इसी सिद्धान्तके अनुसार सब नागरिक उपस्थित होते थे, सबको बोलनेका अधिकार था, और बहुमतसे किसी बातका निर्णय होता था। रोममें, जो सदा प्राचीन बातोंके छोड़नेका विरोधी रहा, यह बात न थी। वहाँकी प्रजा-सभा कई श्रेणियोंमें बटी थी, और प्रत्येक श्रेणीका सञ्चालन मजिस्ट्रेटोंके हाथमें था।

जब राष्ट्रकी जनसंख्या और क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाते हैं, तो सब नागरिकोंको वास्तविक शासनमें सीधे सीधे भाग लेनेका अवसर प्राप्त नहीं हो सकता। इङ्गलिस्तानके सभी नागरिक किसी सभामें बैठकर शासन करें यह सम्भव नहीं है। इसके सिवा शासक समितियोंके सदस्योंकी संख्या बहुत अधिक बढ़ा देनेसे भी काम ठीक ठीक नहीं चलता। सब मनुष्य एकमतके नहीं होते, इसलिए प्रत्येक बातपर वाद विवाद छिड़ जाता है, और काम कुछ भी नहीं हो पाता। 'वादे वादे जायते तत्वबोध' का सिद्धान्त अवश्य ठीक है, पर इसकी भी तो कोई सीमा है। इसलिए, जैसा प्रारम्भमें दिखलाया जा चुका है, यह प्रणाली निकली है कि कुछ प्रतिनिधि चुन लिए जायँ जिनके हाथ की नीतिको स्थिर करना और नियमोंका बनाना रहे और उनके सञ्चालनके लिए कर्मचारी या पदाधिकारी अलग चुने जाँय। इस तरह प्रतिनिधि और चुनाव द्वारा, शासनके भिन्न भिन्न विभागोंमें, जनताके मतका प्रभाव पड़ता है। स्थानिक स्वराज्यके भावसे, जिसके अनुसार किसी विशेष स्थानके शासनाधिकारका बहुत कुछ अंश, वहींके लोगोंके हाथ छोड़ दिया जाता है, यह प्रभाव और भी दृढ़ हो जाता है।

परन्तु यहीं पर यह प्रश्न हो सकता है कि जब प्रतिनिधि चुन लिया जाता है, [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

तीसरा ढंग यह है, कि किसी विशेष प्रश्नपर राय माँगी जाती है, बहुत करके उस राय पर चलनेका प्रयत्न किया जाता है, पर साथही साथ उसको माननेके लिए व्यवस्थापक सभा बाधित नहीं है।

अमरीका और स्विट्ज़र्लैण्डमें पहिले दो उपायोंका प्रयोग प्रायः हुआ करता है। स्विट्ज़र्लैण्डके राजनैतिक संगठन सम्बन्धी परिवर्तनोंके लिए ३० सहस्र नागरिकोंका समर्थन आवश्यक है। अमरीकामें भी संगठन सम्बन्धी परिवर्तनोंके विषयमें अधिकांश प्रजाके मतको जानना आवश्यक है। वहाँके कई राज्योंमें बहुतसे साधारण नियम भी पास होनेके पहिले प्रजाके सामने पेश किये जाते हैं। स्थानिक मामलोंमें, तो ऊपर कहे हुए पहिले उपायका भी प्रयोग होता है। अब अन्तमें यह देखना चाहिए कि शासनमें प्रजाको सीधे सीधे हस्तक्षेप करनेका अधिकार देनेमें क्या लाभ या क्या हानि है।

इससे एक लाभ तो यह होता है कि उदासीन [illegible] प्रजा अपने मतके बलसे, निज कर्तव्यमें रत कर सकती है, इसके सिवा [illegible] सकती है। दूसरा इसका सबसे बड़ा भारी गुण यह है कि इससे [illegible] रहते हैं, प्रजाको अपने दायित्वभारका ज्ञान रहता है, और देशके शासनमें [illegible] उत्पन्न होती है। तीसरा लाभ स्थानिक शासनसे सम्बन्ध रखता है। प्रजामतसे कभी कभी स्थानिक भेद दूर होकर साधारण नियम बन जाते हैं, जो सब जगह लागू होते हैं।

साथ ही साथ ऐसे अधिकार देनेसे बहुतसी हानियोंकी भी सम्भावना है। वोट देनेवालोंको प्रतिनिधियोंके चुनावमें प्रायः रुचि नहीं होती। ऐसा कई कारणोंसे हो सकता है। चुनावोंकी अधिकतासे कभी कभी उनमें अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इसके सिवा बहुतसे ऐसे प्रश्नोंपर उनकी राय माँगी जाती है, जिनसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है, तो उनमें उदासीनताका होना स्वाभाविक ही है। फिर सब बातोंका निर्णय सीधे प्रजाके हाथमें दे देनेसे व्यवस्थापक संस्थाओंको अपनी जिम्मेदारीका ध्यान नहीं रहता है। कभी कभी अनावश्यक नियम इस आशासे पास कर दिये जाते हैं, कि वे [illegible] प्रजामतसे रद्द कर दिये जायेंगे। ऐसी दशामें जो इन विषयोंमें पारंगत हैं, उनका अपने काममें मन नहीं लगता, वे देखते हैं कि उनके सारे परिश्रमका फल [illegible] 'हाँ' या 'नहीं' पर निर्भर है। आर्थिक और सामाजिक नियम प्रायः ऐसे जटिल होते हैं कि [illegible] पड़ता है, उनके विषयमें केवल

अधिकार नहीं है। यह बात सत्य है कि सब लोग रोगोंकी चिकित्सा नहीं कर सकते, चिकित्सा करनेवाले थोड़ेमे चतुर वैद्य ही होते है, पर साथही साथ यह भी सत्य है कि बिना रोगियोंके और कोई यह बतला भी नहीं सकता कि उस चिकित्सासे उनको वास्तविक लाभ हुआ या नहीं। इसलिए यदि नियमोंके निर्माणका भार प्रतिनिधियोंपर है, तो वे उपयोगी हैं या अनुपयोगी इसको बतलानेका भार प्रजापर है।

राज्यके तीन मुख्य अंग माने गये हैं। एक तो पदाधिकारी जिनके हाथमें वास्तविक शासन रहता है, दूसरे व्यवस्थापक सभाएँ, जिनके द्वारा नियम बनते हैं, और तीसरे न्यायाधीश जो न्याय चुकाते हैं, पर वोट देनेके अधिकारियोंको राज्यका चौथा अंग कहना चाहिए। यदि इसको राज्यका प्राण कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी, क्योंकि परदेके आड़में रहते हुए तीनों अगोंका सचालन इन्हींके हाथ है। वास्तवमें वोट देनेका अधिकारी-वर्ग, प्रजातंत्र शासनका आधार है। बड़े बड़े पदाधिकारी, प्रतिनिधि तथा न्यायाधीशोंको चुनकर प्रजा वास्तविक शासनमें अपना प्रभाव दिखलाती है, नियमोंपर अपनी सम्मति प्रकट करके राष्ट्रके व्यवस्थापनमें भाग लेती है, और असेसरों या पचोंकी प्रथासे न्यायानुशासन बहुत कुछ इन्हींके हाथ रहता है। राजनैतिक जागृतिके साथ साथ इसका प्रभाव बढ़ता ही जाता है, और आज कल सभी जगह इसके लिए आन्दोलन हो रहा है।

गंगाशंकर मिश्र



राजसत्ता और प्रजा



हम अपने शासकोंकी आज्ञाका पालन करते हैं तो भी कभी कभी यह विचार उठता है कि हम शासकोंकी आज्ञाका पालन किस कारणसे करते हैं और यह कहाँ तक उचित है। बहुत प्राचीन समयसे इस विषयमें दो भिन्न मत प्रसिद्ध हैं। बेन्थम, हॉब्स, मैकियावली जैसे कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि मनुष्य स्वार्थी है और भयके कारण शासकोंका आज्ञानुवर्ती बना रहता है। यही कारण है कि कोई भी राजा, चाहे कितना ही उदार व धर्मात्मा क्यों न हो, बिना सेना व पुलिसके शासन नहीं कर सकता। रूसो, ग्रीन, बोसांके आदि दूसरे विद्वानोंका मत है कि मनुष्य सब काम सोच विचार कर करता है और अपनी व समाजकी भलाईके लिए अनिवार्य समझकर वह शासकोंकी आज्ञाका पालन करता है। इसलिए आज्ञापालनका कारण मनुष्यका विवेक या बुद्धि है। दोनों मतोंमें सत्यका अंश अवश्य है परन्तु राजसत्ताकी आज्ञापालनके समस्त कारणोंका पूर्ण विवेचन इनमें नहीं किया गया है।

साधारणतः आज्ञापालनके कारण हैं—आलस्य, भक्ति, सामाजिक भाव, भय और विवेक। यदि हम किसी बच्चेके जीवनका या किसी प्राचीन अर्ध-सभ्य जातिके जीवनका सिंहावलोकन करें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। बच्चे प्रायः सदा वही काम करते हैं जो दूसरोंको करते हुए देखते हैं। इसमें भय या विवेक बुद्धिका विशेष प्रभाव नहीं होता। समाजके जीवनके शैशव-कालमें भी विवेकका प्रभाव अधिक नहीं होता। इस प्रकार मनुष्यको समाजके धर्म और रीतिके अनुसार चलनेका अभ्यास पड़ जाता है। इन बातोंके विरुद्ध चलना समाज-बन्धनकी अवज्ञा करना माना जाता है।

यह अभ्यास इतना दृढ़ हो जाता है कि हम बुद्धि या भयका अधिक प्रभाव नहीं देखते। यही दशा हमारे यहाँके उन हजारों मनुष्योंकी है जो जाति धर्मकी शृङ्खलाको ही धर्म-पुण्योंका हार माने हुए हैं। इनकी आज्ञापालनका कारण न तो भय ही है न बुद्धि ही। यद्यपि आजकल सामाजिक बन्धनोंसे मनुष्य बहुत कुछ मुक्त हो गया है और व्यक्तिगत स्वाधीनता प्राप्त करता जाता है, फिर भी अनेक बातें अभ्यास सिद्ध होनेसे उनको वह बराबर मानता चला जाता है। उनके माननेका कारण न तो भय है और न विवेक। सामाजिक अथवा राजनैतिक आज्ञापालनका सबसे प्रबल कारण है आलस्य। आलस्यके कारण जो दूसरोंने कहा वही कर देना, जो दूसरोंने किया वही कर देना, मनुष्यका स्वभाव हो जाता है। प्रजावादी देशोंमें भी कितने थोड़े मनुष्य ऐसे हैं जो अपना स्वतन्त्र मत रखते हैं और स्वतन्त्ररूपसे प्रत्येक बातपर विचार करते हैं। यदि स्वतन्त्र विचार अधिक होता तो समाचार पत्रोंका इतना भयंकर प्रभाव न हो सकता।

भक्ति या श्रद्धाके कारण, अपनेसे बड़े मनुष्योंके विचारोंको, बिना समझे बूझे ग्रहण कर लेना भी साधारण मनुष्यका स्वभाव है। जो लॉयड जॉर्जने कहा वही प्रमाण है। जहाँ अपनेको समझ ही न हो वहाँ स्वयं विचार कौन करे—जो किसी बड़े कहानेवाले मनुष्यने कहा वही ठीक हो जाता है। सामाजिक भाव या उसके अनुकूल चलनेका मनुष्यमें एक विचित्र भाव है।

जो दूसरे कहें वैसा कहनेमें, जो सब करें वैसा ही करनेमें विचित्र सन्तोष होता है। वैसा ही मूर्खताका काम क्यों न हो सबके साथ करनेमें अच्छा ही लगता है। "हम अकेले नहीं हैं—सभी तो ऐसा करते हैं" मनमें ऐसा भाव आते ही मनुष्य अपनी व्यक्तिगत विचार स्वाधीनताको खो बैठता है।

मूर्ख और असभ्य मनुष्योंमें आज्ञापालनका कारण विशेषकर भय होता है। इस समाजमें भी कितने मनुष्य ऐसे हैं जो अपने स्वतन्त्र विचार और स्वाधीन कर्तव्योंकी रक्षाके लिए दुःख या कष्ट सहनेको तैयार हैं।

शासका इतना अधिक प्रभाव होता है कि मनुष्यका जीवन सुरचित चित्र न बनकर उस पटकी सदृश बन जाता है जिसपर चित्रकारकी अनेक रंगोंमें रंगी लेखनी पोछी गई हो। ऐसी दशामें यह कहना भी असत्य न होगा कि शासकोंकी आज्ञाका पालन संसारमें सभी बुद्धिसे प्रेरित होकर और आवश्यक समझ कर नहीं करते। प्रख्यात विद्वान रीची मनुष्यके कार्योंपर बुद्धिका इतना प्रभाव मानते हैं कि उनकी समझमें रूसका जार भी प्रजाकी इच्छापर उतना ही निर्भर है जितना इंग्लिस्तानका प्रधान मन्त्री। इसमें यही प्रतीत होता है कि दार्शनिक लोग भी अपने विचारमें कभी भयकर भूल कर सकते हैं।

इस सम्बन्धमें ग्रीन, रीची, बोसॉक्वेट आदि विद्वानोंका कथन है कि सभी जातियोंमें चाहे वे सभ्य हों, अर्ध-सभ्य हों अथवा असभ्य हों यह पाया जायगा कि शासक एक सीमाके बाहर मनमानी नहीं कर सकते। जीवनकी प्रधान बातोंमें जातिके महत्त्वपूर्ण अभ्यासोंमें शासक अपनी मनमानी नहीं कर सकते। इससे सिद्ध होता है कि शासक प्रधान बातोंमें प्रजाकी इच्छापर निर्भर हैं।

रीचीके एक समालोचकने ठीक ही कहा है कि यदि जार जनताकी इच्छापर निर्भर है क्योंकि उनकी संख्या अधिक है और अन्तमें कुछ बातोंपर उनकी इच्छाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता तो यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि ४ पुलिसवाले भी उन १०० कैदियोंकी इच्छापर निर्भर हैं जिनपर वे शासन करते हैं। क्या समाज संस्थाओं द्वारा स्थापित आज्ञापालनके अभ्यासोंका और राजनैतिक व सैनिक संगठनका कुछ भी प्रभाव नहीं होता? उपरोक्त छः बातोंमेंसे प्रत्येकका प्रभाव किसी देशकी प्रजाकी शासकोंकी ओर आज्ञा पालितापर क्या होता है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। भिन्न भिन्न देश, समय व जाति सबकी अवस्थाओंपर यह निर्भर रहेगा। जिस प्रकार व्यक्तिसे व्यक्ति भिन्न है उसी प्रकार एक जातिसे दूसरी जातिमें भिन्नता पाई जायगी। सभ्य जातियोंमें बुद्धिका प्रभाव अधिक होगा और असभ्योंमें भयका। पर सभीमें आलस्य, भक्ति, और सामाजिक भावसे उत्पन्न अभ्यासोंका बहुत प्रभाव देखा जाता है। बहुतसे राजनीतिज्ञोंका मत है कि सबसे उन्नत प्रजातन्त्र प्रजा-वादोंमें भी हम जनताको इतना उदासीन और अपने दैनिक कामोंमें व्यस्त पाते हैं कि स्वतन्त्र बुद्धिका उनके कार्यों और अभ्यासोंपर बहुत प्रभाव नहीं पाया जाता।

इतने विचारके बाद यह प्रश्न करना उचित है कि हम शासकोंकी आज्ञाका पालन क्यों और कहाँ तक करें।

यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है और इस पर मत विभिन्नता भी बहुत है। प्राचीन समयसे ही यूनानी और रोमके दार्शनिक और विद्वानोंने इस प्रश्नपर विचार किए हैं और अपने अपने मत भिन्न भिन्न रूपसे दिया है। इन मतोंमेंसे केवल दो पर विचार करना इस लेखके लिए यथेष्ट होगा।

अधिकार छीननेका हक नहीं है। इससे समाज और राज्य किसीको किसी काममें बाध्य नहीं कर सकते।

इन लेखकोंकी समझमें मनुष्यके सुखोंका सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत जीवन व गृहस्थ आदिसे है। समाज और राज्य एक प्रकारकी बीमा कम्पनियाँ हैं जहाँ हम कुछ स्वत्वसे प्राप्त विशेष सुखोंके लिए अपने कुछ स्वाभाविक अधिकारों और अपनी कुछ स्वाभाविक स्वाधीनताको छोड़ देते हैं। जंगलमें मनुष्य स्वतन्त्र रहता है, पर अकेला होनेसे निर्बल भी रहता है। समाजमें अनेक कार्योंमें सबल हो जाता है पर अपनी कुछ स्वाधीनता भी खो देता है। इस दृष्टिसे समाजके प्रति कर्तव्य और समाजसे प्राप्त अधिकारोंमें लेनदेनका, अदले बदलेका या दूकानदारीका सा सम्बन्ध है। हमको ध्यान रखना चाहिए कि जितना माल मिले उससे अधिक दाम न दिए जायँ। ऐसी अवस्थामें समाजकी ओर हमारे कर्तव्य और आज्ञापालनका आधार वे शर्तें हैं जिनपर समाज बना हो और जिनको हमने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार किया हो।

इसको अंगरेजीमें कॉन्ट्रेक्ट अथवा मुआहदा कहते हैं। इसका ऐतिहासिक रूप भिन्न भिन्न समयमें बदलता रहा है। पर अधिकांश लेखकोंके विचारोंमें उसके भाव पाए जायेंगे।

सबसे प्रथम इन विचारोंका आभास हम प्राचीन यूनानके प्रोटैगोरस गौरजियस जैसे दार्शनिकोंमें पाते हैं। ये लोग समाज और राज्यको सजीव संस्था और व्यक्तिको उसका अन्तरंग सजीव अंग माननेको तैयार नहीं थे। उनके लिए सदाचार एक साधारण व्यवहार मात्र है और समाज केवल स्वार्थसिद्धिका एक यंत्र। यूनानके ह्रासके समय ये विचार उग्र हो उठे थे। सिनिक, सैरेनिक, और स्टोइक इत्यादि दार्शनिकोंके हाथमें ये विचार और भी आगे बढ़ गए। इपिक्यूरियन लोग भी इन्हीं विचारोंके थे। इन सबकी समझमें मनुष्यको अपने भौतिक या स्वार्थी सब सुखोंकी खोज करनी चाहिए और किसी भी अवस्थामें यदि वे प्राप्त हो जाएँ, तो उनको ठीक समझना चाहिए।

सदियों तक इस युक्तिको ऐतिहासिक रूप दिया गया। यह सिद्ध करना कठिन न होगा कि समाज और राज्यकी उत्पत्ति इस प्रकारकी सभामें वोट देनेसे नहीं हुई है। समाज व राज्यका ऐतिहासिक जन्म इतना सरल नहीं है।

अठारवीं शताब्दीके बाद लोग इस प्रश्नको ऐतिहासिक दृष्टिसे देखने लगे। और समाजकी उत्पत्तिके ऐतिहासिक विवरणोंको खोजने लगे। सर हेनरी मेन प्रभृति विद्वानोंने दिखाया है। यथार्थमें समाज व राज्यकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है। प्राचीन मनुष्यमें इतनी बुद्धि या स्वतन्त्र विचार नहीं थे कि वह समाज या राज्यको उसी प्रकार स्थापित कर सके जिस प्रकार हम अपनी सभाओंको बनाते हैं। इतिहाससे मालूम होता है कि आदिकालमें मनुष्य आज्ञा-पालनमें विवेक या बुद्धिसे विशेष काम नहीं लेता था, उसका सारा जीवन सामाजिक प्रथाओं और रीति रिवाजोंमें जकड़ा रहता था, अतएव उसके लिए यह प्रश्न ही स्पष्टरूपसे उपस्थित नहीं होता था कि राजाज्ञाका पालन कहाँ तक उचित होता है।

यथार्थ बात यह है कि सबका हृदय इस बातका साक्षी है कि शासकोंको निरङ्कुशता-की सीमा होनी चाहिए। किसी भी समय मनुष्य अपनेको बरायक गुलाम समझना नहीं चाहता। यह सीमा क्यों होनी चाहिए या कहाँ तक होनी चाहिए यह स्थिर करना कठिन काम है। समाज व राज्यकी उत्पत्तिका प्रश्न और भी अधिक कठिन था। इन प्रश्नोंको ठीक तरह हल करना इन लेखकोंके लिए असम्भव था। इसलिए उन्होंने शासकोंकी निरंकुशता और स्वेच्छा-चरिताके विरुद्ध यह युक्ति खोज निकाली कि राजा और प्रजामें किसी समय एक मुहाहदा हुआ था जिसके अनुसार परस्पर स्वत्व और अधिकार निश्चय हो गये थे। और इससे बहुत कुछ लाभ भी हुआ। पर ये विचार हमारे लिए काफी नहीं हैं।

किन शर्तोंपर समाज व राज्य स्थापित किये गये उनको कोई नहीं जानता था। प्रत्येक लेखक बुद्धिके अनुकूल इन शर्तोंको गढ़ देता था। इससे भिन्न भिन्न लेखकोंमें हम बहुत मतविरोध पाते हैं। यदि हॉब्स जैसे कुछ लेखकोंका कहना था कि लोग जंगली दशामें आपसी मारकाटसे इतने भयभीत हो गये थे कि उन्होंने शर्त कर ली कि शासक जो कुछ कहेंगे हम आँख बन्द कर करेंगे क्योंकि निरंकुश शासन भी अराजकतासे अच्छा है; तो रूसो, लाक जैसे कुछ लेखकोंका कहना था कि प्रजाने सब प्रधान अधिकार अपने हाथमें रखे थे और शासकोंको केवल काम कुछ निश्चित रूपसे करनेको दिया था। वे उनको इच्छानुसार जब चाहें हटा सकते हैं।

आधुनिक समयमें ऐतिहासिक रूपको कोई सच नहीं मानता पर हर्बर्ट स्पेन्सर जैसे कुछ विद्वानोंका कहना है कि परस्पर अधिकार निश्चयकी कल्पना ऐतिहासिक सच नहीं है। यदि

हमको शासकों और शासितोंके अधिकारोंको निश्चित करना हो तो इस प्रकार विचार कर चाहिए। मान लो हम लोग सब मिलकर एक सभा बनावें और उसमें समाज व राज्यकी स्थाप करना निश्चित हो। साधारण मनुष्यकी बुद्धिके अनुसार जिन शर्तोंको ऐसी सभा कबूल करे वही इस बातको भी स्पष्ट कर देगी कि राजाज्ञाका पालन हमको किस हद तक करना पड़े स्पेन्सरके मतसे शासकोंके जान मालकी रक्षा करनेके अतिरिक्त किसी कामके करनेका अधिक नहीं है। रेल, तार, व्यापार, स्कूल आदि सब राज्यकी अनधिकार चेष्टा है।

इस ऐतिहासिक विवेचनके बाद कहना होगा कि हमारे कर्तव्यों और अधिकारों निश्चय इस प्रकार नहीं किया जा सकता।

निस्सन्देह इन विचारोंने निरंकुशताको रोकनेमें बहुत सहायता की है। परन्तु दार्श निक दृष्टिसे मनुष्यके "जन्मसिद्ध अधिकार" की चर्चा ठीक नहीं। निरंकुशताको रोकनेके दू भी उपाय हैं।

ऊपरके मतके अनुसार मनुष्य जन्मसे और स्वभावसे स्वाधीन है। उसके जन्म सि अधिकार, बिना उसकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इच्छाके नहीं छीने जा सकते। इस मतके अनुसार रा नैतिक आज्ञापालनका आधार है—मनुष्यकी इच्छा या स्वीकृतिपर मनुष्यकी स्वीकृति।

पर कोई मनुष्यकी स्वीकृतिपर भी समाज बनना असम्भव है। ऊपरका मत य बतानेमें असमर्थ है कि जो लोग प्रथम सभामें मताधिक्यसे हराए गए वे उसकी शर्तोंको क्यों मानें। यदि वे इस कारणसे मानें कि वे शामिल हुए थे तो उनके बादके मनुष्य उन शर्तोंको क्यों स्वीकार करें? यह कहना बहुत ठीक नहीं है कि समाजमें रहना ही उसकी सब शर्तोंको स्वीकार करना है।

स्पेन्सरकी शर्तें सब धनाढ्योंकी सभामें पास हो जांय पर निर्धनोंकी सभामें नहीं हो सकतीं। इस दशामें हम यह पूछ सकते हैं कि यदि स्वीकृति ही आज्ञापालनका आधार हो तो जो समाजकी शर्तोंको स्वीकार न करें उनका क्या होगा। उनको किस आधारपर बाध्य करना होगा; क्या वे बेरोक टोक जो चाहें कर सकेंगे? यदि ऐसा हो तो समाजकी दशा क्या होगी!

नहीं हैं ? वे भी तो ऐसा करनेमें ही अपना परम सुख और मोक्ष मानते हैं। मनुष्य और समाज बहुत बातोंमें एक हैं। उनके स्वार्थोंमें एकता है। नहीं, नहीं, मनुष्य समाजका अंश है ; उसकी भलाईके लिए अपना जीवन देना ही मनुष्यके जीवनका साफल्य है। मनुष्य जीवनकी सफलता इसीमें है कि वह समाजके लिए अर्पण किया जाय। इसलिए समाजके विरुद्ध उसका कुछ भी अधिकार नहीं। समाजकी भलाईके लिए जिस शक्तिकी आवश्यकता हो उसका पाना ही मनुष्यका अधिकार है। कर्तव्यको पूरा करनेको जो और जितनी शक्ति आवश्यकीय हो वही और उतना ही मनुष्यका अधिकार है।

इन विचारोंका प्रथम विकास एक सुन्दर रूपमें प्राचीन यूनानमें हुआ। वहाँ राज्य और समाजमें भेद नहीं था। बहुतसे स्थानोंमें प्रजावाद प्रचलित था और प्रत्येक मनुष्य राजनैतिक सभाओं (व्यवस्थापक और कार्यकारिणी) का सभासद था। एथेन्स नगरमें प्रजावाद बहुत विस्तृत रूपमें वर्तमान था। प्लेटो और अरस्तूके लेख उसी समयमें लिखे गये थे। इन दार्शनिकोंके मत ऊपरके विचारोंसे बहुत कुछ सहमत हैं। केवल "समाज" के स्थान पर "राज्य" लिख देना होगा। उनके मतमें मनुष्य वहीं तक मनुष्य है जहाँ तक वह राज्यका अंग बन उसमें अपना कर्तव्य कर रहा है। राज्यको मनुष्यसे कोई भी काम करानेका अधिकार है। मनुष्यको इस प्रकार बाध्य करनेमें ही उसके जीवनका उद्देश्य पूरा होता है। इससे मनुष्यका व्यक्तित्व घटता नहीं। किन्तु अपना जीवन एक वृहत् जीवनमें मिला देनेसे उसका जीवन वस्तृत रूपसे अपने व्यक्तित्वको सफल कर पाता है।

अरस्तूके सामनेही एथेन्सका नाश आरम्भ हो गया था। शीघ्र यूनानके वैभवका अन्त हो गया। रोमके दिन आये पर रोमवाले दार्शनिक नहीं हुए। उनके लेखकोंमें पहिले मतका भाव अधिक पाया जाता है।

माध्यमिक कालमें कुछ शताब्दियों तक इन विचारोंका आभास नहीं है। उसके बाद विशेष कर टोमस अक्वाइनासके समयसे अरस्तूका नाम पाया जाता है। इन लोगोंने अपने धार्मिक-विचार-शैलीसे अरस्तूका जबरदस्ती सामञ्जस्य दिखानेका यत्न किया है। प्रथम मतके प्रधान होनेसे इसीके समय तक ये विचार स्थगित रहे। इसीमें कुछ रूपमें यह विचार पाया जाता है कि समाजकी भलाईके लिए मनुष्यको बाध्य करनेमें ही मनुष्यके जीवनका, स्वभावतः रहित, साफल्य है।

पर इन विचारोंका पुनरुद्धार जर्मन दार्शनिक हीगलके द्वारा हुआ। उसके सिद्धान्तमें समाज और राज्य जो समाजका एक अंग है सजीव माना है। उसमें सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व है। उसका जीवन सब व्यक्तियोंके जीवन समूहसे अधिक महत्त्वका है। और उसकी इच्छा सब व्यक्तियोंकी इच्छाओंसे बढ़कर है। समाज राज्यका एक विस्तृत और पूर्ण जीवन है [illegible] स्वाधीनता एक मनका विचार या अवस्था नहीं है। वह अपने सम्बन्धोंके लिए [illegible] रूप ग्रहण करना चाहती है और इस विश्वको अपने [illegible] बनाना चाहती है [illegible] इस स्वाधीनताके अनुरूप बनाना ही मनुष्यका [illegible] है। और समाज और राज्य इस [illegible] है। उसको ही मनुष्यका [illegible]

व्यक्तिके जीवनमें फूट फूट कर भर दिया जाता है । इसलिए स
भेद करना गूसँता है । सामाजिक प्रभाव मनुष्यको उस स्थितिसे पी
हो चुका है और सदा उसको आगे बढ़नेको प्रेरित करता है । इस जी
देना ही मनुष्य जीवनका साफल्य है । सच्चा नागरिक सामाजिक भाव
वायुकी तरह बिखरा हुआ पाता है। मनुष्यको इस सामाजिक वायुमण्डलके
मनुष्यको मनुष्य बनाना है । उसके मनको उच्च बनाता है । और उसके
भावको एक सच्चा यथार्थ रूप देना है । व्यक्ति समाज और राज्यका भेद फूट

ये भाव बहुत ऊँचे हैं पर इनमें अत्युक्ति है । जबर्दस्ती मनुष्य
में जोतनेसे वह स्वाधीन नहीं हो सकता । व्यक्तिका जीवन विस्तृत करनेके लिए
विरुद्ध कार्य करानेमें सफलता नहीं मिल सकती ।

अंगरेजी दार्शनिक ग्रीनने इन बातोंपर ध्यान देनेका यत्न किया है ।
उसने हीगलके विचारोंमें कुछ फेरफार किया है । यह सच है कि एक शक्ति जिसको
कह सकते हैं हमारे चारों ओर व्याप्त है । उसीके कारण हमारे मनमें समाजसेवाके भा
है । इसी भावकी तृप्तिमें हमारे जीवनका साफल्य है । इसीसे परम सुखकी प्राप्ति होत
इसके अतिरिक्त और किसी बातमें यथार्थ सुख नहीं मिल सकता । हीगलके अनुसार इस
की खोजके कारण ही सामाजिक संस्थाओंके प्रभावसे मनुष्य प्राप्त अवस्था तक सरल
पहुँच जाता है, सामाजिक भाव मनुष्यमें स्थिर हो जाते हैं। और स्वाधीनता और सुखके भावों
को सामाजिक उद्देश्य, विचार, अभ्यास रस्म रिवाज और संस्थाएँ स्पष्ट रूप दे डालते हैं
और इन्हीं संस्थाओंकी सहायतासे मनुष्य इस योग्य होता है कि इन
अनुसार कार्य करके अपना सुख और स्वाधीनताकी खोज

आदर्श मनुष्यके राज्य और आदर्श राज्यमें हीगलके और ये विचार एक हो जायेंगे। पर इन विचारोंके अनुसार जब तक शासक उन कामोंको न करें जो सामाजिक हितके लिए अनिवार्य हैं उनका मनुष्योंको बाध्य करना धर्म मार्ग नहीं है। यदि कभी मनुष्य इच्छाके विरुद्ध बाध्य किया गया हो हम उस कामको उचित तो कह सकते हैं यदि ऐसा करना समाज हितके लिए जरूरी हो। पर हम इस अर्थमें हीगलकी तरह पर नहीं कहेंगे कि इसमें उसके जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया। जब तक मनुष्य अपनी इच्छासे कार्य न करे धार्मिक उन्नति पूरी नहीं होती। तो भी समाजहितके आधारपर वह बाध्य किया जा सकता है।

हम राजाज्ञाका उल्लंघन कर सकते हैं? नहीं करना चाहिए, यदि ऐसा करना समाज-हित के लिए अनिवार्य हो। जिस काममें समाज हित नहीं उसका अधिकार न तो व्यक्तिको है न शासकोंको।

शासकोंकी भूल करनेमें कौनसे उपाय ग्रहण करने चाहियें ये भिन्न प्रश्न हैं। देश, कालकी अवस्थाओंपर निर्भर है। पर जहाँ तक हो अच्छे उपाय ही ग्रहण करने चाहियें। जिसमें सामाजिक अभ्यास और रिवाज खराब न हो जायें। थोड़ी सी हानिके लिए समस्त प्राप्त लाभोंको खोना उचित नहीं।

यहींपर निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रहका स्थान है। किन अवस्थाओंमें और कहाँ तक करना चाहिये इस बातपर बहुत प्रश्न उठते हैं जिसका स्थानाभावसे यहाँ विवेचन नहीं किया जा सकता।

पीताम्बरदत्त पाण्डेय



हमारी खेती



सार बड़ा ही परिवर्तनशील है। इसमें किसीकी भी स्थिति एकसी नहीं रहती। मनुष्य, जाति तथा राष्ट्रोंका तो कहना ही क्या है प्रत्येक प्राकृतिक वस्तुमें भी परिवर्तनके चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। सूर्य जो प्रातःकाल तेजमय होकर प्रकाश करता है, वही संध्याको दीन मलीनकी भाँति श्रीविहीन होकर पश्चिममें अस्ताचलको प्राप्त होता है। इस संसारमें प्रत्येक वस्तुका यही हाल है। हमलोग जो एक समय सभ्यताके उच्च शिखरपर शोभायमान थे और विद्या, बुद्धि, धन, वैभव आदि सबके आगार थे और अपने विशिष्ट गुणोंद्वारा ही जगद्गुरुकी पदवी पाये हुए थे और असभ्य तथा अर्धसभ्य जातियोंको बर्बर और यवन आदि शब्दोंसे संबोधित करते थे, आज स्वयं बर्बर बने हुए हैं और दर दरके भिखारी हो रहे हैं। संसारकी अन्य नव शिक्षित जातियाँ हमें असभ्य कहती हैं। हा भारतवर्ष! यह तेरा दुर्भाग्य ही है जिसने तुझे ऐसा बना दिया। यह भारतवर्ष जहाँपर दूध घीकी नदियाँ बहती थीं, जहाँपर खाद्य पदार्थोंकी किसी प्रकारकी कमी नहीं थी, जहाँपर सस्तासे सस्ता अन्न मिलता था आज वहीं ६ सेरका मिलना भी कठिन हो रहा है।

कल ही हमें १०० वर्षका एक वृद्ध मनुष्य मिला था। हमने उससे पूछा कि जब तुम नवयुवा थे उस समय अन्नका क्या भाव था। उसने भाव इस प्रकार बतलाया कि गेहूँ रुपयेका १ मन, ज्वार २॥, बाजरा १॥, चना १ मन और घी ६ सेरका बिकता था।

अन्नका तो यह हाल है पर भारतकी जनसंख्या, इतने दुर्भिक्ष, प्लेग, महामारी आदिके होते हुए भी चौकड़ी भरती हुई बढ़ रही है। गत १० वर्षमें भारतकी जनसंख्या ७·१ प्रति सैकड़ा बढ़ी है। प्रकृतिका यह नियम है कि जहाँ जनसंख्या बिना रोक टोकके बढ़ती है वहाँ मृत्युसंख्या भी अधिक होती है। यही कारण है भारतवासियोंकी आयु दिनपर दिन कम होती जाती है। भारतवासियोंकी औसत आयु २३·५ वर्षकी ही है, परन्तु इंग्लैण्डवालोंकी औसत आयु ४० और न्यूजीलैण्डकी ६० वर्ष है।

गया है।

यह सभी लोग जानते हैं कि भारत कृषिप्रधान देश है और अभी बहुत वर्ष तक यह कृषिप्रधान ही रहेगा। दूसरे देशोंमें लोग खेतीपर निर्भर नहीं है तो भी उन्होंने वैज्ञानिक रीतिसे अपनी खेतीकी बहुत कुछ उन्नति करके पैदावारी बढ़ा ली है। देखिये इंगलिस्तान प्रति एकड़ ३० बुशल, फ्रान्स ३२ बुशल और डेनमार्क ४१ बुशल अन्न पैदा करते हैं परन्तु भारतमें मुश्किलसे तमाम प्रति एकड़ ११ बुशल ही पैदा हो पाता है। डाक्टर हेरल्ड एच मान साहब लिखते हैं कि भारतीय किसानोंकी प्रति एकड़ औसत आय केवल १४॥) है परन्तु प्रति एकड़ भूमिपर कर्ज १३) रुपयेके लगभग है। अब बतलाइये कि बिचारा किसान कैसे अपनी गुजर करे। यह बात इससे भी प्रमाणित होती है कि प्रति वर्ष किसानोंके हाथसे ज़मीन निकलती जाती है और महाजन तथा बोहरे भूमिके स्वामी होते जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि किसानोंकी दशा कैसे सुधारी जा सकती है क्योंकि किसानों की ही उन्नति पर देशकी उन्नति निर्भर है। हम पहले ही बता चुके हैं कि किसान लोग कर्जमें ऐसे फँसे हुए हैं कि बेचारोंको खाना भी प्राप्त नहीं, फिर भला खेतीकी उन्नति किस प्रकार करें। सबसे पहले कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहिये जिससे बेचारे किसान बोहरे और महाजनोंके अत्याचारसे बचें, कोई ऐसा सुभीता करना चाहिये जिससे उन्हें कम सूद पर रुपया कर्ज मिल सके, क्योंकि हमारे किसान पूँजीवाले नहीं कि बोहरेकी सहायता बिना ही खेती कर सकें, उनके लिए दूसरा कोई उपाय ही नहीं। इसके लिये ग्राम ग्राममें समवाय समितियाँ खोलनी चाहिए जिनसे खेतीके कार्यके लिए किसानोंको कम सूदपर रुपया मिल सके और वे किफायतसे कार्य करने तथा रुपया बचानेकी आदत सीखें। इस प्रकारकी समितियोंका सविस्तर वर्णन पाठकोंको फिर कभी सुनावेंगे।

खेतीको पानीकी सबसे अधिक आवश्यकता है। पानीके बिना खेतीका कुछ भी कार्य नहीं चल सकता। अधिक किसान लोग वर्षापर ही निर्भर रहते हैं, यदि वर्षा हो गई तो यथेष्ट अन्न पैदा होगया, नहीं तो फिर भयानक दुर्भिक्षका सामना करना पड़ता है। इसलिये देशमें आबपाशीके साधन बढ़ाने चाहिये। कुएँ, तालाब और नहरें सब देशमें बहुतायतके साथ बननी चाहियें। सरकारने प्रजाके लाभके लिये नहरें निकाली है परन्तु प्रजाको उनसे इतना अधिक लाभ नहीं जितना होना चाहिये क्योंकि अधिकारियोंको उनसे धन कमानेकी धुन लग रही है। दूसरे, नहरें अभी यथेष्ट संख्यामें हैं भी नहीं। इसलिए राजा प्रजा दोनोंको जहाँ तक हो सके आबपाशीके साधनोंको बढ़ाना चाहिये।

हमारे किसान अधिकतर अनपढ़ है, उन्हें खेतीके वैज्ञानिक तरीके कुछ भी मालूम

नहीं। जो बेचारे अपने भी बरसोंसे बीमार हैं उनके अनुसार अपना काम करते हैं। इसलिए किसान लोगोंमें कृषि सम्बन्धी ज्ञान विस्तार प्रचार करना प्रत्येक देशप्रेमीका कर्तव्य है। देशके स्थान स्थान पर ऐसी संस्थाएँ स्थापित होनी चाहिए जो किसानोंको ठीक ठीक तरह तथा उत्तम तरीके सिखलावें। इस बातमें दक्षतावाली योजना चाहिए जिससे कृषि विज्ञानकी शिक्षा प्रचलित हो। सरकारने कितने इन्स्टीट्यूट तथा फार्म इत्यादि स्थापित किये हैं परन्तु उनसे देशको कुछ भी लाभ नहीं जब तक कि वैज्ञानिक बातें प्रकाशित करके किसानोंको न बतलायी जावें। इसके अतिरिक्त सरकारको चाहिए कि कोई ऐसी संस्था स्थापित करे जिसमें बड़े अच्छे वैज्ञानिक लोग हों जो शोध करके किसानोंको वैज्ञानिक विधि बतलावें, नये नये तरीके सिखलावें। किसानोंके ही खेतोंमें नये नये आविष्कार करके उन्हें उनकी उपयोगिता प्रमाणित करें और स्थानीय कृषि सम्बन्धी प्रश्नोंको वहीं हल करें। कृषिसंस्थाका स्थान स्थान-पर जाकर वहाँकी आवश्यकताओंका पता लगावें और वहाँके देश कालका ज्ञान प्राप्त करे और उसका वहाँवालोंको उपाय बतावें। यदि किसी स्थानकी भूमिकी उत्पादक शक्ति कमजोर है तो उस संस्थाको चाहिए कि उसकी उत्पादक शक्ति बढ़ानेके उपाय सोच निकाले और उसका अनु-भव प्राप्त करके किसानोंको बतलावे।

तीसरी बात जो खेतीमें अड़चन डालती है वह उत्तम और यथेष्ट खादका न मिलना है। भारतीय किसान खाद बनाना तो बिलकुल जानते ही नहीं परन्तु जो खाद आसानीसे मिल जाता है उसे भी नष्ट कर डालते हैं। वे लोग अपने खेतोंमें गोबर लीद आदिका ही खाद डालते हैं, सो भी यथेष्ट नहीं होता क्योंकि गोबर आदिका बहुत सा हिस्सा उनके जलानेके कार्यमें आता है। इसका कारण यह है कि यही सबसे सस्ता ईंधन किसानोंको मिलता है। हड्डी आदिका खाद बनाना एक तो किसान लोग जानते ही नहीं और दूसरे धार्मिक विचारोंके कारण भी उसे काममें नहीं लाते और प्रति वर्ष बहुत सी हड्डी विदेशको भेजी जाती है जिससे विदेशी लोग अपनी खेतीकी उन्नति करते हैं। हमें चाहिए कि हर प्रकारके खाद बनानेकी तरकीब सीखें और उसका प्रयोग करें जिससे भूमिकी उत्पादक शक्तिका ह्रास न हो बल्कि पैदावार अधिक हो। विद्वान लोगोंको ज्ञात ही होगा कि गत शताब्दिमें उत्तम उत्तम तथा उपयोगी खाद की सहायताहीसे यूरोपमें अन्नकी पैदावार दुगुनी तथा कहीं कहीं तो तिगुनी तक हो गई है। फिर भला उस रीतिके अनुसार भारत क्यों नहीं तरक्की कर सकता। इसलिए कृषिकी उन्नतिकी जो विधि सोची जाय उसमें खादके उचित उपयोगपर पूरा जोर देना चाहिए। क्योंकि जहाँपर पानीकी कमी है वहाँ आबपाशी और जहाँ पानी यथेष्ट है वहाँ बने हुए उत्तम खादकी अत्यन्त आवश्यकता है।

अच्छे बीजका होना खेतीके लिए उतना ही आवश्यक है जितना खाद और पानी का। परन्तु भारतमें इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। सड़ा, घुना और पुराना जैसा बीज मिल गया वही बो देते हैं जिसके कारण पैदावारी भी बहुत कम होती है और अच्छा अन्न भी पैदा नहीं होता। इस लिये चाहिये कि बढ़ियाँ बीज पैदा करनेका प्रयोग किया जाय जिससे अच्छी फसल पैदा हो सके।

का एक प्रस्ताव मंजूर किया गया था। इसके बादसे ही लोगोंने किसानोंमें शिक्षाका प्रचार करना प्रारम्भ किया और वैज्ञानिक रीतिसे अपनी कृषिकी उन्नति करने लगे। इसका ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनोंमें उसी भूमि पर बहुत कम उपजाऊ थी वहाँपर ही लग-भग ७० लाख एकड़ भूमिमें खेती होने लगी, जिसमेंसे ३० लाख एकड़ भूमिमें केवल अन्न पैदा होता है। यहाँ प्रति एकड़ ४१ बुशल गेहूँ पैदा होता है।"

खेतीकी उन्नतिके साथ ही साथ हमें अपने कलाकौशलकी भी उन्नति करनी चाहिये। भारतकी दरिद्रताका प्रश्न बड़ा ही जटिल है और जब तक हम अपने देशी उद्योग धंधे तथा कलाकौशलको जाग्रत नहीं करेंगे तब तक इसका हल होना एक प्रकार असम्भव ही है। किसान लोगों तथा जमींदारोंके पास भूमिको छोड़ अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं। वे लोग एक ही फसल पर निर्भर रहते हैं—यदि वह फसल नष्ट हो गई तो उन्हें बड़े कष्टका सामना करना पड़ता है। यदि फसल अच्छी भी हुई तो वर्ष भर उसे पेट पर ही खा जाते हैं। छ: महीनेसे अधिक किसान लोग बैठ कर ही खाते हैं। यदि खेतीके साथ किसी प्रकारका उद्योग धंधा भी हो तो उनकी दशा दुर्भिक्षके समय भी अच्छी रह सकती है और सुकालके समय अपनी भूमिपर लगानेको यथेष्ट धन भी बचा सकते हैं।

इसलिए हमें चाहिये कि अपने ग्रामोंमें ही छोटे छोटे कारखाने खोलें जिससे बेचारे किसान उनसे लाभ उठा सकें। बड़े बड़े शहरोंमें बड़े बड़े कारखाने आदि खोलनेमें उतना लाभ नहीं जितना कि ग्रामोंमें छोटे छोटे कारखानोंसे होनेकी आशा हो सकती है। कृषि और उद्योग धन्धे यदि साथ साथ किये जायँ तो हमें यूरोपकी भाँति खाद्य पदार्थोंके लिए दूसरोंका मुँह ताकना न पड़ेगा।

अंतमें अपने देश भाइयोंसे हमारी यही प्रार्थना है कि अपने किसानोंकी दशा सुधारनेका पूरा प्रयत्न करें। बिना उनकी दशा सुधारे पूरी तरक्कीकी आशा करना केवल स्वप्न देखना है जैसा कि कॉर्नेल यूनीवर्सिटीके प्रोफेसर वारन साहबने हाल ही में कहा है कि जैसे खेत और खलिहान हमारी सम्पत्तिके आधार भूत हैं उसी प्रकार किसान लोग हमारी सभ्यताके मुख्य आधार हैं। सभ्यता चाहे जैसी उन्नत क्यों न हो कभी अधिक दिन तक स्थिर नहीं रह सकती जब तक कि उसकी नींव सच्चे नागरिक किसानों पर न रक्खी हो।

नारायणसिंह

भारतमें पूँजीकी व्यवस्था



स विश्वव्यापी युद्धने संसारमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है और भार दर्शपर भी उसका प्रभाव अवश्य पड़ा है। भारतकी व्यवसायिक स्थिति पहिले थी वह अब नहीं रही। युद्धके पूर्व भारतमें जो गिने गिनाये का खाने थे उनमेंसे अधिकांश विदेशी पूँजीसे चलाये जाते थे। उनमें भार वासियोंकी पूँजी बहुत कम लगती थी। एक तो हमारे पास इतना धन ही नहीं था कि विदे व्यापारियोंका मुकाबला कर सकें। दूसरे यदि कुछ लोगोंके पास होता भी तो वे इस ध्यान नहीं देते। क्योंकि कारखानोंमें वे अपनी सम्पत्तिको सुरक्षित नहीं समझते थे। पर युद्ध बाद लोगोंके हृदयमें एक नये उत्साहका संचार हुआ है। व्यवसायकी ओर लोगोंका ध्यान जा लगा है और स्वदेशी पूँजीसे बराबर नये कारखाने खोले जा रहे हैं।

पर पूँजीकी कोई उचित व्यवस्था अभी तक नहीं हो सकी है। उसकी स्थिति जैसी युद्धके पूर्व थी, वैसी ही अब भी बनी है। अर्थात् पूँजीकी माँग पूर्ववत् बनी है, और उसकी पूर्तिका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इससे उत्पादनका काम ठीक तरहसे नहीं हो सकता। उत्पादनके लिए तीन वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है। पहले तो भूमि, दूसरे, श्रम, तीसरे पूँजी।

भूमिकी तो यहाँ अत्यधिकता है। कच्चा माल यहाँ जितना उत्पन्न किया जाता है किसीसे छिपा नहीं है। यहाँ तक कि हमारा विदेशी व्यवसाय तथा लेनदेन केवल इसीके सहारे चलता है। परन्तु भूमिकी उर्वरा शक्तिका पूर्ण उपयोग नहीं किया जाता। इससे नीचे दबी हुई शक्ति तो ज्योंकी त्यों पड़ी है और ऊपरकी शक्ति लगातार निचोड़से क्षीण हुई चली जा रही है। यदि कुछ द्रव्य लगाकर वैज्ञानिक रीतिसे खेती करनेका प्रबन्ध किया जाय तो अन्तः स्थित शक्तिका भी उपयोग होने लगे और ऊपर स्थित शक्ति भी क्षीण होनेसे बचाई जाय। इसका परिणाम यह हो कि कच्चे मालकी उत्पत्ति कई गुनी बढ़ जाय। पूँजीके अभावसे शिक्षा-लयोंद्वारा खाद इत्यादिका भी पूरा उपयोग नहीं बतलाया जा सकता, जिससे बहुतसा खाद अज्ञानता या असावधानतावश जला दिया या फेंक दिया जाता है।

भी उनमें बहुत होती है। भोजनहीके दुःखसे पीड़ित होकर सहस्रों कुली प्रत्येक वर्ष बाहर चले जाते हैं। अभी तक अपने उपनिवेशोंको सरकारने भारतहीसे कुली भेजकर बसाया है। अफ्रीका, फिजी आदि देश भारतीय कुलीके बदौलत ही समृद्धशाली हो रहे हैं।

यहाँ यदि कमी है तो केवल पूँजी की है। इसीके न होनेसे व्यवसायिक उन्नतिमें बाधा उपस्थित हो रही है। भारी भारी कारखानोंको खोलनेके लिए, मजदूरोंको योग्य तथा काम लायक बनानेके लिए, व्यवसायिक शिक्षाके लिए, खेतोंकी उत्पादकशक्ति अनेक उपायोंसे बढ़ानेके लिए, बस एक मात्र पूँजीकी ही आवश्यकता है।

प्रश्न यह उठता है कि यह पूँजी कहाँसे आवे। इसके दो ही मार्ग हैं। या तो देशके धनी महाजन अपने घरसे निकालें या किसीसे ऋण लिया जाय। पहला उपाय तो निरर्थक है, क्योंकि पहले देशी धनिकोंके पास इतना पर्याप्त धन ही नहीं है, दूसरे यदि है भी तो व्यवसायमें धन लगानेकी उन्हें एक प्रकारकी अनिच्छा है। और यह उदासीनता स्वाभाविक भी है। जब तक सैकड़ेपर पचहत्तर सूद देनेवाले असामी उन्हें मिलते रहेंगे तबतक अपने रुपयेको जोखिममें भला वे क्यों डालेंगे। फिर उनकी उदासीनता शीघ्र दूर भी नहीं हो सकती। बस अब एक मात्र उपाय ऋण लेना ही रह गया है क्योंकि जो पूँजी भारतवासी जमाकर व्यवसायमें लगावेंगे वह इस समय काफ़ी न होगी। यह ऋणद्रव्य भी सब देशोंसे नहीं मिल सकता। जिनके पास अपने व्ययसे अधिक धन होगा वे ही दूसरेको ऋण देनेका साहस करेंगे।

कितने लोग विदेशसे ऋण लेनेके विरोधी हैं। उनका कथन है कि भारतको प्रत्येक वर्ष असंख्य रुपये सूद विदेशियोंको देना पड़ेगा। इससे हमको लाभकी विशेष सम्भावना नहीं है। पर यहाँपर उनके विचारमें भ्रम है। बिना पूँजीके भारतकी भूमि तथा श्रम बेकार पड़े हैं। उनसे लाभ नहीं उठाया जा रहा है। दिनपर दिन उनकी अनुपयोगिता बढ़ती जा रही है। यदि कहींसे भी पूँजी लाकर लगा दी जायगी तो इनकी उत्पादकशक्ति बढ़ जायगी। लाभ बहुत विशेष होगा। केवल पूँजीके अभावसेही करोड़ोंका कच्चा माल विदेश भेज दिया जाता है। बाहरवाले उसी मालको तैयार कर हमी लोगोंके हाथ बेचकर अत्यन्त लाभ उठा रहे हैं। यदि पूँजी लगाकर कारखाने खोल दिये जाँय, और वही माल बाहर न भेजकर यहीं तैयार कराया जाय तो कितनेकी बचत होगी। उदाहरणके लिए—अभी १६७५ में यहाँसे कपड़े बनानेका कच्चा माल ४१,२२,६६,८७१ रुपयेका विदेश भेजा गया, और तैयार कपड़े केवल ११,६६,८६० रुपयेके। साथही साथ भारतमें २,१५,४१,७४२ रुपयेका कपड़ा बाहरसे आया। यदि पूँजी होती तो इन्हीं सामानोंसे कपड़े तैयार कर घरके काममें लाए जाते और बाहर भेजे जाते तो कितना लाभ होता। इसी तरह प्रायः सभी वस्तुओंकी दशा है। अर्थात् यदि विदेशी पूँजी भी लगाकर कारखाने खोल दिये जाँय और माल तैयार कर देशके बाजारमें लगाया जाय और बाहर भेजा जाय तो विदेशियोंको केवल उनसे ऋण लिए हुए रुपयेका सूद देकर बहुतसा धन जो अबतक हमलोग प्रत्येक वर्ष बाहर भेजते रहे हैं, अपने ही घरमें रख लेंगे।

यदि इतिहास उठाकर देखा जाय तो प्रायः सभी देशोंने यही किया भी है। अमेरिकाने अपने व्यवसायको विदेशी पूँजीसे जमाया है। क्योंकि सूद देना स्वीकार किया है। इस समय

राज्य संसारमें अमरीका सर्वसे समृद्ध देश समझा जाता है। उसका व्यवसाय भी सबसे बढ़ा चढ़ा है पर पर भी यूरोपका ऋणी है। पर अब अमरीका 'यूरोप'को ऋण देनेकी व्यवस्था कर रहा है।

जिस समय जापान अपनी गहरी नींदसे उठा था, उसकी क्या स्थिति थी ? उसके पास कहाँ पूँजी थी कि वह अपनेको इस प्रकार उन्नत बना सकता। उसने भी वहीं ऋण लेनेकी युक्तिका अवलंबन किया। विदेशियोंसे ऋण ले लेकर उसने अपना व्यवसाय चलाया। इतना ही नहीं अपने व्यवसायको पूरी तरहसे आर्थिक सहायता देनेके लिए उसने एक बंक भी खोल दिया, जिसका नाम "जापानका व्यवसायिक बंक" रक्खा। इस बंकके सहारे जापानको पूँजी मिलनेमें और भी सुविधा हो गई। बंकके विवरणसे विदित होता है कि केवल सात वर्षमें अर्थात् सम्वत् १९५९ से १९६६ तकमें उस बंकके द्वारा जापानने अपनी प्रजासे केवल ३३०० लाख रुपये पाये, पर विदेशसे २०१०० लाख रुपये ऋण लिये। यदि अपनी ही प्रजाके द्रव्यका भरोसा जापान किये होता तो कदाचित् उसकी दशा इतनी उन्नत न हुई होती। इससे स्पष्ट है कि विदेशसे पूँजीका ऋण लेना सिवा लाभके हानि नहीं कर सकता, यदि 'ऋण' शब्दका दुरुपयोग न किया जाय। अर्थात् प्रत्येक देश ऋण लेनेमें स्वतन्त्र हो और अपनी इच्छानुसार ऋण ले। यह नहीं कि यदि वह थोड़ा चाहता है तो बलात् उसे अधिक लेनेके लिए बाध्य किया जाता है।

पर भारतकी दशा देखनेसे बुद्धिभ्रममें पड़ जाती है। यहाँ जिस दिनसे विदेशी पूँजीका आगमन हुआ उसी दिनसे इसकी दशा बिगड़ने लगी और यदि यही दशा और कुछ दिन तक रही तो इसका मटियामेट हो जाना आश्चर्यजनक न होगा। जो विदेशी पूँजी अन्य देशोंमें जाकर उनके उद्धारका कारण हुई वही विदेशी पूँजी भारतवर्षके अधः पतनमें क्यों योग दे रही है। इसका एक मात्र यही कारण प्रतीत होता है कि अन्य देशोंमें गई हुई विदेशी पूँजी तथा भारतमें आई हुई विदेशी पूँजीके उपयोगमें भेद है। यही भेद भारतके व्यवसायिक ह्रासका प्रधान कारण हो रहा है। और इसीसे लोग विदेशी पूँजीके नामसे डरते हैं। दोनोंमें क्या भेद है और उसमें क्या क्षति पहुँचती है इसका जानना आवश्यक है।

भारतमें पूँजीकी व्यवस्था

[illegible] पूँजीवाले भी यहाँ [illegible] करते हैं, पर इनकी [illegible] [illegible] से ही सोना [illegible] हैं और [illegible] [illegible] ही [illegible] है। [illegible] [illegible] पूँजीकी [illegible] [illegible] है, नहीं तो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। कहीं कहीं तो इनकी [illegible] सरकार भी इस काममें विदेशियों- का [illegible] होती है। कहीं कहीं तो यहाँके [illegible] हानि पहुँचाकर भी विदेशियोंको लाभ [illegible] [illegible] है। उदाहरणके लिए, [illegible] सोना निकालनेका काम लीजिये। यहाँकी [illegible] सोना छिपा रहता है। देशके [illegible] [illegible] पुराने ढगसे उन [illegible] निकालते थे। सरकारने कानून द्वारा इस कामको बन्द कर दिया। क्योंकि उस ढगसे सोना निकालनेमें भारतीय निवासियोंका श्रम लगाना पड़ता था और अंग्रेज व्यवसायी जो अपने ढगसे सोना निकालते थे उन्हें ज्यादा [illegible] पड़ता था। अर्थात् विदेशियोंको कम लाभ होता था और यहाँके निवासियोंको अधिक। पर ऐसी अवस्थामें सरकार हस्तक्षेप किये बिना कैसे रहती? अंग्रेजोंको हानि हो और सरकार चुप रहे।

जापानमें विदेशी पूँजीपर प्रति सैकड़े पाँच सूद दिया जाता है। भारतमें विदेशियोंको प्रति सैकड़े कितना लाभ है। भला बतलाइये आगम उत्पन्न होगा कि भारत? जिस तरहसे विदेशी पूँजीका उपयोग हो रहा है उसे देखकर तो यही कहते बनता है कि यदि भारतवर्ष बिना इन पूँजियोंके रहता तो ही अच्छा होता। क्योंकि आज नहीं तो पचास वर्ष बाद तो इसकी दशा अवश्य बदलती और उस समय भारतीय सुगम प्राप्त पूँजी लगाकर अपना काम करते। जो धन हमारी भूमिमें खोदकर निकाला जा रहा है उसका उपयोग यदि हम पचास वर्ष बाद भी करते तो हमारे लिए उतना क्षतिकर न होता जितना कि विदेशी पूँजीसे उनका बाहर निकाला जाना हो रहा है। उनके दबे पड़े रहनेपर कमसे कम यह आशा तो बनी रहती कि द्रव्य मिलने पर हम इनका उपयोग कर सकेंगे, पर इस समय तो वे निकलती भी चली जा रही हैं और हम उसी अवस्थामें पड़े हैं। जिस काममें हम द्रव्य लगावेंगे, उसमें केवल अपना ही लाभ नहीं देखेंगे देशके लाभका भी ख्याल करेंगे। पर विदेशियोंको यह कब ख्याल हो सकता है। उन्हें तो केवल अपने लाभसे मतलब। जहाँ तक होगा वे भूमिको चूस लेनेका ही प्रयत्न करेंगे। हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी विदेशी पूँजी भारतमें आई है यदि उसके उपयोगका भार भारतियोंके ही हाथ हो तो भी भारतको बहुत कुछ लाभ हो सकता है, इसमें हिचकनेकी बात नहीं। इस व्यवस्थासे काम लिया जाय अर्थात् दर बाँध दिया जाय कि किसी नियमित दर तकसो विदेशियोंको सूद दिया जाय जिससे बाकी लाभका भाग देशमें ही रह जाय। हम केवल विदेशी पूँजी चाहते हैं न कि विदेशी पूँजीवालोंको।

इस समय पूँजीकी माँग सब जगह है। यूरोपमें भी इसकी आवश्यकता है। सरकार- को ऋण कम दरपर मिल सकता है। यदि इस व्यवस्थासे सरकार देशी व्यवसायियोंकी सहायता पूँजीसे करे तो भारतकी व्यवस्थामें एक नये युगका संचार हो जाय। बिना सरकारके योगके भारतके छोटे छोटे व्यवसाय विदेशियोंके मुकाबले नहीं ठहर सकते। क्योंकि अभी ये नये हैं और अन्य देशोंके व्यवसाय जड़ जमा चुके हैं। हमारे नव-विकसित व्यवसायको हानि पहुँचाने और मुरझादेनेके लिए वे अपने मालको कुछ कालके लिए सस्ता कर भारतीय व्यव-

आज संसारमें अमरीका सबसे समृद्ध देश समझा जाता है। उसका व्यवसाय भी इतने बढ़ा है पर वह भी यूरोपका ऋणी है। पर अब अमरीका 'यूरोप'को ऋण देनेकी व कर रहा है।

जिस समय जापान अपनी गहरी नींदसे उठा था, उसकी क्या स्थिति थी! उ पास कहां पूंजी थी कि वह अपनेको इस प्रकार उन्नत बना सकता। उसने भी वही ऋण लें युक्तिका अवलंबन किया। विदेशियोंसे ऋण ले लेकर उसने अपना व्यवसाय चलाया। इ ही नहीं अपने व्यवसायको पूरी तरहसे आर्थिक सहायता देनेके लिए उसने एक बंक भी स दिया, जिसका नाम "जापानका व्यवसायिक बंक" रक्खा। इस बंकके सहारे 'जापानको मिलनेमें और भी सुविधा हो गई। बंकके विवरणसे विदित होता है कि केवल सात वर्षमें अ सम्वत् १९५९ से १९६६ तकमें उस बंकके द्वारा जापानने अपनी प्रजासे केवल ३१०० ल रुपये पाये, पर विदेशसे २०१०० लाख रुपये ऋण लिये। यदि अपनी ही प्रजाके स्व भरोसा जापान किये होता तो कदाचित् उसकी दशा इतनी उन्नत न हुई होती। इससे स्प कि विदेशसे पूंजीका ऋण लेना सिवा लाभके हानि नहीं कर सकता, यदि 'ऋण' शब्दका दु पयोग न किया जाय। अर्थात् प्रत्येक देश ऋण लेनेमें स्वतंत्र हो और अपनी इच्छानुसा ऋण ले। यह नहीं कि यदि वह थोड़ा चाहता है तो बलात् उसे अधिक लेनेके लिए बाध्य किया जाता है।

विदेशी [illegible] [illegible] इन देशोंके [illegible] वे ही [illegible] लगाते हैं [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] करती है, [illegible] [illegible] [illegible] जाता है। कहीं कहीं तो [illegible] [illegible] भी इस [illegible] विदेशियों-का लाभ होता है। कहीं कहीं तो [illegible] [illegible] पहुँचकर भी विदेशियोंको लाभ [illegible] है। [illegible] [illegible] सोना निकालनेका काम दीजिये। यहाँकी रैयतने सोना [illegible] है। [illegible] [illegible] अपने पुराने ढंगसे उस सोनेको निकालते हैं। सरकारने कानून द्वारा इस कामको बन्द कर दिया। क्योंकि उस ढंगसे सोना निकालनेमें भारत निवासियोंका कम खर्च पड़ता था और अंग्रेज व्यापारी जो अपने ढंगसे सोना निकालते थे उन्हें ज्यादा व्यय करना पड़ता था। अर्थात् विदेशियोंको कम लाभ होता था और यहाँके निवासियोंको अधिक। पर ऐसी अवस्थामें सरकार हस्तक्षेप किये बिना कैसे रहती? अंग्रेजोंको हानि हो और सरकार चुप रहे।

जापानमें विदेशी पूँजीपर प्रति सैकड़े पाँच सूद दिया जाता है। भारतमें विदेशियोंको प्रति सैकड़े इसका लाभ है। भला बतलाइये जापान उन्नत होगा कि भारत? जिस तरहसे विदेशी पूँजीका उपयोग हो रहा है उसे देखकर तो यही कहते बनता है कि यदि भारतवर्ष बिना इन पूँजियोंके रहता तो ही अच्छा होता। क्योंकि आज नहीं तो पचास वर्ष बाद तो इसकी दशा अवश्य बदलती और उस समय भारतीय सुगम प्राप्त पूँजी लगाकर अपना काम करते। जो धन हमारी भूमिसे खोदकर निकाला जा रहा है उसका उपयोग यदि हम पचास वर्ष बाद भी करते तो हमारे लिए उतना घातिकर न होता जितना कि विदेशी पूँजीसे उसका बाहर निकाला जाना हो रहा है। उनके दबे पड़े रहनेपर कमसे कम यह आशा तो बनी रहती कि द्रव्य मिलने पर हम इनका उपयोग कर सकेंगे, पर इस समय तो वे निकलती भी चली जा रही हैं और हम उसी अवस्थामें पड़े हैं। जिस काममें हम द्रव्य लगावेंगे, उसमें केवल अपना ही लाभ नहीं देखेंगे देशके लाभका भी ख्याल करेंगे। पर विदेशियोंको यह कब ख्याल हो सकता है। उन्हें तो केवल अपने लाभसे मतलब। जहाँ तक होगा वे भूमिको चूस लेनेका ही प्रयत्न करेंगे। हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी विदेशी पूँजी भारतमें आई है यदि उसके उपयोगका भार भारतियोंके ही हाथ हो तो भी भारतको बहुत कुछ लाभ हो सकता है, इसमें हिचकनेकी बात नहीं। इस व्यवस्थासे काम लिया जाय अर्थात् दर बाँध दिया जाय कि किसी नियमित दर तक तो विदेशियोंको सूद दिया जाय जिससे बाकी लाभका भाग देशमें ही रह जाय। हम केवल विदेशी पूँजी चाहते हैं न कि विदेशी पूँजीवालोंको।

इस समय पूँजीकी माँग सब जगह है। यूरोपमें भी इसकी आवश्यकता है। सरकार-को ऋण कम दरपर मिल सकता है। यदि इस व्यवस्थासे सरकार देशी व्यवसायियोंकी सहायता पूँजीसे करे तो भारतकी व्यवस्थामें एक नये युगका संचार हो जाय। बिना सरकारके योगके भारतके छोटे छोटे व्यवसाय विदेशियोंके मुकाबले नहीं ठहर सकते। क्योंकि अभी ये नये हैं और अन्य देशोंके व्यवसाय जड़ जमा चुके हैं। हमारे नव-विकसित व्यवसायको हानि पहुँचाने और गुरम्मर्दनके लिए वे अपने मालको कुछ कालके लिए सस्ता कर भारतीय व्यव-

सभ्य संसारमें अमरीका सबसे समृद्ध देश समझा जाता है। उसका व्यवसाय भी इतने बढ़ा है पर वह भी यूरोपका ऋणी है। पर अब अमरीका 'यूरोप'को ऋण देनेकी मदद कर रहा है।

जिस समय जापान अपनी गहरी नींदसे उठा था, उसकी क्या स्थिति थी! उसके पास कहाँ पूँजी थी कि वह अपनेको इस प्रकार उन्नत बना सकता। उसने भी वही ऋण लेने युक्तिका अवलंबन किया। विदेशियोंसे ऋण ले लेकर उसने अपना व्यवसाय चलाया। इतना ही नहीं अपने व्यवसायको पूरी तरहसे आर्थिक सहायता देनेके लिए उसने एक बैंक भी बना दिया, जिसका नाम "जापानका व्यवसायिक बंक" रक्खा। इस बंकके सहारे जापानको ऋण मिलनेमें और भी सुविधा हो गई। बंकके विवरणसे विदित होता है कि केवल सात वर्षमें अर्थात् सम्वत् १९५६ से १९६६ तकमें उस बंकके द्वारा जापानने अपनी प्रजासे केवल ३१०० लाख रुपये पाये, पर विदेशसे २०१०० लाख रुपये ऋण लिये। यदि अपनी ही प्रजाके ऊपर भरोसा जापान किये होता तो कदाचित् उसकी दशा इतनी उन्नत न हुई होती। इससे स्पष्ट है कि विदेशसे पूँजीका ऋण लेना सिवा लाभके हानि नहीं कर सकता, यदि 'ऋण' शब्दका दुरुपयोग न किया जाय। अर्थात् प्रत्येक देश ऋण लेनेमें स्वतन्त्र हो और अपनी इच्छानुसार ऋण ले। यह नहीं कि यदि वह थोड़ा चाहता है तो बलात् उसे अधिक लेनेके लिए बाध्य

विदेशी पूँजीवाले भी यहाँ चले आते हैं, उस द्रव्यको मनमाने व्यवसायमें वे ही लोग लगाते हैं और सारा लाभ वे ही उठाते हैं। हमारे यहाँ केवल कुलियोंकी मजदूरी भर रह जाती है, नहीं तो सारा धन विदेश चला जाता है। कहीं कहीं तो हमारी उदार सरकार भी इस काममें विदेशियोंका साथ देती है। कभी कभी तो यहाँकी जनताको क्षति पहुँचाकर भी विदेशियोंको लाभ कराया जाता है। उदाहरणके लिए आसाममें सोना निकालनेका काम लीजिये। वहाँकी रेतीमें सोना मिला रहता है। बेचारे आसामनिवासी अपने पुराने ढंगसे उस सोनेको निकालते थे। सरकारने कानून द्वारा इस कामको बन्द कर दिया। क्योंकि उस ढंगसे सोना निकालनेमें आसाम निवासियोंका कम खर्च पड़ता था और अंगरेज व्यवसायी जो अपने ढंगसे सोना निकालते थे उन्हें ज्यादा व्यय करना पड़ता था। अर्थात् विदेशियोंको कम लाभ होता था और यहाँके निवासियोंको अधिक। पर ऐसी अवस्थामें सरकार हस्तक्षेप किये बिना कैसे रहती ? अंगरेजोंको हानि हो और सरकार चुप रहे।

जापानमें विदेशी पूँजीपर प्रति सैकड़े पाँच सूद दिया जाता है। भारतसे विदेशियोंको प्रति सैकड़े दसका लाभ है। भला बतलाइये जापान उन्नत होगा कि भारत ? जिस तरहसे विदेशी पूँजीका उपयोग हो रहा है उसे देखकर तो यही कहते बनता है कि यदि भारतवर्ष बिना इन पूँजियोंके रहता तो ही अच्छा होता। क्योंकि आज नहीं तो पचास वर्ष बाद तो इसकी दशा अवश्य बदलती और उस समय भारतीय सुगम प्राप्त पूँजी लगाकर अपना काम करते। जो धन हमारी भूमिसे खोदकर निकाला जा रहा है उसका उपयोग यदि हम पचास वर्ष बाद भी करते तो हमारे लिए उतना क्षतिकर न होता जितना कि विदेशी पूँजीसे उनका बाहर निकाला जाना हो रहा है। उनके दबे पड़े रहनेपर कमसे कम यह आशा तो बनी रहती कि द्रव्य मिलने पर हम इनका उपयोग कर सकेंगे, पर इस समय तो वे निकलती भी चली जा रही हैं और हम उसी अवस्थामें पड़े हैं। जिस काममें हम द्रव्य लगावेंगे, उसमें केवल अपना ही लाभ नहीं देखेंगे देशके लाभका भी ख्याल करेंगे। पर विदेशियोंको यह कब ख्याल हो सकता है। उन्हें तो केवल अपने लाभसे मतलब। जहाँ तक होगा वे भूमिको चूस लेनेका ही प्रयत्न करेंगे। हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी विदेशी पूँजी भारतमें आई है यदि उसके उपयोगका भार भारतियोंके ही हाथ हो तो भी भारतको बहुत कुछ लाभ हो सकता है, इसमें हिचकनेकी बात नहीं। इस व्यवस्थासे काम लिया जाय अर्थात् दर बाँध दिया जाय कि किसी नियमित दर तक तो विदेशियोंको सूद दिया जाय जिससे बाकी लाभका भाग देशमें ही रह जाय। हम केवल विदेशी पूँजी चाहते हैं न कि विदेशी पूँजीवालोंको।

इस समय पूँजीकी माँग सब जगह है। यूरोपमें भी इसकी आवश्यकता है। सरकारको धन कम दरपर मिल सकता है। यदि इस व्यवस्थासे सरकार देशी व्यवसायियोंकी सहायता पूँजीसे करे तो भारतकी व्यवसायमें एक नया युग आरम्भ हो जाय। बिना सरकारके योगके भारतके छोटे छोटे व्यवसाय विदेशियोंके मुकाबले नहीं ठहर सकते। क्योंकि अभी ये नये हैं और अन्य देशोंके व्यवसाय जड़ जमा चुके हैं। हमारे नव-विकसित व्यवसायको हानि पहुँचाने और कुचलनेके लिए वे अपने मालको कुछ कालके लिए सस्ता कर भारतीय व्यव-

साथियोंको भगा सकते हैं । सरकार भारतीय व्यवसायियोंकी रक्षा तबतक करती रहे, जबतक वे इतने पुष्ट न हो जायँ कि बाहरके संघर्षका मुकाबला भली भाँति कर सकें ।

सरकारी सहायताके अतिरिक्त देशके धनका भी उपयोग करना आवश्यक है । जो कुछ भी पूँजी देशमें हो उसका उपयोग यदि हो तो बहुत कुछ काम चल सकता है । अज्ञानके कारण लोग अपने पासके धनको अलग नहीं करना चाहते । हमारे यहाँकी लक्ष्मी अधिकतर राजों महराजोंके कोषमें पड़ी है । वे शानशौकतके बड़े शौकीन हैं । असंख्य धन तो उन्हें केवल लिबास तथा रत्नोंके लिए चाहियें । व्यवसायकी उन्नतिमें वे कितने सहायक हो सकते हैं इसका उन्हें पूरा पता भी नहीं । क्या अब शुभवसर आनेपर वे इधर विशेष ध्यान देंगे ?

यह देखकर अवश्य हर्ष होता है कि ये बातें अब धीरे धीरे सबके सम्मुख उपस्थित हो रही हैं । शिक्षाप्रचारके साथ पूँजीका सदुपयोग होगा । अब ऋण लेनेमें लोगोंको कुछ न कुछ सुविधा अवश्य हो गई है । पर इतना ही पर्याप्त नहीं है, अभी बहुत जागृतिकी आवश्यकता है ।

छविनाथ पाण्डेय



पुस्तकावलोकन

-लेखक श्री० प्रो० दीवानचन्द जी एम.ए. अध्यापक डी.ए.वी. कालेज, प्रकाशक पुस्तक भण्डार लाहौर। पत्र संख्या २०४. जिल्द सादी मूल्य ।।।)

इस पुस्तकके कई संस्करण निकल चुके हैं। इसकी लोक-प्रियताका यही प्रमाण है। ...महापुरुषोंके जीवन चरित्र और उपदेश एकत्र किये गये हैं। प्राचीन यूनानके दो ...को स्थान दिया गया है अर्थात् सुकरात और अफलातूनको, दो अमरीकामें लिए फ्रैंकलिन और वाशिंगटन जो अपने अपने समयमें संयुक्तराज्यके सभापति रहे थे। ...महात्मा भारतवर्षके हैं। श्रीरामचन्द्र, महाराजा युधिष्ठिर, बुद्धदेव और स्वामी ...सरस्वती। पुस्तक लिखनेका उद्देश लेखक महाशयने भूमिकामें यह बताया है कि ...बच्चों और बड़ोंके अन्तःकरणमें प्रेम पैदा न हो जावे कि हम अपने पूर्वजोंके गुणोंसे ...हो जावें, आर्य-जातिके पूर्वज महापुरुषोंके चरित्रको सबसे श्रेष्ठ कार्य समझते थे, इस ...समयमें अपने देशभाइयोंकी दृष्टि इस ओर करनेके लिए मैंने यह तुच्छ यत्न किया है।"

पुस्तककी भाषाके सम्बन्धमें लेखक महाशय कहते हैं कि "इससे अच्छी उर्दू मुझको ...नी।" सम्भव है कि मूल पुस्तक उर्दूमें लिखी गई हो और यह उसका हिन्दी अनुवाद हो। ...महाशय पंजाबके हैं और जहाँ तक हमको मालूम है अब डी०ए०वी० कालिज कानपुरके ...पक हैं। पंजाबी सज्जनोंसे इतनी अच्छी हिन्दी लिखनेकी प्रायः हम आशा नहीं किया ... पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

...नियोंका कारोबार—लेखक श्रीयुत कस्तूरमल बाँठिया, बी० काम०, इन्दौर। ...स्टेट कामर्स व इन्डस्ट्री डिपार्टमेंटका तीसरा बुलेटीन। पृष्ठ संख्या ३३

यह छोटी पुस्तक व्यापारियों तथा अन्य पाठकोंके लिए जो कम्पनीके कारबारको जानना चाहते हों, बड़ी उपयोगी है। इसमें सब तरहकी कम्पनियोंका विवरण दिया है ...उनको खड़े करनेकी विधि बतलाई गई है। तरह तरहके हिस्से जो कम्पनियोंके होते हैं ...भेद बतलाया है। कम्पनी सम्बन्धी कानूनका भी संक्षेपमें वर्णन दिया है जिससे कम्पनी ...न और उसके प्रबन्धकी रीति समझमें आ जाती है। लेखक महाशयने अंगरेजी शब्दों...योग ज्योंका त्यों किया है। इससे पाठकोंको इस समय विशेष सुभीता होगा। हिन्दीमें पर्याय-वाची जो शब्द हैं सो व्यवहारमें अभी कम आते हैं। आजकल बहुतसी बड़ी कम्प...खुल रही हैं; और लोगोंके हिस्से खरीदनेकी ओर विशेष रुचि हो रही है। इस अवसर...यह पुस्तक आवश्यक बातोंको सुलभ रीतिसे संक्षेपमें समझानेमें बड़ी उपयोगी प्रमाणित ...। यह इन्दौर राज्यके व्यवसायिक महकमेकी तीसरी पुस्तक है। इसकी उपयोगिता देखकर ...ली दो पुस्तकोंके देखनेकी भी इच्छा होती है। व्यापारी लोगोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

अग्रवाल-बन्धु आगरेसे प्रकाशित छोटे आकारका मासिकपत्र । सम्पादक—परमेश्वरी सहाय अग्रवाल, बी०ए०, एल्-एल्० बी० वार्षिक मूल्य २)

इस पत्रका जन्म गत कार्तिक माससे हुआ है । हमारे सामने इसके दो अंक हैं। उद्देश नामहीसे प्रगट है । लेख साधारण है । भाषाकी शुद्धताकी ओर यदि विशेष ध्यान दिया जाय तो अच्छा हो ।

जैनहितैषी—बम्बईसे प्रकाशित मासिकपत्र । सम्पादक बाबू जुगल किशोर जी मुख्तार, सरसावाँ, सहारनपुर । वार्षिक मूल्य २)

इस पत्रको बहुत दिनों तक श्रीयुत नाथूराम जी प्रेमी निकालते रहे थे । कुछ कालके बाद यह फिर निकलने लगा है । इसमें विशेषकर जैन सम्प्रदाय संबंधी लेख रहते हैं । साथमें सामाजिक और सर्वोपयोगी लेखोंको भी स्थान दिया जाता है । जैन सम्प्रदायके प्राचीन धर्म ग्रंथ बड़े महत्वके हैं अतएव हिन्दी पाठकोंको हितैषीके द्वारा उनका कुछ ज्ञान हो तो बड़ी अच्छी बात है । छपाई बड़ी उत्तम है ।

श्रीतुलसीपत्र—अयोध्याकी श्रीतुलसी सत्संग महासभा द्वारा प्रकाशित और श्रीबालकराम विनायक द्वारा सम्पादित मासिकपत्र । वार्षिक मूल्य २)

श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंको इसके द्वारा अमृतपानका आनन्द प्राप्त हो सकता है ।

पुष्पहार—सूरतसे प्रकाशित गुजराती मासिकपत्र । संपादक-श्रीयुत चंपकलाल गिरधरलाल जरीवाला । वार्षिक मूल्य २॥=), रायल एडिशन ३=)

एक साधारण कोटिका पत्र है । कोई कोई लेख कविता पढ़ने योग्य है । [illegible] न होना एक असाधारण बात है ।



सम्पादकीय

शासन-सुधार

शासन-सुधारका कानून पार्लिमेण्टमें पास हो गया और उसके लिए सम्राट्की अनुमति भी मिल गई। अब भारतके शासनमें एक नई नीतिका अवलम्बन होगा। थोड़े या बहुत जो अधिकार प्रजाको इस सुधारसे प्राप्त हुए हैं उनका वास्तविक मूल्य प्रजा-हित-साधनकी क्षमता पर निर्भर है। यह शासन-सुधार देशकी औद्योगिक तथा आर्थिक उन्नतिमें कहाँ तक सहायक हो सकेगा इसी बात पर यहाँ संक्षेपसे विचार किया जाता है। मि० माण्टेगु और वाइसरायने अपने विवरणमें स्पष्ट कहा था कि औद्योगिक उन्नतिका राज-कर प्रणालीसे गहरा सम्बन्ध है और देशके लोगोंका प्रबल मत बाहरी मालपर कर लगाने की नीतिके पक्षमें है। इस बातको बार बार कहा गया है कि शासन-सुधारका मूल्य हमारी दृष्टिमें कुछ भी नहीं हो सकता जब तक कि उसके द्वारा हमको अपनी उद्योग और व्यापारकी नीति अपनी रायसे स्थिर करनेका अधिकार न प्राप्त हो। परन्तु हमारे शासकोंको इस बातका भय है कि हमारी नीतिका साम्राज्यकी व्यापार नीति पर कहीं प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और ऐसा न हो कि इंगलिस्तान और उसके अन्य उपनिवेशोंको हमारे व्यापारसे जो लाभ होता है उसमें कुछ कमी हो जाय। इस सन्देह और शंकाका मुख्य कारण यह है कि अभी तक भारतसरकारकी नीति विदेशियोंके लाभका विशेष ध्यान रखती थी। अब यह शंका होना स्वाभाविक है कि प्रजाके हाथमें अधिकार आते ही नीति बदल जायगी और अंगरेज व्यापारियोंको हानि होगी। इस विषयमें इससे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारी इच्छा यही है कि अपनी उन्नतिके साथ जहाँ तक इंगलिस्तानको और उपनिवेशोंको सुविधा दी जा सकती है वहाँ तक कोई संकोचकी बात नहीं है। भारतवर्ष साम्राज्यका एक मुख्य अङ्ग है और इस बातका उसको उचित गर्व भी है परन्तु उसको यह सहन नहीं होगा कि उसकी व्यापार नीति किसी दूसरे लोगोंके हाथमें रहे और वह निरन्तर अपनी विवशता पर आँसू बहाया करे। [illegible]-युक्त व्यवहारसे परस्पर विश्वास दृढ़ होता है।

नये अधिकार

हाथमें रक्खे हैं। रेलवे महकमा भारतीय सरकारके आधीन रहना उचित है। बातपर अब विशेष रीतिसे ध्यान देना चाहिए कि विदेशी कम्पनियोंने रेलके प्रकार निश्चय कर रक्खा है कि देशी व्यवसायको उनसे हानि होती है। इतना महसूल नहीं है जितना देशी मालपर है। यह अत्यन्त अन्याय है। अन्त होना चाहिए। आर्थिक दशा सुधारनेके लिए कर-सम्बन्धी अधिकार आवश्यक है। इस सम्बन्धमें अब यह निश्चय हुआ है कि भारतीय सरकार और सरकार जब किसी बात पर एक मत हों तो भारतसचिवको उसके विरुद्ध कोई चाहिए। प्रायः भारतसचिव हस्तक्षेप न किया करेंगे। जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धी सुझावोंको पूरा करनेके लिए हस्तक्षेप करना आवश्यक न होगा तबतक भारत कर सम्बन्धी नीति और निर्णयमें भारत सरकारको पूरा अधिकार देंगे। अपेक्षा यह निर्णय हमारे अनुकूल है। परन्तु दो बातों पर विचार करना चाहिए। प्रान्तीय सरकार और भारतीय सरकार का एक मत होना आवश्यक है। दूसरे भारतीय सरकारमें प्रजामत इतना बलवान नहीं होगा जितना प्रान्तोंमें। यह कोई बात नहीं है कि प्रान्तीय और भारतीय सरकार सहज एक मत हो जायँ। फिर भारत को हस्तक्षेपका अधिकार है ही। यह भी साम्राज्यके देशोंके प्रति अखिल साम्राज्य के पालनके लिए। इसीसे हमको शङ्का है। जब उपनिवेशोंको हमारी नीति स्वीकार न हो तो भारत-सचिव किस पक्षकी नीतिका अवलम्बन करेंगे यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। अस्तु आर्थिक दृष्टिसे सुधारोंका महत्व जितना है वह निश्चय ठीक ठीक तभी हो सकता है व्यवसायमें उसका अनुभव हो जाय। इतना तो मानना है कि पहिलेकी अपेक्षा अच्छी दशा सुधारनेके निमित्त अवसर प्राप्त होंगे। पर-विभागने हमारी स्वाधीनता सीमाके कुछ अंशोंमें अवश्य स्वीकार करली गई है। हम आशा करते हैं कि यह नीतिका परिणाम देशके लिए बड़ा लाभकारी होगा और सरकार उदारतापूर्वक मार्गके बाधाओंको दूर करेगी।

अर्थात् नये कारखाने तो दूसरे उन्हें विदेशी व्यापारी अपनी पूँजी लगाकर खोलेंगे। हमारे पास इसका एक उपाय है। कम्पनीके कानूनमें यदि ऐसा संशोधन कर दिया जाय कि कोई विदेशी कम्पनी यहाँ नहीं खुल सकती जब तक कि उसकी पूँजीका एक निश्चित भाग भारत-वासियोंका न हो अथवा जब तक कि भारतवासियोंको निश्चित पूँजी उसमें लगानेका पूरा अवसर न दिया गया हो तो यह कठिनाई अवश्य दूर हो सकती है। इस सम्बन्धमें इतनाही लिखकर हम सन्तोष करते हैं क्योंकि ऐसे जटिल प्रश्नकी यहाँ पूरी व्याख्या नहीं हो सकती।

साम्राज्यकी व्यापार नीति

यह सब जानते हैं कि इंगलिस्तानके लोग प्रायः बन्धन-रहित व्यापार पसन्द करते हैं। जब उनका व्यापार इस योग्य हो गया कि अन्य देशवालोंसे मुकाबला कर सके तभीसे उन्होंने इस नीतिका अवलम्बन कर लिया। विलायतके कारखानोंको कच्चामाल और वहाँकी प्रजाको अन्न चाहिए। यह अन्य देशोंसे आते हैं। जितने सस्ते यह विलायतमें आकर पड़ें उतना ही विशेष लाभ है। इस लिए बन्धन रहित व्यापारमें अंगरेजोंको लाभ रहा है परन्तु भारतवर्ष कृषिप्रधान देश होनेसे और व्यवसायिक दशामें असुन्नत होनेसे बन्धन रहित नीतिका पक्ष-पाती नहीं है। यहाँ अभी इस बातकी आवश्यकता है कि आयातपर कर लगाकर देशी उद्योग धन्धोंको उत्तेजना दी जाय। परन्तु हमारी व्यापार नीति विदेशियोंके हाथमें है। युद्धके बाद व्यापार नीति बदली है। साम्राज्यके उपनिवेशोंमें परस्पर सम्बन्ध विशेष लाभकारी बनानेके लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि आपसके आयात निर्यातपर अन्य देशोंकी अपेक्षा कम कर लगाया जाय। भारतवासियोंको इस नीतिके अवलम्बनमें आपत्ति है, क्योंकि इससे भारत-वर्षको लाभ होनेकी सम्भावना नहीं है बल्कि हानिकी आशंका है। मालूम होता है कि सपक्ष-करकी नीति हमको हानिकारी होनेपर भी सरकार धीरे धीरे ग्रहण कर लेगी। इसके प्रमाण मिल रहे हैं। हम सिवाय विलायतके और किसी देशसे रंग नहीं मँगा सकते। दूसरे देशवाले सस्ता रंग दें तो भी हम नहीं ले सकते। इससे सरासर हमको हानि है। मँहगा माल अंगरेजोंके लाभके लिए हमको खरीदना पड़ता है। दूसरी ओर यहाँसे खाल जो बाहर जाती है उसपर निर्यातकर औरोंसे १५ सैकड़ा है तो अंगरेजी उपनिवेशोंके लिए वह घटाकर ५ सैकड़ा रक्खा गया है। इससे भी हानि है। खरीदने और बेचने दोनोंमें हमको इस नीतिसे हानि उठानी पड़ती है। सुनते हैं कि भारतसरकार सपक्ष-करकी दर निश्चय करनेके लिए चुपके चुपके विचार कर रही है। सरकारको अपनी नीति भारतका हित समझकर निश्चय करनी चाहिए और प्रजाको अपनी राय देनेका अवसर मिलना चाहिए।

सरकारी मन्तव्य

गत वर्ष औद्योगिक कमीशनने दो वर्षकी पूरी जाँचके बाद अपना विवरण भारतसर-कारके पास भेजा था। इस कमीशनको मुख्यतः दो बातोंपर अपनी राय देनेके लिए कहा गया था। पहिली तो यह कि देशी पूँजीको लाभकारी व्यवसायोंमें लगानेके लिए उद्योग-धन्धोंमें सुभीता और अवसर है। दूसरी यह कि सरकार उद्योगधन्धोंकी उन्नतिमें किस प्रकार, और

छोटे छोटे उद्योग और कारीगरी

वर्तमान औद्योगिक स्थितिने बड़े बड़े कारखानोंका बनाना आवश्यक कर दिया है। भाप और बिजलीसे जो कारखाने चलते हैं उनमें माल सस्ता तैयार होता है क्योंकि बहुत सा माल एक दम बनाया जाता है। जिन देशोंको विदेशी कारखानोंसे मुकाबला करना है, उनको सस्ता माल बनाये बिना सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। और इसके लिए और सुविधाओंके साथ बड़े कारखानोंका बनाना आवश्यक है। यह बड़ी पूँजी बिना सम्भव नहीं, और जो पूँजी भी मिल जाय तो सब जगह कारखाने खुल भी नहीं सकते। इसलिए छोटे छोटे उद्योग जो घरोंमें ही चल सकते हैं यदि लोगोंको सिखाये जायँ और उनका प्रचार किया जाय तो बड़ा लाभ हो। जब अकाल पड़ता है तो खेतोंपर काम न रहनेसे बहुत लोग बेकाम हो जाते हैं। उदरपालनके लिए वे काम करना चाहते हैं परन्तु काम नहीं मिलता। कारीगरी या दस्तकारी कोई आती नहीं, जो ऐसे समय कुछ सहायता करसके। तो छोटे उद्योग धंधोंका प्रचार कर उनको सर्वप्रिय बनानेसे एक लाभ यह होगा कि अकालकी यातना कुछ अवश्य घट जायगी। लोग निरी खेतीके आश्रित न रहेंगे। आमदनीका एक नया ढंग निकल आवेगा। और साथमें एक दस्तकारी या कारीगरी भी आ जायगी। कारखानोंमें काम करनेवालोंको बड़े शहरोंमें रहना पड़ता है जहाँ घंटों काम करनेसे और प्रतिकूल जलवायुसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कुछ अंशमें यह विपत्ति भी छोटी दस्तकारीके प्रचारसे दूर हो जायगी। इनका प्रचार सुगमतासे हो सकता है यदि सहयोग समितियोंकी सहायतासे इस कामको किया जाय। पहिले तो शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए और फिर आवश्यक पूँजी या लागतका। इतना होनेपर बनी हुई चीज़ो-

की निकासीका । यदि सहयोग समितियाँ इस कामको उठालें तो बड़ी जल्दी सफलता प्राप्त हो सकती है । यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल उन्हीं चीज़ोंको पहिले बनाना चाहिए जिनकी माँग सदा रहती है और सब जगह जिनकी खपत हो जाती है । इसमें जोखिमका भी डर न रहेगा । महात्मा गाँधी घर घरमें सूत कातने और कपड़ा बुननेके प्रबंधके बड़े अभिलाषी हैं । यदि केवल इसकाही समुचित प्रचार हो जाय तो प्रजाकी बड़ी भलाई हो और स्वदेशीका प्रचार भी हो ।

सहकारिता और औद्योगिक उन्नति

खानबहादुर वाजिदहुसेनने हालमें एक व्याख्यान अलीगढ़ कालिजमें दिया था । आप सहकारी समितियोंके विभागमें एक उच्च सरकारी कर्मचारी हैं । अतएव आपका कथन विचारने योग्य है । आपका कहना है कि भारतवर्षके पास बहुत बड़े बड़े कारखाने खोलने और पाश्चात्य देशों जैसी औद्योगिक उन्नति करनेके उपयुक्त साधन उपस्थित नहीं हैं । कोयला और लोहा दोनों बहुतायतसे पास पास मौजूद हों तब उन्नति हो सकती है । परन्तु यह सुयोग यहाँ पर नहीं है । विलायत, अमरीका और यूरोपके अन्य देशोंने इसी कारण इतनी उन्नति कर दिखाई है । जर्मनी, इंग्लिस्तान और अमरीकामें जितना कोयला निकलता है वह सब अन्य सब देशोंका चौगुना है । और इन्हीं देशोंमें लोहा भी खूब निकलता है । जैसे लोहे और कोयलेकी भारतवर्षमें कमी है उसी प्रकार अन्य खनिज पदार्थ भी बहुतायतसे नहीं पाये जाते । अतएव बड़े कारखानोंकी उन्नति एक विशेष हद तक ही हो सकती है, और भारतवर्ष कृषिप्रधान देश ही रहेगा । छोटे छोटे उद्योग धन्धोंकी खूब वृद्धि हो सकती है । उनकी रायमें सहयोग समितियों द्वारा इनका प्रचार देशोंमें सुगमतासे हो सकता है । इस देशका जलवायु भी ऐसा नहीं है कि कारखानोंमें बहुसंख्यक लोग बिना स्वास्थ्यको हानि पहुँचाये काम कर सकें । जो मनुष्य खेतीके आश्रित हैं उनका गाँवोंसे शहरोंमें आकर बसना असम्भव है । इसलिए खेतीकी उन्नति अच्छी प्रकार करनी चाहिए और साथमें सहयोग समितियों द्वारा छोटी छोटी कारीगरीके प्रचारका प्रबन्ध होना चाहिए । उनकी रायमें जो लोग भारतवर्षको दूसरा इंगलैंड जैसा एक दम कारखानोंसे भरा हुआ देश बनाना चाहते हैं वे प्राकृतिक परिस्थितियोंका ख्याल नहीं रखते । उनका यह मतलब नहीं है कि उद्योग धंधे और कारखानोंकी उन्नति करके इनकी वृद्धिके लिए उद्योग न करना चाहिए । अभी इधर भी बहुत कुछ करना बाकी है परन्तु कृषिकी ओरसे उदासीनता न होनी चाहिए । यही इस देशका मुख्य व्यवसाय रहेगा ।

साहूकार और सहकारिता

सहकारिताकी देशमें अच्छी उन्नति हो रही है । मद्रास बंगाल और पंजाब [illegible] इसका प्रचार विशेष रूपसे हो रहा है । यह बड़े हर्षकी बात है । सहकारिताके [illegible] एक विभागकी तरफ़ [illegible] है । उसका उद्देश्य [illegible] है [illegible] और किसी प्रकारका [illegible] नहीं है । परन्तु इसके [illegible] साहूकारका [illegible] और [illegible] है । [illegible]

ही नहीं चल सकता। यदि इस समय पर कांग्रेस सहायता न दे तो खेती बन्द हो जाय और जितना उसका आधार लेना पड़ता है उतना ही किसानोंके लिए ऋण मुक्त होना कठिन होता जाता है। साहूकारको सूद बहुत मिलता है और जहाँ सहकारिताका प्रचार हो जाता है वहाँ साहूकारको सूदकी आमदनी घट जाती है। इसलिए साहूकार सहकारिताका विरोधी है बल्कि शत्रु है। यदि सहकारिताके प्रचारमें साहूकार सहायक बना लिया जाय तो बड़ा ही लाभ हो। एक तो बलवान शत्रु मित्र बन जाय दूसरे आर्थिक आवश्यकताके लिए साहूकारसे यथेष्ट धन भी मिल जाय। मि० जान केनीका कथन है कि साहूकारकी सहायता बिना सहकारिताका प्रचार अच्छी प्रकार हो ही नहीं सकता और जब यह प्राप्त न होगी तब तक सरकारी सहायताकी आवश्यकता बनी रहेगी। सहकारितामें साहूकारको भाग देना अच्छा तो नहीं परन्तु आवश्यक है। यदि साहूकारको केन्द्रस्थ बंककी कमेटीका सभासद बना लिया जाय तो उसकी सहायता मिल सकती है। फिर सरकारी देख रेखकी आवश्यकता कम हो जायगी और पूँजी की कमी न रहेगी। इसके लिए तीन बातोंकी आवश्यकता है। एक तो प्रत्येक हिस्सेदारको विशेष संख्यामें बंकके हिस्से लेनेका अधिकार दिया जाय और दूसरे कमसे कम चार फीसदी सूद देनेकी सरकार जिम्मेदारी अपने ऊपर ले और तीसरे यह कि बंकका काम हिस्सेदारोंके हाथमें छोड़ दिया जाय। एक सरकारी आदमी रहे जो केवल इस बातकी निगाह रखे कि नियमों का पालन ठीक होता है। साहूकार थोड़ा सूद पा कर भी सन्तुष्ट होगा क्योंकि उसको अपने रुपये के डूबनेकी शंका न रहेगी। यदि ऐसी व्यवस्था हो जाय तो सहकारितामें एक नये बलका सञ्चार हो जाय और उसमें पूरी सफलताके साथ कृषि और उद्योगकी उन्नति हो और शिक्षा का भी शीघ्र प्रचार हो।

हड़ताल

कानपुरमें फिर एक हड़ताल हो गई। छोटे लाट तक मजदूरोंकी पुकार पहुँची। अब फिर वहाँ हड़ताल होनेकी आशंका है क्योंकि जिन मजदूरोंने हड़ताल नहीं की उनका वेतन नहीं बढ़ाया गया। उधर ताता मिल्समें भी हड़ताल हो गई। नागपुरमें छः हजार मजदूर काम छोड़े बैठे हैं। महँगीके कारण मजदूरोंकी ही नहीं बल्कि मध्यमश्रेणीके लोगोंकी भी जिनकी आमदनी बँधी हुई है, दशा शोचनीय हो रही है। इसलिए मजदूरोंके साथ सबको सहज ही सहानुभूति हो जाती है। उनका निर्वाह पहिलेके वेतनसे नहीं हो सकता। एक बात बड़े सन्तोषकी है कि इस देशमें हड़ताल करने पर मजदूर लोगोंने न तो बलवे किये न लूट खसोटके साथ माल असबाबका नाश किया। न्याय और नीति अवलम्बन कर वे लोगोंकी सहानुभूति और विश्वासके पात्र बने रहे। लोकमत उनके पक्षका तभी तक सहायक हो सकता है जब तक वे कोई अनीति न करें। उनको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जैसे जैसे उनमें संघ-शक्ति बढ़ती जाती है वैसे ही समाजके प्रति उनका कर्त्तव्य ऊँचा होता जाता है। इस संघ शक्तिका दुरुपयोग न हो इसीमें उनका गौरव है। नीतिज्ञ नेताओंकी सलाहका वे मूल्य समझते रहें तो उनका कल्याण है। लोकमान्य तिलककी शिक्षा मानकर मजदूरोंको जगह जगह अपने दल बनाने चाहिएँ जिससे अपनी आर्थिक दशा सुधारनेके साथ वे समाजके एक बलवान अंग बन सकें।

ज्ञातव्य विषय तथा अंक

अफगानिस्तानकी लड़ाईमें अबतक भारत सरकारके २१ करोड़ रुपयेके लगभग व्यय हुए हैं।

सम्वत् १९७५ में समस्त संसारमें चाँदीकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई:—

	लगभग मन
संयुक्तराज्य अमरीका	६२,३४४
मेक्सिको	२३,४३८
कनाडा	१६,४०६
दक्षिण अमरीका	१३,०६२
आस्ट्रेलिया	८,६०२
चीन, जापान और एशियाके अन्य देश	७,३६६
भारतवर्ष और ब्रह्मदेश	१,५६२
अन्य देश	६,२५०
कुल उत्पत्ति	१२८,७४० मन थी

लड़ाईसे पहिले विलायती प्रजाकी सम्पत्ति रु० २४०,०००,०००,००० अनुमान की गई थी। युद्धके बाद जायदाद, खान, कल, कारखाने आदिके मूल्य बहुत बढ़ गए हैं। अनुमानसे अब सम्पत्तिका मूल्य रु० ४५०,०००,०००,००० से कम न होगा।

संसारका एक वर्षका कागजका खर्च २ करोड़ १६ लाख मन के लगभग है।

भारतवर्षमें ऊनी कपड़ेका आयात।

वर्ष	गज
१९७०	१०,५५८,२१८
१९७१	२७,३२८,७७२
१९७२	१२,५७०,२६७
१९७३	१२,६७२,३००
१९७४	८,८६६,७६३
१९७५	६,२२६,७३५

पिछले चार वर्षोंकी घटती घनी लड़ाईके कारण हुई है।

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।

———:o:———

विशेष सूचना:—जो लोग अपना रोज़नामचा अंग्रेज़ी सन्के अनुसार रखते हैं उनके सुभीतेके लिए सन् १९२१ का और रोज़नामचा जनवरीसे दिसम्बरके पूर्व ही छप जायगा। पत्री जनवरी सन् १९२० से लेकर १५ दिसंबर तकके पृष्ठ इसके अन्तमें लगे रहेंगे जिससे यह पत्री जनवरी १९२० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यका सरकारी मसविदा।

१—यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान् राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका अब दुःख कष्ट न देवें। उसे इस भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—हर स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है।

माण्टेगु साहब और चेम्सफोर्डने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अंग्रेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कामकाज सदा अंग्रेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उसके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्याकांक्षी अंग्रेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी ए, एल-एल बी (केम्ब्रिज) बार-एट-ला के सम्पादनमें तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ५८०, मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

अब्राहम लिंकन।

२—इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेने निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुटकारा दिला-कर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उच्चपद दिलाया है।

अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उन्हींमेंसे एक है। मृतक मनमें भी पुनः प्राणका सञ्चार करनेवाला है। उनके जीवनसे हम सीखते हैं कि एक रङ्क किस तरह राजा बन सकता है। गुलामोंके वंशमें उत्पन्न हो कर, दरिद्र और कंगाल होते हुए, स्कूलमें केवल एक वर्ष शिक्षा पाकर भी अब्राहम किस प्रकारसे एक प्रसिद्ध वक्ता, लेखक और राजनीतिज्ञ बना। यही नहीं, एक साधारण कुलमें उत्पन्न होकर वह अमरीका सदृश स्वतन्त्र राष्ट्रका राष्ट्रपति भी बन गया। अब्राहमने वहाँके गुलामोंका असह्य कष्ट किस प्रकार दूर किया, आदि अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने योग्य हैं। अंगरेजीमें लाखों प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। इस देशके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १५०, मूल्य ॥) आठ आने।

देशमें अन्नका औसत थोकभाव मनके हिसाबसे इस प्रकार रहा:—

नाम	सम्वत् १९५७			सम्वत् १९६७ १९७०			सम्वत् १९७१ १९७४			सम्वत् १९७५			सम्वत् १९७		
	रु.	आ.	पाई.	रु.	आ.	पाई.	रु.	आ.	पाई.	रु.	आ.	पाई.	रु.	आ.	पाई.
गेहूं ...	३	९	०	३	७	०	४	६	१	५	०	५	७	१	४
जौ ...	२	९	११	२	२	२	२	१४	६	२	१५	४	४	११	१
चावल ...	३	७	९	४	६	२	५	२	५	४	३	९	७	७	४
ज्वार ...	३	१२	१	२	९	७	२	१२	२	४	६	२	७	१०	१०
बाजरा ...	३	८	२	२	१४	२	३	३	१०	४	९	४	८	५	१
मक्का ...	३	३	०	२	४	६	३	१	१०	३	५	११	५	८	१
रागी ...	२	९	६	२	१४	१	३	०	११	३	४	०	७	५	[illegible]
चना ...	३	१	४	२	४	१०	३	८	२	३	४	८	५	१५	१

ऊपरकी संख्याओंको देखनेसे जान पड़ता है कि अन्नका भाव बराबर बढ़ता चला जा रहा है। किसी किसी अनाजका भाव तो एकही वर्षमें दूनेके लगभग महँगा हो गया है।

समस्त भारतवर्षमें साधारण दशामें २ अरब १६ करोड़ मनके लगभग अन्न उत्पन्न होता है। देशमें गेहूंका खर्च २ करोड़ १६ लाख मनका है।

चाँदीकी कमीके कारण इकन्नी और दोअन्नीकी तरह अठन्नी और चवन्नी भी निकिल की निकाली गई हैं। रेज़गीकी बाज़ारमें बड़ी कमी है। नये सिक्कोंसे यह पूरी होगी।

एक वर्षकी आयु तकके बालकोंकी मृत्यु-संख्या।

न्यूज़ीलैंड	५१	इंगलिस्तान और वेल्स ...	९८
नार्वे	६८	स्काटलैंड	१२०
स्वेडिन	७२	मदरास प्रान्त	१९९
आस्ट्रेलिया	७१	बंगाल	२७०
फ्रान्स	७८	बिहार उड़ीसा	२०४
हालैंड-बेलजियम	९१	पंजाब	२०६
स्विटज़रलैंड	९४	बम्बई	२३०
डेनमार्क	९४	बर्मा	२२२
आयरलैंड	९७	संयुक्तप्रान्त	२५०

यह मृत्युसंख्या १००० बालकोंमें से है। [illegible]

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।

—:o:—

विशेष सूचना।—जो लोग अपना रोजनामचा अँगरेजी सन्के अनुसार रखते हैं उनके सुभीतेके लिए सं० १६७७ का गौर रोजनामचा आगामी दिसम्बरके पूर्व ही छप जायगा। पहली जनवरी सन् १६२० से लेकर १५ अप्रैल तकके पृष्ठ इसके अन्तमें लगे रहेंगे जिससे यह पहली जनवरी १६२० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यका सरकारी मसविदा।

१—यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान् राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका अब वृथा कष्ट न देवें। उसे इस भारी भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—हर स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है।

माण्टेगु और चेम्सफोर्डने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अँगरेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कागजात सदा अँगरेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उनके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्यार्थी अँगरेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अत: बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी० ए०, एल-एल० बी०, (केम्ब्रिज) बार-एट-ला के सम्पादनमें तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ६८०, मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

अब्राहम लिंकन।

२—इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेसे निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीके गड्ढेसे निकालकर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उच्चपद दिखाया है।

अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उन्हींमेंसे एक है। [illegible] करनेवाला है। इसके जीवनसे हम सीखते हैं कि एक [illegible] किस तरह [illegible] बन सकता है। गुलामीके घरमें उत्पन्न हो कर, दरिद्र और अनाथ हालत हुए, स्कूलसे केवल [illegible] अब्राहम लिंकन किस प्रकारसे एक प्रसिद्ध वकील, लेखक और राजनीतिज्ञ बना। इसी तरह एक साधारण कुलमें उत्पन्न होकर वह अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रका प्रेसिडेण्ट भी बन गया। अमेरिकासे करोड़ गुलामोंका दासत्व बन्धन किस प्रकार दूर किया, इत्यादि बातें [illegible] पढ़ने योग्य हैं। अंग्रेजीमें लाखों प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। इस देशके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १३० मूल्य ॥) आठ आने।

देशमें अन्नका औसत थोकभाव मनके हिसाबसे इस प्रकार रहा:—

नाम	सम्वत् १९६७	सम्वत् १९६७-१९७०	सम्वत् १९७१-१९७४	सम्वत् १९७५	सम्वत् १९...
	रु. आ. पाई.	रु. आ. पाई.	रु. आ. पाई.	रु. आ. पाई.	रु. आ. पा...
गेहूं ...	२ ९ ०	२ ७ ०	४ ६ १	५ ० ५	७ १ ४
जौ ...	२ ९ ११	२ २ २	२ १४ ६	२ १५ ४	४ ११ २
चावल ...	२ ७ ९	४ ६ ३	५ २ ५	४ २ ९	७ ७ ७
ज्वार ...	२ १२ १	२ ९ ७	२ १२ ३	६ ६ २	७ १० १०
बाजरा ...	२ ८ २	२ १४ ३	२ २ १०	४ ९ ४	८ ५
मक्का ...	२ २ ०	२ ४ ६	२ १ १०	२ ५ ११	५ ८
रागी ...	२ ९ ६	२ १४ १	२ ० ११	२ ४ ०	७ ५
चना ...	२ १ ४	२ ४ १०	२ ८ २	२ ४ ८	५ १५

ऊपरकी संख्याओंको देखनेसे जान पड़ता है कि अन्नका भाव बराबर बढ़ता चला जा रहा है। किसी किसी अनाजका भाव तो एकही वर्षमें दूनेके लगभग महँगा हो गया है।

समस्त भारतवर्षमें साधारण दशामें २ अरब १६ करोड़ मनके लगभग अन्न उत्पन्न होता है। देशमें गेहूंका खर्च २ करोड़ १६ लाख मनका है।

चाँदीकी कमीके कारण इकन्नी और दोअन्नीकी तरह अठन्नी और चवन्नी भी निकल... निकाली गई है। खेरीजकी बाजारमें बड़ी कमी है। नये सिक्कोंसे यह पूरी होगी।

एक वर्षकी आयु तकके बालकोंकी मृत्यु-संख्या।

...लैंड	५१	इंग्लिस्तान और वेल्स	९८
... ...	६८	स्काटलैंड	१२०
...या	७२	मद्रास प्रान्त	१९९
... ...	७२	बंगाल	२७०
...जियम.	७८	बिहार उड़ीसा	२०४
...ड	९१	पंजाब	२०६
... ...	९४	बम्बई	२२०
... ...	९४	बर्मा	२३२
... ...	९७	युक्तप्रान्त	२४२

...ह मृत्युसंख्याएँ १००० बालकोंमें से हैं। यह संख्याएँ सब एकही वर्षकी नहीं हैं। ...वर्षके भीतरकी हैं। हमारे प्रान्तमें जन्म लेनेके एक वर्षके भीतर तिहाईसे अधिक ...ते हैं। यह संख्या सबसे बढ़ कर है।

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।

———:०:———

विशेष सूचना।—जो लोग ज्ञानमण्डल [illegible] [illegible] ग्राहक बनते हैं उनके [illegible] [illegible] १)०० का और ज्ञानमण्डलका आगामी [illegible] पूर्ण हो [illegible] जायगा। पहली जनवरी सन् १९२० से लेकर १८ महीने तकके पूर्व इसके ग्राहक [illegible] रहेंगे [illegible] यह पहली जनवरी १९२० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यका सरकारी मसविदा।

१—यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान् राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका कष्ट वृथा करने न देवें। उसे इस भारी भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है।

माण्टेगु और चेम्सफोर्डने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अंगरेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कामकाज सदा अंगरेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उसके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्याकांक्षी अंगरेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे हम रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी० ए०, एल-एल० बी. (केम्ब्रिज) बार-ऐट-ला के सम्पादनसे तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ६८०, मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

अब्राहम लिंकन।

२—इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेसे निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लग गया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुटकारा दिला-कर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उपभोग दिलाया है।

अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उन्हींमेंसे एक है। मृतक मनमें भी पुनः आशाका संचार करनेवाला है। उनके जीवनसे हम सीखते हैं कि एक रङ्क किस तरह राजा बन सकता है। गुलामोंके वर्गमें उत्पन्न हो कर, दरिद्र और कंगाल होते हुए, स्कूलमें केवल एक वर्ष शिक्षा पाकर भी अब्राहम किस प्रकारसे एक प्रसिद्ध वक्ता, लेखक और राजनीतिज्ञ बना। यही नहीं, एक साधारण कुलमें उत्पन्न होकर वह अमरीका सदृश स्वतन्त्र राष्ट्रका राष्ट्रपति भी बन गया। अब्राहमने हबशी गुलामोंका कष्ट किस प्रकार दूर किया, आदि अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने योग्य हैं। अंगरेजीकी लाखों प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। इस देशके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १६०, मूल्य ॥) आठ आने।

बिहारीकी सतसई।

३—कवि सम्राट् बिहारीके सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् प० पद्मसिं
सर्मांकी अपूर्व समालोचनाने सोनेमें सुगन्ध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू
कवियोंमें तुलनात्मक लेख इसकी विशेषता हैं। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो हिन्दी
समय सरस्वतीमें छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरस और गंभीर है। समा
लोचना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डब
क्राउन १६ पेजी) ३७८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

[दूसरे भागमें बिहारीके प्रसिद्ध दोहोंपर उक्त पंडितजी कृत संजीवन भाष्य
शीघ्रही छपनेवाला है।]

सौर रोजनामचा सं० १९७७।

४—यह जेबी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पचांग, हिन्दी
प्रचार, राष्ट्रीय संस्थाएं, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक लेख
नीतिके उत्तम उत्तम दोहे आदि कई नयी नयी बातें दी गयी है। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पञ्चांग सं० १९७७।

५—यह बड़े बड़े सुन्दर अक्षरोंमें छापा गया है। भीतपर लटकाने लायक है। इ
ऊपरी भाग और पीठपर बड़े पचांगकी सारी बातें घण्टों तथा मिनिटोंमें दी हैं। इसको प्र
सभी लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, यह ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनि
लग्नसारिणी भी दी गई है। मोटे सफेद कागजपर छपा है। मूल्य ।=) छः आने।

छप रही हैं शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

६—इटलीके विधायक महात्मागण।
७—जापानकी राजनैतिक प्रगति।
८—भारतवर्षका प्राचीन इतिहास।
९—पश्चिमी यूरोपका इतिहास।
१०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।

प्रचारित पुस्तकें।

. स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचन्द्र शर्मा एम्० ए० (इलाहाबाद), एम्० एस्-सी० (विक्टो-
रिया), एस्० सी० एस्० (लन्दन), ने जिस परिश्रम, उद्योग तथा आवेग [illegible] पुस्तकें
लिखी थी यह बतलानेकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपने लघु किन्तु परम उपयोगी जीवनका
बहुत समय इन पुस्तकोंकी रचना तथा प्रचारमें ही लगा दिया था। उनसे लाभ उठाना या न
उठाना हमारे हाथमें है।

हिन्दी कैमिस्ट्री।

१—उर्दूमें केमिस्ट्रीका नाम है "कीमिया"। अब कीमिया शब्द हमारे यहां केवल धातु-
का सोना बनानेका [illegible] माना जाता है। दूसरे देशवाले इस [illegible] इसमें [illegible]

पाश्चात्यमें मिट्टीसे सोना बनाते हैं। कोयलेके धूएँसे, कूड़े करकटसे भाँति भाँतिकी उपयोगी वस्तुएं तैयार करके मालामाल हो रहे हैं। देशी भाषा जाननेवालोंके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १४०। मूल्य १) एक रुपया।

सरल रसायन।

२—इसमें रसायनशालाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय, तत्वोंका वर्णन, धातु, विधातु तथा उपधातुओंका भेद, सब प्रकारके तेज़ाब, लवण, संयोग वियोगके परिणाम, संकेत, सूत्र, शक्ति, अणु, परमाणु, भार इत्यादिका वर्णन कहानीके रूपमें अत्यन्त रोचकतासे दिया गया है। पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—वार्निश और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

जगत् व्यापारिक-पदार्थ-कोष।

७—इस ग्रन्थके नामहीसे इसके अन्तर्गत विषयका परिचय मिल जाता है। इस पुस्तकका लक्ष्य यह है कि केवल देशी भाषा जाननेवालोंको भिन्न भिन्न पदार्थोंका व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिए माल कैसे तैयार किये जायँ इत्यादि बातोंका ज्ञान प्राप्त हो। व्यापारियोंके लिए भी यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। इस कोषसे कितना लाभ पहुँच सकता है इसका वर्णन करना कठिन है। केवल एक बार देखनेसे ही सब बातें मालूम हो सकती हैं। सम्पादक बाबू ठाकुर प्रसाद। पृष्ठ संख्या ४०५, मूल्य ५) पांच रुपया।

हिन्दी [illegible]।



वर्ष १ | श्रावण १९७७ | संख्या ४

सामाजिक जीर्णोद्धार और उत्कर्षके ढंग

[illegible] सर्वाण्युपकरोति सर्वांसि [illegible] ॥
[illegible] च सर्वाण्येषि [illegible] सुजना: कृत्स्नम् ॥

८—सामाजिक समृद्धिमें शिक्षाध्यक्षका स्थान



प्राचीन भारतीय विद्वानोंके अनुसार समाजशास्त्रीमें शिक्षाका प्रधान स्थान समझा गया है। वास्तवमें भी मनुष्यके जीवनमें प्रथम व सर्वप्रधान स्थान शिक्षाका ही है, तत्पश्चात् जीविकाका। राजा शब्दका पर्याय शब्द शास्ता है, शास्ता शब्दके दो अर्थ हैं। (१) आज्ञा देनेवाला, (२) शिक्षा देनेवाला। इसी धातु शासुसे शास्त्र शब्द भी और आज्ञापन-दमन-पर्यक शासन शब्द भी निकला है। प्राचीन संस्कृत शब्दोंका यह गुण है कि उनके अर्थमें ही तत्सम्बन्धी तात्त्विक बातें रक्खी रहती हैं। जैसे राजा शब्द से ही निर्णय हो गया कि प्रजाका रञ्जन करना अर्थात् उनको सुखी रखना यही राजाका परम धर्म है, वैसे शास्ता शब्दसे यह निर्णय हुआ कि प्रजाको उचित शिक्षा देना, तथा सत्कार्यमें लगाना और असत् कार्यमें रोकना, यह भी उसीके दो कर्तव्य हैं। एक जो तीसरा प्रचलित पर्याय शब्द नृप है उससे यह स्पष्ट होता है कि प्रजाका पालन पोषण करना, उनकी आजीविका रोजगारका उचित प्रबन्ध करना, यह भी कर्तव्य राजाका है। पर अकेला आदमी तो सब कुछ नहीं कर सकता। औरोंकी सहायतासे करता है।

अपि यत् सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन राज्यं किं नु महोदयम्॥ मनु० अ० ७॥

ज्ञानप्रधान (आध्यात्मिक) जीवोंके द्वारा प्रजागणमें शास्ता उचित शिक्षा और ज्ञानका प्रचार करता है, तथा क्रियाप्रधान (चारित्रिक) जीवोंके द्वारा शास्ता सत्कार्योंमें

११—लोकमान्य तिलकके व्याख्यान २० व्याख्यान अंग्रेजीमें मूल्य ॥) [illegible]

१२—स्वराज्यके सम्बन्धमें [illegible] श्रीमान माननीय मालवीयजीकी समालोचना। अंग्रेजीमें मूल्य ≈) दो आना।

१३—लोकमान्य तिलकके व्याख्यान २० व्याख्यान और उनकी जमानतका हुक्म हिन्दीमें। पृष्ठ संख्या १०२, मूल्य १।) सवा रुपया।

मानस मुक्तावली।

१४—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य ।≈) छः आना।

भूमण्डलके प्राणी।

१५—श्रीयुत राधाचरणगोस्वामी द्वारा सम्पादित। (डिमाई ८ पेजी ७८ पृष्ठ) मूल्य ॥)

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त।

मिलनेका पताः—

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल,
गुरुधाम,
काशी।

ओ३म् वन्देमातरम्



वर्ष १ } श्रावण १९७७ { अङ्क ४
खण्ड २ } { पूर्णाङ्क १०

सामाजिक जीर्णोद्धार और उत्कर्षके अंग

सत्यं ब्रवीम्युभयलोकहितं ब्रवीमि लोकाद्वतीत्य परमार्थयुतं च वच्मि ।
प्राचीनशास्त्रहृदयं च नवीकरोमि स्वार्थेष्वनुग्रहमहो सुजनाः कुरुध्वम् ॥

८–सामाजिक समृद्धिमें शिक्षाव्यूहका स्थान

प्राचीन भारतीय शिष्टताके अनुसार समाजशरीरमें शिक्षाका अंग प्रधान समझा गया है । कालक्रममें भी मनुष्यके जीवनमें प्रथम वयस्में स्थान शिक्षाका ही है, तत्पश्चात् गार्हस्थ्यादिका । राजा शब्दका पर्याय शब्द शास्ता है, शास्ता शब्दके दो अर्थ हैं । (१) आज्ञा देनेवाला, (२) शिक्षा देनेवाला । एकही धातु शास्से शास्त्र शब्द भी और आज्ञापन-दमना-र्थक शासन शब्द भी निकला है । प्राचीन सांकेतिक शब्दोंका यह गुण है कि उनके गर्भमें ही तत्सम्बन्धी तात्त्विक बातें रक्खी रहती हैं । जैसे राजा शब्द से ही निर्णय हो गया कि प्रजाका रञ्जन करना अर्थात् उनको सुखी रखना यही राजाका परम धर्म है, वैसे शास्ता शब्दसे यह निर्णय हुआ कि प्रजाको उचित शिक्षा देना, तथा सत्कार्यमें लगाना और असत् कार्यमें रोकना, यह भी उसके दो कर्तव्य हैं । एवं जो तीसरा प्रचलित पर्याय शब्द नृप है उससे यह स्पष्ट होता है कि प्रजाका पालन पोषण करना, उनकी आजीविका रोज़गारका उचित प्रबन्ध करना, यह भी कर्तव्य राजाका है । पर अकेला आदमी तो सब कुछ नहीं [illegible] सकता । औरों की सहायतासे करता है ।

अपि यत् सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन राज्यं किं नु महोदयम् ॥ मनु० अ० ७॥

ज्ञानप्रधान (ब्राह्मणवृत्तिक) जीवोंके द्वारा प्रजागणमें शास्ता उचित शिक्षा और ज्ञानका प्रचार करता है, तथा क्रियाप्रधान (क्षत्रियवृत्तिक) जीवोंके द्वारा शास्ता सत्कार्योंमें

अर्थं मोत्रास्मि भोगानां वागदुरुक्तानि च समे ॥ (शांति, अ० ८१)

अर्थात्, नाम ईश्वर, काम गुलामी, आराम थोड़ा, बहुत गाली और बदनामी, यही मेरी किस्मत में है।

पूर्वमें मनु महाभारतादिसे कई श्लोकोंका उद्धरण किया, जिनसे चतुर्वर्ण चतुराश्रमका रक्षण यही राजाका परम धर्म सिद्ध होता है। चाणक्य-कौटिल्यने भी इसका समर्थन किया है।

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात्।

नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्त्तकः ॥ (अर्थशास्त्र, अधि० ३, अ० १)

विष्णुस्मृतिमें और भी स्पष्ट कर दिया गया है। यथा,

प्रजापरिपालनम् वर्णाश्रमाणां स्वे स्वे धर्मे व्यवस्थापनम्। (३, २)

समाजके चार मुख्य अंगोंसे तत्तदुचित कर्म कराना यही सब प्रजाके रक्षण परिपालनका परम उपाय है और यही राजाका कर्म है। जैसे हृदयका कर्म है कि रक्तसंचार द्वारा शरीरके सब अंगोंको जीवित रखना, और उनसे अपना अपना काम कराना। इसीमें सर्व समाजशरीरका कल्याण और शुभ है। इसी हेतुसे राजाको प्रजाका हृदय भी कहा है,

राजा प्रजानां हृदयं गरीयःप्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम्। (म०भा०शां०अ० ६७)

सब अंगोंमें मुख्य मुख है। मुख्य शब्दसे ही यह सिद्ध होता है कि मुखसे मुख्य बना है। समाजप्रबन्धमें शिक्षाप्रबन्ध मुख्य है। ब्राह्मणधर्मका प्राधान्य जो प्राचीन भारतीय समयाचारमें माना गया उसका मार्मिक हेतु यही है। उत्तमज्ञानप्रचारक और तपस्वी जीव ही सच्चा ब्राह्मण है, चाहे जन्मना जापानी, अंगरेज, अमरीकन, जर्मन, फरासीसी, अरब, पारसी, यहूदी, मद्रासी, पंजाबी, बंगाली आदि कुछ भी हो। जिस समाजमें ऐसे सच्चे अध्यापक वर्त्तमान हैं, और आदरपूर्वक वृत्ति पाते हैं, और ज्ञानसंग्रह और ज्ञानप्रचारका अपना धर्म कर्म निर्विघ्न करते हैं, वह समाज बड़ा भाग्यवान् है। उस समाजके सब जीवोंका इस लोकमें भी और परलोकमें भी कल्याण अवश्य होगा, क्योंकि सब सुशिक्षित होंगे। दर्शनशास्त्रोंका सिद्धान्त है कि "जानाति, इच्छति, यतते", पहिले जानता है, फिर तदनुसार इच्छा करता है, फिर तदनुसार यत्न अर्थात् क्रिया करता है। यदि ज्ञान शुद्ध है, कलुषित नहीं है, किसी गूढ़ वासनासे दूषित नहीं हो रहा है, तो उसके अनुसार इच्छा भी शुभ होगी, और इच्छा शुभ होनेसे क्रिया भी शुभ होगी।

३—शिक्षक होनेका अधिकारी कौन है

इसलिए सच्चे ज्ञानका शिक्षा द्वारा प्रचार होना मनुष्योंके व्यष्टिजीवन तथा समष्टिजीवनमें सुखसाधनका मुख्य उपाय है।

जैसा ही लाभ सज्ज्ञान और सद्धर्मके प्रचारसे समाजको होता है वैसी ही बड़ी हानि असज्ज्ञान और मिथ्या धर्म अर्थात् अधर्मके प्रचारसे अवश्य ही होती। इस अर्थको मनुने ज्ञानप्रधान जीवके वर्णनसे प्रकट किया है,

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिंगिनः।

प्रजागण का नियोजन और मार्गमें वर्तन करता है, तथा इच्छाप्रधान (वैश्यवृत्तिक) जीवोंके द्वारा नृप उनका भोजनाच्छादनादिसे पालन पोषण करता है। एवं राजा इन तीन धर्म वाले जीवोंकी सहायता अनुद्बुद्ध अविशेषित बुद्धिवाले (शूद्रवृत्तिक) जीवोंके द्वारा करता है और सब प्रजागणको रंजित, आनंदित, प्रसन्न रखता है। अर्थात् सर्व समाजका संचेतक राजा है, इसमें चारों वर्णके धर्म समासेन वर्तमान हैं। तीन तो स्पष्ट ही हैं, अर्थात् नियमन, रक्षण, और भरण। सेवाधर्मके लिए शुक्रनीतिमें लिखा है,

स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानां च नृपः कृतः।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा ॥ (अ० १)

सेवकको भृति अर्थात् भरण पोषणके योग्य वेतनादि दिया जाता है। राजाको भी कर, बलि, आदि नामसे जो धन प्रजा देती है यह भृति ही है। शिक्षण, रक्षण, पालनादि रूपेण प्रजाकी सेवा जो राजाका कर्तव्य धर्म है उसके बदलेमें, उसे अच्छी रीतिसे करनेके लिए यह भृतिरूप कर प्रजाकी ओरसे राजाको दिया जाता है। यदि यह सेवा न करे तो कर न पावे। कोई देवदत्त (divine right) स्वयंसिद्ध अधिकार या हक़ राजाका प्राचीन संस्कृत शास्त्र में प्रजाके ऊपर नहीं माना गया है। 'ब्रह्मणा कृतः' यहाँ 'ब्रह्मणा' का अर्थ क्या है इसका विचार आगे किया जायगा। समाजकी ही समष्ट्यात्मक सूत्रात्मा इस शब्दका यहाँ आशय है, इसके केवल सूचनार्थ महाभारतके ये श्लोक इस स्थानपर उद्धृत किये जाते हैं,

महानात्मा मतिर्विष्णुर्जिष्णुः शंभुश्च वीर्यवान्।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च तथा ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः।
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते ॥ (अनुगीता, अ० २६)
मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥
तस्मात्पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः।
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत् ॥ (शांति, अ० २८)

अर्थात् जिस पदार्थको सांख्यमें महत् तत्त्व, बुद्धि, और न्यायमें प्रज्ञा, उपलब्धि, इत्यादि नामसे कहा है उसीका पौराणिक संकेत विष्णु, जिष्णु, शंभु इत्यादि है। तथा अहंकार तत्त्वका पौराणिक नाम ब्रह्मा है। और इनमें व्याप्त अथवा प्रेरित जीवोंके लीलास्थान पृथिवी ही का संकेत पद्म शब्दमें है। 'ब्रह्मणा' का अर्थ 'शास्त्रेण' या 'परमात्मना' भी हो सकता है।

निष्कर्ष यह कि प्रजासमूहमें व्याप्त समष्ट्यात्मक सूत्रात्मा स्वतंत्र अथवा प्रजागणकी प्रेरणा करके उन्हींसे, और उन्हींमेंसे, विशिष्ट व्यक्तिको अपना राजा शास्ता, शिक्षक, रक्षक, पालक, पोषक, नायक, पंचायती चौधरी, सभापति, आदि नामसे विहित, स्वामी भी और दास भी नियुक्त करता है। पुराने शब्दकी उपमा ठीक ठीक मिलती है। परन्तु पक्ष, नेता, वर्मा, सेना, कुटुम्बका स्वामी भी होता है और दास भी। इसमें भारतमें एक प्रसंगमें कहा है,

दास्यमैश्वर्यवादेन ज्ञातीनां तु करोम्यहम्।

अर्धं भोक्तास्मि भोक्तानां वाग्दुरुक्तानि च क्षमे ॥ (शांति, अ० ८१)

अर्थात्, नाम ईश्वर, काम गुलामी, आराम थोड़ा, बहुत गाली और बदनामी, यही मेरी किस्मत में है।

पूर्वमें मनु महाभारतादिमें कई श्लोकोंका उद्धरण किया, जिनसे चातुर्वर्ण्य चतुराश्रमका रक्षण यही राजाका परम धर्म सिद्ध होता है। चाणक्य-कौटिल्यने भी इसका समर्थन किया है।

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात्।

नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्त्तकः ॥ (अर्थशास्त्र, अधि० ३, अ० १)

विष्णुस्मृतिमें और भी स्पष्ट कर दिया गया है। यथा,

प्रजापरिपालनम् वर्णाश्रमाणां स्वे स्वे धर्मे व्यवस्थापनम्। (३, २)

समाजके चार मुख्य अंगोंसे तत्तदुचित कर्म कराना यही सब प्रजाके रक्षण परिपालनका परम उपाय है और यही राजाका धर्म है। जैसे हृदयका कर्म है कि रक्तसंचार द्वारा शरीरके सब अंगोंको जीवित रखना, और उनसे अपना अपना काम कराना। इसीमें सर्व समाजशरीरका कल्याण और शुभ है। इसी हेतुसे राजाको प्रजाका हृदय भी कहा है,

राजा प्रजानां हृदयं गरीयः प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम्। (म०भा०शां०अ० ६७)

सब अंगोंमें मुख्य मुख है। मुख्य शब्दसे ही यह सिद्ध होता है कि मुखसे मुख्य बना है। समाजप्रबन्धमें शिक्षाप्रबन्ध मुख्य है। ब्राह्मणधर्मका प्राधान्य जो प्राचीन भारतीय समयाचारमें माना गया उसका मार्मिक हेतु यही है। उत्तमज्ञानप्रचारक और तपस्वी जीव ही सच्चा ब्राह्मण है, चाहे जन्मना जापानी, अंगरेज, अमरीकन, जर्मन, फरासीसी, अरब, पारसी, यहूदी, मदरासी, पंजाबी, बंगाली आदि कुछ भी हो। जिस समाजमें ऐसे सच्चे अध्यापक वर्त्तमान हैं, और आदरपूर्वक वृत्ति पाते हैं, और ज्ञानसंग्रह और ज्ञानप्रचारका अपना धर्म कर्म निर्विघ्न करते हैं, वह समाज बड़ा भाग्यवान् है। उस समाजके सब जीवोंका इस लोकमें भी और परलोकमें भी कल्याण अवश्य होगा, क्योंकि सब सुशिक्षित होंगे। दर्शनशास्त्रोंका सिद्धान्त है कि "जानाति, इच्छति, यतते", पहिले जानता है, फिर तदनुसार इच्छा करता है, फिर तदनुसार यत्न अर्थात् क्रिया करता है। यदि ज्ञान शुद्ध है, अनुचित नहीं है, किसी गूढ़ वासनासे दूषित नहीं हो रहा है, तो उसके अनुसार इच्छा भी शुभ होगी, और इच्छा शुभ होनेसे क्रिया भी शुभ होगी।

६–शिक्षक होनेका अधिकारी कौन है

इसलिए सच्चे ज्ञानका शिक्षा द्वारा प्रचार होना मनुष्योंके व्यष्टिजीवन तथा समष्टिजीवनमें सुखसाधनका मुख्य उपाय है।

जैसा ही लाभ सज्ज्ञान और सद्धर्मके प्रचारसे समाजको होता है वैसी ही बड़ी हानि असज्ज्ञान और मिथ्या धर्म अर्थात् अधर्मके प्रचारसे अवश्य ही होती। इस अर्थको मनुने ज्ञानप्रधान जीवके वर्णनसे प्रकट किया है,

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिंगिनः।

ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥
न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ (अ० ४)

अर्थात् जो धनलाभार्थ अथवा कीर्तिलाभार्थ दाम्भिक और अविद्वान् हैं उनके पोषणसे इहलोक परलोक दोनोंमें देनेवाले और पानेवाले दोनोंका अनर्थ ही होता है। प्रत्युत इनके, जो सच्चे तपस्वी और विद्वान् हैं उनके विषयमें यह लिखा है,

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥
सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुंजते हीतरे जनाः ॥ (अ० १)

ब्रह्म शब्दके अर्थ कई हैं, उनमें दो मुख्य हैं। (१) परमात्मा, चैतन्य, चिति शक्ति, "मैं" "हम" "स्वयं" इत्यादि शब्दोंका अंतिम अर्थ, जिस चैतन्यसे सब जीव जंतु सब ईश्वर सब अनंत प्रकारके देव मनुष्य पशु पक्षी पेड़ मणि पंचभूत आदि संसारमात्र व्याप्त हैं, जो अजर अमर अविनाशी और निर्विकार है, जिस चैतन्यका न आदि मिलता है न अंत, जिसका प्रतिक्षण सब जीवमात्रको " मैं " " मैं " इस स्वरूपसे अनुभव होरहा है, जो ही सब अनुभविता अनुभव और अनुभूत पदार्थोंका एकमात्र आधार अथवा स्रष्टा स्थापयिता संहर्ता है, जिस चैतन्यमें सब संसार ओत प्रोत अर्थात् पिरोया है, जिसकी व्यापक एकताके कारण सब संसार एक होरहा है और सब जीव परस्पर सबद्ध हैं, जिससे एकके सुखदुःखसे औरोंको सुखदुःख होता है, जिसकी हार्दिक एकताके कारण सुखदेनेवालेको लौटकर सुख मिलता है और दुःखदेनेवालेको लौटकर दुःख मिलता है,

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
स्वयं कृतं स्वेन फलेन युज्यते शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम् ॥ (गरुडपुराण)

ब्रह्म शब्दका पहिला अर्थ है। (२) दूसरा अर्थ वेद है। " अनन्ता वै वेदाः " ऐसा तैत्तिरीय ब्राह्मणकी स्वयं श्रुति है। व्युत्पत्त्या भी "यद् विद्यते तद् वेदयति यः स वेदः", अर्थात् जो वस्तु सत् है, विद्यमान है, असत् अथवा मिथ्या नहीं है, उसको जो बतावे जनावे वह वेद है। इस प्रकारसे जितने सद्ज्ञानप्रतिपादक शास्त्र हैं सबही वेदके अन्तर्गत हैं। प्राचीन बुद्धि ऐसी ही थी। इसी हेतुसे उपवेद, वेदांग, वेदोपांग, विद्या, वेदक इत्यादि शब्दोंका प्रयोग होता था, जो सबही एक विद धातुसे बने हैं। मुण्डकोपनिषद्में स्पष्ट कहा है,

द्वे विद्ये वेदितव्ये ... परा चैवापरा च ।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छंदो ज्योतिषमिति ।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥

अर्थात् जो वाक्यसमूह आजकल विशेषकर वेदशब्दसे आग्रहपूर्वक परिच्छिन्न किये जाते हैं वे सब विद्याशब्दमें अन्तर्गत किये हैं और वेद और विद्यामें तात्त्विक भेद नहीं किया। सच्ची सद्विद्या वेद है। सद्विद्या और असद्विद्यामें क्या भेद है? तो यह भेद है कि जो विद्या सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापी सर्वाधार चैतन्यको मानती हुई, मतोंका विरोधपरिहार करती हुई, सबका समन्वय दिखाती हुई, संसारके सृष्टि-स्थिति-लयका तथा जीवकी गति और बन्धमोक्षका वस्तुस्वरूप बताती है, वह तो सद्विद्या है। और जो ऐकदेशिक मतोंका अन्यमतविरोधेनैव प्रतिपादन करती है वह असत् है, उसको वेद कहना ठीक नहीं। जैसे चैतन्य एक है और उसमें समस्त विरुद्ध भावोंका भी समाधान और एकत्रभाव है, वैसेही विद्या-वेद भी एक ही है और उसमें सब विरुद्धवत् दृश्यमान मतोंका भी समन्वय होजाता है। गीताके भी इन श्लोकोंसे यह अर्थ सिद्ध होता है,

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम् अमृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥

अर्थात्, "अहम्", "मैं" यह जो अनुभवसामान्य प्रत्येक जीवमें हो रहा है यही ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मका प्रमाण है, ब्रह्मकी प्रतिष्ठा है, और यही शाश्वत धर्मकी भी प्रतिष्ठा है, तथा ऐकांतिक एकमात्र सुखकी भी। क्योंकि इस अंतरात्माकी एकताही का आविर्भाव परस्पर प्रेम है, और परस्पर प्रेम प्रीति भक्ति उपकार ही से लोकसंग्रह लोकधारण होता है, और यह धारण ही धर्म है। अब सब संसारकी वस्तुओंके विस्तारको एक चेतनामें और सबकी जड़मूलको भी उसी एकमें देखता है तभी ब्रह्मका अनुभव संपन्न होता है, तभी ज्ञान संपूर्ण होता है। जिस ज्ञानसे भूतोंमें एकही चेतनाके अव्यय भावको पहिचानता है (प्रत्यभिज्ञान करता है) जिससे विभक्तोंको अविभक्त समुच्चय बूझता है (समुच्चयते) वही ज्ञान सात्त्विक है। जिससे सबकी पृथक्त्व, अलगाव, नानात्व, भेदही को देखता है और अभेदको नहीं देखसकता वह ज्ञान राजस है १।

---

१ अंग्रेजी शब्दोंमें पश्चिम देशके विद्वानोंने इन भावोंको यों प्रकट किया है,
"Metaphysics is completely unified knowledge" "the Universal Self, Universal Consciousness, paramatma, atman, holds all", "the Continuum of Consciousness", "the organic unity and continuum of nature" "the evolution of all things from the one Primordial Substance and their dissolution back into it" etc.

ऐसा ही [illegible] और [illegible] जो एक ही अनुभव कर पाता है, और जो सर्व भूतोंका [illegible] और [illegible] करता है वही तो ब्राह्मण है, वही "[illegible]" वही [illegible] कहीं भी किसी देशकी किसी जातिमें जन्मे पर यदि अर्थात् [illegible] [illegible] पैदा होता है, अपने इसके अर्थमें वह अन्य [illegible] हो सकता है, पर [illegible] सर्वभूतहितनिरत बुद्धिसे धर्मात्मा होता है और उसकी [illegible] और सब [illegible] जीते हैं। ऐसी ऊँची [illegible], [illegible], जो ही कोई पहुँच जाय, वही ब्राह्मण है।

एको [illegible] सर्वो ब्राह्मण [illegible] " ([illegible]वार्तिक)

ऐसे ब्राह्मणके लिए मनुका वचन है कि वह धर्ममूर्ति है।

लोकसंधारणार्थेन धर्ममथवत्तं [illegible]।

धारणात् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः ॥ (म० भा०)

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥ (वैशे० सू०)

इत्यादि वाक्योंसे विदित होता है कि प्राचीन समयमें धर्म शब्दसे वही विचार-आचार समझा जाता था जिससे सब जीवोंका कल्याण हो और सबका अन्योन्यसंबंधेन धारण हो, परस्पर प्रीति बढ़े, लोकसंग्रह हो। और इस परस्परसम्बन्धका मूलकारण ब्रह्म अर्थात् चैतन्यकी एकता है। जीवमात्र "मैं" "मैं" और "हम" "हम" ऐसा कहते हैं। इस हेतुसे पर-"ब्रह्म" का ही अपर-रूप "धर्म" है, तथा "ब्राह्मण" भी "धर्म-मूर्ति" है, और ऐसा ही जीव अध्यापक शिक्षक ज्ञानप्रचारक होनेके योग्य है। पर जो जीव राग द्वेष दम्भ मद मत्सर स्वार्थादिसे प्रयुक्त होकर संसारमें भेद और विरोधके भावोंको बढ़ाते हैं, जन्म-नाम-से ही ब्राह्मणम्मन्य है, अपनेको ऊँचा और अन्य सबको नीचा समझते है, वे ब्राह्मण नहीं हैं और ब्राह्मणोचित आदरके अनर्ह हैं।

इस बात पर इतना विस्तार इस लिए किया गया कि शिक्षाही की उत्तमता अथवा अधमतापर समाजके सुख अथवा दुःखका आश्रय है। और शिक्षाकी उत्तमता शिक्षककी बुद्धि और हृदयकी उत्तमता पर आश्रित है। अतः शिक्षक अध्यापकको यथाशक्ति गिना चुना पवित्रात्मा "धर्ममूर्ति" "ब्रह्मसम्पन्न", "सात्त्विकज्ञानपूर्ण" जीव होना चाहिए। उस कर्मणा और दर्शन "ब्राह्मण" का स्वरूप दिखानेकी आवश्यकता थी। (क्रमशः)

भगवान्दास

भारतवर्षका व्यापार

भारतवर्ष की जागृतिका समय है। जिस ओर देखो उसी ओर सुधार सुधारकी महाध्वनि हो रही है। कोई धार्मिक सुधारका नाद कर रहा है, कोई शिक्षा-सुधारकी दुंदुभी बजा रहा है, कोई नीच जातियोंके उद्धारकी चेष्टा कर रहा है, कोई सामाजिक सुधारका बीड़ा उठा रहा है, कोई हिन्दी-प्रचारका डंका ... है, कोई जातीय सुधारके प्रस्ताव पास करा रहा है, पर सबसे प्रचण्ड आन्दोलन जो भारतमें व्यग्र समुद्रकी उत्तुंग लहरोंके समान हिलोरें ले रहा है--राष्ट्रीय सुधार है। ...म्बन्धमें भारतवासियोंके प्रयत्न कुछ सफल भी हुए हैं, क्योंकि भारत-शासन-सुधार-पास हो गया है, जो भारत सुधारकी पहिली सीढ़ी है। इसमें भारतवासियोंको देशकी देख रेख करनेके लिए बहुत कुछ अवसर मिलेगा। ऐसे समयमें भारत-...योंको उचित है कि, भारतसम्बन्धी सभी मामलोंको भली भाँति समझ लें, जिससे उन्हें ...न सम्बन्धी विषयोंमें कहने, सुननेकी सुविधाएँ हों और उनके ज्ञानकी परिधि भी बढ़े। ...से सम्बन्ध रखने वाले विषयोंमें भारतका व्यापार एक बड़े महत्त्वका प्रश्न है क्योंकि ...ी समुन्नति उसकी व्यापारिक वृद्धिपर ही निर्भर है। यूरोपके देशोंका ऐश्वर्य और ... उनके उन्नत व्यापारके कारण ही है। व्यापारिक वृद्धिसे ही देशकी जनता श्री-सम्पन्न सुखी हो सकती है। इस लेखका विषय भारत-व्यापारका दिग्दर्शन कराना है।

पहिले पहिल यह जानना जरूरी है कि, भारतवर्षमें अन्य देशोंसे क्या क्या और ...ना माल आता है और भारतवर्षसे अन्य देशोंको क्या क्या और कितना माल जाता है। ...सके जाने बिना भारतके व्यापारकी दशा जानना असम्भव है।

नीचे ६ वर्षोंका नक्शा देते हैं जिससे प्रति वर्ष भारतवर्षमें आनेवाली चीजोंकी ...त मालूम होगी।

	रु०
...म्वत् १९७० (युद्धसे पहिलेका वर्ष)	१८,३२४) लाख
,, १९७१	१३,७६३) लाख
,, १९७२	१३,१६६) लाख
,, १९७३	१४,६६३) लाख
,, १९७४	१५,०४२) लाख
,, १९७५	१६,६०३) लाख

सं० १९७१ से १९७५ तक युद्धके पाँच वर्षोंमें माल आनेका औसत १४,७२० लाख रुपया है और युद्धसे पहिले पाँच वर्षोंका औसत १४,४७८ लाख रुपया है। इससे पहिले पाँच वर्षोंका औसत ११,१८६ लाख है। इससे भी पहिले पाँच वर्षोंका औसत ७,८४३ लाख है। इस प्रकार प्रत्येक पाँच वर्षोंमें आनेवाली चीजोंकी औसत अधिकाधिक होती गई है। पहिले पाँच वर्षोंकी अपेक्षा दूसरे पाँच वर्षोंमें ३,३४३ लाख रुपये बढ़े। दूसरेकी

३० फल और तरकारियाँ ६३,१७,०००) ,,
३१ डाकखाने द्वारा आने वाली चीजें ४,६६,८६,०००) ,,

यह ब्योरा मुख्य मुख्य उन वस्तुओंका है जो सं० १९७४ में अन्य देशोंसे भारतवर्षमें आई।

नीचे दिये हुए नक्शेसे यह मालूम होगा कि किस किस देशका कितना कितना हिस्सा इन चीजोंके भेजनेमें है—

नाम देश	सं० १९७४	सं० १९६६से १९७० तक पाँच वर्षोंका औसत
१ इंग्लिस्तान संयुक्तराज्य	४६	६३
२ जापान	२०	२
३ अमरीका	१०	३
४ जावा	७	६
५ अंगरेजी राज्यके अन्योन्य भाग	१२	७
६ अन्य देश	१	१३
७ अन्य मित्रराज्य	४	६
	१००	१००

उपरोक्त नक्शा देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होगा कि युद्धके पहिले इंग्लिस्तान वगैरः का भाग ६३ था, और सं० १९७४ में सिर्फ ४६ रह गया। जापानका भाग २ था वह २० हो गया। इसी तरह अमरीकाका भाग ३ से १० हो गया। एजेन्सी और और देशोंका समझिए। इस सम्बन्धमें यह ध्यान देने योग्य बात है कि लड़ाईके समय जापानने भारतवर्षमें माल भेजनेमें दसगुनी तरक्की कर ली। तिगुनीसे अधिक अमरीकाने। इन दोनों देशोंने महा-युद्धको व्यापार बढ़ानेका अच्छा अवसर पाया। इंग्लिस्तान वगैरः का व्यापार दो तिहाई रह गया।

आने वाले मालमें सूती कपड़ा और सूत शक्कर तीनोंकी रकम मिलाकर ७६,१६,६८,४००) रु० होती है जो कुल मालकी कीमतसे लगभग आधी है। अंगरेजी राज्य स्थापित होनेके पहिले इन चीजोंमेंसे कोई चीज भी भारतवर्षमें बाहरसे नहीं आती थी। यहींकी रुईसे सब कपड़ा बना लिया जाता था और इस कपड़ेमेंसे कुछ कपड़ा दूर दूर बाहर देशोंमें जाता था। उस समयमें सबसे अच्छा कपड़ा जिसको अन्य देशोंके बड़े बड़े प्रभावशाली सम्राट् और उनकी रानियाँ पहननेकी लालसा रखती थीं भारतवर्षमें ही बनता था। दो हजार वर्ष पहिले रोम देशके चक्रवर्ती सम्राट् [illegible] [illegible] भारतका पहनकर अपनेको बड़भागिनी समझती थीं। ये हजार वर्ष पहिले मिस्र देशके [illegible] बादशाह और उनकी बेगमें इसी कपड़ेको भारतवर्षसे मँगवाकर पहनती थीं। अब भारतकी यह दशा है कि, अपने पहनने लायक कपड़े भी बना नहीं सकता है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भारतवर्षमें उत्पन्न होती है उसका

अधिकांश अन्य देशोंमें चला जाता है और वहाँसे दस, पद्रह गुनी कीमतके कपड़े बनकर भारतवर्षमें आते हैं, तब कहीं यहाँकी आवश्यकता पूरी होती है। भारतवर्षमें गन्ना हर देशोंसे अधिक परिमाणमें उत्पन्न होता है परन्तु इससे शकर बनानेके लिए समुचित प्रबन्ध न होनेसे भारतवर्षको पद्रह सोलह करोड़ रुपये सालकी शकर उस शकरके सिवा जो यहीं बनती है अन्य देशोंसे खरीदनी पड़ती है। यदि कपड़ा और शकर इन दोनों चीज़ोंके बननेका सुप्रबन्ध भारतवर्षमें ही हो जाय तो अन्य देशोंसे आनेवाली वस्तुओंका आधा मूल्य रह जाय।

सूती कपड़ा मुख्यतः तीन प्रकारका होता है, धुला बिना धुला और रंगा। नीचे के नकशेसे ज्ञात होगा कि भारतवर्षमें ६१ करोड़ रुपये सालका कपड़ा आता है। जो प्रायः इंग्लिस्तान और जापानसे आता है इंग्लिस्तानसे अधिक और जापानसे न्यून। यूरोपके युद्ध-कालमें कपड़ेका बाजार बहुत कुछ जापानने अपने हाथमें कर लिया।

सूती कपड़ा	लड़ाईसे पहिले पाँच वर्षोंका औ० फीसदी		सं० १६७३ फीसदी		सं० १६७४ फीसदी		सं० १६७५ फीसदी	
कपड़े की किस्म	इंग्लिस्तान	जापान	इंग्लिस्तान	जापान	इंग्लिस्तान	जापान	इंग्लिस्तान	जापान
बिना धुला कपड़ा	६८·८	·२	६०	६	८७·२	११·७	६४·२	३४·७
धुला कपड़ा	६८	-	६८·७	·४	६८·८	५	६६·१	३·७
रंगा कपड़ा	६३·५	१	८८·७	४·८	५१·८	४·७	८८·५	६·१

कुल कपड़ेकी आमदमें इंग्लिस्तानका हिस्सा ७०·३ है, जापानका २१·२ अमरीका का १, इटलीका ·१, और हालैण्डका १।

गत वर्ष (सं० १६७६ ई०) में [illegible] लाख रुपयोंकी कीमतके सूती मोजे आये— जिनमेंसे [illegible] लाखके जापानसे, [illegible] लाखके इंग्लिस्तानसे और बाकीके अन्य देशोंसे।

शकर [illegible] किन किन देशोंसे कितनी कितनी आती है इसका ब्यौरा नीचेके नकशेमें दिया है।

देशोंके नाम	युद्धसे पहिले पाँच वर्षोंका औसत	युद्धके तीन वर्षोंका औसत	सं० १६७४	सं० १६७५
	मन	मन	मन	मन
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	-	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	-	-	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	-	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

सं० १९७५ में भारतवर्षमें गन्नेकी शक्कर १,९३,५६,००० मन थी लड़ाईके पीछे क्यूबा द्वीप भारतवर्षमे गन्नेकी शक्करकी पैदावारमें बढ़ गया। इस तरह गन्नेकी शक्कर-की पैदावारके लिए तीन देश हैं— १-क्यूबा द्वीप २-हिन्दुस्थान ३-जावा। सबसे अधिक गन्नेकी शक्कर क्यूबामें होती है, उससे कम हिन्दुस्थानमें, और उससे कम जावामें।

जो माल भारतवर्षसे अन्य देशोंमें जाता है वह बना हुआ माल है, कच्चा नहीं, क्योंकि कच्चे माल की बिक्रीमें उतना लाभ नहीं होता है, जितना बने हुए मालमें। भारत-वर्षमें बना माल तो आता है और यहाँसे बिना बना माल अन्य देशोंको जाता है, जिसके बेचनेसे भारतवासियोंको अधिक लाभ नहीं होता है। अब सुनिये यहाँसे क्या क्या माल किस किस कीमतका अन्य देशोंको जाता है—

पिछले २० वर्षोंमें जितने मूल्यका माल यहाँसे अन्य देशोंको गया है, उन वर्षोंको चार भागोंमें विभक्त कर प्रत्येक भागके मूल्यका औसत लिखते हैं:

सं० १९६० तक पाँच वर्षोंका औसत		रु० १,२१,३१,००,०००)
„ १९६५ „	„	१,६१,८४,००,०००)
„ १९७० (युद्धसे पहिले)	„	२,१६,५०,००,०००)
„ १९७५ (युद्ध समय)	„	२,१५,६०,००,०००)

प्रतिवर्ष माल जानेका मूल्य

सं० १९७० (युद्धसे पहिले)	रु० २,४४,३०,००,०००)
„ १९७१	१,७७,४८,००,०००)
„ १९७२	१,९२,८३,००,०००)
„ १९७३	२,३७,०७,००,०००)
„ १९७४	२,३३,४६,००,०००)
„ १९७५	२,३६,३१,००,०००)

बाहर जानेवाली चीजोंमें मुख्य मुख्य चीजें ये हैं —

१ जूट (कच्चा १२,७२,००,००० और बना २०,६५,००,०००रु)	६५,३७,००,०००)
२ रुई (कच्ची ३१ करोड़ और बना २४ करोड़)	५५ करोड़ रु०
३ अनाज, दाल और आटा	३०,०७,११,०००)
४ [illegible] (कच्चा और बनाया हुआ)	१२,०६,२०० मन० के लगभग
५ चाय	१७ करोड़के लगभग
६ तिलहन (सरसों, अलसी, तिल आदि)	११,२२,००,०००)
७ [illegible]	३,५१,६३,०००)
८ धातु जैसे [illegible] आदि	३,९५,९२,०००)

[illegible]

९ [illegible]	३,१९,६१,०००)
१० [illegible]	२,१४,८३,०००)
११ [illegible]	२,१०,४३,०००)
१२ [illegible]	२,०८,३३,०००)
१३ [illegible] ([illegible])	१,६६,८०,०००)
१४ [illegible]	१,१२,३८,०००)
१५ [illegible]	१,११,८३,०००)
१६ [illegible]	१,०३,३३,०००)
१७ शोरा	६३,२२,०००)
१८ [illegible] ([illegible])	८६,८६,०००)
१९ औषध पदार्थ	६१,८०,०००)
२० कोयला और कोयलेकी [illegible]	१६,६३,०००)
२१ [illegible] चीजें	१,६६,१३,०००)
२२ ऊन (कच्चा, बना हुआ)	६,३६,८०,०००)

उपरोक्त मालकी कीमत सं० १६७४ की है। किस किस देशमें की गई कितना कितना माल गया इसका ब्योरा नीचेके नक्शेमें देखिये–

नामदेश	सं० १६७४	युद्धसे पहिले पाँच वर्षोंका औसत
१ इंगलिस्तान वगैर:	२८	२५
२ अंग्रेजी राज्यके अन्य भाग	२४	१०
३ अमरीका	१३	७
४ अन्य देश	११	२३
५ फ्रान्स	३	७
६ जापान	१२	७
७ दूसरे मित्रदेश	७	१४
	१००	१००

भारतवर्षसे बाहर जानेवाली चीजोंमें सबसे अधिक जाने वाली चीज़ जूट है। जूटकी तिजारत बंगालमें होती है। और, दिन पर दिन उन्नति पर है। सं० १६७४ में बंगालमें इसके ७६ कारखाने थे, जिनकी पूँजी १४,२८,००,०००) थी और इनमें २६,६०,००० आदमी काम करते थे। उस सालमें जूटकी बनी ७५,६४,००,००० बोरियाँ और एक अरब १६ करोड़ ६८ लाख गज कपड़ा अन्य देशोंको गया जिसकी कीमत ४२ करोड़ ८४ लाख रुपया थी। कच्चा जूट भी बाहर जाता है पर बहुत कम। वह उस सालमें सिर्फ ६ करोड़ ४५ लाख रुपयेका गया। इस तरह कच्चा और बना जूट सं० १६७४ में

केवल इनके आनेके आसरेपर ही सन्तोष कर बैठे रहें।

दूसरी चीज जो भारतसे अन्य देशोंको अधिक जाती है, रुई है। सन् ई० १६०३ में ५० करोड़ रुपयेकी गई। सं० १६७४ में ५६ करोड़ रुपयेकी, और १६७५ में ४६ करोड़की गई। बहुत कुछ कच्ची रुई ही जाती है। कती हुई रुईसे परिमाण शुरू ही है और इसकी कीमत इन्हीं तीन सालोंमें १८,१३ और १४ करोड़ थी। सं० १६७५ में भारतवर्षमें रुईकी २६२ मीलें थीं। इनमें ३ लाख ८३ हजार ७ सौ ७० आदमी नौकर थे और इनमें ७०,८६,६७८ मोट रुईकी काममें आई। प्रत्येक मोट ४०० पाउन्ड या १८४ सेरकी होती है। इन कारखानोंमें ६१,६०,४०,८१६ पाउण्ड सब किस्मका सूत बना और सब प्रकारका सूती कपड़ा धुला, बिना धुला, रंगीन तथा मोजे वगैर बने। यह कुल माल ३८,६५,८०,४५० पाउण्ड अथवा १,४५,०७,२६,१६० गज और ८,६६,८६८ दरजन था। सरकारी महसूल जो एक्साइज ड्यूटीके नामसे प्रसिद्ध है १,४२,७०,८८४) रु० का वसूल हुआ। रुई, इंगिलस्तान, फ्रान्स, इटली, जापान, अमरीका आदि देशोंको जाती है। इंगिलस्तान और जापान बहुत रुई लेते हैं।

रुईके बाहर जानेसे भारतवर्षकी बड़ी हानि है। इसको भारतवर्षमें ही कपड़ेके रूपमें बनाना भारतवासियोंका कर्तव्य है, और इसीसे देशकी उन्नति हो सकती है।

तीसरी चीज जो रुईसे कम जाती है नाज, दालें वगैर हैं। यह सं० १६७५ में ४० करोड़की गई। इसमें कई चीजें शामिल हैं। आगेके पृष्ठमें दिये हुए नक्शे * से इन चीजोंके जानेका पूरा ब्योरा मालूम होगा—

* नक्शेमें जो गल्ला सरकारने फौजके लिए भेजा वह शामिल नहीं है। वह सं० १६७४ में ६८,६५,२०० मन और सं० १६७५ में ८२,८३,६०० मन था और बाहर, फौजके लिए भेजा गया।

भारतवर्षसे इतना नाज बाहर जानेके कारण भारतवासी सर्वदा भूखे ही रह जाते हैं। यदि अनाजका बाहर जाना बन्द हो जाय या कम हो जाय तो यह दुर्भिक्ष न रहे। यहाँ अंगरेजी राज्य स्थापित होनेसे पहिले गल्ला बाहर नहीं जाता था और यही कारण था कि वह इतना सस्ता था।

[illegible] १९२१ [illegible] [illegible] [illegible], जिसमेंसे [illegible]
[illegible] ।, [illegible] ?,८८,६०० का था। [illegible] १२,०४,००० का था। जो चमड़ा बाहर जाता है उसीके बने [illegible] बनकर भारतवर्षमें आता है और उसमें [illegible] बहुत धनी [illegible] हो जाते हैं। यदि चमड़ेकी चीजें बनानेके कारखाने भारतवर्षमें खोले जायें तो जो लाभ इन चीजोंके बनानेका अन्य देशोंको होता है भारतमें ही रहे। भारतवर्षमें हिन्दुओंकी [illegible] बहुत अधिक है। हिन्दू-धर्मके अनुसार चमड़ा एक अपवित्र चीज है। [illegible] पहिले और उसमें भी प्राचीन समयमें हिन्दू, चमड़ेको बहुत कम काममें लाते थे। और इसका कारण केवल यही नहीं था कि चमड़ा अपवित्र है, बल्कि यह भी कि उसका सम्बन्ध जीवहत्यासे है, जो हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है। यदि चमड़ेका इस्तेमाल करना कम कर दिया जाय तो जीवहत्यामें बहुत कमी हो जाय, क्योंकि बहुतसे जानवर तो चमड़ेके लिए ही मार डाले जाते हैं। हिन्दू सन्तानोंको चमड़ेकी पेटी, चमड़ेके बटुए, चमड़ेके दस्ताने, चमड़ेकी घड़ीकी जंजीरें, चमड़ा लगी टोपियाँ और चमड़ेके लम्बे लम्बे बूट पहने देख सच्चे भारतवासीके हृदयमें वेदना होती है। क्योंकि भारतवासी गौको माताके समान समझते हैं और हिन्दू साहित्यमें गौको बड़ा पवित्र और उपयोगी पशु माना है। चमड़ेका बहुतसा सामान गौकी खालका बना होता है। इसको इस्तेमाल करना हिन्दूधर्मके विरुद्ध ही नहीं है बल्कि इस देशकी मान मर्यादाके प्रतिकूल है। भारतवर्षमें दूध देने वाले पशु बहुत कम हो गये हैं और दूध और घी जो भारतवासियोंके मुख्य खाद्य पदार्थ हैं अत्यन्त महँगे हो गये हैं। इस कारणसे भारतवासियोंका बल और स्वास्थ्य दिन प्रति दिन घटता जाता है। और निर्बल होनेसे उनपर सभी तरहकी बीमारियाँ बड़ी जल्दी असर करती हैं। चमड़ेकी चीजोंको कम काममें लाना इन सब आपत्तियोंके निवारणमें किसी अंशमें अवश्य सहायता दे सकता है।

अन्य अन्य वस्तुएँ जो इस देशसे अन्य देशोंको जाती हैं, कच्ची चीजें हैं। जिनसे हम इसी देशमें उन सब वस्तुओंको बना सकते हैं जो अन्य देशोंसे बनकर यहाँ आती हैं। कच्ची चीजोंका जाना देशके लिए अत्यन्त हानिकारक है। यदि यही चीजें भारतवर्षके कारखानोंमें बनें और अन्य देशोंको जायें तो भारतवासी माला माल हो जायँ। अर्थशास्त्रका सिद्धान्त है कि जिस देशसे अधिक चीजें जायें और जिसमें कम चीजें आयें तो वह देश

समृद्ध सम्पन्न है। परन्तु इसके साथ यह नियम भी है कि जो वस्तुएँ बाहर जायँ वह उसी देशकी बनी हों, न कि कच्ची चीज़ें।

भारतवर्षसे कच्चा माल जाता है, और उसमें बना हुआ माल आता है इसलिए हम यह नहीं कह सकते हैं कि भारतवर्ष व्यापारिक दृष्टिसे समृद्ध सम्पन्न है।

सं० १९७५ में भारतवर्षमें सब माल १,६६,०३,००,०००) का आया और यहाँसे २,३६,३१,००,०००) का माल गया। इन दोनोंकी बाकी ७० करोड़ २८ लाख रुपये हैं। इसमेंसे सोना चाँदी आनेकी २३ करोड़की रकम निकाल दो तो ४७ करोड़ बाकी रहा। यानी भारतवर्षको, कुल आये हुए मालकी कीमत देकर अन्य देशोंसे ४७ करोड़ रुपया लेना बाकी रहा है। इसीको अंगरेजीमें बेलेन्स ऑफ् ट्रेड यानी व्यापारिक बाकी कहते हैं। भारतवर्षकी ओर यह बाकी सर्वदाही निकला रहती है। युद्ध समयमें यूरोपके बड़े बड़े देशोंका प्रचुर धन व्यय हो गया। सोना चाँदी उनके पास कम रह गया। युद्धसे पहिले तो यूरोपके देश भारतवर्षकी व्यापारिक बाकीका रुपया सोना चाँदी देकर अदा कर देते थे क्योंकि उनके पास धन था। अब युद्धमें धनका व्यय हो जानेसे उनको इस रुपयेके अदा करनेमें दिक्कत पड़ी। इसमें बहुत कुछ रुपया इंगलिस्तानको देना पड़ता है। इस रुपयेके देनेके लिए एक नया उपाय सोचा गया, जिससे भारतवर्षका कुल रुपया तो चुक जाय लेकिन उससे आधे से भी कम रुपया मिले, और वह उपाय यह है कि विनिमय (एक्सचेंज) यानी विलायतकी हुंडीका भाव १५) से १०) पाउण्डका कर दिया गया। इसके कारण एक तिहाई रुपया कम हो गया। भारतवर्षमें पाउण्डका भाव ७॥) या ८) तक रहा है जिसके कारण यह रकम आधी रह गई है। इस तरह भारतकी व्यापारिक बाकीकी अदायगी करदी गई है। विनिमय विषयक रहस्य जटिल है। इसको केवल अर्थशास्त्रवेत्ता और बड़े व्यापारी ही जानते हैं। सर्व सामान्य मनुष्य नहीं। इस लिए इस विषयमें भारतवर्षमें जैसा आन्दोलन होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ। थोड़े भारतवासियोंने, जो इस विषयको जानते थे इस आन्दोलन किया, परन्तु उसका प्रभाव कुछ न पड़ा। इस विषय पर हमने कई लेख [illegible] मासिक पत्रिकाओंमें दिये हैं जिन्हें इस सम्बन्धमें अधिक जानना हो वह इन [illegible] पढ़ें। इस लेखको [illegible] बहुत लम्बा हो [illegible] तमाम करते हैं। फिर कभी समय मिलने पर इस विषय पर लिखेंगे।

[illegible]

समाज और सेवा

आ[illegible] है। [illegible]

[illegible] है। [illegible] समाजकी सेवासे मनको और परोपकारकी प्रवृत्तिको [illegible], [illegible] है।

परन्तु और कुछ विचारनेके पहिले हमको यह जानना चाहिए कि समाज क्या है, सेवा क्या है, सेवाके अधिकारी कौन हैं, समाज और सेवाका क्या सम्बन्ध है, समाजके प्रति विभिन्न व्यक्तियोंका क्या कर्तव्य है इत्यादि।

दूसरोंके अभावको पूर्ण करनेकी चेष्टाको सेवा कहते हैं, अपने अभावके पूर्ण करनेकी चेष्टाको लोग आत्म-सेवा कहते हैं। यह आत्म-सेवा मनुष्यका प्रधान तथा पहला कर्तव्य है तथापि जो मनुष्य केवल आत्म-सेवामें लगे रहते हैं, उनको लोग स्वार्थपर तथा अन्य बहु विशेषणोंसे विभूषित किया करते हैं। नाम में रहते हुए जो मनुष्य दूसरोंकी ओर अथवा समाजकी ओर लवमात्र ध्यान नहीं देते और केवल अपनीही आत्म-सेवामें अपनी समस्त शक्ति लगाये रहते हैं उनके लिए स्वार्थपर विशेषण निरर्थक नहीं, किन्तु अन्यत्र आत्म-सेवाको भी समाज-सेवाका प्रधान अंग समझना उचित है। जो मनुष्य अपनी शक्ति अथवा सुयोगके अभावके कारण समाजके अभावको किसी प्रकार दूर नहीं कर सकते, वे यदि अपने ही अभावोंको स्वयम् पूर्ण करलें और समाजसे अपने अभावोंके मोचनार्थ सहायता न माँगें, तब वे एक प्रकारसे समाजकी ही सेवा करते हैं। यदि मैं अपने अभावोंको स्वयम् पूरा करलूँ और यदि समाजको मेरे लिए चिन्त न होना पड़े तो समाजको अन्य प्रकारसे दूसरे लोगों का उपकार करनेके लिए अवसर मिलेगा। समाज कोई व्यक्ति विशेष नहीं, उसका स्वयम कोई अभाव नहीं, पृथक् पृथक् व्यक्तियोंकी समष्टिही समाज है, हमारा अभावही समाजका अभाव है, हमारे पड़ोसीका अभाव भी समाजका अभाव है। यदि मैं अपने अभावके मोचन करनेमें समर्थ हूँ तो मेरे द्वारा समाजका अभाव उसी परिमाणमें दूर हुआ और मैंने भी समाजकी उतनी सेवा की, और अब समाज भी हमारे अभावग्रस्त पड़ोसीके हित साधनमें अधिक सुविधा पायगा। आत्म-सेवाद्वारा समाजकी जो सेवा होती है उसको बहुतसे लोग स्वीकार नहीं करना चाहते हैं और उसका मूल्य एक कानी कौड़ी भी नहीं देना चाहते। साधारणतः प्रेम और स्नेह पूर्ण करनेवाले उदार और महान आदर्शों पर सेवायें लिये जाते हैं किन्तु

समाजकी निगाहमें पर सेवाकी अपेक्षा आत्म-सेवा भी जो उपयोगिता रखती है वह कुछ कम नहीं, क्योंकि आत्म-सेवाके दूसरे पहलूको हम भूल जाते हैं। सेवाके अर्थ चाहे जो कुछ करें जायँ परन्तु समाजकी सेवाकी बात होनेपर परसेवाके बराबर आत्म-सेवाको स्थान देना पड़ेगा।

समाजका प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने अपने अभावोंके पूर्ण करनेमें समर्थ हो तो फिर कहीं परसेवाकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। साधु सन्यासियोंके अभाव कम होते हैं और जो हैं उनके पूर्ण करनेके लिए उन्हें दूसरोंसे सहायता नहीं लेनी पड़ती, इसलिए वे किसी समाजके भीतर नहीं रहते। किन्तु जन साधारणके सम्पर्कमें यह नहीं हो सकता। क्योंकि देखनेमें यह आता है कि कोई व्यक्ति अकेले अपने समस्त अभावोंको पूरा नहीं कर सकता। इसलिए परस्पर द्वारा परस्परके अभाव दूर हों यही आशा समाज बन्धनका एक प्रधान हेतु है इसमें कुछ सन्देह नहीं। समाजके प्रथम गठित होते समय उसके प्रतिष्ठातागणोंने कार्यतः किस प्रकार परस्पर सहाय करनेकी शर्तमें आबद्ध होकर समाजमें प्रवेश किया था, अथवा उन्होंने कोई Social Contract लिखा था सो कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु ऐसी कोई शर्त न करते हुए भी इन्होंने समाज-बद्ध होकर रहनेमें कोई विशेष सुविधा अवश्य प्राप्त की होगी। पशुओंसे अपनी रक्षा करना तथा आहार, विहार, शिक्षा सभ्यता इत्यादि अनेक विषयोंमें मनुष्य स्वयम् अपूर्ण है। परन्तु हम लोग उपरोक्त अभावोंको अनुभव नहीं करते क्योंकि हम लोग जन्मसेही समाजके भीतर रहते हैं। जैसे बच्चा अपनी माँकी गोदमें रहता

नहीं है। समाजरूपी वृक्ष भी हजारों वर्षोंकी परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका है। जो लोग लाभ की आशासे अपनी स्वाधीनताको क्षुद्र करके समाजमें घुसे थे वे तो उसमें रहे ही गये परन्तु अन्य लोग भी समाजके कठिन शासनको शिरोधार्य करके उसके भीतर रहने लगे। यदि समाज इनकी आशाओंको पूर्ण न कर सकता अथवा उनकी रक्षा करनेमें असमर्थ होता तो उसके प्रत्येक व्यक्ति जिधर चाहते उधर चले जाते और समाज आजतक मिट्टीमें मिल जाता। इससे मालूम होता है कि मनुष्य समाजमें प्रविष्ट होकर निश्चेष्ट नहीं बैठे रहे बल्कि वे सदा यही चेष्टा किया करते रहे कि किस प्रकारसे सोलह आने अपने कार्य समाजसे करा लें एवं उनको इस चेष्टामें अधिक परिमाणमें सफलता भी लाभ की है। इससे अकेले जो कार्य होना असम्भव है, वही कार्य समाजकी सहायतासे अनायास सम्पूर्ण हो जाता है। यही समाजकी विशेषता है और यही समाजका उद्देश है। व्यष्टि भावमें प्रत्येक व्यक्ति समाजके ऊपर कुछ विषयोंके लिए दावा करनेका अधिकारी है। समाज यदि उन विषयोंको नहीं दे सकता है तब समाजके अस्तित्वका कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु समाज उन सब दावोंको पूरा करनेके लिए अन्य लोगोंके पास अथवा अन्य समाजोंके पास नहीं जायगा, वह उन लोगोंसे जिनसे समाज गठित है अथवा उन्हीं लोगोंसे जो उसके ऊपर दावा करते हैं; वह वसूल करेगा। उन्हीं लोगोंसे थोड़ा थोड़ा वसूल करके अपनी शक्ति सञ्चय करेगा, समाज प्रत्येक व्यक्तिसे जो थोड़ा थोड़ा करके वसूल करता है, वही सब इकट्ठा होकर समाज शक्तिके रूपमें प्रकाशित होता है और उसीसे पृथक् पृथक् व्यक्तिकी इच्छा पूर्ण करनेमें समर्थ होता है। इसी आदान प्रदानके ऊपर समाज प्रतिष्ठित है। समाजके ऊपर मनुष्यका जो दावा है वह उसका सामाजिक अधिकार और मनुष्यके ऊपर समष्टि रूपमें समाजका जो दावा है वह मनुष्यका सामाजिक कर्तव्य कहा जा सकता है। पहिले कह चुके हैं कि समाज बड़ा और हम छोटे हैं। बड़ेकी उदारता बड़ी ही होती है। इसीलिए समाज जो प्रति मनुष्यसे पानेका अधिकारी होता है उसको वह जोर जबरदस्ती करके नहीं लेता, बल्कि उसीको यदि मनुष्य अपनी इच्छासे दे देता है तब वह उसको सेवा कहता है। अर्थात् समाजके प्रति जो हमारा कर्तव्य है उसीका नाम सेवा है। और सामाजिक कर्तव्य और सेवामें कोई प्रभेद नहीं। मनुष्य, सेवा और समाजमें जो यह परस्पर सम्बन्ध है यही समाज-बन्धनका मूल है, इसी सम्बन्धको भूल जानेसे बहुतसी बातोंका ढूँढनेसे सदुत्तर नहीं मिलता और समाजमें भी गड़बड़ उपस्थ होता है।

समाजका प्रत्येक व्यक्तिका जो कर्तव्य समाजके प्रति है वह प्राचीन हिन्दू-समाजमें विशेषरूपसे विदित था। परन्तु अब तो न वह राम हैं और न वही अयोध्या है। क्योंकि इस जगतमें सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं। हमारा समाजप्रतिष्ठा हुए इतने सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये कि उसका कुछ हिसाब ही नहीं, इतना दीर्घ काल व्यतीत हो जाने पर यदि आर्यसमाजकी व्यवस्थामें विशेष परिवर्तन हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु किसीने कहा है "अवनतिविहतानां कस्मात् जन" इस हिसाबसे आजतक समाज इस समय पर उन्नति युक्त होता तो एक विशेष आनन्दकी बात होती, परन्तु हमारे देशके ऊपर

रही है और इतना मूल्य देकर लोग अपने प्रयोजनकी चीजें नहीं खरीद सकते हैं [illegible] कष्ट हो रहा है। परन्तु मूल्यके अनुसार यदि लोगोंकी आमदनी भी [illegible] दुर्मूल्य वस्तुओंके खरीदनेमें कष्ट न होगा, अतएव अपने समाजके [illegible] दो पथ दिखाई देते हैं, पहले दुर्मूल्यता अर्थात महँगीको निवारण करना, दूसरे [illegible] युक्त आमदनीका उपाय निर्धारण करना। दुर्मूल्यता निवारण करना [illegible] है (१) राज्य विधिके द्वारा द्रव्योंका मूल्य निर्धारित करना, (२) [illegible] कम करना। ये दोनों बात हमारे हाथके बाहर हैं। इसके अतिरिक्त [illegible] विघ्नोंको [illegible] तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे [illegible]

[illegible] और [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] हो। [illegible] [illegible] सिद्ध सकते हैं। [illegible] [illegible] है। इस कार्यकी प्रतिज्ञा करना ही [illegible] सहायताका [illegible] है। [illegible] तो स्वदेशी शिल्पकी प्रतिष्ठा करना ही हम सबका कर्तव्य है।

कर्तव्य निर्धारित करनेमें ही [illegible] के [illegible] लिए, ऐसा करना प्रकृत [illegible] है। गत १० व १५ वर्षसे हमारे देशके शिल्प और वाणिज्य-की उन्नति करनेकी चेष्टा हो रही है। पर कारणोंसे इन सब चेष्टाओंका परिणाम यथा नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। इन कारणोंमेंसे दो [illegible] हैं। (१) किसी स्थानमें अपने देशके १० मनुष्योंने एकत्र होकर किसी शिल्पकी उन्नतिके लिए कुछ रुपये संग्रह किया, परन्तु अव्यवसायियोंके हाथमें कार्यका भार पड़नेसे कार्यका नाश हुआ और रुपया-का भी अपव्यवहार हुआ, (२) किसी किसी स्थानमें कार्यका भार व्यवसायियोंके हाथमें पड़ा। परन्तु अगठित चरित्रके कारण रुपया हाथमें आनेसे अपने स्वार्थमें अन्ध होकर देशके कामको नष्ट कर दिया और उनके विचारमें यह नहीं आया कि अपना जरासा स्वार्थ पूर्ण करनेमें देशका अथवा समाजका कितना बड़ा अनिष्ट किया। ऐसी बाधा विघ्न इत्यादि चाहे जितने हमारे कर्तव्य पालनके पथमें मिलें तो भी हमको उसे नहीं छोड़ना चाहिए। बार बार जहाँ हमारा मनोरथ विफल हुआ है वहीं हमको फिर शक्तिका प्रयोग करना चाहिए।

परन्तु अब हमारी अवस्थामें अनेक परिवर्तन हो गए हैं। एकका जो अनिष्टकारी है वही दूसरेका उपकारी हो सकता है। प्राणीवर्ग जिस दूषित वायुको त्याग करते हैं वही वनस्पतियोंके जीवनका प्रधान उपादान है। इस समय यूरोप खण्डके भीषण युद्धकी बात सोचने-से मन बड़े शोकमें पड़ जाता है। कुरुक्षेत्रका युद्ध तो १८ दिनके लिए हुआ था और वह एक प्रान्तहीके भीतर हुआ था। सेनाके क्षय होनेके अतिरिक्त अन्य लोगोंका अर्थात् साधारण प्रजाकी उससे कोई क्षति नहीं हुई थी। यूरोपके वर्तमान युद्धमें न मालूम कितने ग्राम कितने नगर समभूमि हो गये कितने परिवारोंका नाम व चिन्ह भी इस धरणीपर नहीं रहा। इस पृथ्वीव्याप्त युद्धके अशुभ फलको हम लोग इतने दूर देशी होते हुए भी भोग कर रहे हैं। परन्तु हरेक कार्यके भले बुरे दोनों पहलू होते हैं। कोई कोई विचार करते हैं कि इस युद्धके फलका परिणाम यूरोपके लिए उपकारी होगा। कोई कहते हैं इस युद्धके सुफलको पूर्ण रूपसे जापान और अमरीकाने पाया। परन्तु हम भारतवासियोंको केवल यह एक सुयोग अवसर मिला है जिसमें हम अपने शिल्प और वाणिज्यकी उन्नतिके लिए प्रयत्न कर सकते हैं। इस समय उन सब देशोंके द्रव्य जिनसे हमारे शहर, बन्दर, हाट, बाट, गली, गाँव

आये रहते थे, अब इस देशमें नहीं आते हैं। बाजारमें जब कोई वस्तु अत्यन्त कम हो जाती है तब खरीदार वस्तुकी भलाई बुराई नहीं देखते बल्कि अपनी आवश्यकता पूर्ण करनेके लिए वस्तुके खरीदनेमें बाध्य हो जाते हैं। जो शिल्प नये प्रतिष्ठित हुए हैं उनके लिए यह अवस्था विशेष हितकारी है। क्योंकि प्रथम अवस्थामें हमारे अनभिज्ञ भारतीय शिल्पी विदेशी व्यवसायीगणोंके समान अल्प मूल्य सुदृश्य द्रव्यजाति न बना सकें। परन्तु बाजारमें वे सब विदेशी चीजें न होनेसे भारतवासी अपने काम निकालनेके लिए यदि अपनी द्रव्यजाति कुछ खराब भी होगी तो भी खरीद लेंगे। उसके बाद हमारे कारीगर लोग उपयुक्त अभिज्ञता लाभ कर लेंगे और अन्य देशोंके समान चीजें भी बनाने लगेंगे। इस लिए अपने देशके शिल्प और वाणिज्यके उद्धार करनेका यही सुसमय है।

इस समय समाजकी उपरोक्तही सेवा है और उपरोक्तही कर्तव्य है। इस कर्तव्यके सम्पादन करनेकी प्रवृत्ति हममें है किन्तु उसके अनुसार शक्ति नहीं है। दुर्बलता ही समस्त दुःखोंका आकर है। शक्तिका मूल शिक्षा एवं चरित्रगठन है। पहिले ही कह चुके हैं कि किस प्रकारसे अव्यवसायी अथवा असंगठित चरित्र वाले मनुष्योंके द्वारा समाजका कार्य नष्ट हुआ है। और इसी कारणसे हममें समाज-सेवाकी प्रवृत्ति रहते हुए भी लोग सहसा हमारे ऊपर विश्वास नहीं करना चाहते। हमारा चरित्र जिस प्रकार गठित होगा समाजकी प्रकृति भी उसी प्रकारकी होगी। प्रति व्यक्तिका चरित्रबलही समाजकी प्रकृत शक्ति है और शिक्षा उस शक्तिकी उन्मेषक है। शिक्षा और चरित्र जहाँ सम्मिलित होते हैं वहीं मणि और कांचनका संयोग होता है। और उसी प्रकार लोग भी समाजसेवाके प्रकृत अधिकारी होते हैं और उन्हींके ऊपर समाज अथवा देशके कार्योंका भार रक्खा जा सकता है। हमारे पूर्व पुरुष सत्यवादी जितेन्द्रिय और साधु थे, उनकी दोहाई देनेसे इस समयके कार्यका उद्धार नहीं होगा। वे गौरवके साथ स्मरण किये जा सकते हैं परन्तु केवल उनके बलपर अब हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। हमारा स्वयम् चरित्र सुगठित न होनेसे समाज सेवा नहीं हो सकती और समाजके अभाव दूर नहीं हो सकते। समाजके अन्तर्गत प्रति व्यक्तिका चरित्र-गठनके संग समाजकी उन्नतिका अति घनिष्ट सम्बन्ध है। जैसे देहके सब अंगोंके स्वस्थ न रहनेसे देहका अकल्याण होता है, उसी प्रकार समाजके अंगीभूत छोटे बड़े अथवा किसीका चरित्र असंगठित होनेसे समाजका अकल्याण होता है। हम यदि प्रकृत मनुष्य हो सकते हैं तब तो हमारा समाज विश्वमानव समाजमें अपना मस्तक उठा सकेगा और तभी उसका भाग्य-मोचन होगा, अन्यथा नहीं।

हरनारायण बाथम

सं० १९७६ की करेन्सी कमेटी और उसकी सूचनायें

(१)

पा[illegible] युद्धके समय [illegible] देशोंने अपनी [illegible] पड़ी थी। [illegible] अपने [illegible] मुद्रा व्यवस्था [illegible] था। [illegible] किये जाते थे, वे भी अब पैदा करना जरूरी हो गया था। परन्तु कॉन्ट्र-निर्माणकी प्रत्येक सामग्रीके लिए [illegible] देशोंका मुँह ताकना होता था। पहिले तो विदेश, और दूसरे समुद्र। इन दोनों-कारणोंसे मित्र राष्ट्रोंने इन युद्ध लिप्त देशोंको खाद्य सामग्री एवं युद्धोपयोगी सामग्री जुटानेमें बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। साधारण समयोंमें भी विदेशोंसे खरीदे हुए मालका मूल्य जिन्हें सुवर्णमें चुकाना पड़ता था तो युद्धके समयमें उन्हें सुवर्णके बिना काम चला ही कैसे? अतः प्रत्येक देशमें जितना धन था सोना जमा किया जाने लगा। यहाँ तक कि जिन देशोंमें सोनेका सिक्का प्रचलित था, और जो कागजके बदली नोटोंके बदलेमें जब चाहे सोना लिया जा सकता था वहाँ भी सोनेकी बड़ी [illegible] रक्खी जाने लगी। बैंकोंकी ब्याजकी दर बढ़ादी गई। नोटोंका भुनाना रोक दिया गया, और यहाँ तक कि प्रचलित सोनेके सिक्कोंको बटोर बटोरकर उनके स्थानमें कागजका सिक्का प्रचुर परिमाणमें प्रचार किया गया।

भारतीय मुद्रा व्यवस्थाका अव्यवस्थित होना

भारतवर्ष यद्यपि युद्ध क्षेत्रसे सुदूर था और उसका युद्धसे कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था, तो भी ब्रिटिश साम्राज्यका एक अंग होनेके कारण उसे युद्धानुवर्ती इन सङ्कटापन्न अवसरोंका समय समयपर कड़ा अनुभव उठाना पड़ा। साम्राज्यको धनसे और जनसे तो जितनी बनी उतनी उसने सहायतादीही परन्तु मित्र राष्ट्रों तकको इसने आधे पेट खाकर खाद्य सामग्री जुटाई और रणोपयोगी सामानकीकी पूर्तिकी और सोभी बिलकुल उधार। इसने अपने दिये हुए इन खाद्य पदार्थोंके एवजमें सोना नहीं पाया। युद्धके प्रारम्भमें जब कि चाँदीका भाव विशेष परिवर्तित नहीं हुआ यह चाँदीही लेकर सन्तुष्ट रहा। परन्तु जब खपके बढ़ जानेसे और मेक्सिकोमें 'राज तन्त्रीय गड़बड़के कारण चाँदीकी पैदाइश घटजानेसे चाँदीका भाव दिन प्रतिदिन बढ़ता गया, और इसके व्यापारीवर्गके क्रय विक्रयके पटानेके लिए काफी रुपया ढालना कठिनही नहीं वरन् एक प्रकारसे असम्भव हो गया तो इसके मुद्रा-विधायकोंको चिन्ता सताने लगी। खाद्य एवं युद्धोपयोगी सामग्रीकी माँग दिन प्रति दिन बढ़नेके कारण इनका भाव भी बढ़ रहा था। वस्तुओंके बढ़ते हुए भावोंका मुकाबला करनेके लिए विनिमय माध्यमकी बढ़ी हुई तादादमें आवश्यकता थी। यदि वस्तुओंके भावके साथ साथ विनिमय माध्यमकी तादाद न बढ़ सकती अथवा बढ़ाई जाती तो भावको नीचा

गिरना पड़ता और इससे काश्तकार लोग इन चीजोंके पैदा करनेका धीरे धीरे विचार छो देते। सबका अन्तिम परिणाम यह होता कि खाद्य पदार्थोंकी पैदाइश घटजाती और ह हमारे मित्र राष्ट्रोंके लिए यहाँपर खाद्य पदार्थका मिलना असम्भव हो जाता। यह न हमें ही स्वीकार था और न इसके विधाताओंको। अस्तु जब चाँदीका रुपया न बना स गका तो रुपयेकी माँग कम करनेकी चेष्टाकी जाने लगी।

रुपयेकी माँगको कम करनेके लिए काउन्सिल ड्राफट्स नियंत्रित करना।

इसके लिए हमारे विधाताओंने सबके पहिले भारतमंत्री द्वारा बेची जानेवाली हुं यौंकी तादाद एवम् भाव (काउन्सिल ड्राफ्ट) बाँधना निश्चय किया। साधारण समयोंमें भारतमं अगणित तादादमें प्रति रुपया १ शि ४⅛ पेंसके भावपर ये हुंडियाँ बेचनेको तैयार रहते थे। परन्तु आश्विन १९७३के लगभग जब कि भारत वर्षका व्यापार फिर सजीव हो चुका था, इनकी माँग अतिशय बढ़ी हुई मालूम हुई। यहाँ तक कि आगामी मार्गशीर्ष महीनेके पहिले पक्षमें ये हुंडियाँ लग भग ५० लाख पौंड (यानी ७ करोड़ ९० लाख रुपये) की भारतमंत्रीने बेची। इन हुंडियोंके सकारनेके लिए भारतीय कोषोंमें केवल १४ करोड़ रुपया बच रहा था। इस समय भारतमंत्रीने नवीन रुपया ढालनेके लिए चाँदी काफी तादादमें खरीद ली थी और वह आ रही थी, परन्तु इस प्रकार बढ़ती हुई तादादमें हुंडीको बेचते जाना भारतीय करंसी नोटोंके सिकारेको जोखममें डालना था। अस्तु पौष कृष्ण १०।१९७३ को भारतमंत्रीने यह जाहिर किया कि आइन्दे दूसरी इत्तिला न देने तक प्रति सप्ताह वह ज्यादासे ज्यादा १ करोड़ २७ लाख रु०की हुंडी बेची करेगा इस प्रति बंधसे भारतमंत्री द्वारा बेची गई हुंडियोंके भावमें और बाजारके हुंडीके भावमें बड़ा अन्तर हो गया। लोगोंको विलायत भेजे हुए मालका रुपया मिलना कठिन होने लगा। इस प्रकार भारतीय निर्गत व्यापारको हानि पहुँचने लगी। इसके बाद पौष शुक्ल १० स० १९७३ से ये हुंडियाँ दर १ शि० ४⅛ पें० प्रति रुपयासे केवल उन्हीं सराफों तथा व्यापारियोंको बेचनेका हुक्म जाहिर किया गया कि जो मंजूरशुदा लिस्ट में हों। इसके पश्चात् अन्यान्य कदम बढ़ाये गये और धीरे धीरे मार्गशीर्ष कृष्ण ३ सं० १९७४ तक हुंडीका भाव १ शि. ४ पेंससे बढ़ा कर १ ४ पेंस कर दिया गया। इन सबका हेतु भारतीय खजानोंपर रुपयोंकी माँग कम करना था।

आवश्यकता पड़नेपर इंग्लैंडसे ऋण लेकर कौंसिलोंका दाम चुकानेके लिए ठीक किया गया। और यह प्रबन्ध सफल भी हुआ। इसलिए ही सरकारने रिवर्स ड्राफ्ट बेचकर ११ करोड़ कौंसिल द्वारा बेचना निश्चय करलिया। और इंग्लैंडसे आवश्यकतानुसार ३० करोड़ औंस चाँदी दर १०१½ पेंस प्रति औंस भावमें खरीदनेके लिए प्रबन्ध करनेमें सफल हुए। लेकिन चाँदी धातुकी माँगको कम करनेके लिए, प्रथम एक आने और दो आनेके नोटकी सृष्टि की गई, पीछे मामूली सिक्केके लिए चाँदीके स्थानमें निकल धातुका उपयोग किया जाने लगा, फाल्गुन १९७८ तक तो केवल इकन्नीही इस धातुकी थी परन्तु इस समय दोअन्नी भी इसी धातुकी मुद्रित की गई और इनके प्रचलित हो जानेसे भाद्रपद १९७८ में चवन्नी और अठन्नी भी फिर इसी धातुकी चलाई गई। स्थिति बिगड़ती गई। चाँदीका खजाना दिन प्रति दिन कम होता गया। तब और कुछ उपाय न देखकर इसके विधायकों ने चाँदीके एवज खजानोंमें सोना बटोरनेकी फिक्र की। और इसलिए आषाढ़ शुक्ल ६ सं० १९७४ के हुक्मनामेसे बाहरसे आया हुआ तमाम सोना सरकारी बैंक देनेकी आज्ञा हो गई। सरकारको इस सोने का भाव सरकारने इसीके बाजार भावसे जोकि बाजारके भावसे बहुतही नीचा था। इस प्रकार प्राप्त सोना नोटोंके बचावके लिए पेपरकरन्सी कोषमें रक्खा गया। प्राप्त सोना एवं विदेशी सिक्के शीघ्र चलनी सावरिनमें परिवर्तित होनेके इसके लिए रायलमिंटकी एक शाखा श्रावण १९७५ में यहाँ खोल दी गई। परन्तु इस बीचमें विनिमयमाध्यमका कष्ट दूर हो इसलिए हमारे विधायकोंने सोनेका एक सिक्का जो सावरिन के बराबर तोलमें एवं आकारमें बम्बई की टकसालमें ढालना आरम्भ किया। इस सिक्केका नाम सुवर्ण मोहर रक्खा गया। रायलमिंटकी शाखा चैत्रशुक्ल १९७६ में बंद करदी गई। उस समयतक लगभग २१ लाख सोना मोहर और १३ लाख सावरिन भारतवर्षमें ढाले गए।

सोनेका प्रचार

जब सं० १९५८ में भारतवर्ष केलिए सुवर्ण विनिमय माध्यम * निर्धारित किया गया तब सरकारने प्रत्येक सावरिन अथवा सावरिनके बराबर सोनेके एवजमें १५) रु० देना तो स्वीकार किया परन्तु प्रत्येक १५) के एवज एक सावरिन अथवा उसके बराबर सोना देना अपनी मर्जीके अधीन रक्खा। इस प्रकार अपनेको कानूनी दबावसे बचा लेकर भी सरकार ज़रूरत पर रुपयोंके एवज़में सोना अथवा सावरिन देती रही। परन्तु जब सरकारने युद्धके प्रारम्भ में इस आईनकी ओट लेली और सोना अथवा सावरिन देना बंदकर दिया तो सोने का भाव बजार में बढ़ने लगा, यहाँ तक कि सावरिनकी कीमत रु० १५) से ज्यादा सोनेमें आ

* Gold exchange standard

गयी । इसीलिये सरकारने सोना इंग्लैंडसे भेजकर रुपये बढ़ोनेके ...
इस प्रकार सं० १९७२ के प्रारम्भमें लगभग ६ करोड़ रुपयेका सोना ...
लगभग आठ करोड़ रुपयेके सावरिन (५० लाख) भी उसी समय ...
एक्सचेंज बैंकके लिए प्रदान किया गया । इसी तरह सं० १९७६को लगभग ...
गिनी व मोहर उस कामके लिए दीगई । परन्तु इसबार सोना निकालनेसे सरका...
उतनी प्राप्ति नहीं हुई जितनी कि पहलेमें हुई थी ।
चाँदी प्रचुर महँगाईके कारण दुष्प्राप्य थी । जो कुछ रुपये और ...
पेपरकरंसी और गोल्डस्टेन्डर्ड रिजर्व में थी वह भी शनैः शनैः निकली जारही थी ।

कोषोंमें सोनेकी आयवृद्धि ।

अस्तु, सरकारको उसके स्थानमें सोना भरनेकी चिंता सताने लगी । परन्तु ...
प्राप्त कैसे हो, यह भी कठिन समस्या थी । युद्धलिप्त राष्ट्र अपने यहाँ सोनेका ...
बंद करही चुके थे । साम्राज्यके किसी भी स्थानसे सोना मँगाकर साम्राज्यको ...
डालनेके बराबर था, इसलिए कुछ समय तक रुपयेका आयात निर्यात और नोटोंका ...
किसी रूपमें स्थगित कर दिया गया । इस प्रकारकी अवस्था अपनी चरम सीमातक ...
पहुँची थी कि युद्धका अवसान यानी आर्मिस्टिस हो गया । इसके साथही अमरीकाने ...
१९७६ के ज्येष्ठ मासमें और आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीकाने इसके थोड़ेही दिनोंबाद सोनेके
आयात निर्यातका प्रतिबंध हटालिया । सरकारको यह मौका मिला । और भारतमंत्रीने ...
अपनी हुंडियाँ उस सोनेके बदलेमें भी जो कि ओटावाकी टकसालमें सिक्के अथवा ...
रूपमें पड़ा हो, बेची और इस प्रकार कुछ सोना संग्रह किया । परन्तु इस प्रयासमें आशा...
मुताबिक सफलता नहीं हुई । इसके बाद विलायतके अतिरिक्त भारतमंत्रीने न्यूयार्क
के बजारमें भी ये हुंडियाँ बेचनी शुरू की । और इससे जो सोना मिलता वह यहाँ पर भेज
दिया जाता । परन्तु न्यूयार्कमें भारतवर्षपरकी ये हुंडियाँ ज्यादा दिन तक न बेची जासकीं ।
केवल दोही महीनेमें इनकी माँग कम होगई इससे ये बंद करदी गईं । तब अमरीका, आस्ट्रे-
लिया और लंडनमें खुली तौरपर सोना खरीद कर संग्रह करनेकी चेष्टा की गई । इस प्रकार
लगभग ३० लाख आउन्स यानी ८० लाख तोला सोना एकत्रित होगया ।

परन्तु अबतक सरकारने सुवर्ण जब्तीके हुक्ममें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं
किया । जो हुक्म ज्येष्ठ सं० १९७४ में जारी हुआ था उसीके अनुसार जो कुछ थोड़ा सोना
बाहरसे भूलाभटका भारतमें आया सरकारने लेलिया । परन्तु अब सरकारको ज्ञान पड़ा कि
इसके कारणसे कोई भी भारतका व्यापारी सोना मँगा कर अपना लेना नहीं चुकती करना
उचित समझा । और जबतक आप हुंडीके भावपर बांधकर सोनेके भाव परही
...धना निश्चय किया । जैसे जैसे सोने और स्टर्लिंगके भावमें फरक पड़ता गया उसी प्रकार
...य समय पर भी परिवर्तन होता रहा । इस अधीन पद्धतिसे आज कौंसिलका काम यह

...जी रुपयेकी वृद्धि और कोषका कागजसे भरना

दुष्प्राप्य होजानेसे सरकार व्यापारिक आवश्यकतानुसार बम्बार रुपयेकी ... गयी परन्तु रुपयेकी संख्या बढ़ानेका दूसरा साधन उसके हाथमें था। ... सहारा लिया। वह साधन कागजी रुपयेके बढ़ानेका था। इस रुपयेके ... थी तो यह थी कि नियत तादादसे ज्यादा तादादमें यदि यह रुपया बढ़ाया ... बराबर रुपया अथवा सोना व चाँदी पेपर करन्सीकोषमें सुरक्षित रखना ... रखो जिस असुविधाको हटानेके लिए इसका अवलम्बन करना पड़ता था वही ... थी। इससे बचनेका यदि कोई उपाय था तो वह यह था कि यह कागजी ... की अमानत पर जरूरतके मुताबिक बढ़ाया जाय। युद्धके पहिले इस ... तादाद १४ करोड़ थी, और जो पेपरकरंसी-आईनसे निर्धारित थी। ... क में यह आईन प्रतिबंधिततादाद नौ बार संशोधित एवं परिवर्धित ... कर १ अरब २६ करोड़ रुपये तक पहुँच गई है। इसमेंसे २० करोड़ ...तसरकारके कागज है। युद्धके पूर्व इस कागजी रुपयेकी कुल तादाद ... थी। इसके जमानतके लिए केवल १४ करोड़का कागज और बाकीका ... था। इस सोने तथा चाँदीकी तादाद ७८'६ फी सदी थी। धीरे धीरे इस ... शुरू सं० १८७६ तक १ अरब ७६ करोड़ ६७ लाख तककी वृद्धि हो ... धिक जामिनकी तादाद घटकर केवल ४४'६ प्रतिशत रह गई।

... रुपयेके प्रचारकी वृद्धिके लिए सं० १९७४ में और १९७५ में २॥ और ... और वृद्धि की गई। ये कागजी रुपये प्रथम तो बहुलतासे न चले परन्तु अब

लगी। इसीलिये सरकारने सोना टेन्डरमें बेचकर रुपये बटोरनेके मार्गका अवलम्बन किया। इस प्रकार सं० १९७२ के प्रारम्भमें लगभग ६ करोड़ रुपयेका सोना टेन्डरमें बेचा गया और लगभग ७॥ करोड़ रुपयेके सावरिन (५० लाख) भी उसी समय काश्तकारोंको फसलके एवज़में देनेके लिए चलान किया गया। इसी तरह सं० १९७५को लगभग ६ करोड़ रुपयेकी गिनी व मोहर उस कामके लिए दीगई। परन्तु इसबार सोना निकालनेसे सरकारको रुपयोंकी उतनी प्राप्ति नहीं हुई जितनी कि गतवर्षमें हुई थी।

चाँदी अतुल महँगाईके कारण दुष्प्राप्य थी। जो कुछ रुपये और धातुके रूपमें पेपरकरंसी और गोल्डस्टेन्डर्ड रिज़र्व में थी वह भी शनैः शनैः निकली जारही थी।

कोषोंमें सोनेकी आयवृद्धि।

अस्तु, सरकारको उसके स्थानमें सोना भरनेकी चिंता सताने लगी। परन्तु सोना प्राप्त कैसे हो, यह भी कठिन समस्या थी। युद्धलिप्त राष्ट्र अपने यहाँ सोनेका निकास बंद करही चुके थे। साम्राज्यके किसी भी स्थानमें सोना मँगाकर साम्राज्यको धोखेमें डालनेके बराबर था, इसलिए कुछ समय तक रुपयेका आयात निर्यात और नोटोंका सकारना तक किसी रूपमें स्थगित कर दिया गया। इस प्रकारकी अवस्था अपनी चरम सीमातक नहीं पहुँची थी कि युद्धका अधान्त यानी आर्मिस्टिस हो गया। इसके साथही अमरीकाने सं० १९७६ के ज्येष्ठ मासमें और आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीकाने इसके थोड़ेही दिनोंबाद सोनेके आयात निर्यातका प्रतिबंध हटालिया। सरकारको यह मौका मिला। और भारतमंत्रीने तब अपनी हुंडियाँ उस सोनेके बदलेमें भी जो कि ओटावाकी टकसालमें सिक्के अथवा धातुके रूपमें पड़ा हो, बेची और इस प्रकार कुछ सोना संग्रह किया। परन्तु इस प्रयासमें आशा मुताबिक सफलता नहीं हुई। इसके बाद विलायतके अतिरिक्त भारतमंत्रीने न्यूयार्कके बज़ारमें भी ये हुंडियाँ बेचनी शुरू की। और इससे जो सोना मिलता वह यहाँ पर भेज दिया जाता। परन्तु न्यूयार्कमें भारतवर्षपरकी ये हुंडियाँ ज्यादा दिन तक न बेची जासकीं। केवल दोही महीनेमें इनकी माँग कम होगई इससे ये बंद करदी गईं। तब अमरीका, आस्ट्रेलिया और [illegible] सीधा सोना [illegible] करनेकी चेष्टा की गई। इस प्रकार लगभग ३ [illegible] लाख ८० [illegible] एकत्रित होगया।

लगी। इसीलिये सरकारने सोना टेन्डरमें बेचकर रुपये बटोरनेके मार्गका अवलम्बन किया। इस प्रकार सं० १६७२ के प्रारम्भमें लगभग ६ करोड़ रुपयेका सोना टेन्डरमें बेचा गया और लगभग ७॥ करोड़ रुपयेके मार्वारिन (४० लाख) भी उसी समय काश्तकारोंको फसलके एवज़में देनेके लिए नलान किया गया। इसी तरह सं० १६७६को लगभग ६ करोड़ रुपयेकी गिन्नी व मोहर उस कामके लिए दीगई। परन्तु इसबार सोना निकालनेसे सरकारको रुपयोंकी उतनी प्राप्ति नहीं हुई जितनी कि गतवर्षमें हुई थी।

चाँदी मनुत महँगाईके कारण दुष्प्राप्य थी। जो कुछ रुपये और धातुके रूपमें पेपरकरसी और गोल्डस्टेन्डर्ड रिज़र्व में थी वह भी शनैः शनैः निकली जारही थी।

कोषोंमें सोनेकी आयवृद्धि।

अस्तु, सरकारको उसके स्थानमें सोना भरनेकी चिंता सताने लगी। परन्तु सोना प्राप्त कैसे हो, यह भी कठिन समस्या थी। युद्धलिप्त राष्ट्र अपने यहाँ सोनेका निकास बद करही चुके थे। साम्राज्यके किसी भी स्थानमें सोना मँगाकर साम्राज्यको धोखेमें डालनेके बराबर था, इसलिए कुछ समय तक रुपयेका आयात निर्यात और नोटोंका सकारना तक किसी रूपमें स्थगित कर दिया गया। इस प्रकारकी अवस्था अपनी चरम सीमातक नहीं पहुँची थी कि युद्धका अर्धान्त यानी आर्मिस्टिस हो गया। इसके साथही अमरीकाने सं० १६७६ के ज्येष्ठ मासमें और आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीकाने इसके थोड़ेही दिनोंबाद सोनेके आयात निर्यातका प्रतिबंध हटालिया। सरकारको यह मौका मिला। और भारतमन्त्रीने तब अपनी हुडियाँ उस सोनेके बदलेमें भी जो कि ओटवाकी टकसालमें सिक्के अथवा धातुके रूपमें पड़ा हो, बेची और इस प्रकार कुछ सोना संग्रह किया। परन्तु इस प्रयासमें आशा मुताबिक सफलता नहीं हुई। इसके बाद विलायतके अतिरिक्त भारतमन्त्रीने न्यूयार्क के बजारमें भी ये हुडियाँ बेचनी शुरू की। और इससे जो सोना मिलता वह यहाँ पर भेज दिया जाता। परन्तु न्यूयार्कमें भारतवर्षपरकी ये हुडियाँ ज्यादा दिन तक न बेची जासकी। केवल दोही महीनेमें इनकी माँग कम होगई इससे ये बद करदी गई। तब अमरीका, आस्ट्रेलिया और लडनमें खुली तौरपर सोना खरीद कर सग्रह करनेकी चेष्टा की गई। इस प्रकार लगभग ३० लाख आउस यानें ८० लाख तोला सोना एकत्रित होगया।

परन्तु अबतक सरकारने सुवर्ण जप्तीके हुक्ममें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं किया। जो हुक्म ज्येष्ठ सं०१६७४ में जारी हुआ था उसीके अनुसार जो कुछ थोड़ा सोना बाहरसे भूलाभटका भारतमें आया सरकारने लेलिया। परन्तु अब सरकारको जान पड़ा कि इसके कारणसे कोई भी भारतका व्यापारी सोना मँगा कर अपना लेना नहीं चुकती करता परन्तु काउसिलड्राफ्ट द्वारा रुपया पानेकी चेष्टा करता है तो इसका संशोधन करना उचित समझा। और जप्तीका भाव हुडीके भावपर बाँधकर सोनेके भाव पहली बाँधना निश्चय किया। जैसे जैसे सोने और स्टर्लिंगके भावमें फरक पड़ता गया उसी प्रकार समय समय पर भी परिवर्तन होता रहा। इस नवीन पद्धतिसे भाव बाँधनेका फल यह

हुआ कि व्यापारियोंके पासमें भेजे हुए तारोंके एवजमें सोना भेजना हानिकारक न रहा। और जब काउंसिल ड्राफ्ट न मिल सके तो सोना भेजा जाने लगा। सरकारको इस प्रकार लगभग ॥ लाख तोला सोना प्राप्त हो गया।

सोनेकी तेजी और उसपर रोक

इन तरीकोंसे यद्यपि सरकारी खजानोंमें काफी सोना जमा हो गया और चांदीकी कमीको किसी प्रकार पूरा कर दिया। परन्तु जनताको इससे कुछ भी लाभ न हुआ उन्हें न तो बाहरसे चांदी ही मिली और न सोना। उनकी मांग इन दोनों धातुओंके लिए इतनी तीव्र होगई कि जिसका कोई अन्दाज नहीं रहा। बजारमें सोनेका भाव चढ़ता चढ़ता रु० ३४) तोला तक पहुंच गया। भाद्रपद कृष्ण सं० १९७६ में पाटलेके सोनेका भाव रु० ३२॥) था। इस समय सरकारने फिर टेन्डरसे सोना बेचना शुरु किया। और इस प्रकार मार्गशीर्ष सं० १९७६के अन्त तक लगभग २१॥) लाख तोला बेचा गया। सरकारकी इस बेचवालीसे सोनेका भाव गिर कर आश्विन कृष्ण १२ सं० १९७६ को रु० २७) हो गया। परन्तु यह भाव पीछे चढ़ गया और माघ सं० १९७६ में फिर उसी प्रकार तेज हो गया।

कागजी रुपयेकी वृद्धि और कोषका कागजसे भरना

चांदीके दुष्प्राप्य होजानेसे सरकार व्यापारिक आवश्यकतानुसार कलदार रुपयेकी तादाद बढ़ा तो न सकी परन्तु रुपयेकी संख्या बढ़ानेका दूसरा साधन उसके हाथमें था। अस्तु उसने उसकाही सहारा लिया। वह साधन कागजी रुपयेके बढ़ानेका था। इस रुपयेके बढ़ानेमेंभी एक बाधा थी तो यह थी कि नियत तादादसे ज्यादा तादादमें यदि यह रुपया बढ़ाया जाय तो उतनाही कलदार रुपया अथवा सोना व चांदी पेपर करंसीकोषमें सुरक्षित रक्खा जाय। अस्तु सरकारको जिस असुविधाको हटानेके लिए इसका अवलम्बन करना पड़ता था वही फिर आखड़ी होती थी। इससे बचनेका यदि कोई उपाय था तो वह यह था कि यह कागजी रुपया ब्याजू कागजोंकी अमानत पर जरूरतके मुताबिक बढ़ाया जाय। युद्धके पहिले इस कागजी अमानतकी तादाद १४ करोड़ थी, और जो पेपरकरंसी-आईनसे निर्धारित थी। युद्धके समयसे आजतक में यह आईन प्रतिबंधिततादाद नौ बार संशोधित एवं परिवर्धित हुई और अब बढ़ते बढ़ते १ अरब २६ करोड़ रुपये तक पहुंच गई है। इसमेंसे २० करोड़ रुपयेके ही कागज भारतसरकारके कागज हैं। युद्धके पूर्व इस कागजी रुपयेकी कुल तादाद ६६ करोड़ १२ लाख थी। इसके जमानतके लिए केवल १४ करोड़का कागज और बाकीका सोना अथवा चांदी था। इस सोने तथा चांदीकी तादाद ७८·६ फी सदी थी। धीरे धीरे इस तादादमें मार्गशीर्ष शुक्ल सं० १९७६ तक १ अरब ७९ करोड़ ६७ लाख तककी वृद्धि हो गई और इसके धात्विक जामिनकी तादाद घटकर केवल ४४·६ प्रतिशत रह गई।

कागजी रुपयेके प्रचारकी वृद्धिके लिए सं० १९७४ में और १९७५ में २॥ और १ रुपयेके नोटकी और सृष्टि की गई। ये कागजी रुपये प्रथम तो बहुलतासे न चले परन्तु अब

चाँदीका रुपया मिलना दुर्लभ हो गया तो ये इस प्रकार संख्यामें बढ़गये कि चैत्र कृष्ण १६७५ तक इन २॥ रुपयेके कागजकी कुल तादाद १ करोड़ ८८ लाख तक और एक रुपयेके कागजकी तादाद १०॥ करोड़ तक पहुँच गई।

नोटके सकारनेपर रुकावट।

कागजी रुपया कलदार रुपयेके समानही चलता था। इसका मुख्य कारण कागजी रुपये के एवजमें जहाँ और जब चाहे कलदार रुपयेका मिल जाना था। युद्धके छिड़जानेपर भी इस नीतिका उस समय तक बराबर अवलम्बन किया जाता रहा जब तक कि कलदार रुपये की संख्यामें आशातीत कमी न होगई। और यह कमी इतनी बढ़ी कि चैत्र कृष्ण ५ सं० १६७४ में पेपरकरंसी कोषधात्विक जामिनकी शक्ति घटते घटते केवल १०॥ करोड़ रुपये यानी साधारण समयकी आवश्यक तादादसे भी और ८ करोड़ कमती रह गई। इसी समय युद्धकी असंतोषकारक खबरें लोगोंको सुनपड़ीं। बस इस शक्तिमें और भी कमी होनेकी दहशत हो गई। और यह दहशत यहाँतक बढ़ी कि नोटोंका सकारनाही कहीं बंद न करना पड़े। क्योंकि बंबई आदि बड़े बड़े शहरोंमें नोटोंके एवज़में रुपयेकी माँग अतिशय बढ़ गई। जूनके प्रथम सप्ताह तक सिलकमें केवल ४ करोड़ कलदार रुपये तककी नौबत आपहुँची। अमरीका से पिटमेन ऐक्टके अनुसार बेची गई चाँदी इस समयतक मिलने लग गई और इससे यह सकटमय स्थिति रफा हो गई। परन्तु बिलकुल घटे हुए कलदार रुपयेके स्टाकको पूरा करनेके लिए सरकारको इस समय अपनी सकारेकी नीतिमें परिवर्त्तन करना ही पड़ा। यानी खजानों पर इन नोटोंका सकारना बन्द कर दिया गया। सोना अथवा चाँदी धातु अथवा सिक्के किसी भी रूपमें रेल अथवा जहाज द्वारा जाना आना रोक दिया गया। यहाँ तक कि डाक पार्सलसे भी कुछ अर्से तक इन्हें कोई कहीं नहीं भेज सका। इतनाही नहीं परन्तु सदर करंसी आफिसोंमें भी जब कि कलदाररुपयेका खिंचाव बहुत बढ़गया इस विषयमें ऐसा नियम करना पड़ा कि जिससे छोटी छोटी माँगे पूर्णतया और बड़ी बड़ी माँगोंके कुछ अशमें पूरी की जासकें। इस नीतिसे कागजी रुपयेकी चलनमें अतिशय वृद्धि हो गई। इस वृद्धिके अंदाज लगानेके प्रमाण यद्यपि सदिग्ध हैं परन्तु कलदार रुपयेके लगातार करंसीकोषमेंसे निकलकर लोगोंके कोषमें जानेसे यह स्वतः सिद्ध है कि कागजी रुपयेका चलनमें अधिकांश भाग है। इस कागजी रुपयेका गतवर्षमें १५ से १६ प्रति शत तकका बट्टा हो गया था। इतना ऊँचा बट्टा बहुत ही थोड़े दिन रहा। परन्तु अब भी कहीं कहीं एक रुपये दो रुपये सैकड़े तकका बट्टा बना हुआ है।

सचिपत्रमें कमेटी बैठनेके पूर्व और उसके विचार करनेके समयमें हमारी उपर्युक्त स्थिति थी और उसको सुधारनेकी विधायकों द्वारा इस प्रकार चेष्टाकी गई थी। रुपसे इसे टिकाये रखनेकी कोशिश करनेके साथ साथ इसके हिमायतियोंने उक्त प्रयासोंसे भी इसके तनावको ढीला करनेका प्रयास किया था। जबतक युद्ध रहा किसी भी प्रकारके खर्चमें न पड़कर जरा मामूली खर्चको भी संकुचित करनेकी

पेश की गई। नवीन एवं परिवर्धित कर लगाये गये। युद्ध सामग्रीकी खरीदके लिए हिन्दुस्तानमें खूब कर्ज लिया गया। इन सब प्रयासोंके परोक्ष प्रभाव पर सरकारी खजानोंमें प्रचुर मुद्राओंमें जमा हुए और इनसे, भारतसरकार सबलक अपनी मुद्राके विनिमय माध्यमकी हुण्डी बेचती ही जाती रही है।

कस्तूरमल बाँठिया



जातीयताका विकास

आजकल चारोंओरसे जातीयताकी ध्वनि आ रही है । प्रत्येक पुरुषके हृ[illegible] देश और जातिके उद्धारके लिए उमगें उठ रही है परन्तु बहुत कम ऐसे होंगे जिन्होंने वस्तुतः इस बातको समझा है कि जातीयता क्या है । आजकल जो प्रयत्न जातीयताकी वृद्धि तथा विकासके लिए किया जा रहा है उससे प्रकट होता है कि यदि देशके प्रत्येक व्यक्तिको राजप्रबन्धमें सम्मति देनेका अधिकार मिल जाय तो जातीयता उन्नत हो गई । इसमें सन्देह नहीं कि सम्मतिका अधिकार उन्नतिका एक अंग है परन्तु इसको पूर्ण उन्नति नहीं कह सकते । यदि किसी जातिके [illegible] व्यक्तिको सम्मतिका अधिकार प्राप्त हो जाय तो क्या वह जाति सर्वांग पूर्ण स्वतन्त्र [illegible] कदापि नहीं ।

जाति, व्यक्तियोंके समूहका नाम है । जिस प्रकार शरीरके भिन्न भिन्न अवयवों[illegible] पुष्ट होनेसे ही शरीर पुष्ट कहलाया जा सकता है इसी प्रकार व्यक्तियोंके उन्नत होनेसे [illegible] जाति उन्नत हो सकती है । परन्तु जिस प्रकार शरीरके अवयवोंका विकास पृथक् पृथक् नहीं होता किन्तु एकका दूसरे पर अन्तर्भाव पड़ता है उसी प्रकार एक व्यक्तिकी वृद्धि दूसरेकी वृद्धिके समाश्रित है । इस परस्पर सम्बन्धकी शृङ्खलामें बँधे हुए व्यक्तियोंका नाम ही समाज या जाति है । हम ऊपर कह चुके हैं कि जाति व्यक्तियोंके समूहका नाम है परन्तु केवल इतना ही नहीं है । जातिमें व्यक्तियोंकी गणना उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार गेहूँके ढेरमें गेहुओंकी । यदि एक मन गेहूँके ढेरके प्रत्येक दानेको अलग अलग कर दिया जाय तो भी उनकी स्थिति उसी प्रकार बनी रहेगी जिस प्रकार ढेरमें रहनेसे । परन्तु यदि किसी जातिके व्यक्तियों पृथक् पृथक् कर दी जावें तो उनकी यही अवस्था नहीं रहती जैसी परस्पर शृङ्ख[illegible]बद्ध होनेसे रहती है ।

र आर्थिक उन्नति की आवश्यकता अनुभव की, फिर इस आर्थिक
ए हुए कि ओर धार्मिक बाधा पड़ गई। इस समय यूरोप की दशाका
ीजिये तो पता लगेगा कि प्रत्येक उन्नतिका आधार अर्थ पर है।
क और लाट पादरीसे लेकर छोटे छोटे व्यक्ति तक सब पेट भरे हुए
लो बहुत दिनोंसे तिलांजलि दे दी गई है। धर्म केवल ... मनका
राजनीतिका भी केन्द्र अर्थ ही है। अन्तर्देशीय और अन्तर्जातीय युद्ध
ही होते हैं। परस्पर सन्धियां भी इसी अपवादसे की जाती हैं।
इसी बातको दृष्टिमें रखकर कार्य करते हैं। यह क्यों? केवल इस
नति की आवश्यकता समझकर अन्य सब प्रकारके सम्बन्धोंको दृष्टि-
। परिणाम स्पष्ट है। जिस प्रकार किसी मनुष्यका एक अंग बहुत लम्बा
ा हो जाय तो उसका भयंकर रूप हो जाता है उसी प्रकार 'धनमजय-
का मन्त्र जपते जपते 'टका धर्मः टका कर्म्म' की लोकोक्ति चरितार्थ
सिद्ध लेखक लिखता है कि यूरोपमें जीवित मनुष्यकी अपेक्षा कलोंका
ा है। एक बड़े कार्यालयका स्वामी कार्य्यालयके कलोंकी अपने
धिक देखभाल करता है। इसका परिणाम धनिक और श्रमजीवियों-
ामें जहाज या वायुयानोंमें बैठकर हमारे देशमें भी आ गये हैं और
शान्तिको बढ़ानेका यत्न कर रहे हैं।

उन्नतिको उन्नति कहना भूल है। जब जब इस प्रकारकी भूलें हुई हैं जाति-
गया है और वे ऐसी गिरी है कि फिर उनका उठना असम्भव हो गया
ौर अर्वाचीन विज्ञ लोगोंको भी इस बातका अनुभव होता जाता है कि
सिकी उन्नति केवल एकाङ्गिनी उन्नति है जो अवनतिका रूपान्तर ही है।
वर्षमें भी इस प्रकारके युग आ गये हैं। जिस समय भारतवर्षियोंने केवल एक
ओर ध्यान दिया कि एक पैरकी विवाईके समान उनका अधः पतन हुआ।

जातीयताका विकास

आजकल चारों ओरसे जातीयताकी ध्वनि आ रही है । प्रत्येक पुरुषके हृदयमें देश और जातिके उद्धारके लिए उमगें उठ रही है परन्तु बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने वस्तुतः इस बातको समझा है कि जातीयता क्या है । आजकल जो प्रयत्न जातीयताकी वृद्धि तथा विकासके लिए किया जा रहा है उससे प्रकट होता है कि यदि देशके प्रत्येक व्यक्तिको राजप्रबन्धमें सम्मति देनेका अधिकार मिल जाय तो जातीयता उन्नत हो गई । इसमें सन्देह नहीं कि सम्मतिका अधिकार भी उन्नतिका एक अंग है परन्तु इसको पूर्ण उन्नति नहीं कह सकते । यदि किसी जातिके प्रत्येक व्यक्तिको सम्मतिका अधिकार प्राप्त हो जाय तो क्या वह जाति सर्वांग पूर्ण कहलायेगी ? कदापि नहीं ।

जाति, व्यक्तियोंके समूहका नाम है । जिस प्रकार शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंके पुष्ट होनेसे ही शरीर पुष्ट कहलाया जा सकता है इसी प्रकार व्यक्तियोंके उन्नत होनेसे ही जाति उन्नत हो सकती है । परन्तु जिस प्रकार शरीरके अवयवोंका विकास पृथक् पृथक् नहीं होता किन्तु एकका दूसरे पर अन्तर्प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार एक व्यक्तिकी वृद्धि दूसरेकी वृद्धिके समाश्रित है । इस परस्पर सम्बन्धकी शृंखलामें बँधे हुए व्यक्तियोंका नाम ही समाज या जाति है । हम ऊपर कह चुके हैं कि जाति व्यक्तियोंके समूहका नाम है परन्तु केवल इतना ही नहीं है । जातिमें व्यक्तियोंकी गणना उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार गेहूँके ढेरमें गेहुओं की । यदि एक मन गेहूँके ढेरके प्रत्येक दानेको अलग अलग कर लिया जाय तो भी उनकी स्थिति उसी प्रकार बनी रहेगी जिस प्रकार ढेरमें रहनेसे । परन्तु यदि किसी जातिकी व्यक्तियाँ पृथक् पृथक् कर दी जायँ तो उनकी वही अवस्था नहीं रहती जैसी परस्पर शृंखला-बद्ध होनेसे रहती है ।

इन उपर्युक्त शृंखलाओंका इस प्रकार सुदृढ़ होना कि भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी उन्नति में बाधा न पड़े और उनका अन्तर्प्रभाव व्याप्यकर हो, जातीयता कहलाता है । ये शृंखलायें भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं और उन सबके दृढ़ होनेकी आवश्यकता है । यदि एक शृंखला भी कमजोर पड़ गई तो वही समस्त उन्नति को अवनतिमें परिवर्तन कर देती है । आजकल पाठशालाओंकी पाठ्यविधिमें कई विषय पढ़ाये जाते हैं और यदि परीक्षार्थी एक विषयमें भी विफल हो जाता है तो उसे परीक्षोत्तीर्ण उपाधि नहीं प्राप्त होती । इसी प्रकार व्यक्तियोंकी पारस्परिक शृंखलाओंमें एक शृंखलाके दुर्बल होने ही अन्य शृंखलायें भारकी भाग हट जाती है । प्राचीन कालमें इन शृंखलाओंके मोटे मोटे तीन भेद किये गये थे ।

(१) धार्मिक सम्बन्ध । इस सम्बन्धके सुदृढ़ करनेका कर्तव्य जिस [illegible] सौंपा गया था उसका नाम ब्राह्मण था । इनका काम था कि [illegible] इस [illegible] प्रचार करें जिससे पारस्परिक धार्मिक सम्बन्ध दृढ़ हो सके । [illegible] कि एक दूसरेमें पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ।

(२) राजनैतिक सम्बन्ध। यह क्षत्रियोंका काम था।

(३) आर्थिक सम्बन्ध। यह वैश्योंके अधिकारमें था।

इन तीनों प्रकारकी उन्नतियोंका भी पारस्परिक सम्बन्ध था। न केवल भारतवर्षमें किन्तु अन्य देशोंमें भी इस प्रकारकी संस्थायें उस समय उपस्थित थीं, जब वे देश शनैः शनैः उन्नति कर रहे थे। यूरोपके मध्यकालमें हम धार्मिक उन्नतिके विभागको साधुओं तथा पादरियोंके हाथोंमें पाते हैं जिनको 'रेग्यूलर' और 'सेक्यूलर' के नामसे पुकारा जाता था। राजनैतिक विभाग 'बैरन' लोगोंके हाथमें था जो किसी किसी अंशमें क्षत्रियोंके तुल्य थे। चौथे सिर्फ दास थे, जो शूद्रोंके समान थे। परन्तु आर्थिक विभागका काम किसीके हाथमें नहीं था। इससे स्पष्ट है कि जाति उन्नतिकी एक प्रसिद्ध और आवश्यक शृङ्खला दुर्बल थी। इस दौर्बल्यका क्या परिणाम हुआ? प्रथम तो उनने आर्थिक उन्नति की आवश्यकता अनुभव की, फिर उस आर्थिक सुधारमें इतने दत्तचित्त हुए कि और बातोंमें बाधा पड़ गई। इस समय यूरोप की दशाका वास्तविक निरीक्षण कीजिये तो पता लगेगा कि प्रत्येक उन्नतिका आधार अर्थ पर है। राजासे लेकर प्रजा तक और लाट पादरीसे लेकर छोटे छोटे व्यक्ति तक सब वैश्य बने हुए हैं। आत्मोन्नतिको तो बहुत दिनोंसे तिलांजलि दे दी गई है। धर्म केवल अर्थ-सञ्चयका नाम मात्र है, किन्तु राजनीतिका भी केन्द्र अर्थ ही है। अन्तर्देशीय और अन्तर्जातीय युद्ध केवल व्यापारके लिए ही होते हैं। परस्पर सन्धियां भी इसी अपेक्षासे की जाती हैं। न्यायालय भी अधिकतर इसी बातको दृष्टिमें रखकर कार्य करते हैं। यह क्यों? केवल इस लिए कि आर्थिक उन्नति की आवश्यकता समझकर अन्य सब प्रकारके सम्बन्धोंको दृष्टि-पथसे हटा दिया गया। परिणाम स्पष्ट है। जिस प्रकार किसी मनुष्यका एक अंग बहुत लम्बा और दूसरा बहुत छोटा हो जाय तो उसका भयंकर रूप हो जाता है उसी प्रकार 'धनमनेव-प्यम् धनमर्थयन्दम्' का मत जपते जपते 'टका धर्म टका कर्म' की लोकोक्ति चरितार्थ हो रही है। एक प्रसिद्ध लेखक लिखता है कि यूरोपमें जीवित मनुष्यकी अपेक्षा कौड़ीका अधिक सम्मान हो रहा है। एक बड़े कार्यालयका स्वामी कार्यालयके कागज़ोंको अपने नौकरोंकी अपेक्षा अधिक देखभाल करता है। इसका परिणाम धनिक और धनहीनों-के झगड़े हैं जो यूरोपसे अड्डा उठा चुके हैं, देखकर हमारे देशमें भी आ रहे हैं और निर्धन देशोंकी अशान्तिको बढ़ानेका यत्न कर रहे हैं।

स्वार्थ

जिस समय महाराष्ट्रोंकी जागृति हुई उस समय हिन्दुओंके हाथमें राज प्राय आही चुका था, परन्तु क्या कारण था कि वह उस आई हुई सम्पत्तिको सँभाल न सके। केवल यही कि उन्होंने यह समझा कि केवल राज आ जानेसे ही समस्त उन्नति हो जायगी। मनुष्यकी प्रकृति है कि जिस बातकी उसे अधिक आवश्यकता होती है उसीकी ओर उसका ध्यान आकर्षित हो जाता है। और इतना आकर्षित हो जाता है कि अन्य बातें भुला दी जाती हैं। थोड़े दिनोंके पश्चात् उसे पछताना पड़ता है। कल्पना कीजिये कि किसीके घरमें कोई बीमार है यदि समस्त घरके लोग धनोपार्जन, अपनी स्वयं स्वस्थता तथा अन्य बातोंको छोड़कर सबके सब चिकित्सामें लग जायें तो एक दिन डाक्टर और औषधके लिए पैसे भी न मिलेंगे और एक रोगीके स्थानमें कई रोगी उपस्थित हो जायँगे। इसी प्रकार जाडेमें यद्यपि वस्त्र आवश्यक है परन्तु भोजनको भूल जाना भूल है।

आजकल हम देखते हैं कि नैतिक सुधारकी ओर हमारा ध्यान इतना लगा हुआ है कि अन्य सब सुधारोंको हम भूल गये हैं। धर्म ढकोसला है और सामाजिक सुधारके झगड़ेमें कौन पड़े, सन्ध्या, पूजन और आत्मोन्नतिका प्रश्न उठा देना चाहिए, यह सब बातें आकाश मण्डलमें गूँज रही हैं। इसका परिणाम क्या होगा। जिस समय नैतिक अधिकार मिल जायँगे उस समय लोग हाथ मलेंगे कि जिन गुणोंसे हम इस नैतिक अधिकारसे अधिक लाभ उठा सकते थे वे नहीं हैं। हमारी अवस्था उस मनुष्यकी सी हो जायगी जो किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर झट बाजार दौड़ जाता है और दुकानपर पहुँचकर उसे यह मालूम होता है कि हाय मैं पैसे तो घर ही छोड़ आया।

राजनैतिक सुधार हमारे जीवनका एक उपयोगी भाग है परन्तु सर्वस्व नहीं। इसका आश्रय भी अन्य आत्मिक सामाजिक, आचार सम्बन्धी तथा आर्थिक नियमोंके आश्रित है। जिस प्रकार पहिले हमने यह भूल की कि आत्मिक या धार्मिक उन्नतिका प्रयत्न करते हुए राजनैतिक उन्नतिकी ओर ध्यान न दिया, उसी प्रकार आज हम उससे विपरीत भूल कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आज नैतिक उद्धारकी प्रभात वेला है, प्रकाशकी छटा दृष्टिगोचर हो रही है लोग आँखें मलमलकर उसकी ओर बड़े औत्सुक्यसे दौड़ रहे हैं। परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि हम आत्मिक और सामाजिक सुधारोंकी ओरसे पीठ किये हुए हैं। प्राचीन कालके इतिहासपर दृष्टि डालिये तो ज्ञात होगा कि रोम जातिका क्या पतन था। कार्थेज वाले किस प्रकार शिकार हुए और आजकल यूरोप किस प्रकार शिकार हो रहा है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह शिक्षा मिलती है कि राज्य और [illegible] ही वास्तविक उन्नति है और विचारशील नेताओंका कर्तव्य है कि देशके [illegible] इस [illegible] आवश्यकता दूर करें, नहीं तो इसका परिणाम अच्छा न होगा।

गंगाप्रसाद

कपास


सका जन्मस्थान हिन्दुस्थान है। कोई ७४१ वर्ष और कोई ३८८ वर्ष विक्रम सम्वत्के पहिले इसका जन्म-काल निर्णय करते हैं। बाहरी मुल्कोंमें इसका जाना पहिली शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। यह इराक व लाल सागरकी ओर भेजी जाती थी।

बोना, काटना, ओटना, विस्तवार छाँटना, नमूने निकालना और दबाना ये छः स्थितियाँ, कपासकी उत्पत्तिकी हैं।

ओटना जिसे अंगरेज़ोंने जिनिंग कहते हैं, बिनौले कपाससे निकालना है। बिनौले निकले बाद, कपास रुई कहलाने लगती है। दबाना रुईके काममें अत्यावश्यक है, नहीं तो बहुतसी जगहमें थोड़ासा ही माल आता है।

कपासकी कीमत गत २५ वर्षमें बहुत बढ़ गई है। और भी सब चीजें बढ़ गई हैं, पर कपासका मूल्य सबसे ज्यादा। यदि संसारमें इसकी पैदावारी इस अवसरमें न बढ़ती तो कपासका मिलना असम्भव हो जाता। सं० १९६१ से लगाकर सं० १९६५ तक हर सालकी औसत पैदावारी २ करोड़ ६१ लाख गांठें थी। एक गांठ में २५० सेर होते हैं।

संसारमें कपासकी माँग

संसारकी जनसंख्या १५ खर्बके लगभग है। इसमेंसे आधे तो अब भी अधूरे कपड़े पहिनते हैं और एक चतुर्थांश तो किसी प्रकारका भी वस्त्र धारण नहीं करते। पहिननेके कपड़ोंमेंसे ९, १० हिस्सा कपासका ही होती है। इससे यह प्रकट है कि कपासकी भावी माँग अपरिमित है। कपासका उपयोग अन्य पदार्थोंके स्थानमें भी होने लगा है जैसे रुती फ्लालेन, मरसेराइज़्। विलायत आदि देशोंमें कपासकी रुई, और रुईका सूत बन कर, कपास बत्ती वगैरः के काममें आताहै, पर यहाँ तो रुई ही बत्तीके स्वरूपमें जलानेके काम में आती है। इसके बिनौले भी उत्सवोंपर तेलके साथ अच्छा व टिकाऊ प्रकाश उत्पन्न करते हैं गाय बैलोंको ये खिलाये भी जाते हैं क्योंकि ये पौष्टिक व दुग्धवर्धक हैं। मतर वगैर. के साथ रुईकी बहुत आवश्यकता पड़ती है।

कपासकी पैदावारीके स्थान सं० १९७०

अमरीका	१६०.६	लाखगांठ
हिन्दुस्थान	५०.२	" "
चीन	४०.०	" "
मिश्र	१०.५	" "
रूस	१०.३	" "
अन्य	१०.१	" "
	२६१.८	

हिन्दुस्थानकी पैदावारी

यहाँ २५० लाख एकड़ जमीनमें कपास की खेती होती है, १ एकड़ ५० सेरके लगभग कपास पैदा होती है जब कि अमरीकामें १२५ सेर व मिश्रमें २ सेर होती है। हिन्दुस्थानमें कपासकी खेती अलग नहीं होती अर्थात् इसके साथ और भी चीज़ें पैदा की जाती हैं, परिणाम यह होता है कि अच्छी कपास नहीं होती, परन्तु हर्षकी बात है कि कपासको अन्य चीज़ोंके साथ बो देने खिचड़ी रीति अब प्रति वर्ष कम हो चली है। केवल हिन्दुस्थानसे ही यह आशा की जाती कि भविष्यमें संसारकी जो माँग कपासके लिए होगी वह यहाँसे ही पूर्ण होगी, ऐसा क जाता है यदि योग्य संरक्षण किया जावे तो पाँच वर्षमें हिन्दुस्थानके कपासकी पैदाव दुगनी हो जावे। इन दिनों भी हिन्दुस्थानी कपास अच्छी हो चली है। तीन लाख ग अब अच्छी कपासके पैदा होने लगे हैं।

मद्रास, मैसूर, (दोनों मिलकर) ६,६०,००० गट्ठे, हैदराबाद ४,०१,००० बम्बई, बरौदा, सिंध, मध्यप्रदेश व बरार, मध्यभारत, बंगाल बिहार, व उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त, आसाम, राजपुताना, व अजमेर, मेवाड़, पंजाब, बर्मा, पश्चिमोत्तर सरहद, हिन्दुस्थानमें कपासके पैदावारीके स्थान हैं।

स० १९७२ में १०० में २७ एकड़के हिसाबसे कपासकी खेती स० १९५० के सामने कम हुई।

यदि हिन्दुस्थानसे बाहर जाने वाली चीजोंका अन्दाज किया जावे तो १००में १६ कपासका हिस्सा है। युद्धके पूर्व कपासकी निकासी यों थी—

स० १९६६

जापानको	४१·२	सौ में से
जर्मनीको	११·७	,, ,,
बेल्जियम	११·१	,, ,,
इटली	७·७	,, ,,
आस्ट्रिया	६·३	,, ,,
अमरीका	३·८	,, ,,
अन्यदेश	६·२	,, ,,

अब जापानको अधिक जाने लगी है व जर्मनीको जाना बिलकुल बन्द हो गया।

यहाँ एक बात और समझलेनी चाहिए जो प्रोत्साहित करनेवाली है और साथही वर्तमान दशापर खेद उत्पन्न कराती है। बिना ओटा व असंस्कृत कपास हमारे हिन्दुस्थानसे किसी कीमतपर बाहर जाता है। जापान आदि देशोंमें जाकर वह साफ़ किया जाता है। उसका पौष्टिक बिनौला वहीं रह जाता है, फिर उस रूईके कच्चे अच्छे कपड़े व और चीजें बन कर यहाँ भारी भारी कीमतपर बिकती हैं। इसमें हो हमारादो माल रहता है, बाहरवाले वहां

जब स्वदेशमें हम बनी सस्ती वस्तुओंपर बेचकर हम कमाई बना रहे हैं, तो भी कहना सन्देह नहीं होगा कि हम अपने नई मशीनोंसे स्वयं कमाल बना रहे है। यदि हम इसे मानें व समझ लो हाथ पर चलाकर इस अवस्थाको बदलना आवश्यक है, नहीं निरन्तर होगा।

युद्ध और कपास

युद्धके पूर्व हिन्दुस्थानमें कपासका मन्दा बहुत था। परिणाम यह कि यहाँके कपासकी कामत देखनेपर कपासकी कीमतमें कम रही और किसी समय तो इतनी कम होगई कि यहाँकी औसत कीमतसे भी कम अमरीकाके कारण अमरीकन कपासकी कीमत चढ़ी रही। सन् १९१७ में यहाँ कपासकी पैदावारी कुछ कम हुई। युद्ध प्रारम्भ होते ही कपासका व्यापार बहुत बिगड़ गया, कपासके क्रयविक्रय स्थान* बन्द होने लगे क्योंकि एक अपने मुनाफेको अपनी दामोंसे लगाकर रखनेकी चेष्टा करने लगीं। युद्ध प्रारम्भ होनेके ठीक दो दिन बाद लिवरपूलका कपास क्रयविक्रयस्थान बन्द हो गया। कपासकी कीमत इन स्थानोंके बन्द होनेके पूर्वही कम होने लगी थी। कपासका बाहर जाना बन्द होने लगा। विलायतमें कारखानोंको कपास मिलना कठिन हो गया। हमारे यहाँ भी कपास ४।५ सेरकी बिकने लगी थी। विलायतमें कारखाने बन्द पड़ने की नौबत आगई, तब अंग्रेज सरकारने सहायता की, और विलायती क्रयविक्रयस्थान कपासके लिए फिर जारी किये गये और कपासकी कीमत प्रारम्भमें लागतसे भी कम निश्चित हुई। यह भी निश्चय हुआ कि उस साल खरीदी कपास अगली सालके लिए घर रखी जावे यद्यपि कपास का रखना अत्यन्त आपदायक व आपत्तिमय होता है। इसे जल व अग्नि दोनोंसे बचाना पड़ता है। मार्गशीर्ष तक कपासकी कीमत गिरीही रही, पर मार्गशीर्षके अन्तिम सप्ताहसे कपासकी कीमत बढ़तीही चली जा रही है। अब कुछ स्थिर है।

कपासके सस्ते होनेसे दक्षिण अमरीकाके समान यहाँ अधिक त्रास न हुआ। कारण कि यहाँ कपासकी माँग बहुत है। यहाँकी उपजका अधिकांश यहींही खप जाता है। कॉटनजिनिंगके सरकारने ४० लाख पाउण्ड यानी उस समय ६ करोड़ रुपया कपासकी जमानत पर उधार देनेके लिए अलग निकाल रखा। इधर जापानको भी दिन प्रतिदिन अधिक कपास भेजी जाने लगी। हमारेकी स्थिति कुछ स्थिरसी होने लगी, और कपासका व्यापार फिर प्रचारित हुआ। अब यह स्थिति है कि कपासकी माँग अत्यन्त अधिक होनेके कारण यह सबसे मँहगी हो रही है।

कपासका केन्द्र बम्बई है। यह ठीक कहा गया है कि बम्बई कपाससे ही बना है। जलमार्ग खुलते ही कपासका व्यापार यहाँ बढ़ गया। अमरीकन अन्तरंग युद्धमें यहाँके व्यापारियोंने बहुत मुनाफा कमाया। इस युद्धके कारण लिवरपूलमें कपास मिलना असम्भव हो गया तब विलायती कारखानोंको अमरीकासे हट मोड़ हिन्दुस्थानका ही सहारा कच्चे कपासके लिए लेना पड़ा। युद्धके पूर्व ५ लाख गाँठ बाहर गये थे परन्तु इस जर्मन संग्रामके

---

* Exchange houses

अन्तिम वर्षोंमें ६ लाख गट्ठोंसे अधिक बाहर गये थे। परिणाम यह हुआ कि बम्बई ही जहाँसे यह सारी कपास अधिकतर जाती थी इसके मार्गमें ऐसी अधी हो गयी कि वहाँ कपासके हिस्सोंका नशा सा छागया। यह नशा धीरे धीरे उतरा। इस मुनाफ़ेके कारण कपास की खेती बढ़ चली है व अंगरेज सरकारने भी इस ओर अच्छा ध्यान देना प्रारम्भ किया है। अब कपासका बीज असाधारण लक्ष्के साथ पसन्द किया जाता है। तब भी सब कपास विशिष्ट प्रकारकी नहीं हुई है। इस खामीको दूर करनेकी इच्छासे अंगरेज सरकारने महाशय *मेकन्नाके आधिपत्यमें एक समिति सं०१६७६में नियत की। इसकी रिपोर्टसे पता चलता है कि* बम्बईके हिसाबसे वह कपास श्रेष्ठ है जिसका धागा पौन इंच लंबा हो, पर लैंकाशायरके हिसाबसे एक इंचसे एक सप्तमांशका लंबे धागे वाली कपास श्रेष्ठ है। इस हिसाबसे अब भारतवर्षमें लगभग ७ लाख गट्ठे लैंकाशायर वाले होते हैं और ४ लाख करीब बम्बई वालेके। यह सिद्धान्त हुआ है कि अधिक कपास खेतीके प्रकार बदलनेसे व भिन्न भिन्न प्रकारका कपास उत्पन्न करनेसे पैदा हो सकता है। यह भी निश्चय हुआ है कि कपासके उत्पादकोंको बड़ी कीमतका लाभ प्राप्त करानेके लिए एक ऐसी संस्थाकी योजना व निर्माण करना चाहिए जिसके द्वारा इन उत्पादकोंको प्रतिक्षण यह सूचना रहे कि कौनसी कपास कहाँ व किस भाव बिक रही है। सहकारिताका भी इसमें उपयोग करना योग्य समझा गया है। इन सब सुधारोंके लिए कृषिविभागका पुनरुद्धार और बम्बईमें ईस्ट इण्डिया काटन एसोसियेशन नामक संस्थाका स्थापन सुझाया गया है।

इन सब बातोंको देख यह आशा की जा सकती है कि थोड़े ही समयमें भारतीय कपास भी एक विशिष्ट गौरवको प्राप्त होकर सारे संसारकी सहायता करती हुई भारतवर्षको व्यापार गौरवके शिखरपर पहुँचानेका प्रयत्न व चेष्टा करेगी।

बालकृष्णपति वाजपेयी भीमपुरे



पुस्तकावलोकन

यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षणसुधारक—लेखक श्रीयुत चन्द्रशेखर वाजपेयी एम. एस. सी., एल. टी.। सम्पादक श्रीयुत बाबू श्रीप्रकाश बी. ए., एल-एल. बी. (केंब्रिज) बारिस्टर-एट-ला। प्रकाशक ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी। पृष्ठ संख्या १८८. मूल्य १॥=)

प्रस्तुत पुस्तक, ज्ञानमण्डल पुस्तकमालाका छठाँ ग्रन्थ है। अबतक जो पुस्तकें ज्ञानमण्डल द्वारा प्रकाशित हुई हैं वे सब चुनी हुई हैं। शिक्षा का प्रश्न बड़े महत्वका है। पाश्चात्य विद्वानोंने इस प्रश्नपर बड़ा सूक्ष्म विचार किया है। और बड़े परिश्रमसे अनुभव प्राप्तकर शिक्षण-प्रणालीका धीरधीरे सुधार किया है और भी वे निरंतर यथेष्ट सुधारका प्रयत्न करते रहते हैं। यूरोपीय लोगोंकी सत्ता बल और सभ्यता शिक्षा परही निर्भर है। जो देश पिछड़े हुए हैं वहाँ शिक्षा ही का अभाव है। प्रस्तुत "पुस्तक शिक्षा सुधार, और उसके सिद्धान्तोंपर बड़ा प्रकाश डालती है। इसमें यूरोपके सात प्रसिद्ध शिक्षा सुधारकोंकी जीवनी और शिक्षा सम्बंधी उनके विचार एवम् सिद्धान्त बताए गए हैं। अंगरेजी की दो पुस्तकोंके आधार पर इसकी रचना कीगई है। पुस्तक बड़े कामकी है शिक्षाप्रद और मनन करने योग्य है जिससे कि यहाँभी शिक्षाका आवश्यक सुधार हो।

∴

कृषि विद्या—भाग १—लेखक प० गंगाशंकर पचौली, भूतपूर्व हेड-मास्टर, बुन्दी। पृष्ठ सख्या १३३ मूल्य ॥)

कृषि विद्याके प्रथम भागमें 'खेत' सबंधी उपयोगी बातोंका उल्लेख किया गया है। कितनी ही प्रमाणिक पुस्तकोंके आधारपर इसकी रचना की गई है और वह इस ढगसे कि मैट्रिक्यूलेशनके विद्यार्थियोंको जो कृषिके विषयकी परीक्षा देना चाहें उनके लिए उपयोगी साबित हो। पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं जिनमें धरतीकी बनावट, भेद और उसकी उत्पादक शक्ति बढानेके सार्थक उपाय बताए गये हैं। [illegible] और अन्य औजारोंका हालभी दिया गया है। फिर बीज पसद करना और सिंचाईकी उत्तम तरकीब बताकर फसलोंका अनुक्रम बताया गया है। पुस्तकके अतमें चित्र भी दिये गये हैं जिनसे मूल पुस्तकके समझनेमें आसानी हो। कृषिकी उन्नतिके इच्छुक और विशेष कर विद्यार्थियोंके लिए पुस्तक बड़े कामकी है। लेखक महाशयने इसके लिखने में अच्छा परिश्रम किया है।

∴

हमारी कारावास कहानी—लेखक श्रीयुत भवानीदयालजी। प्रकाशक सरस्वती-सदन इन्दौर। पृष्ठ सख्या ८६। मूल्य ॥)

सरस्वती सदनने अन्य उपयोगी पुस्तकोंके अतिरिक्त नवजीवन नामक एक निबंध माला भी निकाली है। जिसकी पहिली पुस्तक श्रीयुत भवानीदयाल जी की कारावासकहानी है। दक्षिण अफ्रीकामें महात्मागान्धीने भारतीयोंके मानकी रक्षाके लिए जो आन्दोलन किया था उसमें लेखक महाशयने बड़ी सहायता की थी। वे स्वयं जेल गए और उनकी पत्नीको भी कारावासकी यातना भोगनी पड़ी थी। प्रस्तुत पुस्तकमें अपनी कारावासकहानी के साथ साथ सत्याग्रहका महत्व, प्रदेशमें भारतीयोंकी दुर्गति और उनके साथ किए गये लज्जाजनक क्रूर व्यवहारकाभी हाल मालूम होता है। स्वदेश प्रेम और मान-रक्षाके लिए एक वीर पुरुषको जो कष्ट भोगने पड़ते हैं उनका जीता जागता वर्णन इस पुस्तकमें पढ़कर हमारे हृदय दौर्बल्यकी मात्रा अवश्य कम होगी।

***

बालोपदेश—लेखक श्रीयुत रामनारायणमिश्र। प्रकाशक—सरस्वती-सदन इन्दौर। पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य ॥)

नवजीवन-निबंधमालाकी यह दूसरी पुस्तक है। इसके लेखक हिन्दी संसारके सुपरिचित विद्वान, जो हरिश्चन्द्र हाईस्कूल काशीके मुख्य अध्यापक थे, रामनारायण जी मिश्र हैं। उनके अध्यापकीय अनुभवका यह एक फल है। बालकोंको नीतिकी शिक्षा देना सभी आवश्यक समझते हैं परन्तु वह इस प्रकार नहीं दी जाती है जिससे कि उसका यथेष्ठ प्रभाव उनके मन और चरित्र पर पड़े। उपदेश रूखे मालूम हुआ करते हैं। उनको रोचक बनाकर यदि बालकों को शिक्षा दी जावे तो वे समझते भी जल्दी हैं और उनपर उसका प्रभाव भी पड़ता है। केवल दंडसे बालक नहीं सुधर सकते। लेखक महाशयका कथन सर्वथा सत्य है कि प्रेम करनेमें बालकका अधिक सुधार होता है। बालकोंके लिए परम उपयोगी उपदेशोंका पुस्तकमें संग्रह है। भाषा शुद्ध और सरल है और कहानी कहनेका ढंग बहुत रोचक है। बालकोंको नैतिक शिक्षा देनेमें एक अनुभवी सज्जनकी यह पुस्तक बड़ी उपयोगी हो सकती है।

***

ज्योति—मासिक पत्रिका। सम्पादिका श्रीमती विद्यावती सेठ बी. ए.। प्रकाशक बाबू मदनलाल. लाहौर। वार्षिक मूल्य ४॥) विद्यार्थियों और स्त्रियोंके लिए केवल ४)।

ज्योतिके अभी चार अंक प्रकाशित हुए हैं। इसमें कई विशेषताएं हैं। एक तो यह कि इसका सम्पादन एक महिला द्वारा होता है। आप पहिली हिन्दू विदुषी हैं जिन्होंने अंगरेजीकी उच्च शिक्षा प्राप्तकर प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी ए की उपाधि ली है। ज्योतिकी दूसरी विशेषता यह है कि उसका प्रकाशन लाहौरसे हुआ है जहां हिन्दी प्रचारकी विशेष आवश्यकता है। हमको पूरी आशा है कि उस प्रान्तमें हिन्दी प्रचारमें पत्रिका

बड़ा सहायक होगा। तीसरी बात है कि समाज सुधार और स्त्री शिक्षा आदि लोकोपयोगी विषयोंकी ओर इसका विशेष ध्यान है। हालाँ कि पत्रिका विविध-विषय-सम्पन्न है। लेख सुरुच और मनन करने योग्य हैं। कविता और लेख ऊँचे दर्जेके हैं और इससे आशा होती है कि ज्योतिषि महानतिमिरके नाशमें पूरी सहायता मिलेगी। हम पत्रिकाका आदर सहित स्वागत करते हैं।

∴

नागरी प्रचारिणी पत्रिका—अर्थात् प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका। सम्पादक रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, मुंशीदेवीप्रसाद, पं. चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी. ए., और बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०। प्रकाशक नागरी प्रचारिणीसभा काशी। मूल्य प्रति संख्या १)।

नागरी प्रचारणी पत्रिकाका यह नवीन संस्करण है। कुछ दिनोंसे पत्रिकाका ढंग ऐसा हो गया था कि वह सभाका गौरव नहीं कही जासकती थी। अब इसका नवीन संस्करण निकला है और सम्पादन हिन्दीके भूषण और सम्मानित विद्वानोंके हाथमें आया है। इसके अतिरिक्त रूप और आकार भी इसका बदल दिया गया है। हिन्दीमें प्राचीन शोधकी यह एक मात्र पत्रिका है। सभाका गौरव इससे बहुत बढ़ जायगा। हिन्दीकी सार्थक सेवाका यह एक उत्तम साधन होते हुए इतिहास की बहु मूल्य सामग्रीके एकत्र और प्रकाशित करनेमें इसकी तुलना अन्यभाषाकी बढ़ियाँ से बढ़ियाँ पत्रिकाओंसे होसकेगी। प्रथम अंकके लेख ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुमूल्य हैं। पत्रिका, हिन्दी और सभाका नया भूषण है।

∴

हिन्दी-मनोरंजन—मासिक पत्रिका। प्रकाशक पं. विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक, बंगाली मुहाल, कानपुर। वार्षिक मूल्य २॥)

मनोरंजनके अबतक ६ अंक निकल चुके हैं। जैसा इसका नाम है वैसाही इसका गुणभी है। उत्तम गल्पोंका संग्रह इसमें प्रकाशित होता है। कई गल्प बड़ी अच्छी निकली हैं और उनके पढ़नेसे आनन्द और मनोरंजनके साथसाथ यह भी मालूम होता है कि हिन्दीमें ऊँचे दर्जेकी स्वतन्त्र गल्पें निकलने लगी हैं। यह सर्वथा मनोरंजनकी सामग्री है अतएव अवश्यही लोकप्रिय होगी। पत्रिका का मूल्यभी अधिक नहीं है। छपाई साफ सुथरी है।

∴

शुद्धि संशोधन—गत आषाढ़ मासके 'पुस्तकावलोकन' में दो त्रुटियाँ रह गई हैं। पहिली यह कि 'नलदमयन्ती' 'सावित्री सत्यवान' और 'वीर पञ्चरत्न' के प्रकाशकके पतामें जहाँ '३७१, अपर चीतपुर रोड' होना चाहिये था, वहाँ, '३७१ हरीसन रोड' छप गया है। दूसरी यह कि 'नलदमयन्ती' के 'लेखक' की जगह 'अनुवादक' छप गया है। इन्हें, कृपया पाठक सुधार लें।

सम्पादकीय

भारतीय व्यवस्थापक सभा



वा इसरायकी व्यवस्थापक सभाके आजकल अधिवेशन हो रहे हैं। आरम्भमें प्रथानुसार वाइसरायने जो भाषण किया उससे देश संबंधी अनेक बातों पर प्रकाश पड़ता है और सरकारकी नीतिका पता चलता है। अर्थ-संबंधी कितनी ही महत्व-पूर्ण बातें उन्होंने कही हैं उनका उल्लेख करना वश्यक प्रतीत होता है। युद्धकालमें हमारा आयात घट गया था और निर्यात बढ़ गया । भारतवर्षने केवल सैनिकों और धन द्वारा ही सरकारकी सहायता नहीं की थी वरन् दका सामान, खाद्यपदार्थ आदि भी दिये थे, जिनके बिना विजय प्राप्ति असम्भव थी। रन्तु अब जो देश युद्धकालमें हमारे आश्रित थे अपने काम सँभालने लगे हैं। अपने व्यापारकी सुव्यवस्थामें लग गए हैं और अपनी उत्पादकशक्ति बढ़ानेका पूरा उद्योग कर रहे हैं। इस कारण हमारे मालकी माँग उतनी नहीं रही जितनी पहिले थी। दूसरा कारण जिससे हमारा निर्यात कम होगया है वह यह है कि मध्य यूरोपके देशोंकी आर्थिकस्थिति अच्छी नहीं है। उनका विश्वास करके वायदे पर उधार माल देना जोखिमका काम है। इसलिए जो माल बाहर भेजनेका तैयार है उसकीभी खपत नहीं होती। उसकी निकासीका प्रबन्ध तबतक नहीं होसकता जबतक मध्ययूरोपकी साख न बढ़े। फिर यहाँकी सरकारने प्रजाका अन्न कष्ट कम करनेके लिए अन्नका निर्यात रोक दिया है। थोड़ा बहुत अन्न जो विदेश जाता है वह विशेषकर प्रवासी भारतीयोंके लिए ही भेजा जाता है। इस कारण भी निर्यातमें बड़ी कमी हो गई है। और आयात तो बढ़ता ही जाता है। विदेशमें माल आना बन्द हो गया था वह अब आने लगा है और उसकी वृद्धि भी हो रही है। इसका परिणाम यह होगा कि व्यापारका सन्तुलन जो हमारे पक्षमें बहुत बढ़ गया था वह घटता जायगा। भारतवर्षको युद्धकालके व्यापारसे बड़ा लाभ हुआ था। विलायतवाले हमारे ऋणी हो गए थे क्योंकि व्यापारका सन्तुलन जो सदाही हमारे पक्षमें रहता है यह और भी बढ़ गया था। परन्तु सरकारकी एक चालने हमारा लेना बिना रुपया दिये ही चुका दिया। विनिमयकी दर घटनेसे और भारत-सचिवके नाम अधाधुंध हुण्डियाँ करनेकी सरकारकी अनीतिसे जो हमारा लेना था वह मिट्टीमें मिला दिया गया और विलायतके व्यापारी सदजमें ही बिना पूरा भुगतान किये ऋण-मुक्त हो गए।

नोटोंका चलन

सरकारने नोटोंका चलन युद्धकालमें खूब बढ़ा दिया था। रुपयेकी आवश्यकता त थी परन्तु चाँदी काफ़ी नहीं मिलती थी और फिर उसका भाव भी बहुत चढ़ गया। रुपयेकी कमीको पूरा करनेके लिए करोड़ोंके नोट बनाये गये। एक रुपया, दाई रुपयेके नोट जारी किये गये। इनको कोई नोट पसन्द नहीं है। फिर भी इनको जारी किया

न और [illegible] वृद्धि भी हो रही । [illegible] कि नोटोंके [illegible] होनेसे [illegible] [illegible] हुए नहीं । सरकारी [illegible] नोटोंका भुना लेना [illegible] हो गया । नोटोंके [illegible] मिलते भी नहीं । अर्थशास्त्रका यह एक [illegible] सिद्धान्त है कि नोट या सिक्कोंकी वृद्धिसे मँहगी बढ़ जाती है । इसके साथ साथ प्रजाकी सरकारकी साखमेंसे भी विश्वास कम हो जाता है । जिसके कारण लोग नोटोंको मजबूर होकर लेते हैं उनपर बट्टा लगा देते हैं और जहाँतक होता है रुपयोंको अपने कामसे नहीं निकालते । नोटोंके भुनानेके लिए उनके मूल्यके एक तिहाईके बराबर नकद रुपया सरकार अपने पास रखती है । इसमेंसे कुछ रुपया अस्थायी साखपर लगा भी दिया जाता है । परन्तु युद्धकालमें नोट-वृद्धिके कारण उनके भुनानेके लिए सरकार काफी रुपया अपने पास नहीं रख सकी थी । वाइसरायका कहना है कि अब यह गड़बड़ी जाती रही है । सरकारी साखमें प्रजाका विश्वास बना हुआ है जिसका प्रमाण यह है कि सरकारके पास नोटोंके बदलेमें पिछले दो महीनोंमें १२ करोड़ १८ लाख रुपये आये और सरकारको भी नोटोंके भुनानेमें कोई असुविधा नहीं रही । प्रति सैकड़ा नोटोंके लिए सरकारके ४८ रुपये नकद मौजूद हैं । नोटोंके लिए इतना रुपया जैसा कि वाइसरायने कहा है । शायद ही किसी देशमें रक्खा हो । इस समयसे ८,६ महीने पहिले १ अरब ८४ करोड़ नोट जारी थे, परन्तु अब उनकी संख्या सरकारने घटाकर १ अरब ६३ करोड़ कर दी है । नोटोंके चलन, सोना आदिके सम्बन्धमें नई व्यवस्था होनेवाली है । एक सावेरनकी दर १० रुपयेके बराबर करने पहिले सरकारने सूचना निकाली थी कि पाँच महीनेके भीतर जो लोग चाहें वे सावेरनके बदलेमें खजानेसे १५ रुपया पा सकते हैं क्योंकि बादमें सावेरनकी दर घटा दी जायगी । वाइसरायने कहा कि इस सूचनाके अनुसार ७ करोड़ सावेरन सरकारको लेने पड़े और उनके बदलेमें १५ रुपयेके हिसाबसे रुपये देने पड़े । उनका ख्याल है कि सरकारी सूचनाका अनुचित लाभ लेनेके लिए सावेरन चोरीसे देशमें लाये गये । जो हो, परन्तु सरकारको पहिले जान लेना चाहिए था कि इसमें देशका कितना धन नष्ट होगा । जो सावेरन सरकारने १५ रुपयेमें लिया उसका मूल्य अब १० रुपये ही रह गया । देशकी अर्थ-हानि कितनी हुई इसका भी कुछ हिसाब है ।

श्रमजीवियोंका प्रश्न

श्रमजीवियोंका प्रश्न दो भिन्न दृष्टियोंसे देखा जा सकता है । एक तो यहाँके श्रमजीवियोंकी अन्य देशके श्रमजीवियोंसे तुलना की जा सकती है और दूसरे उनकी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था इस देशकी दशाके अनुसार कैसी है और उसमें किस प्रकार उन्नति की जा सकती है यह प्रश्न भी विचार करने योग्य है । भारतके श्रम-जीवियोंको अन्तर्जातीय श्रमजीवी सम्मेलनमें अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार मिला है सो तो ठीक है परन्तु प्रतिनिधियोंको स्वयं चुननेका अधिकार सरकारने नहीं दिया । दूसरी बात यह भी है कि कार्यकारिणी समितिमें भारतवर्षका प्रवेश होना चाहिए । सरकारके

आठ मुख्य देशोंमें भारतकी गणना भी होनी चाहिए। वाइसरायने इसके लिए प्रयत्न किया है। उसकी सफलतासे भारतके श्रमजीवियोंकी पदोन्नति होगी और देशका गौरव बढ़ेगा। श्रमजीवियों और कारखानोंका कानून अन्यदेशोंसे यहाँ बहुत विभिन्न है। अन्तर्जातीय सम्मेलनकी इच्छा तो यह है कि श्रमजीवियोंको समस्त देशोंमें बराबर घंटे काम करना पड़े और यथासम्भव कामका समय कम भी कर दिया जाय। परन्तु सब देशोंकी अवस्था एकसी नहीं है। जल वायुकी विभिन्नताके अतिरिक्त श्रमजीवियोंका कार्य-कौशल और आर्थिक तथा शारीरिक अवस्था भी एकसी नहीं है। फिर सब देशोंमें एकसे कानूनका होना असम्भव है। इतना अवश्य हो सकता है कि एक देशके उन्नत और सुखी श्रमजीवियोंकी सहायता और स्पर्धासे दूसरे देशोंके भी लोग अपना सुधार कर सकें। कारखानोंके कानूनमें सुधारकी आवश्यकता अवश्य है वाइसरायने कहा है कि सुधारपर शीघ्र विचार होकर नया कानून कौंसिलके सम्मुख उपस्थित किया जायगा। यही हमारा दूसरा लक्ष है। महँगीके कारण जब साधारण प्रजा इतनी व्याकुल हो रही है तो बेचारे श्रमजीवियोंमें अशान्ति हो तो क्या आश्चर्य है। जब समस्त संसारमें हड़तालोंका जोर था तो यहाँ भी श्रमजीवी उनका सहारा लेकर अपनी दशा सुधारनेका प्रयत्न करें तो कोई नई बात नहीं है। समाज, सरकार और कारखानोंके मालिकोंको एक बात सदैव ध्यानमें रखनी चाहिए कि श्रमजीवियोंके बड़े समुदायकी मानसिक और आर्थिक उन्नतिपर देशका कल्याण बहुत अंशोंमें निर्भर है। इनके सुधार बिना देशके व्यापारकी न तो वृद्धि होगी और न वास्तविक जागृति ही होगी। सन्तोषका विषय है कि शिक्षित लोग और कार्यकर्ताओंका ध्यान इधर गया है और, स्थान स्थानपर श्रमजीवियोंकी समितियाँ स्थापित हो रही हैं। इनका परिणाम अच्छा ही निकलेगा।

भावी उन्नति और आर्थिक स्थिति

देशमें नई व्यवस्था होनेवाली है। प्रजाके प्रतिनिधियोंको पहिलेसे विशेष अधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारोंसे प्रजाको सन्तोष हो या न हो और उनके उपयोगसे कहाँतक लाभ उठाना चाहिए और कहाँतक उनका बहिष्कार करना उचित है—ये प्रश्न दूसरे हैं। इनसे यहाँपर हमारा कुछ सबंध नहीं है। परन्तु इतना तो अवश्यही प्रतीत होता है कि देशकी दशा सुधारनेके लिए अधिकार प्राप्त लोगोंको सरकारी आमदनी बढ़ानी है। बिना इसके कोई कार्य नहीं हो सकता। शिक्षाप्रचार हो या स्वास्थ्य रक्षा हो, अन्य उपयोगी काम हो सरकार बिना धनके नहीं कर सकती। आमदनीके लिए नये ... पड़ेंगे और किसी किसी रूपमें जनतापर कर-भार बढ़ाये बिना गति नहीं है। ... प्रजाकी आर्थिक शक्ति बढ़नी चाहिए जिससे कर-भार सहन हो सके। यह तभी ... जब यहाँ कलाकौशल और व्यवसायकी उन्नति हो। देश ना व्यवसायिक उन्नति... ना प्रतीत होती है परन्तु इस समय भारतवर्षकी समस्त उन्नतियोंमें ... श्रमजीवी और मालिकोंका परस्पर वैमनस्य इसमें बड़ा बाधक है जिस...

[illegible] हड़ताल होती है। और इनका कहीं [illegible] अधिक हानि उठानी पड़ती है। जब तक [illegible] कारखाने नहीं खुले थे तब [illegible] और [illegible] कारीगरोंमें परस्पर [illegible] और [illegible] हो जाता था, परन्तु अब यह सम्भव नहीं है। [illegible] परस्पर [illegible] विरोध [illegible] हो जाती है। क्योंकि पूंजीपतियोंको पहलेकी तरह कामोंमें [illegible] [illegible] अवसर मिलता है। [illegible] दुर्बलता और धनकी लालसासे मनुष्य स्वार्थान्ध हो जाता है। दूसरी ओर मजदूरोंको भी मालिकके लाभको अपना लाभ नहीं समझते। इस प्रकार काम करनेवालोंमें परस्पर विरोध होने लगता है और कभी कभी यह विरोध बड़ा भयानक रूप धारण कर लेता है। इस दुर्दशाका उपाय दुःसाध्य नहीं है। कारखानेके कानूनमें सुधार कर दिया जाय और मालिक मजदूर यह समझ लें कि दोनोंका हित परस्पर मिलकर व्यवसायकी उन्नति करनेमें है और भेदभावमें दोनोंहीकी हानि है तो हड़ताल और झगड़े इतने न हुआ करें। कुछ लोगोंका कहना है कि हड़तालके विरुद्ध कानून बना दिया जाय। यह नीति ठीक नहीं। पञ्चायतोंका बिठाना इसमें बहुत अच्छा है। मध्यस्थद्वारा विवाद मिट जाया करें ऐसा प्रयत्न होना चाहिए, और इस तरह कानूनभी यदि बना दिया जाय तो कोई हानि नहीं वरन लाभही होगा।

महँगी

वाइसरायने महँगीके सम्बन्धमें कहा कि यह आशाही निर्मूल है कि युद्धकालमें पूर्व के जो अन्नके भाव थे वे फिर कभी देखनेमें आवें। फिरभी महँगी कुछ अंशमें कम अवश्य हुई है। अन्नको एक प्रान्तमें से दूसरेमें ले जानेकी रुकावट दूर करनेसे देशको लाभ हुआ है। परन्तु जिन प्रान्तोंसे अन्न बाहर गया हो वहाँ कुछ महँगी बढ़ गई है। आगेकी दशा वर्षा पर निर्भर है। दक्षिणमें वर्षा कम हुई है परन्तु अभी हालमें पानी आया है जिससे आशा हो सकती है कि बिगड़ी उपज अच्छी हो जावगी। चावल और गेहूँकी अच्छी उपजने बहुत कुछ धैर्य बँधा दिया है। बंगालके कुछ भाग और उड़ीसामें पानीकी बाढ़से हानि हुई है। यह निश्चय है महँगी पहिलेसे कि कुछ कम है। वाइसरायका कथन है कि यूरोपके देशोंमें जितनी महँगी है उतनी यहाँ नहीं है। विलायतमें अन्नका दाम १३५ फीसदी, फ्रान्समें २२० फीसदी इटलीमें ३०६ फीसदी बढ़ गया है और कलकत्ते और पञ्जाबमें क्रमसे ४१ और ३८ फीसदी ही बढ़ा है। ठीक है। इस अन्नोत्पादक देशके लिए इतनी महँगी भी क्या कम है। इससे भी बड़ी बात जो है वह वाइसरायके स्मरणमें नहीं आई कि यहाँकी प्रजा कितनी गरीब है। उसके लिए इतनी महँगी भी असह्य है। यूरोपकी जनताके पास जितना धन है उतनाही यहाँ भी होता तो महँगीकी इतनी परवा न होती। वहाँके लोग हमसे कहीं अधिक महँगीको सहन कर सकते हैं।

भारतीय व्ययमें संयुक्तप्रान्तका हिस्सा

सुधारकी योजना हो जानेपर प्रान्तीय सरकारको अपने अपने आयव्ययपर विशेष अधिकार प्राप्त हो जायगा। कुछ मदें ऐसी हैं जिनकी आमदनीपर प्रान्तीय सर-

भारतवर्षके मुख्य रेलोंका हिसाब

नाम रेल	मील	लगा हुआ मूलधन	मुनाफा	दर मुनाफा
आसाम–बंगाल	६७०'०६	१८,१६,६१,०००	२०,६६,०००	१'१५
बंगाल–नार्थ-वेस्टर्न	२,०६२'४५	१७,६१,४१,०००	१,५४,४४,०००	८'८०
बंगाल–नागपुर	२,७३२'४	४१,६८,४१,०००	३,१३,१७,०००	७'४८
बम्बई–बड़ौदा	१,६७८'४२	३८,६२,५३,०००	३,२१ १६,०००	११'१७
बर्माकी रेलें	१,६०४ ६८	२१,४७,१४,०००	१,३६,३७,०००	६'३०
पूर्वीय बंगाल	६३१'२१	२४,३६,८८,०००	१,००,६६,०००	४'०६
ई०आई०आर	२,७७०'८८	७६,०२,६३,०००	६,०५,०१,०००	११'६०
जी०आई०पी०	३,३३५'२६	७२,६१,०५,०००	५,५४,२०,०००	७'६१
मद्रास रेलवे	१,०६३'११	१६,३५,७६,०००	१,८६,३६,०००	६'७८
नार्थ-वेस्टर्न	५,३४०'६५	१,००,१६,०१,०००	६,५८,१३,०००	६'६१
अवध-रोहेलखंड	१,६२४'३३	२१,६६,१६,०००	१,६७,१७,०००	८'६८
साउथ-इन्डिया	५४६'८०	७,२२,८१,०००	६८,०३,०००	६'४०

यहाँ पर केवल मुख्य रेलोंके कुछ अंक दिये गये हैं। इनमें देशी राज्योंकी रेलें शामिल नहीं हैं। इसी कारण सब अंकों का योग भी नहीं दिया गया। इन रेलोंकी आर्थिक अवस्था कैसी है इस बातका पता फी सैकड़ा पूँजी पर मुनाफे की दरसे मालूम होता है। बंबई-बड़ौदा और ई.आई. रेलोंमें मुनाफा सबसे अधिक है। सबसे अधिक लम्बी नार्थ वेस्टर्न रेल है जो पाँच हजार मीलसे अधिक लम्बी है और उसकी पूँजी भी १ अरबसे ऊपर है। यह बताना तो शायद आवश्यक नहीं है कि रेलों की प्रायः सबकी पूँजी देशी है।

भिन्न भिन्न वर्षों में खुली रेलों की लम्बाई

	मील	सन्‌	मील
,६	१३,६६०	१६०१	१५,२८६
,७	१३,०३३	१६०२	१६,०११
,८	१६,८१६	१६०३	११,२८१
९९	११,०८०	१६०४	१५,३११
,०	१०,६६१	१६०५	११,६११

ओम् वन्देमातरम्

स्वार्थ

प्रथमवर्ष १ खण्ड	फाल्गुन १९७६	संख्या ५ पूर्ण संख्या ५

राजनीति-विशारद विष्णुगुप्त चाणक्य

मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः ।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे ॥
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु युक्ताः ।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥

महाभारत शान्तिपर्व, ६१, २४, २०



राजनीतिके नष्ट होनेपर वेद-विद्या डूब जाती है, सारे उन्नति-क्रमपर पहुँचे हुए धर्म नष्ट हो जाते हैं तथा प्राचीन राजधर्मके त्याग होनेपर सारे आश्रम-धर्म भी विलुप्त हो जाते हैं। सब प्रकारके दान राज-धर्मपर निर्भर हैं। सारी शिक्षा-दीक्षाका आधार राजधर्म है। सब विद्याएँ राजधर्मपर अवलम्बित हैं और सकल लोकोंका आश्रय राज-धर्म है।

राज-धर्मका कितना बड़ा महत्त्व है यह बात महाभारतसे उद्धृत किये हुए सुन्दर श्लोकोंसे स्पष्ट है। इस गम्भीर राज-धर्मके परिशीलन करनेमें भारतीय ऋषिगण पाश्चात्य लोगोंकी भाँति किसी प्रकार भी कम न थे। किन्तु हमारे राज-धर्ममें पाश्चात्य राज-धर्मकी अपेक्षा विशेष गौरव है। धर्म और राजनीतिका अटूट सम्बन्ध और सामञ्जस्य रहनेसे भारतीय राज धर्म सदा पवित्र, उज्ज्वल और अजेय बना रहा। इस राज विद्याके [illegible] में विष्णुगुप्त चाणक्यका स्थान सबसे ऊँचा है। उनकी राजनीति बड़ी गम्भीर और बड़ी [illegible] है। इस विषयके जितने पूर्व आचार्य हुए उनके मतमतान्तर [illegible]

चना कर विष्णुगुप्तने एक वृहत् नीति-शास्त्रकी रचना की। इनके अर्थ-शास्त्रमें पाँच प्रकारके रा नैतिक सम्प्रदायोंका उल्लेख मिलता है। इन पाँच सम्प्रदायोंके अतिरिक्त तेरह राजनीतिज्ञ पण्डि के विचारोंका स्थल स्थलपर प्रसंगवश कौटिल्य खण्डन मण्डन करते हुए स्वपक्ष-स्थापन करते राजनीतिकी जटिल समस्याओंके सुलझानेमें जब इतने सम्प्रदाय और मस्तिष्क व्यय थे तो स्वीकार करना युक्तिसंगत है कि राज-धर्मके विषयमें जो सिद्धान्त इन पण्डितोंने निर्णय किये होंगे अवश्य प्रगल्भ पाण्डित्यपूर्ण होने चाहियें। "इति मानवाः", "इति बार्हस्पत्याः" "इत्यौशनस "इति पाराशराः", "इत्याम्भीयाः" इस प्रकार कौटिल्यने राजनैतिक सम्प्रदाय तथा उन मतोंका उल्लेख कर और उनमें दोषोद्भावना करते हुए अपने पक्ष या सिद्धान्तका प्रतिपादन कि है। भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्ती पुत्र, कात्या कर्णिकभारद्वाज, दीर्घ चारायण, घोटमुख, किञ्जल्क और पिशुनपुत्र इन पण्डितोंपर भी राजनी धुरन्धर कौटिल्यने अपने अर्थ-शास्त्रमें कटाक्ष-पात किया है। और अनेक स्थानोंमें अपने गुरुको भी आदर-पूर्वक तीखी समालोचना की है। अपने गुरुका नामोल्लेख न कर कौटि आचार्य शब्द उनके लिये आदर-सूचक बहुवचनमें प्रयुक्त किया है। श्रद्धास्पद गुरुजनोंने कौटि ल्यके स्वतन्त्र विचार करनेकी शक्तिको कदापि कुण्ठित न किया था। अतएव हमें कौटिल्य अर्थमें दृष्टि पर्यन्त विचार-स्वातन्त्र्य बुद्धि-सामर्थ्य, अभिनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा स्पष्ट दीख

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥
दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम् ।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥

अर्थात् "सब शास्त्रोंका अनुशीलन कर और प्रयोग-व्यवहारका ज्ञान प्राप्त कर कौटिल्यने राजाके लिये शासन-पद्धतिकी रचना की। भाष्यकारोंके शास्त्रोंमें परस्पर विरोध देख विष्णुगुप्तने स्वयं सूत्र तथा भाष्य लिखा। इस शास्त्रकी उस व्यक्तिने रचना की जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्दराजके अधीन पृथ्वीका उद्धार किया।

कौटिल्यने नन्दवंशका नाश किया और चन्द्रगुप्त मौर्यको मगध साम्राज्यके राज्या-भिषिक्त किया, यह बात इतिहासप्रसिद्ध है। मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड आदि तथा विष्णुपुराणमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है। "महापद्म, उसके बेटोंका नाश कर कौटिल्य चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक करेगा"।* संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस'में भी कुशाग्रबुद्धि चाणक्यका उल्लेख है। 'गतमे समयगुणे चाणक्ये मेरे गुरु मेरे' अर्थात् चाणक्य, अमात्यराक्षस, नागसेन और भागुरायण इन चारोंकी बड़ी सूक्ष्म बुद्धि थी। सिंहलद्वीपके इतिहास 'महावंश'में भी ऐतिहासिक ग्रन्थमें यह कहा गया है कि ब्राह्मण चाणक्यने चन्द्रगुप्तको जम्बूद्वीपका राजा बनाया और नवम नन्द धननन्दका कोषागारमें संहार किया। महावंशकी टीकामें चाणक्यने विद्याध्ययन तक्षशिलामें किया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। चाणक्यके चन्द्रगुप्तके समकालीन होनेके अनेक प्रमाण मिलते हैं। मेसिडनके महाविजयी अलक्षेन्द्रके भारतपर आक्रमणके उपरान्त मौर्य-साम्राज्यका अगाध भित्तिस्तम्भनिर्माण करनेका भार इस अलौकिक प्रतिभाशाली पुरुषके कन्धेपर ही था। इस विशाल साम्राज्यकी बुनियाद उसने अपने केवल बुद्धि-बलसे ही डाली थी। अस्त्रशस्त्रके प्रयोग करनेकी उसे अपेक्षा न थी। उसका बुद्धि बल इतना प्रगल्भ था कि आगामी युगमें उसकी अमोघ प्रज्ञाकी लोकमें निदर्शनरूपसे ख्याति हुई। पञ्चतन्त्रमें यह पूर्वोक्त दृष्टान्त मिलता है:—

बुद्धे बुद्धिमतां लोके नास्त्यसाध्यं हि किंचन ।
बुद्ध्या यतो हताः नन्दाः चाणक्येनासिपाणयः ॥

---

* सुकल्पादिसुताः ह्यष्टौ समाः द्वादश ते नृपाः
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ।
उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः ।
कौटिल्यश्चन्द्रगुप्तन्तु ततो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥

तात्पर्य यह कि बुद्धिमानोंकी बुद्धिके सामने कोई बात दुर्लभ नहीं, क्योंकि चाणक्यने शस्त्रधारी नन्दोंका बुद्धि-द्वारा ही नाश किया था।

कौटिल्य सर्व शास्त्र पारंगत थे। उनके अर्थशास्त्रके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि उनका मस्तिष्क विद्याका वृहत् कोष था, सूक्ष्मदर्शिता, दूरदर्शिता ये दोनों उसके विलक्षण गुण थे। उनकी प्रतिभा विश्वतोमुखी थी। गौतमके न्याय-सूत्रके आप भाष्यकार और काम-सूत्रके आप प्रणेता थे। आपके अनेक नाम थे जिनका उल्लेख हेमचन्द्रकी अभिधानचिन्तामणिमें इस भाँति है:—

वात्स्यायने मल्लनागः कौटिल्यः चणकात्मजः।
द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्चसः॥

अर्थशास्त्रका ऐतिहासिक महत्त्व—भारतके प्राचीन इतिहासकी खोज करनेवालोंको कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे अलभ्य लाभ हुआ है। सच तो यह है कि इसके उपलब्ध होनेसे हिन्दू-सभ्यताके इतिहास-विषयक विचारोंमें एक युगान्तर हो गया है। लोग कहते हैं कि हिन्दू जगतके व्यवहारको स्वप्नवत् मिथ्या मानकर ऐहिक सुख-साधनके विषयमें पराङ्मुख-वृत्ति रखते हैं। वे परलोकके स्वप्न तो देखते हैं परन्तु हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष इस जगतमें अपने ऐहिक कल्याणकी ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं। परोक्ष और अवाङ्मनसगोचर-वस्तुओंके अन्वेषणमें हिन्दू-जनताने सारा अपना बुद्धि-बल गँवाया। इस लोकको सुख-शून्य मान वे स्वयं उद्योग-शून्य होगये। अपने स्वार्थकी अवहेलना कर हिन्दू-जातिने अपने धन, धर्म और देशसे वञ्चित और परजातियोंसे पादाक्रान्त होना स्वीकार किया। इन विचारोंका निराकरण कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रसे भली भाँति होता है। हिन्दुओंकी सामाजिक व्यवस्था, शासन-प्रणाली, अनेक उद्योग-धन्धोंकी उन्नत अवस्था और मनुष्य-जीवनकी हितकारिणी, सत्यातीत संस्थाओंका सजीव चित्र इस ग्रन्थमें मौजूद है। प्रोफेसर जौलीका कथन है कि अर्थशास्त्रसे भारतकी मेगास्थनीज़की यात्राके समयके राजनैतिक इतिहासपर प्रखर प्रकाश पड़ता है*। इस ग्रन्थका रचयिता केवल राज-नीतिज्ञ न था किन्तु साम्राज्य-संगठनमें उसने अपने मस्तिष्कका पूरा पूरा उपयोग किया था। उसके उस भगीरथ प्रयत्नमें इतनी सफलता हुई कि मौर्य-साम्राज्य भारतमें व्याप्त हो लगभग डेढ़ शताब्दी पर्यन्त अटल बना रहा। इससे अधिक श्रेय इस महापुरुषका इस बातमें है कि विदेशीय अलक्षेन्द्रकी सत्ताको भारतसे नष्ट कर दिया और विजातीय लोगोंका यहाँ पैर न जमने दिया। मगधके साम्राज्यमें क्रान्ति और अपने मनोनीत चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक करना ये दोनों महत्त्व पूर्ण घटनाएँ इस महानुभावके असाधारण सामर्थ्यका परिचय देनेके लिये पर्याप्त हैं। भारतके इतिहासमें जो मौर्य-युगका वैभव और गौरव देखनेमें आता है उसका निमित्त कारण एकमात्र विष्णुगुप्त चाणक्य ही है। इस राज-नीति-धुरन्धरकी शासन-प्रणालीका यह परिणाम हुआ कि मौर्य-युगका दुनियाके प्राचीन साम्राज्योंकी प्रथम पंक्ति में पहला स्थान है।

राजनीति-विशारद विष्णुगुप्त चाणक्य

यह कहा जाता है कि कौटिल्यकी तुलना यूरोपके मिकेवेलीसे पूर्णरीतिसे हो सकती है। परन्तु हमारे मतमें मिकेवेलीको कौटिल्यके शिष्य होनेकी भी योग्यता नहीं। जुगनू और चन्द्रमाकी ज्योतिमें जितनी विभिन्नता है उतनी ही मिकेवली और चाणक्यमें है। दोनोंके दो चार विचारोंमें सादृश्य होनेसे एककी दूसरेसे तुलना करना नितान्त अनुचित है। कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रमें नीति और शासन सम्बन्धी इतने प्रकरण हैं कि उनकी गिनती करना असम्भव सा है किन्तु मिकेवलीने राजाके कर्तव्य मात्रका निरूपण किया है। मिकेवलीका 'राजा' (The Prince) अपने आपको शत्रुओंसे नियन्त्रित पाता है। ऐसी स्थितिमें उसकी नीति-रीति कैसी होनी चाहिये इसका निरूपण मिकेवलीने किया है। प्रजा और धर्मसे उसका कितना संबन्ध है और इन दोनोंकी रक्षाका उसपर कितना उत्तरदायित्व है इस विषयकी चर्चा मिकेवलीने नहीं की। उसने केवल राजाके नृशंस व्यवहार और वक्र कूटनीतिपर जोर दिया है। फ्रेडरिक पोलकने राजनीतिके इतिहासकी प्रस्तावनामें मिकेवलीके विषयमें संक्षेपसे यह कहा है कि मिकेवेली धर्मकी उपेक्षा करता हुआ केवल राज-सत्ताको दृढ़बद्ध करना ही नीतिका इतिकर्तव्य समझता है। राजनीतिका आधार स्वार्थ है। धर्म और आस्तिक्य-बुद्धिसे यदि राजाका प्रयोजन सिद्ध हो तो वे दोनों उपादेय हैं अन्यथा नहीं। उसे इटलीको शत्रुओंसे बचाना अभीष्ट था। अपने देशकी एकता और स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए ही उसने अपनी नीतिमें न्याय, सत्य, धर्मको स्थान नहीं दिया। अस्त्रबलसे इटाली परतन्त्रताके जालसे छूट सकता था। अतएव उसने आभ्यन्तर नीतिको विदेशीय नीतिकी अपेक्षा अप्रधानता मानी है। उसकी दृष्टिमें राज-धर्म केवल शत्रुओंसे रक्षण करना मात्रही है। १६ वीं शताब्दीमें इटली जिन घोर संकटोंमें पड़ा था उनके प्रतीकारके लिये उसकी नीति उपयुक्त ही थी। इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि मिकेवेलीने राज-नीतिके एक ही प्रकरण-अर्थात् राष्ट्र-रक्षाकी ही चर्चा की है। परन्तु कौटिल्यने १५० अध्यायोंमें राष्ट्रकी अनेक संस्थाओं और शासन-विधियोंका सूत्रात्मक शब्दोंमें निरूपण किया है। उनकी बाह्यनीति मिकेवेलीसे मिलती जुलती है। किन्तु उनकी राज-धर्म-चर्चा बहुत उच्च श्रेणीकी है इसमें कोई सन्देह नहीं। उपरोक्त कथनके समर्थनमें अर्थशास्त्रके निम्नलिखित अवतरण पर्याप्त होंगे:—

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं सन्दधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥
व्यवस्थितार्यमर्यादः कृत वर्णाश्रमस्थितिः
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥
विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्व भूतहिते रतः ॥
राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥
प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ १ आधिकारिक-

तात्पर्य—राजा प्रजाके धर्मोंको भ्रष्ट न करे, स्वधर्मका अनुष्ठान करनेवाला राजा इस लोक और परलोकमें सुख पाता है। जहाँ आर्य-मर्यादाकी व्यवस्था हो, वर्णाश्रमधर्मकी दृढ स्थिति हो, और वेद-धर्मका अनुसरण किया जाता हो वहाँ लोकका कल्याण होता है। विद्या-विनीत राजा जो प्रजाके शिक्षणमें प्रतिबद्ध हो सब प्राणियोंके हितसाधनमें निरत रहता है वह शत्रुशून्य पृथिवीका भोग करता है। अपने राज्यके समुत्थानार्थ प्रयत्न करना ही राजाका पवित्र व्रत है, राज-धर्मका अनुशासन करना ही उसका यज्ञ है प्रजाके सभी वर्णों पर समान वृत्ति रखना ही उसके यज्ञकी दक्षिणा है। प्रजाके सुखमें ही राजाका सुख, प्रजाके हितमें उसका हित है। अपने स्वार्थ-साधन में राजाका हित नहीं किन्तु प्रजाके लिये जो प्रिय हो उसमें ही राजाकी भलाई है।

इन पूर्वोक्त श्लोकोंसे कौटिल्यके उच्च राज-धर्म-विषयक विचार स्पष्टतया ज्ञात होते हैं मिकेवेलीके आदर्श राजाके गुण वैसे ही हैं जैसे कौटिल्यने राजाके विषयमें उल्लेख किये हैं। राजाका राष्ट्र-रक्षण करना परम कर्तव्य है, ये दोनों ही मानते हैं। इस कर्तव्य-पालनमें पाप पुण्यके विचारोंपर विशेष दृष्टि न रखनी चाहिए इस प्रस्तावपर भी दोनोंका ऐकमत्य है। जब देश पर शत्रुका आक्रमण हो या प्रजाका अमंगल होता हो तब राजाको दया, धर्म और न्यायकी मर्यादाका उल्लंघन कर प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए। परन्तु कौटिल्यका विशेष महत्त्व इस बातमें है कि राजाकी प्रजाके प्रति न्यायानुकूल वृत्ति सदा रहनी चाहिए। इस विश्वमें धर्मकी सनातन सत्तापर कौटिल्यकी दृढ श्रद्धा है *।

कौटिल्यकी तुलना यूरोपके दिग्गज विद्वान् अरिस्टोटिलसे हो सकती है। ये दोनों धुरन्धर विद्वान समकालीन थे। एक महाविजयी अलसेन्द्रका गुरु था, दूसरा महाप्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्तका। दोनोंकी बुद्धि विशाल और विज्ञानमयी थी। "आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः†" जैसे समुद्र रत्नोंका वैसे महात्मा कौटिल्यका मस्तिष्क सब शास्त्रोंकी खान है। अरिस्टोटिल बुद्धि-बलमें तो चाणक्यसे बराबरीका दावा कर सकते हैं परन्तु पुरुषार्थ, कर्मवीरता, नीति-पटुता, दृढ़संकल्प इत्यादि गुणोंका अद्भुत चमत्कार महानुभाव कौटिल्यकी प्रतिभामें ही झलकता है। अपने मस्तिष्क-बलका परिचय संसारके कार्य्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हो इस महात्माने दिया। कवि विशाखदत्तने अपने मुद्रा-राक्षस नाटकमें इस अद्भुतगुणशाली पुरुषके पुरुषार्थकी निम्नरीतिसे मुक्तकण्ठसे स्तुति की है:—

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।
केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे
भीमः केन च नैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः ॥७।६॥

---

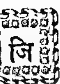
* 'The prominent difference between Kautilya and Machavelli is that Kautilya is a confirmed believer in the Permanence of the moral order of the universe' Hindu Politics, K. V. Rangaswami, page, 137.

† मुद्राराक्षस ॥७।७॥

गंगाप्रसाद मेहता



राजनैतिक सुधार



स प्रकारसे भारतकी शासनशैलीके सुधारकी चर्चा हो रही है, उस संबन्धमें एक दो प्रश्न ऐसे हैं, जिनपर विचार करना बहुत ही आवश्यक है। इस समय पश्चिमी यूरोपकी सभ्यताका ही प्राधान्य सर्वत्र है और उसके प्राधान्य होनेके कारण सारे संसारकी दृष्टि उसीके ऊपर है। और जीवनके त्येक अंगमें संसारके अन्य सब देश पश्चिम यूरोपका ही आदर्श लेकर उसीका अनुसरण र रहे हैं। पूर्वीय देशोंके गार्हस्थ, सामाजिक, आदि जीवनके सभी कार्योंमें इसका प्रभाव है। सा होते हुए यह संभव नहीं है कि राजनैतिक क्षेत्रमें भी उसका प्रभाव न पड़े। पश्चिमी रोपीय देशोंमें भी मर्य्यादाबद्ध लोक-तंत्र-शासनको चलानेवाला सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ आंग्ल देशही है। यहाँकी राजनैतिक पद्धति इतनी अच्छी समझी जाती है कि फ्रांस और टली जैसे पुराने देशोंने भी अपने शासन-शैलीके पुनर्निर्माणमें इसीका अनुसरण किया। नए ए राष्ट्र और ऐसे पुराने राष्ट्र भी जो नई पद्धति बनानेकी चिन्तामें लगे हैं, आंग्ल देश हीसे पनी शिक्षा ग्रहण करनेका यत्न करते हैं। ऐसी अवस्था होते हुए जब कि भारत और आंग्ल देशका इतना घनिष्ठ सबंध है तो इसमें क्या आश्चर्य है कि भारतीय लोग भी अपनी शासन-शैलीको आंग्ल देशकी शासन-शैलीके अनुसारही बनाने का यत्न करें। भारतमें जो कोई नया सुधार होगा उसको करनेवाले अंगरेज और भारतीय दोनों ही होंगे। अंगरेज अवश्यही अपने देशकी संस्थाओंको सर्वोत्तम समझते हैं। उन्हींको अच्छी प्रकारसे जानते हैं। और उन्हींसे लोगोंका कल्याण मानते हैं। शिक्षित भारतीय भी जैसे और भी बहुतसी अंगरेजी बातें पसंद करते हैं वैसेही वहाँकी राजनैतिक संस्थाओंको भी पसद करते हैं। इसमें उनका कुछ दोष नहीं है। एक तो उनकी शिक्षाही ऐसी हुई है दूसरे वे यह भी जानते हैं कि अन्य देशोंमें भी अंगरेजोंकी ही शासन-पद्धतिका मान है। ऐसा होते हुए उदारभाव अंगरेज और स्वदेशभक्त हिन्दुस्तानी दोनोंही भारतमें आंग्ल-शासन-पद्धति का अनुकरण करना चाहते हैं।

संसारके इतिहासमें किसी देश विशेषका पृथक् जीवन उसी समयतक आदर योग्य है जबतक कि यह किसी विशेष बातसे संसारकी परिस्थितिको पुष्ट करता हो। अर्थात् संसारको वह कोई नई वस्तु प्रदान करता हो। निदान जो देश अपना पृथक्-स्वतंत्र-जीवन चाहता है उसको यह आवश्यक है कि वह यह दिखलावे कि वह संसारकी उन्नतिके लिए अमुक वस्तु उसे देता है। जो देश ऐसा नहीं कर सकता वह अधिक दिनोंतक स्वतंत्र नहीं रह सकता, और यदि रहा भी तो उसकी स्वतंत्रता निर्जीव सी रहेगी। कालकी गतिके साथ साथ कितनेही बड़े बड़े राष्ट्र उठे और डूब गए। जबतक किसी राष्ट्र विशेषको मनुष्य समाजके सम्मुख कोई विशेष शिक्षा प्रदान करता रहता है तबतक वह जीवित रहता है जब वह अपने आदर्शमें विमुख होता है तब उसका ह्रास होता है। पुरातन हिन्दुओंने एक बड़े गूढ़ और जटिल प्रकारसे धर्मका आदर्श संसारको दिया और आदर्शके अनुसार उन्होंने अपूर्व दर्शनशास्त्र बनाया और मनुष्यका व्यक्तिगत और सामाजिक-जीवन हरएक श्रेणीमें विभक्त किया। चाहे हम उसे आज पसन्द करें,

अथवा न करें, चाहे हम आज उनके उन विचारोंपर भलेही हँसे परन्तु यह तो कहनाही पड़ेगा कि यह एक विशेष बात हिन्दुओंकी थी। आर्य्यजाति संसारके कितनेही भागोंमें गई और बसी परन्तु वर्णधर्म और आश्रम धर्म्मका विचार, प्रचार भारतीय आर्य्योंमेही था। और यही उनका संसारके इतिहासको विशेष दान है। फिर पुरातन यूनानको देखिये। यूनानी सभ्यताने सौन्दर्य्यका आदर्श संसारको दिया। उनकी शारीरिक सुन्दरता अपूर्व थी। जो अत्यंत सुंदर भवन और मूर्ति वे छोड़ गए हैं उनको देख आज भी संसार आश्चर्य्य करता है और पुराने यूनानियोंका अपने हृदयसे सम्मान करता है। यूनानके बाद कालचक्रने रोमके साम्राज्यको संसारमें प्राधान्य दिया। संसारको रोमने न्यायकी शिक्षा दी और जो कुछ न्याय आज संसारमें हम देखते हैं और जिसके कारण हम निर्भय अपने घरोंमें सोते हैं या बाहर घूमने जाते हैं वे सब रोमके दान विशेषकेही बाह्य स्वरूप हैं। इसी प्रकार हमलोग थोड़े यत्नके साथ सबही देशोंकी विशेषताको जान सकते हैं।

अब एक बड़ा प्रश्न यह है कि क्या हम अर्वाचीन भारतीयोंको कोई विशेष बात नहीं दिखलानी है? क्या अब हमको हर प्रकारसे किसी दूसरे देशकी नक़लही कर अपना जीवन व्यतीत करना है? राजनैतिक प्रश्नोंका प्रभाव जीवनके हर अंशपर पड़ता है, और यदि हमने आंग्ल-देशकी शासन पद्धति पूरी की पूरी नकल की तो हरबातमें हम उन्हींकी तरह हो जाएंगे और हमारी विशेषता जाती रहेगी। जब विशेषता गई तब जीना मरनेकेही बराबर है। शरीर रह भी गया पर आत्मा तो जाती रही। ऐसी अवस्थामें राजनैतिक सुधारकोंका बड़ा भारी कर्तव्य यह है कि वे ऐसा कुछ ऐसा न करें कि जिसके कारण हम तोतोंकीही तरह बिना समझे बूझे दूसरोंकी बात रटते रहें। और अपने हृदयसे किसी नवीन बातका आविष्कार न कर सकें और संसारको कोई नई बात न सिखा सकें। यदि हमने अपने राज-नैतिक संस्थाओंमें पूरी तौरसे आंग्ल देशका अनुसरण किया और उन्हींके आधारपर राज्यप्रबन्ध करना चाहा, प्रतिनिधियोंका निर्वाचन किया, दलबन्दीसे कार्य्य लिया, इत्यादि, तो इसका प्रभाव केवल राज-नीति तकही न रहकर हमारे जीवनके प्रत्येक अंगमें भी होगा। हमारी व्यक्ति विशेषता जाती रहेगी, और हम केवल दूसरोंकी नक़ल मात्र रह जायेंगे। ये सब बड़ी बातें ठहरीं। ये सिद्धांतकी बात हैं,। इनपर विचार करना अत्यावश्यक है।

इसके अतिरिक्त कुछ गौण बातोंपर भी विचार करना चाहिए। प्रत्येक देशके निवासियोंकी प्रकृति भिन्न भिन्न होती है। इस कारण केवल शब्दोंहीपर न विचारकर प्रकृतिका भी ख्याल करना चाहिए। हम लोग आंग्ल देशकी प्रचलित शासनप्रणालीपर इतने मुग्ध हैं कि हम समझते हैं कि यदि हम इसे पूरी तरहसे लेलें तो हमारा सब काम सिद्ध हो जायगा। आंग्लदेशके शासनविधानों और राष्ट्रसम्बन्धी रीतियोंको देखते हुए हम आंग्लदेशियोंके स्वभावपर विचार नहीं करते। वास्तवमें आंग्लदेशका शासन इस समय इतना सुदृढ़ और सुगम यहांके शासन विधानोंके शब्दोंके कारण नहीं है। यह है अंग्रेजोंके स्वभाव विशेषके कारण। अंग्रेज नैसर्गिक रूपसे शांति और न्याय-प्रिय हैं। वे लोग अधिकतर ठंडे मिजाजके हैं। साधारण प्रकारकी समझदारी उनमें बहुत है। पुराने रीति रस्मोंके वे बड़े भक्त हैं। इसलिए

वे बड़े बड़े परिवर्तन नहीं करना चाहते। इन सब नैसर्गिक गुणोंके कारण यदि उनके यहाँ कोई खराब कानून बन जाय अथवा कोई बड़ी आपत्ति भी आ जाय तो उनके दैनिक कार्य्योंमें कोई हानि नहीं होने पाती। परंतु ऐसा स्वभाव सबका नहीं है। उदाहरणार्थ फ्रांसको ही लीजिए। इस समय उसकी शासनशैली आंग्लदेशकी शासनशैलीकी प्रधान प्रधान बातोंमें नकल है। वहाँ राजा तो नहीं है, राष्ट्रपति है तथापि बहुतसे अंशोंमें कार्य्यप्रणाली आंग्लदेशकी ही है। फ्रांसीसियोंका स्वभाव अंगरेजोंके स्वभावसे भिन्न है। ये लोग उतनी शांतिपूर्वक विषयोंपर बहस नहीं कर सकते। उनमें क्रोधादिभाव बहुत शीघ्रतासे आ जाते हैं। सार्वजनिक प्रश्नोंके भेदसे आपसमें वैमनस्य भी हो जाता है। आंग्लदेशकी तरह उनके यहाँ भी दलबन्दी है। उनके स्वभाव विशेषके कारण उनके यहाँ बहुतसे छोटे छोटे दल भी हैं। आंग्लदेशमें जब एक दल शासनाधिकारी होता है तब उसके कार्य्योंका विरोध दूसरा दल अवश्य करता है। परन्तु जब यह दूसरा दल अधिकारी हो जाता है तो पहले दलके किये हुए कार्य्योंको मान लेता है। परंतु फ्रांसमें यह नहीं है। वहाँ जब एक दल अधिकारी हो जाता है तो जिन जिन कार्य्योंका इसने पहिले विरोध किया था और जो जो कार्य्य पहलेवाला दल कर गया है उसे काटना शुरू कर देता है। आंग्लदेशमें एक एक सरकार पाँच पाँच सात सात वर्ष तक बनी रहती है परंतु फ्रांसदेशमें उसका सालभरतक स्थिर रहना कठिन हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि अक्षरका अनुसरण तो अवश्य उन्होंने किया है परन्तु स्वभावके भिन्न होनेके कारण सब परिस्थितिही बदल गई है। जर्मनीके बारेमें भी यहाँ एक दो शब्द कह देना उचित है। जब बिस्मार्कने नवीन जर्मन साम्राज्यकी शासन प्रणालीको निश्चय करना आरम्भ किया तो बहुतसे लोगोंने यह सलाह दी कि इतना कष्ट व्यर्थ क्यों उठा रहे हो। आंग्लदेशकी शासनपद्धति तुम्हारे सामने तैयार है उसीको ले लो। बिस्मार्कने ठीक उत्तर दिया कि जर्मनीका इतिहास, भूगोल, स्वभाव, आदि सब आंग्लदेशसे भिन्न हैं। हमारे सामने प्रश्न और समस्याएं भिन्न हैं। हम आंग्लदेशका अनुसरण नहीं कर सकते। जब जर्मनी और फ्रांस ऐसे देश जो आंग्लदेशके इतने निकटस्थ हैं, जिनके आचार विचार और सभ्यता आदि बहुत अंशोंमें मिलते जुलते हैं, वे उनका अनुसरण नहीं कर सकते, तब हमारी क्या बात है? हम तो हर प्रकारसे भिन्न हैं। और जिस तरहसे दलबंदी हमारे यहाँ आरम्भ हो गई है, जिस प्रकारसे अन्धोंकी नाईं हम आंग्लदेशकी नकल करनेका यत्न कर रहे हैं–उससे यह बड़ा भय मालूम पड़ता है कि आगे चल कर क्या होगा। अपने इतिहास, भूगोल, स्वभाव, अपने विशेष प्रश्न और समस्याओंपर विचार करते हुए हमें अपनी शासनप्रणालीपर विचार करना होगा। हमारे यहाँ देशी रियासतें हैं। कई बड़े बड़े यूरोपीय ढगके नगर हैं। पुराने विचारोंमें डूबे हुए सूबेके सूबे हैं। उत्तरमें पहाड़ और तीन ओर समुद्र है। कई जातियाँ हैं। कई मजहब हैं इत्यादि, इत्यादि। पहले इनपर विचार होना चाहिये और तब निश्चय करना चाहिए कि किस प्रकारके शासनमें सब लोग सुख, स्वतंत्रता तथा स्वाभिमानके साथ अपनी विशेषता बिना खोये हुए अपनी विशेष शिक्षा संसारको प्रदान करते हुए जीवनका निर्वाह करें। संभव है कि इन बातोंपर हर प्रकारसे विचार करनेके बाद हम यही निश्चय करें कि यूरोपीय प्रकारका

उत्तरदायी शासनप्रबन्ध हमारे लिये हितकर नहीं है। हमको उनके यहाँकी निर्वाचनशैली आदि लेनेमें हानि है, लाभ नहीं है इत्यादि, परन्तु खेदकी बात है कि अभी इन सब प्रश्नोंपर विचार करनेवाले हममें नहींके समान हैं। "अन्धेः नीयमानाः यथान्धाः" के अनुसार हम इस समय आंग्लदेशीय शासनपद्धतिकी ही ओर चले जा रहे हैं। हाँ, यदि हम समझें कि यही हमारे लिए ठीक है और कोई मार्ग हमारे लिए नहीं है तो इस ओर अवश्य चलें पर हमें जो कुछ करना है वह भली भाँति समझकर करना चाहिए, जिसमें आगे चलकर पश्चात्ताप न हो। विलम्ब करनेमें भय इसका भी है कि प्रायः आगे चलकर फिर पीछे हटना हमारे लिये असंभव हो जाय। "का वर्षा जब कृषी सुखाने" यही समय है जब इन सब बातोंपर विचार किया जा सकता है। और कुछ निश्चित रूपसे काम किया जा सकता है। इस समय चूकनेसे फिर देर हो जायगी और सौ वर्ष पीछे जब कि इतिहास लिखनेवाला आधुनिक भारतका इतिहास लिखेगा तो वह यही कहकर हमारी निन्दा करेगा कि भारतने संसारको कुछ नहीं दिया। वरन वह दूसरोंकी नकल कर ही संतुष्ट हुआ। वास्तवमें वह बड़ी ही सोचनीय अवस्था होगी। निदान, इस समय इस सकटको हटाना सब विचारवानोंका एक मात्र कर्त्तव्य होना चाहिये।

श्रीप्रकाश



मुगलसम्राटोंका शासन



भारतवर्षमें अंगरेजोंके शासनकी प्रसंसा करते हुए यह बहुधा कहा जाता है कि उनके शासनमें एक विशेष गुण यह है कि सब कार्य्य नियमबद्ध होते हैं, क्योंकि उनकी जाति सभ्यताकी उच्चकोटि पर पहुँच गई है और उनको ईश्वरने विशेषतः शासक जातिके गुणोंसे सम्पन्न बनाया है। इन वाक्योंमें कितनी अत्युक्ति है इसका अनुमान मैं अपने विचारोंको प्रकट करके बतलानेकी चेष्टा नहीं करूंगा परन्तु मुगल साम्राज्यके शासनके एक अंगका वर्णन पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करके उनको स्वयं निर्णय करनेका भार सौंपूँगा।

भारतवर्षमें खेती राजा तथा प्रजा दोनोंके लिए धन, शक्ति तथा जीवनका साधन रहा है और आजकल भी है, यद्यपि औद्योगिक कार्य्योंकी ओर भी भारतवासियोंकी शक्तियें लग रही हैं और उसका फल भी कुछ उत्साह जनक हो रहा है। कृषि-सम्बन्धी लगानका प्रबन्ध अच्छा या बुरा होनेसे प्रजा तथा राजा दोनोंपर वैसाही प्रभाव पड़ता है। भारतवर्षकी वास्तव दरिद्रताका मुख्य कारण देशका बन्दोबस्त कहा जाता है जिसके कारण कृषकको इतना धन नहीं बच रहता है कि वह सुखपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके। अथवा अकालके समय को सफलतापूर्वक काट सके। मुगलसाम्राज्य जिसको कि कुछ इतिहासकार असभ्य तथा क्रूर भी कहनेसे उद्यत हैं, बन्दोबस्तके विषयमें बहुत ध्यान देता रहा और अकबरका किया हुआ बन्दोबस्त आजकल भी आदर्श हो रहा है। इस लेखमें उसका कुछ विशेष रूपमें परिचय देनेका प्रयत्न किया जायगा।

अकबरके बन्दोबस्तके सम्बन्धमें राजा टोडरमल खत्रीका नाम सर्वदा लिया जायगा। उन्होंने जो कुछ बन्दोबस्तके सम्बन्धमें किया वही अकबरके उत्तराधिकारियोंने जारी रक्खा। कभी कभी कुछ परिवर्तन समयानुसार अथवा कुरीतियोंके आपड़नेपर अवश्य होता रहा, परन्तु उससे टोडरमलके मूलतत्वोंमें तथा साधारण नियमोंमें भी अधिक भेद नहीं होने पाया। प्रथम सब राज्यभूमि नाप ली गई और फिर राज्यकरका भाग भूमिकी उपजके [illegible] किया गया। चार प्रकारकी भूमि मानी गई (१) पोलज, जिसमें कि बारह मास खेती की जाती थी। इसमें उपजका तीसरा भाग राज्यकरके रूपमें लिया जाता था (२) परौटी, जो कि [illegible] बिना खेती पड़ी रहती थी जिसमें कि वह अपनी उत्पादन-शक्तिको पूर्ण कर, [illegible] एक [illegible] लिया जाता था (३) चचार, जो कि [illegible] चार वर्षसे [illegible] बिना [illegible] पड़ी रहती हो। इसमें [illegible] प्रथम वर्ष, [illegible] द्वितीय वर्ष, [illegible] तृतीय व चतुर्थ वर्ष और साधारणतः [illegible] तथा [illegible] लिया जाता था और फिर [illegible] (४) बंजर, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

और सिर पोलजकी भाँति। जो भूमि बिलकुल बंजर होती थी और जिसमें उपज बहुत कम होती थी उसमें कुछ भी नहीं लिया जाता था राज्यकर अथवा लगान उपज अथवा रुपयेके रूपमें देने का अधिकार कृषकको था। पान, खरबूज, हिना प्रकार ओषधिशास्त्रकी वस्तुओंपर कर नगद रुपयोंमें लिया जाता था।

प्रारम्भमें प्रति वर्ष बन्दोबस्त होता था, परन्तु इसमें राज्यकर्मचारी तथा कृषक दोनोंको बहुत कष्ट पहुँचता था। इसके अतिरिक्त इस परिपाटीमें बेईमानी करनेकी बहुत सुविधा थी। अतः राजा टोडरमलने दूसरा ही नियम बनाया। दस वर्ष पूर्व जो कुछ वास्तविक वसूली कर था उसको जोड़कर दसवें भाग लेकर जो कुछ आता वही वार्षिककर बाँधा गया। पाँच वर्ष बाद यह बन्दोबस्त स्थाई कर दिया गया यद्यपि राज्यने घटाने बढ़ानेका अपना अधिकार अवश्य रक्खा तथापि वास्तवमें यह लगभग दमिनी बन्दोबस्तकी भाँति था। कुछ लोगोंका (टामस, मोमर इत्यादिका) कहना है कि यह बन्दोबस्त ठीक न था क्योंकि भारतवर्ष जैसे देशमें जहाँ कि खेतीको थोड़ी विशेष शीत, गरमी अथवा वर्षा होनेमें हानि की सम्भावना थी वहाँ ऐसा बन्दोबस्त कृषकोंके लिए कष्टदायक अवश्य हुआ होगा। इसमें बहुत कुछ सत्य है तब भी एक बातपर ध्यान रखना चाहिए कि नये नियम अथवा परिपाटीके पहिले जो कुछ वार्षिक वसूली कर था–बन्दोबस्ती नहीं–उसीका, दसांश लगाया गया था। इस कारण सम्भव है कि दैवी गतिसे खेतोंमें कमी हो जानेपर भी कृषकोंको विशेष हानि न पहुँचा करती हो। इसके अतिरिक्त सम्राट्की आज्ञा थी कि दैविक आपत्तियोंकी सूचना उसको बराबर मिला करे इसका तात्पर्य्य केवल यही हो सकता है कि आवश्यकतानुसार वह कर छोड़ दिया करता था। यद्यपि माफीके सम्बन्धमें अबुलफजल एक ही दो बार उल्लेख करते हैं। अकबरका कर ⅓ औरोंकी अपेक्षा अधिक था यह भी कहा जाता है। शेरशाह सूरी ¼ ही लेता था और बादको शिवा जी केवल ⅖ लिया करते थे। परन्तु अबुलफजलका कथन है कि अकबरने बहुत से अन्य करोंको लेना बन्द कर दिया था। जैसे कि जजिया, घाट उतराई (मीरबहरी), कौरी (यात्रियोंपर कर), गावशुमारी (जानवरोंपर), सरदरख्ती (वृक्षोंपर), पेशकश (कर्म्मचारियोंको भेंट), दरोगनी, तहसीलदारी, फोतादारी, हासिलबाजारी, इत्यादि। अकबरके समयमें सम्भव है ये न लिए गए हों परन्तु बादको यह फिर वसूल होने लगे थे। इसके अतिरिक्त बहुतसे कर, अकबर भी लिया करता था जैसे शराब, मकान, मछली तथा राहदारीपर।

अकबर ने कर वसूल करनेके लिए बहुतसे कर्म्मचारी नियुक्त किए थे। ये लगभग तीन प्रकारके थे (१) वह जो कि रुपया वसूल करते थे (२) वह जो कि बन्दोबस्तके कागजात रखते थे और वसूल करनेवालोंका निरीक्षण करते थे (३) रुपया और हिसाब रखनेवाले। उसका साम्राज्य १५ सूबोंमें विभाजित था। हरेक सूबा सरकारोंमें बटा हुवा था। एक सरकारमें कई परगने या मुहाल होते थे। हर एक परगनेमें बहुतसे ग्राम होते थे। स्पष्टताके हेतु ग्रामसे लेकर सूबेतक के कर्म्मचारियों तथा उनके अधिकार व कर्त्तव्योंका वर्णन दिया जाता है।

प्रत्येक ग्राममें एक (१) मुखिया अथवा चौधरी हुआ करता था जो कृषकोंका प्रतिनिधि सा होता था। वह कृषकोंसे कर नियुक्त समयपर उगाता या दिलवाता था। ग्रामम

जो लड़ाई झगड़ा होता था उसका भी उत्तरदायी वही होता था और गाँव की पञ्चायतका मुखिया होता था। ग्रामीण कृषक उसके लिए कुछ भूमि पृथक् कर देते थे। बादको राज्यकी ओर से भी कुछ मालगुजारीसे उसको मिलने लगा। ग्राममें (२) एक पटवारी भी हुआ करता था। यह मुखियासे बिलकुल स्वतन्त्र था और कृषक लोगोंका सरकारसे हिसाब रखता था। ग्राम संबन्धी सब पत्र उसके पास रहते थे प्रत्येक कृषकका नाम, खेतोंकी नाप, उनको लगान इत्यादि का ब्योरेवार वर्णन उसके पास रहता था। उसको ग्रामकी आर्थिक तथा औद्योगिक दशाका हाल अपने से उच्च कर्मचारियोंके पास भेजना पड़ता था। इसको भी कृषक और राज्य दोनों ओरसे वेतन रूपमें भूमि या रुपया मिलता था। कई ग्रामोंके समूहका एक जैल होता था। वास्तवमें यह विभाग परगना हाकिमकी सुविधाके हेतु बादको बनाया गया था। राज्यकर वसूल करनेके लिए (१) तहसीलदार रहता था। इसको डाकू, चोर इत्यादिके पता चलानेमें भी सहायता करनी पड़ती थी (२) थानेदार—इसका कर्तव्य शान्ति स्थापित करना था (३) दारोगा, यह ग्राम सम्बन्धी पत्रोंकी जाँच करता था और अपने ज़ैलका हिसाब रखता था, थानेदार फौजदारका मातहत था और तहसीलदार तथा दारोगा परगना हाकिमके नीचे होते थे और वही उनको नियुक्त भी करता था।

इसके ऊपर परगना होता था। यह विभाग बड़े महत्वका था और इसके प्रधान कर्मचारीके अधिकार भी बहुत होते थे। यह (१) जमीदार, ताल्लुकदार, देशमुख अथवा मालगुजार कहलाता था। यह पदाधिकारी प्रायः कोई ऐसे हिंदू राजाका उत्तराधिकारी होता था जिसको कि यवन लोगोंने जीतकर फिर उसीके सम्पूर्ण राज्यपर अथवा किसी भागपर अपना प्रतिनिधि करके नियुक्त कर दिया हो। साधारणतः यह उन मनुष्योंमें होता था जोकि राज्यकी ओरसे लगान वसूल करनेका ठेका ले लेते थे और बाद को अपना अधिकार उक्त भाग पर जमा लेते थे। मुगल साम्राज्यमें उसको एक सनद अथवा नियुक्ति-पत्र मिलता था। जब कि कोई जमीदार मरता था तो उसके पुत्रको ही साधारणतः उसकी पदवी मिलती थी। उस समय उसको पेशकश (एक प्रकारकी फीस) सम्राट्को देना होता था और अपने पूर्वाधिकारीकी बकाया भी चुकानी होती थी। उसके यह कार्य थे (१) वार्षिक कर नियत समयपर भेजना। इस रुपयेसे वह मजकूरात (वसूल करनेका खर्च) निकाल लेता था और नानकार (अपने गुजारेके लिए रुपया) भी काट लेता था (२) प्रजाकी ओर सद्व्यवहार करना (३) चोर लुटेरोंको निकालना (४) उनके मनुष्योंको दण्ड देना (५) कृषकोंको कृषिके लिए उत्तेजित करना (६) यदि कोई मालका कर न चलता था तो उसे देना होता था (७) उसके परगनेमें कोई डाका न पड़े (८) उन करोंको न ले जिनको कि अबाबी राज्यकी ओरसे हो गई हो (९) राज्यके प्रधान दफ्तरमें लगानके नक्शे इत्यादि कानूनगोके हस्ताक्षरयुक्त भेजना। उसके निम्नलिखित अधिकार व कर्तव्य थे (१) पुलिस भरती करना (२) तकावी देना (३) बंजर भूमिको कृषिके लिए देना (४) कर्मचारियोंके लिए कर्मचारियोंको नियुक्त करना (५) कृषिका साप्ताहिक समाचार भेजना (६) कानूनी सम्पत्ति विभाग परगनेके हिसाबके खातेके करना, पटवारी व चौधरीके कागजोंकी भी हिसाब किताब और कचहरीके दफ्तरके दस्तखत

कराना (७) मासके अन्तमें दैनिक आय-व्ययका हिसाब सम्राट्‌को भेजना (८) विशेष मासिक विवरण अपने परगनेका सम्राट्‌को भेजना जिसमें कि भिन्न भिन्न वस्तुओंके दाम प्रजाकी आर्थिक दशा इत्यादि का पूरा हाल देना होता था (९) बाट, तोल इत्यादिका भी निरीक्षण करना (१०) नशेकी वस्तुओंके बनने और बिकनेपर ध्यान रखना (११) कुछ मुगल सम्राटोंके समयमें उसको यह भी अधिकार हो गया था कि कुछ स्थानिक करोंको अपने तथा सुबेदारके लिए वसूल कर सकता था।

इसके अतिरिक्त वह अपने परगनेका न्यायाधीश भी था। फौजदारी अभियोगोंमें वह फौजदारके प्रति उत्तरदायी था और मालके मुकदमोंमें उसका निरीक्षणकर्त्ता दीवान था। इस कार्य्यके लिए मुकदमा करानेवालोंको उसे कुछ फीस देनी पड़ती थी।

जैल या हलकोंमें जमींदारके अधीनस्थ दारोगा, तहसीलदार इत्यादि थे ही परन्तु परगनेमें भी उसके बड़े सहायक थे। इनमेंसे सबसे बड़ा (२) शिकदार था। पहिले इसको मालगुजारीका कुछ अंश दिया जाता था। बाद भी उसको नगद वेतन मिलने लगा। इसका कर्त्तव्य केवल यह था कि वह तहसीलदारों और कृषकोंसे रुपया लेकर सरकारी कोशमें जमा करे (३) कानूनगो अथवा विषकची (मुनीम) यह कानूनगोंसे दसशालवाला मालगुजारीका नक्शा बनवाता था। उसको परगनेकी रीतिरिवाजसे परिचित होना पड़ता था, जिसमें कि वह परगनां हाकिम-के कार्य्यमें सहायता पहुँचा सके। उसको कृषकोंकी जमाबन्दी, ग्रामोंकी चौहद्दी और बजर तथा उपजाऊ भूमिका लेखा रखना पड़ता था। *इस लेखेकी सहायतासे मालगुजारी वसूल की जाती थी।* कानून पटवारी और मुकद्दम अथवा चौधरीसे मालगुजारीके नक्शे और दस्तखत (रसीदें) लेता था और एक दूसरेसे मिलान करके भूल करनेवालेको दण्ड देता था। आयव्यय प्रतिदिनका बहीमें लिखता था। और दैनिक नक्शे भी भेजा करता था। थानेदार, मुफलिस, कृषकोंकी सूची भी रखता था। जो नाज भिन्न भिन्न खेतोंमें बोया जाता था उसको लिखना, और जितनी उपज होती थी उसका ब्यौरा रखना पड़ता था। महीनेके अन्तमें थैलियोंमें रुपया बन्द करके जमींदारकी मुहर लगा कर उसे खज़ानेको भेजता था। यह कर्मचारी यद्यपि परगना हाकिमके आधीन था परन्तु सम्राट्‌ही इसको नियुक्त करता था और वेतन देता था (४) चौथा मनुष्य पोतादार (खज़ाञ्ची) होता था। मालगुजारीका रुपया इसीके पास रक्खा जाता था और खरा खोटा परखना इसीका कार्य्य था। रुपया [illegible] समय रोज गिनाजाता था और जमींदार कानूनगो के हिसाब तथा पोतादारके हिसाबसे मिलान करके सबके ठीक होनेकी साक्षीमें अपने हस्ताक्षर करता था। [illegible] परगना हाकिम (जमींदार व मालगुजार) और फौजदारके ताबे रहते थे और यह परगना हाकिम तथा कानूनगोके [illegible] रक्खे जाते थे। उनकी किताबदार [illegible] होते थे। [illegible] परगनेके लिए रुपया देनेका अधिकार इनको बिना दीवानके [illegible] न था। इन कर्मचारियोंको भी सम्राट्‌ही नियुक्त करता था।

इन पदाधिकारियोंके कर्तव्योंके देखनेसे प्रकट होता है कि [illegible] (हाकिम अथवा मालगुजार) [illegible] बहुत कुछ अधिकार रखता था और [illegible] परन्तु [illegible] कर्मचारियोंके ऊपर [illegible] निरीक्षण होता था। इसके अतिरिक्त एक और [illegible] (४)

इतिहासनिर्माणमें प्रकृति और मनुष्यका भाग

१. यह विषय अत्यंत महत्त्वका है और इसपर भिन्न भिन्न तरहसे विचार किया जा सकता है, उनमेंसे ऐतिहासिक और आध्यात्मिक अथवा मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ बड़े महत्त्वकी हैं। हम यहाँ आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिकके पेचीदे झगड़े दूर रख कर केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे विवेचन करेंगे।

जो कोई पहले प्राचीन रोम अथवा यूनानका इतिहास पढ़े फिर हिन्दुस्तानका इतिहास पढ़े तो उसे कई भेद दीख पड़ेंगे। रोम अथवा यूनानके इतिहासमें भौगोलिक परिस्थितिका महत्त्व भारी दीख पड़ेगा, हिन्दुस्थानके इतिहासमें यह बात गौण हो जायगी और व्यक्तियोंका ही गुणगान अधिक दीख पड़ेगा। क्षणभर मान लीजिये कि इन सब स्थानोंका इतिहास लिखनेवाला वही पुरुष है और उसकी दृष्टि पक्षपातहीन है, वह अपना काम निर्विकार होकर कर सकता है। इतनी अशक्य सम्भावनाएँ होनेपर भी ग्रीस या रोमके और हिन्दुस्तानके इतिहासमें बतलाया हुआ भेद बना ही रहेगा।

शायद कुछ लोगोंको यह भेद क्या है यह स्पष्टतया न जँचा हो। इसलिए दो नितान्त विपरीत सिद्धान्तोंका उल्लेख कर हम यह भेद स्पष्ट करेंगे। बकले जैसे इतिहास लेखक कहते हैं कि मनुष्य खुद कुछ नहीं कर सकता, मनुष्यके प्रत्येक कार्यके पीछे स्वाभाविक, प्राकृतिक कारण अवश्य लगे रहते हैं। अपने कार्योंको मनुष्य बदल नहीं सकता, उसका वास्तवमें उनमें कुछ भी भाग नहीं है। अमुकने अमुक कार्य किया, यह वाक्य इस लेखकके कहनेके अनुसार सत्य नहीं है। उसके पीछे प्रकृतिका कोई नियम लगा था जिसने उसे वह कार्य करनेके लिए बाध्य किया। सारांश यह है कि जलवायु, भूमि, प्राकृतिक परिस्थिति, भोजन इत्यादि बातोंसे ही किसी देशका (और इसी सिद्धान्तके अनुसार किसी व्यक्तिका) इतिहास बनता है, मनुष्यका उसमें कोई भाग नहीं है। अब इसके नितान्त विरुद्ध सिद्धान्तको सुनिये। कार्लाइल इतिहास लेखक कहते हैं कि इतिहास महापुरुषोंकी जीवनी ही है। महापुरुषोंने जो कुछ किया उसके वर्णनको ही इस लेखकने इतिहास कहा है, इस सिद्धान्तमें प्रकृतिका, भौगोलिक परिस्थितिका, कोई स्थान नहीं है—मानो मनुष्य चाहे जो कर सकता है।

अब ऊपरलिखित भेद स्पष्ट हो गया होगा। ग्रीस और रोमके इतिहासनिर्माणमें वहाँकी प्रकृतिने अधिक भाग लिया है। वहाँका इतिहास अच्छी तरह समझनेके लिए हमें वहाँकी भौगोलिक परिस्थितिका थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। हिन्दुस्थानका इतिहास समझनेमें भौगोलिक ज्ञानकी आवश्यकता कम प्रतीत होती है। साथ ही यह भी दीख पड़ा होगा कि और [illegible] इस [illegible] व्यक्ति-विशेषका असर है। [illegible] ये दोनों सिद्धान्त पूर्ण सही हैं, दोनों केवल एकदेशीय हैं।

२. ग्रीस अथवा रोमकी भौगोलिक परिस्थितिके कारण इतिहासकी अनेक बातें अवश्य बनी हैं, परन्तु मनुष्यका महत्व वहां किसी प्रकार कम नहीं था। यह बात इन देशोंके किसी भी लेखकके इतिहास पढ़नेसे प्रतीत हो सकती है। वहां जो बड़े राजनीतिज्ञ, सेनापति और कार्यकर्ता हुए हैं, उनका वहांके इतिहासमें बड़ा भारी भाग है। यहां तक कि इन पुरुषोंके कार्योंका वर्णन पढ़ते समय भौगोलिक परिस्थितिको क्षणभरके लिए बिलकुल भूल जाते हैं और सर्व श्रेय या दोष इन्हींके सिरपर रख देते हैं। इतिहासके विशिष्ट भागोंको पढ़ते समय भौगोलिक कारणोंका स्मरण कम रहता है। हां, पूर्ण इतिहास पढ़नेपर भौगोलिक कारणोंका स्मरण हो आता है।

अब हिन्दुस्तानके इतिहासकी ओर दृष्टि डालें तो यह दीख पड़ेगा कि प्रकृतिने यहांके इतिहासमें अवश्य भाग लिया है—सब कार्य केवल, मनुष्यका नहीं है। आर्योंके आनेका कारण प्रकृतिसे संबंध रखता है, उनके विशिष्ट जगह रहनेका कारण प्रकृतिसे संबंध रखता है। उनके पूर्वके धर्ममें प्रकृतिने अपना असर दिखलाया है। राजपूताना न जाते गंगा-यमुनाकी ओर झुकनेका कारण प्रकृतिसे संबंध रखता है, विन्ध्याचलके ऊपर ही बहुत कालतक बने रहनेका कारण प्रकृतिसे संबंध रखता है, इसी प्रकार अनेक घटनाओंमें प्रकृतिका भाग स्पष्ट जान पड़ता है। यहांतक कि बुद्धके कार्यमें भी थोड़ा बहुत प्रकृतिने भाग लिया ही है। जैसे यूरोपमें परिस्थिति ऐसी हो गई थी कि लूथरके चिनगारी छोड़ते ही चारोंओर आग भभक उठी, उसी प्रकार बुद्धने अपने तत्वोंके प्रचारके लिए अनुकूल परिस्थिति ही पाई। अगर लोगोंको एक नये बुद्धिमूलक धर्मकी आवश्यकता न प्रतीत होती तो बुद्धका कार्य इतना सरल न होता। हमारी समझमें बुद्धके मनमें धर्मसुधारकी प्रेरणा भी परिस्थितिके कारण ही उत्पन्न हुई थी। शिवाजीका कार्य भौगोलिक परिस्थितिके कारण सरल हो गया था। भौगोलिक परिस्थितिके कारण ही औरंगजेबके उद्देश्य विफल हुए। सारांश, यहां भी प्रकृतिका इतिहासनिर्माणमें बड़ा भारी भाग रहा है।

इस विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि ऊपर बतलाये परस्पर विरुद्ध दोनों सिद्धान्तों में तथ्यांश अवश्य है।

३. तथापि हमारी समझमें बाकलिकी अथवा बकलका सिद्धान्त अधिक [illegible]कारक है, इसलिए उसका कुछ अधिक विवेचन करना आवश्यक है।

जलवायु और भूमिसे कुछ असर यह निश्चित होता है कि वहां कौनसा [illegible] उत्पन्न हो सकती है। मनुष्यका जीवन प्रायः या अप्रत्यक्ष [illegible] ही [illegible] है। [illegible] और इतर भौगोलिक परिस्थितिसे मनुष्यका स्वभाव बनता है और उनके उद्योगोंका [illegible] बहुत निश्चय होता है। समुद्र, समभूमि, पर्वत, नदी, [illegible], वनस्पति, [illegible] [illegible], जलमान, भौगोलिक स्थिति इत्यादि बातोंका मनुष्यके स्वभाव और उद्योगपर [illegible] प्रभाव होता है।

[illegible] [illegible] है। [illegible] है [illegible] कोई वनस्पति यहां उग सकती। [illegible] मनुष्य कोई [illegible] है। [illegible] प्रवृत्तिमें [illegible] [illegible]

उस प्रकार रहना पड़ता है। उष्णकटिबंधमें उष्णताके कारण मनुष्य थोड़ा बहुत स्वाभाविकतया ही आलसी होता है। गर्मीके कारण मनुष्य कार्य बिना विश्रामके नहीं कर सकता। समशीतोष्णकटिबंधमें मनुष्यकी कार्यशक्ति वास्तवमें दिखलाई पड सकती है। उष्णदेशोंकी अपेक्षा यहांके लोगोंकी आवश्यकता भी अधिक रहनेके कारण उन्हें कार्य भी करना पड़ता है। आलसी रहकर उनका काम चल नहीं सकता। प्रकृति उनके लिये अगर बहुत कंजूस नहीं है, तो बहुत उदार भी नहीं है। थोड़े श्रममें काम नहीं चल सकता। इस कारण प्रकृतिकी वस्तुओंका ज्ञान प्राप्तकर उनके उपयोगकी ओर वहाँके लोगोंकी प्रवृत्ति होना थोड़े बहुत अंशमें स्वाभाविक ही है। सारांश, मनुष्यके व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवनमें प्रकृतिके परिणाम स्थान स्थानपर दिखलाई पड़ते हैं।

पर मनुष्य समाज और व्यक्तियोंके इतिहाससे यह भी स्पष्टतया जँच जाता है कि मनुष्य भी कुछ पदार्थ है, उसमें कुछ शक्ति है, वह प्रकृतिसे अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकता है। अनुकूल परिस्थिति पैदा होनेपर भी बुद्धके विचारोंमें विशेषता है ही। किसी मतोत्पादक धर्मकी आवश्यकता बुद्धके समान ही अनेक लोगोंको जँच चुकी थी पर उन्होंने नये धर्मका उपदेश न किया। फिर उसने जो विशिष्ट तत्त्व प्रतिपादित किये, उसमें भी विशेषता है ही। एक ही कामकी पूर्ति करनेवाले अनेक धर्म हो सकते थे, पर उस खास तरहके धर्म प्रतिपादित करनेका श्रेय अथवा दोष बुद्धको ही देना चाहिये। उसी प्रकार, परिस्थिति अनुकूल होनेपर भी यह शिवाजीका ही काम था कि महाराष्ट्रकी बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्रित कर एक महाशक्ति पैदा कर दे और एक महाराज्य कर ले। उसके मनकी भावनाएं अनेकोंके मनमें थी पर शिवाजी ही कार्य कर दिखला सका। स्वराज्यके विचार कई लोगोंके मन में थे, पर भूषणमें ही हिम्मत हो गयी कि पाँच महाराज्यके भावोंको स्पष्टतया लोगोंपर प्रकट कर सका। सारांश, मनुष्यका महत्त्व भी इतिहासमें दिखलाई पड़ता है। इसलिए बकल जैसे लेखकोंके इस प्रकार सिद्धान्त प्रकट होना ठीक नहीं। व्योमयान, जहाज, रेल, तार, ग्रामोफ़ोन, इत्यादि बातोंको देखनेसे यही बात हमारे नजर पड़ती है। रोज रोज नवीन नवीन होते हैं, उनसे इसी बातका समर्थन होता है।

है। किसी स्थानकी प्राकृतिक परिस्थिति भी बदली जा सकती है, पर प्रकृतिके नियमोंको जानकर उनके अनुसार उचित दिशामें कार्य करनेसे ही यह बात सम्भव हो सकती है। यह न मान लेना चाहिये कि प्रकृतिके प्रतिकूल रहते हम कभी कुछ नहीं कर सकते। ऊपर दिखला ही चुके हैं कि उचित रीतिका अवलम्बन कर हम प्रकृतिको भी वशमें ला सकते हैं और अपने इतिहासके निर्माणमें हम भाग ले सकते हैं। इसलिये सुधारकको उचित है कि अपनी भौतिक, धार्मिक, विचारात्मक, आचारात्मक, इत्यादि परिस्थितियोंका अभ्यासकर फिर सोचे कि उनमें कहाँतक किस दिशामें परिवर्तन हो सकता है। अगर इतिहासके पठनसे हमने यह शिक्षा न ग्रहण की, तो हम उन्नतिपथपर न चल सकेंगे। दिनों दिन मनुष्यकी आत्मशक्तिका प्रभुत्व किस प्रकार बढ़ रहा है, यह स्मरण रखना आवश्यक है।

७ इतिहासलेखकको भी इसमें महत्वकी शिक्षा मिलती है। बहुधा इतिहासमें लेखकको व्यक्तिगत विचारोंकी झलक रहा ही करती है। आत्मविचारोंको दूर करना कठिन होता है, पर असम्भव नहीं है। किसीको प्रकृतिका महत्व भारी जान पड़ता है, और इस कारण लिखते समय सब घटनाओंको वह इसी दृष्टिसे रचता है। दूसरा व्यक्तिको ही सब कुछ समझता है और इस कारण सब परिस्थितिको भूल जाता है और वह सब दोष या श्रेय मनुष्यके ही मत्थे मढ़ देता है। और प्रायः यही दोष विशेष होता है। क्योंकि लेखकके मनमें किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूहके कार्य अच्छी तरह जँच जाते हैं। जहाँ प्रकृति बलशालिनी रहती है, वहींपर उसका लोहा मानते हैं। हिन्दुस्तानके इतिहासमें यह दोष विशेष हो गया है। हिन्दुस्तानके इतिहासमें प्रकृतिको कम महत्व दिया जाता है, जो कुछ प्रकृतिका थोड़ा बहुत भाग दिखलाते हैं, वह केवल आरम्भमें। कोई कोई लेखक हिन्दुस्तानका इतिहास प्रारम्भ करते चलकर पहले अध्यायमें हिन्दुस्थानकी भौगोलिक स्थिति बतला देते हैं, पर उसका इतिहाससे सबंध अच्छी तरह नहीं दिखलाते। उसके बाद तो भौगोलिक परिस्थितिको भूल ही जाते हैं। मुगलराज्यसे आगेका इतिहास केवल व्यक्तियोंका ही इतिहास हो जाता है और क्षणभर ऐसा जान पड़ता है कि कार्लाइलका उपरिलिखित सिद्धान्त बिलकुल सत्य है। परन्तु इसमें परिणाम बुरा होता है। व्यक्तियोंका महत्व भलीभाँति जँचनेके बदले उनमेंसे अनेकोंके विषयमें तिरस्कार उत्पन्न हो जाता है, और इतिहास पढ़नेकी इच्छा नष्ट हो जाती है। इतिहास जो कठिन विषय हो गया है, वह इसी कारणसे। जहाँ कार्य-कारणका कुछ भी सबंध नहीं, वहाँका इतिहास निरी कहानी हो जाता है। और यह सब दोष लेखकोंके मत्थे मढ़ना पड़ता है इसलिये इतिहासलेखकोंका कर्तव्य है कि प्रत्येक घटना लिखते समय प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आचारात्मक, विचारात्मक इत्यादि परिस्थितिका उस घटनासे क्या सबंध है, यह जान लेना चाहिये जबतक ऐसा न होगा, तबतक इतिहासलेखन और वाचनसे कोई लाभ न होगा। वास्तवमें, वह इतिहास है ही नहीं, कहानियोंको कोई सबद्ध और सुगम इतिहास न कहेगा।

८ जहाँके इतिहासमें मनुष्य प्रकृतिसे बलवान दिखलाई देगा वहींका इतिहास उज्ज्वल, मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होगा। मनुष्य प्रकृतिको अपनी सेवामें लगा सकता है और यही मनुष्यका कर्तव्य है। प्रकृतिपर मानवी विजयको ही वास्तवमें 'सभ्यता' कहना चाहिये।

अगर वह विजय भौतिक प्रकृतिपर होगी तो वह सभ्यता भौतिक कहलावेगी। अगर वह विजय सूक्ष्म प्रकृतिपर होगी तो वह आध्यात्मिक कहलावेगी। तथापि दोनोंको 'सभ्यता' कहनाही होगा। यह प्रश्न अलग है कि कौन सी सभ्यता विशेष कालतक टिक सकती है। व्यक्तिका बड़प्पन इसी परिमाणसे मापना उचित होगा।

गोपालदामोदर तामस्कर



प्राचीन भारतके उपनिवेश

(२)

गत निबन्धमें संक्षिप्त रूपसे दिग्दर्शन कराया गया था कि उपनिवेश क्या हैं, उनसे क्या लाभ है, प्राचीन भारतके उपनिवेश किन किन मुख्य स्थानोंपर बने, कबसे उनका आरम्भ हुआ, किन किन मार्गोंसे होकर उनके उपनिवेशसंस्थापकोंने विजययात्रा की, तथा किन किन भागोंमें आज उनके उपनिवेश उपलब्ध होते हैं। साथ ही साथ यह भी व्यक्त करनेका साहस किया गया था कि भारतमाताकी सत्ता, जीवन-ज्योति एव प्रभावकी प्रभुता किसी न किसी रूपमें भूमण्डलभरमें पहुँची है। जिसके कतिपय स्मृति-चिह्न अब भी मिलते हैं।

आविष्कारिणी प्रतिभाको धन्यवाद है। जिसकी एकमात्र कृपासे अब इस विषयके धीरे धीरे पर्याप्त प्रमाण मिलने लगे हैं। चाहे यूरोपका कोई भाग लीजिए अथवा शान्त प्रशान्त महासागरकी निगूढ़ निगर्भपुञ्जपर दृष्टिक्षेप करते हुए पातालदेश—अमेरिकाकी ओर प्रयाण कीजिए सर्वत्र आपको यही—इसी आर्य-संस्कृतिकी गौरवमयी भारतकी कलाकी स्मृतियाँ देखनेमें आवेंगी।

प्रस्तुत लेखमें इसी विषयका सूक्ष्म किन्तु उपादेय रूपसे प्रतिपादन किया जायगा। इसमें यह दिखलानेका साहस मात्र किया जायगा कि भारतीय चमत्कारके चिह्न कहाँ कहाँ पाए जाते हैं।

मिश्र

मिश्र, पुराकालमें भारतीय उपनिवेश था, इसमें असम्भव नहीं। क्योंकि विद्वानोंने दोनों देशोंके मनुष्योंका मिलान करके यही फल निकाला है कि उनकी शरीर रचना, उनके रहन सहन बराबर एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं। दोनोंको तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेसे मालूम हुआ है कि दोनों ही कभी एक ही जलवायुसे प्रचालित और एक ही मनके मननसे प्रोत्साहित थे। दोनोंहीको एक जीवन-ज्योतिने जगाया और एक ही आदिशक्तिने शक्तिदान दिया है।

इसी प्रकार मि० पोकाक कहते हैं—भारतवासियों तथा मिश्र वालोंमें बहुत समानताएँ हैं। उनके रहन सहन, आचार व्यवहार और कहीं कहीं तो नामोंमें भी समानताकी गन्ध पाई जाती है।

'ग्रीसमें भारतवर्ष' के लेखकका कथन है—सिंध नदीके मुहानेपर एक सामुद्रिक जाति रहती थी। जो बहुत बहादुर और बुद्धिमती थी…… …… .. .. इस जातिके लोग किसी

---

* प्रो० हीरनने अपने एक अन्वेषणमें दिया है:—विशेषतया मस्तिष्ककी समानताके विषयमें तो कोई कह ही क्या सकता है। क्योंकि मैंने एक मसी (अफ्रीकाका निवासी) और बंगदेशीयकी खोपड़ी मिलाई है। जिससे यह टपकता है कि ये दोनों एक ही मनुष्य विशेषके दो मस्तक हैं।

पूर्वीय एशिया।

भारतके प्राचीन उपनिवेशोंमें पूर्वीय एशियाका स्थान एक दृष्टिसे ऊँचा है। यहाँ जो जो प्रमाण स्वरूप चिन्ह मिलते हैं। उनसे यह प्रकट होता है कि भारतका इन स्थानोंसे निकट सम्पर्क था। इसके कारण क्या हैं, इस गवेषणाकी ओर न जाकर इतना बतला देना उचित जान पड़ता है कि पूर्वीय एशिया भारतके निकट है। ऐसी दशामें सम्पर्क-विशेषता असम्भव नहीं, प्रत्युत् अवश्यम्भावी है।

ब्रह्मदेश-बरमा भारतीय उपनिवेश था इसमें विशेष प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यहाँकी धार्मिक-स्थितिकी कायापलट बौद्धधर्मके द्वारा हुई है। यहाँकी सभ्यता भारतीय एक मात्र सम्पदा है। यद्यपि पीछेसे मंगोलियन भी इनमें आ पड़े। जो हो; जैसा कि मि० विल्सनका कथन है, "तिब्बत और बरमाकी सभ्यता भारतसे आई है" सर्वांशमें सही जान पड़ता है। मि० आर० एफ सेंट एन्ड्रूके अनुसार इन ब्रह्मदेशीय उपनिवेशोंकी तिथि १०० ई० के लगभग ज्ञात होती है।

सन् १८८२ ई० में एक फ्रांसीसी सज्जनने कम्बोडियामें एक मंदिर खोद निकाला था। उसमें एक शिलालेख भी पाया गया था। उसीके आधारपर उनका कहना है कि पुराकालमें यह (कम्बोडिया) यदि भारतका एक भाग नहीं तो उससे संबद्ध तो अवश्य ही था।

मि० हेनेल लिखते हैं—सन् ४०० ई० के लगभग कतिपय मनुष्य तक्षशिला (यह उस समय कम्बोजके नामसे प्रसिद्ध था) के आस पाससे यहाँ आये और कम्बोजके नामसे इसे बसाया।

इसी प्रकार मि० फर्गुसन आदि विद्वानोंके अन्वेषणों तथा अभी हालमें एक मंदिरके प्राप्त होनेसे इस विषयका संतोषप्रद प्रमाण मिलता है कि कम्बोडियाको हिंदुओंने बसाया था।

जब हम इधरसे भारतीय द्वीपसमूहकी ओर चलते हैं तो हमें समानताकी संतोषप्रद-स्मृतिके शुभ-चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। इसीलिए तो टाड साहब बलपूर्वक कहते हैं:-सूर्यवंशियोंने इस द्वीपसमूहको बसाया था।

बात सच भी है। क्योंकि इसके प्रत्येक द्वीपके बारेमें इस बातका प्रमाण मिलता है कि ये भारतके प्राचीन उपनिवेश थे। जिनके कतिपय उदाहरण यहाँ देते हैं।

एलफिन्स्टन साहबका कथन है—जावा द्वीपके इतिहासमें कई स्थानपर कलिंगदेशीय प्रवासियोंके आनेका वर्णन मिलता है। और यहाँतक पता चला है कि यहाँ इन लोगोंने एक सम्वत् चलाया था।

मि० [illegible] भी इसीकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं—जावाकी परम्परा-कथाओंसे जाना गया है कि [illegible] गुजरातमें एक राजा ५,००० [illegible] साथ यहाँ आया और मातारामने बस गया।

ठीक इसी भाँति [illegible] विषयमें [illegible] लिखा है—अब भी यहाँ जितने शिला-लेख प्राप्त हुए हैं, जिनकी लिखावट भारतीय [illegible] पुराने [illegible] करती है।

इसी प्रकार मलतुर्कका कथन है:—सुमात्रामें एक समय परमेश्वर नामका एक हिंदू राज्य करता था। *

सर स्टैम्फोर्ड रैफलसके लिखनेसे ज्ञात होता है कि बलिद्वीपकी नगर-शासन-प्रणाली भी ठीक हिंदुओंके ढगपर है।

चीन और जापान

चीन और भारतका अत्यंत घनिष्ट सबंध है। हिंदुओंकी प्राचीन पुस्तकें महाभारत, रामायण आदिमें अनेक स्थलोंपर [कोषकारभूमि] चीनके रेशमी वस्त्रोंका वर्णन मिलता है। उधर चीनके राजदरबारमें भारतीय दूतोंके प्रवेशका भी यदाकदा पता लगता है।

चीन और भारतके सबधके अनेक प्रमाण हैं। इतिहाससे विदित होता है कि शाक्य राजा ममितोदनके वशज बुद्धभद्र उत्तरीय भारत और कोचीन चीनके मार्गसे ३६८ ई०में चीन गये थे।

इसमें संदेह नहीं कि धार्मिक दृष्टिसे चीन भारतका विशेषतः बौद्धधर्मका आभारी है, और रहेगा। क्योंकि जैसा कि महाशय जर्लर्दलर्जनने लिखा है:—चीनधर्म बिलकुल हिंदुओंसे लिया गया है, इसको सभी लोग मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं।

चीन और भारतका व्यापारिक सपर्क भी कुछ कम नहीं था। चीनके बाज़ारोंमें भारतीय वस्तुएँ बड़े चावसे बिकती थीं। वैसेही चीनके रेशमी कपड़ोंकी बिक्रीका भारत भी अच्छा केन्द्र था। प्रो० छिकन्वेनके अनुसार ईसासे ६०० वर्ष पूर्व चीन और भारतसे जहाजी बेड़े आते जाते थे। ये जहाज ताम्रलिप्ति द्वीप होकर आया जाया करते थे। यह द्वीप भी हिंदुओंहीका था।

अतमें सबसे महत्वकी बात तो यह है कि महाशय ओकाकुरा लिखते हैं कि यहाँ चीनमें एक समय १०,००० हिन्दू परिवार रहते थे।

ठीक इसी प्रकार जापानके धार्मिकनिर्माणमें भी भारतका अधिक भाग है। इसी उद्देशकी पूर्तिके लिए विशेषतः भारतीय बौद्ध प्रचारकोंके आनेका यत्र तत्र वर्णन मिलता है। इन प्रचारकोंके चिरस्थायी रूपसे यहीं बस जानेका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इनके रहन सहनमें भी समानताकी झलक पाई जाती है। जिससे यह हो सकता है कि कभी न कभी यह भी भारतीय उपनिवेश था। सतोषका विषय है कि जापानके होरियो मदिरमें बगलालिपिमें ११वीं सदीके कुछ ग्रंथ मिले हैं।

डा० जे० ताकाका कथन है कि भारतका न केवल जापानपर मानसिक ही आधिपत्य था प्रत्युत जापानकी व्यापारिक तथा कृषि-उन्नतिमें भी भारतका एक ध्येय भाग था ‡।

* चीनयात्री इत्सिंगकी तालिकासे विदित होता है कि, सुमात्रामें श्रीभोज जावामें कलिंग और ओलिंगा, तथा बलिमें मवासिन नामके उपनिवेश भी ऐसे ही थे।

‡ जापानके राजकीय कागज़ोंसे पता चलता है कि दो भारतीय, एक सुबा सन ७३६ में और दूसरा चपेल सन् ८८० ई० में यहाँ आये थे। जिन्होंने यहाँके लोगोंको कईका खेती करनेकी शिक्षा दी। [What Japan owes to India]

स्वार्थ

अमरीका।

जिस समय यूरोप अपनी आदिम नृशंस अवस्थाके गर्तमें पड़ा हुआ था, जिस स
यूरोपकी आँखोंके सामने सभ्यताका स्वप्न भी दुस्तर हो रहा था, उसी समय अमरीम
जीवनज्योतिकी एक रेखा पहुँच चुकी थी। अब प्रश्न यह होता है कि आखिर यह सभ्य
आई तो कहाँसे आई।

यूरोपीय अन्वेषणोंसे इस समस्याकी पूर्ति हो जाती है। वे कहते हैं कि अमरीक
वालोंको इस प्राथमिक विकासका हेतु भारतवर्ष है। वैरन हम्बोल्ट और मि० कोलमैनका
दावा है कि आज भी अमरीकाकी भूमिमें भारतीय भावोंकी छाप है।

मध्य अमरीका और मेक्सिकोमें जो मंदिर मिले हैं वे सबके सब भारतीय प्राची
कलाके एक मात्र नमूने हैं। इसी प्रकार हिन्दू धारणाओं (राहु, केतु, गणेश अवतार, कच्छप
रूप, नाग-पूजा, आवागमन) की अमरीकाकी धारणाओंसे बराबर समानता पाते हुए यह स्वीका
करना पड़ता है कि हो न हो इस पातालदेशको भारतीयोंने ही बसाया हो।

अमरीकावाले भी "राम" को ठीक भारतीय धारणापथपर मानते हैं। वे भी बत
लाते हैं कि राम सूर्यवंशी थे, राम कौशल्याके पुत्र थे और सीताके पति थे। यहाँ तक कि वे
लोग भी दशहरेके ढंगपर वार्षिक राम-मेला मनाते हैं।

इन ज्वलंत उदाहरणोंसे इस बातका निश्चित ज्ञान होता है कि अमरीकामें भी बहुत
पहिले भारतके उपनिवेशस्थापक आये और बसे थे।

शिवदास गुप्त



प्राचीन भारतमें विदेशयात्रा

"हे मनुष्यो! [illegible] प्रबन्धके द्वारा [illegible] में बैठकर समुद्र-यात्रा करो और विमान द्वारा [illegible] बैठकर आकाशका भ्रमण करो"

—ऋ०

समय बड़ी विचित्र शक्ति है। एक जाति जब उन्नतिके शिखरपर चढ़ी हुई [illegible] को उन्नतिमार्गमें अग्रसर [illegible] है आज देखिये वही जाति अपने गौरव [illegible] मान को मिट्टीमें मिलाकर उन्हीं शास्त्रोंको जो उसकी उन्नतिके सभी पोषक थे अपना गिरानेवाला, अपनी [illegible] और अपने जीवनका विरोधी समझती है।

जो रोम कभी युद्ध-विद्याको अपनी जातिका निजांग समझता, अपने वीरोंका ललित भूषण और अपने योद्धाओंके जीवनका एकमात्र आधार समझता था, अधिक समय व्यतीत न हुआ कि वही उसके गुलामों और चारणादि कमीनोंका काम होगया। कभी यूनानके पुत्रोंने ओलम्पियाकी चोटीमें सर निकालकर जगती, भगवान् और पवित्र यूरोपको राजनीतिमत्ताकी प्रकाशमें उज्ज्वल किया। हाय समय तेरी बलिहारी! आज उसी प्रांतमें अराजकता रूपी राक्षस ऊधम मचा रहा है।

कल चीन, मिस्र, कारीगरी व चित्र-विद्यामें अग्रगण्य हो माननीय गुरुके पदमें सुशोभित, शृंगार-सिंहासनपर विराजमान था। आज विदेशोंके मिट्टीके खिलौने और कांचकी चिमनियाँ महलकी खूबसूरतीको उजाला दे रही हैं।

तात्पर्य यह कि पतित जातियाँ अपनी उन्नतिके मूल साधनोंको भुलाती हुई उन्हींके विरुद्ध कमर कसती हैं। यह मानते हुए कि महाराज अर्जुनने साम्राज्य प्राप्त किया था, महाभारत जगतयुद्ध था, हम विदेशगमनके विरुद्ध हो कर क्या अपनी अज्ञानता नहीं दिखा रहे हैं? क्या यह हास्यजनक नहीं है कि विदेशभ्रमणके लिए काशीके महामान्योंका सार्टीफीकट लेना आवश्यक समझा जाय या बिरादरीके मुँहको रबड़ी मलाई और मुरब्बेसे तर करना पड़े, जबकि हमारे पूर्वज भूगोलके प्रत्येक भागमें, आजकलके यूरोपवालोंसे कहीं अधिक बसगये थे और उन देशोंकी असभ्य जातियोंको अपने धर्म, ज्ञान, कला-कौशलसे सुशिक्षित बना गये थे?

जिस जातिने एक समय समस्त भूमण्डलको अपने पाँवसे एक कर लिया था, जिसने एक समय विदेशवास और जगतभ्रमणमें अपनी शक्ति, समृद्धि और सिद्धि समझी थी आज वही कूपमण्डूक बन अपने प्यारे लालोंको जातिच्युत, धर्मच्युत करनेमें पड़ी है। इसे समय का फेर और अकर्मण्यता न कहें तो क्या कहें।

हमारे इस लेखसे पाठक भली भाँति समझ लेंगे कि हमारे पूर्वजोंने भी बड़ी विकट समुद्रयात्रा करके केवल यूरोप, अफरीकाके रूढ़ोंको ही तै नहीं किया था परन्तु नई दुनियाँ तक को छान डाला था।

यूरोपके विज्ञान विशारद विद्वानोंका मत है कि हिमालय पर्वत संसारकी भूमिमें सबसे ऊँचा है। मनुष्यकी उत्पत्तिका यहीं होना और यहाँसे फिर दुनियाँके और भागोंमें फैलना युक्तिसंगत है।

सर वाल्टर रैले संसारकी परिक्रमा करनेके पश्चात् अपनी पुस्तक 'संसारका इतिहास' में लिखते हैं कि मनुष्यकी उत्पत्ति किसी निश्चित स्थानपर हुई होगी और हिन्दुस्तानही एक मुल्क है जहाँ लोग सबसे पहले बसे थे।

इस तरहपर भारतवासियोंका विदेशपर्यटन अमुक समयमें ही आरम्भ होता है। मिस्रमें भारतवासियोंके उपनिवेश बहुतही प्राचीन समयमें होने बताए जाते हैं। अमरीकामें आर्यावर्तीय महाभारतसे सदियों पहले बस चुके थे परन्तु मंग आदि नवद्वीपोंमें आर्योंके बसनेका पता महाभारतके युद्धके बाद चलता है। प्राचीन भारतवासियोंकी बस्तियाँ भूगोलके पूर्वीभागमें ही नहीं पाई जाती हैं वरन् उत्तर और पश्चिममें भी। पूर्वी भागमें उन्होंने पहिले ब्रह्मदेश, स्याम, मलाया, यूनान आदि देशोंमें अपने उपनिवेश स्थापित किये। वहाँसे आगे बढ़कर चीनमें अपना दखल जमाया। चीनसे सुमात्रा, जावा, बोर्नियो आदि द्वीपोंसे होकर वे सीधे अमरीका तक पहुँचे थे। और पश्चिम उत्तर की तरफ़ वे तुर्किस्तान, साइबेरिया, स्केंडिनेविया, जर्मनी, ब्रिटानिया आदि ते करते हुए फारिस, यूनान, रोम और आस्ट्रेलियातक जा बसे थे।

यदि हम थोड़ा भी विचार करेंगे तो हमको पता लगेगा कि स्थानोंके रस्म-रिवाज, साहित्य, धर्म आदिसे अब भी प्राचीन आर्यावर्तकी सभ्यताकी झलक मालूम होती है।

कर्नल एलकाट एक स्थान में लिखते हैं कि—

"हमारे पास इस बातका काफी सबूत है कि आर्यावर्तके विचारोंका प्रभाव यरुसलीम ईसा और मूसाका जन्मस्थान मिस्र, यूनान, रोम आदि उत्तरीय यूरोप इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, आदि देशोंपर भलीप्रकार पड़ा है। यदि हकीम, फीसागोरस, अफलातून अरस्तू, होमर आदिके ... का वेदव्यास, कपिल, गौतम, पतञ्जलि कणाद, आदिसे मुकाबिला किया जाय तो इनके सिद्धान्तोंमें बहुत कुछ समानता मिलेगी। ऐसी समानता जिससे यह साफ़ प्रकट होगा कि यूरोपवालोंने अपने विचार भारतसे लिये हैं और यह समानता हमारे विश्वासको मिस्रके प्राचीन निवासी जो हिन्दुस्तानसे गये थे, दृढ़ करती है।

प्राचीन तत्ववेत्ता विख्यात मूसासे लेकर अफलातूनतक मिस्रमें प्राचीन भारतकी ... भी पढ़ने जाया करते थे।

मिस्र—पहिले हम कह चुके हैं कि मिस्रमें हिन्दुओंकी बस्ती थी। प्रोफेसर ब्रगसबेकी ... है कि हिन्दुओंका एक गिरोह सात आठ हजार वर्ष पहिले मिस्रमें बसा था। जिसने कि वहाँ सभ्यता और विज्ञानकी ज्योति फैलाई थी।

प्रो० पीकोक जिन्होंने अपनी सारी आयु मिस्रके ऐतिहासिक विषयोंकी खोजमें बिता-... हैं कि हमारे पास कई सबूत हैं जैसे मिस्रकी नदियों और प्रदेशोंके नामोंका हिन्दुस्तान नदियोंके नामोंसे मिलान, हिन्दुस्तानके वीर राम आदिकोंका मिस्रके वीरोंके नामोंसे एकता, आदिकी समानता, जिनसे हम कह सकते हैं कि प्राचीन कालमें वहाँ हिन्दू लोग आबसे थे।

फारिस—शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।
पौण्ड्रकाश्चौड्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शका।
पारदा पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥

उपरोक्त मनुके श्लोकोंसे मालूम होता है कि फारिसके लोग क्षत्रिय वंशके थे। प्रो॰ पीकोक कहते हैं—

"फारिस, कोलकीच और आरमीनियाके प्राचीन नकशे भारतवासियोंके उपनिवेश होनेके स्पष्ट और आश्चर्यजनक सबूतोंसे भरे पड़े हैं * * * सारा नकशा गोया भारतवासियोंकी बड़ी बस्तियोंके हालातके सिवाय और कुछ नहीं है।"

यूनान—यूनानके कला कौशल, साहित्य, दर्शन, राजप्रबन्ध आदिका ही असर है कि यूरोप आज ऐसी अवस्थाको पहुंचा है। और अंग्रेज इतिहास और साहित्य देखनेसे मालूम होता है कि वहांवालोंने एक धर्मको छोड़ और बातोंमें ग्रीसहीको सर्वोपरि माना है। यूरोप निवासी यह ख्याल करते थे कि एक यूनान ही है जिसने संसारको उन्नतिके प्रकाशसे उज्ज्वल किया है पर अब करनल टाड और करनल वीलफोर्ड जैसे विद्वानोंने यूरोपवालोंको आंखें खोलकर दिखला दिया है कि यूनान खुद कुछ नहीं था बरन् भारतवासी थे जिन्होंने वहाँ अपना उपनिवेश स्थिर कर उसको कला और विज्ञानसे परिपूरित किया था।

मिस्टर पीकोक ग्रीसको राजगृहके लोगोंसे बसा हुआ मानते हैं। उनके मतमें ग्रीक गृहीका बिगड़ा रूप मात्र है। आप कहते हैं—

"यूनानका प्राचीन इतिहास भारतका प्राचीन इतिहास है।"

रूम—रूम और यूनानमें घनिष्ट सम्बन्ध है। यूनानकी निस्बत यह कह देना गोया रूमका पुराना इतिहास लिखना है। इसलिये यूनानमें हिन्दुओंके आनेसे रूममें आना स्वतः प्रमाणित है।

काउन्ट ब्जोर्नस्टर्ना कहते हैं कि रूमकी इट्रस्कन जाति भी हिन्दुओंमेंसे है।

तुर्किस्तान—'भारतीय इतिहास' के लेखक तुर्किस्तानके एक प्रदेश काटके बारेमें कहते हैं—

"इस प्रदेशमें सबसे पहले भारतवासी आकर बसे थे।"

कर्नल टौड कहते हैं—"जैसलमेरके इतिहासमें लिखा है कि हिन्दू जातिके यदु बाल्हीक खानदानने महाभारतके पश्चात् खुरासानमें राज्य किया।

जर्मनी—मोक्षमूलर अपने ऋग्वेदकी भूमिकामें लिखते हैं कि—जर्मन, हिन्दुस्तानके ब्राह्मण या शर्म्मा हैं जो कि धीरे धीरे जरमा या जरमन कहलाने लगे।

प्रोफेसर म्यूमर 'इंगिलमैन' और 'जर्मन' शब्दोंमें "मैन" और "मन" शब्दोंकी उत्पत्ति मनुसे बतलाकर उनका हिन्दू होना साबित करते हैं।

ग्रेटब्रिटेन—मि॰ पोकाक ग्रिफिन अपनी पुस्तक ब्रायटिश म्यूजियम लाइब्रेरी इंड (पुरोहित) और हिन्दुस्तानके पुरोहितोंसे मुकाबला करते हुए बतलाते हैं कि स्वतः हिन्दू थे जो भारतसे आकर ब्रिटेनमें बसे थे।

अध्यापक कोलब्रुक कहते हैं—"हिन्दू प्राचीन समयमें ब्रिटनमें रहते थे इससे साबित है कि शाकद्वीप (ब्रिटन) का एक द्विज सरदार एक समय विष्णुके गरुड़ द्वारा लाया गया था"।

पूर्वीय एशिया—इस बातको दिखलानेकी कि प्राचीन आर्य चीन, बरमा, मलाया, स्याम, सुमात्रा, जावा इत्यादि प्रदेशों और द्वीपान्तरोंमें जा बसे थे हम विशेष आवश्यकता नहीं समझते जब कि सब ही इसको मानते हैं और बरमा, जावा, सुमात्रादि देशोंमें अब भी वहां प्राचीन हिन्दूगृह, मन्दिर, पुस्तकादि विद्यमान हैं।

कर्नल टॉड कहते हैं, कि चीननिवासी अपनेको आयर वंशीय कहते हैं जो कि हिन्दू राजा पुरूरवाका पुत्र था।

मिस्टर विलसन कहते हैं कि—

"बरमी और तिब्बतियोंकी सभ्यता हिन्दुओंसे ली हुई है।"

अमरीका—कोलम्बस साहबने अमरीकाको खोजकर एक बार ही लोगोंको अचम्भेमें डाल दिया कि एक और दुनिया भी है और लगे लोग हाथ मलने कि हाय हमारी सभ्यताको हज़ारों बरस हो गये आजतक हम अपने ही बगलके भाइयोंका हाल न जान सके। पर वैज्ञानिक खोजने गुड़गोबर कर दिया और सब करा कराया खाकमें मिला दिया। लोग दांतोंमें अंगुलियाँ दाबकर कहने लगे कि ओहो हिन्दू हमारे भी गुरु रहे, वे तो हमसे सदियों पहले उसको नापे हुए हैं। हमें दुनियां गोल दिखानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इन्होंने उसको भी छीन लिया।

प्रसिद्ध जर्मनयात्री तथा वैज्ञानिक बेरन हमबोल्ट कहते हैं "कि अभी तक हिन्दुओंके कई चिन्ह अमरीकामें मौजूद हैं।"

मि० हार्डी कहते हैं—"मध्य अमरीकाकी पुरानी इमारतें हिन्दुस्तानके स्तूपोंसे बहुत कुछ मिलती हैं।"

हमारे पास बहुत कुछ इस विषयपर कहनेको है पर लेखको अधिक न बढ़ा कर यहीं पर समाप्त करना उचित समझते हैं और उस शुभदिनकी ओर टकटकी लगाये हैं जब कि भारतमें पुनः सजीवता उत्पन्न हो और यहाँके निवासी उपनिवेश स्थापित करनेके मूल्यको समझें।

परमेश्वरी दयाल



भारतीय विनिमय

पदार्थोंका मूल्य घटा बढ़ा करता है। किसी वस्तुका भाव एकसा नहीं रहता। इस अस्थिरताके कई कारण हैं। जब एक कालके लिए किसी वस्तुका भाव निश्चय होकर विक्रेताओं और ग्राहकोंमें परस्पर सौदा होता है तो इसका यह अर्थ होता है कि निश्चित प्रमाणमें जिस भावपर विक्रेता उस पदार्थको बेचनेके लिये तैयार है उसी भाव और उसी प्रमाणमें, ग्राहक भी उसको लेनेको राजी है। जितनी खपत है उसमें यदि माल विक्रेताके पास बढ़ जाय तो उसका मूल्य घट जाता है, क्योंकि ग्राहक उतने ही मूल्यपर अब खरीदनेके लिये राज़ी न होंगे, और इसी प्रकार खपतमें माँग बढ़ जानेपर भाव चढ़ जाता है। और भी कारण ऐसे है जो भावको स्थिर नहीं रहने देते।

पदार्थोंका मूल्य सिक्कोंसे निश्चित होता है परन्तु सिक्कोंके चलनसे पहिले पदार्थोंका अदला-बदला हुआ करता था। जैसे किसीके पास बेचनेको अन्न है और दूसरेके पास कपड़ा है और दोनोंको दूसरेके पदार्थकी आवश्यकता है तो बिना सिक्केकी सहायताके वे दोनों एक दूसरेकी चीजोंको आपसमें किसी दरके हिसाबसे बदल लेते थे। परन्तु सभ्य संसारमें सिक्केके चलनेसे बड़ी सुविधा हो गई है और उससे तीन काम लिये जाते हैं। एक तो विनिमय-साधनमें सिक्का मध्यस्थका काम देता है। अब बेचनेवालेको आज किसी ऐसे आदमीको खोजनेकी आवश्यकता नहीं है जिसको अपना कपड़ा भी बेचना हो। क्योंकि जबतक सिक्का नहीं चलता दोनों पक्षोंको एक दूसरेकी वस्तुकी परस्पर आवश्यकता होनी चाहिए। इसके बिना अदला बदला हो नहीं सकता। दूसरे विनिमय-साध्य दो चीजोंका मूल्य सिक्केसे मालूम हो जाता है। एक रुपयाका चार गज़ कपड़ा मिलता है और एक ही रुपयेमें आठसेर अन्न मिलता तो अन्न और कपड़ेका परस्पर मूल्य रुपयेसे निश्चय हो जाता है। तीसरा काम जो सिक्के द्वारा किया जाता है वह यह है कि आगेके सौदेका दाम या मूल्य आज ही निश्चय हो सकता है। तो सिक्का मूल्यका परिमाण बतलाता है। परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है। जिस परिमाणको समाज निश्चय कर ले उसमें घटा बढ़ी न होनी चाहिए। जैसे कपड़ा नापनेके लिए हम [illegible] ए। यदि इसको मनमाने [illegible] बनानेसे जो सुविधा आज होती है वह सब जाती रहे। इसी प्रकार तोलके परिमाण भी निश्चय कर स्थिर कर लिये गए हैं। परन्तु रुपयेके मूल्यमें स्थिरता नहीं होती। अर्थात् मूल्यका परिमाण स्वयं स्थिर नहीं रहता या यह कहिये कि रुपयेका मूल्य घटता बढ़ता रहता है। एक आदमी एक रुपया देकर चार गज़ कपड़ा लेता है। हम यह कह सकते हैं कि जैसे एक आदमीने रुपया देकर कपड़ा खरीदा उसी प्रकार दूसरे आदमीने कपड़ा देकर रुपया खरीदा। अब यदि एक रुपयेमें तीन ही गज कपड़ा मिलता है तो पहिलेकी अपेक्षा कपड़ेका [illegible]

गया परन्तु कपड़ेके हिसाबसे रुपयेका मूल्य सस्ता हो गया। पहिले चार गज़ कपड़ा देकर एक रुपया खरीदा जा सकता था तो अब तीन ही गज़में एक रुपया खरीदा जा सकता है। अर्थात् कपड़ेके हिसाबसे रुपया सस्ता हो गया। जब किसी देशमें महँगी हो जाती है तो उसका कारण यही होता है कि रुपयेका मूल्य सस्ता हो जाता है। पहिले की अपेक्षा रुपयेके खरीदनेकी शक्ति कम हो जानेसे सब चीज़ें महँगी हो जाती हैं। यदि इसी बातको दूसरी तरहसे कहें तो यह कह सकते हैं कि देशमें सिक्के, नोट आदिकी वृद्धि हो जाय और साथमें पदार्थोंकी उपज या वृद्धि न हो तो महँगीका सामना करना पड़ता है। आजकल इस देशमें महँगी है उसका एक कारण सिक्के और नोटोंकी वृद्धि भी है। यदि सरकार इनकी संख्या कम कर दे तो सब चीज़ोंके भाव सस्ते हो जायँ क्योंकि रुपयेकी कमी होते ही रुपयेका मूल्य बढ़ जायगा और साथ ही पदार्थोंका मूल्य घट जायगा।

सिक्के धातुओंके बने होते हैं। इन धातुओंका भाव भी चढ़ा गिरा करता है। चाँदी सोनेका परस्पर भाव एकसा नहीं रहता। फिर यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि सिक्केका सरकारी मूल्य और यथार्थ मूल्य सदा एक नहीं होता। सरकारने रुपयेका मूल्य अपनी आज्ञासे बढ़ा रक्खा है। जितनेकी उसमें चाँदी है उससे रुपयेका मूल्य अधिक है, और नोटोंका यथार्थ मूल्य तो कुछ भी नहीं है। कागज़के टुकड़ोंका भला क्या मोल हो सकता है। परन्तु सरकारने अपनी आज्ञासे इन कागज़के टुकड़ोंका एक रुपयेसे लेकर दस हज़ार रुपये तकका मूल्य कर रक्खा है। हमको जब तक सरकारकी साखमें विश्वास है तब तक रुपयेका यथार्थ मूल्य कम होनेपर और नोटोंका कुछ भी न होनेपर उनके काममें लानेमें कोई आपत्ति या हानि नहीं है क्योंकि सिक्का और नोट यथार्थ मूल्यमें कम होनेपर भी अपना काम ठीक ठीक देते हैं।

अन्य देशोंसे व्यापार करनेके कारण भी हमारे सिक्केका मूल्य घटा बढ़ा करता है, इस बातको आगे चलकर स्पष्ट रीतिसे लिखा जायगा। अस्तु, नापने तोलनेके अन्य परिमाणोंकी अपेक्षा सिक्केमें जो कि मूल्यका परिमाण है और विनिमयका मध्यस्थ है, एक बड़ा दोष यह है कि उसका मूल्य अस्थिर होता है। साधारणतः लोग व्यापारमें इस बातका ध्यान नहीं रखते, बल्कि यदि किसीके सामने यह कहा जाय कि रुपयेका मूल्य बढ़ गया या घट गया तो वह इसका अर्थ न समझकर हँसने लगेगा।

इस देशमें तो रुपया चलता है पर अन्य देशोंमें जिनसे हम व्यापार करते हैं चाँदी सोनेके दूसरे सिक्के चलते हैं। सरकार अपने राज्यमें रुपयेका मूल्य उसके यथार्थ मूल्यसे बढ़ा सकती है परन्तु विदेशोंको इस बातको माननेके लिए मजबूर नहीं कर सकती। वहाँके व्यापारी तो रुपयेको चाँदीके भावसे ही लेंगे। और नोटोंका यथार्थ मूल्य कुछ भी न होनेके कारण उनको वे लेंगे ही नहीं। तो हमारे रुपयेका भाव विदेशियोंके लिए चाँदीके भावके अनुसार बदलता रहता है। यह भी एक अस्थिरताका कारण है जिससे रुपया मूल्यका परिमाण होते हुए भी निश्चित मूल्यका नहीं बना रहता।

हमारे देशसे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयेका माल विदेशमें जाता है और [illegible] करोड़ोंका बाहर भेजते हैं। आगामी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिए।

न लिया जाय कि दो व्यापारी क और ख बम्बईमें रहते हैं और एक तीसरा व्यापारी ग कलकत्तेमें रहता है। गने कलकत्तेसे १००० रुपयेका माल कको भेजा और खने १००० ...येका माल गको भेजा। इन दोनों सौदेके भुगतानके लिए यदि रुपया बम्बईसे कलकत्ते ...र फिर कलकत्तेसे बम्बई भेजा जाय तो बड़ी असुविधा हो। इसलिए ग एक चिठ्ठी खको ...ज देता है कि तुम अपना १००० रुपया कसे ले लो और जब कने खको बम्बईमें रुपया ...का दिया तो दोनोंका भुगतान अर्थात् क और खका एक साथ हो गया और तीनों ...यापारियोंका लेना देना बराबर हो गया। इसी उदाहरणसे हम यह भी समझ सकते हैं कि जब दोनों नगरोंमें बहुतसे व्यापारी हों तो लेन देनका भुगतान किस प्रकार होगा। बजाय इसके कि नगद रुपया एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजा जाय हुण्डियों द्वारा भुगतान हुआ करता है। और जितना बाकी रह जाता है केवल उतना ही नगद भेजा जाता है। इसी प्रकार विदेशी व्यापारमें भी देशोंके बीच आयात और निर्यातसे पहिले भुगतान होता है क्योंकि जितनेका माल मँगाया और उतनेहीका भेजा वहांतक तो बिना सिक्का दिये ही लेन देन हो जाता है और फिर जो रकम किसी देशपर बाकी रह जाती है उसके लिये चाँदी, सोना वा सिक्का भेजना पड़ता है। दो देशोंके आयात और निर्यातमें जितनी कमी बेशी रहती है उसको व्यापारकी बाकी कहते हैं। यदि यह बाकी हमारी ओर निकलती रही तो इसका अर्थ यह हुआ कि जितना माल बाहर भेजा उससे कमका मँगाया और यदि हमारे नाम रही तो आयातकी अधिकता रही। बस इसी बाकीके भुगतानके लिए चाँदी, सोना वा सिक्का मँगाना वा भेजना पड़ता है। इस असुविधासे बचनेके लिए और चाँदी सोना आदि अपने देशमें रखनेके लिए सब देशोंकी यही इच्छा रहती है कि व्यापारकी बाकी उनके नाम न निकले बल्कि उनकी लेनी दूसरेके नाम निकले।

यहाँपर दो एक बातोंका उल्लेख और कर देना आवश्यक है जिससे विदेशी व्यापार से हमारे सिक्के और विनिमय पर क्या प्रभाव पड़ता है वह अच्छी तरह समझमें आ जाय।

महायुद्धसे पहिले कई वर्षतक चाँदीका भाव बराबर घटता गया। इससे विलायती सिक्के और रुपयेके परस्पर मूल्यमें बराबर अस्थिरता रही और हमारे व्यापारियोंको बड़ी चिन्ता रही और हानि भी उठानी पड़ी। यहाँके व्यापारी तो अपना हिसाब रुपयोंसे करते थे और विलायतके सावरनमें। जब हम समझते थे कि इतने रुपयेसे विलायतके व्यापारीका भुगतान हो जायगा तो वह अधिक रुपयोंमें माँगता था क्योंकि रुपयोंका भाव बराबर गिरनेसे पहिले जितने सावरन उतने ही रुपयोंमें नहीं आ सकते थे। एक सावरेन का भुगतान पहिले थोड़े रुपयोंमें होता था तो अब ज्यादा रुपयोंमें होने लगा। अन्तमें सरकारने यह निश्चय किया कि विदेशी विनिमयमें सोनेके सिक्के अर्थात् सावरनसे हिसाब रहेगा और १५ रुपयेका एक सावरेन भी बाँध दिया। अर्थात् एक रुपये देकर विलायतमें एक शिलिंग और ४ पेन्सका भुगतान किया जाने लगा। सरकारने यह नियम कर दिया कि भारतवर्षके व्यापारी रुपये देकर विदेशी भुगतानके लिये सावरेन माँगेंगे तो १५ रुपये पीछे १ सावरेन विलायतमें दिया जायगा। परन्तु सरकारने इस बातके लिए अपनेको बाध्य नहीं किया कि हम १५ रुपये देकर देशमें सिक्केकी

गया परन्तु कपड़ेके हिसाबसे रुपयेका मूल्य सस्ता हो गया। पहिले चार गज़ कपड़ा देकर एक रुपया खरीदा जा सकता था तो अब तीन ही गज़में एक रुपया खरीदा जा सकता है। अर्थात् कपड़ेके हिसाबसे रुपया सस्ता हो गया। जब किसी देशमें महँगी हो जाती है तो उसका अर्थ यही होता है कि रुपयेका मूल्य सस्ता हो जाता है। पहिले की अपेक्षा रुपयेके खरीदने की शक्ति कम हो जानेसे सब चीज़ें महँगी हो जाती हैं। यदि इसी बातको दूसरी तरहसे कहें तो यह कह सकते हैं कि देशमें सिक्के, नोट आदिकी वृद्धि हो जाय और साथमें पदार्थोंकी उत्पत्ति या वृद्धि न हो तो महँगीका सामना करना पड़ता है। आजकल इस देशमें महँगी है उसका एक कारण सिक्के और नोटोंकी वृद्धि भी है। यदि सरकार इनकी संख्या कम कर दे तो सब चीज़ोंके भाव सस्ते हो जायँ क्योंकि रुपयेकी कमी होते ही रुपयेका मूल्य बढ़ जायगा और साथ ही पदार्थोंका मूल्य घट जायगा।

सिक्के धातुओंके बने होते हैं। इन धातुओंका भाव भी चढ़ा गिरा करता है। चाँदी सोनेका परस्पर भाव एकसा नहीं रहता। फिर यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि सिक्केका सरकारी मूल्य और यथार्थ मूल्य सदा एक नहीं होता। सरकारने रुपयेका मूल्य अपनी आज्ञासे बढ़ा रक्खा है। जितनेकी उसमें चाँदी है उससे ...

यथार्थ मूल्य तो कुछ भी नहीं है। कागजके ...

सरकारने अपनी आज्ञासे इन कागज़के ...

मूल्य कर रक्खा है। हमको जब तक ...

मूल्य कम होनेपर और नोटोंका कुछ भ...

नहीं है क्योंकि सिक्का और नोट यथार्थ ...

अन्य देशोंसे व्यापार ...

इस बातको आगे चलकर स्पष्ट ...

की अपेक्षा सिक्केमें जो कि मू...

यह है कि उसका मूल्य ...

रखते, बल्कि यदि किसीके ...

यह इसका अर्थ न समझना ...

इस देशमें तो ...

सोनेके दूसरे सिक्के चलते ...

सकती है परन्तु विदेशोंको ...

व्यापारी तो रुपयेको ...

कारण उनको वे लेंगे ही ...

अनुसार बदलता रहता है।

होते हुए भी निश्चित मूल्यपर ...

हमारे देशमें प्रति ...

माल बाहर भेजते हैं।

है। तो १५ रुपये और ६ आने विलायतमें देनेपर भारतमें पूरे १५ रुपयेका भुगतान होता है। ऐसी दशामें १५ रुपये और ६ आने तकमें वह भारतसचिवकी हुन्डी जिसको काउन्सिलबिल कहते हैं १५ रुपये और ६ आनेमें १ सावरेनके हिसाबसे लेनेको तैयार हो जायगा। इससे अधिक देनेमें उसको हानि है। अतएव काउन्सिलबिलका भाव साधारण दशामें इसी हद तक विलायतमें चढ़ सकता है। १ शिलिंग और ४ पेन्स (एक रुपये) के लिये ¼ पेनीतक देना पड़ता है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि विदेशी व्यापारमें बाकी हमारे नाम निकलती है और अन्तमें अन्यदेशोंको हमको रुपया या सिक्का देना पड़ता है। जब फसल अच्छी नहीं होती तो भारतसे विदेशको माल कम जाता है पर वहाँसे आता उतना ही है जितना पहिले आता था तो हम देनदार हो जाते हैं। ऐसी दशामें रुपया यहाँसे विलायत भेजना पड़ता है। इसके लिए यह उपाय है कि भारत सरकार यहाँ हुन्डी बेचती है और व्यापारियोंसे रुपया लेलेती है। यह दशा जब होती है तब विनिमय प्रायः हमारे विरुद्ध होता है। यहाँके व्यापारी १५ रुपयेसे कुछ अधिक देकर विलायतमें १ सावरेनका देना चुकानेके लिए राजी हो जाते हैं अर्थात् भारतसरकारको रुपये देकर हुण्डी खरीद व्यापारियोंके पास विलायत भेजते हैं। हुन्डियों द्वारा विलायतके व्यापारी सचिवसे सावरेन लेलेते हैं। भारतसचिव और भारतसरकार जल्दी भुगतान के लिए तार द्वारा भी व्यापारियोंका काम कर देते हैं इसमें कुछ खर्च विशेष पड़ता है परन्तु सुविधा भी होती है।

जिस भाव तक यहाँ पर हुन्डियाँ बिक सकती हैं उसकी भी सीमा है। यदि विनिमय या एक्सचेन्जका भाव इतना चढ़ जाय कि १ सावरेनका विलायतमें भुगतान करनेके लिए यदि यहाँ १५ रुपयेसे ऊपर इतना अधिक हुण्डी खरीदनेमें देने पड़े कि नगद रुपया विलायत भेजनेमें बचत हो तो कोई हुण्डी न लेगा। हुण्डीके भावकी इस सीमाको 'स्पेशी-पॉइन्ट' कहते हैं। इसी सीमाको उल्लंघन करतेही सिक्का यहाँसे विलायतको भेजनेमें लाभ होता है।

भारत सचिवके पास विलायतमें और सरकारके पास यहाँ कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में रुपयेके कोश रहते हैं जिनमेंसे हुंडियोंका रुपया चुकाया जाता है और जिनमें हुंडीकी बिक्री जमा की जाती है। सुविधाके लिए इन कोशोंमें चाँदी सोनेके सिक्के अनुकूलतानुसार रक्खे जाते हैं। कभी कभी कोशके फालतू रुपये भारत-सचिव विलायतके व्यापारियोंको कम सूद पर उधार भी दे देते हैं। यह हम लोगोंके असन्तोषका एक कारण है। फिर यह भी उलाहना सरकारको दिया जाता है कि विदेशी व्यापारियोंकी सुविधाके लिए भारतवासियोंके विशेष रुपया विलायतमें रक्खा जाता है। यदि यह इसी देशमें रहे और अनुकूलता होने पर यहाँके व्यापारियोंको उसमेंसे ऋण दिया जाय तो व्यवसायको सहायता प्राप्त हो सकती है। इस कोशका नाम 'गोल्ड स्टेन्डर्ड रिजर्व' है। रुपये बनानेमें जो सरकारको लाभ होता है वह इसीमें जमा होता है। इसी कोश द्वारा हुण्डियोंका भुगतान होता है। [illegible] अब इसका भारतसचिवके पास रहता है और बाकी यहाँ रक्खा जाता है। इसका विशेष हाल और इंडियन करेंसी प्रश्न-में दिये जाने योग्य है। परन्तु इतना जानना यहाँ आवश्यक है कि इसी की बदौलत रुपये और सावरेनका भाव वैसा रहता है और उसके ऊपर सूद भी जो स्थिरता है वह इसीके

तरह भुगतानके लिए भारत [illegible] दे दे। इसी तरह विलायतके व्यापारियोंसे १ शिलिंग विलायतमें लेकर यहाँ १४ रुपये देनेको लाचार होता था। इस प्रकार हमारे देखनेमें भी प्रचलित सिक्का तो चाँदीका रहा परन्तु विदेशी भुगतानके लिए उसका भाव सोनेमें निश्चय कर बाँध दिया गया। भुगतान विलायती हुण्डी या काउन्सिल बिल द्वारा होता है। लड़ाईके पहिले तक तो सिद्धान्त यह सरकारी भाव ठीक रहा परन्तु फिर इसमें बड़ी गड़बड़ी पड़ गई जिससे यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि सरकारी भाव सदा काम न दे सकेंगे।

अस्तु, अब यह देखना चाहिए कि भारत और विलायतमें किस प्रकार व्यापार होता है और लेनदेनका भुगतान कैसे होता है। हम जितनेका माल विलायतको भेजते हैं उतने यहाँसे नहीं मँगाते। इसलिए प्रायः प्रत्येक वर्ष विलायतवालोंको यहाँ सिक्का या चाँदी सोना भेजना पड़ता है। परन्तु भारत सचिवके लिए 'होमचार्जेज' के नामसे भारत सरकारको बड़ी रकम भेजनी पड़ती है। इस रकममें कई खर्च शामिल हैं जैसे भारत सचिवका दफ्तर खर्च, छुट्टीपर गये हुए या पेन्शन पाये हुए अंगरेजोंको माहवारी रुपया, रेल और फौजका सामान खरीद करनेकी रकम इत्यादि। फिर भी व्यापारकी बाकी हमारी ओर निकलती और हम उसके लेनदार रहते हैं। अर्थात् जितनी रकम हमको विलायतवालोंको देनी होती है उससे अधिक उनसे पानी होती है। विलायतके व्यापारी यह चाहते हैं कि बिना रुपया यहाँ भेजे किसी प्रकार हिन्दुस्तानके व्यापारियोंका भुगतान हो जाय। उधर भारत-सचिवको यहाँसे रुपया पाना है उसको भी वह नगद नहीं मँगाना चाहता क्योंकि इसमें बड़ी असुविधा होती है। तो भारत-सचिव विलायतमें हुण्डियाँ नीलाम करता है और इस तरह वहाँके व्यापारियोंसे रुपया पाकर हमारा जमा करता है और जो लोग हुण्डी खरीदते हैं वे उनको यहाँ भेजदेते हैं और यहाँके व्यापारी सरकार और अफीसे हुण्डियोंका रुपया वसूल करलेते हैं। इसप्रकार भारत-सरकार हुण्डियोंका रुपया यहाँ चुकाकर भारत-सचिवको रकम पहुँचादेती है और विलायतके व्यापारी यहाँका भुगतान भी करदेते हैं। यह सुविधा इसी कारण है कि एक ओर तो यहाँसे भारत-सचिवको रुपया भेजना है और दूसरी ओर विलायतके व्यापारियोंसे पाना है। इसके बिना भारत-सचिवकी हुण्डी नहीं चलसकती। जब विलायतके व्यापारियोंको यहाँ बहुत बड़ा भुगतान करना पड़ता है तो भारत-सचिवकी हुण्डीका भाव बढ़जाता है क्योंकि हुण्डीकी माँग बढ़जाती है अर्थात् भारतीय सिक्केका मूल्य अंगरेजी सिक्केके हिसाबसे बढ़ जाता है। विलायतवालोंके लिए हमारा रुपया महँगा हो जाता है। ऐसी अवस्थामें हमारे विनिमयका भाव चढ़ जाता है। यहाँ १ रुपयेका भुगतान करनेके लिए विलायतके व्यापारीको १ शिलिंग और ४ पेन्ससे अधिक देना पड़ता है। यदि भारत-सचिव हुंडीका भाव इतना बढ़ादे कि व्यापारियोंको जहाज़ द्वारा नगद रुपया भेजनेमें लाभ रहे तो कोई हुन्डी खरीदनेको राजी न हो। इसलिए यह भाव हद तक बढ़ सकता है कि विलायतके व्यापारीको नगद भेजनेमें जितना खर्चा पड़े उससे क हुन्डी द्वारा भेजनेमें व्यय न करना पड़े। जैसे कि मान लियाजाय कि विलायतके व्यापारी-१५ रुपये भारतमें चुकाने हैं और भुगतानके लिए उसको ६ आना ऊपर खर्च करना होता

है। तो १५ रुपये और ६ आने विलायतमें देकर भारतमें पूरे १५ रुपयेका भुगतान होता है। ऐसी दशामें १५ रुपये और ६ आने तकमें वह भारतसचिवकी हुन्डी जिसको काउन्सिलबिल कहते हैं १५ रुपये और ६ आनेमें १ सावरेनके हिसाबसे लेनेको तैयार हो जायगा। इससे अधिक देनेमें उसको हानि है। अतएव काउन्सिलबिलका भाव साधारण दशामें इसी हद तक विलायतमें चढ़ सकता है। १ शिलिंग और ४ पेन्स (एक रुपये) के लिये $\frac{1}{8}$ पेनी तक देना पड़ता है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि विदेशी व्यापारमें बाकी हमारे नाम निकलती है और अन्तमें अन्यदेशोंको हमको रुपया दा दिया देना पड़ता है। जब फसल अच्छी नहीं होती तो भारतसे विदेशको माल कम जाता है पर वहांसे आता उतना ही है जितना पहिले आता था तो हम देनदार हो जाते हैं। ऐसी दशामें रुपया यहांसे विलायत भेजना पड़ता है। इसके लिए यह उपाय है कि भारत सरकार यहां हुन्डी बेचती है और व्यापारियोंसे रुपया लेलेती है। यह दशा जब होती है तब विनिमय प्रायः हमारे विरुद्ध होता है। यहांके व्यापारी १५ रुपयेसे कुछ अधिक देकर विलायतमें १ सावरेनका देना चुकानेके लिए राजी हो जाते हैं अर्थात् भारतसरकारको रुपये देकर हुण्डी खरीद व्यापारियोंके पास विलायत भेजते हैं। हुन्डियों द्वारा विलायतके व्यापारी सचिवसे सावरेन लेलेते हैं। भारतसचिव और भारतसरकार जल्दी भुगतान के लिए तार द्वारा भी व्यापारियोंका काम कर देते हैं इसमें कुछ खर्च विशेष पड़ता है परन्तु सुविधा भी होती है।

जिस भाव तक यहां पर हुंडियां बिक सकती हैं उसकी भी सीमा है। यदि विनिमय वा एक्सचेन्जका भाव इतना चढ़ जाय कि १ सावरेनका विलायतमें भुगतान करनेके लिए यदि यहां १५ रुपयेसे ऊपर इतना अधिक हुण्डी खरीदनेमें देने पड़े कि नगद रुपया विलायत भेजनेमें बचत हो तो कोई हुण्डी न लेगा। हुण्डीके भावकी इस सीमाको 'स्पेशी-पॉइन्ट' कहते हैं। इसी सीमाको उल्लंघन करतेही सिक्का यहांसे विलायतको भेजनेमें लाभ होता है।

भारत सचिवके पास विलायतमें और सरकारके पास यहां कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में स्थाई कोश रहते हैं जिनमेंसे हुंडियोंका रुपया चुकाया जाता है और जिनमें हुंडीकी बिक्री जमा की जाती है। सुविधाके लिए इन कोशोंमें चाँदी सोनेके सिक्के अनुकूलतानुसार रक्खे जाते हैं। कभी कभी कोशके फालतू रुपये भारत-सचिव विलायतके व्यापारियोंको कम सूद पर उधार भी दे देते हैं। यह हम लोगोंके असंतोषका एक कारण है। फिर यह भी उलहना सरकारको दिया जाता है कि विदेशी व्यापारियों की सुविधाके लिए आवश्यकतासे विशेष रुपया विलायतमें रक्खा जाता है। यदि वह इसी देशमें रहे और अनुकूलता होने पर यहांके व्यापारियोंको उसमेंसे ऋण दिया जाय तो व्यवसायको सहायता प्राप्त हो सकती है। इस कोशका नाम 'गोल्ड स्टेन्डर्ड रिज़र्व' है। रुपये बनानेमें जो सरकारको लाभ होता है वह इसीमें जमा होता है। इसी कोश द्वारा हुण्डियोंका भुगतान होता है। कुछ अंश इसका भारतसचिवके पास रहता है और बाकी यहां रक्खा जाता है। इसका विशेष हाल और इतिहास स्वतन्त्र लेख-में दिये जाने योग्य है। परन्तु इतना जानना यहां आवश्यक है कि इसी की बदौलत रुपये और सावरेनका भाव बँधा रहता है और उनके परस्पर मूल्य में जो स्थिरता है वह इसीके

कारण है। यदि ऐसा प्रबन्ध न होतो सोने और चाँदीके भाव बदलतेही रुपये और सावरेन का भी परस्पर भाव बदल जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियम और कोशके महारेपर विनिमय वा एक्सचेन्जका काम चलता है। परन्तु ऐसे अवसर भी आसकते हैं कि जब यह सब प्रबंध शिथिल हो सकते हैं और विनिमयमें गड़बड़ी पड़जाती है। ऐसा कई बार हुआ भी है। इसी कारणसे अर्थशास्त्री इस प्रबंधमें कुछ शंकित रहते थे। कोश किस तरह बनाया गया और समय समय पर इसमें क्या परिवर्तन हुए और किस प्रकार प्रबंधमें शिथिलता आगई इन सब बातोंका इतिहास यहाँ विस्तारभयसे देना उचित नहीं समझा गया। रुपये और सावरेनका परस्पर भाव सरकारने बाँध रक्खा है वह सदा स्थिर नहीं रह सकता। लड़ाईके दिनोंसे जो गड़बड़ी चली आती है वह अब भी जारी है। उसका संक्षेपसे यहाँ वर्णन करना उचित है। लड़ाईके दिनोंमें विदेशसे यहाँ माल बहुत कम आसका और यहाँसे अन्न और तैयार माल बहुतसा विलायत भेजना पड़ा। सोना चाँदी सरकारने यहाँसे बाहर जाना बन्द कर दिया और उनका यहाँ लाना अपने अधिकारमें कर लिया। चाँदीका भाव कई कारणोंसे बराबर बढ़ता जारहा है। विलायत वालोंको यहाँ बहुत रुपया चुकाना है। इसलिये विनिमय हमारे पक्षमें है। काउन्सिलबिलोंका भाव बहुत बढ़गया। यहाँतक कि अब तीन शिलिंग तक पहुँचनेकी संभावना है। अर्थात् विलायतवाले २ शिलिंगसे ऊपर देने पर यहाँ एक रुपयेका भुगतान कर पाते हैं। ऐसे अवसर पर विनिमयके बढ़नेकी हद जिसका ऊपर उल्लेख किया है टूट गई है। हमारे सिक्केका मोल विलायती सिक्केके हिसाबसे बहुत चढ़गया है।

विलायतसे तो माल आना कम होगया और हमारा माल वहाँ बहुत अधिक पहुँचा इसी वजहसे हमारे सिक्केका मूल्य विलायतमें बहुत बढ़ गया। रुपयोंका भाव (सावरेन वा शिलिंगके हिसाबसे) इतना ऊँचा कभी नहीं हो पाया था। उधर चाँदीका भाव बढ़ जानेसे भी सावरेनका मूल्य पहिलेसे बढ़ गया है। सरकारी प्रबंधने अबतक काम तो ठीक दिया। रुपये और सावरेनका भाव बँधा रक्खा परन्तु लड़ाईके कारण विलायतपर हमारा लेना बहुत बढ़ गया और उधर चाँदीका भाव बढ़ गया क्योंकि चाँदी संसारमें आवश्यकतानुसार प्राप्त नहीं हुई। इस बातका विचार प्रबंधकर्त्ताओंको नहीं सूझा था कि ऐसी दशामें विनिमयका क्या होगा। यहाँ भी चाँदीकी कमी है। सिक्कोंके लिए जितनी चाहिए उतनी प्राप्त नहीं है। सरकारकी ओरसे यह बड़ी भारी शिकायत है कि जितनी चाँदी यहाँ आती है उतनी ही खपती चली जाती है। इससे बड़ी असुविधा उत्पन्न होगई है। सरकारको नोट बनाकर काम चलाना पड़ता है परन्तु रुपयेकी कमी होनेसे नोटोंको लेकर रुपये देनेमें सरकारको कठिनाई होती है।

जब सावरेन और रुपयेका भाव निश्चय किया गया था उस समय यह नहीं मालूम था कि एक दिन चाँदीकी कमीके कारण उसका भाव इतना बढ़ जायगा और पहिले जितनी चाँदी देकर हम निश्चय तोलका सोना लेते थे उतनाही सोना अब कम चाँदी देकरही प्राप्त सकेगा। उधर विलायतवालोंको यहाँ भुगतान करनेके लिए भारत-सचिवसे आवश्यकतानुसार हुंडियाँ प्राप्त न हो सकीं क्योंकि भारत-सचिव हुंडियाँ तो तभी बेचते जब भारत सर-

कारके कोशमें उन सबके भुगतानके लिए काफ़ी रुपया होता। रुपयेकी माँग तो सब ओरसे जारी रही पर चाँदी प्राप्त नहीं हुई; चाँदी मिलती भी तो बड़ी मँहगी, रुपये बनानेमें सरकारको ४५ फ़ीसदीकी हानि होने लगी। २७ पेंसीमें जो १ औन्स चाँदी चार वर्ष पहिले मिलती थी वह गत वर्ष ५० पेंसी तक पहुँच गई। सरकारने नोट खूब बनाये परन्तु इसमें भी पूरी बाधा थी क्योंकि नोटोंको भुनानेके लिए सरकारके पास काफ़ी रुपये न थे। अमरीकाकी सरकारने कठिनाईके समय सहायता दी और अपने कोशमेंसे चाँदी निकाल कर भारतसरकार को रुपये ढालनेको दी। जब नोटोंकी भरमार होने लगी तो जिसके पास नगद रुपये होते वह उनको निकालते नहीं। नोटों पर बट्टा भी बढ़ गया। चाँदीका भाव यहाँ तक बढ़ा कि रुपये गलानेमें लाभ होने लगा। सरकारने आज्ञा निकाली कि रुपया गलाने वालोंको दंड दिया जायगा। परन्तु साथमें सरकारने इस बातका ध्यान नहीं दिया कि प्रजाकी आवश्यकता कहाँसे पूरी हो। चाँदी जितनी आती सरकारके हस्ते और उसीके कामके लिए आती। इस प्रकारसे सरकारको रुपये बनानेमें हानि उठानी पड़ी और उसकी माँग पूरी हुई। नोटोंके चलनेसे अवश्य बड़ा सहारा दिया। नोटोंकी वृद्धिके साथ महगी और भी बढ़ती गई।

इन्हीं कारणोंसे सरकारका बँधा प्रबन्ध न चल सका। तो फिर नतीजा यह हुआ कि विलायतमें हुंडीके दाम 'रिवर्स कौंसिल' को छोड़कर बहुत बढ़ गये। यदि विलायतके व्यापारी माल न भेजें तो सरकार अपनी सूचनाके अनुसार चाँदीके बढ़े हुए भावसे अर्थात् कम रुपये देकरही बम्बईमें लोगोंसे रुपया लेती। तो फिर यहाँ भुगतान करनेमें गड़बड़ी हो तो क्या आश्चर्य। इसी कारण विलायतके विनिमयका भाव इतना बढ़ गया कि जितना पहिले कभी नहीं बढ़ा था। इस विनिमय की अस्थिरता का उपाय बतानेके लिए जो करंसी कमीशन बैठा है उसके विवरण प्रकाशित होने पर देखें क्या सन्तोष जनक नया प्रबन्ध होता है।

विनिमयका भाव बढ़नेसे हमको विलायतसे माल मँगानेमें तो लाभ है। क्योंकि पहिले एक रुपया देकर १ शिलिंग और ४ पेन्सका माल मिलता था तो अब एक ही रुपयेमें २ शिलिंग और ८ पेन्सका माल मिलता है। इसी प्रकार विलायतमें रुपया जमा करनेमें भी लाभ है। मतलब यह कि विलायतमें भुगतान करनेमें लाभ है। परन्तु यहाँ माल भेजनेवालों को हानि है। विलायतवालोंको अब दाम (शिलिंगके हिसाबसे) पहिलेसे अधिक देने पड़ते हैं। इसलिए हमारा माल वहाँ कम मँगाया जायगा।

इतना अवश्य जानना चाहिए, हमको विनिमयके भाव बढ़नेसे [illegible] है। एक तो विलायती माल सस्ता होनेसे स्वदेशी व्यवसायको हानि है। दूसरे [illegible] है। विलायत भेजनेमें हानि है इससे जो [illegible] है।

विनिमयके [illegible] १९१९ को [illegible]

सम्पादक

कारण है। यदि ऐसा प्रबन्ध न होतो सोने और चाँदीके भाव बदलतेही रुपये और सावरेन का भी परस्पर भाव बदल जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियम और कोशके सहारेपर विनिमय वा एक्सचेञ्ज का काम चलता है। परन्तु हम इसपर भी आसकते हैं कि जब यह सब प्रबन्ध शिथिल हो सकते हैं और विनिमयमें गड़बड़ी पड़जाती है। ऐसा कई बार हुआ भी है। इसी कारणसे अर्थशास्त्री इस प्रबंधमें कुछ शंकित रहते थे। कोश किस तरह बनाया गया और समय समय पर इसमें क्या परिवर्तन हुए और किस प्रकार प्रबंधमें शिथिलता आगई इन सब बातोंका इतिहास यहां विस्तारभयसे देना उचित नहीं समझा गया। रुपये और सावरेनका परस्पर भाव सरकारने बाँध रक्खा है यह सदा स्थिर नहीं रह सकता। लड़ाईके दिनोंसे जो गड़बड़ी चली आरही है वह अब भी जारी है। उसका संक्षेपसे यहाँ वर्णन करना उचित है। लड़ाईके दिनोंमें विदेशसे यहाँ माल बहुत कम आसका और यहाँसे अन्न और तैयार माल बहुतसा विलायत भेजना पड़ा। सोना चाँदी सरकारने यहाँसे बाहर जाना बन्द कर दिया और उनका यहाँ लाना अपने अधिकारमें कर लिया। चाँदीका भाव कई कारणोंसे बराबर बढ़ता जारहा है। विलायत वालोंको यहाँ बहुत रुपया चुकाना है। इसलिये विनिमय हमारे पक्षमें है। काउन्सिलबिलोंका भाव बहुत बढ़गया। यहाँतक कि अब तीन शिलिंग तक पहुँचनेकी संभावना है। अर्थात् विलायतवाले २ शिलिंगसे ऊपर देने पर यहाँ एक रुपयेका भुगतान कर पाते हैं। ऐसे अवसर पर विनिमयके बढ़नेकी हद जिसका ऊपर उल्लेख किया है टूट गई है! हमारे सिक्केका मोल विलायती सिक्केके हिसाबसे बहुत चढ़गया है।

विलायतसे तो माल आना कम होगया और हमारा माल वहाँ बहुत अधिक पहुँचा इसी वजहसे हमारे सिक्केका मूल्य विलायतमें बहुत बढ़ गया। रुपयोंका भाव (सावरेन वा शिलिंगके हिसाबसे) इतना ऊँचा कभी नहीं हो पाया था। उधर चाँदीका भाव सावरेनका मूल्य पहिलेसे बढ गया है। सरकारी प्रबंधने अबतक [illegible]
और सावरेनका भाव बँधा रक्खा परन्तु लड़ाईके कारण [illegible]
और उधर चाँदीका भाव बढ़ गया क्योंकि [illegible]
बातका विचार प्रबंधकर्त्ताओंको नहीं सूझा था कि [illegible]
भी चाँदीकी कमी है। सिक्कोंके लिए जितनी [illegible]
यह बड़ी भारी शिकायत है कि जितनी चाँदी [illegible]
है। इससे बड़ी असुविधा उत्पन्न होगई है। [illegible]
परन्तु रुपयेकी कमी होनेसे नोटोंको लेकर रुपये [illegible]
जब सावरेन और रुपयेका भाव [illegible]
था कि एक दिन चाँदीकी कमीके कारण [illegible]
चाँदी देकर हम निश्चय तोलका सोना ले[illegible]
हो सकेगा। उधर विलायतवालोंको यहाँ [illegible]
नुसार हुंडियाँ प्राप्त न हो सकीं क्योंकि

सुन्दर है। महात्माजीका मनमोहक चित्र भी दिया है। अन्तमें एक शब्दकोष देकर पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है।

जयद्रथ-वध नाटक—अनुवादक पण्डित गोकुलचन्द्रशर्मा । प्रकाशक—साहित्य-सदन, अलीगढ़ । पत्र संख्या १२६, जिल्द सादी, मूल्य ॥=)

प्रोफेसर परशुराम नारायण पाटणकर, एम. ए. संस्कृतके एक सुपरिचित विद्वान हैं। उन्होंने संस्कृतमें एक नाटक "वीर-धर्म-दर्पण" नामक लिखा है। उसकी रचना महाभारतमें आई हुई जयद्रथ-वधकी कथापर की गई है। उसी पुस्तकका यह गद्य और पद्यमें अनुवाद है। अनुवाद अच्छा हुआ है। इसमें विशेषता यह है कि विद्यार्थियोंके लिए किसप्रकारके नाटक लिखने चाहिए और कैसे अभिनय उनको करना उचित है इन बातोंका पूरा ध्यान रक्खा गया है। यह नाटक खेला भी जाचुका है और दर्शकोंकी प्रशंसाका पात्र बन चुका है। पढ़नेमें रोचक और शिक्षाप्रद होते हुए यह खेलने योग्य भी है।

रोग-परिचय—लेखक पण्डित हरिनारायणशर्मा काव्यतीर्थ । प्रकाशक पण्डित रामनारायणवैद्य । आयुर्वेदग्रंथ कल्पलता, कार्यालय भदैनी, काशीसे प्राप्य । पत्र संख्या ८४ मूल्य ।)

माधव निदान नामक वैद्यकका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसपर मधुकोष नामक एक संस्कृत टीका है। उस टीकाके एक अंश अर्थात् पञ्चलक्षणका यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक वैद्योंके कामकी है। अनुवाद परिश्रमसे किया गया है। मूल श्लोक भी दिये गए हैं यदि उनके साथ सरल भावार्थ वा श्लोकोंका सरल अर्थ भी दे दिया जाता तो और भी अच्छा होता।

मानव-पथ-प्रदर्शक, तृतीय भाग—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत रामचन्द्रसाव, गजाधरसाव, मछलाल, काशी । विना मूल्य प्राप्य ।

दया धर्मपर यह छोटीसी पुस्तक है।

कर्मवीर—साप्ताहिकपत्र । सम्पादक पंडित माखनलाल चतुर्वेदी । जबलपुरसे प्रकाशित । वार्षिक मूल्य ३)

कर्मवीरके पाँच अंक अभीतक हमको प्राप्त हुए हैं। हिन्दीके सर्वोच्चपत्रोंमें इसने एक मुख्य स्थान प्राप्त कर लिया है। लेख, सम्पादकीय टिप्पणी आदि सभी महत्त्वके और शिक्षाप्रद हैं। यदि इसके गुणोंका परिचय एक शब्दमें दिया जासकता है तो वह शब्द सजीवता है। मध्यभारत और हिन्दी संसारकी सेवा करता हुआ राजनैतिक उन्नतिमें यह पत्र प्रबल सहायक बनेगा ऐसी पूर्ण आशा है।

पुस्तकावलोकन

ए मेन्युएल आफ हाई-हिन्दी-ग्रामर ऐन्ड कम्पोज़ीशन—लेखक श्रीयुत लाला शिवनारायणलाल, प्रोफ़ेसर हिन्दी-भाषा और साहित्य, स्कॉटिशचर्चेज़ कालेज, कलकत्ता। प्रकाशक—गोल्डविन ऐन्ड कम्पनी, कलकत्ता। जिल्द सादी; पत्र संख्या १९७। मूल्य १।)

हिन्दी व्याकरण और रचनाका यह प्रथम भाग है। दो भाग और निकलनेपर पुस्तक पूरी होगी। लेखक महाशयने इसको अंगरेजीमें लिखा है जिससे कि भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लोगोंको हिन्दी सीखनेमें सुभीता हो। विशेषकर कलकत्ता विश्वविद्यालयके छात्रोंके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। वहाँ कालेजोंमें भी हिन्दी पढ़ाई जाती है। पुस्तक बड़े अच्छे ढंगसे लिखी गई है। हिन्दीमें अच्छे व्याकरण ग्रंथोंकी कमी है जिसको बहुत अंशमें यह पूरा करेगी। प्रस्तावनामें हिन्दीभाषाका संक्षेपमें इतिहास दिया है और बाकी सात अध्यायोंमें शब्द, उच्चारण, व्युत्पत्ति आदि देकर सज्ञा प्रकरणतक दिया हुआ है। क्रिया, समास और अन्य विषय तथा रचना अगले भागोंमें आवेंगे। प्रथम भागको देखनेसे ही पुस्तकके महत्त्वका पता चल जाता है। विषय समझाने और उसको विस्तृतरूपसे प्रतिपादन करनेमें कोई बात छोड़ी नहीं गई है। यह व्याकरण छोटे बालकोंके लिए नहीं लिखा गया है ऊँची श्रेणीके विद्यार्थियोंके लिए इसकी रचना की गई है। पुस्तकका हिन्दी संस्करण भी यदि साथ साथ निकाला जाय तो बहुत अच्छा हो। लेखक महाशयका परिश्रम सराहनीय है। आशा है कि इस पुस्तकसे अन्य प्रान्तोंमें हिन्दी प्रचारमें सुगमता होगी।

गान्धी-गौरव—लेखक पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा। प्रकाशक—साहित्यसदन, अलीगढ़। पत्र संख्या १६०; जिल्द सादी; मूल्य ॥।)

इस पुस्तकके रचयिता अपनी कवित्व-शक्तिका परिचय पहिलेही दे चुके हैं। 'प्रणवीर प्रताप' लिखकर वे ओजस्विनीभाषामें स्वदेशप्रेम और आत्मबलिदानका एक इतिहास प्रसिद्ध चरित्र हिन्दी पाठकोंके सम्मुख रख चुके हैं। अब उन्होंने महात्मागान्धीका गौरवगान किया है। यह महात्माजीका केवल गौरव-गानही नहीं है बल्कि पद्यमें उनकी पूरी जीवनी है। जन्मकालसे लेकर आज पर्यंत उनके जीवनकी समस्त उल्लेखनीय घटनाओंका इसमें वर्णन है। पुस्तकमें दस सर्ग हैं। भाषा बड़ी ओजस्विनी है और सब जगह एकसी सरल है। साधारण ...ोंके लिखनेमें भी रोचकताका लोप नहीं होने पाया है। भाषामें मधुरताका अभाव नहीं है। ...रस भाव प्रधान जान पड़ता है। महात्मागान्धीका चरित्र आपही एक सुन्दर काव्य है ...दि यह भावमय पद्यमें पढ़ने और मनन करनेको मिले तो लोकोत्तर आनन्द हो। पण्डित... हम इस रचनाके लिए बधाई देते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार और ...ी चरित्र रम्य पद्यमें लिखकर साहित्य एवं देशसेवा करते रहें। पुस्तककी छपाई भी

सुन्दर है। महात्माजीका मनमोहक चित्र भी दिया है। अन्तमें एक शब्दकोष देकर पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है।

जयद्रथ-वध नाटक—अनुवादक पण्डित गोकुलचन्द्रशर्मा। प्रकाशक—साहित्य-सदन, अलीगढ़। पत्र संख्या १२६, जिल्द सादी, मूल्य ॥=)

प्रोफेसर परशुराम नारायण पाटणकर, एम. ए. सस्कृतके एक सुपरिचित विद्वान हैं। उन्होंने संस्कृतमें एक नाटक "वीर-धर्म-दर्पण" नामक लिखा है। उसकी रचना महाभारतमें आई हुई जयद्रथ-वधकी कथापर की गई है। उसी पुस्तकका यह गद्य और पद्यमें अनुवाद है। अनुवाद अच्छा हुआ है। इसमें विशेषता यह है कि विद्यार्थियोंके लिए जिसप्रकारके नाटक लिखने चाहिए और कैसे अभिनय उनको करना उचित है इन बातोंका पूरा ध्यान रक्खा गया है। यह नाटक खेला भी जाचुका है और दर्शकोंकी प्रशंसाका पात्र बन चुका है। पढ़नेमें रोचक और शिक्षाप्रद होते हुए यह खेलने योग्य भी है।

रोग-परिचय—लेखक पण्डित हरिनारायणशर्मा काव्यतीर्थ। प्रकाशक पण्डित रामनारायणवैद्य। आयुर्वेदग्रंथ कल्पलता, कार्यालय भदैनी, काशीसे प्राप्य। पत्र संख्या ८४ मूल्य ।।)

माधव निदान नामक वैद्यकका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसपर मधुकोष नामक एक सस्कृत टीका है। उस टीकाके एक अंश अर्थात् पञ्चलक्षणका यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक वैद्योंके कामकी है। अनुवाद परिश्रमसे किया गया है। मूल श्लोक भी दिये गए हैं यदि उनके साथ सरल भावार्थ वा श्लोकोंका सरल अर्थ भी दे दिया जाता तो और भी अच्छा होता।

मानव-पथ-प्रदर्शक, तृतीय भाग—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत रामचन्द्रसाव, गजाधरसाव, मछनाल, काशी। बिना मूल्य प्राप्य।

दया धर्मपर यह छोटीसी पुस्तक है।

कर्मवीर—साप्ताहिकपत्र। सम्पादक पंडित माखनलाल चतुर्वेदी। जबलपुरसे प्रकाशित। वार्षिक मूल्य ३)

कर्मवीरके पाँच अंक अभीतक हमको प्राप्त हुए हैं। हिन्दीके सर्वोच्चपत्रोंमें इसने एक मुख्य स्थान प्राप्त कर लिया है। लेख, सम्पादकीय टिप्पणी आदि सभी महत्त्वके और शिक्षाप्रद हैं। यदि इसके गुणोंका परिचय एक शब्दमें दिया जासकता है तो वह शब्द सजीवता है। मध्यभारत और हिन्दी संसारकी सेवा करता हुआ राजनैतिक उन्नतिमें यह पत्र प्रबल सहायक बनेगा ऐसी पूर्ण आशा है।

सम्पादकीय

करन्सी कमेटीका निर्णय



रन्सी और विनिमय संबंधी प्रश्नोंपर विचार करने और अपनी सम्मति देनेके लिए भारतमें एक समिति नियत की गई थी। महायुद्धके कारण विनिमय या एक्सचेंजमें गड़बड़ी पड़ गई है। रुपये और सावरेनका परस्पर भाव जो कानूनने नियत कर रक्खा था वह अस्थिर हो रहा है। इसी कारणसे इन प्रश्नोंपर पुनः विचार करनेकी आवश्यकता सरकारको प्रतीत हुई। इस समितिमें सिवाय मि० दलालके सब सदस्य अंगरेज थे। मि० दलालने मत-भेदके कारण अपना अलग मत प्रगट किया है। बाकी सब सदस्य एकमत हैं। बहुमतको भारतगवर्नमेंटने स्वीकार किया है। बहुमत की मुख्य सम्मतियाँ हैं:—

(१) प्रचलित रुपयेकी तोल और उसमें चाँदीका प्रमाण ज्योंका त्यों रक्खा जाय। (२) रुपये और सोनेमें परस्पर भाव निश्चित किया जाय। अबतक रुपये और सावरेनमें भाव सरकारने बाँध रक्खा था, परन्तु अब रुपये और सोनेमें रहना चाहिए। क्योंकि सोने और सावरेनके भावमें अब समानता नहीं रही। (३) एक रुपया ११.३०१६ ग्रेन सोनेके बराबर रक्खा जाय। अर्थात् सावरेनका भाव १५ रुपयेकी जगह १० रुपयेका कर दिया जाय। (४) भारतवर्षमें जब यह भाव सावरेनका हो जाय तब सोनेके आयातपरसे सरकारी रोक उठाली जाय। (५) जिनके पास सावरेन हैं उनको कुछ कालके लिए सरकार यह अवसर दे कि सरकारी खजानेसे वे १५ रुपयेमें उनको भुनालें। (६) बम्बईमें सोनेके सिक्के की टकसाल खोली जाय और जो लोग सोना दें उनको उसके बदलेमें सावरेन दिये जायँ। (७) सावरेनके बदलेमें रुपये देनेकी सरकारी सूचना उठा ली जाय। अर्थात् सावरेन भुनादेनेके लिए सरकार बाध्य न रहे। (८) चाँदीके आयातपरसे सरकारी रोक कुछ दिनों बाद उठा ली जाय। परन्तु निर्यातपर अभी जारी रक्खी जाय। (९) प्रजाको जो पसंद हो वही सिक्का या नोट मिलना चाहिए। परन्तु अच्छा यह है कि विदेशी भुगतानके लिए सोना काममें लाया जाय और देशमें नोट, रुपयेका विशेष व्यवहार किया जाय। (१०) करंसी नोटोंके बदलेमें सरकार रुपये देनेमें सदा तत्पर रहे। अर्थात् नोटोंके परिवर्तनमें कोई बाधा न रक्खी जाय।

इनके अतिरिक्त और भी कई सम्मतियाँ दी गई हैं, परन्तु यह मुख्य है। मि० दलाल ने कुछ और ही सलाह दी है और वह यह है कि:—

(१) रुपये और सावरेनका भाव पहिले जैसाही रक्खा जाय। १५ रुपयेका एक सावरेन जारी रहे। (२) प्रजाको सोना और उसके सिक्के मँगाने और बाहर भेजनेका बेरोक अधिकार दिया जाय। (३) इसी प्रकार चाँदी और उसके सिक्के भी बेरोक आया जाया करें। (४) सरकार बिना कुछ लिए सोनेके बजाय सावरेन ढालकर बम्बईकी टकसालसे दिया करे। (५) बम्बईकी टकसाल प्रजाके सोनेको बिना कुछ लिये अपने खर्चेसे साफ़ कर दिया करे। रुपयेमें १६५ ग्रेन चाँदी रहती है। जबतक न्यूयार्कमें ९२ सेन्टसे ऊपर चाँदीका भाव रहे सरकार रुपये न बनावे। (६) ९२ सेन्टके ऊपर चांदीका भाव न्यूयोर्क में रहे तबतक सरकार एक नया सिक्का जारी करे

जिसका मूल्य २ रुपयेका हो परन्तु उसमें चाँदी रुपयेकी दुगनी न हो बल्कि कुछ कम हो। (७) चाँदीकी अठन्नी बनाई जाय जिसमें चाँदी रुपयेके अर्द्धभागसे कम रहे और इस अठन्नी को चाहे जितने बार चुकानेके लिए प्रचलित सिक्का बनाया जाय। (८) निकिलकी अठन्नी बन्द कर दी जाय। (९) प्रचलित सिक्कोंको गलानेका अधिकार जो सदासे प्रजाको प्राप्त है। वह प्रजाको पुनः दिया जाय। (१०) एक रुपयेके नोट बन्द कर दिये जायें और अब उनको जारी न किया जाय।

भारत-सचिवकी सूचना

भारत-सचिवने मि० दलालकी सम्मतियों को नहीं माना है। यदि दो रुपये का हलका सिक्का बनाया जायगा तो प्रचलित रुपया जिसमें चाँदी अधिक है या तो देशके बाहर चला जायगा या उसको लोग गलाने लगेंगे। रुपयेकी कमी होनेसे फिर सरकार नोटोंको भुना देनेमें असमर्थ होजायगी। इससे कामोंमें बड़ी गड़बड़ी पड़ जायगी। दो रुपयेका हलका सिक्का चलाना अनुचित है। और फिर चाँदीके सिक्के की कमी पूरी करनेके लिए मनमाना सोना मगाया जाय तो संसारके सुवर्ण-कोषपर बड़ा आघात पहुँचनेकी सम्भावना है। भारत सचिवकी यह दलीलें मि० दलालके विरुद्ध हैं। दो रुपयेके मूल्यका हलका सिक्का चलाना तो प्रजाको सम्भवतः पसंद न आता। सरकार पर लोग संदेह करने लगते। बहुमतको स्वीकार करते हुए भारतसचिवने अंगरेज सदस्योंकी सम्मतियोंकी प्रशंसाकी है और उन्होंने जो अपने मतके समर्थन करने में प्रमाण दिये हैं उनपर पूरा विश्वास किया है। भारत-सचिवकी रायसे बहुमत की सम्मतियोंके माननेसे भारतवर्षको लाभ होगा। उनकी आज्ञानुसार भारत सरकारने अपनी सूचनाएँ प्रकाशित करदी हैं। २ फरवरीसे जो सावरेन या सोना देशमें कोई लावेगा सरकार उसको १० रुपये सावरेनके हिसाबसे अथवा १ रुपया ११ ३०१६ ग्रेन सोनेके हिसाबसे देकर लेलेगी। अभी सोनेका आयात सरकारके हाथमें रहेगा और वह इस लिए कि यहाँ सोना लाकर उसका भाव गिरा दिया जाय ताकि अन्तमें १० रुपये का भाव सावरेनका हो जाय। सावरेन और अर्ध-सावरेनके बदलेमें रुपये देना बद कर दिया गया है। चाँदीके आयातपर जो रोक थी वह उठा ली गई परन्तु उसके निर्यातपर रोक अभी जारी रहेगी। सावरेन और रुपये को सिवाय सिक्केकी तरह काममें लानेकी निषेधात्मक सरकारी आज्ञा वापिस लेली गई। काउन्सिल बिल अर्थात् सरकारी हुण्डियोंके बारेमें भी समितिकी राय मान ली गई है। अब सरकारको जितनी हुण्डियाँ करनी होंगी उतनीही करेगी। व्यापारियोंकी सुविधाके लिए अपनी आवश्यकतासे अधिककी हुंडी न तो भारतसचिव करेंगे और न भारत सरकार। सावरेन का मोल अभी कुछ दिनतक १५ रुपयेका ही रहेगा और सरकार इसी भावपर उसको लेलेगी परन्तु उसकी बजाय रुपये देनेके लिए बाधित न होगी। चाँदीके आयात पर जो चार आने आउन्सका कर था वह भी उठा लिया गया।

परिणाम

भारतसचिव और समितिके अंगरेज सदस्यों का विश्वास है कि इन सुधारोंसे और विशेषकर विनिमयका भाव चढ़ादेनेसे ही देशको लाभ है। उनका कहना है कि यदि भाव

को हानि उठानी पड़े तो नोटोंके निकालने देनेकी आवश्यकता हुई इसको चाहिए और किसकी हुंडियोंका लेना बन्द कर दिया जाय। परन्तु नोटोंके बदलेमें सोने देनेमें कोई रोक न की जाय। मतलब कि यदि आवश्यकता हो तो नोटोंमें हानि उठाकर व्यापार करें हाँ परन्तु नोटोंके भुनानेमें कोई असुविधा न होने पावे। यह स्पष्ट है कि सरकारका यह अनुमान ठीक निकले कि विनिमयका दर ऊंचा रखनेसे इसको किसी प्रकार हानि न हो बल्कि उलटे लाभ ही हो। परन्तु असली प्रश्न इसकी जानकारीका होगी कि हुंडियोंके व्यापार पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, महँगी बढ़ती है या घटती है और इसको उचित भाव बनानेका अवसर मिलता है या नहीं। केवल चांदी और सोनेके भावमें स्थिरता रहनेसे काम नहीं चल सकता। एक यह भी प्रश्न है कि यह स्थिरताके लिए सरकारी प्रबन्ध जो किया जा रहा है उसमें स्थिरता प्राप्त हो सकती है अथवा आयात और निर्यातके स्वच्छन्द रहनेसे थोड़े कालमें आपही सब गड़बड़ी मिट जाती? व्यापारियोंको इस बातकी चिन्ता है कि उनके विदेशी व्यापारको हानि न हो। वे डरते हैं कि वस्तुओंके भाव गिरने पर और इस देशके प्रति विदेशी व्यापारियोंकी बाकी कम होने पर विनिमयकी ऊँची दरसे उनको घाटा न सहना पड़े। यही कारण है कि उनको समितिकी सम्मतियोंसे सन्तोष नहीं हुआ।

महँगीका प्रश्न

करसीकमेटीके सम्मुख यह भी प्रश्न आया था कि महँगीमें देशका लाभ है वा हानि। दोनों पक्षका समर्थन लोगोंने किया है। कमेटीकी सम्मति इस विषयपर जानने योग्य है। गवर्नरोंको बढ़ती हुई महँगीको उन्होंने सहयाओं द्वारा दिखलाया है। इस महँगीके तीन चार मुख्य कारण हैं। पहिले तो अन्नका कम उत्पन्न होना, तैयार मालके बनानेका अवसर न मिलना, करसी अर्थात् नोट और सिक्कोंका बहुत सहयामें बना डालना और आयात निर्यातपर बाधा होना। परन्तु चाँदीका मूल्य बढ़ जानेसे रुपयेका मूल्य भी बढ़ गया। इस कारण इस देशमें इतनी महँगी नहीं होने पाई जितनी अन्य देशोंमें हो रही है। पिछली मनुष्यगणनाकी सख्यामेंके अनुसार प्रति सैकड़ा ७२ मनुष्य खेती पर निर्वाह करते हैं परन्तु इन सबपर महँगी-का एकसा प्रभाव नहीं पड़ता। जिनके पास अपनी धरती है वा लगान पर धरती लेकर जोतते हैं और अन्नमें कुछ बचत करलेते हैं उनको महँगीसे अवश्य लाभ है। परन्तु इस लाभका बड़ा अश उनके उपभोगमें नहीं आता क्योंकि आवश्यक वस्तु स्वदेशी वा विदेशीभी बहुत महँगी हो रही हैं। इसलिए उनके दामोंमें विशेष खर्च करना पड़ता है। जिन किसानोंको फसल कटने पर साहूकारको अन्न देकर अपना ऋण चुकाना है उनको महँगीसे कुछ लाभ नहीं। क्योंकि अन्नकी महँगीका लाभ तो ऐसी दशामें साहूकार उठाता है न कि किसान। जिन किसानों को इतना ही अन्न प्राप्त होता है जितना कि उनको स्वय खानेको चहिए और इससे अधिक नहीं तो उनको महँगीमें अवश्य हानि उठानी पड़ती है। अन्नकी महँगीसे तो उनको कुछ लाभ न हुआ क्योंकि बेचनेको बचता ही नहीं परन्तु आवश्यक पदार्थोंका बाजारमें मूल्य बढ जानेसे व्यय बहुत बढ़-गया। तो ऐसे किसानोंको भी कुछ लाभ महर्गीके कारण न हुआ, बल्कि हानि हुई। मजदूरी

न बढ़ा दिया जाय तो इस देशमें महँगी और भी विशेष बढ़जायगी। क्योंकि अब चाँदीका भाव सोने और सावरेनके हिसाबसे चढ़ादिया है तो विलायती माल यहाँ पहलेकी अपेक्षा सस्ता मालूम पड़ता है। अन्य देशोंमें जितनी महँगी हो रही है उसकी अपेक्षा यहाँ कम है और यदि विनिमय का भाव नीचा कर दियाजाय तो यहाँकी प्रजाको महँगीका कष्ट बहुत बढ़जाय। और फिर मजदूरीका दर भी चढ़ाना पड़े जिससे स्वदेशी व्यवसायको हानि होगी विदेशोंमाल मँगानेमें लाभ विशेष होगा अतएव मशीन आदि जो विलायतसे मँगाई जाती है उनके मँगानेमें कम व्यय हुआ करेगा। और पहिलेकी अपेक्षा सस्ते पड़नेसे यहाँके व्यवसायमें आसानीसे सहायता पहुँच सकेगी। भारत सरकारको 'होमचार्जेज़' जो भारत सचिवको प्रतिवर्ष देने पड़ते हैं उसका भुगतान अब थोड़े रुपयेमें हो जाया करेगा और इस प्रकार बारह तेरह करोड़ रुपये सालकी बचत इसदेशको हो जायगी। उनकी रायमें भारतके विदेशी व्यवसायको उतनी हानि नहीं उठानी पड़ेगी। अब यह भी देखना चाहिए कि हानि क्या है। अर्थशास्त्रका यह एक साधारण नियम है कि विनिमयका भाव चढ़नेसे विदेशी माल सस्ता हो जाता है इसलिए उसका आयात बढ़जाता है। और विदेशवालोंके लिए उसदेशका माल महँगा हो जाता है इससे निर्यातमें कमी हो जाती है। इस साधारण नियमके अनुसार हमारे विदेशी व्यापारपर बड़ा आघात होता है क्योंकि हमारा माल जो पहिले १ शिलिंग ४ पेन्स देकर विलायत वाले लेते थे उसीके लिए अब उनको २ शिलिंग देना पड़ेगा। तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमको हानि है। विलायती माल सस्ता होनेसे स्वदेशी व्यवसायको भी धक्का लगेगा हालाँकि मशीन आदिके मँगानेमें हमको लाभ होगा। निर्यातके सम्बन्धमें एक बात यह भरोसेकी है कि हमारा माल महँगा होनेपर भी विलायत वालोंको उसे लिए बिना उनका काम न चलेगा। इसलिए यह शंका कुछ अंशमें कम हो जाती है। 'होमचार्जेज़' के भुगतानमें हमको ११,१२ करोड़ रुपये सालकी बचत अवश्य होगी परन्तु जो सावरेन या सोना सरकारी कोषोंमें यहाँ रक्खा हुआ है और जिसका रखना हुण्डियोंके भुगतानके लिये आवश्यक है उसका मूल्य पर आघात १५ रुपयेकी बजाय १० रुपयेका ही मूल्य सावरेनका होनेसे हमको १८ करोड़ रुपये से अधिक की हानि उठानी पड़ती है। कमिटिका कहना है कि यह हानि तो [illegible] पूरी हो जायगी और उसके बादमें भी बचत होगी यह प्रकार अन्दाजोंसे लगाई जा सकती है। सरकारी कोषका मूल्य पर आघात और १८ करोड़की हानि होगी इस हानिको पूरा करनेकी तरकीब तो [illegible] है परन्तु बेचारे गरीब देशवासियोंके पास क्या उपाय है। जितना सोना देशमें है उस सबका [illegible] मूल्य एक दम एक तिहाई घट गया।

कमेटीने यह जब परिवर्तन इस अनुपातमें किया तब [illegible] कि सोनेका मूल्य [illegible] हिसाबसे [illegible] और चाँदी [illegible] [illegible] [illegible]

को हानि उठानी पड़ रही है। इनके विचारसे देशको [illegible] न हो तो अच्छा था [illegible] और विनिमयकी दृष्टिसे ऐसा दर स्थिर किया जाय। परन्तु कमेटीके बहुमतने कहा कि कोई रोक न की जाय। क्योंकि यदि [illegible] होगी तो [illegible] हानि उठाकर [illegible] परन्तु कमेटीके बहुमतसे कोई [illegible] न होने पाय। यह सम्भव है कि [illegible] यह अनुमान ठीक निकले कि विनिमयकी दर ऊँची रखनेसे इसका विशेष हानि न हो बल्कि उलटे लाभ ही हो। परन्तु असली प्रश्न इसके अतिरिक्त होगा कि लोगोंके व्यापार पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, महँगी बढ़ती है या घटती है और इसको [illegible] बनानेका [illegible] मिलता है या नहीं। केवल रुपये और सोनेके आपसमें निश्चित रहनेसे काम नहीं चल सकता। एक यह भी प्रश्न है कि क्या इस विनिमयके लिए सरकारी प्रबन्ध जो किया जा रहा है उसीसे स्थिरता प्राप्त हो सकती है अथवा आयात और निर्यातके स्वच्छन्द रहनेसे थोड़े कालमें आपही सब गड़बड़ी मिट जाती? व्यापारियोंको इसबातकी चिन्ता है कि उनके विदेशी व्यापारको हानि न हो। वे डरते हैं कि वस्तुओंके भाव गिरने पर और इस देशके प्रति विलायतवालोंकी बाकी कम होने पर विनिमयकी ऊँचाईसे उनको घाटा न सहना पड़े। यही कारण है कि उनको कमेटीकी सम्मतियोंसे सन्तोष नहीं हुआ।

महर्गीका प्रश्न

करन्सीकमेटीके सम्मुख यह भी प्रश्न आया था कि महँगीमें देशका लाभ है वा हानि। दोनों पक्षका समर्थन लोगोंने किया है। कमेटीकी सम्मति इस विषयपर जानने योग्य है। गवर्मेंटकी बढ़ती हुई महँगीको उन्होंने सख्याओं द्वारा दिखलाया है। इस महँगीके तीन चार मुख्य कारण हैं। पहिले तो अन्नका कम उत्पन्न होना, तैयार मालके बनानेका अवसर न मिलना, करसी अर्थात् नोट और सिक्कोंका बहुत सख्यामें बना डालना और आयात निर्यातपर बाधा होना। परन्तु चाँदीका मूल्य बढ़ जानेसे रुपयेका मूल्य भी बढ़ गया। इस कारण इस देशमें इतनी महँगी नहीं होने पाई जितनी अन्य देशोंमें हो रही है। पिछली मनुष्यगणनाकी सख्याओंके अनुसार प्रति सैकड़ा ७२ मनुष्य खेती पर निर्वाह करते हैं परन्तु इन सबपर महँगी-का एकसा प्रभाव नहीं पड़ता। जिनके पास अपनी धरती है वा लगान पर धरती लेकर जोतते हैं और अपने कुछ बचत करलेते हैं उनको महँगीसे अवश्य लाभ है। परन्तु इस लाभका बड़ा अश उनके उपभोगमें नहीं आता क्योंकि आवश्यक वस्तु स्वदेशी वा विदेशीभी बहुत महँगी हो रही है। इसलिए उनके दामोंमें विशेष खर्च करना पड़ता है। जिन किसानोंको फसल कटने पर साहूकारको अन्न देकर अपना ऋण चुकाना है उनको महँगीसे कुछ लाभ नहीं। क्योंकि अन्नकी महँगीका लाभ तो ऐसी दशामें साहूकार उठाता है न कि किसान। जिन किसानों को इतना ही अन्न प्राप्त होता है जितना कि उनको स्वयं खानेको चहिए और इससे अधिक नहीं तो उनको महँगीसे अवश्य हानि उठानी पड़ती है। अन्नकी महँगीसे तो उनको कुछ लाभ न हुआ क्योंकि बेचनेको बचता ही नहीं परन्तु आवश्यक पदार्थोंका बाजारमें मूल्य बढ़ जानेसे व्यय बहुत बढ़-गया। तो ऐसे किसानोंको भी कुछ लाभ महर्गीके कारण न हुआ, बल्कि हानि हुई। मजदूरी

बढ़नेवाले वेतन जिनको अब दिया जाता है उनको तभी लाभ हो सकता है जब इस भत्ती आवश्यकतासे अधिक मिले, नहीं तो अथवा भाव बढ़नेसे उनको कुछ लाभ नहीं और साथ ही साथ इन्होंकिसको महँगीसे कष्ट भी उठाना ही पड़ता है। जिन लोगोंकी बँधी हुई आमदनी है जैसे किराये पर मकान चढ़ने वाले या पेन्शनवालों उनको महँगीसे पूरी हानि है। उनकी दशा एक ऐसे आदमी की सी है जो बहते हुए जलमें बाँधकर खड़ा कर दिया गया हो। वेतन तो नहीं चढ़ता है परन्तु पानी बढ़ कर ऊँचा चढ़ गया है। सबसे अधिक कष्ट तो इन्हीं लोगोंको है। श्रमजीवियोंने बड़ी बड़ी आन्दोलन करके अपना वेतन बढ़वा लिया है परन्तु समस्त वेतन भोगी आन्दोलन नहीं कर सकते। उनकी अवस्था बड़ी निराशाजनक और बेबसीकी है। कमेटीका मत है कि मजदूरी और वेतन यहां महँगीके हिसाबसे नहीं बढ़ाये गये। महँगी बहुत है और वेतन वृद्धि बहुत कम। डाक्टर ह्वाइटहेडका भी यही मत है कि महँगीसे किसानोंको इतना लाभ नहीं है जितना कि समझा जाता है और उसके अधिक बढ़नेसे किसानोंको भी हानि होती है।

चाँदी सोनेकी खपत

संसारमें प्रतिवर्ष सोना और चाँदी निकलते हैं। सिक्के और आभूषणोंमें प्रायः इनका उपयोग होता है परन्तु इनकी राशि संसारमें बढ़ती ही जाती है। साधारणतः इसका यह प्रभाव होना चाहिए कि सोने चाँदीका मूल्य घट जाय अर्थात् अन्य पदार्थ महँगे हो जाँय। परन्तु संसारमें इस कारण जितनी महँगी होनी चाहिए उतनी नहीं होती क्योंकि लोगोंका कहना है कि भारतवर्ष अन्धा होकर सोना चाँदी ले लेता है और यहाँ की प्रजा इन अमूल्य पदार्थोंको दबाकर रख लेती है। सिक्कों और आभूषणोंके रूपमें भारतवासी चाँदी सोनेको दबा बैठते हैं और फिर यथासम्भव निकालते नहीं। इस देशमें सिक्कोंकी माँग देखकर लोग चकरा जाते हैं। परन्तु वे इसके कारणों पर पूरा ध्यान नहीं देते। देश बहुत बड़ा है, सब जगह रेल सड़कका व्यापारके लिए सुप्रबन्ध नहीं है, लोग प्रायः अशिक्षित हैं। बंक और हुंडीसे काम नहीं लेते, यथासम्भव नगद अपने पास रखना पसंद करते हैं दहेजमें और अन्य अवसरों पर स्त्री बच्चोंके लिए आभूषण रीत्यानुसार बनवाने पड़ते हैं। जोखिमसे बचनेके लिए चाँदी सोना विशेष सुरक्षित रहते है। फिर यदि औसतसे २ रुपयेकी चाँदी या सोना प्रतिवर्ष प्रत्येक मनुष्य उठा रक्खे या उसके आभूषण बनवाए तो इतने बड़े देशमें कितने मूल्यके सिक्के खप जॉय? प्रायः यह दोष हम पर लगाया जाता है परन्तु यही बात अन्य देशके लोगोंके बारेमें भी कही जा सकती। भारतवर्ष बड़ा देश होनेसे और अन्य कारणोंसे इस बातमें विशेष बदनाम है। करसी कमेटीने अपने विवरणमें इस बातको मान लिया है कि जितनी खपत यहां सोने चांदी की होती है वह बहुत नहीं कही जा सकती। प्रजाकी रीति रिवाज, जन-संख्या और अन्य बातोंके देखनेसे उनका यह मत स्थिर हुआ है। इतना तो अवश्य है कि यदि जनसाधारण इस बातको समझ जायं कि गहने बनवानेसे और रुपये दबा रखनेसे उनके तथा देशके कल्याणके लिए यह उचित है कि रुपया बंकोंमें जमा कराया जाय वा व्यवसायमें लगाया जाय तो लाभ अधिक हो। शिक्षा प्रचारके साथ साखमें विश्वास बढ़नेसे एक दिन इस बातको लोग स्वयं समझने लगेंगे। करसी कमेटीने इस बातपर जोर दिया है कि प्रजाको बंकोंसे लाभ उठानेका पूरा अवसर मिलना चाहिए।

ज्ञातव्य विषय तथा अंक

भारतीय व्यापारके आयातका औसत मूल्य

पाँच पाँच वर्षका औसत

सम्वत् १९६० और पिछले ४ वर्षका औसत—	रु०	७८,४२,००,०००
,, १९६५ ,,	,,	१,११,८६,००,०००
,, १९७० ,,	,,	१,४५,८६,००,००० (युद्धके पूर्व)
,, १९७५ ,,	,,	१,४७,८०,००,००० (युद्ध काल)

प्रति वर्षका औसत

सम्वत् १९७०	रु०	१,८३,२५,००,०००(युद्धसे पहिले)
,, १९७१	,,	१,३१,६३,००,०००
,, १९७२	,,	१,३१,६६,००,०००
,, १९७३	,,	१,४८,६३,००,०००
,, १९७४	,,	१,५०,४२,००,०००
,, १९७५	,,	१,६६,०३,००,०००

भारतीयके व्यापारके निर्यातका औसत मूल्य

पाँच पाँच वर्षका औसत

सम्वत् १९६० और पिछले ४ वर्षका औसत	रु०	१,७१,११,००,०००
,, १९६५ ,,	,,	१,६१,८४,००,०००
,, १९७० ,,	,,	२,१६,४०,००,००० (युद्धके पूर्व)
,, १९७५ ,,	,,	२,१५,६६,००,००० (युद्ध काल)

प्रतिवर्षका औसत

सम्वत् १९७०	रु०	२,४४,२०,००,००० (युद्धके पूर्व)
,, १९७१	,,	१,७७,४८,००,०००
,, १९७२	,,	१,६२,५३,००,०००
,, १९७३	,,	२,३०,००,००,०००
,, १९७४	,,	२,३३,५४,००,०००
,, १९७५	,,	२,१६,३१,००,०००

करनेवाले लोग जिनको श्रम दिया जाता है उनको तभी लाभ हो ए
आवश्यकतासे अधिक मिले, नहीं तो श्रमका भाव बढ़नेसे उनको कुछ
वस्त्र इत्यादिकी महँगीसे कष्ट तो उठाना ही पड़ता है। जिन लोगोंक
जैसे किराये पर बसर करने वाले या वेतनभोगी उनको महँगीसे पृ
एक ऐसे आदमी की सी है जो बढ़ते हुए जलमें बाँधकर खड़ा कर
वही मिलता है परन्तु खर्च कई गुना बढ़ गया है। सबसे अधिक
श्रमजीवियोंने कहीं कहीं आन्दोलन करके अपना वेतन बढ़वा लिया
आन्दोलन नहीं कर सकते। उनकी अवस्था बड़ी निराशाजनक भी
है कि मजदूरी और वेतन यहाँ महंगीके हिसाबसे नहीं बढ़ाये गये
वृद्धि बहुत कम। डाक्टर हेरडल्मैनका भी यही मत है कि महंगी
है जितना कि समझा जाता है और उसके अधिक बढ़नेसे फिर

चाँदी सोनेकी खपत

संसारमें प्रतिवर्ष सोना और चाँदी निकलते है
इनका उपयोग होता है परन्तु इनकी राशि संसारमें बढ़ती
प्रभाव होना चाहिए कि सोने चाँदीका मूल्य घट जाय
परन्तु संसारमें इस कारण जितनी महँगी होनी चाहिए
कहना है कि भारतवर्ष अन्धा होकर सोना चाँदी ले ले
पदार्थोंको दबाकर रखलेती है। सिक्कों और आभूषणों
बैठते हैं और फिर यथासम्भव निकालते नहीं। इस
जाते हैं। परन्तु वे इसके कारणों पर पूरा ध्यान नहीं
सहकका व्यापारके लिए सुप्रबन्ध नहीं है, लोग
नहीं लेते, यथासम्भव नगद अपने पास रखना प
स्त्री बच्चोंके लिए आभूषण रीत्यानुसार बनवाने
विशेष सुरक्षित रहते है। फिर यदि औसततः
उठा रक्खे या उसके आभूषण बनवाए तो
प्रायः यह दोष हम पर लगाया जाता है पर
जा सकती। भारतवर्ष बड़ा देश होनेसे
करंसी कमेटीने अपने विवरणमें इस बा
की होती है वह बहुत नहीं कही जा
देखनेसे उनका यह मत सि

इन अंकोंसे आयात और निर्यातका केवल मूल्य मालूम होता है। कितना माल आया और गया यह इन अंकोंसे नहीं जान पड़ता। युद्धकालसे बराबर महँगी जारी है इससे मालका जितना मूल्य बढा है उतना परिमाण नहीं बढ़ा। दूसरी बात जानने योग्य यह है कि युद्ध कालसे आयात और निर्यात दोनोंका मूल्य बढ़ गया है। अब बराबर वृद्धि होने पर भी पूर्व संख्या तक व्यापार अभी नहीं पहुँचा है। तीसरी बात यह है कि निर्यात आयातसे बराबर अधिक रहा है अर्थात् व्यापारकी बाकी भारतवर्षके पक्षमें रही है। गत दो वर्षोंमें आयातकी जितनी वृद्धि हुई है उतनी निर्यात की नहीं हुई।

प्रयाग विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंका परिणाम

मैट्रीक्यूलेशन—	उत्तीर्ण छात्रोंकी संख्या	३३,६३६
इन्टरमीडियेट	„	१५,४५५
बी. ए.	„	७४४८
एल. टी.	„	४६१
एम. ए.	„	८७०
डी. लिट.	„	१
बी. एस-सी.	„	६३६
एम. एस-सी.	„	
डी. एस-सी.	„	२
एल्-एल्-बी.	„	३१५६
आनर्स-इन-ला	„	२
एल-एल्-एम.	„	१
एल-एल्-डी.	„	२

यह संख्या गत वर्ष तककी है। एम. एस-सी. की संख्या देने से रह गई है। यह अंक जनवरी मासकी ललितामें श्रीयुत कन्नोमल एम. ए. के एक लेखसे ली गई है।

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें।



विशेष सूचना:—जो लोग अपना रोजनामचा अंगरेजी सन्के अनुसार रखते हैं उनकी सुविधाके लिए सं० १९७७ का सौर रोजनामचा आगामी दिसम्बरके पूर्व ही छप जायगा। १ली जनवरी सन् १९२० से लेकर १४ अप्रैल तकके पृष्ठ इसके अन्तमें लगे रहेंगे जिससे यह पहली जनवरी १९२० से ही प्रयोग करने योग्य हो जायगा।

स्वराज्यका सरकारी मसविदा।

१—यह स्वराज्यकी पहली मंजिल है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके महान् राज्यका सारा भार हम भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका अब वृथा कष्ट न देवें। उसे इस भारी भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए हम प्रत्येक भारत सन्तानको—हर स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है।

भारतसचिव और बड़े लाटने जो जो सुधार भारत शासनमें करनेका विवरण तैयार किया है वह अंगरेजीमें है। नौकरशाही सरकारी कागजात सदा अंगरेजीमें तैयार करनेकी भूल करती है। जिससे केवल भाषा जाननेवाले करोड़ों भारतवासी उसके विषयमें अन्धकारमें पड़े रहते हैं। पूर्वोक्त विवरण भारतके राजनैतिक इतिहासकी एक महत्वपूर्ण घटना है। स्वराज्याकांक्षी अंगरेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी० ए०, एल-एल० बी० (केम्ब्रिज) बार-एट-ला के सम्पादनमें तैयार हुआ है।

इस आवश्यक विवरणका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ४८०, मूल्य १॥) पर शीघ्र खरीद डालें।

[illegible]।

इन अंकोंसे आयात और निर्यातका केवल मूल्य मालूम होता है। कितना माल आया और गया यह इन अंकोंसे नहीं जान पड़ता। युद्धकालसे बराबर महँगी जारी है इससे मालका जितना मूल्य बढ़ा है उतना परिमाण नहीं बढ़ा। दूसरी बात जानने योग्य यह है कि युद्ध कालसे आयात और निर्यात दोनोंका मूल्य घट गया है। अब बराबर वृद्धि होने पर भी पूर्व संख्या तक व्यापार अभी नहीं पहुँचा है। तीसरी बात यह है कि निर्यात आयातसे बराबर अधिक रहा है अर्थात् व्यापारकी बाकी भारतवर्षके पक्षमें रही है। गत दो वर्षोंमें आयातकी जितनी वृद्धि हुई है उतनी निर्यात की नहीं हुई।

प्रयाग विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंका परिणाम

मैट्रीक्यूलेशन—	उत्तीर्ण छात्रोंकी संख्या
इन्टरमीडियेट	,,
बी. ए.	,,
एल. टी.	,,
एम. ए.	,,
डी. लिट.	,,
बी. एस-सी.	,,
एम. एस-सी.	,,
डी. एस-सी.	,,
एल्-एल्-बी.	,,
मास्टर्स-इन-ला	,,
एल्-एल्-एम	
एल्-एल्-डी.	-

यह संख्या गत वर्ष

यह अंक जनवरी मासकी ल

सरल ज्योतिष।

१—इसमें आकाशमण्डलके सुन्दर सुन्दर सितारोंका परिचय, ग्रहोंका वर्णन, धूमकेतु, विद्युत् तथा उल्काओंका भेद, सब ग्रहोंके तेज, ताप, नवीन सिद्धान्तोंके परिवर्तन, [illegible], ध्रुव, शनि, [illegible], [illegible], और ज्योतिषका वर्णन बड़ी [illegible] सरल [illegible] दिया गया है। पृष्ठ संख्या १५०, मूल्य १) एक रुपया।

३—[illegible] करनेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुशिक्षित [illegible] बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—[illegible] और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

७—जगत् व्यापारिक पदार्थ कोश— कार्यकर्ताओंके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। भिन्न भिन्न व्यापारिक उद्योग, व्यापारके लिये माल कैसे तयार करना चाहिये, बातें मालूम होती हैं। सम्पादकर्त्ता डा० ठाकुरप्रसाद शर्मा। पृष्ठसंख्या ४२५ मूल्य ५) पांच रुपया।

८—देशी करघा—इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएँ तथा अन्य बहुत सी जरूरी बातोंका वर्णन है। पृष्ठसंख्या ११०, मूल्य ॥) आना।

९—सीनेकी कल (सचित्र)—पृष्ठसंख्या ५६ मूल्य ॥) आना।

१०—मार्टिन्नम— यूरोपीय महापुरुषके वास्तविक रहस्यका इसमें पता लगता है। पुस्तक बड़े मार्केकी है। अनुवादक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध लेखक अध्यापक रामदासजी गौड़ एम. ए. हैं। मूल्य १॥)

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्य पर २० व्याख्यान अँगरेजीमें। मूल्य ॥।) आना।

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना। अँगरेजीमें। मूल्य ≈) आना।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उनपर जमानतका मुकद्दमा हिन्दीमें। पृ० सं० ३०२ मू० १।) रु०

१४—मानस मुक्तावली—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य।≈)

१५—भूमण्डलके प्राणी—श्रीयुत राधाचरणसाह द्वारा सम्पादित। पृ. सं ७८, ॥)

१६—रंगकी पुस्तक। मूल्य १) रुपया।

१७—डाक्टर सर जगदीशचन्द्र वसु तथा उनके आविष्कार। मूल्य छ ।≈) आना।

१८—राष्ट्रपति विल्सन तथा संसारकी स्वाधीनता, मू० ॥)

१९—दिव्य जीवन। मूल्य ॥।-) आने।

२०—इकतीसवीं इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी रिपोर्टका हिन्दी अनुवाद। मू० २) रु.

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त।

मिलनेका पताः—

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल,
काशी।

बिहारीकी सतसई।

३—कवि सम्राट् बिहारीके सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् प० पद्मसिंह शर्माकी अपूर्व समालोचनाने लोगोंमें सुरुचि पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दूके कवितामेंसे तुलनात्मक लेख बड़ेही चित्ताकर्षक हैं। "सतसई सहार" नामक निबन्ध जो किसी समय सरस्वतीमें छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरस और सजीव है। समालोचना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ३७८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

सौर रोजनामचा सं० १९७७।

४—यह जेबी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पचांग, हिन्दीका प्रचार, राष्ट्रीय संस्थाएँ, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक लेख, नीतिके उत्तम उत्तम दोहे आदि कई नयी नयी बातें दी गयी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पञ्चांग सं० १९७७।

५—यह बड़े बड़े सुन्दर अंकोंमें छापा गया है। भीतपर लटकाने लायक है। इसके ऊपरी भाग और पीठपर बड़े पचांगकी सारी बातें घण्टों तथा मिनिटोंमें दी है। इसको प्राय सभी लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, यह ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक लमसारिणी भी दी गई है। मोटे सफेद कागजपर छपा है। मूल्य ।≈) छः आने।

छप रही हैं शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

६—इटलीके विधायक महात्मागण।
११—पश्चिमीय यूरोपका इतिहास (सचित्र)।
७—जापानकी राजनैतिक प्रगति (सचित्र)।
१२—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।
८—भारतवर्षका प्राचीन इतिहास "।
१३—अर्थशास्त्रका उपक्रम।
९—राष्ट्रीय आयव्यय।
१४—यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षण सुधारक।
१०—भौतिक विज्ञान।
१५—रसायन शास्त्र।

प्रचारित पुस्तकें।

स्वर्गवासी प्रो० लक्ष्मीचन्दजी एम्० ए० (इलाहाबाद), एम्० एस्-सी० (बिस्टोरिया), एफ० सी० एस्० (लन्दन), ने किस परिश्रम, उद्योग तथा भावसे नीचेकी पुस्तकें लिखी थीं यह बतलानेकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपने लघु किन्तु, परम उपयोगी जीवनका बहुत समय इन पुस्तकोंकी रचना तथा प्रचारमें ही लगा दिया था। उनसे लाभ उठाना या न उठाना हमारे हाथमें है।

हिन्दी केमिस्ट्री।

१—उर्दूमें केमिस्ट्रीका नाम है "कीमिया"। अब कीमिया शब्द हमारे यहाँ केवल धूर्तोंका सोना बनानेका पाखण्ड माना जाता है। दूसरे देशवाले इस विद्याके ज्ञानसे देखा जाय तो वास्तवमें मिट्टीसे सोना बनाते हैं। कोयलेके धूएँसे, कूड़े करकटसे भाँति भाँतिकी उपयोगी वस्तुएँ तैयार करके मालामाल हो रहे हैं। देशी भाषा जाननेवालोंके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १४०। मूल्य १) एक रुपया।

सरल रसायन ।

२—इसमें रसायनशालाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय, तत्वोंका वर्णन, धातु, उपधातु तथा उपधातुओंका भेद, सब प्रकारके तेजाब, लवण, संयोग वियोगके परिणाम, संकेत, सूत्र, शक्ति, अणु, परमाणु, भार इत्यादिका वर्णन कहानीके रूपमें अत्यन्त रोचकतासे दिया गया है। पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया ।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक । मूल्य ॥) आठ आना ।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक । मूल्य १) एक रुपया ।

५—तेलकी पुस्तक । मूल्य १) एक रुपया ।

६—वार्निश और पेण्ट । मूल्य १) एक रुपया ।

७—**जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष**— कारीगरोंके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। भिन्न भिन्न व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिये माल कैसे तयार करना चाहिये, बातें मालूम होती हैं। संग्रहकर्ता बा० ठाकुरप्रसाद खत्री । पृष्ठसंख्या ४२५ मूल्य ५) पांच रुपया ।

८—**देशी करघा**—इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएँ तथा अन्य बहुत सी जरूरी बातोंका वर्णन है। पृष्ठसंख्या ११०, मूल्य ॥) आना ।

९—**सीनेकी कल (सचित्र)**—पृष्ठसंख्या ५६ मूल्य ॥) आना ।

१०—**भारतीप्रेम**— यूरोपीय महायुद्धके वास्तविक रहस्यका इससे पता लगता है। पुस्तक बड़े मार्केकी है। अनुवादक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध लेखक अध्यापक रामदासजी गौड़ एम. ए. हैं। मूल्य १॥)

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्य पर २० व्याख्यान अंगरेजीमें । मूल्य ।॥) आना ।

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना । अंगरेजीमें । मूल्य ≈) आना ।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उनपर जमानतका मुकदमा हिन्दीमें । पृ० सं० ३०२ मू० १॥) रु०

१४—**मानस मुक्तावली**—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य ।≈)

१५—**भूमण्डलके प्राणी**—श्रीयुत राधाचरणप्रसाद द्वारा सम्पादित । पृ० सं० ७८, ॥)

१६—रुईकी पुस्तक । मूल्य १) रुपया ।

१७—डाक्टर सर जगदीशचन्द्र वसु तथा उनके आविष्कार । मूल्य ३ ।≈) आना ।

१८—राष्ट्रपति विलसन तथा सभापति वक्तृता, मू० ॥)

१९—दिव्य जीवन । मूल्य ।॥≈) आने ।

२०—इन्दौरकी इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी रिपोर्टका हिन्दी अनुवाद । मू० १) रु०

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त ।

मिलनेका पताः—

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल,
काशी ।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजके दो अपूर्व ग्रन्थ

१ साम्यवाद

हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके रचयिता श्रीयुक्त बाबू रामचन्द्र वर्मा और प्रस्तावना-लेखक स्वार्थसम्पादक, काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर प० जीवनशंकर याज्ञिक एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। पृष्ठसंख्या ५०० मूल्य ३॥) सजिल्दका ३)

इसमें प्राचीन साम्यवाद, फ्रान्सीसी साम्यवाद, अंगरेजी साम्यवाद, जर्मन साम्यवाद, [illegible]मनवाद, व्यापारसंघवाद, अराजकतावाद, और बोल्शेविज्म आदि सब प्रकारके साम्यवादोंका स्वरूप, उनके जुदा जुदा सिद्धान्त उनका साहित्य, उनके उत्पादकोंका परिचय और उनके क्रमविकासका तथा जुदा जुदा देशोंमें प्रचलित होनेका इतिहास खूब विस्तारके साथ लिखा गया है। इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली दिसम्बर सन् १९१९ तककी प्रायः सभी घटनाओंका इसमें समावेश किया गया है। इस एक ही ग्रन्थके पढ़नेसे सारे संसारके सर्वाधिकार और साम्यवादका स्वरूप समझा जा सकता है। यूरोपकी और समस्त जगतकी वर्तमान आर्थिक अवस्थाको और गत महायुद्धके परिणामोंको समझनेके लिए यह ग्रन्थ दर्पणका काम देगा। यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकोंके अनेक ग्रन्थोंके आधारसे यह सर्वांगसुन्दर ग्रन्थ लिखा गया है।

२ देश-दर्शन



स्वार्थ

वज्रपात

जिस घोर अनर्थकी आशंकासे अत्यन्त मन मलीन हो उठता था वह अन्तमें आँखोंके सामने आ ही गया। अनेक आशाओंपर पानी फेर, मेरा सुहृद और सज्जन उत्साहोंको दमन कर, अपने परिवार और मित्रोंको अथाह शोकसागरमें निमग्न कर केवल २७ वर्षकी अवस्थामें बाबू मंगलाप्रसादजी इस लोकसे चल बसे! इस शोक-समाचारसे कलेजा दहल जाता है, और यह सोचकर कि मंगलाप्रसादजीकी मृदुल मूर्ति सदाके लिए अन्तर्धान हो गई, जो मर्म वेदना होती है उसको शब्दोंमें अंकित करना बिलकुल असम्भव है। ऐसी घटना मनुष्यके दुर्बल और मनचले हृदयपर सहसा आघात पहुँचा कर एक बार उसके मानसिक बल और धार्मिक श्रद्धाको भी हिला डालती है। दैव कितना निर्दयी है, उसकी शक्तिके सामने मनुष्य कितना बलहीन है, यहाँ शोक, मन मसोसकर अपने हीन आश्रयपर आँसू बहानेके अतिरिक्त और क्या बस है! जो सबका भला और हितैषी, जिसके प्रति सबकी अनन्य श्रद्धा और स्नेह रहा, उसीकी जीवन-लीला इस तरह सहसा समाप्त हो जाय! मनुष्यके प्रत्यक्ष हिताहित और दैवी नियममें कितना विरोध!

बाबू मंगलाप्रसादजीका जन्म फाल्गुन शुक्ल ५ संवत् १९४३ को अजमतगढ़के प्रसिद्ध एवं सम्पन्न अग्रवाल घरानेमें हुआ था। काशीके प्रतिष्ठित रईस राजा मोतीचन्द सी० आई० ई० के आप कनिष्ठ भ्राता थे। बाल्यकालमें ही आपने उन गुणोंका परिचय दिया था जिनका पूर्ण विकास समय पाकर हुआ। धन-सम्पन्न कुलमें जन्म लेकर भी अभिमान, आमद, विलास-प्रियता आदि साधारण दोषोंसे आपका स्वभाव बिलकुल अपरिचित था। सराहनीय अध्यवसायसे आप सम्मान सहित परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते थे। विमल आचरण, विद्या-प्रेम और विनयसे अपने अध्यापकोंको सदा प्रसन्न रखते थे। हरिश्चन्द्र और जयनारायण हाईस्कूल में पढ़कर हिन्दूकालेजमें आप भर्ती हुए और बी एस सी तक पढ़कर म्योर कालेज प्रयाग चले गए। और वहींसे इस परीक्षाको सम्मान सहित पास किया। देश सेवाके लिए विशेष उपयोगी समझकर, इसके बाद, आपने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन कलकत्ता विश्वविद्यालयमें आरम्भ किया और वहाँसे एम ए० परीक्षा पास की। यहाँ आपके अध्यापक श्रीयुत मनोहरलाल थे जिनको उन्होंने अपनी बुद्धि और सूझसे खूब प्रसन्न कर दिया था। इस प्रकार उच्चशिक्षा प्राप्त कर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंसे पूर्ण वर लाभ किया। विद्याके प्रभावने आपके मृदुल और उदार स्वभावमें गम्भीर विचार-शक्ति और देश सेवाका पुट दिया। विद्यामें बढ़कर उनमें विनय थी और

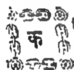


ओम् वन्देमातरम्



प्रथमवर्ष १ खण्ड | चैत्र १९७७ | संख्या ६ पूर्ण संख्या

धरतीकी चकबन्दी



विवर कालिदासने रघुवंशके प्रथम सर्गमें राजा दिलीपको षष्ठांशभुक बतलाया है। अर्थात् राजा दिलीप प्रजाकी रक्षा करनेके बदलेमें उसकी आयका छठा भाग कर रूपमें लेकर अपने काममें लाते थे। राजा प्रजाका यह सम्बन्ध दोनों पक्षोंके सुभीतेके लिए परस्पर अनुमतिपर निर्भर था। प्रजा-रक्षक होनेसे राजा अपने भागका अधिकारी समझा जाता था। अपने अपने हित-साधनके लिए उभय पक्षकी सम्मतिपर यह सम्बन्ध स्थिर था परन्तु इसके साथ ही साथ एक सिद्धान्त दूसरा भी मान्य था, जिसके अनुसार राजा अपनी प्रजाके लिए पिता-तुल्य माना जाता था और उसका पोषक अथवा प्रतिपालक समझा जाता था। इस मतके अनुसार राजा अपना [illegible] भाग लेकरही सन्तोष नहीं करता था वरन् अपने भागकी उत्तरोत्तर वृद्धिके लिए प्रजाकी आय या भूमिकी उपजके बढ़ानेका उद्योग भी पिताके समान करता था। तभी तो मातृ-भूमि रूपी गौके दोनों वत्स—राजा और प्रजा—जीभर कर दुग्धपान करते थे और अपने अपने भागकी वृद्धि कर पाते थे।

राजा दिलीपके समयसे अब तक राजाका यह उचित कर्तव्य समझा जाता है कि वह इस बातपर दृष्टि रक्खे कि कृषक भूमिका सदुपयोग करता रहे। धरतीको स्वयं परती रखने वा उसको भली प्रकार न जोतने बोनेपर कृषकके लिए दण्डका उल्लेख शास्त्रोंमें अनेक स्थलों पर मिलता है। धरती समस्त प्रजाकी सम्पत्ति जानी जाती थी। राजा तो केवल प्रजाका प्रतिनिधि मात्र होता था। कृषक केवल अपने भागके पानेका अधिकारी था और वह भी इसी शर्तपर कि वह भूमिको समस्त प्रजाकी सम्पत्ति समझ कर भली प्रकार उपयोगमें लाता था।

प्राय: इस बातकी शिकायत सुनी जाती है कि भारतवर्षमें धरतीसे पूरा लाभ नहीं उठाया जाता । और उपज बढ़ानेकी आवश्यक सुव्यवस्थाका प्रबन्ध नहीं किया जाता। इस दोषको दूर करनेके लिए अनेक उपाय और साधन बतलाये जाते हैं । प्रत्येक प्रतिवादी अपने उपायको सर्वोपरि और रामबाणकी नाईं अमोघ समझता है । एक उपाय तो यह बताया जाता है कि कृषकके पास जोतने बोनेके लिए कमसे कम एक निश्चित वर्गफलकी भूमि होनी चाहिए, क्योंकि उससे छोटी जोत होनेसे कृषकको लाभ नहीं हो सकता । इसका परिमाण कितना होना चाहिए इस बातमें मतभेद अवश्य है परन्तु इतना तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि अधिकतर लोगोंकी रायमें १५-२० एकड़ की चक-बँधी हुई भूमिकी जोत पर्य्याप्त (Economic) कही जा सकती है । इतनी भूमिपर रुपये लगाने और नई चालके हल इत्यादिसे काम लेकर आधुनिक रीतिसे जोतने, बोने, काटने, बरसानेके यन्त्रों द्वारा खेती करनेमें लाभ हो सकता है । अत. इस बातका निर्णय करना आवश्यक है कि कमसे कम कितनी धरती एक कृषकके पास होनी चाहिए जिससे कि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक बनी रहे और वह अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर सके। यदि इतनेसे कम भूमि उसके पास हो तो समझना चाहिए कि उसके निर्वाहके लिए पर्य्याप्त नहीं है दूसरी ओर यह भी देखना चाहिए कि कितनी भूमिसे अधिक हो तो उससे ठीक ठीक नहीं हो सकता । इस प्रकार निश्चय करनेसे भूमिका एक परिमाण जोत मापनेके लिये बन जायगा और इसी परिमाणको आदर्श भी बनाया जा सकेगा । कई लोग कहते हैं कि विलायत और अमरीकामें जिस प्रकार खेती होती है उसी प्रकार यहाँ भी होनी चाहिये । परन्तु हमारी रायमें यह भूल है । क्योंकि यहाँ इतनी पूँजी भूमिमें लगाई नहीं जाती और कृषक भी अधिक धन व्यय करना नहीं चाहता । इतनी भूमि प्राप्त भी नहीं है कि जितने कृषक हैं उन सबके लिए १५-२० एकड़के चक बना दिये जायें । ऐसी अवस्थामें बहुतसे कृषक बिना धरतीके रह जायेंगे और उनको जोतनेके लिए खेत न मिलेंगे । इसका परिणाम यह होगा कि अनेक लोगोंके पास खेत न होनेसे वे बेकार हो जायेंगे । कृषकके लिए इससे बढ़ कर और क्या विपत्ति हो सकती है कि उसको जोतनेको धरती न मिले । जिन भागोंमें धरती निकल जाती है वे प्रायः चोर डाकू हो जाते हैं । कोई सरकार ऐसी व्यवस्था पसन्द नहीं कर सकती जिसका परिणाम यह हो कि कृषक भूमि रहित हो जावें । इसी तरहके लोग यूरोपमें भी [illegible] फैला रहे हैं और [illegible] प्रचार कर रहे हैं । [illegible] [illegible] लोग [illegible] [illegible] देख रहे हैं । [illegible] [illegible] [illegible] नहीं और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होती और न वह किसी [illegible] है । [illegible]

[illegible] है । [illegible]
[illegible]
[illegible]
नहीं होता । इस कारण चक-बन्दीसे [illegible] नहीं हो सकता । [illegible] है वे उनका दुरुपयोग [illegible] । [illegible] है कि [illegible] नहीं [illegible] । [illegible] नहीं होते इस कारण [illegible] धरती [illegible] दुरुपयोग [illegible] हो गई है । इस प्रकार [illegible] हिसाबसे मेहनत करना चाहिए । जितनी भूमि कोई कृषक [illegible] सकता है [illegible] उसके पास न होनी चाहिए । [illegible] यदि चक-बन्दी की जाती है तो इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि कृषक चकको लेकर दूसरे लोगोंको उसका पट्टा न दे सकें । नहीं तो वही दशा हो जायगी जो पहले थी और उन लोगोंके पास खेत पहुँच जायँगे जो स्वयं न जोत कर दूसरोंके हाथ उसका पट्टा कर देंगे । ऐसा होनेसे चक-बन्दीसे कुछ भी लाभ न होगा और उससे कुछ भी अर्थ सिद्ध न होगा—[illegible] नियम बना देना चाहिए कि कृषक अपनी सम्मिलित धरतीको पट्टे पर न उठा सके । बिना इसके एक ऐसी दस मनुष्योंकी बन जायगी जो धरती पट्टे पर लेकर दूसरोंको देते रहेंगे और उनसे उसकी लगान कराते रहेंगे । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कर सकता कि चक-बन्दीसे होनेसे और मशीनोंके कामों कामोंमें लानेमें बहुत बचत हो सकती है, परन्तु इस बात से मेरी करनेसे सहयोगसे काम लेना चाहिए और ऐसा अवसर किसी कृषकको न देना चाहिए कि उसके पास इतनी भूमि बढ़ जाय कि वह भरसक उसका ठीक प्रबन्ध न कर सके यदि देखा जाय तो इस देशको दशा बेलजियम, डेनमार्क और आयरलैंडसे विशेष मिलती है । यदि उन देशोंमें सहयोगने एक युगान्तर कर दिखाया है तो कोई कारण नहीं है कि वैसी ही अवस्थाओं द्वारा यह देश भी अत्यन्त उन्नत और सम्पन्न न हो जाय ।

यह बात सत्य है कि बहुतसे कृषक अपनी धरतीसे पूरा लाभ इस कारण नहीं उठा सकते कि उनके खेतोंका चक नहीं बँधा है । साधारण उनके खेत बिखरे हुए होते हैं । उनकी जोतका परिमाण तो काफी होता है परन्तु चक बँधा नहीं होता । यदि उनके खेत एकही जगह हों तो उनको थोड़े व्ययसे अधिक लाभ हो सके । यदि किसी प्रकार उनके सब खेत और पट्टियाँ मिला दी जायँ तो उनको बड़ा लाभ हो । इस प्रकार खेतों और पट्टियोंके तितर बितर होनेके तीन मुख्य कारण हैं (१) जब असल पट्टा मर जाता है तो यह रिवाज है कि उसके खेत उत्तराधिकारियोंमें बाँट दिये जाते हैं । (२) मुसलमानोंका दायभाग जिसके अनुसार खेतोंके बहुतसे हिस्से हो जाते हैं । (३) कभी कभी अपने मृत पिताके सभी खेतोंमें प्रत्येक पुत्र अपना हिस्सा लेता है । कुल रकबेका $\frac{१}{२}$ हिस्सा लेनेकी जगह हरेक खेतमेंसे $\frac{१}{२}$ भाग लेना पसंद किया जाता है क्योंकि हिस्सेदारोंको पैतृक सम्पत्तिसे बड़ा मोह होता है ।

इस आर्थिक दुरवस्थाके निवारण करनेके कई उपाय हैं । गाँवमें किस किस जातकी धरती

किसानी कितनी है इसका हिसाब पहिले करना चाहिए। जितनी तरहकी धरती है उन सबका रकबा अलग अलग बन्दोबस्तके कागजोंसे लिख लेना चाहिए। इसके बाद यदि सरसरी रीतिसे उन भूमिकी दो श्रेणियाँ हो सकती हों जैसे आबपाशी वाली, खादर वा माँझर, ऊँची वा नीची तो इनका विभाग करना भी उचित है। तीन बीघेसे या बिना आबपाशीकी छोटी जोत जो छोटे छोटे भागमें विभक्त हों उनको अलग कर लिया जाय। बाकी सब खेतोंके रकबे जिनके लगान अलग अलग निश्चित हों अलग [illegible]

अब यह देखना [illegible]

औसत लगानसे उसमें कितनी असमता है। इस हिसाबसे औसत लगान द्वारा विविध प्रकार भूमिके लगानमें जो परस्पर सम्बन्ध होगा वह ज्ञात हो जायगा। जैसे कि गोइन्ड दोमट धरती ¼ दोमट और ½ नालोंके बराबर है। इसी प्रकार मिलानसे हिसाब लगाया जा सकता है। दो तरहकी धरतियोंके मिलानमें पानी इत्यादिका जो लाभ किसी एकको प्राप्त हो और दूसरेको न हो उसका भी विचार कर लेना चाहिए। अब धरतीको आपसमें बदल कर चक बनाये जा सकते हैं। यदि अदले बदलेमें कुछ लेना देना बाकी रह जाय तो तीन बीघेसे कमके परिमाणके जोतोंके टुकड़े कर उनके विभाजनसे उसको पूरा किया जाय। इस प्रकार चक सुगमतासे बनाये जा सकते हैं और किसीको इसमें हानि न हो सकेगी। परन्तु थोड़ेसे छोटे छोटे खेत जो तीन बीघेसे कम हैं उनको गांवमें रखना चाहिए ताकि जिन लोगोंके पास धरती नहीं है उनको मेहनत कर अपना बढ़ने पर थोड़ी बहुत धरती प्राप्त कर लेनेका अवसर रहे। इस तरहसे गाँवमें छोटे बड़े तरहके चक बन जायँगे और उन्नतिशील कृषकको अपने चकको बढानेका अवसर बराबर बना रहेगा। चक-बन्दी इस प्रकार हो जानेसे फिर चकोंकी रक्षाके लिए कानून बनाया जा सकता है जिससे वे सदा बने रहें। यह भी हो सकता है कि गाँव के लोगोंके ¾ अंशके कहने पर विभक्त और नियुक्त चकोंका जब चाहें फिर से संगठन किया जा सकता है। या बन्दोबस्तके समय १० वर्ष पर यह व्यवस्था की जाया करे।

स्वेडनमें कोई जोत तीन एकड़से कम नहीं हो सकती। बेलजियम और हालैन्डमें इस बातकी कोई रोक टोक नहीं है और फ्रान्समें तो कानूनके अनुसार एकही पीढ़ीमें खेतोंके बहुतसे छोटे टुकड़े हो जाते हैं। बम्बई प्रान्तमें दीवान बहादुर गोडबोलेने इस बातपर जोर दिया है कि यदि कोई रकबा या निश्चित परिमाणकी जोत की रजिस्टरी कर दी गई है तो फिर उसका बाँट न होने पावे। बड़ोदा राज्यकी तरह ऐसा कानून बनाया जा सकता है कि खाद माँझर और बागका बटवारा होकर निश्चित परिमाणसे छोटे टुकड़े हो जाने पर सरकारी कागजोंमें ऐसे निश्चित परिमाणसे छोटे हिस्सोंको दर्ज न किया जाय। ऐसा होनेसे निम्न दो बातोंमेंसे एक बात होगी। मालगुजारी तरह सोच समझ कर व्यवस्था उत्पन्न करना उचित है जिससे खेतोंके चक बने रहें और बटवारेसे जोत छोटी न हो जाय अथवा जब बटवारेकी आवश्यकता होगी तो सारी धरती एक ही हिस्सेदार ही के नाम और दूसरोंको धरतीकी जगह रुपया देकर अपनी भूमिका हिस्सा छोड़ देना होगा। ऐसा होनेसे बाकी हिस्सेदारोंको सहयोग

समितियों वा बन्धक (mortgage) बकोंसे रुपया मिल जायगा। जिन लोगोंको भूमिके स्थानमें रुपया मिलेगा वे या तो कोई व्यवसाय करने लगेंगे या और किसी जगह जाकर बस जायेंगे जहाँ जन-संख्या बहुत अधिक न होगी। यदि इस प्रकार बटवारा न होगा तो पैतृक भूमि सम्पत्ति सम्मिलित रही चली आवेगी और उसकी वही गति होगी जो साझेकी धरती की होती है। अर्थात् सुव्यवस्था और सुप्रबन्ध न होने पावेगा, क्योंकि एककी मेहनतसे सभी बराबर लाभ उठाना चाहेंगे। तीन भाई, तेरह लड़के और उन्तालीस पोते जायदादका ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि थोड़ेसे थोड़े व्ययके साथ अधिकसे अधिक आय हो सके। एक बार जब किसी परिमाण मापकी भूमि कागजोंमें दर्ज हो जाय तो फिर उसका विभाजन पांच बीघोंसे कम भागोंका न होना चाहिए और इसीके अनुसार कानूनकी भी व्यवस्था हो जानी चाहिए। इस प्रकार कुछ लाभ होना सम्भव है। कृषकको इस बातका भी ध्यान रखना होगा कि सन्ततिकी अतिवृद्धिसे धरतीके बहुतसे हिस्सेदार हो जायेंगे और चूंकि धरतीका बटवारा हो नहीं सकेगा इसलिए सबको मिलकर प्रबन्ध करना पड़ेगा और सम्मिलित प्रबन्धसे हानि होगी। इसका परिणाम यह होगा कि कृषक बहुत सन्ततिको उत्पन्न करनाही पसन्द न करेगा और इस बातको सदा ध्यानमें रखेगा।

आर्थिक दृष्टिसे व्यवसायोंकी एक बार फिर तुलना करनी चाहिए। प्राचीनकालसे कहावत चली आती है कि उत्तम खेती मध्यम व्यापार और कनिष्ठ सेवा। इसमें अत्युक्ति अवश्य है। यह कहावत तभी तक सत्य थी जब तक जनसंख्या देश में थोड़ी थी और मनुष्य अच्छी तरहसे पस नहीं पाते थे। धरतीकी कमी नहीं थी वरन् उसके जोतने वालोंकी कमी थी। अब समय बदल गया है। जनसंख्या बढ़ गई है और आज खाली पड़ी हुई धरती बहुत ही कम दिखाई देती है। अवध और गुजरातमें तो धरतीका कोई टुकड़ा भी कृषिसे खाली नहीं है तिस पर भी लोग बहुत ऊंचे दाम देकर जिमींदारी खरीदने को तैयार रहते हैं। वे लोग नहीं देखते कि कितना रुपया देकर धरती खरीदते हैं और उससे लाभ कितना होगा। कभी कभी तो उनको २ रुपये सैकड़ेसे भी कम ब्याज मिलती है। २०० और २५० रुपये बीघेके हिसाब से जिमींदारी लेना धरतीका मूल्य अत्यन्त अधिक बढ़ा देना है। यह कृत्रिम मूल्य है। यदि वास्तविक लाभ पर दृष्टि रक्खी जावे तो इतना मूल्य कोई दे नहीं सकता और वह भी फिर भारतवर्ष जैसे निर्धन देशमें। कारण इसके कई होते हैं। प्रायः लोगोंकी यह कामना रहती है कि अपनी पैतृक भूमिकी किसी न किसी प्रकार वृद्धि करें और जिमींदारी खरीद कर उसमें मिलावें फिर इस देशमें ऐसा रिवाज है, जो प्राचीनकालसे चला आता है और लोगोंको जिसमें धर्मकी तरह विश्वास है, कि बिना धरतीके आदमीकी कुछ हैसियत ही नहीं होती। इसी कारण जिमींदारोंका समाजमें बड़ा सम्मान होता है और धरतीका मूल्य बहुत बढ़ा रहता है। अब आवश्यकता इस बातकी है कि उमरेदपुर जैसे स्थान बनाये जायें। अर्थात् बड़े बड़े कारखानोंके शहरोंके पास और बागोंकी तरह खेतोंका प्रबन्ध किया जाय। इससे बड़ा लाभ हो सकता है। जिन कृषकोंको एक बार ... बड़ कारोंसे या अन्य कारणोंसे भूमि नहीं मिलती या कम

नहीं मिलता वे ऐसे स्थानोंमें आकर औद्योगिक केन्द्रोंमें बस सकते हैं। चार पाँच परिवार शहरके आस पास अच्छे मकानों में अपनी जोत में रहें और जब मनुष्य कारखानोंमें काम करने जायें तो स्त्रियाँ वृद्ध, बालक और जो कारखानोंमें काम करनेके अयोग्य हों वे घर पर रह कर खेतका काम करें। इधर तो इससे यह लाभ हुआ कि सबको अपने लायक काम एक ही स्थानमें मिल गया; स्त्रियाँ और वृद्धोंको खेतोंपर और दूसरोंको कारखानोंमें। उधर औद्योगिक कठिनाई भी हल हो गई। भारतवर्षमें श्रमजीवियोंकी यह दशा है कि फसलके समय कारखानोंको छोड़कर वे खेतों पर काम करने चले जाते हैं। इससे औद्योगिक उन्नतिको हानि होती है। जमशेदपुरकी सी व्यवस्था करने पर यह आपत्ति जाती रहेगी। श्रमजीवियोंको कारखाने और शहर छोड़कर गावोंको न भागना पड़ेगा। श्रमजीवियोंका पक्का व्यवसाय कारखानोंमें काम करना रह जायगा। अब तो यह दशा है कि परिवारके परिवार खेतीके भरोसे जीते हैं क्योंकि यही उनका एकमात्र व्यवसाय है। जब अकाल पड़ता है तो सभीको एक दम बेकार होकर बैठ जाना पड़ता है और यातना भोगनी पड़ती है। परन्तु जैसा कि प्रस्ताव ऊपर किया गया है वैसी व्यवस्था होनेसे परिवारके सभी जन एक ही समयमें एक ही विपत्तिसे बेकार न हो सकेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि श्रमजीवियोंकी एक ऐसी श्रेणी बन जाय जिसको कृषिसे कोई संबंध ही न रहे और वह अपने कामसे सन्तुष्ट रहती हुई प्रसन्न रहे। श्रमजीवीको उसके स्थानके पास ही धरती मिलनी चाहिए क्योंकि अपने कुटुम्बीजनोंके साथ वहीं पर रहनेसे उसको अपनी धरतीसे ममता हो जायगी। और जैसे पुत्र अपनी माताकी ओर भाव रखता है वैसा ही वह भी ममपूर्ण पृथ्वीकी ओर रखने लगेगा। यह दशा न होगी कि इस वर्ष इन खेतोंको जोता फिर बेदखल होकर दूसरे वर्ष दूसरे खेत जोतने पड़े। एकही भूमिसे उसका घनिष्ठ संबंध हो जायगा। वह उसकी उपजकी बड़े उत्साहसे प्रतीक्षा करेगा और अपने स्वत्वों या अधिकारोंकी अपेक्षा उत्तरदायित्वको विशेष महत्वका समझेगा। धरतीसे ऐसा घनिष्ठ संबंध उपजकी वृद्धिके लिए बड़ा आवश्यक है। अपनी ही वस्तु समझ कर जैसा उपयोग धरतीका किया जायगा वैसा साधारण पट्टेदारी या ठेकेदारीमें नहीं हो सकता। और यदि कारखानोंमें काम करने वालोंके साधारण रूखे सूखे भोजनके साथ उन्हींके कुटुम्बीजनों द्वारा उत्पन्न किये हुए शाक भाजी और फल भी होंगे तो उनको कितना आनन्द प्राप्त होगा। जनसाधारणको मितव्ययिताकी शिक्षा मिलनी चाहिए और व्यापारी लोगोंका दर्जा, जोकि समाजमें कृषकोंसे नीचा समझा जाता है, ऊँचा करना चाहिए। व्यापारको मध्यम और खेतीको उत्तम समझनेके दिन अब नहीं रहे। गाँवमें सहकारिताका प्रबंध करनेमें लोगोंको अनेक तरहके काम सीखने पड़ेंगे। मुनीमका काम करने वाले, हिसाब किताब जानने वाले, माल असबाब बेचने वाले और कामकी जाँच करने वाले, इत्यादि सभीकी आवश्यकता होगी। यह सब काम बिना सीखे तो आ ही नहीं सकते। तो गाँवके व्यापार करने वाले लोग यह सब काम सीख कर अपने हाथमें ले सकते हैं परन्तु इस समय उनके पास पूंजीकी कमी है। व्यवसायके सम्बन्धमें जो प्रथा आजकल धनीको ऊँचे दामों पर खरीदनेमें व्यर्थ व्यय किया जाता है उसका लाभदायक सदुपयोग करनेका अवसर भी प्राप्त

हो जायगा। अभीतक तो लोग जिमींदारी खरीदते हैं और पूँजी पर थोड़ा लाभ पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं परन्तु जब नये धंधे गाँवमें निकल आवेंगे तो पूँजीसे विशेष लाभ होगा और धंधोंके लिए भी इस प्रकार पूँजी मिल जायगी। धरती खरीदने पर जितना रुपया व्यय होता है उससे जब परिमित लाभ नहीं होता तो लोगोंको इधर ध्यान देना परमावश्यक है।

सारांश यह है कि:—

[१] पहिले इस बातको निश्चय कर लेना चाहिए कि व्यवसायिक दृष्टिसे न्यूनतम जोत किस परिमाणकी होनी चाहिए और फिर उसीको उद्देश्य बना लेना चाहिए।

[२] इस जोतसे कुछ कम भूमिका ऐसा परिमाण निश्चित होना चाहिए, जिसका विभाजन सरकार द्वारा न किया जाया करे।

[३] चक बनानेके लिए समय समयपर खेतोंका अदला बदला कर देना चाहिए। हर तीस वर्ष पर बन्दोबस्तके समय चक बनाए जा सकते हैं और यह भी प्रबन्ध किया जा सकता है कि गाँवके ¾ कृषकोंके चाहनेपर बन्दोबस्तसे पहले ही चक बन्दी कर दी जाया करे।

[४] सबसे अच्छी बात तो यह हो कि ऐसे कृषक स्वकर्माभिमानी हो जायँ और धरतीको पट्टे पर लेकर स्वय ही उसको जोतें। वे शिकमी वा अन्य पट्टेदारोंको न अपनी जिनकी भूमि उठावें। इसके लिए दूसरोंको खेत उठाना कानूनके अनुसार अनुचित समझा जायाकरे और जब तक कोई कारण विशेष न हो दूसरों को पट्टेपर भूमि उठानेकी आज्ञा ही न मिले। अनेक लोग अपनी धरती जोतने बोनेको दूसरोंको देते हैं और आप शहरोंमें रहकर अन्य व्यवसाय करते हैं उनके लिए ऐसा करना असम्भव कर दिया जाय। यातो वे धरती स्वय जोतें नहीं तो अपने अधिकारसे वे वंचित कर दिये जाया करें। ऐसी ही श्रेणीके लोगोंमेंसे 'बहादुर लोग' उत्पन्न होते हैं जिनसे देशका कोई आर्थिक लाभ नहीं होता और राजनीतिक क्षेत्रमें भी भयानक अवस्थाके वे कारण होते हैं।

[५] दायभागसे जो खेतोंका विभाजन हो जाता है इससे हानि होती है। उसके लिए यही उपाय है कि अधक बक खोली जावें और किसी किया द्वारा नहीं बल्कि नैतिक शिक्षा द्वारा बहु सन्तानोत्पत्तिकी हानियोंको समझा कर इसका प्रतिकार किया जाय।

[६] जहाँतक सम्भव हो धरतीके बटवारेके समय पूरे पूरे खेत हिस्सेमें दिये जाया करें। ऐसा न करना चाहिए कि प्रत्येक खेतमें प्रत्येक हिस्सेदारको धरती दी जाय। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि हिस्सेके अनुसार धरती मिले।

[७] अधाधुन्ध दाम बढ़ाकर धरती आजकल खरीदी जाती है वह बन्द होना चाहिए। इस प्रकार पूँजीके दुरुपयोगको रोकना आवश्यक है। जिमींदारोंकी हैसियतसे व्यापारियों और धर्मजीवियोंका पद नीचा न समझा जाय। इसके लिए आवश्यक है कि व्यापारी लोग स्वार्थान्ध न रहकर परस्पर सुदृढ़सद्भावसे बर्ताव करें और सहकारिताको उन्नत करें। धर्मजीवियोंका रहन सहन भी सुधरना चाहिए जिससे लोगोंमें उनके प्रति अच्छे भावोंका उदय हो।

[८] इस बातकी जाँच कर लेना भी उचित है कि कमसे कम कितनी धरतीसे कृषकको

लाभ हो सकता है अर्थात् न्यूनतम पर्याप्त जोत (Economic holding) कितनी हो सकती है क़ानून द्वारा यह परिमाण सब तरह की धरतीके लिए जैसे बाग, ऊसर, बाँगर धरती—निश्चय हो जाना चाहिए ।

[९] पाँच बीघे धरती और एक गौ तो एक कृषकके पास होना ही चाहिए । एक बार इतनेको आदर्श मान कर इनके पूरे लाभकी फिर जाँच होनी चाहिए ।

[१०] आज कल गाँवके लोग एक ही जगह आबादीमें बसते हैं । शत्रुओंके आक्रमणोंसे बचनेके लिए यह आवश्यक था कि गाँवके लोग एक ही जगह बसें और साथ साथ रहें जिससे समय पड़ने पर अपनी रक्षा भली प्रकार कर सकें और परस्पर सहायक हो सकें । परन्तु अंगरेजी राज्यके शान्तिमय शासनने आबादीमें बसने के मुख्य कारण को अनावश्यक बना दिया है । जब तक कृषक आबादी छोड़ कर अपने अपने खेतों पर न रहेंगे तबतक कुछ बनानेसे भी पूरा लाभ नहीं होगा । ऐसा उपाय होना चाहिए कि कृषक अपने घरोंको खेतों पर बनावें और वहीं रहते हुए खेतीकी रक्षा करें और कामकी देख भाल करें । तभी तो खेतोंसे वह घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकेगा जिससे उपजकी उन्नति सहजमें हो सकेगी । तब निश्चय ही हमको यत्र तत्र किसानोंके घर खेतों पर बिखरे हुए दिखाई देंगे जिनको माता अन्नपूर्णा प्रसन्न होकर विपुल धनधान्य से भर देंगी और किसान भी परम सन्तुष्ट, सुखी और कार्यक्षम होकर अपने देशके गौरवको बढ़ावेंगे ।

श्रमजीवियों और व्यापारियोंका उचित आदर होनेसे बहुतसे लोग इन व्यवसायोंको करने लगेंगे । इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि आज कृषि कर्ममें जो बहुसंख्यक मनुष्य लग रहे हैं और उनका निर्वाह अच्छी प्रकार नहीं होता उनको दूसरे व्यवसाय मिल जावेंगे, और फिर केवल कृषिके सहारे वे लोग न रहेंगे । तब बटवारेके समय भूमि ही उदर पूर्तिका एक मात्र आशय नहीं समझी जायगी और उसके बहुतसे छोटे छोटे टुकड़े भी न हुआ करेंगे । यह भी अवश्य होना चाहिए कि पट्टेदार और ठेकेदारोंको राय देने का जो अधिकार प्राप्त हो वही श्रमजीवियोंको भी मिलना चाहिए ।

विनायक नन्दशङ्कर मेहता



राष्ट्रके उद्देश्य

पा[illegible] राजनीतिज्ञोंका ध्यान [illegible] अरस्तू [illegible] आकृष्ट हुआ। किसी भी विषयकी चर्चा आरम्भ या किसी भी कामको [illegible] पहिले तो यह मालूम रहता कि उस विषयपर इस [illegible] कुछ न कुछ विलक्षण और मनोरंजक बातें न कही हों। यदि [illegible] भी बात हमें किसी भी विषयकी चर्चा प्रारम्भ करते हुए इस [illegible] आवश्यक प्रतीत होती है। राष्ट्रके उद्देश्यके सम्बन्धमें [illegible] विद्वानोंके [illegible] हैं। अरस्तू राजनीतिके प्रथम प्रवर्तक इस दार्शनिकने राष्ट्रके मौलिक मूलतत्त्वोंकी व्याख्या की है। इनके मतानुसार राष्ट्र केवल मानव-समुदाय नहीं किन्तु सर्वोत्तम प्रकारका मानव-समुदाय है। मनुष्य एक राजनैतिक पशु है। उसके हृदयमें सम्भूय समुत्थानकी वृत्ति नैसर्गिक है। उसका कुटुम्ब-प्रेम कितना स्वाभाविक है। अपने ग्राम पर उसका ममत्व है। जैसे दिनभर जंगलमें विचार करनेका अवकाश होने पर भी पक्षीका अपना घोंसला ओर [illegible] लगता है वैसे ही विश्वमें स्वच्छन्द विहारके लिए निर्गत उद्योगशील होते हुए मनुष्यको घर और ग्राम परही अटल स्नेह होता है। इन पर वह प्राण न्योछावर करनेके लिए भी उद्यत रहता है। जगत्‌के इतिहासमें इन दोनोंकी रक्षाके निमित्त भीषण युद्ध हुए हैं। स्वतन्त्रता-देवीकी उपासनाके लिए येही मन्दिर बन गये। अरस्तूकी जन्म-भूमि एथेन्स नगरमें इस देवीकी प्रतिमाएं प्रत्येक नागरिकके हृदयमें घर और ग्रामके प्रति उत्कट भक्तिका उन्मेष उत्पन्न करती थी। परन्तु घर और ग्राम मनुष्यके सुख-जीवन की पहली ही सीढ़ी है। यद्यपि उसका ममत्व इनपर बड़ा उत्कट है तथापि इन संस्थाओंमें उसे इतना अवकाश नहीं मिल सकता जिसमें उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे और उसकी सभी आशा और आवश्यकताएं परिपूर्ण हो सकें। उसे विशाल कार्य्य-क्षेत्र चाहिए। इन संकुचित संस्थाओंमें न तो उसका आत्म-विकास और न उसकी महत्त्वाकांक्षाएं पूरी हो सकती हैं।

जिसमें पूर्ण आत्म-विकास हो सकता है वह विशाल क्षेत्र राष्ट्र है। यह मानव-समाजके सम्भूय-समुत्थानकी चरम और परमोत्तम सीमा है।

राष्ट्रका जन्म जीवनकी आवश्यकताओंकी परिपूर्तिके लिए होता है परन्तु जीवनको सर्वाङ्गसुन्दर बनाना उसके अस्तित्वका प्रयोजन है।* क्योंकि एक व्यक्ति अपने जीवनकी उद्देश्य-पूर्ति केवल राष्ट्रमें ही कर सकता है अतएव अरस्तूका कथन है कि मनुष्य स्वभाव ही से राजनैतिक पशु है। जो मनुष्य दूसरोंके साथ नहीं रह सकता उसकी गणना या तो पशु-योनि या देव-योनिमें होनी चाहिए। इस सहृय-जीवनमें ही मनुष्यका सच्चा कल्याण है।

---

*"Originating in the bare needs of living, it exists for the sake of complete life And because the individual can fulfill the end of his existence can live a complete life—only in this stage, Aristotle declares that man is by nature a political animal The being who cannot live in association with his fellows is either on the one hand, a beast, or on the other, a god," (Dunning, Political Theories, vol, I)

जान हो सकता है मर्दुमशुमार रजिस्टर और (Economic h
सकती है कानून । द्वारा यह परिमाण एक तरह की धनोंके चिट्ठे
भरती—निरन्तर हो जाना चाहिए ।

(९) पांच बीघे धरती और एक गो तो एक कृषकके पास होना
इनको आदर्श मान कर इनके पूरे सामग्री फिर जाँच होनी

(१०) आज कल गाँवके लोग एक ही जगह आबादीमें बसते
आक्रमणोंसे बचनेके लिए यह आवश्यक था कि गाँवके लोग एक ही जगह
साथ रहें जिससे समय पड़ने पर अपनी रक्षा भली प्रकार कर सकें और परस्पर
सकें । परन्तु अंगरेजी राज्यके शान्तिमय शासनने आबादीमें बसने के मुख्य कारण
बना दिया है । जब तक कृषक आबादी छोड़ कर अपने अपने खेतों पर न रहेंगे
बनानेमें भी पूरा लाभ नहीं होगा । ऐसा उपाय होना चाहिए कि कृषक अपने
पर बनावें और वहीं रहते हुए खेतीकी रक्षा करें और कामकी देख भाल
खेतोंसे यह घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकेगा जिससे उपजकी उन्नति सहजमें हो सकें
ही हमको यत्र तत्र किसानोंके घर खेतों पर बिखरे हुए दिखाई देंगे जिनको
होकर विपुल धनधान्य से भर देंगी और किसान भी परम सन्तुष्ट, सुखी औ
अपने देशके गौरवको बढ़ावेंगे ।

श्रमजीवियों और व्यापारियोंका उचित आदर होनेसे बहुतसे लोग
जावेंगे । इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि आज कृषि कर्ममें जो बहुत
और उनका निर्वाह अच्छी प्रकार नहीं होता उनको दूसरे व्यवसाय
कारण कृषिके सहारे वे लोग न रहेंगे । नव बन्दोबस्तके समय भूमि ही
आधार नहीं समझी जावेगी और उसके बहुतसे छोटे छोटे टुकड़े भी
अवश्य होना चाहिए कि जमींदार और ठेकेदारोंको राय देने का
श्रमजीवियोंको भी मिलना चाहिए ।

विना

उक्त रीतिका संघ-जीवन वेदका परमपुनीत उपदेश है। यही राष्ट्रका अखण्ड आधार है, एकता ही इस संस्थाकी जीती जागती शक्ति है। क्योंकि मनुष्योंके संकल्प, विचार, चेष्टा, भाषा व्यवहार इत्यादि सभी समान होने चाहिए, अन्यथा राष्ट्रीय जीवन संभव नहीं। इस जीवनके महत्वको कौटिल्यने भी स्वीकार किया है। इनका कथन है कि राष्ट्रमें ही व्यक्ति-समूहका "योग क्षेम" संभव है। विज्ञान, वेदधर्म, कृषि, पशुपालन और व्यापार आदिकी रक्षा और उत्तरोत्तर वृद्धि राष्ट्रीय समाजमें ही हो सकती है। राष्ट्र दण्ड-शक्तिका आधार है। दण्डशक्तिके बिना राष्ट्रका होना इतना असम्भव है जितना सूर्यका तेजशून्य होना। अतएव दण्ड-नीति द्वारा शासन विधि द्वारा अलब्ध वस्तुओंका लाभ, लब्ध वस्तुओंकी रक्षा, रक्षित वस्तुओंकी वृद्धि, और विवर्धित वस्तुओंका सत्पात्र और सत्कर्मोंके लिए उपयोग करना ही राष्ट्रीय जीवनका प्रयोजन है। यही 'योगक्षेम'की व्याख्या है। दण्ड योग-क्षेमका साधन है—

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः; अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥

(कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्)

प्रजाकी लोकयात्रा ऐसे संगठित संघ-जीवनमें निष्कण्टकरूपसे हो सकती है। दण्ड-नीतिपर ही लोक-यात्रा निर्भर है—"**तस्यामायत्ता लोकयात्रा।**" कौटिल्यने प्रसंगवशात् इसी प्रकरणमें राष्ट्रकी दण्ड-नीतिका व्यक्तिपर आधिपत्य कितना होना चाहिए इस बात पर कुछ गंभीर विचार प्रकट किये हैं। यदि संघ-जीवनमें ही व्यक्तिका परम हित हो तो संघकी मर्यादाका व्यक्तिको कदापि उल्लंघन न करना चाहिए। व्यक्तिगत हितकी अपेक्षासे राष्ट्रका शासन सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। राष्ट्र दण्ड या शासन द्वारा ही अपना अस्तित्व स्थिर कर सकता है। इस शासन-शक्तिकी अनियन्त्रित सत्ता होती है। राजकीय शासन सर्वशक्ति सम्पन्न होता है। न्यायकी दृष्टिसे, जो न्यायाधीश है उसे हम अन्यायकारी नहीं कह सकते। 'जिसे नियम बनानेकी शक्ति है वह नियम तोड़ भी सकता है क्योंकि उसके सर्वनियन्ता होनेसे उसका कोई दूसरा नियन्ता नहीं हो सकता। अतएव राष्ट्र ही नियन्तृत्व-शक्तिकी मूर्ति है। इस मतका प्रतिपादन इंगलिस्तानके राजनीतिज्ञ टॉमस हॉब्जने पाण्डित्य पूर्वक किया था। राष्ट्रको सब कुछ सामर्थ्य है। वह '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं**' समर्थ है। हम किसी नियम-शृंखलामें नहीं बाँध सकते। हॉब्जके मतानुसार यदि राष्ट्र इतना शक्तिमय, स्वतन्त्र और अनियन्त्रित शक्तिशाली है तो मनुष्यके स्वत्व और अधिकारोंकी चर्चा राष्ट्र-सत्ताके मानते हुए युक्तिसंगत नहीं। व्यक्तिको राष्ट्रके शासन और अनुशासनको चुपचाप स्वीकार करना ही उचित है। व्यक्तिका अपने धन और जीवन पर भी स्वत्व नहीं। राष्ट्र चाहे तो उसका भी अपहरण कर सकता है। राष्ट्रकी इस महाशक्तिको हिन्दू राजनीतिज्ञ '**दण्ड**' शब्दसे अभिव्यक्त करते हैं। यह निरंकुश शक्ति है अतः आवश्यक प्रत्येक राष्ट्रको निर्विघ्न लोकयात्राके लिए होना चाहिए। '**तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्**'॥ इस मतविशेष कौटिल्यका भी यही सिद्धान्त है। परन्तु इस सिद्धान्तका विवेक अनुसरण करनेपर उन्हें घोर आपत्ति है। इस

अरस्तूका कथन है कि राष्ट्र-जीवन भी अनेक प्रकारका है। जीविकाके साधनके लिए मनुष्य मिलकर एक संस्थाका संगठन कर सकते हैं, अथवा राजनीति या व्यापार संबन्धी हितकी अपेक्षासे वे अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि कर सकते हैं परन्तु इन संस्थाओंसे एक राष्ट्रका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। ये सब संस्थाएँ और इनके उद्देश्य निःसन्देह राष्ट्रके अंग हैं। लेकिन ऐसी संस्थाओंका आधार मित्रता है और केवल हिल मिलकर रहना इनका प्रयोजन है। परन्तु राष्ट्रका परम लक्ष्य आनन्द और उत्तमतासे जीवन निर्वाह करना है। राष्ट्र वह संस्था है जिसका प्रयोजन यथा कथञ्चित् जीवन व्यतीत करना मात्र ही नहीं किन्तु उत्तम कर्मोंसे परिमण्डित करना है। राष्ट्र हमारी पुण्य-भूमि है। हमारे परम आदर्श इसीमें विकसित हो सकते हैं। पर्वतकी गहन गुफा या किसी निर्जन स्थलीमें क्या कभी उनका अङ्कुरोद्भव भी हो सकता है? †

राष्ट्र-जीवन मनुष्यका परम लक्ष्य है यह अरस्तूका सिद्धान्त प्राचीन भारतमें भी मान्य था। ऋग्वेदकी अन्तिम ऋचाओंमें राष्ट्र-जीवनका सुन्दर उपदेश दिया गया है। जो प्रत्येक भारतवासीको हृदयपटल पर लिख लेना चाहिए।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ मं० १०, १९१॥

"मिलकर चलो, मिलकर भाषण करो, तुम्हारे मन सहमत हों, जैसे प्राचीन देवगण मिलकर अपने अपने बलि-भागको ग्रहण करते हैं। हमारी जन्म-भूमि वही है, हमारी समिति भी एकही है, मन भी समान हैं अतएव उनके चित्त भी समान वृत्तिके सूत्रसे बँधे हों। हे अग्नि देव! आपके समक्ष मैं अपना लोकसाधारण संकल्प प्रकट करता हूँ और सर्वसामान्य हविसे आपकी उपासना करता हूँ।

"तुम्हारे मनके संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय विरोधशून्य हों। हमारे सबके विचार एकताके सूत्रसे संकलित हों कि हम हिलमिल कर आनन्दपूर्वक जीवन निर्वाह करें।"

† The state is not an association for the acquisition of wealth, or for the mere maintenance of life, or, like an international alliance, for the promotion of definite political and commercial interests of the contracting parties. The end of the state is not that certain persons shall have a common dwelling place, and shall refrain from mutual injury and shall be in habitual intercourse with one another. The State embraces within itself associations for all these and other purposes, but such associations are based on friendship and look merely to living together. On the other hand, the state has for its end living well—living happily and nobly. It is an association not for mere life, but for noble actions. Politics III, IV.

उक्त ऐतिहासिक-जीवन वैदिक समष्टिगत [illegible] है। [illegible] है, रक्षा ही इस संस्थाकी अपनी आन्तरिक शक्ति है। क्योंकि मनुष्यके सुकार्य विचार, चेष्टा, आचार व्यवहार इत्यादि सभी मनन होने चाहिए, अन्यथा राष्ट्रीय जीवन सम्भव नहीं। [illegible] महत्त्वको कौटिल्यने भी स्वीकार किया है। उनका कथन है कि राष्ट्रमें ही [illegible] 'योग क्षेम' सम्भव है। विज्ञान, वेदधर्म, कृषि, पशुपालन और व्यापार आदिकी रक्षा और उत्तरोत्तर वृद्धि राष्ट्रीय समाजमें ही हो सकती है। राष्ट्र दण्ड-शक्तिका आधार है। दण्डशक्तिके बिना राष्ट्रका होना इतना असम्भव है जितना सूर्यका तेजशून्य होना। अतएव दण्ड-नीति द्वारा शासन विधि द्वारा अलब्ध वस्तुओंका लाभ, लब्ध वस्तुओंकी रक्षा, रक्षित वस्तुओंकी वृद्धि, और विवर्धित वस्तुओंका सत्पात्र और सत्कर्मोंके लिए उपयोग करना ही राष्ट्रीय जीवनका प्रयोजन है। यही 'योगक्षेम'की व्याख्या है। दण्ड योग-क्षेमका साधन है—

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः; अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्यतीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥

(कौटिलीयं अर्थ शास्त्रम्)

प्रजाकी लोकयात्रा ऐसे सगठित संघ-जीवनमें निष्कण्टकरूपसे हो सकती है। दण्ड-नीतिपर ही लोक-यात्रा निर्भर है—"**तस्यामायत्ता लोकयात्रा।**" कौटिल्यने प्रसंगवशात् इसी प्रकरणमें राष्ट्रकी दण्ड-नीतिका व्यक्तिपर आधिपत्य कितना होना चाहिए इस बात पर कुछ गंभीर विचार प्रकट किये हैं। यदि संघ-जीवनमें ही व्यक्तिका परम हित हो तो संघकी मर्यादाका व्यक्तिको कदापि उल्लघन न करना चाहिए। व्यक्तिगत हितकी अपेक्षासे राष्ट्रका शासन सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। राष्ट्र दण्ड या शासन द्वारा ही अपना अस्तित्व स्थिर कर सकता है। इस शासन-शक्तिकी अनियन्त्रित सत्ता होती है। राजकीय शासन सर्वशक्ति सम्पन्न होता है। न्यायकी दृष्टिसे, जो न्यायाधीश है उसे [illegible] अन्यायकारी नहीं कह सकते। 'जिसे नियम बनानेकी शक्ति है वह नियम तोड़ भी सकता है क्योंकि उसके सर्वनियन्ता होनेसे उसका कोई दूसरा नियन्ता नहीं हो सकता। अतएव राष्ट्र ही नियन्तृत्व-शक्तिकी मूर्ति है। इस मतका प्रतिपादन इंगलिस्तानके राजनीतिज्ञ टॉमस हौब्जने पाण्डित्य पूर्वक किया था। राष्ट्रको सब कुछ सामर्थ्य है। यह '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं**' समर्थ है। इसे किसी नियम-शृङ्खलासे नहीं बाँध सकते। हौब्जके मतानुसार यदि राष्ट्र इतना भीमकाय, भयानक और अनियन्त्रित शक्तिशाली है तो मनुष्यके स्वत्व और अधिकारोंकी चर्चा राष्ट्र-सत्ताके सामने [illegible] युक्तिसगत नहीं। व्यक्तिको राष्ट्रके शासन और अनुशासनको चुपचाप स्वीकार करना ही उचित है। व्यक्तिका अपने धन और जीवन पर भी स्वत्व नहीं। राष्ट्र चाहे तो उनका भी अपहार कर सकता है। राष्ट्रकी इस महाशक्तिको हिन्दू राजनीतिज्ञ '**दण्ड**' शब्दसे अभिव्यक्त करते हैं। यह नियामक शक्ति है इसका आश्रय प्रत्येक राष्ट्रको निर्विघ्न लोकयात्राके लिए लेना चाहिए। '**तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्य मुद्यतदण्डस्यात्**'॥ इस अवधितक कौटिल्यका भी यही सिद्धान्त है। परन्तु इस सिद्धान्तको कियामें अनुसरण करनेपर उन्हें घोर आक्षेप है। [illegible]

प्रसंगमें ये अपने श्रद्धेय आचार्यके मतका खण्डन करते हैं। उनके आचार्यका कथन है कि दण्ड या दमन-नीतिके सदृश मनुष्योंको वशमें करनेका और कोई साधन नहीं—

न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः ॥
नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः मृदुदण्डः परिभूयते।
यथार्हदण्डः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।
अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे।
तेन गुप्तः प्रभवतीति ॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥
तस्मात् स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं सन्दधानो हि प्रेत्येह च नन्दति ॥

(कौटिल्य प्रथमाध्याय)

कौटिल्य अपने गुरुके मतका प्रत्याख्यान करते हुए कहते हैं कि कठोर दण्डवाला राजा प्रजाके उद्वेग और असंतोषका कारण होता है और जिसका शासन मृदु है उसका तिरस्कार होता है। जिसका शासन मर्यादाबद्ध होता है वही आदरणीय है। जनसाधारणके भलीभाँति जाना हुआ विधि पूर्वक शासन ही प्रजाके धर्मार्थकामादि पुरुषार्थोंमें परम सहायक होता है, कार्यमें न परिणत किया हुआ शासन ही अराजकता उत्पन्न करता है। जैसे बड़ी मछली छोटी मछलीका भक्षण करलेती है वैसे ही दण्डधारीके अभावसे निर्बल बलवानका ग्रास बन जाता है। दण्ड-शक्ति-समन्वित राष्ट्रकी ही प्रभुता जगतमें प्रबल रहा करती है। राजासे दण्ड द्वारा पाला हुआ, अपने धर्म और कर्ममें अभिरत, चार वर्णाश्रम वाला लोक अपने अपने मार्ग और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करता। अतएव राजा अपने और प्रजाके धर्मको दूषित न करे। क्योंकि अपने धर्मका अनुसरण करने वाला इस लोक और परलोकमें परम सुख पाता है।

यह कौटिल्यकी राष्ट्र-नीतिकी उज्ज्वल व्याख्या सचमुच ही हृदयहारिणी है। यह उस गम्भीर तत्त्व-वेत्ताकी राष्ट्र-धर्मके विषयमें ओजस्विनी उक्ति है। राष्ट्रकी दण्ड-शक्ति कदापि निरङ्कुश न होनी चाहिए। राजाके स्वच्छन्दचारी होनेसे राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। शासनकी कठोरतामें प्रजाकी स्वतन्त्रतापर कुठाराघात होता है। राष्ट्रको समाज और धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन न करना चाहिए, किन्तु मनुष्यके धार्मिक जीवनके विकासमें सहचारी होना ही परम राष्ट्र धर्म है। प्रजामें रक्षा और शान्ति स्थापित करना ही राष्ट्रका एकमात्र प्रयोजन न होना चाहिए किन्तु जिन साधनोंसे प्रजाकी "अभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धि" हो उनकी योजना करना ही राष्ट्रका महत्कार्य है। कौटिल्यकी यह नीति ज्ञान-विज्ञानके नीतिविद् ग्रीन लौक और बर्कके मतसे नितान्त सादृश्य रखती है।

राष्ट्र उस प्रकारका यन्त्र नहीं कहा जा सकता जिसके द्वारा व्यक्ति और समाज स्वभावके स्थूल पशु-जीवनके ही हित साधन किये जाते हैं। सार विज्ञान, कला कौशल, प्रत्येक धर्म और

राष्ट्रके उद्देश्य

रमोन्नतिके निमित्त राष्ट्र एक महान सम्भूयसमुत्थान है। इसी कारणसे ऐसे अनेक पीढ़ियोंमें
क भी सिद्ध नहीं हो सकते। अतएव राष्ट्र केवल सम्भूय-समुत्थानके अर्जित, मृत और
आगामि प्रजा-वर्गका अन्यतर सम्बन्ध होता है*। (एडमन्ड बर्क)

ऐसा सम्भूय-समुत्थान-मूलक जीवन ही कौटिल्यके मतसे धर्म-व्यवहारकी सुदृढ़ व्यवस्था है। "धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्" धर्म पर सकल समष्टि स्थित है यही भारतका महान सिद्धान्त है।

"धर्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः तस्माद्धर्मात् परं नास्ति अथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति।"

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

तात्पर्य यह कि धर्म राजाका भी राजा है अतएव इससे बढ़कर कोई शक्ति नहीं। धर्मके बल भरोसे निर्बल मनुष्य भी मानों राजाकी सदृश बलवानपर शासन करता है। इस प्रकार धर्म ही सत्य कहलाता है। यदि कोई मनुष्य सत्य कहता है तो लोग कहते हैं कि वह धर्मकी बात कहता है और यदि वह धर्मकी बात कहता है तो यह कहते हैं कि वह सत्य कहता है। इस प्रकार सत्य और धर्म एकही वस्तु है।

गंगाप्रसाद मेहता



* "The State is not a partnership in things subservient only to the gross animal existence of a temporary and perishable nature. It is a partnership in all science a partnership in all art, a partnership in every virtue and in all perfection. As the ends of such a partnership cannot be obtained in many generations, it becomes a partnership between those who are living, those who are dead, and those who are to be born."

Burk's Reflections on the Revolution in France

सत्याग्रहके सिद्धान्तकी समीक्षा



धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इसका साक्षात् ज्ञान मनुष्यको अपने अन्तःकरण से होता है। चाहे हम यह मानें कि धर्मका लक्ष्य सामाजिक उपयोगिता के सिवाय मनुष्यकी धार्मिक प्रवृत्ति उसके मनमें अपने अन्दरके सामाजिक गुणके लिए उपयोगी भावोंके प्रति चुपचाप उगे हुए पक्षपातके सिवाय, और उस धार्मिक प्रवृत्तिका व्यञ्जक अन्तरात्मा सामाजिक शक्तियोंके सदियोंसे होते हुए प्रभावोंके नतीजा के सिवाय कुछ नहीं; चाहे यह मानें कि विश्व-व्यापिनी चितिशक्ति ही अन्तःकरणोंमें उपहित होने पर अन्तरात्माके रूपमें भासित होता है, अथवा वह अन्तरात्मासे भिन्न होते हुए भी उसमें व्याप्त है, और अन्तरात्माकी धर्माधर्म-प्रतीति उसी व्यापिनी शक्तिकी प्रेरणाका फल है; अथवा यह कि यही विश्वव्यापिनी चेतन शक्ति सृष्टिके आरम्भमें या बीचमें मनुष्योंको धर्माधर्म का ज्ञान देनेके लिए एक पोथा तैयार कर देती है और उसीके द्वारा सब मनुष्योंको कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान होता है; यह मानें कि प्रत्येक मनुष्यका अन्तरात्मा ही उसके धर्माधर्मका अन्तिम निर्णायक है;—प्रत्येक पक्षमें यह हमें मानना होगा कि मनुष्यको अपने धर्माधर्मका साक्षात् ज्ञान अपने अन्तरात्माके द्वारा ही होता है।

अन्तःकरणसे भासित होने वाले इस धर्माधर्मका कुछ अंश वैयक्तिक होता है, अर्थात् केवल हमारी अपनी व्यक्तिसे सम्बन्ध रखता है; और कुछ पारस्परिक होता है, अर्थात् दूसरोंके प्रति हमारा कर्तव्य बतलाता है। वैयक्तिक और पारस्परिक दोनों प्रकारके धर्माधर्म विषयक आदेश भिन्न भिन्न अन्तरात्माओंके, उनके परिष्कारकी अपेक्षासे प्रायः भिन्न भिन्न होते हैं; यद्यपि मौलिक तत्त्वोंमें वे समान ही हों, पर साधारणतया बहुधा भिन्न प्रकट होते हैं। पारस्परिक धर्मके विषयमें जब इस प्रकार मतभेद हों, और भिन्न भिन्न पक्षोंके अपने अपने मत पर चलनेमें संघर्ष उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो, उस समय क्या करना चाहिए?

केवल इतना ही प्रश्न नहीं है। मतभेद होने पर संघर्ष होना तो स्वाभाविक ही है, पर बिना वास्तविक मतभेदके भी मनुष्यकी पतित अवस्थाके कारण संघर्ष हो सकता है। किसी कर्तव्यके विषयमें दो व्यक्तियोंको अन्तरात्माका समान आदेश होने पर भी एक उस आदेशके अनुसार चलना चाहता है पर दूसरा नहीं चलना चाहता या नहीं चल सकता, इस अवस्थामें आन्तरिक मतभेदके न रहने पर भी संघर्ष उत्पन्न हो सकता है और हो जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक धर्मके सम्बन्धमें भी संघर्ष होने की सम्भावना है; बहुतसी व्यक्तियां ऐसी होती हैं जो अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए अकारण ही दूसरोंके धर्म-मार्ग पर चलनेमें रुकावट डालती हैं। ऐसी अवस्थाओंमें एक धार्मिक व्यक्तिको क्या करना चाहिए? जब दूसरा व्यक्ति अपनी अकर्तव्य [illegible] करता हो—या उसमें [illegible] हमारी [illegible] कर्तव्य [illegible] करता हो, और उसके ऐसे आचरणसे हमारा, उसका या दूसरोंका [illegible] अहित होता हो या होने की सम्भावना हो, तब हमें क्या करना चाहिए? [illegible] प्रकार [illegible] करना चाहिए? यह प्रश्न है जो [illegible] और [illegible] के [illegible] सामने [illegible] उपस्थित होता है।

[illegible] सिद्धान्तकी [illegible]

[illegible] है, और [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible] है। [illegible]
है [illegible] है—[illegible]
रह [illegible] है [illegible]
[illegible] है [illegible]
है। हम अपनी [illegible] ठीक समझते हैं, पर अपनेको ठीक [illegible] है। मनुष्य [illegible] नहीं है
सम्भव है हमहीं गलती पर हों, [illegible] हमारा [illegible] अधिकार [illegible] करनेका है। हमें
अपने धर्म पर दृढ़ रहनेका, अपने धर्म पर आचरण करनेका हमारा अधिकार है; और जब दूसरा हमें
हमारे धर्ममें च्युत करना चाहता है तब भी हम इसी आग्रहके द्वारा अपने धर्मकी रक्षा कर सकते हैं।
लेकिन बलात्कार करना हमें तब भी न चाहिए क्योंकि अपने धर्मके निभानेके लिए सत्याग्रह
काफी है, और बलात्कार केवल अन्धाधुन्धका कारण होता है। हम अपने धर्मकी रक्षाके लिए
बलात्कार करते हैं, दूसरा धर्मके नामपर पाखण्ड फैलाकर उसीकी रक्षा के लिए या उसके प्रचारकी
आड़में अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए बलात्कार करता है, तीसरा ज्ञान बूझकर पाखण्ड नहीं
रखता, पर भ्रममें पड़कर धर्मके स्वरूपको ठीक नहीं समझ सकता और उस अशुद्ध समझे
हुए धर्मके प्रचारके लिए बलात्कार करता है, और इस प्रकार यह अन्धाधुन्धी उत्पन्न हो जाती है जो
आज सारे संसारको तहस नहस किये हुए है। हमारे अपने धर्मकी रक्षाके लिए सत्याग्रह काफी है,
और दूसरोंको जबरदस्ती धर्मपर चलाने का हमारा कोई अधिकार नहीं। जब हम धर्मके लिए
दूसरोंपर बलात्कार करते हैं तो हम यह फर्ज कर लेते हैं कि हम उनके हिताहितको जानते हैं,
और संसारके इतिहासमें सबसे भयंकर घटनाएँ इसी फर्जके कारण हुई हैं, हजारों निरपराध
शहीदोंकी हत्याएँ, हजारोंका जीता जलाया जाना, हजारोंके खूनकी नदियोंका बहाना अतीत
और वर्तमान इतिहासके ये सब डरावने दृश्य, राज्योंके अत्याचार और विद्रोहियोंके षड्यन्त्र—
सबका कारण यही है कि तुच्छ मनुष्य यह फर्ज कर लेता है कि वह अनादि अनन्त अगम्य संसारके
सब व्यक्तियोंके हिताहितको जानता है। और इन सब बातोंको दूर करनेका यही एकमात्र
साधन है कि बलात्कारके सिद्धान्तको जलाञ्जलि दे दी जाय।

जहाँ तक हम समझ सके हैं, सत्याग्रहके शुद्ध सिद्धान्त का यही सरल स्वरूप है।

सबसे पहला आक्षेप जो इस सिद्धान्तपर किया जाता है वह यह है कि यदि सत्याग्रहका सिद्धान्त मान लिया जाय और बलात्कार बिलकुल छोड़ दिया जाय तो सब प्रकारके राज्य, कानून और न्यायालय समाजसे उठ जायँगे, कैदखानोंकी इतिश्री हो जायगी और दण्ड और युद्ध नामको न रहेंगे। क्या इस अवस्थामें मनुष्यजातिका रहना सम्भव है? क्या इस प्रकार सार्वभौम सिद्धान्तके रूपमें सत्याग्रहका आचरण हो सकता है? क्या सब लोगोंको यह मना देना सम्भव है कि वे बलात्कार न किया करें?

निःसन्देह यह आक्षेप है। सीधी सरल भाषामें इस आक्षेपका स्वरूप यह है कि [illegible] सारा संसार सत्याग्रहका व्रत लेने को तैयार नहीं है, इसलिए हमें भी न लेना चाहिए। पर [illegible] विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका कर्त्तव्य है; और यदि दूसरे आदमी कर्त्तव्यका पालन [illegible] इसलिए हम भी न करें, यह कोई अच्छा बहाना नहीं है।

फिर प्रश्न होता है कि यदि दूसरे आदमी सत्याग्रहके सिद्धान्तको मानने [illegible] नहीं हैं तो क्या हमारा सत्याग्रह सदा सफल हो सकेगा? हम कितनाही उपवास करते रहें, कितने कष्ट झेलते रहें, पर यदि दूसरा आदमी निष्ठुरता करनेपर तुला हुआ है तो हमारा कष्ट [illegible] अपने हठसे कैसे हटा सकता है? निष्ठुरताके कारण उसकी लोकनिन्दा हो सकती है, पर लोक-निन्दाकी भी हर कोई परवा नहीं करता। ऐसी दशामें सत्याग्रह क्या निष्फल न होगा?

लेकिन, सफलता और निष्फलताका अर्थ क्या है? क्या अपनी इच्छाके पूरा होनेमें ही सफलता है? नहीं, यह सफलता नहीं है। हमने अपने कर्त्तव्यका पालन कर लिया, इसीमें हमारी सफलता हुई। हम अधर्मके आगे न झुककर सत्यपर आग्रह करते हैं, इस मार्गमें [illegible] रहनाही कर्त्तव्यपथसे न डिगना है, और कर्त्तव्यका पालन करनेमें सफल होनाही असली सफलता है; हमारी इच्छाका पूरा होना या न होना सफलता और निष्फलताकी पहचान नहीं है।

यह है स[illegible] सत्याग्रहीको कभी [illegible] पालन होता है, अपने अन्तरात्माको सन्तोष होता है।

किन्तु अब एक अधिक गम्भीर प्रश्न सामने आता है—क्या सत्याग्रहके [illegible] सदा अपने कर्त्तव्यका पालन भी कर सकते हैं? क्या कोई ऐसी अवस्थाएं नहीं हैं जब [illegible] दृष्टिसे ही "सत्याग्रह" अनुचित हो? जब कि हमारा अन्तरात्माही हमें बलात्कार करने [illegible] आत्मधर्म का अनुसरण करनेके लिए प्रेरित करता हो?

सत्याग्रहीका कहना है कि ऐसी कोई अवस्थाएं नहीं हैं, पर हमारा ख्याल [illegible] है। हमारे विचारमें मनुष्यके जीवनमें ऐसी बहुत अवस्थाएं आती हैं जब [illegible]

खीचने का देगा, किन्तु स्वयं डाकूका खून वह नहीं कर सकता। उसका यह तर्क है कि हम कैसे कह सकते हैं कि बच्चेका जीवन डाकूके जीवनसे अधिक उपयोगी होगा? क्या मालूम कि वह बच्चा बड़ा होकर डाकूसे भी खराब निकले? यदि हमें यह मालूम नहीं तो हमें डाकूपर क्यों हथियार चलाना चाहिए?

बहुत ठीक। दृष्टान्तमें थोड़ासा परिवर्तन कर दीजिए। एक अत्याचारी हमारे सामने एक सतीका सतीत्व नष्ट करना चाहता है, हम उसे समझायेंगे, बुझायेंगे, सतीकी रक्षाके लिए आप कष्ट झेलनेको तैयार होंगे, पर इतनेपर भी वह न माने तो? यहाँ हम नहीं कह सकते कि क्या मालूम सती अत्याचारीसे भी बुरी हो, और कहें तो यह शुष्क वितण्डा होगी। कोई पुरुष ऐसा न होगा जो ऐसी दशामें हाथ न उठाये। और यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जो सतीका अपमान देख सकता है, पर डाकूके खूनका खतरा देखकर गश खा जाता है, तो वह पुरुष नहीं, नपुंसक है। यदि टाल्स्टायका कहना है कि सच्चा ईसाई डाकूका खून नहीं कर सकता। बेशक, इसका कारण यही है कि ईसाई मतमें संयमकी अपेक्षा प्रेमको अधिक गौरव दिया गया है, हिन्दू तत्त्वज्ञानके अनुसार धर्मका सार संयम है।

हमने कहा था कि मनुष्यके जीवनमें ऐसी अवस्थाएँ होती हैं जब बलात्कार उचित होता है, या अनुचित नहीं होता। यदि हम इन अवस्थाओंका किसी प्रकार टूटा फूटा वर्गीकरणभी कर सकें, तो बलात्कारके औचित्य और अनौचित्यपर अधिक स्पष्ट विचार हो सकेगा।

प्रथमतः, वे अवस्थाएँ हैं जब दूसरा आदमी जानबूझकर या प्रलोभनवश धर्मपथका परित्याग करता है, और हमारा उस आदमीसे कोई ऐसा सम्बन्ध होता है कि उसीके सुधारके लिए या उसके कुकर्मोंके अनुष्ठानसे औरोंको बचानेके लिए ठीक मार्गपर लाना हमारा कर्तव्य होता है। इन अवस्थाओंमें जहाँतक हो सके समझाने बुझानेसे और सत्याग्रहसे काम चलाना ठीक होगा, पर ऐसी दशाएँ भी इस क्षेत्रमें आजाती हैं जब दण्डका प्रयोग अपेक्षित होता है, जब हम उसे बुरा नहीं कह सकते। पिताका पुत्रको, और गुरुका शिष्यको दण्ड देना इसीके उदाहरण हैं। हम यह मानते हैं कि सब पिता अपने पुत्रोंको या गुरु अपने शिष्योंको उचित अवस्थाओंमें ही दण्ड नहीं देते, हम यह मानते हैं कि इस प्रकारकी अवस्थाओंकी सत्ताका बहाना करके, दूसरोंकी हितचिन्ताका धींगाधींगीसे ठेकेदार बननेका पाखण्ड करके, कर्तव्य और धर्मकी शान्ति और व्यवस्थाकी दुहाई देकर अत्याचार करनेवाले भी संसारमें बहुत हैं; हम मानते भी हम सामाजिक उदाहरण हैं कि बहुतेरे राज्यों, साम्राज्यों, डाकुओंके जत्थों और व्यवस्थाके नामपर अव्यवस्था और धर्मके नामपर अधर्म फैलाने वाला नामाजिक संस्थाओंकी स्थापना इसीप्रकारके पाखण्डके आधारपर होती है; पर फिरभी हम दूसरोंके हितके लिए दूसरोंको दण्ड देनेके कर्तव्य को अनुचित कहकर छोड़ नहीं सकते। व्यवहारमें इसका दुरुपयोग होता है, पर विचारमें हम दुर्भिक्ष नहीं कह सकते। कुछ न कुछ अवस्थाएँ ऐसी अवश्य हैं जब दूसरोंके हितके लिएही उन्हें दण्ड देना मनुष्यका कर्तव्य होता है।

इनसे भिन्न अवस्थाएँ वे हैं जहाँ हम दूसरोंके हितके लिए नहीं, पर अपने धर्मकी रक्षाके

लिए बलात्कार करते है। डाकू और सती वाले दृष्टान्तमें यदि सती अपनी रक्षाके लिए [illegible] चलाये तो यह इसका दृष्टान्त होगा; अपनी स्वाधीनताके लिए लड़नेवाला [illegible] दृष्टान्त है। इन अवस्थाओंमें बलप्रयोगको अनुचित नहीं कहा जा सकता, [illegible] करना अनुचित होगा। वस्तुतः सत्याग्रही जब बलात्कारके दोष बतलाता है तो [illegible] प्रायः भूल जाता है, वह पहले प्रकार की अवस्थाओंकी ही आलोचना करता है।

तीसरे प्रकारकी अवस्थाएँ वे हैं जब ऐसा अनाचार हमारे सामने होता है [illegible] अन्तरात्मा उसे सह न सके। डाकू और सतीका पूर्वोक्त दृष्टान्त इसका नमूना है।

शायद बलप्रयोगकी और भी उचित (और अनुचित) अवस्थाएँ होंगी, [illegible] प्रसंगपर प्रकाश डालनेके लिए यही पर्याप्त हैं।

फलतः धर्माचरण और कर्तव्यपालनके लिए कई दशाओंमें बलात्कार [illegible] आवश्यक होता है। इसप्रकारके उचित बलात्कारको हम सत्यानुरोध कह सकते हैं [illegible] सत्यानुरोध दोनों अपने अपने स्थानमें उचित और धर्मानुकूल हैं।

इतना सिद्ध होनेपर [illegible]

[illegible] प्रायः [illegible] होता है कि उसमें [illegible] ("प्रायः" इसलिए कि कभी कभी कर्तव्यपालनभी नहीं होता), पर यहां [illegible] अर्थ लेते है।

उचित और धर्म्मानुकूल उपाय और न होगा; लेकिन यदि न दे सके तो क्या करे? क्या हाथपर हाथ धरके बैठ जाय? नहीं: यहीं मौका है सत्याग्रहका। अधर्म्मके आगे सिर कभी नहीं झुकाना है, यदि हम उसे "ठोस घूँसा" दे सकते तो बहुत अच्छा होता, अब नहीं दे सकते तो न सही, पर फिर भी झुकेंगे नहीं, अपना धर्म्म न छोड़ेंगे, जो होता है होता रहे। यह है सत्याग्रहकी स्थिति जो हमें युक्तिसंगत मालूम होती है। किन्तु यहाँ सत्याग्रही अधर्मीके हृदयको पिघलानेके लिए सत्याग्रह नहीं करता, परन्तु इसलिए कि अधर्मका प्रतिरोध करनेकी उसमें शक्ति नहीं और अधर्म्मके आगे वह झुक नहीं सकता। वह कहता है कि चाहे मैं इस समय दौर्भाग्यवश तुम्हारे काबूमें हूँ, फिर भी "ऐंठोंके आगे झुकना मैंने नहीं है सीखा" और इस भावसे वह सत्याग्रह द्वारा अधर्मका मुकाबला करता है, यद्यपि वह जानता है कि उसके मुकाबलेसे अधर्मकी ऐंठ चूर न होगी। यहाँ विफल सत्याग्रह भी उचित है, पर जहाँ सत्यानुरोध सफल हो सकता हो वहाँ क्यों विफल सत्याग्रहका सहारा लिया जाय?

इस सत्याग्रहका आदर्श उदाहरण गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंकी मृत्युसे मिलता है। आनन्दपुरके घेरेसे बच कर जब ये दोनों बालक भाग रहे थे तो सरहिन्दके फौजदार वजीरखाँके हाथ पड़ गये। एक दिन जब वे उसके दरबारमें बैठे थे तो फौजदार ने उनकी भव्य मूर्तिसे आकर्षित होकर पूछा—"बालको यदि तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे?" फतहसिंह और जोरावरसिंहने उत्तर दिया—"हम अपने सिक्खोंको इकट्ठा करेंगे, उन्हें हथियारबन्द करेंगे, तुमसे लड़ेंगे और तुम्हें मार डालेंगे!" "पर यदि तुम लड़ाईमें हार गये तो फिर क्या करोगे?" "हम फिर सिक्ख सेना तैयार करेंगे और तुम्हें मार डालेंगे या आप लड़ते लड़ते मारे जायेंगे।" फौजदारको बालकोंकी इस उद्दण्डता पर बड़ा गुस्सा आया, और उसने इन्हें कत्ल करनेका हुक्म दे दिया। किस प्रकार वे हँसते हँसते पहले मरनेके लिए एक दूसरे की स्पर्धा करते हुए दीवारमें चुने गये, यह सबको मालूम ही है।

हमारी इस मीमांसाका परिणाम यह निकला कि कई अवस्थाओंमें "सत्याग्रह" कर्तव्यके विरुद्ध होता है, वही कर्तव्यका विचार फलाफल देखे बिना सत्यानुरोध करनेके लिए प्रेरित करता है; कई बार सत्यानुरोध यद्यपि सर्वोत्तम मार्ग होता है, तोभी उसके अभावमें सत्याग्रहका अवलम्बन करना उचित होता है; अन्य अवस्थाओंमें सत्याग्रह या सत्यानुरोधमेंसे कोई एक अवसरके अनुसार उचित होता है।

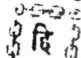
लेकिन इसपर सत्याग्रही आक्षेप करेगा कि इसका कौन निर्णय करनेवाला है कि बलात्कार कहाँ उचित और कहाँ अनुचित है। यदि कुछ लोग सत्यानुरोधके लिए बलात्कार करते हैं तो उनसे हजारों गुने लोग अत्याचारके लिए बलात्कार करते हैं। ऐसी दशामें कौन सा नियम उन्हें रोक सकता है? पिता प्रायः पुत्रके हितको पहचानता है, पर क्या वे सब राज्यके सञ्चालक जो निरपराध आदमियोंको फाँसी लगवाते, कैदखानेमें डालते, फाँसी चढ़ाते और युद्धमें मरवाते हैं, जनताके हिताहितको जानते हैं? क्या वे सब मुँहतोड़ जवाब देकर जो भारी भारी तनख्वाहें पानेकी खातिर न्यायके सञ्चालक बननेका आडम्बर करके विद्वान्, बुड्ढोंको दम निकाला

और पशुओंको देनेकी आज्ञा दिया करते हैं, [illegible] उनके हिताहितको जानते हैं ? अगर [illegible] लिए बलात्कार करना उचित है तो अराजकोंके लिए क्यों नहीं ? इसका परिणाम अव्यवस्था होगी।

यह सब कुछ ठीक है, पर यह आक्षेप करनेमें सत्याग्रही अपनी भूमिको छोड़ देता है। जब उस पर यह आक्षेप किया जाता है कि सत्याग्रह सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता, सत्याग्रहके सिद्धान्तको सारा संसार माननेको तैयार नहीं है, तो वह कहता है कि संसार अपना कर्तव्य पाले या न पाले, हमें अपने कर्तव्यका पालन करना है। क्या इस प्रकार सत्यानुरोधी भी नहीं कह सकता कि यदि लोगोंके अत्याचारके लिए बलात्कार करनेसे अव्यवस्था होती है तो होवे, पर हमें अपना कर्तव्य पालना है हम अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिए ही बलात्कार करते हैं—वहीं बलात्कार करते हैं जहाँ वह कर्तव्य-पालनके लिए आवश्यक हो। बलात्कार कहाँ उचित है और कहाँ अनुचित है, इसका निर्णय कौन करेगा ? इसका निर्णय प्रत्येक पुरुषका अन्तरात्मा करेगा। असलमें विवादकी जड़ यही है। सत्याग्रही सत्यानुरोधको क्यों रोकना चाहता है ? क्योंकि यह दूषित हुए बिना सब आदमियोंसे नहीं हथियाया जा सकता, क्योंकि यह दूषित हुए बिना सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता। पर सत्याग्रह भी तो सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता। जिस अव्यवस्थाको रोकनेके लिए उचित अवस्थाओंमें भी बलका प्रयोग छोड़ा जाता है, वह अव्यवस्था फिर भी बनी रहती है। असलमें सुधारके सुधारका साधन बलात्कार करना या बलात्कारको सर्वथा छोड़ देना नहीं है, सुधारका साधन यह है कि मनुष्य अपने कर्तव्य पर ध्यान देनेको प्रवृत्त हों, वे अपने अन्तरात्माके आदेश पर चलना सीखें। मनुष्योंमें आत्मसंयम बढ़े, वे निष्काम कर्म करना सीखें। बुराईका कारण यह नहीं है कि लोग बलात्कार करते हैं, पर यह कि अपने अन्तरात्माके आदेशके विरुद्ध बलात्कार करते हैं। सुधारका साधन यह है कि लोग अपने कर्तव्य पर ध्यान देना सीखें, धार्मिकजीवन बिताना सीखें। धार्मिक जीवन बनानेका साधन है संयम, और उसका उच्चतम आदर्श है निष्काम कर्मयोगका जीवन। यह निष्काम कर्म सत्याग्रह भी हो सकता है और सत्यानुरोध भी; हिंसा और अहिंसा दोनो ही उसके उपकरण हैं; जब इस अवस्थामें मनुष्य पहुँच जाता है तो "हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न च बध्यते।" "न हवे तस्यके न च कर्मणा लोको मीयते न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया।"

भारतीय इतिहासमें इन सिद्धान्तोंके यथोचित प्रयोगका शायद सबसे अधिक उज्ज्वल दृष्टान्त बन्दाका जीवन है। इतिहासकी रंगस्थली पर प्रकट होनेसे पहले राजपूत लछमनदेवको प्राणिहिंसासे नफ़रत हो जाती है, और इसी लिए वह माधोदास बैरागी बन जाता है। यह नफ़रत उसके दिलमें ऐसा घर कर जाती है कि वह वैष्णव साधु सिक्खोंका नेता बन करभी उन्हें मांसाहारसे रोकनेकी चेष्टा करता है, यद्यपि उसके गुरुने सिक्खोंमें वीर भाव भरनेके लिए उन्हें मांसाहार करनेकी शिक्षा दी थी। वस्तुतः उसे वीरताके इन बाह्य साधनोंकी ज़रूरत न थी। पर वही वैष्णव सन्यासी कर्तव्यका आदेश पाकर हज़ारों पापियोंके रुधिरसे ज़मीन तर कर देता है, उस

हिन्दुस्थान और विलायतकी सरकारी हुण्डियां




हिन्दुस्तानकी सरकारको प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया इंगलिस्तानको भेजना पड़ता है। यह रुपया उन मदोंके लिए है जो भारतसचिव अपने दफ्तरके लिए और हिन्दुस्तानमें पेन्शन लिए अफसरों तथा उन सरकारी मालकी कीमत महसूलके लिए जो हिन्दुस्तानकी सरकार मंगाती है, आवश्यक है। इन सब खर्चोंका नाम 'होमचार्जेज़' है। यानी वह खर्चा जो हिन्दुस्तानकी सरकारको विलायतमें करना पड़ता है। विलायतके साहूकारोंका जो रुपया हिन्दुस्तानके बड़े बड़े कामोंमें—जैसे रेलके महकमे—इत्यादिमें लग रहा है और जिसके लिए भारतीय सरकार ऋणी है—उस रुपये पर वार्षिक सूदकी रकम; जो सामान भारतीय सरकार हिन्दुस्तानके लिए विलायत खरीदती है—जैसे रेलका सामान जो हिन्दुस्तानमें नहीं मिल सकता है—उसकी कीमत; भारतीय सरकारके फौजी या सिविल कर्मचारी जो विलायतमें छुट्टी पर होते हैं या जो पेन्शन लेकर विलायत चले गये हैं, उनका वेतन या पेन्शन अथवा और और ऐसे कार्योंके लिए विलायतका रुपया हिन्दुस्तानके काममें आ रहा—उसकी अदायगी—इन सब हिसाबोंमें जो रुपया हिन्दुस्तानसे विलायतको प्रतिवर्ष जाता है, वह 'होमचार्जेज़' कहलाता है। यह रकम २५०००००० पौंड या ३७½ करोड़ रुपया है। क्या भारत सरकार इतना रुपया प्रतिवर्ष जहाजोंमें लादकर विलायत भेजती है? नहीं, यह बात नहीं है। भारतसचिव जो विलायतमें है भारतसरकारके नाम हुण्डियाँ बेचता है। विलायतके व्यापारी इन हुण्डियोंको खरीदकर अपने भुगतानके लिए हिन्दुस्तानके व्यापारियोंके पास भेजते हैं। ये व्यापारी भारतसरकारसे इनका रुपया ले लेते हैं। इन्हीं हुण्डियोंका नाम कौन्सल् है। इन्हें कौन्सलड्राफ्ट या बिल भी कहते हैं। इनके द्वारा विलायतके व्यापारियोंका रुपया हिन्दुस्तानमें चुक जाता है। न तो भारतसरकारको अपना वार्षिक खर्चेका रुपया विलायत भेजना पड़ता है, न विलायतके व्यापारियोंको अपने कर्जेका रुपया हिन्दुस्तानमें भेजना पड़ता है। इन्हीं हुण्डियोंके द्वारा दोनोंके रुपयेका जमाखर्च हो जाता है। इस विषयमें यह कहना और आवश्यक है कि यह हुण्डियाँ किस भाव बिकती है। जब रुपये और पौण्डका विनिमय अर्थात् एक्सचेञ्ज १ शिलिंग ४ पेन्सका था तब इन हुण्डियोंका भाव तेजसे तेज १ शिलिंग ४½ पेन्स था और मंदेसे मंदा १ शिलिंग ३३⁄₃₂ पेन्स था। एक पौण्डके २० शिलिंग होते हैं और १ शिलिंगके १२ पेन्स होते है। इससे हिसाब लगाया जासकता है कि जब १ रुपयेका भाव १ शिलिंग और चार पेन्स है तो शिलिंग के आनेका हुआ—यानी एक रुपया १६ पेन्सके बराबर हुआ और एक पेनी एक आनेके बराबर। इस प्रकार एक शिलिंग बारह आनेका हुआ। योरुपके युद्धके पहले रुपयेकी कीमत, पौण्ड शिलिंगमें इसी भाव थी। युद्धके कारण विशेषतः चाँदी महँगी हो जानेके कारण रुपयेके भावमें बड़ी घटा बढ़ी हुई, यहाँतक कि १ रुपयेके २ शिलिंग और १० पेन्स आने लगे और इस समय भी एक रुपया २ शिलिंग ६ पेन्सके बराबर है। जिसका अर्थ यह है कि एक रुपयेके ३१ पेन्स आते हैं—एक ... आध आनेसे कुछ कमका है और एक शिलिंग छवा छः

और फाँसी देनेकी आज्ञाएँ दिया करते हैं, अ॰॰ ॥ उनके हिताहितको जानते हैं ! और [illegible] राज्यके लिए बलात्कार करना उचित है तो अराजकोंके लिए क्यों नहीं ! इसका परिणाम अव्यवस्था होगी।

यह सब कुछ ठीक है, पर यह आक्षेप करनेमें सत्याग्रही अपनी भूमिको छोड़ देता है। जब उस पर यह आक्षेप किया जाता है कि सत्याग्रह सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता, सत्याग्रहके सिद्धान्तको सारा संसार माननेको तैयार नहीं है, तो वह कहता है कि संसार अपना कर्त्तव्य पाले वा न पाले, हमें अपने कर्त्तव्यका पालन करना है। क्या इस प्रकार सत्यानुरोधी भी नहीं कह सकता कि यदि लोगोंके अत्याचारके लिए बलात्कार करनेसे अव्यवस्था होती है तो भलेही हो हमें अपना कर्त्तव्य पालना है हम अपना कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए ही बलात्कार करते हैं—वहीं बलात्कार करते हैं जहाँ वह कर्त्तव्य-पालनके लिए आवश्यक हो। बलात्कार कहाँ उचित है और कहाँ अनुचित है, इसका निर्णय कौन करेगा ? इसका निर्णय प्रत्येक पुरुषका अन्तरात्मा करेगा। असलमें विवादकी जड़ यही है। सत्याग्रही सत्यानुरोधको क्यों रोकना चाहता है ? क्योंकि वह दूषित हुए बिना सब आदमियोंसे नहीं हथियाया जा सकता, क्योंकि यह दूषित हुए बिना सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता। पर सत्याग्रह भी तो सार्वभौम सिद्धान्त नहीं बन सकता। जिस अव्यवस्थाको रोकनेके लिए उचित अवसरोंमें भी बलका प्रयोग छोड़ा जाता है, वह अव्यवस्था फिर भी बनी रहती है। असलमें सबसे सुधारका साधन बलात्कार करना वा बलात्कारको सर्वथा छोड़ देना नहीं है, सुधारका साधन यह है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देनेको प्रवृत्त हों, वे अपने अन्तरात्माके आदेश पर चलना सीखें। मनुष्योंमें आत्मसंयम बढ़े, वे निष्काम कर्म करना सीखें। बुराईका कारण यह नहीं है कि लोग बलात्कार करते हैं, पर यह कि अपने अन्तरात्माके आदेशके विरुद्ध बलात्कार करते हैं। सुधारका साधन यह है कि लोग अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देना सीखें, धार्मिकजीवन बिताना सीखें। धार्मिक जीवन बनानेका साधन है संयम, और उसका उत्तम आदर्श है निष्काम कर्मयोगका जीवन। यह निष्काम कर्म सत्याग्रह भी हो सकता है और सत्यानुरोध भी; हिंसा और अहिंसा दोनों ही उसके उपकरण हैं; जब इस अवस्थामें मनुष्य पहुँच जाता है तो "हत्वापि स इमाँल्लोकान् न हन्ति न च बध्यते।" "न हन्ने तस्यके न च कर्मेव [illegible] कोऽपि मीयते न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया।"

भारतीय इतिहासमें इन सिद्धान्तोंके यथोचित प्रयोगका शायद सबसे अधिक उज्ज्वल [illegible] जीवन है। इतिहासकी रंगस्थली पर प्रकट होनेसे पहले राजसत्ता [illegible] [illegible] हो जाती है, और इसी लिए वह [illegible] बन जाता है। यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि वह [illegible] [illegible] बन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए उन्हें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, अतः

[illegible] है। भारत मंत्री अपनी हुण्डियाँ प्रति सप्ताह बेचता है और वे हुण्डियाँ आज-कल ज्यादा भावमें बिकती हैं। इसमें इस बातका ध्यान रखना जाता है कि हुण्डीका भाव इतना तेज न हो जाए कि विलायतके व्यापारियोंको हुण्डी खरीदनेके बदले विलायतसे हिन्दुस्तानको सोना या चाँदी जहाजमें भेजना सस्ता पड़े। यदि ऐसा हो तो हुण्डी खरीदनेमें कोई लाभ नहीं होगा।

जब विलायतके व्यापारियोंको हिन्दुस्थानमें रुपया भेजनेकी अधिक आवश्यकता होती है और हुण्डियोंकी बहुत माँग होती है तो उनका भाव तेज हो जाता है। इसका यह मतलब हुआ कि जो हुण्डियाँ भारतमंत्री बेचता है उनका प्रभाव प्राय: एक्सचेञ्जके भावको तेज करता है। इस तेजीसे विलायतके व्यापारियोंकी हानि है क्योंकि उनको बंधे हुए भावसे अधिक रुपया देना पड़ता है। जब इन हुण्डियोंका भाव सस्ता हो जाता है तो भारतमंत्रीको हानि होती है क्योंकि पौण्डके बँधे हुए भावसे कममें हुण्डियाँ देनी पड़ती हैं। पहले पौण्डका बँधा हुआ भाव १५ रुपयेका था। दूसरे शब्दोंमें यह कहना है कि एक रुपयेका भाव १ शिलिंग और ४ पेन्सका था। इस भावसे कममें हुण्डियाँ देनेमें भारतमंत्रीकी हानि होती थी और उससे अधिक भावमें बेचनेसे विलायतके व्यापारियोंकी हानि और भारत मंत्रीको लाभ होता है।

जिस प्रकार भारतमंत्री हिन्दुस्थानकी सरकार पर विलायतके व्यापारियोंको हुण्डियाँ बेचता है उसी प्रकार भारत सरकार भी भारतमंत्री पर हिन्दुस्थानके व्यापारियोंको हुण्डियाँ बेचती है। इन हुण्डियोंको 'रिवर्स कौन्सल' कहते हैं। जिस समय विनिमयका भाव गिरता जाय अर्थात् जो भाव रुपयेका शिलिंग पेन्समें बँधा है उससे कम हो तो भारत सरकारको इन हुण्डियोंके बेचनेमें लाभ है और इस बेचनेके प्रभावसे विनिमयका भाव भी फिर स्थिर हो जाता है लेकिन जब विनिमयका भाव तेज है उस समय इन हुण्डियोंके बेचनेसे भारत सरकारकी स्पष्ट हानि है। उदाहरण—किसी भारतवर्षके व्यापारीको विलायतमें १०० पौण्ड भेजने हैं। उसने भारतसरकारसे इस रकमकी एक हुण्डी ली (यानी रिवर्स कौन्सल) यदि इस हुण्डीका भाव १ शिलिंग ३ पेन्स है तो व्यापारीको सरकारमें १६००) देने पड़े तब १०० पौण्डकी हुण्डी मिली, और यदि हुण्डीका भाव १ शिलिंग ४ पेन्स है तो केवल १५००) ही देने पड़े। पहली मिसालमें १००) का लाभ सरकारको हुआ और उतने हीकी हानि व्यापारीको हुई और दूसरी मिसालमें १००) का लाभ व्यापारीको हुआ और उतने ही की हानि सरकारको हुई। इस लिए जब भाव तेज हो उस समय रिवर्स कौन्सल बेचनेसे सरकारको फायदा है। पहले, भारतवर्षकी सरकार ऐसी हुण्डियाँ भारतमंत्रीकी आज्ञाके बिना नहीं बेच सकती थी और यह आज्ञा प्राय: ऐसे अवसरोंपर दी जाती थी जब विनिमय अर्थात् हुण्डीका भाव तेज हो। इसका यह असर होता था कि भारतसरकारको कुछ रुपयेका फायदा हो जाता था और विनिमयका भाव फिर स्थिर हो जाता था क्योंकि जब सरकार हुण्डियाँ बेचने लगती थी तो व्यापारी हुण्डीका भाव गिराकर लेनेकी चेष्टा करते थे। जब खरीददार थोड़े और हुण्डियाँ बहुत हैं तो भाव गिर जाना एक स्वाभाविक बात है।

७

कौन्सल्स यानी भारतमन्त्रीकी हुण्डियों और रिवर्स कौन्सल्स यानी भारत-सरकारकी हुण्डियोंके सम्बन्धमें यह बता देना भी आवश्यक है कि भारतमंत्री तो इस कारण से हुण्डियाँ बेचता है कि उसे भारत सरकारसे वार्षिक खर्चा वसूल करना है, क्योंकि भारत-सरकारको प्रतिवर्ष होमचार्जेस ३७ ½ करोड़ रुपये भेजने होते हैं जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं; परन्तु भारतसरकारको भारतमन्त्रीसे कुछ रुपया वसूल नहीं करना है, इसलिए उसे भारत-मन्त्री पर हुण्डियाँ करनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। उसकी आवश्यकता यही है कि जब कभी पौंडका भाव गिर जाय तो उसे फिर स्थिर कर दे अथवा इस गिरे भावसे जो कुछ वह फायदा उठा सके वह उठाले। अतः भारत सरकारको अपनी हुण्डियाँ इसी आवश्यकता और अभिप्रायसे बेचनी चाहिये अन्यथा नहीं, नहीं तो उसकी हानि है।

युद्धके समयसे अब तक विनिमयका भाव गिरता ही चला आ रहा है। इस भावको स्थिर करनेके अभिप्रायसे भारतमंत्रीने एक करेन्सी कमेटी बैठाई थी। इस कमेटीकी रिपोर्ट अब निकल गई है। उसने अब विनिमयका नया भाव बाँधा है और यह भाव एक पौंडका १०) है, यानी एक रुपया २ शिलिंगके बराबर रक्खा है। पहले रुपयाका भाव १ शिलिंग और ४ पेन्स था। भारतमन्त्री, और भारतसरकारने भी यह भाव निश्चित करना स्वीकार किया है, और भारत सरकार इस बातकी भरपूर चेष्टा कर रही है कि रुपयेका भाव यही हो जाय परन्तु अभी यह भाव हुआ नहीं है और इसका कारण यह है कि अब जो भाव निश्चित किया गया है वह सोनेके भाव पर निर्भर है। जब सोनेका भाव १६) तोलेका हो जावेगा तब २ शिलिंग का भाव होगा। अभी सोनेका भाव २२) या २३) तोला है इसलिये विनिमय २ शिलिंग और या ० पेन्स है।

इस समय सरकारने जो भाव बाँधा है वह सोनेके भावसे बाँधा है अर्थात् एक रुपयेको सोनेके ११·३०·१६ ग्रेनके बराबर रक्खा है। इस समय सोनेका भाव इतना कम नहीं है। इसलिए सरकार बहुत सा सोना बेच कर इसका भाव घटानेकी भरपूर चेष्टा कर रही है। परन्तु अभी मनोवाञ्छित फल नहीं हुआ है। सरकार सोना बेचना बराबर जारी रक्खेगी जब तक उसका भाव १६) तोलेके लगभग न हो जाय, क्योंकि सोनेका भाव घटनेसे ही रुपयेका भाव २ शिलिंगका होगा अन्यथा नहीं।

इस समय विनिमयका भाव तेज होने से उन भारत व्यापारियोंको हानि है जो यहाँ से विलायतको माल भेजते हैं और उनको लाभ है जो विलायतसे भारतवर्षमें माल मँगाते हैं। क्योंकि जो १०० पौंडका माल यहाँसे विलायतको भेजता है उसे २ शिलिंग ८ पेन्स रुपयेके भावसे अब सिर्फ ७५०) रुपये ही मिलते हैं और पहले जब १ शिलिंग ४ पेन्स रुपयेका भाव था तब उसको इसी मालके १५००) मिलते थे। ठीक इसका उलटा है। इसके विपरीत विलायतसे माल मँगाने वालेको पहले १०० पौंडके मालके १५००) देने पड़ते थे और अब सिर्फ ७५०) ही। इस प्रकार माल भेजने वालेको नुकसान हो रहा है और माल मँगाने वालेको फायदा।

अब यह प्रश्न है कि इस [illegible] भारत सरकारको विलायती हुण्डी बनाने [illegible] है! [illegible] लिखा जा चुका है।

अब एक यह भी प्रश्न है कि भारतसरकारको अपनी हुण्डियाँ बेचनी चाहियें या नहीं। जिसके उत्तरमें कहा जाता है कि इन हुण्डियोंके बेचनेमें भारतवर्षको कुछ हानि नहीं है, बल्कि उसका लाभ है; परन्तु भारत सरकारको अपनी हुण्डी बेचनेमें नुकसान है। करेन्सी रिपोर्टका सिद्धान्त है कि भारत सरकारको अपनी हुण्डी तभी बेचनी चाहिए जब विनिमय का भाव मंदा हो न कि जब उसका भाव तेज हो, जैसा कि अब है। जब २ शिलिंग रुपयेका भाव स्थिर कर लिया तो २ शिलिंग १ पेन्स या ८ पेन्सके भावसे हुण्डी बेचनेमें भारतसरकारका सुस्पष्ट नुकसान है, परन्तु इस समय भारत सरकार ऐसी हुण्डियाँ धड़ाधड़ बेच रही है। यह कार्यवाही करेन्सी रिपोर्टके विरुद्ध ही नहीं है, बल्कि भारतवर्षके लिए अत्यन्त हानिकारक है। बड़े लाटसाहब की कौन्सिलके कुछ मेम्बरोंने सरकारका ध्यान इस ओर दिलाया भी है, पर इसका कुछ फल नहीं हुआ है। अब प्रश्न यह है कि जो नुकसान सरकारको जा रहा है यह कहाँसे दिया जायगा।

रुपया ढालनेमें सरकारको जो फायदा होता रहा है उस फायदेके रुपयेका एक कोश बनाया है जिसे 'गोल्डस्टैन्डर्ड रिजर्व' यानी सोनेका कोश कहते हैं। इस कोशमें मार्गशीर्ष शुक्ल ८ सम्वत् १९७१को ३७,४३८,३१० पौण्ड जमा थे। यह सब रुपया भारतवर्षमें सिक्का ढालनेके मुनाफेका है। इस समय भारत सरकारको चाँदीके सिक्केमें जो नुकसान और हुण्डियाँ बेचनेमें हानि है वह सब इस रुपयेसे दी जा रही है और इस प्रकार यह कोश कम होता जारहा है।

यह सब भारतवर्षका रुपया है और इस रुपयेको इस प्रकार जाते हुए देख भारतवासियोंका दिल दुखता है पर किया क्या जाय। सरकारकी नीति है। भारतवासियोंका यह भी कहना है कि इस कोशका रुपया भारतवर्षमें ही रक्खा जाय। विलायतमें नहीं। करेंसी रिपोर्टने भी यही कहा है। देखें क्या फल होता है। कोई यह समझे कि यह कोश सोने चाँदी या सिक्कोंसे भरा है तो यह बात नहीं है। यह सब रुपया सरकारी कागजोंमें है यानी इस रुपयेसे खरीदे हुए कई प्रकारके कर्जके कागज हैं जिनका प्रति वर्ष ब्याज आता है। कुछ कागज ऐसे हैं जिनका ब्याज बहुत थोड़ा है जैसे आइरिशलैंड स्टाक जो फीसदी २½ के ब्याज कागज हैं। ऐसे ही ३ फीसदीके लोकल लोन्स और ट्रान्सवाल सरकारके गैरन्टीड स्टोकके कागज हैं।

रिवर्सकौन्सिलके बेचनेके कारण सरकारको पेपर करंसी एक्टके संशोधन करनेकी आवश्यकता पड़ी है। यदि रिवर्सकौन्सिल न बेचे जायँ तो इस कानूनके संशोधन करनेकी आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती है। परन्तु सरकारको हुण्डियाँ बेचनेसे और इस प्रकार हानि उठानेसे कौन मना कर सकता है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कार्यवाही करेन्सी रिपोर्टके विरुद्ध है और इसमें भारतका सरासर नुकसान है। सरकारने इस कार्यके करनेमें कुछ महत्त्व पूर्ण कारण अवश्य सोच रक्खे होंगे, परन्तु जबतक वे कारण जनताको मालूम न हो जायँ वह संदेहमें ही रह सकती है और संदेहकी दशा शोचनीय है। हम आशा करते हैं कि सरकार इस संशयको शीघ्रही दूर कर देगी।

कन्नोमल



...में नियुक्त प्रादेशिक कर्मचारियोंकी तालिका।

अंगरेज	भारतवासी
०	१२
१	८
०	१
६	२
१	४
०	२
२	६
०	१२

...रियाँ भारतवासी नहीं पा सके।

...मिन्टका परराष्ट्र विभाग।

अंगरेज	भारतवासी
४	२
२०	०
३	०
१४	०
३	०
४	०
६	०
४	०
५	०
२	०
६	०
८	०

१ भारतवासी डिप्टी मैजिस्ट्रेटकी तरह और कामोंपर अंगरेज अधिकार जमाए हुए हैं,

भारतमें उच्च राज-नौकरियाँ



सम्वत् १६१५ में महारानी विक्टोरियाने भारतशासनका भार ग्रहण किया। इसके पहले ईस्ट इन्डिया कम्पनी भारतका शासन करती रही। कम्पनीने यह घोषणाकी थी कि भारतवासी योग्य होने पर, जाति वा धर्मके ख्यालसे किसी उच्च सरकारी नौकरीसे वञ्चित न रहेंगे। सम्वत् १६१५ में महारानी विक्टोरियाने भी ऐसीही घोषणा की। उनके पुत्र सम्राट् सप्तमएडवर्डने तथा पौत्र हमारे सुयोग्य सम्राट् पञ्चमजार्जने भी राज-भार ग्रहण करने पर इस घोषणाका समर्थन किया। है भी यह ठीक; जो जिस देशका निवासी है उसको उस देशका सर्वोच्च कार्य्य करनेका स्वाभाविक अधिकार भी है। हालमें जो सम्राट्ने घोषणा की है वह इस बातको औरभी पुष्ट करती है। अब यहां देखना यह है कि भारतीयोंको स्वाभाविक अधिकार होने पर तथा सरकारी घोषणा बार बार होने परभी अब तक भारतवासी किस परिमाणमें उच्चपदपर बैठाये गये हैं।

भारतके सभी प्रदेशोंके उच्च राजकर्म्मचारियोंकी एक तालिका 'कम्बाइन्ड सिविललिस्ट' प्रकाशित होती है। इसीके आधारपर हम यह प्रबन्ध लिख रहे हैं। इसमें एक सैनिक विभागके पदाधिकारियों की तालिका नहीं है। शेष सबकी, विस्तृत रूपसे है। यहाँ एक बात कहनी और है। तालिका को, सिविलसर्विस तथा भारत गवर्नमेन्टके अधीन उच्च यूरोपीय कर्म्मचारियोंकी तालिका कहा गया है। किन्तु कानून, भारतीयोंको किसीभी नौकरीके लिए अयोग्य कहकर कहीं निर्देश नहीं करता है; न यही कहता है कि अमुक श्रेणीकी नौकरी केवल यूरोपीय लोगोंके लिएही है। निदान किसीभी श्रेणीकी नौकरीके लिए यह कहना कि यह यूरोपीय नौकरी है, कभी उचित नहीं है।

शासन विभागमें ज़िलेके मजिस्ट्रेटीकी अपेक्षा उच्च कार्य्योंमें कोई भारतवासी नियुक्त नहीं है। कहना यह है कि गवर्नरजेनरल, तीन गवर्नर, चार लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा आठ चीफ़ कमिश्नर ये सभी यूरोपीय हैं। डिविज़नके कमिश्नरभी सभी यूरोपीय हैं।

गवर्नरजेनरल आदिके खास कर्म्मचारियोंकी तालिका—

	अंगरेज	भारतवासी
[illegible]	११	०
[illegible] गवर्नरके	१८	२
[illegible]	६	१
[illegible]	७	२
[illegible] गवर्नरके	२	२
[illegible]	८	?

भारतमें उच्च राज-नौकरियाँ

इस तालिकाके सभी भारतीय कर्मचारी निम्नपदस्थ—एर्डी-कांगू—मात्र हैं। इसकी अपेक्षा बड़े कार्य्यपर कोई नहीं।

सचिव सभाके सभ्योंकी तालिका

	अंगरेज	भारतवासी
गवर्नरजेनरलके	७	१
बंगाल गवर्नरके	२	१
बम्बई ,,	३	१
मद्रास ,,	२	१
बिहार लेफ्टिनेन्टगवर्नरके	२	१

भारत गवर्नमेन्टके सेक्रेटरियटमें।

विभाग	अंगरेज	भारतवासी
परराष्ट्र और राजनीति	१७	१
होम या स्वराष्ट्र	६	३
हिसाब	६	६
सैनिकहिसाब	१२	०
पूर्त	१८	०
शिक्षा	८	२
कानून	४	२
वाणिज्य	७	१
सैनिक	११	१

भारत गवर्नमेन्टके सेक्रेटरियटमें एक भी सेक्रेटरी भारतवासी नहीं है। जो भारतवासी हैं वे भी निम्नपदोंपर हैं। नई सुधार व्यवस्थाके अनुसार अब इनमें थोड़ी अवश्य गुंजाइश की गई है।

भारत गवर्नमेन्टके रेल विभागमें ६० अंगरेज और ३ भारतवासी काम करते हैं वे तीन भी सुपरिटेन्डेन्ट या साधारण पदाधिकारी मात्र हैं। इनके हिसाबके विभागमें इस कर्मचारी हैं, सभी अंगरेज हैं।

प्रादेशिक सेक्रेटरियट-समूहमें।

प्रदेश	अंगरेज	भारतवासी
बंगाल	१६	१
बम्बई	१५	४
मद्रास	१४	६
युक्तप्रदेश	१४	०
बिहार	१०	०
आसाम	१६	४
	१६०	

भारतमें उच्च राज-नौकरियाँ



सम्वत् १९१५ में महारानी विक्टोरियाने भारतशासनका भार ग्रहण किया। इससे पहले ईस्ट इन्डिया कम्पनी भारतका शासन करती रही। इन्होंने यह घोषणाकी थी कि भारतवासी योग्य होने पर, जाति या धर्मके ख्यालसे किसी उच्च सरकारी नौकरीसे वञ्चित न रहेंगे। सम्वत् १९१५ में महारानी विक्टोरियाने भी ऐसीही घोषणा की। उनके पुत्र सम्राट् सप्तमएडवर्डने तथा पौत्र हमारे वर्तमान सम्राट् पञ्चमजार्जने भी राज-भार ग्रहण करने पर इस घोषणाका समर्थन किया। है भी ठीक; जो जिस देशका निवासी है उसको उस देशका सर्वोच्च कार्य्य करनेका स्वाभाविक अधिकार भी है। हालमें जो सम्राट्ने घोषणा की है वह इस बातको और भी पुष्ट करती है। अब यहाँ देखना यह है कि भारतीयोंको स्वाभाविक अधिकार होने पर तथा सरकारी घोषणा का होने परभी अब तक भारतवासी किस परिमाणमें उच्चपदपर बैठाये गये हैं।

भारतके सभी प्रदेशोंके उच्च राजकर्म्मचारियोंकी एक तालिका 'कम्बाइन्ड सिविल लिस्ट' प्रकाशित होती है। इसीके आधारपर हम यह प्रबन्ध लिख रहे हैं। इसमें एक सैनिक विभागके पदाधिकारियों की तालिका नहीं है। शेष सबकी, विस्तृत रूपसे है। यहाँ एक बात कहनी और है। तालिका को, सिविलसर्विस तथा भारत गवर्नमेन्टके अधीन उच्च पदोंके कर्म्मचारियोंकी तालिका कहा गया है। किन्तु कानून, भारतीयोंको किसीभी पदके लिए अयोग्य कहकर कहीं निर्देश नहीं करता है; न यही कहता है कि अमुक श्रेणीकी नौकरी केवल यूरोपीय लोगोंके लिएही है। निदान किसीभी श्रेणीकी नौकरीके लिए यह कहना कि यह यूरोपीय नौकरी है, कभी उचित नहीं है।

शासन विभागमें ज़िलेके मजिस्ट्रेटीकी अपेक्षा उच्च कार्य्योंमें कोई भार[illegible] नहीं है। कहना यह है कि गवर्नरजेनरल, तीन गवर्नर, चार लेफ्टि[illegible] कमिश्नर ये सभी यूरोपीय हैं। डिविजनके कमिश्नरभी सभी [illegible]

गवर्नरजेनरल आदिके खास कर्म्मचारि[illegible]

	अंग्रेज
गवर्नरजेनरलके	११
बंगाल-गवर्नरके	१४
बम्बई-गवर्नरके	६
मद्रास-गवर्नरके	३
युक्तप्रान्तीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नरके	२
बिहार	४
बर्म्मा	४
पञ्जाब	

सिविलियनोंके कार्य्यमें नियुक्त प्रादेशिक कर्म्मचारियोंकी तालिका।

प्रदेश	अंगरेज	भारतवासी
बंगाल	०	१२
मद्रास	१	८
बिहार	०	५
बर्म्मा	६	२
मध्यप्रदेश	१	४
उत्तर पश्चिम सीमान्त	०	२
पञ्जाब	२	६
युक्त प्रदेश	०	१२

इस विभागमें भी सभी नौकरियाँ भारतवासी नहीं पा सके।

भारत गवर्नमेन्टका परराष्ट्र विभाग।

	अंगरेज	भारतवासी
अजमेर-मेरवाड़ा	४	२
बलूचिस्तान	२०	०
बड़ोदा	३	०
मध्यभारत	१४	०
गिलगिट	३	०
हैदराबाद	४	०
कश्मीर	६	०
खुरासान और सीस्तान	५	०
मैसूर	५	०
नेपाल	२	०
पारस्य उपसागर	६	०
राजपूताना	१८	०

इनमें केवल मात्र अजमेर मेरवाड़ामें १ भारतवासी [illegible] और १ [illegible] पुलिसकी तरह काम करते हैं। बाकी सभी [illegible] हैं, और तनख्वाह भी [illegible] नहीं है।

भारतीय विविध विभाग

	अंगरेज	भारतवासी
[illegible]	६	१
[illegible]	३	०
[illegible]	८	०
[illegible]	१००	०

सामुद्रिक रक्षा	१३	०
कृषि	१३	३
भारत जरीप [सर्वे]	८	०
पशुचिकित्सा	३	०
नभोविद्या	६	१
आरण्य गवेषणा और कालेज	१०	३

डाक और तार विभाग।

इस विभागके डाईरेक्टर जेनरल और उनके प्रतिनिधि, सभी अंगरेज हैं। [illegible] भागमें ९ परिचालक कर्म्मचारियोंमें भी ६ अंगरेज हैं। टेलिग्राफ इंजीनियरिंग विभाग [illegible] कर्म्मचारी हैं, सभी अंगरेज हैं। ट्राफ़िकके भी ३ कर्म्मचारी अंगरेजही हैं। डाक और [illegible] विभागके हिसाब आफ़िसमें ४ यूरोपीय और ६ भारतीय है। तारके स्टोर आफ़िस और [illegible] खानामें ५ अगरेज और १ भारतीय हैं। रलवे मेल सर्विसमें ८ अंगरेज हैं और ३ भारत[illegible] है, परन्तु यहाँ भी ये ऊँचे पदपर नहीं हैं।

समस्त प्रादेशिक डाकविभागमें ५६ अगरेज और १० भारतीय कर्म्मचारी हैं। भार-तीय कोई पोस्टमास्टर जेनरल नहीं है। तार विभागमें ७६ अंगरेज १२ अन भारतीय हैं।

प्रादेशिक कृषि विभागोंमें।

प्रदेश	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	७	२
बम्बई	११	०
मद्रास	१०	२
आसाम	४	०
बिहार	७	२
बर्म्मा	८	०
मध्यप्रदेश	६	०
उत्तर पश्चिम सीमान्त	१	०
पञ्जाब	६	१
युक्तप्रान्त	१०	२

इस विभागका उद्देश्य होना चाहिए कृषकोंको उपदेश प्रदान करना। क्योंकि अधिकांश कृषक निरक्षर हैं। भारतीय कर्म्मचारी होनेसे उन्हें कुछ शिक्षा भी देते, परन्तु देशी भाषामें अनभिज्ञ अंगरेज यहां भी कर्मी [illegible] हैं।

प्रादेशिक वनविभाग समूह।

इन [illegible] २२६ यूरोपीय कर्मचारी हैं। और [illegible] [illegible] हैं। एक [illegible] और एक [illegible] नियुक्त हैं।

भारतमें उच्च राज-नौकरियाँ

आबकारी, नमक, अफ़ीम आदिमें ।

प्रदेश	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	३३	५
बम्बई	३७	६
मद्रास	२८	२
आसाम	२	०
बिहार	४	१३
बर्म्मा	३५	२
मध्यप्रदेश	४	०
उत्तर पश्चिमय सीमान्त	४	०
पञ्जाब	८	०
युक्तप्रदेश	२४	१

भारतीय जरीप विभाग

प्रदेश	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	६	०
मद्रास	७	०
आसाम	५	०
बिहार	२	०
मध्यप्रदेश	२	०
पञ्जाब	१७	२

प्रांदेशिक रजिस्ट्रेशन विभागमें ८ अंगरेज और ३ भारतीय कर्म्मचारी हैं ।

पुलीस विभाग ।

	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	१०१	२
बम्बई	७८	१
मद्रास	७६	३
आसाम	४१	०
बिहार	२६	१
बर्म्मा	१३३	१६
मध्यप्रदेश	५०	२
उत्तर पश्चिम सीमान्त	२१	०
पञ्जाब	६४	१
युक्तप्रदेश	११२	०

बम्बई के पुलिस विभागमें केवल भारतीय डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ही रक्खे [illegible] हैं, इसलिए उनमें भारतीयोंकी संख्या [illegible] अधिक दिखती है। [illegible] डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट भारतीयोंको गणना नहीं [illegible] गया है। क्योंकि वास्तवमें [illegible] नहीं है। [illegible] हैं, पुलिस हेड और असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट [illegible] है। इनमें [illegible] भारतीय सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। असिस्टेन्ट एक भी नहीं।

सामुद्रिक विभाग।

बङ्गाल, बम्बई, मद्रास, आसाम, और बर्म्मा प्रदेशके सामुद्रिक विभागोंमें [illegible] हैं, [illegible] वे सभी अंगरेज हैं।

परराष्ट्र विभागके अधीन शिक्षा कर्मचारी।

इनमें यूरोपीय २१ और भारतीय १ हैं।

शिक्षा विभाग।

प्रदेश	यूरोपीय	भारतीय
बंगाल	६५	१
बम्बई	३०	१
मद्रास	३२	३
आसाम	६	१
बिहार	२३	१
बर्म्मा	१६	५
मध्यप्रदेश	२४	२
उत्तर पश्चिम सीमान्त	२	१
पञ्जाब	२८	०
युक्तप्रदेश	२४	०

आसामकी एक मात्र देशी कर्म्मचारी महिला हैं। वे, २६०) मासिक वेतनमें असिस्टेन्ट इन्स्पेक्ट्रेसका काम करती हैं। बर्म्माकी तालिकामें १ प्रतिनिधि इन्स्पेक्टर और २ सहकारी इन्स्पेक्टर हैं। उत्तर पश्चिम सीमान्तके देशी लोगोंका मासिक वेतन १००) मात्र है।

ईसाई और पादरी लोगोंका विभाग।

दसो प्रादेशिकविभागमें २१६ अंगरेज हैं और दो जन भारतीय हैं।

प्रादेशिक चिकित्साविभागोंमें

प्रदेश	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	४२	१
बम्बई	५७	७
मद्रास	५०	६
आसाम	११	२

बिहार	२३	१
बर्म्मा	५९	१
मध्यप्रदेश	२९	१
उत्तर पश्चिम सीमान्त	११	०
पञ्जाब	४४	३
युक्त प्रदेश	५६	२

प्रादेशिक राजनैतिक विभागोंमें।

इन सब विभागोंमें ६६ यूरोपीय और ५ जन भारतीय कर्म्मचारी हैं। भारतीयोंमें एक जनके अतिरिक्त सब सामान्य पद पर हैं।

पूर्त्त विभागोंमें।

प्रदेश	अंगरेज	भारतीय
बंगाल	४४	१८
बम्बई	७१	३०
मद्रास	३७	२८
आसाम	२३	२
बिहार	३३	१८
बर्म्मा	१०५	८
मध्यप्रदेश	३८	१८
उत्तर पश्चिम सीमान्त	३०	१
पञ्जाब	२७६	४६
युक्त प्रदेश	१३९	२६

असिस्टेन्ट इञ्जीनियरको भी तालिकामें शामिल करनेसे देशी लोगोंकी अवस्था इस विभागमें अन्य विभागोंसे कुछ अच्छी मालूम होती है, किन्तु वास्तवमें अधिक अच्छी है नहीं।

रुड़की इञ्जीनियरिंग कालेजमें १८ विदेशी अध्यापक शिक्षक प्रभृति हैं। देशी अध्यापक केवल एक है।

कोयली खोज विभागमें ८ अंगरेज १ देशी कर्म्मचारी हैं।

अण्डमन द्वीप पुञ्जोंमें १२ जन विदेशी और ३ जन भारतीय हैं।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी नौकरियां हैं किन्तु उनका केवल नाम मात्र दिया गया है।

विविध नौकरियोंमें।

	विदेशी	देशी
भारत गवर्नमेन्ट	६०	२

स्वार्थ

बंगाल	१५	०
बम्बई	१८	०
मद्रास	१६	०
आसाम	६	०
बिहार	८	०
बर्मा	११	०
मध्यप्रदेश	५	१
उत्तर पश्चिम सीमान्त	१	०
पञ्जाब	१०	१८
युक्त प्रान्त	२८	०

* सिविल सर्विस परीक्षा केवल विलायतमें होनेसे सिविलियन नौकरी तो हम वैसे ही कम पाते हैं। दूसरे, पुलिस परीक्षा भी लन्दनमें होती है इसलिए उसे भी देनेमें हममेंसे अधिकांश लोग असमर्थ रहते हैं। इन दो तरहकी नौकरियोंके बाद भी देखा जाता है, हम अधिक महीना पानेवाली अच्छी नौकरियोंसे भी बराबर वंचित रक्खे जाते हैं। उच्चपदस्थ अंगरेज कर्मचारी लोग हमारे शिक्षित युवकोंसे कहते हैं—"तुम लोग नौकरी नौकरी क्यों चिल्लाते हो? स्वाधीन व्यवसाय क्यों नहीं करते। सरकार क्या सभीको नौकरी दे सकती है।" किन्तु उनकी यह बात तब तक हास्यजनक प्रतीत होगी, जब तक कि वे सब तरहकी नौकरियोंके पदपर योग्य देशी लोगोंको नियुक्त कर इस तरहका उपदेश न दें। उस तरहकी ऊँची सभी नौकरियाँ देनेके बाद उनका यह उपदेश अच्छा मालूम हो सकता है।

इस प्रबन्धमें ऊपरकी दी हुई तालिकाओंको देख कर सहजही सभीको दुःख होगा, किन्तु कोरा दुःख प्रगट करनेसे कभी कुछ नहीं हो सकता। सब तरहके पद हम अभी प्राप्त कर सकते हैं, केवल पुरुषार्थकी आवश्यकता है। जो पुरुषार्थी हैं, विद्वान हैं, वे लोग क्रमशः उनपर अधिकार जमानेकी चेष्टा करें।

अब सम्राट्की नई घोषणासे कुछ पक्की आशा भी बंधी है। परमात्मा, सम्राट् और भारतवासियोंकी अभिलाषा शीघ्र पूरी करें।

अम्बिकाप्रसाद गुप्त



गौ पालनेका खर्च



यदि हम कहें कि तीस करोड़ भारतवासियोंमें स्वदेशके प्रभावसे बीस करोड़से अधिक मनुष्य शुद्ध दूधका स्वाद ही भूल गये हैं तो हमारे कथनमें अति-शयोक्ति न होगी। इतना ही नहीं गाँवोंमें जिन गरीब किसानोंके दरवाजेसे होकर गाय भैंसोंकी पाँती जंगलोंको जाती है या जब वह सन्ध्याको पहाड़ोंसे उतरती है तो उन्हें ईश्वर भी कभी यह लालसा नहीं होती कि हमारे घर एक दो गायें होतीं तो कितना अच्छा था! शहरोंके लिए घरमें 'लक्ष्मी' बाँधनेका विचार कुछ वैसा ही प्रतीत होता है जैसे झोंपड़ोंमें रहना और ख्वाब देखना महलोंके। इसीलिए शहरोंके भले आदमी चाहे दूसरोंकी जोड़ी फिटन, बाग बगीचा और इमारत देखकर क्षण भर थोड़ी देरके लिए सहम जावें और सोचने लगें कि क्या हम भी कभी जोड़ीमें बैठेंगे क्या हमारे भी बगीचा होगा? परन्तु यह ध्यान कभी नहीं होता कि किसी रूपमें हमारे घर भी एक गोशाला हो, उसमें कमसे कम एक अच्छी सी गाय पले और हमें सुबह शाम शुद्ध, ताजा निरोग दूध पीनेको मिले।

इस स्थितिके कई कारण हो सकते हैं। गाँवोंमें गाय भैंस ही निर्धन किसानोंके सर्वस्व होते हैं सो नकद रुपयोंकी आवश्यकता पड़ते ही उनको तुरन्त इन जानवरोंको बेच डालना पड़ता है। बादमें जब लोग गल्ले और जौ बाजरेकी रोटी भी जीवन-निर्वाहके लिए नहीं मिलती तो दूध पीनेके लिए दाम देकर गौ कौन पालता है? उनका 'लहना' 'पावना' ऐसा बराबर रहता है कि मेले या बाजारसे गाय खरीद लाना असम्भव हो जाता है। शहरोंमें घास भूसीकी महँगी, मकानकी तेजी और समयके अभावसे घरमें गौ पालना एक बड़ी बात हो जाती है। परन्तु यदि घरमें गौके न होनेकी असुविधा, खर्च और भयका पूरा विचार किया जाय तो हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि बिना गौ पाले किसी हिन्दूकी गृहस्थी चलना सर्वथा असम्भव है।

कहनेके लिए लोग कह देते हैं कि गौ पालना महा झंझट है, बड़े धनाढ्य आदमियोंका ही काम है परन्तु बच्चोंके लालन पालन, रोगियोंके पथ्य और पूजा त्यौहार और अन्य गर्भके संस्कारके लिए किस परिश्रम, खर्च और खुशामदसे हम सेर आधसेर दूध खरीदते हैं यह सबको मालूम है। बड़े बड़े शहरोंमें तो जबतक किसी अहीर या 'डेरी' से दूध बँधा न हो तो एकाएक रुपयेके चार सेरके हिसाबसे भी एक छटाँक दूध मिलना दुर्लभ हो जाता है। पेशगी देने, बड़ी बड़ी मिन्नतें करने और सुबह शाम हाजरी देने पर भी जो दूध मिलता है उसकी शुद्धताका कुछ ठीक नहीं। उसमें खरिया, मक्खन निकाला बासी दूध, गन्दा पानी, न जाने क्या क्या मिला रहता है। ऐसे दूषित दूधमें कृमियोंके सम्पर्कसे हमारे सामने एक योग्य डिप्टी साहबको बातकी बातमें ऐसी सख्त पेचिशकी बीमारी हुई कि उसीमें उनका देहान्त हो गया। एक मित्रके घरमें दो बालक और स्त्रीको मोतीझरा हो गया

जिसमें एक मासतक रोगी बेसुध पड़े रहे, उनकी सेवा शुश्रूषामें अपनी नौकरी छोड़ दिन और रात मेरे मित्र भी बावले रहे। यदि नौकर और अहीरपर भरोसा न हो तो लोटा या बासन लेकर दूधके लिए खुद अहीरके दर्वाजे पहुँचिये। इस कवायदसे भी लोगबाग नहीं चूकते। सवेरा हुआ नहीं कि अहीरके गोशालाको चल पड़े। इन अहीरोंके पाससे आधे दूसरे छोटी पूँजी वाले अहीर भी फेरी करनेके लिए दूध ले जाते हैं। वह अपने ग्राहकोंके हाथ दूधमें पानी इत्यादि मिलाकर बहुत महँगा बेचते हैं इसलिए बड़े अहीरसे दूध लेते वक़्त ज्यादा दाम भी देते हैं। जिस दिन अहीरका दूध इस प्रकार बिक जाता है उस दिन सफेद पोश बाबुओं को पेशगी देने पर भी खाली हाथ लौटना पड़ता है। उनका बच्चा भूखा रोवे, रोगी बिना पथ्यके तुहल जाय या आप सूखी रोटी खांय, अहीरकी बलासे। इस प्रकार तो दूधका सौदा होता है! बाजारमें प्रायः सामनेका दुहा दूध रुपयेका चार और पाँच सेर मिलना कठिन हो जाता है। कैसा अन्धेर है! हिन्दुओंका आदर्श आहार, बालक बालिकाओंकी बाढ़के दिनोंमें निर्विकार पुष्टि देने वाला, रोगी और वृद्धका एक मात्र आधार दूध—हमको अलभ्य हो गया है।

ऐसे अवसरोंपर यदि हम यह पूछें कि इस अमूल्य दूधकी देनेवाली गौको घरमें प्रतिष्ठा करनेमें आख़िर क्या अड़चने हैं तो सबसे बड़ी बात उसके दाने पानीका ही खर्च मालूम होगा। आप कहेंगे बड़ी हिम्मत करके कोई साधारण सी गौ ख़रीद भी लें तो घास भूसा और कराईमें ही दिवाला निकल जायगा। परन्तु यह मिथ्या धारणा है। गाय रखनेसे किसीका घर नहीं बैठ सकता। मामूली कसबेसे लेकर बड़े शहर तक हम कहीं भी हिसाब लगाकर देखें कि एक गौके पीछे गोशालाके किराये, गौत तथा रखवालीमें क्या खर्च होता है तो पता चलेगा कि वह जितना दूध देती है उसके आधे या तीन चौथाई दामसे ज्यादा नहीं पड़ता। कसबे या छोटे शहरोंमें दूध मंद भावपर बिकता है तो वहाँ गौत भी किफायतसे मिलती है। बड़े शहरोंमें यदि गौतके लिए अधिक देना होता है तो दूध भी अधिक निर्खपर बिकता है। इस प्रकार गौका निर्वाह सर्वत्र उसके दूधसे एकसा निकल आता है वरन् प्रति दिन उससे कुछ बचत भी होती है जो उसके उन दिनोंके पोषणके लिए काफी समझनी चाहिए जब वह गाभिन होनेपर दूध नहीं देती। घर बैठे, समयपर यथेष्ट, शुद्ध, ताजा, निरोग, तौलमें पूरा दूध मिल जाता है, यही अपना फायदा समझिये।

यह निरी कल्पना नहीं है। कागज पेन्सिल लेकर हिसाब कर लीजिये सब जगहोंमें गौतका दर समान नहीं है परन्तु फिर भी एक अन्दाज़ किया जा सकता है। गौतका परिमाण जानवरके ऊपर निर्भर है अर्थात् अच्छी जातके लिए अनाज, खली, घास इत्यादि अधिक और साधारण देसी जानवरके लिए भूसी कराई और खली आदि थोड़े परिमाणमें ये देनेसे काम चल जाता है। एक अच्छी कसौटी गौकी गौतका खर्च जोड़ लीजिये, दूसरे जानवरोंके खर्चमें उसी अन्दाजसे कमी-बेशी हो सकती है।

एक कसौटी या हिसाब लो जो गौ प्रति दिन १० सेर दूध देती है उसकी खुराकका ख़र्च

गौ पालनेका खर्च

(१)	दो सेर चना दर रुपयेके ७ सेर दाम	= ०—४—६
(२)	चार सेर कराड़े, दर रुपया ११ सेर ,,	= ०—५—६
या	{ एक सेर चुनी दर ५० की ८ सेर } { दो सेर कराड़े } लगभग दाम ०—५—०	
(३)	दस सेर भूसा*—दर रु० के २० सेर दाम	= ०—८—०
	या ५ सेर घास या कड़बी—दाम ०—४—०	
(४)	गुड़ और नमक ..	= ०—०—६
	प्रति दिनका खर्च	१—२—६
	प्रति मास	३५—२—६
	रखवाली—प्रति मास	०—८—०
	टाँकेका किराया ,,	०—८—०
	नाद या घमला, गुदड़ा, रस्सा	०—२—६
	कुल खर्च	३६—५—०

इसमें गोबर इत्यादिकी बिक्रीसे ५ आने पैसे प्रति मास निकल आयेंगे। शेष ३६)रु० प्रति मास कुल खर्च होगा। गौवें बछड़ा देनेके ६ महीने बाद बहुधा फिर गाभिन होती हैं। इस हिसाबसे पहले तीन मास तो वह पूरा १० सेर रोजाना दूध देती जायँगी, पश्चात् उनका दूध पहलेसे ¾ हो जाता है अर्थात् करीब ७ सेर प्रति दिन देंगी। तीन मासके बाद दूध पाँच सेर तक उतर जाता है, जो बच्चा देनेके तीन मास पहलेतक देती रहती है। इसका ध्यान रख कर दूधकी आय देखी जाय तो पहले तीन माससे रुपयेके ४ सेरकी दरसे २२५) रु० पश्चात् तीन मासमें १५७॥) और पिछले छ महीनेमें २२५)रु०, बाद तीन महीने दूध बिलकुल थोड़ा या नहींके बराबर समझना चाहिये, अर्थात् कुल १५ महीनोंमें ६०७॥) की आय होगी।

उधर खर्चका हिसाब ३६)×१५)= ५४०) होगा।

यदि गौकी खरीदका दाम १००) रख लिया जावे और यह मान लिया जाय कि पाँच बच्चे देनेके बाद वह प्रायः निर्बल और शिथिल हो जायगी तथा केवल पिंजरापोलमें विश्रामके लिए छोड़ देने योग्य रहेगी तो इस अवधिमें अर्थात् ५×१५ मास = सवा छः सालमें खरीदका दाम भी वसूल होना चाहिये। इस हिसाब से ५४०) में १६) सालाना और जोड़िये, इसके अलावा सैकड़ा ५) सालाना सूदका भी रखिये, गरज कुल खर्च ५६१) का हुआ। एक बात और रह गई, प्रति १५ मासके उपरान्त अच्छे साँड़से जोड़ खिलानेके लिए ५)से कम नहीं

* भूसा या कराड़े, बैशाख जेठमें लेनेसे और भी सुविधा हो सकती है।

वेने होंगे सो सब मिलाकर ५६६) ख़र्च हुए। अब एक दृष्टि आयपर डालिए। ऊपरके हिसाब
से ६०७॥) प्रति १५ महीने हम निकाल ही चुके हैं, इसमें एक बचेका दाम भी जोड़ना
चाहिये। औसत दर्जे गौके असली दामका दसांश फी बचा मिल जाता है। इसलिए सम्पूर्ण
आय (६०७॥)+१०)) = ६१७॥) हुई सम्भव है। कभी गौ बहक कर मवेशी खानेमें
पहुँच जाय, रोगी हो जानेपर उसे अस्पतालमें भेजना पड़े, इन सबकी फीसमें १०) साल
और खर्च हो सकते हैं। इस प्रकार अन्तिम आयव्ययकी तुलना इस प्रकार होगी–

५६६ + (१० रु० अस्पताल और मवेशी खानेके) अर्थात् कुल खर्च ५७६) रु०

दूध, बचा, गोबर इत्यादिसे कुल आय ६१७॥)

यदि आपने कोई साधारण देशी गौ ख़रीदी तो नागौरी गौके मुकाबले गौतका ख़र्च
आधा होगा, परन्तु दूध आधासे भी कम होगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि देशी गौ पालनेमें
फ़ायदा नहीं है। परन्तु जिसके पास इतनी पूँजी नहीं है वह विवश होकर देशी ख़रीदा ही
चाहे। कुछ भी हो ऊपरके लेखेमें हम आयव्ययमें जो अन्तर देखते हैं अर्थात् ६१७॥) से
५७६) घटाइये तो ४१॥) की जो बचत दिखाई पड़ती है उसे बाज़ार दरमें गौतकी घटती
बढ़तीके लिए रख छोड़ें, साधारण गौ पालनेके अधिक ख़र्चका हिसाब करें, तब भी किसी सूरतमें
यह नहीं कहा जा सकता कि गौ पालने वालेको तनिक भी इस बातका भय है कि वह गौ
पालनेके पीछे दिवालिया हो जाय। यदि हम इस ओरसे उदासीन हो रहे हैं तो उसका
वास्तविक कारण यह है कि हिन्दू सभ्यता और जीवन आदर्शसे हम विमुख और बेसुध हो रहे
हैं। विलायती चूहा और खर्गोश, शिकारी कुत्ता, चीनी मुर्गी इत्यादि पालनेसे हमें 'कल्चर्ड'
और 'मैन आव टेस्ट' की उपाधि मिलेगी, गौ पालनेपर वही पुराने बछियाके ताऊ
कहलायेंगे। बेशक!

गोपालनारायण सेन सिंह



पुस्तकावलोकन

भारतवर्षमें जातीय शिक्षा—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालंकार, गुरुकुल-कांगड़ी। जिल्द सादी; पत्रसंख्या ९५। मूल्य ॥)

देशमें जातीयताके भाव जाग्रत होनेसे लोगोंका ध्यान वर्तमान शिक्षाप्रणालीकी त्रुटियोंकी ओर अब विशेषरूपसे आकर्षित होने लगा है। देश, काल और जातीय जीवनकी आवश्यकताओंको भुलाकर जो शिक्षा दी जायगी वह अपनी उद्देश्य-सिद्धिमें पूर्णतः कभी सफल नहीं हो सकती। वर्तमान शिक्षा-प्रणालीके अनेक दोषोंका सार यही है कि वह विजातीय है। हमारे आदर्श, स्वधर्म, ललितकला, सभ्यता और देशी भाषाओंकी ओरसे तो पूरी उदासीनता दिखाई जाती है। ऐसी दशामें जातीयताके भाव जाग्रत करनेमें और युवककी बुद्धि और विचार-शक्तिका पूर्णविकास करनेमें यदि यह शिक्षा असमर्थ रही हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पुस्तकमें जातीय शिक्षाके सिद्धान्तोंका वर्णन बड़ी अच्छी तरह किया गया है। उसके महत्त्वको समझानेमें लेखक महाशयने विचारवान लोगोंके प्रमाण भी दिये हैं। पुस्तक पढ़नेसे जातीय शिक्षा सम्बन्धी बहुतसी बातोंका ज्ञान होता है और जो संस्थाएँ देशमें इस शिक्षाका प्रचार कर रही हैं उनके विषयमें भी लेखक महाशयकी विचारयुक्त सम्मति मालूम होती है।

प्रेम-पूर्णिमा—लेखक श्रीयुत "प्रेमचन्द" जी। प्रकाशक हिन्दीपुस्तक एजेन्सी; १२६, हरिसनरोड; कलकत्ता। पत्रसंख्या २५८। मूल्य २) सजिल्द।

श्रीयुत "प्रेमचन्द" जीकी चुनी हुई पन्द्रह गल्पोंका यह संग्रह है। गल्प एकसे एक बढ़कर हैं। 'प्रेमचन्द' जीकी रसमयी लेखनीका चमत्कार हिन्दी संसारसे अब छिपा नहीं है। जिनकी भाषा हिन्दी नहीं है वे भी इनकी प्रतिभाके कायल हैं। भावोंकी सरसता, चरित्रचित्रण, स्वाभाविकता, रोचकता और उपायने इन गल्पोंको हिन्दीमें अनुपमेय बना दिया है। गल्प और उपन्यास सर्वप्रिय होते हैं। अतएव सभी भाषाओंमें पाये जाते हैं परन्तु जिस भाषामें 'प्रेमचन्द' जीकी गल्प लिखी जाती हों उसको उचित गर्व हो सकता है। पुस्तककी जिल्द और छपाई बड़ी सुन्दर है तीन चित्र भी दिये गये हैं। मनोरंजनकी सामग्री और पुस्तकाकारकी शोभा—यह दोनों ही इसमें विद्यमान हैं।

रघुनाथराव नाटक—लेखक और प्रकाशक—श्रीयुत साह मदनमोहन, मैनेजर लक्ष्मण-साहित्य-भण्डार; चौक, लखनऊ। पत्रसंख्या १११; जिल्द सादी। मूल्य ॥=)

महाराज शिवाजीके समयका यह एक ऐतिहासिक नाटक है। पढ़नेसे ... मालूम होता है। पात्रोंके आदर्श चरित्र ... मालूम होते हैं। ...

नहीं आने पाया है। इतिहास की घटनाओंके साथ व्यक्तियोंके चरित्रोंको अच्छी तरह गूंथा है। नाटक खेलने लायक है।

नकली और असली धर्मात्मा—लेखक बाबू सूरजभानु वकील, देवबन्द। प्रकाशक—चन्द्रसेन जैन वैद्य, इटावा। जिल्द सादी; पत्रसंख्या १६६। मूल्य ॥)

यह एक सामाजिक उपन्यास है। भाषा इसकी बोलचालकी है। जीवन संबन्धी प्रतिदिनकी घटनाओंका वर्णन करते हुए पाठकोंको शिक्षा भी प्राप्त हो इस बातका ध्यान लेखक महाशयने बराबर रक्खा है। कितने ही मुख्य सामाजिक प्रश्नोंपर अच्छे विचार प्रकट किये गये हैं।

सन्तोष अथवा ऋषिमुनि—लेखक श्रीयुत डा० महेशचरणसिंह, बी०ए०, एम०एस०सी०। प्रकाशक—श्रीमान् साह मदनमोहनजी, लक्ष्मण-साहित्य-भण्डार, चौक लखनऊ। पत्रसंख्या १२८, जिल्द सादी। मूल्य ।|-)

यह एक जापानी आदर्श पुरुषका जीवन-चरित्र है। निर्धन कुटुम्बमें जन्म पाकर, बिना पूरी विद्या प्राप्त किये केवल चरित्रबल, दृढ़ता और स्वार्थत्यागसे मनुष्य अपनेको कैसा विजयी और समर्थ देश सेवक बना सकता है यह इस जीवन चरित्रके पढ़नेसे मालूम होगा। मनन करने योग्य उपदेश इस पुस्तकमें जगह जगह मिलते हैं।

आरोग्य-साधन—मूल लेखक—महात्मा गांधी; अनुवादक पं० बलदेव-प्रसाद गुप्त। प्रकाशक हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता। जिल्द सादी; पत्र-संख्या १६१। मूल्य ।-)

महात्मा गांधी जब दक्षिण अफ्रीकामें रहते थे तब उन्होंने अपने आरोग्य सम्बन्धी बीस वर्षके अनुभवको अपने प्रजाकी [illegible] आरोग्यके लाभार्थ एक [illegible] प्रकाशित किया था। उसी [illegible] का यह हिन्दी अनुवाद है। महात्मा गांधीका यह एक [illegible] उनके [illegible] अन्वेषण और अनुभवकी [illegible] है। शरीर रचना, हवा, पानी, खुराक, व्यायाम आदि उपयोगी विषयोंपर [illegible] विचार किया गया है और फिर दूसरे [illegible] उपचार दिये गये हैं। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और इसमें दिये हुए [illegible] [illegible] [illegible]। महात्मा गांधीकी [illegible] [illegible] मार्गदर्शक है परन्तु सबके उपयोगी भी है।

[illegible] —लेखक बाबू [illegible] एम० ए०, बी० एल० काव्यतीर्थ। प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ४०। मूल्य सजिल्द ॥)

पुस्तकका विषय नाम हीसे प्रकट है। एक अंग्रेजी पुस्तकके आधारपर लिखी गई है। भारतके [illegible] सफलता प्राप्त करनेके लिए [illegible] कार्यकुशल बननेकी आवश्यकता होती है। उसके जानने योग्य सरल बातें पुस्तकमें दी गई हैं। छपाई बड़ी सुन्दर है। मूल्य कुछ कम होता तो अच्छा था।

स्त्रीधर्मका वैदिक आदर्श—लेखक व प्रकाशक पण्डित देवदत्त विद्यालंकार डी० ए० वी० स्कूल, प्रयाग। पृष्ठसंख्या १३२ जिल्द सादी। मूल्य ॥~)

हिन्दूसमाजमें स्त्रियोंको कौनसा स्थान प्राचीन कालमें प्राप्त था और उनके लिए पुरुषोंकी तरह किन किन संस्कारोंका विधान किया गया था यह बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होती हैं। लेखक महाशयने बड़े परिश्रमसे वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र, साहित्य और इतिहासमेंसे प्रमाण देकर पुस्तककी उपयोगिता और महत्त्वको बढ़ा दिया है। अंगरेजी विद्वानोंके भी थोड़ेसे मत दिये गये हैं। पुस्तक देखने योग्य है।

हिन्दी-मनोरञ्जन—कानपुरसे प्रकाशित मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य २॥) प्रतिसंख्या ।)

इस पत्रके दो अङ्क हमारे देखनेमें आये हैं। आकार 'सरस्वती' का है। इसमें गद्य और मनोरञ्जनकी सामग्री रहती है। छोटी कहानियाँ अच्छी लिखी हुई हैं हमको आशा है कि पत्र शीघ्र ही लोकप्रिय बन जायगा। इसका वार्षिक मूल्य अधिक नहीं है।

वैद्य—सम्पादक श्रीयुत शङ्करलाल वैद्य। प्रकाशक-श्रीयुतहरिशंकर वैद्य मुरादाबाद। वार्षिक मूल्य १।)

यह मासिकपत्र प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक सम्बन्धी है। जनवरीकी संख्यामें आयुर्वेदके ह्रासके कारण, प्राचीन आहारविधि, प्लेगसे बचनेके उपाय आदि अच्छे लेख हैं। पत्र वैद्योंके लिए ही नहीं जन साधारणके लिए भी अच्छा है। सरल उपचार भी कुछ रोगोंके इसमें दिये हुए हैं।

रोजगार—लखनऊसे प्रकाशित उर्दूका मासिकपत्र। प्रकाशक-पं० देवीप्रसाद भट्ट १६, अमीनुद्दौला पार्क। मूल्य ४) वार्षिक।

इस पत्रका उद्देश कृषि, उद्योगधंधे, व्यापार और शिल्पकी उन्नति है। जनवरी मासके अङ्कमें लेख सब अच्छे हैं। पत्र बहुत कामका है।

फ़िजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा—अनुवादक 'एक भारतीय हृदय'। प्रकाशक श्रीयुत शिवनारायण मिश्र वैद्य, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर। पृष्ठ संख्या २४०; मूल्य १) सजिल्द।

प्रवासी भारतवासियोंका प्रश्न ब्रिटिश साम्राज्यके सामने वर्षोंसे उपस्थित है। न्याय और नीतिकी दृष्टिसे इस प्रश्नका निपटारा सहज हो सकता है। परन्तु स्वार्थान्ध गोरे-की चाल कुछ औरही होती है। यही कारण है कि प्रवासी भारतवासियोंकी दशा केवल भारत-वर्षको ही नहीं बल्कि साम्राज्यभरको कलंकित करती है। प्रवासी देशभाइयोंका उद्धार किस प्रकार करना चाहिए इसके जाननेके पहिले सर्वसाधारणको यह मालूम होना आवश्यक है कि वहाँ किस दशामें लोगोंको रहना पड़ता है, आरकाटियोंके चुंगलमें लालच वश फँसजानेसे लोगोंकी क्या दशा होती है और प्रतिज्ञाबद्ध हो जानेसे कैसी दासता स्वीकार करनी पड़ती है। मि० एण्ड्रयूज और मि० पियर्सन दो भारतहितैषी अंगरेजोंने हालमें स्वयं फ़िजीद्वीप जाकर भारतवासियोंकी दशाको आँखोंसे देखा और अपना एक विवरण प्रकाशित किया। प्रस्तुत पुस्तक उसी विवरणका हिन्दी भाषान्तर है। पुस्तकमें ५० पत्रसे ऊपरकी एक भूमिका अनुवादककी लिखी हुई है। अनुवादक इस प्रश्नके मर्मज्ञ हैं। 'प्रवासी भारतवासी' लिखकर आपने इस विषयपर जो प्रकाश डाला है उसको हिन्दी कभी नहीं भूल सकती। पुस्तक देखनेसे पाषाणहृदय भी पसीज कर एकबार अपने भाई बहिनोंके साथ प्रदेशमें जो अत्याचार एक सभ्य कहलाने वाली जाति द्वारा हो रहे हैं उनको जानकर अपने आँसू न रोक सकेगा। हमारी बेबसी और अवनतिका जीता जागता चित्र इस पुस्तकमें देखिये।

हृदय-तरंग—संग्रहकर्ता पं० बनारसीदास चतुर्वेदी। प्रकाशक—श्रीनागरी प्रचारिणी सभा, आगरा। पत्र संख्या २३७ मूल्य १) सजिल्द।

पण्डित सत्यनारायण कविरत्नकी फुटकर कविताओंका यह संग्रह है। संग्रह उन्होंने स्वयं इसी नामसे छपवाना आरम्भ किया था परन्तु उसके प्रकाशित होनेके पहिले ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। पं० सत्यनारायणजीके असमय स्वर्गवास होनेसे हिन्दी संसारको जो क्षति पहुँची है उसका अनुमान नहीं हो सकता। प्रतिभा तो उनकी चमक चुकी थी परन्तु आयु पूर्ण होती तो न जाने पवित्र शक्ति कहाँ तक पहुँचती। पं० सत्यनारायणकी कविता जैसी रसमयी है वैसी ही उनकी हृदय भी निराला ही था। कविताके सम्बन्धमें हम क्या कह सकते हैं! हमारे लिए तो प्रत्येक पंक्ति सत्यनारायण ही है। कितनोंहीको इनमेंसे बारबार उन्हींके मुखसे सुना है। हमारे लिए यह संग्रह जितना आनन्ददायक है उतना ही पढ़कर कविका स्मरण दिलाकर दुःखदायक भी है। चतुर्वेदी जीने संग्रह और प्रकाशकर एक स्वर्गीय मित्रके प्रति एक कर्तव्य ही पालन नहीं किया, बल्कि हिन्दी साहित्य और कविताप्रेमियोंके लाभके लिए अच्छा कार्य किया है।

बेकारीका पूरा चित्र बजटको पढ़ने द्वारा खींचा जाता है।

मि० हेलीके बजटमें विशेष ध्यान उल्लेखनीय या असाधारण बात कोई नहीं दिखाई देती। नया कर सिवाय सुपर-टैक्सके कोई नहीं लगाया गया और न प्रजाका कोई बोझ हलका किया गया। विनिमय और करोंकी गड़बड़ी, अफगान युद्ध और व्यापार विशेष रूपसे ध्यान में रखकर लेखा तैयार किया गया है। जो वर्ष समाप्त हुआ है उसमें अनुमानसे आमदनी ज़्यादा हुई और इसी तरह व्यय भी अधिक हुआ। आमदनी बढ़ जानेके कारण व्यापारकी वृद्धि, अच्छी फसल और विनिमयकी गड़बड़ी है और व्ययके बढ़नेका मुख्य कारण अफगान युद्ध है। आमदनी अनुमानसे ६ करोड़ बढ़ी फिर भी खर्चके बहुत अधिक बढ़ जानेसे १६ करोड़ रुपयेके लगभग घाटा रहा। आगामी वर्षके लिए १३८ ७५ करोड़ रुपयेके लगभग आमदनीका अनुमान किया गया है और १३६ ७५ करोड़का खर्च। इस हिसाबसे २ करोड़ रुपयेकी बचत होनेकी सम्भावना है। परन्तु हेली साहबका कहना है कि इस बचतपर भरोसा न करना चाहिए। लड़ाईके लिए सरकारने प्रजासे बराबर ऋण लिया है उसका कुछ भाग इस वर्ष चुकाना है। इसलिए १५ करोड़ रुपयेका ऋण और लेना पड़ेगा।

प्रजाको इस लेखेसे सन्तुष्ट होनेका कोई विशेष कारण नहीं है। [illegible] बराबर बढ़ता चला जा रहा है। १४ दिनके अफगान युद्धमें २२, २३ करोड़ [illegible] और इस वर्ष भी सेना विभागके लिए ६० करोड़से ऊपरकी रकम रक्खी गई है। [illegible] व्यापारीकी दशाको जितनी आवश्यकता है उतनी रेलोंकी नहीं है। भारतीय [illegible] बातपर जोर देते चले आए हैं कि कृषिप्रधान देशमें नहरोंके बनानेसे [illegible] होगी बल्कि अकालका भय कम हो जायगा। परन्तु सरकार रेलोंके लिए तो [illegible] विशेष रुपया देनेको तैयार रहती है और नहरोंके लिए सकोच करती है। [illegible] रेलके लिए २२, २३ करोड़की रकम रक्खी है और नहरोंके लिए ६, ७ करोड़ [illegible] खर्चकी रकम इस कारणसे भी बढ़ी है कि सरकारी कर्मचारियोंके वेतनमें वृद्धि की गई है। भारतीय लोगोंको यह आपत्ति है कि उच्च अंग्रेजी कर्मचारियोंकी जैसी वेतनवृद्धि [illegible] वैसी भारतीय लोगोंकी नहीं, और विशेष कर [illegible] वेतन [illegible] नहीं किया गया। यदि सेनाविभागमें भी भारतीयोंको उच्च वेतनोंकी [illegible] दी जावे तो [illegible] उलहना [illegible] कम हो सकता [illegible] सरकार [illegible]

पड़ती है कि वे विलायतमें भुगतान करें या रुपया भेजें तो भारत सरकार हुन्डियाँ भारत सचिव के नाम बेचती है जिनका भुगतान विलायतमें लोग पाते हैं । गोल्डस्टैन्डर्ड रिजर्व और पेपर करन्सीरिजर्व नामक कोषोंकी सहायतासे हुन्डियोंके भुगतान किये जाते हैं । हुन्डियोंके बेचनेका मुख्य तात्पर्य यही है कि रुपये और स्टर्लिङ्गका परस्पर मूल्य स्थिर रहे । भारतीय हुन्डियोंको 'रिवर्सबिल्स' कहते हैं । 'रिवर्सबिल्स' के जारी करनेकी नौबत तब आती है जब व्यापारकी बाकी के हम देनदार ठहरते हों और उसके भुगतानमें विनिमयकी दर गड़बड़ होनेकी शङ्का हो । यह ऐसी दशामें होता है जब हमारे निर्यातमें आगतका मूल्य बढ़ गया हो, यहाँ फसल अच्छी न होनेसे हम विदेशको काफी माल न भेज सके हों । और भी ऐसी बातें हो सकती हैं जिनके कारण लोगोंको विदेशमें रुपया भेजनेमें लाभ हो सकता है । जब सूदका दर विलायतमें बढ़ जायगा तो लोग रुपया वहाँ भेजकर उससे लाभ उठानेकी चेष्टा करेंगे और जब रुपयेका मूल्य विदेशी सिक्कोंके हिसाबसे बढ़ जायगा तब भी रुपया बाहर भेजनेमें और विदेशी माल मँगानेमें लाभ होगा । जैसे पहिले रुपयेका भाव १ शिलिंग ४ पेन्सका था फिर ३ शिलिंगके लगभग बढ़ गया । ऐसी दशामें यहाँसे रुपया भेजकर विलायती माल मँगाने या वहाँ रुपया जमा करनेमें लाभ होना प्रत्यक्ष है । करेन्सी कमीशनका विवरण निकलने बाद भारतीय सरकारने भारत सचिवके नाम हुन्डियाँ बेचना शुरू किया है । इसकी क्यों आवश्यकता हुई यह मि० हेलीने बतानेका कष्ट नहीं किया है और न इसके बारेमें कोई सन्तोषजनक बात कही है । विनिमयकी दर बढ़ जानेसे और फिर उसको २ शिलिंग तक गिरानेका निश्चय होनेसे लोगोंको इसमें लाभ है कि वे विलायतमें इस समय अपना रुपया ऊँची दरके हिसाबसे जमा कराकर लाभ उठावें । आज एक हजार रुपयेमें १४२ पौण्ड विलायतमें जमा हो सकते हैं । विनिमयकी दर २ शिलिंग होने पर एक हजार रुपये १०० पौंडके बराबर ही रह जायेंगे । अँगरेज व्यापारियोंको युद्धकालमें यहाँ बड़ा लाभ हुआ है । वे अभी तक अपना रुपया सरकारी रोकके कारण विलायत नहीं भेज सके थे । तो बिना आवश्यकताके रिवर्स कौन्सिलसे बेचकर सरकारका सिवाय इसके और कोई मतलब नहीं समझमें आता कि वह अंगरेजी व्यापारियोंको विनिमयकी दर घटनेसे जो हानि होगी उससे बचानेका उपाय कर रही है । इस समय तो व्यापारकी बाकी हमारे नाम निकलती है और न विनिमयकी दरमें गड़बड़ीकी शङ्का है तो फिर किसलिए भारत सरकार इन हुन्डियोंको बेच रही है ? इसीलिए कि यूरोपीय व्यापारी इस समय रुपया भेजकर प्रति १००० रुपया १४० पौन्ड विलायतमें पावें नहीं तो फिर उनको १०० पौन्ड ही मिलेंगे । अंगरेजी व्यापारी ही नहीं और लोगोंको भी विलायत रुपया इस समय भेजनेमें और फिर [जब १ रुपया २ शिलिंगके बराबर हो जायगा] वापिस मँगानेमें बड़ा लाभ हो सकता है । यह तो स्पष्ट है कि न तो व्यापारके लिए यह आवश्यक है कि हुन्डियाँ बेची जायँ और न विनिमयकी दरके ही लिए इसकी जरूरत है इससे

हमारी हानि

क्या है ? सरकार यदि हुन्डियाँ बेचती है तो देशका क्या हर्ज है ? देशको जो

इससे हानि हो रही है उसको 'दिन रहते लूट' कहा गया है और यह बात बिलकुल सच। युद्धकालमें आयातकी मात्रा और मूल्य तो बहुत घट गए थे परन्तु निर्यात अर्थात् जो कुछ हमने विलायतको भेजा था उसका मूल्य बहुत बढ़ गया था। व्यापारकी बाकी [illegible] वालोंसे लेनी थी। या तो इसके बदले यहाँ सोना और सावरेन आते या [illegible] आता। विशेषकर सिक्का ही आता, क्योंकि व्यापार तो अब भी जारी है हाँ, [illegible] परस्पर भुगतान होता है, बाकीके लिए विलायतवालोंको बिना सिक्का दिये [illegible] बजाय इसके कि रुपया विलायतसे यहाँ आवे जैसा कि होना चाहिए एक ऐसी [illegible] सरकारको सूझ गई कि जिससे उलटा रुपया यहाँसे विलायतको जाने लगा। [illegible] अंगरेजी व्यापारियोंका या देशी व्यापारियोंका यहाँ रहता तो देशके व्यापार और उद्योग धंधे को लाभ था परन्तु विनिमयकी दर थोड़े दिनोंमें गिराकर लोगोंको यहाँसे विलायत [illegible] भेजनेका सुभीता कर दिया गया। इन दोनों बातोंके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि हुण्डियोंका भुगतान सरकार कैसे करती है। यहाँ भारत सरकार रुपया लेकर हुण्डी बेचती है और वह हुण्डी व्यापारी लोग विलायतमें भारत-सचिवसे सावरेन पाकर भुना लेते हैं। [illegible] नरियोंके कोषमें जो सावरेन हैं वे १६ पेन्सकी दरमें लिये हुए हैं अर्थात् १६ [illegible]

[illegible]

सम्पादकीय

नेने एक सभामें उत्तम और प्रतिवाद किया है । मि० जहाँगीर कम्भवजी पेटिटने मार्थिक मामलेमें जो व्याख्यान दिया उसमें सरकारी नीतिको बड़े कड़े शब्दोंमें खण्डन किया । उन्होंने बिलकुल ठीक कहा है कि यदि भारतवर्ष एक स्वतन्त्र देश होता तो इसकी नीति हमारे प्रति बिलकुल दूसरी ही होती । सब बातोंका सार तो यही है । उस सभामें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए वे जानने योग्य हैं । पहिले प्रस्ताव द्वारा यह कहा गया है कि करेंसी कमिटीके सदस्योंमें भारतीय मत निरंकुश था । हमारा पक्ष समर्थन करनेके लिए केवल एक ही देशी भाई मि० दलाल थे । और कमिटीके विवरणमें देशी व्यापारियोंके मतकी पूरी उपेक्षा की गई है । फिर विलायती हुण्डियोंके बेचनेका विरोध किया गया । और साथमें इस बातपर जोर दिया गया कि हमारे व्यापार उद्योग और पूंजीको हानिकारक होनेसे हुण्डियोंका बेचना एकदम बन्द कर दिया जाय । सोना सरकार मंगाकर यहां बेचती है और किसीको मंगानेका अधिकार नहीं है । इस रोकको उठा लेनेके लिए भी सरकारसे सानुरोध कहा गया है । करेंसी कमीशनने इस रोकको उठानेकी सलाह दी है परन्तु अभी तक सरकार ऐसा करनेमें सुभीता नहीं देखती । जिस बातमें सुभीता है वही तो मानी जाती है, दूसरी क्यों मानी जाय । मि०, एन० एम० मजूमदार जो अर्थशास्त्रके एक भारी विद्वान हैं और आजकल सर दोराब ताताके मन्त्री हैं उन्होंने जिस प्रस्तावको उपस्थित किया वह बड़े महत्वका है । उनके मतानुसार सरकारकी विनिमय और करेंसी विषयक नीतिकी पूरी जाँच नियमानुसार फिरसे होनी चाहिए जिससे प्रजामत भी स्पष्ट व्यक्त हो जाय और यह सदाके लिए निश्चय हो जाय कि सरकारकी आर्थिक नीति किसके लाभके लिए है, विलायतके व्यापारियोंके लिए अथवा देशके कल्याणके लिए ।

हमारा प्रान्तीय आय-व्ययका लेखा

अनुमान किया गया है कि प्रान्तीय आय इस वर्ष इतनी होगी जितनी पहिले कभी नहीं हुई थी । परन्तु साथमें व्ययभी इतना होगा कि पिछले किसी वर्षमें नहीं हुआ । प्रान्तीय सरकारको जो रकम भारतीय सरकारसे मिलती है वह वर्षमें पूरी नहीं ली जाती । कभी कभी उसमेंसे कुछ रकम भारतीय सरकारके पास जमा रह जाती है । इस वर्ष १ करोड़ ३५ लाख ४५ हजार रुपयेका आयसे अधिक व्यय होगा । परन्तु यह वृद्धि २ करोड़, १२ लाख रुपयेकी जो रकम भारत सरकारके पास जमा है उसमेंसे ली जायगी। फिर भी भारत सरकारके पास ७६ लाख ३८ हजार जमा रह जायेंगे । गत वर्ष जितनी आयका अनुमान किया गया था उसमें ७ लाख ६७ हजारकी कमी रही । सबसे ज्यादा कमी जंगल विभागमें रही । अनुमानसे २५ लाखकी आमदनी कम हुई । ३२ लाखका लाभ जंगलोंसे होना अनुमान किया गया था परन्तु हुआ केवल १६, १७ लाखका ही । पिछले अङ्कोंके देखनेसे जान पड़ता है कि जंगलों पर जिस हिसाबसे खर्चमें वृद्धि हो रही है उस हिसाबसे लाभ नहीं होता । पिछले चार पाँच वर्षोंमें ११ लाखका खर्च बढ़ा है परन्तु आमदनी पहिले जितनी ही है । अगले वर्ष १ करोड़से ऊपरकी आय जंगलोंसे कूती गई है परन्तु इतनी होना कम सम्भव है । दूसरी मद जिसमें भारी कमी हुई आबकारीकी है । १ करोड़ ४७ लाख आय कूती गई थी परन्तु हुई केवल १ करोड़ ३०

लाखकी। फिर भी इससे पहिले वर्षसे ९, १० लाखका लाभ विशेष हुआ। [illegible] बढ़ जाने पर भी लाभ विशेष हुआ है। यह बड़े सन्तोषकी बात है कि देशी शराबकी खपत २१ फीसदी घटी है और अफीम चरस भाँगमें ११ फीसदीकी कमी हुई है। अर्थात् मादक पदार्थोंका व्यवहार कम हो रहा है। नये बजटमें शिक्षा, सफ़ाई और महकमा इमारतके व्ययमें रकमें बढ़ाई गई हैं। शिक्षाके लिए १ करोड़ ३० लाख ७४ हज़ार रुपये रक्खे गये हैं। पिछले वर्षसे २४, २५ लाखकी वृद्धि है। सफाई पर ४६ लाख २० हज़ार व्यय करनेका प्रस्ताव है। यह रक़म दोगुनी हो गई है। पिछले वर्ष केवल २० लाखही थी। कृषिके लिए भी ३० लाख रक्खे गये हैं। परन्तु सबसे सन्तोषजनक बात शिक्षाकी है। २४, २६ लाखकी वृद्धिसे शिक्षा प्रचार और वेतन वृद्धिमें सहायता मिलेगी। कुल आय ८ करोड़ ४६ लाख अनुमानकी गई है और कुल व्यय ९ करोड़ ८४ लाखका। व्ययकी वृद्धि भारत सरकारके पास जो रक़म जमा है उससे होगी।

मकानोंके किराये

मकानोंके किराये सब जगह बेतरह बढ़ते जा रहे हैं। कलकत्ता, बम्बई और अन्य बड़े बड़े नगर और व्यापारके केन्द्रोंमें तो पूछना ही क्या है। जब सब ओर महँगीका ज़ोर है तो यह असंभव है कि किराये न बढ़ें। परन्तु जैसे अन्न वस्त्रादिकी बहुत कमी न होते हुए भी अति लालचसे माल रोककर महँगा किया जाता है इसी प्रकार भाड़ा भी खूब बढ़ाया जा सकता है और किरायेदारोंकी विवशताका पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इस बातका पता लगाना सहज नहीं है कि किरायेमें वृद्धि कितनी मकानोंकी कमीके कारण है और कितनी मालिकोंकी स्वार्थपरताके कारण है। मकानवालोंको साधारणतः अधिकार है चाहे जो किराया लें परन्तु जनसंख्याकी वृद्धि और व्यापारकी उन्नतिसे भी मकानोंका मूल्य और किराया बढ़ता रहता है। इस तरह मालिक अब कुछ खर्च तो करता नहीं तो भी किराया और मूल्य बढ़ते जाते हैं। अतएव मकानोंमें बहुत आदमियोंके रहनेसे भी स्वास्थ्यकी हानि होती है। [illegible] नहीं होगी।

ज्ञातव्य विषय तथा अंक

भारतीय आय-व्ययका लेखा

आय

खाता	संवत् १९७६ के संशोधित अंक		संवत् १९७७ के प्रस्तावित अंक	
मालगुजारी	पौंड	२२,०६०,८००	पौंड	२३,७६७,८००
अफीम	,,	२,६६०,८००	,,	२,६४२,०००
नमक	,,	३,७५९,०००	,,	४,४८८,६००
स्टाम्प	,,	७,२२३,१००	,,	७,५०७,५००
आबकारी	,,	१२,७५२,३००	,,	१३,९७८,०००
चुंगी	,,	१८,२१६,५००	,,	१७,००६,७००
इनकमटैक्स	,,	१८,७७१,०००	,,	११,३६०,४००
अन्य खाते	,,	५,०६५,३००	,,	५,१९६,८००
ब्याज		४,३८०,१००	,,	६,०१५,६००
डाक और तार	,,	५,५६०,८००	,,	६,१८९,२००
टकसाल	,,	१,६६६,७००	,,	६७६,५००
सिविल महकमे	,,	२,१५७,६००	,,	२,०३६,५००
फुटकर	,,	१,८६२,८००	,,	६,२३६,८००
रेल	,,	२१,६०७,३००	,,	२१,७७४,७००
आबपाशी	,,	५,८६३,६००	,,	५,६६५,२००
महकमा इमारत	,,	३६३,५००	,,	३७१,३००
सेनाविभाग	,,	३,१६१,६००	,,	१,५१६,५००
कुलजोड़		१३५,५७०,०००		१३४,८२५,६००
घाटा		१०,०७४,१००		..
जोड़		१४५,६४४,१००		१३४,८२५,६००

इस प्रकार नये वर्षमें आमदनी पिछले वर्षसे कम होगी ऐसा अनुमान किया गया है। १० करोड़का घाटा हुआ वह भी न होगा।

[illegible]

स्वार्थ

वर्ष १ | वैशाख १९७७ | संख्या १
भाग १ | | पूर्णाङ्क १

भारतमें सोनेके सिक्केकी आवश्यकता

यदि किसी एक विषयपर बिल्कुल एक राय होकर बिना किसी मतभेदके भारतके सब अर्थशास्त्रियोंने अपनी सरकारसे प्रार्थनाकी है तो वह विषय इस देशमें सोनेके सिक्कोंका प्रचार ही है। वर्षोंसे सब एक आवाजसे बराबर आन्दोलन करते रहे हैं कि अन्य सभ्य देशोंकी तरह हमारे यहाँ भी सोनेका सिक्का ही चालू कर दिया जाय ताकि हम लोग अनेक प्रकारके कृत्रिम नियमोंसे, जिन्हें चाँदीके सिक्केके विनिमयको स्थिर करनेके लिए सरकार उपयोगमें लाती है, छूटे पा। स० १८९३ में जबसे हर्शल कमीशन बैठा और भारतके सिक्कोंमें गड़बड़ होने लगा, भारतके सब राजनीतिज्ञोंने सरकारसे इस विषयमें अनुरोध करना आरम्भ किया। और यहाँ तक कहा जाय, फाउलर कमीशनने भी जो सन् १८९८ में सिक्केकी इसी गड़बड़ीको मिटानेके लिए बैठा था, सरकारसे सिफारिश की कि भारतमें स्वर्णमुद्रा स्थापित कर दी जाय, किन्तु दुर्भाग्यवश सरकारने हमारी एक न सुनी जिसका परिणाम यह हो रहा है कि सरकारके दिनपर दिन नये कमीशन बैठानेपर भी हमारे सिक्कोंकी स्थिति खराब होती जा रही है, जिससे भारतवासियोंको केवल धनहानि ही नहीं सहनी पड़ती वरन् उनके व्यापारको भी बड़ा धक्का पहुँच रहा है। इस लेखमें यह विचार किया जायगा कि किन कारणोंसे हम भारतवासी अपने देशमें सोनेके सिक्कोंका प्रचार चाहते हैं। सरकार क्यों हमारे निवेदनको स्वीकार नहीं करती और क्या सरकारकी नीति न्यायोचित है।

सन् १९१३ में इसी विषयपर विचार करनेके लिये एक कमीशन नियत किया गया था, जिसके सभापति आस्टिन चेम्बरलेन थे। इस कमीशनके सामने सरकारने तथा भारतवासियोंने अपना अपना पक्ष समर्थन किया था। सरकारकी ओरसे कहा गया था कि

प्रचलित प्रथा जिसके अनुसार रुपयेका चाहे वास्तविक मूल्य कितना ही क्यों न हो विनिमय के लिये देशमें और विदेशमें १६ पेन्सके भावसे सरकार कायम रक्खेगी, और भारतके लिए यही नीति अत्यन्त लाभकारी है। भारतको प्रति वर्ष २० करोड़के लगभग रकम होमचार्जेस के लिए विलायत भेजनी पड़ती है। अंगरेजी व्यापारियोंको भी भारतमें माल खरीदनेके लिए बहुतसा रुपया बाहरसे लाना होता है। इसलिए भारतसचिव इन व्यापारियोंके हाथ विलायत में हुंडी बेचकर उनसे अंग्रेजी सिक्के वहीं ले लेते हैं और ये व्यापारी हुंडीका भुगतान भारतके खजानोंमें कराकर हिन्दुस्थानी प्रचलित सिक्का पालेते हैं। इस तरह रुपयेके विनिमयकी दरको भारतसचिव अधिक गिरने या बढ़ने नहीं देते। रुपयेके विनिमयकी दरको स्थिर रखनेके लिए भारत सचिवके हाथमें मुख्य औज़ार इन हुंडियोंका बेचना ही है जिनको कौन्सिल ड्राफ्ट कहा जाता है। भारत सरकारका कहना है कि भारतीयोंको इसमें लाभ होता है और निम्नलिखित कारणोंसे सोनेके सिक्कोंका प्रचार नहीं किया जासकता :—

प्रथम—'होमचार्जेज़' के लिए भारत सरकारको विलायत २० करोड़का सोना प्रति वर्ष भेजना पड़ता है जिसके भेजनेमें सरकारका बहुत कुछ व्यय होता है। हुंडियांके बेचनेसे सरकार केवल 'इस व्ययहीसे' नहीं बचती वरन उनके बेचनेमें जो लाभ होता है उससे भी सरकारको काफी आमदनी हो जाती है।

द्वितीय—यदि सोनेके सिक्कोंका भारतमें प्रचार कर दिया जाय तो लोग सिक्कोंको जमा करने लगेंगे। जिसका परिणाम यह होगा कि आवश्यकता होनेपर जब व्यापारकी अवस्था भारतके प्रतिकूल हो जावेगी तब विदेशमें भेजनेके लिए पर्याप्त सोनेके सिक्के नहीं मिल सकेंगे जिससे भारतकी साखको बहुत धक्का लगेगा और भारतका विदेशी व्यापार नष्ट हो जावेगा।

प्रचलित हैं उन सबको सोनेके सिक्कोंमें बदलना होगा। इसके लिए बहुत सोनेकी आवश्यकता होगी और इतना सोना खरीदा जावे तो निःसन्देह सोनेका भाव तेज हो जावेगा और चांदीकी दर गिर जावेगी। एक तो सरकारके पास इतना रुपया ही नहीं है, दूसरे चांदीके भाव गिरनेसे और सोनेके मूल्यमें बढ़ती होनेके कारण सरकारकी आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जायगी और इस कारण भी सोनेके सिक्कोंका प्रचार सम्भव नहीं है।

भारतीय जनताकी ओरसे कमीशनके सम्मुख यह निवेदन किया गया था कि समस्त सभ्य संसारमें सोनेके सिक्के चालू हैं इस कारण यहाँ भी वे प्रचलित किये जायँ। इससे भारतवर्षकी साख बढ़ेगी और अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयमें किसी प्रकारकी अड़चन न होनेसे देशका व्यापार बढ़ेगा। कमीशनको यह पूर्ण रीतिसे बताया गया था कि प्रचलित प्रथा कृत्रिम उपायोंके अवलंबनसे विनिमयके दरको निश्चित रखती है। और यह बिलकुल सम्भव है कि यदि हमें दो तीन वर्ष लगातार बुरे दिनोंका सामना करना पड़ा तो ये उपाय विफल हो जायँगे और समस्त संसारके सामने भारतको दिवालिया बन जाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी बताया गया कि प्रचलित प्रथाके अनुसार देशका बहुतसा रुपया 'पेपर करन्सी रिजर्व' और 'गोल्ड करन्सी रिजर्व' का विदेशमें पड़ा रहता है जिससे हमारे उद्योग-धन्धोंको लाभ न होकर दूसरोंको लाभ होता है। इस कारण फाउलर कमीशनके आदेशानुसार सरकार यहाँ सोनेके सिक्कोंका प्रचार तुरन्त कर दे। यह पहिली बात है।

द्वितीय–सोनेका सिक्का सबसे अच्छा समझा जाता है और यदि सोनेके सिक्केके साथ नोटोंका प्रचार हो जावे तो अर्थशास्त्रके नियमानुसार सबसे उत्कृष्ट मुद्रा प्रणाली यहाँ स्थापित हो जायगी।

तृतीय—यदि सोनेके बहुतसे सिक्के प्रचलित रहें तो देशकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रहती है और विनिमयमें किसी तरहकी भी कठिनाई या असुविधा नहीं होती।

चतुर्थ—चाँदीके सिक्केके प्रचारके कारण सदैव टकसालमें बहुत चाँदीके सिक्के बनाये जाते हैं जिससे चाँदीके मूल्यमें स्थिरता नहीं रहती। यदि स्वर्ण-मुद्रा-प्रणाली स्वीकार करली जाय तो यह अस्थिरता दूर हो जायगी।

पंचम–संसारमें सोनेकी उत्पत्ति बढ़ रही है इसलिए यदि भारतमें सोनेकी माग अधिक होने लगे तो कहीं भी सोनेका मूल्य नहीं घटेगा। इसलिये भारतमें स्वर्णमुद्रा चलानेसे केवल भारतको ही नहीं समस्त संसारको लाभ होगा।

कमीशनने दोनों पक्षोंका विचार कर सरकारकी ही बातका समर्थन किया और भारतीय पक्षका खंडन निम्न लिखित उक्तियोंसे किया :—

प्रथम—कमीशनके मतके अनुसार भारतकी मुद्राप्रणाली अर्थशास्त्रके नियमोंके बिलकुल अनुकूल है और इसी तरहकी सिक्का-प्रणालीके लिए प्रत्येक सभ्य देश प्रयत्न कर रहे हैं। निःसंदेह विनिमय इसमें कृत्रिम उपाय द्वारा स्थिर किया जाता है तथापि इसमें हानि न होकर लाभही होता है। कारण कि एसके अन्तर्गत विनिमयके लिए सोनेके समान

भारतमें सोनेके सिक्कोंकी आवश्यकता

[illegible] रहा है। किन्तु [illegible] है। [illegible] कि यह [illegible] सिक्कोंका [illegible]। किन्तु [illegible] बैंकोंके [illegible] सिक्के अधिक प्रिय नहीं किये जायेंगे। [illegible] यह बिलकुल स्पष्ट है कि स्वर्णमुद्रा चलनेसे [illegible] उनके लिए [illegible] रहनेसे उनको सोना जमा करनेकी आदत पड़ जाय।

स्वर्णमें देखा जाय तो लोगोंने सोने गाड़कर रखनेकी जो आदत पड़ गई है उसका मुख्य कारण सिक्कोंकी अस्थिरता है। सरकारकी उक्ति कितनी भ्रमात्मक है यह इसीसे स्पष्ट हो जाता कि युद्धके समय पंजाबमें कुछ सोनेके सिक्कोंका प्रचार किया गया। वहां न तो लोगोंने उन्हें सञ्चय ही किया और न गलाया ही बल्कि प्रसन्नता पूर्वक उनको स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त शिक्षाके साथ साथ लोगोंमें बंकोंके प्रति विश्वास भी होता जा रहा है और बहुतसे गरीब लोग सेविंग बंकमें अपनी कमाई रखने लगे हैं। दिन प्रति दिन भारतमें बंकोंका प्रचार होता ही जायगा इसलिए आवश्यकता होनेपर बाहर भेजनेके लिए और देशोंकी तरह यहाँ भी बंकोंमें सोना मिल सकेगा। इसके विरुद्ध कमीशनकी राय बिलकुल भ्रमात्मक है।

तृतीय—भारतीय जनता सोनेका सिक्का नहीं चाहती। पहली बातके सम्बन्धमें ऐसा कहना ठीक नहीं है। कमीशनने जो सन् १९२० और १९२१ का उदाहरण दिया है उसमें यह प्रमाणित नहीं होता कि लोगोंको स्वर्णमुद्रा पसन्दही नहीं है। बल्कि पता लगता है कि देशमें कुल १ अरब ८६ करोड़का सोना आया, जिसमेंसे करीब ८० प्रति सैकड़ा भारतीय जनताने लिया, इस ८० सैकड़ामें सोना केवल ५६ सैकड़ा था, बाकी ४४ सैकड़ा सावरेन थे।

इससे यह प्रत्यक्ष प्रमाणित होता है कि लोग सोनेके सिक्केके लिए उत्सुक हैं। यदि १० रुपये या ५ रुपयेकी कीमत तकके सोनेके सिक्के ढाले जाय तो निःसन्देह सब लोग उनको सहर्ष स्वीकार करेंगे। यदि यह भी मान लिया जाय कि छोटे ग्रामोंमें इसका पूर्ण प्रचार न हो सकेगा तथापि इसमें तो सन्देह नहीं कि शहरोंमें तथा बन्दर स्थानोंमें तथा और व्यापारके स्थानोंमें ये सोनेके सिक्के अत्यन्त लोकप्रिय होंगे। यहीं, और मिश्र देशके समान सोनेके साथ साथ चाँदीका सिक्का भी काम दे सकता है। इस प्रकार कमीशनकी तीसरी युक्ति भी ठीक नहीं है।

चतुर्थ—कमीशनकी यह धारणा भी कि सोनेके सिक्कोंके प्रचारसे नोटोंके प्रचारमें धक्का पहुंचेगा ठीक नहीं है। जब कि रुपयेके नोट इस तरह सर्वप्रिय हो रहे हैं तो जिन नोटोंका भुगतान सोनेमें होगा वे तो निःसन्देह लोकप्रिय होंगे ही। जैसे जैसे उद्योग-धन्धोंका तथा कारखानोंका प्रचार होरहा है उसीके साथ साथ नोटोंका भी प्रचार बढ़ रहा है और बंकोंके बढ़नेसे इसका प्रचार और भी बढ़ेगा, कारण कि लोगोंका इसपर विश्वास जमता जा रहा है। यह कदापि सम्भव नहीं है कि सोनेके सिक्के चलनेहीसे नोटोंका प्रचार

रुक जायेगा। बल्कि स्वर्ण सिक्केके साथ यदि नोटका सम्बन्ध हो जावे तो जनता उ विशेष विश्वासकी दृष्टिसे देखेगी।

पंचम—सोनेके सिक्कोंके प्रतिकूल अब कमीशनका केवल एक आक्षेप रह गय बातोंके आक्षेपोंकी आलोचना पूर्ण रीतिसे कर दी गई। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो इस अंतिम आक्षेपमें भी कुछ सार नहीं है। कोई सरकार इस बातके लिए बाधित नहीं कि एकदम सब सिक्कोंका परिवर्तन सोनेमें करदे।

अभी केवल इतना करनेकी आवश्यकता है कि प्रचलित चाँदीके सिक्के और न सोनेके सिक्कोंका परस्पर मूल्य नियत कर दिया जाय और दोनों सिक्के बराबर चालू रहें हाँ नये सिक्के अधिक सोनेहीके बनाये जायँ। धीरे धीरे आपही सर्वत्र सोनेके सिक्कोंक प्रचार हो जायगा। 'गोल्ड एक्सचेंज रिजर्व' में जो सार्वजनिक रुपया जमा है वह इस काम में लाया जा सकता है और धीरे धीरे स्वर्णमुद्रा सब जगह चलाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ सोना भी काफी निकलता है। प्रत्येक वर्ष ३ करोड़का सोना यहीं निकालकर साफ किया जाता है। फिर जो व्यापारी हमारे यहाँ माल खरीदेंगे उनसे भी हम सोनाही लेंगे और इस तरह हमारे पास सिक्कोंके लिए थोड़े समयमें पर्याप्त सोना भी मिल सकता है। अभी हालमें १ अरब ५० करोड़ रुपयेके नोट प्रचलित रहेंगे— केवल ७५ करोड़के सोनेके सिक्के चला देनेसे आसानीसे हमारा काम चल सकेगा। पाँच वर्ष तक इसी तरह सोनेके सिक्कोंको बढ़ाते जायँगे और साथमें चाँदीके रुपये भी चलते रहेंगे। पाँच सालके उपरान्त चाँदीके सिक्के केवल सांकेतिक सिक्के कर दिये जायँगे और फिर मुख्यतः सोनेही का सिक्का चलने लगेगा।

अब यह प्रत्यक्ष हो गया कि स्वर्ण सिक्केके प्रचारमें यथार्थमें कोई अड़चन नहीं है। कमीशनने सरकारका पक्ष समर्थन करनेमें निःसन्देह पक्षपात किया है। सोनेके सिक्केके प्रचारके सम्बन्धकी जनताकी सब उक्तियाँ अब भी ठीक हैं। यह चाँदीहीके सिक्कोंका परिणाम है कि विदेशीय विनिमय इतना ऊँचा नीचा हो रहा है जिसमें भारतका बहुत धन व्यर्थ नष्ट हो रहा है। अधिकारी वर्गकी जिद्द भारतके धनका केवल नाशही न कर व्यापारको भी धक्का पहुँचाती है, यह अन्याय है। यदि सरकारको भारतके हितका कुछ भी विचार है और यदि अधिकारी वर्गने थोड़ेसे विदेशी व्यापारियोंको दरिद्र भारतके धनसे लाभ पहुँचानेका ठेका नहीं ले लिया है तो निःसन्देह उन्हें अब तो जनताकी बात स्वीकार कर लेनी चाहिये और सोनेके सिक्कोंका प्रचार कर देना चाहिये। जितने अधिक दिन बीतते जायँगे भारतको उतनीही अधिक हानि उठानी पड़ेगी। सरकार चाहे कितनेही करेंसी कमीशन क्यों न बिठाये और व्यर्थ बहुतसा सार्वजनिक धन व्यय करे जब तक स्वर्णमुद्रा-प्रणालीका प्रचार न करेगी तबतक यह प्रश्न पूर्ण रीतिसे कदापि हल न होगा।

छेदीलाल

—❧—

प्रजातंत्रताके मूल सिद्धान्त



प्राचीन यूनानके बहुमान्य राजनीति-शास्त्रके लेखक अरस्तूने सरकारके राष्ट्रोंके तीन विभाग किये हैं। (१) ऐसे राष्ट्र जहाँ एक अनन्याधिकारी राजा हो। (२) जहाँ राज्याधिकार एक श्रेणीविशेषके हाथमें हो। (३) जहाँ सब प्रजागण सब राज-काजमें भाग लेते हों। चूँकि यूनानमें बहुत ही छोटे छोटे राज्य थे इस कारण जब अरस्तू यह कहते हैं कि सब प्रजागणके हाथमें अधिकार रहे तो उनकी अभिलाषा यही है कि राष्ट्र संबंधी सब कार्य्योंमें वास्तवमें सब प्रजा भाग ले सके। यहाँ तक कि न केवल कानून बनानेके समय सब एकत्रित हों बल्कि शांति, युद्ध आदि ऐसे शासन संबंधी विशेष मामलोंको निर्णय करने लिए भी वे आवें और यदि किसी अपराधीपर अभियोग चलाया गया हो तो भी सब प्रजागण न्यायालयमें एकत्रित होकर अपनी अपनी राय दे सकें। प्राचीन यूनानियोंका तो विचार था कि राष्ट्रका घेरा इतना ही बड़ा होना चाहिए कि यदि कोई मनुष्य बीचमें खड़ा होकर तेज आवाजसे कुछ पुकारे तो सब लोग सुन सकें। दूसरी बात यह है कि सबको अधिकार प्राप्त होनेपर भी यह संभव नहीं है कि सब लोग सब समय सब राजकार्य्यके लिए उपस्थित हो सकें। विशेष कर जो लोग जीविकाके लिए प्रति दिन परिश्रम करते हैं वे तो ऐसा कदापि नहीं कर सकते। इसीसे यूनानी लोग प्रजागण केवल यूनानियोंको ही मानते थे। और ये यूनानी किसी प्रकारका परिश्रम अपने शरीरसे जीविकाके निमित्त नहीं करते थे। अपने वैभवके समय वे अन्य प्रदेशोंको जीतकर सहस्रों दास लाते थे जिनसे कि वे शारीरिक परिश्रम कराते थे। ये दास अरस्तूके प्रजागणके अतर्गत नहीं हैं। अरस्तू उन्हींको अधिकार देते हैं जो सब कार्य्योंसे सुचित रहें और जो राष्ट्र-कार्य्यके लिये सदा आ सकें।

इस समयकी अवस्था और प्राचीन यूनानकी अवस्थामें बड़ा भेद है। एक तो राष्ट्र बहुत बड़े बड़े हो गए हैं। दूसरे, प्रजागणमें अब सब राष्ट्रवासी अतर्गत हैं चाहे वे धनी हों चाहे दरिद्र, चाहे वे मस्तिष्कसे काम करने वाले हों चाहे शरीरसे। इस कारण इस समय राष्ट्रके विभागमें और उसके कार्य्यप्रणालीमें वही सिद्धान्त नहीं लगाए जा सकते जो अरस्तू लिख गए हैं। अब प्रजातन्त्र राष्ट्रोंमें प्रतिनिधियोंके द्वारा राष्ट्र कार्य्यके चलाए जानेका तरीका निकाला गया है जिसमें कि सब प्रजागण मिलकर कतिपय ऐसे लोगोंको चुनते जो कार्य्य करें। इससे यह समझा जाता है कि अप्रत्यक्ष रूपसे सबही प्रजागण सम्मिलित हो गए हैं।

प्रजा-तन्त्रका मतलब तो यही होना चाहिए कि सब प्रजागण सब राज्य कार्य्योंमें भाग लें और चूंकि सब बातोंमें सबकी राय एक नहीं हो सकती इस कारण अधिकांश रायसे कार्य्य किया जाय। चूंकि आजकल राष्ट्र बड़े हो गए हैं और दसमेंसे सब [illegible] विचारने [illegible] जाने लगे हैं और सब कानूनके लिए सब [illegible] सम्मति नहीं किया जा सकता, इस कारण प्रतिनिधियोंका निकलना निकाला गया है और [illegible] सबसे सब बात निश्चित होनेका प्रकार स्वीकार किया गया है। [illegible]

इस प्रकार हो गया है कि राष्ट्र कितने ही निर्वाचन-क्षेत्रोंमें विभाजित किया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्रसे बहुतर मतसे प्रतिनिधि धर्म्म-परिषदोंमें भेजे जाते हैं। इनमेंसे कुछ योग्यतम अथवा ऐसे जो परिषदोंके अधिकांश सदस्योंको अपना सकते हैं वे प्रबंध-मन्त्रि-गण होते हैं और उन्हींके द्वारा देशके कार्य्यकर्त्तागण प्रबंध-क्षेत्रमें और न्याय-क्षेत्रमें नियुक्त किये जाते हैं। सब स्थानोंमें तो ऐसा नहीं है, जैसे कि अमरीकामें प्रबंधमन्त्रिगण धर्मपरिषदके सदस्यगण नहीं होते। वे राष्ट्रपति द्वारा अलगसे चुने जाते हैं। परंतु आंग्ल, फ्रांस, इटली आदि देशोंमें जैसा ऊपर कहा गया है वैसा ही होता है। कितना ही प्रजा-तंत्र-प्रिय देश क्यों न हो, राष्ट्रकी एकता और समता दिखानेके लिए किसी एक व्यक्ति विशेषको किसी न किसी रूपमें प्रधानाध्यक्ष मानना ही पड़ता है। जैसे आंग्लदेशमें वंश-परम्परागत राजा है। अमरीका और फ्रांसमें राष्ट्रपति है। अस्तु।

प्रश्न अब यह है कि प्रजा-तन्त्रताका मूल सिद्धान्त क्या है। किन किन विचारोंपर वह निर्मित है। मनुष्यकी किन किन आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिए यह रूप राष्ट्रोंने ग्रहण किया है। अन्य प्रकारकी शासन शैलियोंमें कौनसी त्रुटि थी जिसको कि इसने हटाया। बड़े पुरातन कालमें क्या था इसका तो केवल अनुमान मात्र हो सकता है। साधारण प्रकारसे यह कहा जा सकता है कि जब कोई पुरुष बुद्धि और बलमें अन्योंसे अधिक होता था तब वह उन लोगोंका नेता हो जाता था। यदि उसके नेतृत्वमें कोई नया प्रदेश अपने हाथमें आया तो वह वहाँका राजा हो जाता था। इस प्रकार से विचार करनेसे राज-तन्त्रता ही नैसर्गिक मालूम पड़ती है। जब तक राजा अपने अनुचरोंका विचार रखता था, प्रजा-गणोंको आराम पहुँचता था, जब तक उसके वंशके लोग उसीके मार्गका अनुसरण करते थे, तब तक प्रजा-गण किसी सिद्धान्तके आधारपर राज-तंत्रताका विरोध नहीं करते थे। हाँ, यदि राजा दुष्ट हुआ, निर्दयी हुआ, दुराचारी हुआ, तो उसको हटानेका यत्न किया जाता था और उसके स्थानपर किसी दूसरेको रखनेका विचार किया जाता था। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों समयोंके सब राज-तंत्रराष्ट्रोंका यही इतिहास है। परंतु अब प्रजातंत्रके पक्षपाती सिद्धान्तवत् प्रजा-तंत्रका समर्थन करते हैं। इसे ही खराब समझते हैं कि कोई एक मनुष्य बहुतसे मनुष्योंपर अनन्याधिकार रखे। अब विचार यह करना है कि प्रजा-तन्त्रका समर्थन किन किन बातोंसे किया जा सकता है।

बराबर जमीन दे दें, कोई उनमेंसे बहुत अन्न पैदा करेगा कोई उसे और अपने दोनोंको तबाह कर डालेगा। सारांश यह कि वास्तवमें मनुष्य मनुष्य बराबर नहीं है और न कभी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग किसी एक काममें चतुर होते हैं, कुछ लोग कोई दूसरेमें। जूता बनानेका साधारण काम है, परन्तु आप सबपर अपने जूतेके लिए बराबर भरोसा नहीं कर सकते। जब आप एक साधारण जूतेके लिए सबकी चतुराई पर बराबर भरोसा नहीं कर सकते तो कैसे आप राष्ट्रके गूढ़ समस्याओंपर राय देनेके लिए सबपर बराबर भरोसा कर सकते हैं। प्रजा-तन्त्रवादियोंका यह कथन है कि यद्यपि सब कोई जूता नहीं बना सकते तथापि इतना तो सब कोई बतला सकते हैं कि अमुक जूता हमें ठीक होता है या काटता है। राष्ट्रका सबसे बड़ा कार्य्य कानूनका बनाना और उसे चलाना है। यह प्रत्येक मनुष्य कह सकता है कि अमुक कानून हमारे लिए अभीष्ट है या नहीं। संसारके इतिहाससे यह स्पष्ट है कि जो कानून बनाता है वह अपना फायदा अधिक देखता है। यदि धनी कानून बनावेगा तो निर्धनको दबावेगा। यदि मजदूर मिलकर कानून बनावेंगे तो मालिकपर अनुचित दबाव पड़ेगा। यदि केवल नर कानून बनावेंगे तो नारीके प्रतिकूल होगा। ऐसी अवस्थामें सबसे सलाह लेना ही श्रेयस्कर है, ताकि सब समझलें कि हमपर अमुक कानूनका क्या प्रभाव पड़ेगा। राष्ट्रके बड़े होनेके कारण सब कानूनपर सब लोग स्वयं नहीं विचार कर सकते। इस कारण अपने प्रतिनिधि द्वारा उनका निरीक्षण करा लेते हैं। सिद्धान्ततः प्रजा-तन्त्रताका एक आधार यह है अर्थात् राष्ट्रके बड़े बड़े कार्य्योंमें सब प्रजा-गणोंसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सलाह ले लेनी चाहिए ताकि सबको इस बातका विचार करनेका अवसर मिले कि अमुक अमुक कार्य्योंसे हमारे ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है। और सबको अपनी राय देने, बहस करने और प्रस्तावोंके विरोध करनेके लिए पर्याप्त समय मिल जाय।

प्रजा-तन्त्रका दूसरा बड़ा भारी मूल सिद्धान्त यह है कि जन्महीपर गुण दोष नहीं अवलम्बित रहते। सज्जनका पुत्र दुराचारी, दुष्टका पुत्र परोपकारी ऐसा होना असम्भव नहीं है। वास्तवमें चारों ओर ऐसा हो रहा है। इस कारण यदि अनन्याधिकार वंश-परम्परागत राजामें रक्खा जाय तो सम्भव है कि किसी रोज प्रजाको किसी मूर्ख राजाके अधीन किसी रोज दुष्टके अधीन रहना पड़ेगा। यदि राष्ट्र-कार्य्य किसी परम्परागत गुट्ट अथवा किसी कुल श्रेणी या जाति विशेषको दिया जाय तो बहुत सम्भव है कि थोड़े दिन पीछे जब उनकी नीयत बिगड़े, जब ऐश्वर्य्य-मदसे भरे हुए अपना अधिकार जानते हुए प्रजा-गणको वे तंग करने लगें तो व्यक्तिगत राजासे अधिक हानि वे पहुँचावें। वास्तवमें ऐसा ही हुआ है। प्राय देशके इतिहासमें व्यक्तिगत अनन्याधिकारी राज-तन्त्रताकी खराबी और वनिसके इतिहाससे गुट्टके राज्य चालकी खराबी प्रतीत होती है। इस कारण अब प्रजा-तन्त्रपर जोर दिया जाता है। विचार यह है कि यह सम्भव है कि वंश परम्परागत राजा या शासनाधिकारी गुट्ट मूर्ख अथवा दुष्ट हो जाय, पर सारे राष्ट्रके प्रजा-गणमें सब समय अवश्य ही ऐसे लोगोंके मिल जानेकी सम्भावना है जो राष्ट्रके सब कार्य्योंका कार्य्य योग्यतासे निबाह सकें। कभी ऐसे लोग महलोंमें मिलेंगे, कभी झोपड़ियोंमें पर मिलेंगे

अवश्य। प्रजा-तंत्र इस एक विशेष विचारपर स्थित है कि ऐसा सम्भव नहीं है कि सारे प्रजा-गण किसीभी समय इतने बुद्धिहीन और सौजन्य विहीन हो जाँय कि राष्ट्र कार्यों के लिए उनमेंसे कोई नेता मिल ही न सके। इन लोगोंको समय समयपर खोज निकालना ही प्रजा-तन्त्रका काम है। और अब तक बहुतर मतसे निर्वाचन करनेकीही रीति ऐसे लोगोंको पानेका सर्वोत्तम, सुगम और उचित प्रकार समझा गया है। प्रजा-तन्त्रताका यह दूसरा मूल सिद्धान्त है।

तीसरा सिद्धान्त यह है कि अब प्रायः लोगोंका यह विचार होता है कि जैसे भिन्न भिन्न रोज़गारोंमें दत्तचित्त होकर शिक्षा ली और दी जाती है ताकि जो लोग रोज़गार विशेष ग्रहण करें वे उसमें सफलता पानेके वैसे ही किसी न किसी प्रकारसे राष्ट्र कार्योंकी भी शिक्षा सबको मिलनी चाहिए। राष्ट्र सबका रोज़गार है क्योंकि उसीके सुस्थिर और सुरक्षित होनेके कारण सबके घर सुरक्षित रह सकते हैं और सबकी जीविका वृत्ति चल सकती है। इस कारण राष्ट्रको सुदृढ़ रखनेमें सबको दिलचस्पी होनी चाहिए। राष्ट्रके लिए सब कर देते हैं, राष्ट्रके नियम सब पालन करते हैं और समय समय पर आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रकी रक्षाके लिए जान और माल सब कुछ सबको न्योछावर करना पड़ता है। अब मंथराकी तरह यह कहनेसे काम नहीं चल सकता कि "कोउ नृप होउ हमें का हानी। चेरि छाड़ि नहिं होउब रानी"। ऐसी अवस्थामें सब प्रजा-गणको अपने अपने राष्ट्रोंका हाल जानना चाहिए। केवल विद्यालयोंमें कुछ वर्षोंके लिए नियत प्रकारसे पुस्तकों द्वारा इसकी शिक्षा देना पर्याप्त नहीं है। आजीवन इसकी शिक्षा मिलनी चाहिए। परंतु अधिकतर लोग अवश्य ही अपने कुलके अथवा अपनी जीविकाके काममें लगे रहेंगे। उन्हें राष्ट्रसंबंधी शिक्षा ग्रहण करनेकी न आकांक्षा प्रति दिन रहेगी और न समय ही मिलेगा। परंतु उन्हें बीच बीचमें जगाना बड़ा ज़रूरी है। उनको राष्ट्रकी चेतावनी देना आवश्यक है ताकि उन्हें यह मालूम पड़ता रहे कि राष्ट्रका काम ठीक तरहसे चल रहा है या नहीं, क्योंकि संभव है कि यदि ठीक प्रकारसे किसी समय न चला अथवा भीतरी या बाहरी शत्रुओंने आक्रमण किया अथवा ऐसे लोगोंके हाथमें राष्ट्रका भार चला गया जो दुष्ट या अयोग्य हैं तो उसका परिणाम सबपर पड़ेगा। ऐसी शिक्षा और ऐसी चेतावनी प्रजा-तन्त्र देता है। निर्वाचनके लिए, राष्ट्रसंबंधी बातोंपर बहस करनेके लिए बराबर लोग एकत्रित होते रहते हैं। इस कारण राष्ट्र संबंधी चर्चा बराबर होती रहती है। यह प्रजा-तन्त्रताका तीसरा मूल सिद्धान्त है।

चौथा सिद्धान्त यह है कि सब मनुष्योंमें महत्वाकांक्षा रहती ही है। निर्धन धनका स्वप्न देखता है, निर्बल बलकी आकांक्षा किया करता है। इसी प्रकार समाजमें उत्तम स्थानों को ग्रहण करनेकी आकांक्षा छोटेसे छोटे मनुष्यको भी रहती है और होनी चाहिए। संसार में साधारणतः बहुत कम लोगोंका मनोरथ सिद्ध होता है। कोई मनुष्य अपने पुत्रप्यारकी कामनाएँ, आकांक्षाएँ आदि अपने जीवनमें पूरा कर [illegible] बहुत कम देखनेमें आता है। तथापि यदि आकांक्षाओंको पूरा करनेका मार्ग बन्द हो [illegible] तो मनुष्य उसके लिए प्रतिस्पर्धा

सकता है [illegible] भी हो सकता है, क्योंकि [illegible] की उम्मेदवारी है। और इन सब कारणोंसे सबसे बड़ा [illegible] वह हो सकता है कि सम्पत्तिके व्यवहारमें [illegible] हुआ नहीं करता। इसलिए कुछ ही लोग [illegible] हाथमें रखते हैं। प्रजा-तन्त्रको सब [illegible] भी नहीं मिलता। निर्वाचकों [illegible] प्रकार [illegible] परिवर्तन हुई है उनसे तो [illegible] साथ [illegible] भी नहीं हो सकते हैं। [illegible] कहना कि सबको सब बातोंमें [illegible] है। फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो लोग निर्वाचन पुनर्निर्वाचनके जरिए प्रजासे सत्ताका अधिकार पाते हैं वे योग्य और सदाचारी अवश्य ही होते हैं। उनमें भी वही दोष रहते हैं जो वंशागत राजा या रईसोंमें थे। बल्कि यह कहना चाहिए कि वंशागत [illegible] तो यह डर रहता था कि यदि प्रजा असन्तुष्ट हो तो हमारा नाश कर दे। जो प्रधान निर्वाचित होकर आते हैं वे जब तक अधिकारमें रहते हैं और भी स्वच्छन्द हो जाते हैं और [illegible] साथ व सब कुछ कर डालते हैं।

इसके अतिरिक्त यह कहना कि सबके लिए सब स्थान खुले हैं यह भी ठीक नहीं है। हाँ, कभी कभी अवश्य बहुत छोटे छोटे लोगोंको बहुत बड़ी जगह मिल जाती है तथापि घूम फिर कर सब जगहें थोड़े ही लोगोंके हाथमें रहती हैं। सारांश यह कि वास्तवमें जिन जिन विचारोंसे प्रजा-तन्त्रका जन्म हुआ है वे विचार मनुष्यकी प्रकृति और आपसकी असमानताके कारण अब तक कार्य्यमें परिणत नहीं हो सके हैं। तथापि यह कहा जा सकता है कि पहले की शासनप्रणालियोंसे यह शासन बुरा नहीं है और कई बातोंमें अच्छा है। और इसमें तो संदेह नहीं है कि राष्ट्रगणकी बातोंकी चर्चा जितनी इस समय चारों ओर है वैसी पहिले कभी नहीं थी। और सम्भव है कि अधिक बुद्धि और ज्ञान फैलनेसे वास्तविक प्रजा-तन्त्रका संसारमें प्रचार हो जाय और सचमुच प्रजाके हित चाहने वाले योग्य, सदाचारी प्रतिनिधि राष्ट्रोंका कार्य्यभार अपने ऊपर लें और अपने ही सम्मान, अधिकार अथवा धनकी लालसासे देशके देशको अधर्मके युद्धोंमें लगाकर अथवा अन्यायपूर्ण कानून बनाकर नाश न करें। बड़ेसे बड़ा प्रजा-तन्त्रवादी अभी यह नहीं कह सकता कि प्रजातन्त्र सफल हुआ है। पर उसे आशा अवश्य है कि प्रजा-तन्त्रवाद धर्म और न्यायके आधार पर स्थित है और मस्तिष्क और हृदय दोनोंको सन्तोष देता है। इस कारण आजकलके भीषण समयको पार करता हुआ किसी न किसी रोज़ यह शीघ्र ही अपने वास्तविक रूपमें सुशोभित दीख पड़ेगा, जिसमें संसारमें झगड़ा लड़ाई वैमनस्य नहीं पर वास्तवमें शान्ति और सुख फैलेगा और भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके प्रजागण

एक दूसरेका अतीव एक दूसरेसे मेलमें रहनेकी देखते हुए एक दूसरेका गला काटने न देंगे। इस समय किसीकी अनुभवोंके द्वारा यह सत्य है कि प्रजागणके हितके लिए नहीं, राष्ट्रकी भलाईके लिए नहीं, पर अधिकारियोंके व्यक्तिगत आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए बड़े बड़े युद्ध होते हैं और देशके देश नाश हो जाते हैं।

जो कुछ हो राज-तन्त्रताकी पूरी परीक्षा हो चुकी, लोगोंने उसको तर्क किया। गुटोंकी परीक्षा हो चुकी। वे भी अनुत्तीर्ण हुए। अभी प्रजा-तन्त्रताकी पूरी परीक्षा नहीं हुई है। यदि दुर्भाग्यवश यह भी असफल हुआ तो कुछ और विचारनेकी आवश्यकता होगी। पर आशा अभी तक यही है कि यह प्रयत्न सफल होगा।

श्रीप्रकाश

हिन्दू-राजनीतिमें राजाका स्थान



छ लोगोंका यह विचार है कि हिन्दूलोग राजनैतिक जीव नहीं हैं, और भारतवर्षमें राजनीतिका अभाव रहा है। किन्तु, वास्तवमें संस्कृत और पालीके नीतिशास्त्र और शिलालेखोंके पढ़नेसे पता लगता है कि पूर्वकालमें हिन्दू राजनीतिशास्त्रज्ञोंको सब प्रकारके राज्यतन्त्रोंसे परिचय था और उनकी राजनीति अति विलक्षण थी।

एक और विलक्षण बात यह भी थी कि हमारे यहां सन् ईसासे छःसौ वर्ष पहलेसे चारसौ वर्ष बाद तक उत्तरीय भारतमें कई विशाल और प्रभावशाली प्रजातन्त्र राज्य थे। संवत्सर मालव प्रजातन्त्रकी यादगारमें चलाया गया है।

हिन्दू राजनीतिशास्त्रज्ञोंने यह माना है कि आदिकालमें 'राजा' नहीं था। और कालान्तरमें समाज-संगठन और लोकहितके लिए राजा पहले पहल बनाया (चुना) गया था। और राजाको लोग अपना सेवक मानते थे। उसे, शुक्रनीतिके कथनानुसार, करके रूपमें वेतन देते थे। शास्त्रोंमें लिखा है कि ब्रह्माने राजाको प्रजाका सेवक बनाया है। उसको खेती इत्यादिकी उपजसे करके रूपमें वेतन दिया जाता है और 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार राजा "वित्तरक्षिण" राष्ट्रीय भंडारी या धरोहर रखनेवाला था। राज्य उसे धरोहरके समान प्रजाने दिया गया था। महाभारतमें भी राजाको 'वित्तरक्षिण' माना है। और प्रजागण उससे राज्य जब चाहे ले सकते थे और राजाको राज्य किसीको, अपने पुत्रको भी, देनेका अधिकार नहीं था, क्योंकि राज्य प्रजाकी सम्पत्ति थी।

आगे चलकर समस्त प्रजागण स्वयं अपनेमेंसे या किसी विशेष कुलमेंसे राजा चुनने लगे। कभी राजा केवल एक जीवनके लिए, कभी एक पुश्त या दो पुश्तके लिए या कभी कुछ नियत समयके लिए चुना जाता था। राजा केवल क्षत्रिय वर्गसे ही नहीं चुना जाता था। कई शूद्र भी राजा हो चुके हैं। यदि राजा वृद्ध होनेपर जैसे कि दशरथ महाराजने किया था, स्वयं अपने प्रजागण—ऊँच नीच सभी शूद्र इत्यादिको एक बृहत् सभामें बुलाकर उनकी राय लेता था कि वह अपने पुत्रोंमेंसे किसको राज्य सौंपे।

राजा, हिन्दूशास्त्रोंके अनुसार कभी निरंकुश नहीं रहा। राजा सदैव राजनीतिके अधीन था। राजा स्वेच्छापूर्वक कभी कुछ नहीं कर सकता था। वह कानून भी नहीं बना सकता था। कानून बनानेवाले आचार्य लोग होते थे। राजाको शास्त्रानुसार कायदेके अनुसार राज्य काज करना होता था। इस बातके शास्त्रोंमें कई प्रमाण हैं कि अन्यायी व उच्छृंखल बर्ताव करनेवाले राजाओंके विरुद्ध बगावतें हुईं और कई राजा राज्यच्युत किये गये। क्योंकि शुक्रनीतिमें स्पष्ट कहा गया है कि यदि राजा व्यभिचारी हो या स्वधर्मपालन न करे या धर्महीन हो तो प्रजा उसे निकाल बाहर करे। प्रजाके प्रतिकूल होनेके कारण दुष्यन्त और वेणको राज्यसे निकाल दिये गये थे।

राजाका पद हिन्दूशास्त्रोंके अनुसार बड़ा विचित्र है। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्रमें

रहता है। "आत्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।" अर्थात् राजाको स्वयं कोई बात पसन्द हो या न हो उसे करनी ही पड़ती, क्योंकि जो प्रजाको पसन्द हो वह उसे भी पसन्द है। कौटिल्यने यह भी कहा है कि जो कोई बात राजाको अच्छी लगे उसे वह अच्छी न समझे किन्तु जो बात उसकी प्रजाको अच्छी लगे वही बात अच्छी है। शान्तिपर्वमें भी कहा है "प्रजारञ्जनात् राजा।" अर्थात् राजा केवल प्रजाको खुश करनेके लिए है। इसी प्रकार कौटिल्यने और भी कहा है कि प्रजाके ऐश्वर्य और खुशीमें राजाका भी ऐश्वर्य और खुशी है।

प्रजाकी बात और शिकायत सुनना राजाका मुख्य धर्म माना जाता था। प्राचीन-कालमें अपने दुःख राजासे कहनेके लिए लोग जलूस निकालकर समारोहके साथ राजाके पास जाते थे। और राजा उनकी सुनता था। राजाको लोकापवाद, लोकमतका बड़ा भय था। इसीलिए तो श्रीरामचन्द्रजीने सती सीताको त्याग दिया था।

बार्हस्पत्य सूत्रमें भी लिखा है कि जो बात लोकाचार और प्रजामतके विरुद्ध हो वह राजा न करे। सब बातोंमें वह योग्य मन्त्रियोंकी सलाह ले और गांवके नेताओंको बुलाकर उनकी सलाह ले, शास्त्राचार्य और राजनीति कुशल लोगोंका राजा तथा राज्यपद्धतिपर बड़ा प्रभाव था। और यह लिखा है कि "जो राजा अपने अमात्योंकी बात नहीं सुनता वह दस्यु (लुटेरा) है। वह प्रजाके धनका अपहारक (चोर) है। जो राजा स्वेच्छापूर्वक मन्त्रियोंकी सम्मति लिये बिना राज्य करता है वह नाशको प्राप्त होता है। और उससे राज्य छीन लिया जाता है।"

हिन्दूराज्यशास्त्रके अनुसार राज्य या राष्ट्र जिसे अंगरेजीमें 'स्टेट' कहते हैं उसके सात अंग हैं। राजा, मन्त्री, मुल्क, किला, कोष, सेना और मित्र राष्ट्र। बिना इन सात अंगोंके राष्ट्र नहीं बनता।

याज्ञवल्क्य स्मृतिके अनुसार मन्त्रियोंके लक्षण ये हैं—"धर्मज्ञाः शुचयोऽलुब्धा अभेद्याः कार्यचिन्तकाः।" अर्थात् वे धर्मज्ञ, पवित्रचरित्र और लालसारहित तथा मेहनती और कार्यको दिल लगाकर करनेवाले हों। और ऐसे मन्त्रियोंकी सम्मतिपर राजाको चलना चाहिये। "कर्तव्यं वचनं तेषां समूह हितवादिनाम्।" मन्त्रियोंका एक विशेष गुण यह भी समझा जाता था कि वे प्रजाके हितचिन्तक हों और उसके हितकी बातें कहनेवाले हों और उनकी बात मानना राजाका फ़र्ज़ था।

जैसे विलायतमें पार्लियामेन्टमें राजमन्त्रि-मण्डल (कैबिनट) के सभासद भिन्न भिन्न विभागोंके अध्यक्ष होते हैं वैसे ही हमारे यहाँ भी मन्त्रिमण्डलमें मन्त्रीके कार्यका विभाग इसी प्रकार रहता था।

सन्निधाता—राजकोष, जेल, शस्त्रागार, गोदाम और अन्न विभागका अध्यक्ष।

वाइसराय भी होते थे।

इसके अलावा आठ व्यक्तियोंकी एक और समिति होती थी जिसमें कुछ पुरोहित, मन्त्री होते थे। और कुछ और व्यापारमन्त्री होते थे। ये लोग राज्यकी आय व्यय, अन्य राज्योंके समाचारों और कुछ विशेष बातोंपर मिलकर विचार करते थे। इस समितिमें राजा कभी तो उपस्थित रहता था और कभी अनुपस्थित रहता था। यही लोग न्यायके हाकिम और मित्रविभागोंके अध्यक्ष या एलची इत्यादि नियुक्त करते थे।

इस समितिके सदस्य नाराज होते थे तो वे मिलकर अपनी राय दिया करते थे। और जो कुछ तै होता था उसपर सबके दस्तखत और मोहर होती थी।

राजाको भी कानूनके अनुसार चलना पड़ता था। पाश्चात्य देशोंमें कहते हैं कि राजा कभी कोई गुनाह कर ही नहीं सकता। राजा कानूनके बाहर है। यह बात हमारे यहाँ नहीं थी। न्यायके सामने राजाको भी सर झुकाना पड़ता था। एक चीनीयात्री ह्वेनसांग लिखता है कि "जब वह भारतमें आया उसको मालूम हुआ कि एक कानून था कि जिस आदमीके घरमें आग लगे वह देशसे बाहर निकाल दिया जाय। भाग्यवशात् राजप्रासादमें आग लगी और राजाने स्वयं कहा। "मैं कानूनकी पाबन्दी करना चाहता हूँ, इसलिए मेरा देशनिष्कासन होना चाहिए।"

राज्याभिषेकके समय हिन्दूराजा निम्नलिखित शपथ लेते थे—"मैं इस बातकी मन से शब्दोंसे और अपने कर्मसे शपथ लेता हूँ कि मैं लोक हित, प्रजापालन और देश हितकी चेष्टा तनमन धनसे करूँगा। मैं देशको ईश्वरके समान मानूँगा। जो कुछ नीति-शास्त्रमें राजा का धर्म लिखा है वह मैं सब करूँगा और अपनेको कभी प्रजासे स्वतन्त्र नहीं बनाऊँगा। कभी निरंकुश राजा नहीं बनूँगा। सदैव नियमबद्ध बना रहूँगा।" इसीको आजदिन पाश्चात्यदेशोंमें नियमबद्ध राज्य 'लिमिटेड मोनार्की' कहते हैं। और हमारे शास्त्रोंने भी राजाको नियमबद्ध बनाया है। किंग जार्ज भी नियमबद्ध हैं।

महाभारतका शान्तिपर्व, जो राजनीतिका भण्डार है, उसमें राजाका कर्तव्य यह बतलाया गया है :—

(१) प्रजाको प्रसन्न रखना। (२) प्रजाकी रक्षा करना। (३) सदैव प्रजाकी भलाई करना। (४) प्रजाको अपने अपने कर्तव्य धर्मपर लगाये रखना। (५) दोषी लोगोंको दण्ड देना। (६) अपनेमें निम्न लिखित गुणोंका सम्पादन करना।

१. उत्साह २. उद्योग ३. मन्त्र ४. बुद्धिकर्म ५. नम्रता ६. [illegible] और [illegible]।

हिन्दूशास्त्रकारोंने राजाका नित्य कृत्य इस प्रकार बाँधा है—

दिनके समय—१ उठकर प्रातःकाल आयोंपर और धनके कामोंपर विचार करना। २ मन्त्रियोंसे परामर्श ३ गुप्तचरोंको भेजना। ४ [illegible]। ५ [illegible] सैनिक [illegible], विचार करना। ६ प्रजाके दुःख सुनना और उनकी जाँच करना, ७ [illegible] करके विद्याध्ययन करना। ८ सेना [illegible] जाँच करना। ९ [illegible] करना। १० कुछ मनोरंजन या मन्त्रियोंसे वार्तालाप। ११ घोड़े हाथी और शस्त्रोंको देखना। १२ सेनाध्यक्ष फ़ौजी विषयोंपर वार्तालाप करना।

रातको—१ गुप्तचरोंसे बातें पूछना। २ फिर स्नान, भोजन पुस्तकावलोकन। ३ निद्रा।

इन साधारण बातोंके अतिरिक्त राजाको राज्य करनेके हेतु राजनीति सीखनेकी और अनुभव प्राप्त करनेकी बड़ी ज़रूरत समझी जाती थी। शुक्राचार्य और कौटिल्यने स्पष्ट कहा है कि राजाको नीतिशास्त्र सीखना चाहिये। राजनीति जाननेवाले आचार्योंसे उसे उपदेश लेना चाहिये। बहुत कम लोग यह बात जानते हैं कि प्राचीनकालमें हिन्दूलोग राजनीतिका जानना कितना आवश्यक समझते थे। महाभारतमें लिखा है कि सारी मानवजाति राजनीति सीखने और राजधर्म मानने से [illegible] होती है। क्योंकि इसी शास्त्र द्वारा सब मानव-धर्मोंका पालन होता है।

शुक्राचार्यने कहा है—"राजनीति सब लोगोंके लिए लाभदायक है। उसके द्वारा मानवजातिकी रक्षा होती है। यह [illegible] है। धन सुख और ऐश्वर्यका यह कोष है। [illegible] जाननेसे सब [illegible] (राष्ट्रीय) मुक्ति प्राप्त होती है और राजाको [illegible] [illegible] है।"

अतएव राजाको राजनीतिमें निपुण होना अत्यावश्यक है। इसी लिए प्राचीन [illegible] राजनीति [illegible] जाती थी और युवा अवस्थामें उन्हें, राज-[illegible] प्राप्त [illegible] [illegible] [illegible]।

मुकुन्दीलाल।



प्राचीन भारतके आर्थिक इतिहासका दिग्दर्शन

सम्भूय-समुत्थान ।

(४)

आधुनिक आर्थिक व्यवस्थापर दृष्टिपात करते हुए यह बात मालूम होती है कि विज्ञानके तरह तरहके आविष्कार और यन्त्र-तन्त्र हमारे उद्योगधन्धोंमें उपयोग किये जाते हैं। ज्योंही विज्ञानका कोई नूतन आविष्कार हुआ त्योंही उसका उपयोग मनुष्यके औद्योगिक क्षेत्रमें शीघ्रही होने लगता है। यूरोपके इतिहास-वेत्ता उस महाद्वीपकी वर्तमान औद्योगिक उन्नतिपर विज्ञानका कितना व्यापक प्रभाव हुआ यह भलीभाँति जानते हैं। यूरोपके इतिहासमें विज्ञानकी उन्नतिके कारण प्रत्येक देशके उद्योग-धन्धोंमें बड़ेही आश्चर्य-जनक परिवर्तन हुए और हो रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके इतिहासमें यह घटना "औद्योगिक युगान्तर" के नामसे विख्यात है। इस युगान्तरमें नूतन सभ्यताका प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्यके रहन सहनके ढंग बिल्कुल बदल गये। प्राचीन युगकी कारीगरीकी कोई बात भी न पूछने लगा। उस समयके चरखे, हथकड़े आदि छोटी वस्तुओंको देख लोग विज्ञानकी अघटित घटना पटीयसी मायासे विस्मित हो मन ही मन हँसने लगे और अपने पूर्वजोंकी उन्मेष-शून्य बुद्धिपर कटाक्ष-पात कर अपनी उन्नतिके अभिमानमें चूर हो गये।

जब पाश्चात्य देशोंमें यन्त्र-तन्त्रका दौर दौरा होगया तब ऐसी अनेक आर्थिक संस्थाएँ उत्पन्न होने लगीं जिनमें वहाँके व्यापारी लोगोंने प्रभूत सम्पत्ति लगाकर बड़े बड़े कल कारखाने स्थापित किये। कल कारखानोंके सञ्चालनसे चीज़ें सस्ती, साफ और बहुत परिमाणमें शीघ्रही तैयार होने लगीं। उनकी आमदनी दिन दूनी रात-चौगुनी होने लगी। अन्य देशोंकी पुरानी रीतिकी कारीगरियां नष्ट-प्राय हो गईं। पिछड़ी हुई जातियोंके बाज़ारोंपर उन लोगोंका निष्कण्टक साम्राज्य होगया। इसका परिणाम यह हुआ कि पूर्वीय देश पाश्चात्य लोगोंकी आर्थिक परतन्त्रतामें इस बुरी तरहसे जकड़ गये कि आजकल उस महासङ्कटसे उत्तीर्ण होना कष्ट-साध्य प्रतीत होता है। हिन्दुस्तानका करघोंका बना कपड़ा हज़ारों मील-से यहाँ लाए हुए विदेशीय कपड़ोंकी अपेक्षा बहुत महँगा पड़ता है इसका कारण केवल यही है कि भारतवर्षके व्यापारी लोग अपनी पूँजीका अच्छेसे अच्छा उपयोग नहीं जानते। वे मिलकर अपनी एकत्र की हुई बड़ी पूँजीसे कोई बड़ा व्यापार चलानेका साहसही नहीं करते। जिसके पास जो कुछ पूंजी होती है उसे वह सौफी सईक व्याजपर लगाकर अपना और ऋण-कर्त्ताके धनका नाश कर डालता है। भारतके पूँजी वालोंमें सम्भूय-समुत्थानकी योग्यताही नहीं। बड़े कल-कारखाने विशाल पूँजीके बिना नहीं चल सकते। और बिना उनके स्वदेशका आर्थिक जीवन हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। इसका दायक, अन्य आगत वैज्ञानिक पद्धतिसे अपनी पूँजीका सदुपयोग कर आज आर्थिक वैभवमें यूरोपके बड़ा उद्योगी देशोंकी बराबरी कर रहा है परन्तु जरा-जीर्ण भारत फिर भी घोर प्रमाद-निद्रामें सोया हुआ है।

१. उत्साह २. उद्योग ३. मन्त्र ४. बुद्धि...
हिन्दूशास्त्रकारोंने राजाका भार [illegible]
निर्दिष्ट समय—१ उठकर प्रातःकाल [illegible]
करना । २ मन्त्रियोंसे परामर्श ३ गुप्तचरोंको भेजना ।
सैनिक दृष्टिसे, विचार करना । ६ प्रजाके दुःख सुनना [illegible]
[illegible] विद्याध्ययन करना । ८ जना [illegible] जाँच [illegible]
१० कुछ मनोरंजन या मन्त्रियोंसे वार्तालाप । ११ [illegible]
१२ सेनाध्यक्ष फौजी विषयोंपर वार्तालाप करना ।
रातको—१ गुप्तचरोंसे बातें पूछना । २ फिर स्नान,
इन साधारण कार्योंके अतिरिक्त राजाको राज्य
और अनुभव प्राप्त करनेकी बड़ी जरूरत समझी जाती थी
स्पष्ट कहा है कि राजाको नीतिशास्त्र सीखना चाहिये । [illegible]
उपदेश लेना चाहिये । बहुत कम लोग यह बात जानते हैं [illegible]
नीतिका जानना कितना आवश्यक समझते थे । महाभारतमें
राजनीति सीखती और राजकीय मामलोंमें भाग लेती है । [illegible]
[illegible]का पालन होता है ।

शुक्राचार्यने कहा है—"राजनीति सब लोगोंके हि[illegible]
मान[illegible]की रक्षा होती है । यह [illegible] देती है । [illegible]
इस शास्त्रके जाननेसे सब शासकको (राजाको) मुक्ति प्राप्त [illegible]
होती है ।

थी, इस विषयपर हिन्दू-धर्म शास्त्रोंमें जो नियम विधान मिलते हैं उनमें यह निर्विवाद सिद्ध है कि मिलकर और अपनी अपनी पूँजी मिलाकर वाणिज्य करना हमारे आर्थिक जीवनका प्रधान अंग था। हम नारद स्मृतिसे उद्धृत किये हुए "सम्भूय-समुत्थान" के लक्षणका पूर्वमें निर्वाचन कर चुके हैं। सम्भूय-समुत्थान-मूलक उद्योगमें साझीदारोंके जो जो विशिष्ट गुण होने चाहिए उनका उल्लेख बृहस्पतिने इस प्रकारसे किया है:-

अज्ञानालसरोगार्त्तमन्दभाग्यनिराश्रयैः।
वणिज्याद्याः सहैतैस्तु न कर्तव्या बुधैः क्रियाः॥
कुलीनदक्षानलसैः प्राज्ञैर्नाणकवेदिभिः।
आयव्ययज्ञैः शुचिभिः शूरैः कुर्यात्सह क्रियाः॥"

अज्ञानी, आलसी, रोगार्त, मन्द-भागी, आश्रय-हीन साझीदारोंसे मिलकर बुद्धिमानोंको वाणिज्यादि उद्योग न करने चाहिये। कुलीन, दक्ष, आलस्य-शून्य, आय-व्ययके जानने वाले, ईमानदार, साहसी, कुशाग्र-बुद्धि-युक्त लोगोंसे मिलकर साझेका काम करना उचित है। सम्भूय-समुत्थानका आधार प्रक्षेप अर्थात् पूँजीका विनियोग है। इस पूँजीका प्रत्येक व्यक्तिको कुछ अंश देना पड़ता है। परन्तु इस अंशमात्रके विनियोगसे एकत्र की हुई पूँजीसे बहुत लाभ होता है। 'धन-प्रक्षेप' ही सम्मिलित व्यापारका मुख्य अंश नहीं बल्कि इसके संचालनमें अनुभवी, व्यापार-दक्ष और अध्यवसायी पुरुषोंका हाथ रहना परमावश्यक है। अतः साझीदारोंका चरित्र बृहस्पतिके मतानुसार स्वच्छ और आदरणीय होना चाहिए। अन्यथा साझेका काम बिल्कुल निष्फल जाता है। पूँजी दक्षता और साख ये तीन बातें सम्भूय-समुत्थान-मूलक व्यापारकी सफलताके लिए परमावश्यक हैं।

ऐसे उद्योग-धन्धोंमें जिसका जितना भाग हो उसे अपने भागके अनुसार ही उस धन्धेकी लाभ हानिका अंश-हर होना पड़ता है। यदि साझीदारोंके भाग समान वा न्यूनाधिक हों तो तदनुसार ही वे आयव्ययके अधिकारी होते हैं -

समोन्यूनोऽधिकोवांशो येन क्षिप्तस्तथैव सः।
व्ययं दद्यात्कर्म्मं कुर्याल्लाभं गृह्णीत चैव हि॥

बृहस्पति—विवादरत्नाकर

याज्ञवल्क्य स्मृति × में इस प्रसंगमें दो बातोंका उल्लेख मिलता है। साझेदार अपने साझेके अनुसार लाभ हानिको बाँट लें, अथवा उनकी संस्थाके नियमानुसार जो जो न्यूनाधिक हिस्सा जिस जिस साझेदारका हो उसे वह हिस्सा मिलना चाहिए। कदाचित् किसी व्यक्तिने पूँजी नहीं लगाई पर वह उस उद्योगके संचालनमें बड़ा ही चतुर है तो वह उस उद्योगमें सहायक होकर अपना साझा निश्चित करा सकता है। अतएव धर्मशास्त्रका मत है कि साझेके काम आरम्भ करनेके पूर्व साझेदारोंको स्वयंकृत नियमों द्वारा [illegible] अपनी संस्थाका संचालन न करना चाहिए।

× समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ॥

परिश्रमकी आर्थिक उन्नतिका एक बड़ा कारण गांवकी प्रथामें व्यापार करना है। उस देशमें कोई एकाकी रहकर कोई ऊँचे दर्जेका व्यापार नहीं करता। कुछ मनुष्य मिलकर किसी उद्योगके निमित्त एक संस्थाका संगठन कर डालते हैं। अपनी अपनी पूंजी-का भाग देकर और कामके नियम बना किसी व्यापार चतुर मनुष्यके निरीक्षणमें बड़े समा-रोहके साथ वे अपना उद्योग चलाते हैं। इस तरह मिलकर व्यापार करनेको संभूय-समुत्थान या साझा कहते हैं। ऐसे व्यापार-संघमें तीन बातोंका होना अतीव उपयोगी है। पहले तो पुष्कल पूँजी होनी चाहिये, फिर कोई उस धन्धेमें दक्ष मनुष्यका सहयोग होना चाहिये, इसके अतिरिक्त जिस उद्योगको हाथमें लिया हो उसमें उस व्यापार-संघ की नामवरी होना भी उसकी उन्नतिका परम साधन है। जिस दूकान या कम्पनीकी नामवरी होजाया करती है उसका काम-बड़ी खूबीसे चल पड़ता है।

इस सम्मिलित व्यापारकी प्रथा के सिद्धान्तको भारतवासियोंने प्राचीन कालमें भलीभाँति समझ रक्खा था। नारदीय धर्मशास्त्रमें इस प्रथाका अच्छा विवेचन मिलता है।

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म सम्भूय कुर्वते।
तत्संभूयसमुत्थानं व्यवहारपदं स्मृतम् ॥
फलहेतोरुपायेन कर्म संभूय कुर्वताम्।
आधारभूतः प्रक्षेपस्तेनोत्तिष्ठेयुरंशतः ॥
समोऽतिरिक्तो हीनो वा तत्रांशो यस्य यादृशः।
क्षयव्ययौ तथा वृद्धिस्तत्र तस्य तथाविधाः ॥
भाण्डपिण्डव्ययोद्धारभारसाराम्ववेक्षणम्।
कुर्युस्तेऽव्यभिचारेण समये स्वे व्यवस्थिताः ॥

नारद १३१

जिस संस्था द्वारा व्यापारी लोग मिलकर कोई उद्योग करते हैं उसे व्यवहारमें 'सम्भूय-समुत्थान' कहते हैं। फलके हेतु उपाय पूर्वक मिलकर उद्योग करने वालोंकी, अपने अपने हिस्से-की वितीर्ण पूँजी ही आधारभूत है। उस प्रक्षेपसे या पूँजीके सम्मिलित वितरणसे वे कृत-कार्य हो सकते हैं। उस एकत्र की हुई पूंजीमें जिसका जैसा भाग हो समान विशेष या कम जैसा हो उसके हिस्सेकी हानि, लाभ या व्यय उसकी पूँजीके प्रमाणानुरूप ही होना चाहिए। सम्मि-लितव्यापारकी सारी पूँजी बरतन भाँडे और अन्य आवश्यक वस्तुओंका समय समयपर व्यवस्था पूर्वक अवेक्षण करना उचित है।

नारद-स्मृतिमें ये पूर्वोक्त सम्भूय-समुत्थानके नियम बड़े ही विलक्षण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतमें पूँजीका आर्थिक महत्व पूर्णरूपसे लोगोंको मालूम था।

सम्भूय-समुत्थान द्वारा पूँजीसे व्यापारोन्नति और धनवृद्धि करनेके उपाय उस समय त थे, इसमें सन्देह नहीं।

सम्भूय-समुत्थानके सिद्धान्तके अनुसार व्यापार करनेकी प्रथा प्राचीन भारतमें प्रचलित

थी। इस विवरणसे हिन्दू-धन-सम्पत्तिका जो [illegible] है, जो विवरण है उससे यह निश्चित सिद्ध है कि निजकर और [illegible] [illegible] किसानका [illegible] करना [illegible] अधिक [illegible] प्रधान अंग था। इस [illegible] [illegible] "सम्भूय-समुत्थान" के सम्बन्धमें पूर्ण विवेचन कर चुके हैं। सम्भूय-समुत्थान-मूलक उद्योगमें साझीदारोंके जो जो विशिष्ट गुण होने चाहिए उनका उल्लेख बृहस्पतिने इस प्रकारसे किया है :–

"अकुलीनालस्यरोगार्तमन्दभाग्यनिराश्रयैः ।
वणिज्याद्याः सहैतैस्तु न कर्तव्या बुधैः क्रियाः ॥
कुलीनदक्षानलसैः प्राज्ञैर्नाणकवेदिभिः ।
आयव्ययज्ञैः शुचिभिः शूरैः कुर्य्यात्सह क्रियाः ॥"

अकुलीन, आलसी, रोगार्त, मन्द-भागी, आश्रय-हीन साझीदारोंसे मिलकर बुद्धिमानों-को वाणिज्यादि उद्योग न करने चाहिये। कुलीन, दक्ष, आलस्य-शून्य, आय-व्ययके जानने वाले, ईमानदार, साहसी, कुशाग्र-बुद्धि-युक्त लोगोंसे मिलकर साझेका काम करना उचित है। सम्भूय-समुत्थानका आधार प्रक्षेप अर्थात् पूँजीका विनियोग है। इस पूँजीका प्रत्येक व्यक्तिको कुछ अंश देना पड़ता है। परन्तु इस अल्पमात्राके विनियोगसे एकत्र की हुई पूँजीसे बहुत लाभ होता है। 'धन-प्रक्षेप' ही सम्मिलित व्यापारका मुख्य अंग नहीं बल्कि इसके सञ्चालनमें अनु-भवी, व्यापार-दक्ष और चतुर पुरुषोंका हाथ रहना परमावश्यक है। अतः साझीदारोंका चरित्र बृहस्पतिके मतानुसार स्वच्छ और आदरणीय होना चाहिए। अन्यथा साझेका काम बिल्कुल निष्फल जाता है। पूँजी दक्षता और साख ये तीन बातें सम्भूय-समुत्थान-मूलक व्यापारकी सफलताके लिए परमावश्यक हैं।

ऐसे उद्योग-धन्धोंमें जिसका जितना भाग हो उसे अपने भागके अनुसार ही उस धन्धेकी लाभ हानिका भाग-हर होना पड़ता है। यदि साझीदारोंके भाग समान वा न्यूनाधिक हों तो तदनुसार ही वे आयव्ययके अधिकारी होते हैं –

समोऽन्यूनोऽधिकोवांशो येन क्षिप्तस्तथैव सः ।
व्ययं दद्यात्कर्मकुर्याल्लाभं गृह्णीत चैव हि ॥

बृहस्पति—विवादरत्नाकर

याज्ञवल्क्य स्मृति × में इस प्रसंगमें दो बातोंका उल्लेख मिलता है। साझेदार अपने साझे के अनुसार लाभ हानिको बाँट लें, अथवा उनकी सलाहके नियमानुसार जो जो न्यूनाधिक हिस्सा जिस जिस साझेदारका हो उसे वह हिस्सा मिलना चाहिए। कदाचित् किसी व्यक्तिने पूँजी नहीं लगाई पर वह उस उद्योगके सञ्चालनमें बड़ा ही चतुर है तो वह उस उद्योगमें सहायक होकर अपना साझा निश्चित करा सकता है। अतएव धर्मशास्त्रका मत है कि साझेके काम आरम्भ करनेके पूर्व साझेदारोंको स्वसम्मत नियमों द्वारा ही अपनी संस्थाका सञ्चालन न करना चाहिए।

× समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम् ।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ॥

[illegible] ।

इस सम्भूय समुत्थानका उसूल कृषि व्यापारमें भी प्रयुक्त किया जाता है। इसमें [illegible] भी इस नियमके अनुसार [illegible] करते थे।

[illegible] कर्षकचौराद्यैः [illegible] च ।
ये समवायान्विताः कार्यं कुर्युः कार्यं विजानता ।
हिरण्यकुप्य [illegible] [illegible]र्थसंस्थाम् ।
मल्लानां च कलाभिज्ञाः शिल्पी चांशं यथाविधिः ॥
देवकारावापो [illegible] शिल्पं सम्भूय कुर्वते ।
कर्मानुरूपं निर्वेशं लभेरंस्ते यथाक्रमम् ॥ बृहस्पतिः ।

विज्ञान और विविध प्रकारके शिल्प-कौशलमें लोग भी सम्भूय-समुत्थानके उसूलको व्यवहारमें परिणत करनेके लिए सदा तत्पर रहते थे। 'अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग' की कहावत औद्योगिक क्षेत्रमें अनुसरण करनेसे देशका आर्थिक अभ्युदय होना असम्भव है। पूंजीके सहयोग मिलकर काममें लगानेसे बहुत व्यापारकी अभिवृद्धि हो सकती है। प्राचीनकालके भारतके व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके विषयमें जो यूनान और रूमके विख्यात इतिहासकारोंने साक्षी दी है वह यदि यथार्थ है तो यह मानना पड़ेगा कि हमारे औद्योगिक क्षेत्रमें सम्भूय-समुत्थानकी रीतिका अनुसरण किया ही जाता था। इन उपर्युक्त बातोंसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत केवल कृषि-प्रधान देश ही न था बल्कि आधुनिक यूरोपकी भांति इसमें उद्योग-धन्धे सम्भूय-समुत्थानकी पद्धति द्वारा ही हुआ करते थे और विदेशोंसे इसका व्यापार-संबन्ध घनिष्ठ था। बुद्ध भगवानकी जन्म-कथाएँ जो पाली भाषामें लिखी गई हैं और जिनमें बहुतसी विक्रमाब्दसे भी बहुत प्राचीन हैं, उनमें सम्भूय-समुत्थान-मूलक बहुत कुछ उल्लेख मिलता है। इत्यलमतिविस्तरभयात्।

गङ्गाप्रसाद मेहता

सुख और दुःख



ख और दुःखकी कैसी विचित्र मैत्री है! कहाँ सुख और कहाँ दुःख, पर दोनोंका सहवास दोनोंकी गाढ़ी मैत्री! सम्भव है यह केवल कविकी कल्पना हो, या सम्भव है यह कोई वैज्ञानिक सिद्धान्त हो। निःसन्देह, इस विषयपर विचार करना अत्यन्त रोचक कार्य है। पर यदि मैं इस समय उधर झुकूँ तो जिस विचारसे इस लेखको लिखना चाहता हूँ वह जहाँका तहाँ रह जायगा। अतएव मैं इस विषयको भविष्यके लिये छोड़ता हूँ और वर्तमानमें केवल एक प्रश्न हल करनेका यत्न करता हूँ अर्थात् मनुष्यके सुख और दुःखसे समाजका क्या सम्बन्ध है? अंग्रेजी संसारके सामाजिक साहित्यमें राबिन्सन क्रूसोके किस्सेने विद्वानों और लेखकोंके सम्मुख एक नई समस्या और एक नया विचार रख दिया। यदि कोई मनुष्य किसी निर्जन स्थानमें मानव समाजसे पृथक् रहे तो उसकी क्या आवश्यकताएँ होंगी और तदनुसार उसके क्या सुख होंगे और क्या दुःख होंगे इस बातका काल्पनिक विवेचन पूर्वीय साहित्यमें ऐसा अच्छा सम्भवतः न मिलेगा जैसा राबिन्सन क्रूसोमें है। हमारे यहाँ तो ऋषि, मुनि, सन्यासी सभी निर्जन वनके उपासक थे और जनसमाजसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध न था। राबिन्सन क्रूसोके किस्सेमें एक त्रुटि यह थी कि उसे उस एकान्त द्वीपमें बैठकर मनुष्योंसे मिलनेकी बड़ी कामना होती थी और उसकी आवश्यकताएँ चूँकि वह आरम्भसे जनवृन्दमें रह चुका था साधारण सामाजिक मनुष्योंकी जैसी थीं। जब दार्शनिक यह विचार करनेके लिए बैठता है कि समाजसे पृथक् रहने वाले मनुष्यके क्या सुख और दुःख हैं तब राबिन्सनक्रूसोका चरित्र उसकी कोई सहायता नहीं करता। कारण यह है कि जिस मनुष्यके जीवनका चित्र खींचनेका दार्शनिक यत्न कर रहा है वह उसके सम्मुख राबिन्सन क्रूसो जैसा व्यक्ति जो समाजमें कुछ कालतक रह चुका है और उसके [illegible] [illegible] हो चुका है, नहीं ला सकता। उसके लिए तो ऐसे [illegible] जीवकी आवश्यकता है जो जन्मसे किसी निर्जन स्थानमें रहा हो और जिसे समाजसे भेंट न हुई हो। अब रहे हमारे ऋषि, मुनि। क्या वे ऐसे व्यक्ति हैं? मेरे ध्यानमें वे ऐसे व्यक्ति नहीं हैं। एक तो इनमें वे दोष वर्तमान हैं जो राबिन्सनक्रूसोमें थे, दूसरे एक बड़ी भारी बात यह है कि ऋषि, मुनि, [illegible] पर [illegible] करनेके लिए जाते थे। यद्यपि इनका ध्यान एक वस्तुविशेष परमात्मामें लवलीन था। [illegible] ध्यान [illegible] जीवकी [illegible] [illegible] है उसका [illegible] यह भी है कि [illegible] लगेगा कि उसकी मानसिक जीवनचर्या क्या है? [illegible] हमारे ऋषि मुनि भी हमारा [illegible] नहीं है।

[illegible] अथवा सामाजिक [illegible] और [illegible] सुख दुःखका [illegible] है [illegible] ठीक ठीक वैज्ञानिक रूपसे अनुसन्धान करनेके लिए यह [illegible] है कि [illegible] मनुष्यकी जीवनचर्या, आवश्यकताओं और [illegible] [illegible] पृथक् रहा हो। परन्तु ऐसे मनुष्यका मिलना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एक अत्यन्त कठिन काम है। यदि कल्पनासे काम लेकर ऐसे व्यक्तिका चित्र हम सम्मु उपस्थित करें तो उसके दोषयुक्त होनेका भय है। ऐसी अवस्थामें यह उचित प्रतीत होता कि हम इस कठिन पन्थको त्याग दें और समाजके बाहरके कलेवरसे सम्पूर्ण मनुष्य और इ प्रकार समाजके भीतरके मनुष्यकी वैज्ञानिक तुलनाका यत्न न करें।

हमारे जीवनमें अनेकों ऐसी मोटी मोटी घटनायें हैं जिनपर उदाहरण स्व विचार करनेसे लेखका तात्पर्य सिद्ध हो सकता है और उनमेंसे एकपर हम विचार करेंगे।

मनुष्य जीवनके सब सुख और दुःखके दो विभाग हो सकते हैं—मानसिक औ शारीरिक। यूरोपके साम्यवादी सम्प्रदायने और अन्य अन्य सुधारकोंने समाजके शारीरिक दुः दूर करनेकी विधि निकालनेकी निरन्तर चेष्टा की है। कारखानोंका सुधार, मज़दूरोंका वेत ऊँचा करानेका उद्योग, मज़दूरोंके काम और परिश्रम कम करानेके कानून, सहकारिता इत्यादि ये सब कष्ट निवारणकी विधि मात्र है। परन्तु कुछ विचारवान सुधारकोंका मत है कि संसार के सब दुःख भोजन और वस्त्र न मिलनेसे उत्पन्न होते हैं और इसलिए यदि कोई ऐसा प्रबन्ध हो सके कि सम्पूर्ण जनसमाजको मुफ्तका भोजन मिलजाय और आवश्यक वस्त्र मिल सके तो संसारमें उन्नति और सुखके सूर्यका उदय हो जाय। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एल्फ्रेड रसेल वैलेस, जिन्होंने डारविनके पूर्व विकाससिद्धान्तके मूल तत्त्वको जान लिया था, उन्होंने भी यह मत प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक मनुष्यको भोजन सरकारकी तरफ़से मुफ्त मिलना चाहिये और चौराहे चौराहे और नाके नाकेपर रोटियोंके झाबे भरे रक्खे रहने चाहिये कि जिस किसीको भूख लगे गरीब या अमीर, सब उन्हें मुफ्त ले सकें।

अतएव मैं सुख और दुःखके विशाल प्रश्नको सङ्कुचित करके आवश्यकीय भोजन और वस्त्रका प्रश्न बना लेता हूँ और इसीपर इस लेखमें विचार करूँगा।

मैं यह सिद्ध करनेका यत्न करूँगा कि अर्थशास्त्रके प्रसिद्ध विद्वानोंने जहाँ व्यापारिक और धन सम्बन्धी अनेकों नियमोंका अनुसन्धान किया, वहाँ भोजन सम्बन्धी एक अटल सिद्धान्तपर ध्यान न दिया और सम्पूर्ण समाजके उस नियमका अवलम्बन करनेसे आज कालमें सब दुःखोंका मूल, भोजनका दुःख व्याप्त रहा है मेरे विचारमें कोई नवीनता नहीं है परन्तु मेरी कसौटी अवश्य किंचित्मात्र नवीन है।

इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें मनुष्यके लिए भोजन और वस्त्रका सङ्कट सब [illegible] बढ़कर है और यदि किसी उपायसे यह कष्ट दूर हो सकता तो मानवसमाज- एक रोग दूर हो जाता। अब प्रश्न यह होता है कि इस कष्टसे समाजके [illegible] क्या है। यह सम्बन्ध [illegible] है। जो मनुष्य जो वस्तु भोजनको या जो वस्त्र पहिननेको है वह वस्तु [illegible] नहीं मिलती। समाजने नियम बना रखे हैं कि [illegible] इतना दाम देकर मिलती या नहीं मिलती। मूल [illegible] यह हुआ कि समाजने देकर एक [illegible] रक्खा है जिसके बिना कोई [illegible] [illegible]

नहीं कर सकता। अब यह शब्द [illegible] "मार्ग, परिश्रम करो, [illegible], धन मिलेगा।" मैं कहता हूं कि यह शिक्षा [illegible] नहीं है और अपने [illegible] नहीं समझते। स्वयं, परिश्रम या योग्यतासे धन नहीं होता। परिश्रम या योग्यतासे हम केवल दूसरेके स्थानसे अपने [illegible] हैं। इस प्रकार लेनदेनसे समाजके धन समूहकी निरन्तर वृद्धि नहीं होती। मैं धन शब्दका अर्थशास्त्रकी परिभाषाके अनुसार प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। मेरा अर्थ केवल पदार्थोंसे है जो जिनकी भांति आवश्यकताओंके निवारणार्थ सर्वत्र विराजमान रहते हैं। समाजका धनसमूह ऐसा नहीं है जो हमारे परिश्रमके अनुकूल [illegible] उसमें अपने बढ़ जाता हो। यदि कोई कुआं हो और हम गये और उसमेंसे पानी खींच लाये तो जितना हमने परिश्रम किया उसके अनुरूप हम नवीन जल मिल गया, पर उसके कुएंका जल निश्चय नहीं है। कुएंसे जो जल हम निकालते हैं उसमें हमारी आवश्यकता पूरी होती है और [illegible] जो औरोंके पास जल था उसकी मात्रा कम नहीं होती। [illegible] परिश्रम करने वाला उसकी भांति नवीन धन नहीं पाता। [illegible] भांति धन केवल इधरका उधर और उधरका इधर हो जाता है।

सम्पत्ति शास्त्रके विद्वानोंने समाजके उन सब पदार्थोंका नाम जिनका विनिमय होता है धन रक्खा है। इस सिद्धान्तपर उनका साधारण मनुष्योंकी भांति मत है कि परिश्रम और योग्यतासे मनुष्य जो कार्य करता है उससे समाजके "धन-समूह" की येन केन प्रकारेण वृद्धि अवश्य होती है। मैं इस परम विस्तृत शब्दसे भोजन और वस्त्र पदार्थोंको पृथक् किया चाहता हूं। अब आप यदि मान भी लें कि उचित परिश्रम और योग्यतासे "धन" की वृद्धि हुई तो भी यह मानना पड़ेगा कि भोजन और वस्त्रके पदार्थोंकी वृद्धि नहीं हुई। मान लीजिये कि मैं सम्पादक हूं। मैंने परिश्रम और योग्यतासे लेख लिखे। इससे भोजन और वस्त्रकी सामग्रीका समूह तनिक भी बढ़ नहीं गया, पर लेख लिखनेसे जो हमने उपार्जन किया वह हमारे लिये टिकट रूप हो गया कि हम उसके द्वारा जो भोजन और वस्त्र समाजके भांडारमें था उसमेंसे जाकर कुछ ले सकें। इसका परिणाम क्या होता है? इसका परिणाम यह होता है कि हमने अपने परिश्रमसे अपना गुजारा बगैर दूसरोंका पेट काटे हुए नहीं किया। सबेरेसे शामतक यही होता रहता है उसीसे कितने निरपराधी भूखे मरते हैं और वस्त्रहीन होकर जीवन निर्वाह करते हैं। परिश्रम और योग्यताके मंत्र संसारसे आलस्य और मूर्खताके भगाने-में समर्थ हो सकते हैं पर वे यहांसे दुःख और क्षुधाके भगानेमें नितान्त असमर्थ हैं।

गत सौ वर्षसे सभ्य संसारके विचारोंमें एक उन्नतिसूचक परिवर्तन हुआ और दार्शनिकोंने यह कहना प्रारम्भ किया कि प्रत्येक प्रजा निवासीका अधिकार है या स्वत्व है कि उसे इतना काम या मजदूरी सहजमें मिल जावे कि वह उस मजदूरीको करके अपना निर्वाह कर सके। काम करनेका अधिकार मनुष्यको प्राप्त है यह बात मान ली गई। मैं कहता हूं यह सिद्धान्त मनुष्य समाजके कष्ट निवारणमें सहायक नहीं है। जिस सिद्धान्तकी

आवश्यकता है यह है आवश्यक भोजन और वस्त्र पानेका अधिकार। अब समय आ गया के इस सिद्धान्तका उपयोग हो। अब फिर मैं उस प्रश्नकी ओर ध्यान आकर्षित ता हूँ जिसे हल करनेके लिए मैं इस लेखको लिख रहा हूँ— अर्थात् समाज संगठन र हमारे भोजन या वस्त्रके दुःखसे क्या सम्बन्ध है? मेरा उत्तर है कि समाजने ऐसे लचर विनाशकारी और अवैज्ञानिक नियमोंपर अपना संगठन कर रखा है कि भोजन इत्यादि कष्ट वहाँ होना आवश्यक है। यह नियम सब सिद्धान्तोंका सार और निचोड़ समझा गया है और इसीपर समाज अवलम्बित है कि जो परिश्रम करेगा वह अपनी आवश्यकताएँ पूरी करेगा। इसी नियमपर समाजका सारा व्यापार स्थित है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी घरमें दस आदमी हैं, दसो मजदूरी करते हैं, कोई तीन आना रोज पैदा करते हैं, कोई पाँच आना, कोई एक आना—परिश्रम सब करते हैं फिर भी भोजनके कष्ट और वस्त्रके कष्टसे सब व्याकुल रहते हैं। क्योंकि अभी पचास वर्ष पूर्व भारतवर्षमें दस प्राणीके घरमें एक मनुष्य पैदा करता था और सब पेटभर भोजन करते थे। परिश्रम तो अब तबसे बढ़ गया, पर साथही साथ कष्ट भी बढ़ा। क्यों? कुछ लोग कहते हैं कि भारतवर्षमें कोई व्यापार नहीं है। जिस समय यहाँ व्यापारकी वृद्धि होगी यहाँकी निर्धनता और साथही साथ भोजनका कष्ट दूर हो जायगा। मैं कहता हूँ पहिलेकी अपेक्षा भारतवर्षका व्यापार अब कई गुना बढ़ गया है। जिन गुजरे दिनोंके नामपर हम बलैयाँ लेते हैं और जिन दिनोंकी शानपर हम अब ताण्डव नृत्य करते हैं उन दिनोंसे आजकल भारतवर्षमें व्यापारकी मात्रा कई गुनी बढ़ी हुई है। फिर भी यह कष्ट है, घोर कष्ट है क्यों?

इन सबका एक उत्तर है। यह कष्ट इसलिए बढ़ गया कि सामाजिक नियमोंके अनुकूल व्यापारके अन्य पदार्थोंकी भाँति अन्न और आवश्यक वस्त्रोंका भी व्यापार होता है। यदि इनका व्यापार होगा तो अवश्य ही यह रुपयेसे खरीदे जायेंगे और साधारण रूपसे रुपया परिश्रमसे मिलेगा और फिर परिश्रम दिनपर दिन भिन्न भिन्न प्रकारका होगा जिससे अन्नकी उन्नति उसी मात्रामें न होगी जिस मात्रामें रुपये की या परिश्रमकी। यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है जिसका उल्लंघन अब तक हुआ है और इसी कारण संसार भरमें यह कष्ट लोगोंको हो रहा है। मेरा तात्पर्य यह है कि जबतक समाज इस नियमपर संगठित है संसारमें कष्ट होना अनिवार्य है इसलिये भोजन और वस्त्रके आवश्यकीय पदार्थोंको व्यापार क्षेत्रसे निकालना परम आवश्यक है।

अब व्यापारक्षेत्रसे इनको निकालनेका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि ए प्रकारके भोजनमें और एक प्रकारके वस्त्रमें किसीकी मिल्कियत न रहे— उसे कोई न बे न खरीदे बल्कि यह जल और वायुकी भाँति जो जितना चाहे उन्हें ले सके। यह किस प्रक किया जाय यह दूसरा प्रश्न है और मैं उसको ही छेड़ना नहीं चाहता। एक बात यह भी है इस विषयकी केवल एक विधि यह है कि सरकार इन वस्तुओंकी स्वामी बन जाय और नि इसका विरोध नहीं है इससे हम इस सम्बन्धमें और कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं समझ

सुख और दुःख

इस पुस्तक विचारसे [illegible] होता है कि [illegible] इस प्रश्न [illegible] हो गया और भोजन और वस्त्र प्रश्नका [illegible] लिये गए, क्या सब सुख और शान्तिका [illegible] हो सकता? ये हम [illegible] मनोवैज्ञानिक नहीं है जो यह समझते हों कि भोजन और वस्त्रके अभावका परिहार होना मनुष्यको दुःखोंसे मुक्त करनेमें [illegible]। इस निबन्धके आदि भागमें मैंने सुख और दुःखके दो साधारण विभाग किये थे (१) शारीरिक और (२) मानसिक। ये भोजन और वस्त्रके दुःख यदि दूर हो गये तो शारीरिक दुःखोंका एक भारी अंश दूर हो गया, पर तब भी कुछ शारीरिक और सम्पूर्ण मानसिक दुःख शेष रह गये। शारीरिक और मानसिक दुःखोंके सम्बन्धमें यदि आप मुझसे पूछें कि कौन अधिक है तो मैं उत्तर दूंगा कि साधारण १६ आनेमें १० आने मानसिक दुःख है और ६ आने शारीरिक। अतएव भोजन वस्त्रकी नवीन नीतिके स्वीकार होनेसे १६ आनेमें केवल ६ आनेके एक विशेष अंशमें परिवर्तन न होनेकी आशा है। पर अब आप हमसे यह प्रश्न करें कि आप कैसे कहते हैं कि कष्ट-समूहमें १० आने मानसिक कष्ट है और ६ आने शारीरिक तो मैं इसका उत्तर यहाँ इसलिए नहीं दे सकता कि इसके प्रमाणमें एक भिन्न विषय आ जाता है जिसे इस भाग लेखके अन्तर्गत करनेमें सङ्कोच होता है। मानसिक दुःख और सम्पत्ति समाजके संगठनका क्या तात्पर्य है इसपर पृथक् विचार हो सकता है।

इस निबन्धका मुख्य विषय था समाजसंगठन और नियमोंसे समाजका सुख दुःखसे क्या सम्बन्ध है? सुख दुःखके विस्तृत क्षेत्रको सङ्कुचित करके हमने भोजन और वस्त्र सम्बन्धी सुख दुःखको मूल दुःख मूल समझ लिया और उसीको लेकर समाज संगठनसे उसका सम्बन्ध अनुसन्धान करते हुए यह दिखलानेका प्रयत्न किया कि जिस नियमपर समाजमें विनिमय होता है उसमें यह आवश्यक है कि भोजन वस्त्रका कष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि जो हम परिश्रम और योग्यताका ढोंग रचते हैं वह आडम्बर है क्योंकि हमारे सामाजिक नियम ऐसे हैं कि किसी न किसीका दरिद्र होना और दुःखी होना अनिवार्य है और इस प्रकार हमारा समाज-संगठन हमारे मुख्य सुख दुःखका उत्तरदायी सिद्ध होता है।

कपिलदेव मालवीय



कागजका रुपया



धारणत "धन" कहनेसे लोगोंको द्रव्य अथवा सोने चाँदीके सिक्कोंका ही बोध होता है। और वही मनुष्य अधिक धनी समझा जाता है जिसके पास अधिक सोना या चाँदी हो। पर वास्तवमें सोना और चाँदी उसी प्रकारके धन नहीं हैं जैसे कि गेहूँ, चावल, रुई या अन्य सर्वसाधारणकी उपयोगी वस्तुएं हैं। सोने और चाँदी या इनके सिक्के तभी तक धन कहे जा सकते हैं जब तक उनसे अन्य पदार्थ खरीदे जाते हैं। यदि उनके बदले हम अपने नित्य कामकी वस्तुएं न पा सकें तो सोना और चाँदी मिट्टी तथा पत्थरसे भी कम उपयोगी हैं। फिर प्रश्न यह होता है, कि तब वे [illegible] स्वरूप क्यों समझे जाते हैं और वे इतने सर्वप्रिय क्यों हैं?

इसका कारण थोड़े शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य हरेक पदार्थ, जिसकी उसे आवश्यकता होती है, उचित रूपसे उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई अन्न उत्पादन करनेमें लगा है, तो कोई कपड़ा बुननेमें, कोई जूता बनानेमें और ऐसे ही अन्य प्रयोजनकी वस्तुएँ बनानेमें। पर अन्न, जूता, कपड़ा सभीके लिए आवश्यक पदार्थ हैं और कोई इनके बिना रह नहीं सकता। पर हर किसीके पास ये सब चीजें नहीं हैं और जब तक वह अपनी चीज़ोंको दूसरोंकी चीजोंसे न बदले अपनी समस्त आवश्यकताओंको पूरी नहीं कर सकता। ऐसी अवस्थामें कठिनाई यह होती है कि [illegible] जिस चीजकी आवश्यकता है उसके उत्पादन करने वालेको उसकी उत्पादन की हुई चीज की उसी समय आवश्यकता नहीं हो सकती। इसमें बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं। मान लिया जाय कि चमारको अन्नकी आवश्यकता है, पर किसानको जूतेकी नहीं [illegible] आवश्यकता है। ऐसी दशामें चमार [illegible] इस प्रकारकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए ही सर्वसम्मतिसे सोना और चाँदी [illegible] राजी हुआ, और ये सर्वमान्य [illegible]

[illegible]

11

[illegible]

[illegible] इंग्लिस्तानमें है। परन्तु जिस प्रकार व्यापार और उद्योगकी वृद्धि हुई है, वह [illegible] भी विस्तार बढ़ता जाता है और उसके लिए अधिक सिक्कोंकी आवश्यकता होती है पर उस आवश्यकताको पूरी करनेके लिए सोना या चाँदी बढ़ाया नहीं जा सकता। उसके अतिरिक्त, एक स्थानसे किसी दूसरे दूर स्थानमें ले जानेके लिए उन धातुओंके भेजनेमें काफ़ी खर्च होता है जोखिम भी थोड़ी बहुत उठानी पड़ती है।

इस कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए तथा सिक्कोंकी संख्या बढ़ानेके लिए बहुत अनुभवके बाद प्रायः सभी सभ्य देशोंमें नोट अथवा "कागजके रुपये" चलाये गये हैं। और भारतवर्षमें भी सन् [illegible] से इन रुपयोंका प्रचार हुआ है।

"कागजका रुपया" अथवा नोट तीन प्रकारके होते हैं।

(१) प्रथम वे नोट जो वास्तवमें सिक्केके प्रतिवाचक होते हैं, अर्थात् किसी बैंक या अन्यत्र रखे हुए रुपयेकी रसीद होते हैं। इस प्रकारके नोटोंमें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं है और जब चाहे नोटके बदलेमें रुपया ले सकते हैं। एक तरहसे तो ऐसे कागजके रुपयों और सिक्कोंमें तो कोई भेद ही नहीं है। (२) दूसरे "प्रतिज्ञा-पत्र" नोट या हुंडी जिनका आधार हुंडी कर्त्ताका विश्वास और उसकी प्रतिष्ठा या साख है। इस प्रकारके नोट व्यापारमें बहुत चलते हैं, और इनका प्रचलित होना परस्पर जानपहिचान और विश्वासपर होता है। [illegible] बात प्रसिद्ध है "जबान ही सोना है" और जिस मनुष्यके विषयमें यह कहावत सच हो उसकी हुंडी चलना बिलकुल उचित और न्याययुक्त ही प्रतीत होता है, क्योंकि उसकी साखमें लोगोंको भरोसा है। (३) तीसरे प्रकारके नोट वे हैं जिन्हें किसी देशकी गवर्नमेंट चलाती है। वास्तवमें ये नोट सोने या चाँदीके आधारपर नहीं होते और इसीलिए चलाये जाते हैं जिसमें वे सोने और चाँदीकी न्यूनताकी पूर्ति कर सकें। यद्यपि उन पर "सौ रुपयेके नोट", "पचास रुपयेके नोट" इत्यादि शब्द लिखे रहते हैं पर वे शब्द केवल प्रमाणमात्र हैं, इनके बदलेमें सोने और चाँदीके सिक्कोंके पानेकी सम्भावना सर्वथा नहीं सिद्ध होती। सरकारकी साख पर ये नोट चलाए जाते हैं। और विशेषकर इसी प्रकारके प्रचलित नोटोंका नाम "पेपर करन्सी" है।

ऐसे नोटोंका सोना या चाँदीका अधिकार पाना विचारविरुद्ध और असंगत जान पड़ता है। पर हरेक देशमें अनुभवसे सिद्ध हो चुका है कि सर्वसाधारण इस प्रकारके कागजके रुपयोंको वही स्थान देते हैं और उसी प्रकारसे काममें लाते हैं जैसे चाँदी और सोनेके रुपयोंको। और ऐसा करना उचित भी है क्योंकि जब ये कागजके उजले, या नीले टुकड़े क्रय विक्रय करने, ऋण चुकाने, कर देने या अन्य भिन्न कार्य्योंमें उसी प्रकार आ सकते हैं जैसे कि धातु, उजले तथा पीले सिक्के तो फिर इनका आदर उन्हीं सिक्कोंके समान क्यों न हो?

लेकिन इन सब समानताओंके रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि नोट और रुपयोंमें गहरी असमानता है और रहेगी। नोटकी कीमत रुपयोंके मूल्यकी अपेक्षा शीघ्र चढ़ बढ़ सकती है तथा इनकी सीमा परिमित है और ये सिक्कोंसे अधिकपरिवर्तनशील होते हैं।

(१) नोटका मूल्य अस्थायी नहीं हो सकता क्योंकि नोटकी स्थिति और नाश गवर्नमेण्टके अधीन है। यदि किसी देशकी गवर्नमेण्ट नोटोंको उठा दे तो उनके ग्रहणकर्त्ताओंके हाथमें एक रद्दी कागजके अलावे और कुछ नहीं रह जायगा। विशेषकर क्रान्तिके समय या राज्यपरिवर्तन होनेपर ये नोट रद्दी कागज हो जाते हैं, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य कुछ नहीं है। इनका मूल्य-कानून द्वारा ...
बड़ी राज्यकी सत्ता या निर्बलतापर निर्भर ...
है, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य सब काल और सब देशोंमें लगभग समान ही रहता है। यदि कानूनसे सिक्के उठा दिये जाय तोभी उनके सोना और चाँदीका धातुमूल्य अवश्य रह जायगा।

(२) नोटका मूल्य परिमित सीमाके अन्तर्गत ही रहता है यह कहा जा चुका है कि नोटका मूल्य कानूनके आश्रित है, और किसी देशके कानून उस देशके बाहर लागू नहीं होते। अतएव एक देशका नोट दूसरे देशमें नहीं चल सकता। जिससे अन्तर्जातीय व्यापारको क्षति पहुँचा करती है। इसके प्रतिकूल सोना और चाँदीका मूल्य सभी राज्य देशोंमें करीब करीब समान होनेके कारण सिक्के अन्तर्जातीय व्यापारमें काम आ सकते हैं। यद्यपि ये सिक्केके स्वरूपमें नहीं लिये जा सकते परन्तु धातुके मूल्यपरसे किसीको लेने देनेमें आपत्ति नहीं होती।

(३) अन्तमें नोटका मूल्य बहुत शीघ्र घट बढ़ सकता है। जिसके कारण व्यापारमें बड़ी अशान्ति फैल सकती है। धातुके सिक्कोंका घटना बढ़ना एक हद तक प्राकृतिक नियमोंके आधारपर होनेके कारण बहुधा इनका परिमाण और मूल्य स्थायी होता है। पर नोटका घटना बढ़ना बिल्कुल सरकारके अधीन है और एक लालची तथा अदूरदर्शी सरकार अधिक परिमाणमें जब चाहे नोट निकाल सकती है, जिसके कारण इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि चीजोंका मूल्य बढ़ जाया करता है और अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। यह सत्य है कि भूगर्भमें नयी खानोंके मिल जानेपर सोने और चाँदीका परिमाण भी कभी कभी बढ़ जाता है, जिसकारण इनका भी मूल्य कम हो जाता है। पर इनका
... संसार व्यापी होनेके कारण इस घटाव या बढ़ावका भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। पर ... लिए यह नहीं कहा जा सकता। एक ही देशमें परिमित रहनेके कारण इनकी संख्याका ... बढ़ाव इनके मूल्यको भी घटा बढ़ा देता है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि बाजारमें ... दो दरसे बिकने लगती है यदि रुपयेसे खरीदो तो कम दाम देना पड़ता है और नोटसे ... तो अधिक।

पूर्वोक्त बातोंसे यही प्रकट होता है कि "कागजके रुपये" अथवा नोटोंमें बहुत आपत्ति ... इनके व्यवहारमें उनमें अनेक असुविधाएं हैं। पर विचार कर देखा जाय तो संसार ... कम कोई या वस्तुएँ निकलेंगी जिनमें दोष न हो। पर इनके कारण उन वस्तुओंका ... त्याग कर देना संसार उचित नहीं समझता और ...

इसके अतिरिक्त पत्र-मुद्राओंके व्यवहारसे भी हम किसी देशकी आर्थिक दशा सुधार सकते हैं। किसी देशकी आर्थिक उन्नति उस देशके अन्तर्जातीय व्यापारपर निर्भर होती है। पर अन्तर्जातीय व्यापारके लिए सोने और चाँदीकी आवश्यकता होती है, और जबतक हम उनका परिमाण बढ़ा नहीं सकते हम उसके व्यापारकी भी वृद्धि नहीं कर सकते। पर यह बात स्पष्ट है कि अनेक इच्छा करनेपर भी हम सोने और चाँदीकी उपज नहीं बढ़ा सकते। इसके बढ़ानेका केवल एक मात्र उपाय यह है कि वे द्रव्य देशमें स्थायी कामोंके लिए अधिक परिमाणमें लगाये जायें। यदि हम उसके स्थानपर नोटोंसे काम लें और इस प्रकार उनका व्यवहार कर सोने चाँदीको बचाकर अन्तर्जातीय व्यवहार करें तो बहुत लाभ हो सकता है। इसी बातकी उपयोगिता प्रगट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ एडम स्मिथने कहा है "धातुके सिक्के जो देशके भीतर व्यवहारमें लाए जाते हैं वे निरर्थक पूँजी हो जाते हैं, यदि उनकी जगहपर इस देशके भीतर नोटोंसे काम लें, तो देशका सभी सोना और चाँदी अन्तर्जातीय व्यापारमें लगाये जा सकते हैं और इस प्रकार देशकी आर्थिक दशा सुधारी जा सकती है। नोटोंकी उपमा देशकी सड़कोंसे दी जा सकती है। यदि हमलोग चलनेका मार्ग वायु मण्डल पर कोई पावें तो ये सड़कें उपजाऊ जमीन बनाई जा सकती हैं और इस प्रकार देशकी उपज बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है"।

इस प्रकारसे देशकी सम्पत्ति बढ़ाई जा सकती है पर इस बातको हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए कि ये नोट सिक्के नहीं हो जाते, केवल उनकी एवजीपर काम करते हैं। और यदि प्रत्येक देश ऐसा करने लगे तो इन नोटोंसे किसीको लाभ न होगा और अन्तमें फिर बहु-

मूल्य धातुओंकी ही आवश्यकता पड़ेगी। अतएव नोटके प्रचारमें सावधानी रखनी चाहिए। नोट उतने ही निकाले जायँ जितने मूल्यका सोना और चाँदी देशमें हो और उससे अधिक नहीं अर्थात् किसी देशमें सात करोड़ रुपये मूल्यका सोना चाँदी हो तो नोट भी सात करोड़ रुपये तक ही निकलने चाहिएँ, इसमें बढ़ कर नहीं।

पर ये सब विचार अर्थशास्त्रकी पुस्तकोंमें रह जाते हैं, क्योंकि सरकारके हाथमें नोट निकालना है, अर्थशास्त्रज्ञोंके हाथमें नहीं। कागजी रुपया देशके व्यापारके लाभके लिए नहीं निकाला जाता बल्कि सरकारको रुपयेकी पूर्तिके लिए या राष्ट्रीय ऋण चुकानेमें सहायता देनेके लिए उसका प्रचार किया जाता है। ऐसी स्थिति हर राष्ट्रके जीवनमें आती है, और प्रत्येक सरकार ऐसा करना लाभदायक समझती है, पर ध्यान इतना ही रखना चाहिये कि नोटोंकी संख्या देशके सिक्कोंसे अधिक न होने पावे।

राजकिशोर सिंह।



राष्ट्रीय अधःपतनके कुछ कारण

उद्देश्यकी संकीर्णता।

प्रत्येक राष्ट्रका जन्म किसी न किसी विशेष उद्देश्यसे हुआ करता है। अश्वारोही-का जो काम लगाम देती है ठीक वही काम राष्ट्रोंको उनके उद्देश्य दिया करते हैं। जिसप्रकार अश्वारोहीकी यात्रा बिना लगामके अनिर्धारित होती है ठीक उसी प्रकार राष्ट्र बिना उद्देश्यके अनियन्त्रित रहते हैं। जिस प्रकार लगाम अश्वको आवश्यक निश्चित स्थानपर पहुंचनेके लिए ठीक रास्तेपर रखती है, ठीक उसी प्रकार उद्देश्य अपने स्वामियोंको विशृङ्खलित होनेसे रोकते रहते हैं। जिन राष्ट्रोंने जीवित रहनेके लिए अपना उद्देश्य जीवन निर्वाह रक्खा उनमेंसे आज भी ऐसे कहीं एक आध जीवित हैं। परन्तु जिन्होंने न केवल अपने लिए वरन समस्त संसारकी श्रीवृद्धिके नातेपर जीवित रहना आवश्यक समझा वे आज दैवत स्वरूप हुए अपनी सत्ता चिरस्थायी बनाये हुए हैं। कारण जो केवल अपने हेतु जीवित हैं वे न केवल अपने हेतु मृतवत् हैं वरन समस्त विश्वके लिए भी उनका होना न होना बराबर है। जिन्होंने यह समझा कि विश्वकी विलास सामग्रियाँ एक जातिके लिए—और खास कर हमारे लिए-रक्षित हैं, सचमुच उन्होंने मुहकी खाई और वे कुछ कुछ दिनतक ही इस संसारमें अपना रूपमात्र रख पाए। परन्तु जिन्होंने मनुष्य जातिको विश्वात्माका रूप माना, विश्वके समस्त प्राणियोंसे भाईचारेका नाता रक्खा तथा भेद भावका श्राद्ध करके विश्व-बन्धुत्वका बिगुल बजाया, उनपर ईर्षाद्वेषकी मूर्त्तियोंने यदि दाँत पीसे, अत्याचारियोंने यदि भृकुटियाँ टेढ़ी कीं तो भी उनका बाल बाँका नहीं हुआ और फिर भी वे चमके। चमके एक दो दिनके लिए नहीं वरन शताब्दि-वर्षोंके लिए। प्रथम ध्वजाधारियोंने यदि उनको ठुकराया तो आगे चल कर उन्होंने ही अपनी पूर्व कृतिके लिए क्षमा-याचना की। कन्धेसे कन्धा मिलानेपर वे विवश हुए—सहयोगिताका नाता रखनेके लिए वे लाचार हुए। एक एक ग्यारह हुए। एक सहयोगसे दूसरेका भला हुआ और इस प्रकार वे अन्य बन्धुओंके साथ साथ

[illegible] । इनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुस्तकों, मूर्तियों और ऐसी ही प्राचीन [illegible] किन्तु समाजकी कुरीतियोंकी [illegible] नहीं आततायियोंकी और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अब और [illegible] [illegible] [illegible] अपनी [illegible] अभिमान किया. आज [illegible] एक समय ऐसा आया कि वे विश्वको इस विकसित [illegible] [illegible] [illegible] हुआ । [illegible] [illegible] [illegible] उनकी [illegible] [illegible] कोई मिलता ही नहीं और यदि मिलता भी है तो उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस राष्ट्रके लिए निर्जीव बना दिया ।

जीर्ण रूढ़ियोंका अनुचित आग्रह ।

रूढ़ियाँ जब जीर्ण हो जाती हैं तब वे राष्ट्रके लिए किंचित् हित भी नहीं [illegible] पातीं । उनकी स्थिरता राष्ट्रके लिए अत्यन्त अहित कर है । कारण, उनमें इतनी शक्ति न[illegible] रहती कि वे समाजकी जरा भी भलाई कर सकें । भोजन बनानेके लिए जो काम बर्तन देते [illegible] ठीक वही काम रूढ़ियाँ समाजके लिए किया करती हैं । बर्तन जब घिसते घिसते बहुत हलके हो जाया करते हैं तब उनकी मरम्मत करनेकी आवश्यकता पड़ती है । यदि उनकी मरम्मत नहीं की जाती, उन्हें पुनः नहीं बनाया जाता, तो निश्चय भविष्यमें वे बेकार होजाया करते हैं । उनकी पेंदीमें छेद हो जाते हैं और उनमें रक्खी हुई वस्तु नीचे टपकने लगती है । ठीक यही हाल रूढ़ियोंका है । यदि कुछ दिन बाद उनका संस्कार नहीं होता तो वे हितके स्थानपर अहित करने लगती हैं । इसीलिए उनके लिए परिवर्तन और परिवर्द्धनकी आवश्यकता पड़ती है । जिस राष्ट्रके कर्णधारोंने इस आवश्यकताको अनुभव नहीं किया, समझना चाहिये, उसका अधःपतन अत्यन्त निकट है । जो नेता इस संस्कारके प्रति घृणा रखते हुए उन प्राचीन रूढ़ियोंकी चाटुकारितामें लीन रहते हैं उनसे फिर राष्ट्रका भला नहीं होता । जहाँ ऐसे नेता परही राष्ट्रकी बागडोर रक्खी जाती है वहाँ नूतन किन्तु आवश्यक प्रथाएँ जन्म नहीं लेतीं । जीर्ण रूढ़ियोंकी पेंदीके छेद राष्ट्र-सत्ताका दिवाला निकाल देते हैं; अस्तु, प्राचीन रूढ़ियोंकी खुशामद राष्ट्रके लिए अत्यन्त अहित कर है ।

विलासप्रियताकी वृद्धि और चारित्र्यिक दौर्बल्य ।

राष्ट्र-प्रासाद, समाजकी दीवालोंपर स्थिर रहते हैं । समाजकी दीवालें व्यक्तियोंके ईंट-चूनेसे बना करती हैं । जिन दीवालोंका ईंट-चूना पवित्र और पुष्ट होता है वे चिरस्थायिनी होती हैं । भूकम्पोंके दस्करण उन्हें सहसा धराशायी नहीं बना सकते । व्यक्तियोंको पवित्र और पुष्ट बनानेके लिए चरित्र-बलकी आवश्यकता पड़ती है । चरित्र-बल समाजका प्राण है । चरित्र-बल बिना समाज प्राण-शून्य है । जिस राष्ट्रका समाज चरित्र-बलके नातेमें गिर रहा हो समझना चाहिये कि उस राष्ट्रकी नींवमें नोना लग गया है । कहना नहीं होगा कि उस राष्ट्रकी जिन्दगीके दिवस कम होचले । चरित्र-बल समाजका जीवन है और उसकी व्यापकता समाजके लिए रामबाण । चरित्र-बल समाजका भाग्य विधाता है और उसकी स्थिरता सामा-

जिस दृश्यमें मदका लगानेका प्रबल हेतु। चरित्र-बल समाजका प्राण है और उसकी उपस्थिति समाजको अपनी स्थितिपर स्थिर रखनेका कारण। चरित्र-बलको समाजमें समाया हुआ रखनेके लिए यह आवश्यक है कि उसमें विलासप्रियताकी गन्धतक स्पर्श न होने पावे। विलासप्रियता समाजको डाइन है। विलासप्रियता समाजका तहस-नहस किये बिना नहीं रह सकती। विलासप्रियताकी वृद्धि राष्ट्रको अध:पतनकी ओर ले जाती है। हो सकता है कि विलासप्रियता भावुक हृदयोंकी चिरप्रेमिका हो, हो सकता है कि विलासप्रियता आशाके रूपमें उन्नतिशाली राष्ट्रोंकी परम सौन्दर्यदायिका हो, हो सकता है कि विलासप्रियता किसीका जातीय चिन्ह भी हो, पर हमें यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं कि वह राष्ट्रीय विनाशके लिए सबसे अधिक भयावनी सहायिका है।

विश्वासघातकी दुरात्माओंका जन्म और उनकी वृद्धि।

विदेशियोंके संसर्ग और विलासिताके सहयोग कुछ ऐसी आत्माओंका जन्म होने लगता है जिनको यदि वर्णसंकर कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। ये ज्योंही उत्पन्न हुए त्योंही राष्ट्रका मूल काटना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे एक व्यक्तिका होना भी राष्ट्रके लिए अहितकर है। कारण, इनकी कलुषित प्रवृत्तियाँ देश भक्तिकी ओर लागू न होकर देश-द्रोहकी ओर अधिक झुकती हैं। चालाकी एवं चालबाजीमें इतनी पटु होती हैं कि सहजमें ही अपने पिताके साथ भी विश्वासघात करना इनके लिए खेल सा हो जाता है देशके लिए स्वार्थ-त्याग इनके लिए पाप है और उसके सर्वनाशमें योग देना इनके लिए प्रधान कर्तव्य है। इनकी वृद्धि राष्ट्रको निर्मूल कर देती है। अध:पतनसे बचनेके लिए ऐसे प्रयत्नोंकी सृष्टि करनी चाहिए जिनसे इनका बीज देशमें न उगे।

अन्तमें इनके सम्बन्धमें हम यह कहनेमें जरा भी नहीं रुक सकते कि यही देशके लिए सबसे अधिक खतरनाक है।

स्वाधीन-प्रियताका अपहास।

विदेशीय शासनके नीचे रहते रहते स्वाधीन प्रियताका अपहास आरम्भ हो जाता है। इस अपहासको रुकनेके लिए यदि शीघ्र उपाय नहीं होते और यदि होकर भी वे कारगर नहीं सिद्ध होते तो अभ्युदयकारिणी स्वाधीन भावनाओंका नाश होने लगता है। शासनके अन्धकारमें रहते रहते इस रागी रोगको दानापानी मिल जाया करता है। अधिक कालतक पराधीनताकी जंजीरोंमें जकड़े रहनेसे उसी अवस्थामें सन्तोष होने लग जाता है। विजेताकी इच्छाओंका क्रीत दास हो जाना, उसकी आज्ञाओंके पीछे पीछे लगना, धीरे धीरे सम्मान प्रदान होने लगता है। ऐसी अवस्थामें समाज-नायकोंने यदि सन्तोष मान लिया और इसमें किंचित भी सुख अनुभव करने लगे तो विजेता शासक स्वेच्छाचारसे पेश आने लगते हैं। विजित राष्ट्र यदि स्वेच्छाचार सहन लेने लगा तब तो विजेताका काम बन गया समझिये। स्वाधीन-प्रियताके इस ह्रासके निरन्तर जारी रहनेका फल यह होता है कि विजेता विजित जातिके राष्ट्रका नाम तक लय जाते हैं और उस विजित राष्ट्रके स्थानपर अपने राष्ट्रको स्थिर करने लग जाते हैं। समाज-नायकोंकी स्वार्थान्धता

स्वार्थ

अन्य कतिपय पदार्थोंके सम्मिलनसे उन्हें इसमें सफलता मिल जाया करती है। उदाहरणत् रोमने इस प्रकारसे अनेक विजित राष्ट्रोंका नाश करके उनकी जगहपर अपने राष्ट्रको स्थापित किया था।

संक्षेपतः इन उपरोक्त कारणोंका उल्लेख करके अब हम इस लेखको समाप्त करते हैं। इन उपरोक्त कारणोंमेंसे कौन कौन अधिक व्यापक और महत्त्वशाली हैं यह बतलाना अत्यन्त कठिन है। केवल इतना कहा जा सकता है कि इन सबके एकीकरण द्वारा राष्ट्रोंका अधःपतन अनिवार्य हुआ करता है। उन्नतिकी ओर पग बढ़ाने वाले राष्ट्रोंके लिए यह आवश्यक है कि वे इन व्याधियोंसे बचते रहें, कारण कि इनके सामान्य झोंके तक ग़ज़ब ढा देनेमें समर्थ होते हैं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी



भारतमें दुर्भिक्ष



स समय भारतवर्षके सामने बड़ी विषम समस्या है । गत वर्षके प्रथिल व्यापी सर्वनाशकारी दुर्भिक्षने अपना विकट विकराल मुख कर रखा था कि प्रति वृष्टिके कारण इस वर्ष भी दुष्काल ही होगया और भाव और भी महँगा होगया । यों तो भारतमें सर्वदाही अकाल रहती है और गेहूँका भाव ६-७ सेरसे कभी अधिक नहीं होता गेहूँ तो ४॥ सेर मिलताही है पर और मोटे नाज भी इतने म हैं कि प्रजाको असीम कष्ट हो रहा है ।

अन्य देशोंमें तो कभी अकाल पड़ता ही नहीं । हमने तो आज तक भी नहीं है कि अमुक विलायतमें अन्न बिना इतने मनुष्य मरे । पर भारतको अपना घर बना लिया है । प्रत्येक वर्ष भारतके किसी न किसी भाग तथा प्रान्त बना ही रहता है । स० १८३० और १८८८ के इण्डियन फैमिन कमिशनकी रिपो होता है कि इन छोटे छोटे प्रान्तीय दुर्भिक्षोंको छोड़कर भारतमें सन १८२७ से १ अर्थात् केवल आठ वर्षोंमें १८ बड़े अकाल पड़े और यदि १८५७ तकका लेखा ज तो ब्रिटिश राजत्व कालके १३० वर्षोंमें ३२ बड़े अकाल पड़े हैं । यदि प्रान्तीय अ अकालोंका भी लेखा लगाया जाय तो ऐसा वर्ष कोई भी नहीं बीता जिसमें भारत किसी प्रान्त अथवा भागमें अकाल न पड़ा हो । १८४८ से १८७६ तक भारतके भागमें अकाल बना ही रहा है पर अन्य प्रान्तोंसे सहायता पहुँच जानेके कारण विकट समस्याका सामना करना नहीं पड़ता था ।

अब हमको यह देखना है कि क्या कारण है कि भारतमें ही इतने अ हैं और अन्य देश उससे क्यों और किन कारणोंसे अछूते बचे हुए हैं । क्या पहले इसीप्रकार अकाल पड़ते थे अथवा यह हमारेही भाग्यका फल है । सबसे पहले हमें य कि हिन्दू तथा मुसलमान राजत्व कालमें भारतकी दशा कैसी थी और अब ब्रिटिश कैसी है । भारत उस समय अधिक समृद्धशाली और धन धान्यसे पूर्ण था, या अब उस समय सुखी थी अथवा अब है ।

हमारे पुराणोंको आजकल कुछ भी ऐतिहासिक महत्त्व नहीं दिया जात उन्हें अत्युक्तिअलंकार युक्त ग्रन्थ कहकर हवामें उड़ा देते हैं । इसलिए यहाँ पर न करके हम केवल विदेशी यात्रियोंके लिखे यात्रा वर्णनसे कुछ उद्धृत करके चाहते हैं कि उन्होंने पिछले दिनोंमें भी भारतवर्षकी कैसी अवस्था देखी थी ।

मेगस्थनीज़ जो यहाँ विक्रमीय सम्वत्‌के २८२ वर्ष पहले आया था लिख "भारतमें बहुतसे ऊँचे पहाड़ हैं जिनपर हर किस्मके मेवे और फल होते हैं और बीचमें प्रशस्त उपजाऊ मैदान हैं । बहुतसी भूमि आबपाशी की है और उस होती है । यहाँ पर सब तरहके सब बड़के बड़े पशु भी पाये जाते हैं । यहाँके

लिए जीवन निर्वाहकी सामग्री यथेष्ट होनेके कारण ये लोग कद्दावर और स्वाभिमानी होते हैं। हस्त कौशल तथा दस्तकारी आदि कार्योंमें भी ये लोग दक्ष हैं। गेहूं, चना, जौ, आदि अन्नोंके सिवा ज्वार बाजरा तथा बहुत प्रकारकी दाल भी अधिकतामें होती हैं। पशुओंके खाने योग्य और भी बहु प्रकारके अन्न उपजते हैं"। इन बातोंसे जाना जाता है कि भारतमें अकाल कभी नहीं पड़ा और सब खाद्य पदार्थोंकी महँगी कभी भी नहीं हुई।

चीनी यात्री फाहियान जो यहाँ सं० ४५७ में आया था लिखता है कि—"इस देश का जल वायु गर्म और साधारण है, बर्फ आदि नहीं पड़ती, प्रजा समृद्धिवान है, किसी प्रकार कर नहीं देना पड़ता और न अफसरोंकी डाली हुई किसी प्रकारकी रुकावटें हैं। जो राज्यकी भूमि जोतते हैं वे लाभका थोड़ा अंश कर स्वरूप देते हैं। राजा किसीको शारीरिक दण्ड नहीं देते बार बार विद्रोह करनेपर भी केवल दाहिना हाथ काट दिया जाता था।"

दूसरा चीनी यात्री ह्वेनसांग जो सं० ६८७–७०२ में भारतमें आया था। लिखता है कि भारतकी शासनप्रणाली उदार सिद्धान्तोंके आधारपर है, अतएव बहुत सादी है। कर बहुत हल्का, और लोगोंसे साधारण काम लिया जाता है। सब लोग भूमि जोतते हैं, किसीके मालपर कोई दूसरा अधिकार नहीं कर सकता। जो राज्यकी भूमि जोतते हैं उन्हें पैदावारका छठवाँ अंश कर स्वरूप देना होता है। व्यापारी लोग स्वतन्त्रतापूर्वक जा आ सकते हैं। सड़क और नदियोंके मार्ग कुछ थोड़ा कर देनेसे खुले रहते हैं। पब्लिक कार्यमें मजूर लोग लगाये जाते हैं पर उन्हें मजूरी मिलती है और सो भी कार्यके अनुसार।

सेना सीमा प्रदेशकी रक्षा करती है और दुष्टोंको उचित दण्ड देती है। गवर्नर, मन्त्री, मजिस्ट्रेट आदि कर्मचारियोंको जीवन निर्वाहके लिए भूमि ही मिलती है।

मुसलमानोंके राजत्व कालमें भी भूमिकर बहुत अधिक नहीं था और प्रजा एक प्रकार सुखी थी। हाँ, ब्रिटिश राज्यकी सी शांति उससमय अवश्य नहीं थी।

'जमीउस्सग़ीर' में लिखा है कि जो भूमि युद्धमें जीती गयी है और जो नहरके पानीसे सींची जाती है वह चाहे सेनामें बाँट दी गयी हो वा किसानोंके पास ही छोड़ दी गयी हो उसपर कर बैठाया जाता है। यदि वह 'चाही' नहीं है अर्थात् नहरके पानीसे सींची नहीं ... उसपर दसवाँ भाग कर स्वरूप देना पड़ता है क्योंकि उपजाऊ भूमिपर पैदावारका ... लिया ही जाता है।

पर भारतमें इस कानूनके अनुसार बहुत ही कम काम होता था और दसवें अंशके कुछ प्राप्त हो जाता था वही मुसलमान शासक ले लेते थे। सम्राट् अकबरने ... भाग लेनेकी व्यवस्था की थी पर वास्तवमें जो भूमिकर लिया जाता था ... अंशसे अधिक नहीं होता था।

... समयमें भारत १५ सूबोंमें विभक्त था और बंगाल, बिहार, इलाहाबाद, ..., लाहौर और मुलतान नामक आठ सूबोंका रकबा आजकलके बंगाल, ... पंजाब प्रान्तके रकबेके ही बराबर था। इन आठ सूबोंकी मालगुजारी

केवल ७,७३,२२,३११ ही थी, पर स० १९६२,६३ में बंगाल, युक्तप्रदेश और पंजाब प्रान्तोंकी मालगुजारीमें ब्रिटिश सरकारको १२,३१,८८,६४०) की आय थी।

हिन्दू और मुसलमानोंके समयमें एक तो बहुत दुर्भिक्ष कम पड़ते थे, क्योंकि वर्षा भी ठीक समय पर होजाती थी और भूमि सींचनेके राज्यकी ओरसे बहुत कुछ सुविधाएं थीं। दूसरे, यदि अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टिके कारण अकाल पड़ भी गया तो लोगोंको इतना कष्ट नहीं होता था क्योंकि किसान लोगोंके पास इतना अन्न बचा रहता था कि उससे अन्नकी अधिक महंगी नहीं होती थी और न लोगोंको इतना कष्ट ही सहना पड़ता था और न इतनी मृत्यु ही होती थी। तीसरे, विदेशको अन्न बिलकुल नहीं जाता था। इससे जो कुछ अधिक अन्न बच रहता था वह देशहीमें रहता था जिससे २० से ४० सेर तक रुपयेके गेहूँ मिलते थे।

ऊपर लिखी बातोंसे पता चलता है कि इस समय दुर्भिक्ष तथा महंगीकी अधिकता होनेके ये ही चार मुख्य कारण हैं—(१) भारतका मुख्यतः कृषि-प्रधान देश होना और जनसंख्याका बढ़ना। (२) भारतसे अन्न आदि कच्चे माल का विदेश जाना। (३) नहर, तालाब, कुएं आदि सींचनेके साधनोंकी संख्याका यथेष्ट न होना, तथा (४) सरकारी मालगुजारी-का अधिक होना। एक एक करके इन चारों कारणोंपर हम अपना मत प्रकट करेंगे और प्रसिद्ध अर्थशास्त्रवेत्ताओं, अनुभवी शासकों तथा कर्मचारियोंके मतोंसे और सरकारी रिपोर्टोंसे अपने मतकी पुष्टि करेंगे।

१—जन-संख्याका बढ़ना।

भारत एक कृषिप्रधान देश है और यहांके ८० फी सैकड़े लोग कृषिपर ही निर्भर हैं। दूसरा किसी प्रकारका रोजगार ही नहीं है। भारतका जो कुछ प्राचीन कला कौशल तथा उद्योग धंधा था सो सब प्रायः नष्ट होगया और अब उन्नति-प्राप्त देशोंके साथ चढ़ा-ऊपरी करनेमें भारतवर्ष असमर्थ है। स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली प्रचलित होनेके कारण भारतकी और भी दुर्दशा होरही है। उधर भारतकी जन-संख्या चौकड़ी भरती बढ़ रही है। अर्थशास्त्रका यह नियम है कि यदि बिना किसी रोकके जन-संख्या बढ़ने दीजाय तो थोड़े ही दिनमें यह दुगुनी होजाती है। भूमिका यह क्रम है कि सबसे पहले उपजाऊ भूमि ही जोती बोयी जाती है पर ज्यों ज्यों आवश्यकता बढ़ती जाती है त्यों त्यों कम उपजाऊ तथा ऊसर भूमि भी खेतीके काममें लायी जाती है। इसका ही यह प्रभाव है कि पैदावारका भाव चढ़ जाता है। नीचे लिखी संख्याओंसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

स० १९७०,७१में २१,६२,००,००० एकड़ भूमिमें खेती होती थी पर १० वर्ष पहले अर्थात् १९६०,६१ में २०,८३,००,००० एकड़ भूमि ही कृषिमें थी। इससे पता चलता है कि १० वर्षमें १,०६,००,००० एकड़ भूमि अधिक जोती बोयी गयी। और भारतकी जन संख्या जो १९५८ में २३ करोड़ १६ लाख थी १९६८ में २४ करोड़ ४२ लाख होगयी। अर्थात् १ करोड़ २६ लाख मनुष्य बढ़े।

२—अन्नादिका विदेश जाना।

इसके अतिरिक्त भारतमें करोड़ोंका अन्न बाहर भेजा जाता है। भारतकी प्रजा चाहे आधे पेट खाये चाहे भूखों तड़प तड़पके मरजाय पर विदेशको अन्न अवश्य जायगा, भारतमें सुकाल हो चाहे दुष्काल पर विदेशियोंकी भूख मिटानेके लिए अन्न विदेश अवश्य जायगा। दिन पर दिन यह रफ्तनी बढ़ती ही जाती है। १८५८,५९ में भारतसे २६ करोड़ ३० लाखका माल विदेश भेजा गया और ११ करोड़ ७० लाखका माल विदेशसे भारतमें आया। पर समर आरम्भ होनेके पहले अर्थात १८७०-७१ में भारतमें केवल ३४ करोड़ १० लाखका ही माल विदेशसे आया, पर ६४ करोड़ ७० लाखका माल भारतसे विदेश भेजा गया। इस प्रकार १२ वर्षमें २२ करोड़ रुपयेका माल विदेशको अधिक जाने लगा। यहांपर यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हम भारतसे गेहूँ, चावल आदि अन्न, रुई, चमड़ा आदि कच्चामाल ही भेजते हैं और विदेशसे शराब, तम्बाकू, खिलौने आदि आते हैं। अब विचारना है कि जितनेका माल हमने विदेश भेजा उतनेका स्टाक यहाँ कम होगया। यही खाद्य पदार्थकी दर चढ़नेका मुख्य कारण है।

इस स्थानपर यह कहा जासकता है कि यह मांग पूरी करनेके लिए अधिक भूमिमें खेती होने लगी है और कृषि विभागने कृषिकी उन्नति की है जिससे प्रति बीघा पहलेसे अब अधिक पैदा होता है। यह बात वहाँ तक सच है, हमें यह देखना है। पहले जो भूमि परती पड़ी थी उसमें भी अब खेती होने लगी है पर स्मरण रहे कि वह भूमि ऊसर और कम उपजाऊ है और उसमें इतनी पैदावार नहीं होती है जितनी उपजाऊ भूमिमें होती है परन्तु अन्नकी मांग बढ़ जाने तथा महँगीके कारण उस भूमिमें भी खेती होने लगी है। यह भूमि पहले इतनी पैदावार नहीं दे सकती थी जिससे किसानको कुछ लाभ होता और इसीलिए पहले ये परती छोड़ दी गयी थी। ऐसी भूमिसे अधिक पैदा होनेके स्थानमें कम पैदावार होनेकी ही आशा है और होती है। दूसरे करोड़ों वर्षोंसे भारतकी भूमि जोती बोयी जाती है इससे इसकी उत्पादक शक्तिका दिनबदिन ह्रास होता जाता है। सर जम्सकेअर्डने लिखा है कि बराबर फसल होनेसे भारतकी भूमिकी उत्पादक शक्ति कम हो रही है। यह बात बावन तोले पाव रत्ती सच है। अर्थशास्त्रका नियम है और यह प्रमाणित भी हो चुका है कि यदि भूमिका कोई भाग हर साल बराबर जोता बोया जाय तो एक समय ऐसा आवेगा जब वह भूभाग अपनी उत्पादकताकी सीमापर पहुँच जायगा और तबसे उसमें क्रमागत ह्रास नियमका प्रयोग होने लगेगा, अर्थात जितना उसपर खर्च किया जायगा उतनेकी उसमें पैदावार न होकर कम ही होगी।

यहाँपर यह कहा जा सकता है कि खाद्य पदार्थोंका भाव चढ़ जानेसे भारतको लाभ ही है। जितनी महँगी होगी उतना अधिक ही रुपया बाहरसे यहाँ आवेगा। एक अंशमें यह ठीक भी है पर अपना पेट काटकर लाभके लोभमें दूसरोंका पेट भरना कहाँका न्याय है। सबसे पहले हमारे देशको अन्नादि की आवश्यकता है। जब अपनी आवश्यकताओंसे कुछ बच रहेगा तो दूसरेको देनेका विचार किया जा सकता है। किसी राष्ट्रकी ऐसी अभिलाषा नहीं हो सकती कि देशके मनुष्य तो भूखों मरें और अन्न विदेशियोंको बेच दिया जाय; केवल इस ख्यालसे कि वे दाम अच्छे देते हैं।

(क्रमशः)

नारायण सिंह

पुस्तकावलोकन

गीता दर्शन—लेखक श्रीयुत फत्तेमल एम० ए०। प्रकाशक—गीतादर्शन आश्रम, धौलपुर। पृष्ठ संख्या २२६+६४। मूल्य २)

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दुओंका परम आदरणीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ पर भाष्य आदि भी लिखे गये हैं। लाला फत्तेमलजीकी पुस्तकमें कई विशेषताएँ हैं और इसी कारण गीताके अध्ययनमें उससे सहायता मिल सकती है। पाश्चात्य मानसिक विचार जैसे भौतिक विज्ञान व पाश्चात्य मनोविज्ञान आदिका संक्षेप वर्णन कर गीताके विचारोंसे तुलना की गई है। इसी प्रकार हिन्दू शास्त्रोंके साथ गीताके सिद्धान्तोंका मिलान किया गया है। इसके बाद भिन्न भिन्न विषयोंपर जैसे माया, ज्ञान, ईश्वर, सृष्टि, कर्म आदि गीताके सिद्धान्त और विचार अलग अलग दिखलाये गये हैं। गीताके महत्त्वपर पुस्तकमें बहुत सी बड़ी महात्माओंके [illegible] हैं। अन्तमें [illegible] भी दिया गया है। पुस्तकके आलोचनात्मक [illegible] पर जानने योग्य कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। [illegible] विचार किया जाता तो पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ जाती। [illegible] और हिन्दू शास्त्रोंके [illegible] ज्ञान [illegible] है। [illegible] और [illegible] है। [illegible] है।

२—अन्नादिका विदेश जाना।

इसके अतिरिक्त भारतसे करोड़ोंका अन्न बाहर भेजा जाता है। भारतकी प्रज
चाहे आधे पेट खाये चाहे भूखसे तड़प तड़पके मरजाय पर विदेशको अन्न अवश्य जाना
भारतमें सुकाल हो चाहे दुकाल पर विदेशियोंकी भूख मिटानेके लिए अन्न विदेश अवश्य
जायगा। दिन पर दिन यह रफतनी बढ़ती ही जाती है। १६५८,६६ में भारतसे ७६ करो
३० लाखका माल विदेश भेजा गया और ११ करोड ७० लाखका माल विदेशसे भारतमें
आया। पर समर आरम्भ होनेके पहले अर्थात् १६७०-७१ में भारतमें केवल ७४ करोड़ ६०
लाखका ही माल विदेशसे आया, पर ६४ करोड़ ७० लाखका माल भारतसे विदेश भेज
गया। इस प्रकार १२ वर्षमें २३ करोड़ रुपयेका माल विदेशको अधिक जाने लगा। यहाँ
यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हम भारतसे गेहूँ, चावल आदि अन्न, रुई, चमड़ा आदि
कच्चामाल ही भेजते हैं और विदेशसे शराब, तम्बाकू, खिलौने आदि आते हैं। अब विचारना
है कि जितनेका माल हमने विदेश भेजा उतनेका स्टाक यहाँ कम होगया। यही खाद्य
पदार्थकी दर चढ़नेका मुख्य कारण है।

इस स्थानपर यह कहा जासकता है कि यह माँग पूरी करनेके लिए अधिक भूमिमें खेती
होने लगी है और कृषि विभागने कृषिकी उन्नति की है जिससे प्रति बीघा पहलेसे अब अधिक
होता है। यह बात कहाँ तक सच है, हमें यह देखना है। पहले जो भूमि परती पड़ी थी उसमें
अब खेती होने लगी है पर स्मरण रहे कि वह भूमि ऊसर और कम उपजाऊ है और
इतनी पैदावार नहीं होती है जितनी उपजाऊ भूमिमें होती है परन्तु अन्नकी माँग बढ़
महँगीके कारण उस भूमिमें भी खेती होने लगी है। यह भूमि पहले इतनी पैदा
ही सकती थी जिससे किसानको कुछ लाभ होता और इसीलिए पहले ये परती
छोड़ी गयी थी। ऐसी भूमिसे अधिक पैदा होनेके स्थानमें कम पैदावार होनेकी ही
होती है। दूसरे करोड़ों वर्षोंसे भारतकी भूमि जोती बोयी जाती है इससे
शक्तिका दिनबदिन ह्रास होना जाता है। सर जेम्सकेमर्डने लिखा है कि
होनेसे भारतकी भूमिकी उत्पादक शक्ति कम हो रही है। यह बात बिल्कुल
सच है। अर्थशास्त्रका नियम है और यह प्रमाणित भी हो चुका है कि यदि
हर साल बराबर जोता बोया जाय तो एक समय ऐसा आवेगा जब
उत्पादकताकी सीमापर पहुँच जायगा और तबसे इसमें क्रमागत ह्रास नियम
अर्थात् जितना इसपर खर्च किया जायगा उतनेकी उसमें पैदावार न होकर

यहाँपर यह कहा जा सकता है कि खाद्य पदार्थोंका भाव
लाभ ही है। जितनी महँगी होगी उतना अधिक ही रुपया बाहरसे
में। यह ठीक भी है पर अपना पेट काटकर लाभके लोभसे दूसरोंका
है। सबसे पहले हमारे देशको अन्नादि की आवश्यकता है। अब
कुछ बच रहेगा तो दूसरोंको
लाभ नहीं हो सकता। ... ... कना है। फि...
जाय; केवल इस ...

सम्पादकीय

संसारकी आर्थिक अवस्था



महायुद्धके समाप्त होने पर संसारमें शान्तिकी पुनः स्थापना होगी और मानव-सभ्यतामें एक अपूर्व युगान्तर होगा ऐसी आशा समस्त देशोंमें व्याप्त थी। युद्धकालकी आपत्तियां सहन करनेमें इस आशाने लोगोंके मनमें ऐसी दृढ़ता और साहस उत्पन्न कर रक्खे थे कि यदि उनका अभाव होता तो युद्धकी गति सम्भवतः कुछ और ही होती। अन्तमें परिणाम सबके लिए उत्तम ही निकलेगा इसी आशासे सहांने युद्धके दिन निकाले। परन्तु इतने रक्तपात और धन नाशके बाद भी ऐसा जान पड़ता है कि वास्तविक शान्ति प्राप्त होना अभी संभव नहीं है। नई कठिनाइयाँ प्रति दिन उपस्थित हो रही हैं। समाजकी काया पलट भी हो रही है परन्तु उसका परिणाम क्या होगा यह कोई नहीं कह सकता। पूँजी वालों और श्रमजीवियोंके झगड़े नहीं चुक पाते। राजनैतिक विप्लवोंका बराबर भय बना हुआ है जिधर देखिए उधर अशान्तिका साम्राज्य है। संसारमें अन्नकी उपज कम है। महँगी बढ़ रही है। जो भोजन कष्ट युद्ध कालमें था, उससे बढ़ता जा रहा है। विलायतके लोगों को गेहूँ-की कमीमें कष्ट उठाना पड़ता है। यूरोपके कितने ही देश अकाल यातना भोग रहे हैं। उत्पादक शक्ति बहुत कम हो गई है। बड़ी भारी संख्या युवकोंकी नाशको प्राप्त हो चुकी है। धनका जो व्यय हुआ है उसका कुछ ठिकाना नहीं है। युद्धमें सम्मिलित सब देश ऋण-ग्रस्त हो रहे हैं। लोगोंके पास इतनी शक्ति नहीं कि आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन माँग पूरा करनेके लिए शीघ्रता कर सकें। बिना मालके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं चल सकता। बिना धनके उद्योग धंधे जारी नहीं हो सकते। परन्तु इस समय प्राय सभी देश ऋण ग्रस्त होकर दिवालिये हो रहे हैं। सुव्यवस्था होना इस समय कठिन जान पड़ता है। दूसरी ओर कुछ आशावादी लोगोंका कहना है कि अधिकार प्राप्त लोगोंके मनमें न्याय बुद्धिका अब उदय अवश्य हुआ है। राष्ट्रोंकी सभा स्थापित हो गई है यह एकदिन राज्योंमें लड़ाई बिलकुल बन्द कर सकेगी। यह सब होते हुए भी हमको शान्तिके आनेके उदय होनेमें अभी संदेह है। जब तक स्वार्थकी मात्रा व्यक्ति और राष्ट्रोंमें कम न होगी, जब तक शक्ति-शाली लोग अपनी शक्तिको निरंकुश रूपसे अन्य लोगोंके दबानेमें न लगावेंगे तब तक देशोंका परस्पर सबध और व्यक्तियोंका भी बदलना सुगम नहीं है। मनुष्योंका एक दम बदलना सहज नहीं है, यह बात सच है। महायुद्ध यदि इतना सिखा दे कि सहका-रिताको परस्पर स्पर्धा और व्यापारमें विशेष महत्व देना चाहिए तो एक बड़ी बात हो। सहयोगसे जितना लाभ हो सकता है उतना प्रतिद्वन्दता से नहीं हो सकता। सहकारिताके सिद्धान्तको व्यापक बनाकर जो सुख और आनन्द मिल सकता है वह और किसी प्रकार मिलना कठिन है। भविष्यमें वास्तविक उन्नतिकी परीक्षा इसी सिद्धान्तके बरतनेसे होगी।

गे, पृथक् पृथक् नहीं थे। इसीलिए इस पुस्तकमें साहित्य और संगीत दोनोंहीका साथ साथ विवेचन किया गया है। भाव विभाव नायकाभेदका वर्णन दिया गया है और फिर राग रागिनियोंके रूप उदाहरणके साथ दिये हैं। जो लोग हिन्दू संगीतका वैज्ञानिक रीतिसे अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए पुस्तक उपयोगी है। संगीत शास्त्रपर लोकप्रिय ग्रन्थ लिखनेकी बड़ी आवश्यकता है जिससे इस विद्याका फिर प्रचार हो।

उपनिषद् रहस्य—सम्पादक और अनुवादक श्रीयुत कन्नोमल, एम० ए० गीतादर्शन ऑफिस, धौलपुर से प्राप्त। पत्र संख्या ४०, मूल्य ।)॥

उपनिषदोंमें से आत्मा और परमात्मा संबंधी वाक्योंको एकत्र कर सम्पादक महाशयने उनका अंगरेजी और हिन्दी अनुवाद किया है। पुस्तक प्रचारके योग्य है।

त्रिदेव निरूपण—अनुवादक श्री दशरथ बलवंत यादव। प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा। पत्र संख्या ६६; मूल्य ।-)

एक मराठी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। राक्षसोंके नाशकी कथाएँ देकर इसमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि देवता और राक्षस सब कल्पित हैं। प्रकृतिके दृश्यों का और विशेष कर प्रकाश और अन्धकारका वर्णन राक्षस और देवताओंके रूपमें किया गया है। इसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु और महेश भी कविकी कल्पना मात्र हैं। इन तीनों देवताओंके वर्णनमें यह बतलाया गया है कि वे भी प्रकृतिकी छटा विशेषके सूचक हैं। पुस्तक रोचक है। लेखककी कल्पना शक्तिका भी परिचय देती है।

ब्रह्म यज्ञ—लेखक श्रीयुत राज्यरत्न आत्माराम (अमृतसरी) एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर, बड़ौदा। प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा। पत्रसंख्या १६२; मूल्य ।।।)

वैदिक रीतिके अनुसार ईश्वर प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए इस बातको समझानेके लिए लिखी गई है। प्रार्थनाके सम्बन्ध वैज्ञानिक रीतिसे विचार किया गया है। उपासनाकी वैदिक रीति बतलाते हुए अन्य प्रकारकी [illegible] रीति [illegible] किया गया है। पुस्तक [illegible] सिद्धान्त [illegible] गुण [illegible] प्रकार समझाया गया है।

शरीर विज्ञान तथा [illegible] लेखक राज्यरत्न आत्माराम, एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर, बड़ौदा। प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा। पत्र-संख्या ३८; मूल्य ।=

[illegible]

ऐसी भ्रान्ति अभी लोगोंको नहीं हुई है कि इसके सहारे भली प्रकार मजदूर संसारमें पूरा लाभ उठावें। इस बातके प्रमाण बराबर मिल रहे हैं। मि० कीन्स जो विख्यात एक नामी विद्वान हैं अपनी पुस्तकमें अच्छी तरह यह सिद्ध करते हैं कि मित्र राष्ट्रोंने जो शर्तें जर्मनी पर लगाई हैं उनको वह पूरा नहीं कर सकता। उसकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि उन शर्तोंको पूरा करना उसके लिए सम्भव हो। शर्तोंमें बहुतसी ऐसी हैं जो भविष्यमें युद्धका कारण बनेंगी। एक देश की आर्थिक अवस्था बिगड़नेसे अन्य देशों पर भी उसका बुरा असर पड़ता है। ऐसी अवस्थामें संसारके सबसे स्वतंत्र पढ़ी उपाय जान पड़ता है कि वे मजदूर उत्पादक शक्तियों पर और समस्त राष्ट्र सहकारिताके सिद्धान्तको मानें और स्वार्थान्ध होकर एक दूसरेका गला काटना छोड़ें। तभी सच्ची शान्तिकी स्थापना हो सकती है।

श्रमजीवियोंका भविष्य

श्रमजीवी संसारमें बड़ी भारी हलचल मची हुई है। श्रमजीवियोंको अपने बहु-बल और ऐक्यमें ऐसा दृढ़ विश्वास हो गया है कि वे समझते हैं कि उनकी शक्तिके सामने किसीको ठहरनेकी सामर्थ्य नहीं है। राज्यभारमें वे पूरा सहारा देनेको उन्मुक्त हैं। पूंजी वालों की दासता अब उनको स्वीकार नहीं। उनकी शक्ति, संगठन और सुव्यवस्थापर निर्भर है। उनमें एक नये बलका सञ्चार हो गया है और वे समझते हैं कि संसार और समाजका भविष्य उन्हींके हाथमें है। मित्रराष्ट्रोंने सन्धिके साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्की भी स्थापना की है। इसके अनुसार संसारके श्रमजीवियोंके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए प्रति वर्ष एक सभा हुआ करेगी जिसमें सब देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ करेंगे। पहिली सभा अमरीकाके वाशिंगटन नगर में हो चुकी है और दूसरी जेनेवामें होगी। पहिली सभामें भारतवर्षके प्रतिनिधियोंने भाग लिया था। जो प्रस्ताव सभामें उपस्थित होते हैं या जिन विषयों पर बहस होती है वे किसी देशको जबरदस्ती मानने नहीं पड़ते। परन्तु यह तो भली प्रकार मालूम हो जाता है कि भिन्न भिन्न देशोंकी व्यवसायिक अवस्था एक सी होने पर भी बहुतसी बातें ऐसी हैं जो सबको मान्य हो सकती हैं। विचार विनिमयसे लाभ होता है और उसका अच्छा प्रभाव भी पड़ता है। पूर्वीय देशोंमें स्त्री और बालक श्रमजीवियोंकी जितनी रक्षा आवश्यक है उतनी ही और देशोंमें है। परन्तु यहाँ स्त्रियों और बालकोंको काम अन्य देशोंके हिसाबसे विशेष घंटे करना पड़ता है। मजदूरी भी यहाँ सस्ती है, इसलिए यहाँके कारखानोंको कुछ किफ़ायत पड़ती है। पाश्चात्य देश वालोंको यह सहन नहीं है। वे चाहते हैं कि समस्त संसारमें कामके घंटे और हो सके तो मजदूरी भी एक हो जाय। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानी लोग कम वेतन पर वही काम कर देते हैं जो अंगरेजी नौकर ज्यादा वेतन पर करना है। यहाँके श्रमजीवियोंको अपनी दशा सुधारनेके लिए पूर्ण उद्योग करना पड़ेगा और इस सबंधमें कुछ बातें पाश्चात्य लोगोंसे सीखनी पड़ेंगी। पहिली बात शिक्षाकी है। थोड़ी शिक्षा आवश्यक है। दूसरी बात संगठनकी है। यह अत्यन्त आवश्यक

जाँचके कमीशन बिठाये हैं सभीका नाश हो गया है। इस बातको सप्रमाण दिखानेका प्र[illegible] बिक्री और भवसर पर किया जायगा। भारतीय व्यवसायकी भवनति उन्नति दूसरोंके म[illegible] साधनके अनुसार होती रही है। देखें भागे अब क्या होता है। नई व्यवस्थापर सम्प्रे[illegible] देशकी आर्थिक रक्षाके लिए अग्रसर होना पड़ेगा नहीं तो यहाँका एक मात्र यह बचा[illegible] भी औरोंके हाथमें चला जाना सम्भव है।

संयुक्तप्रान्तमें सहकारिता

सहकारिताका प्रचार, साधारण प्रजाको आर्थिक दशा सुधारनेका जैसा साधन है [illegible] और कोई नहीं है। ऋणमुक्त करने, और कृषक आदिको अपनी और आर्थिक उन्नतिमें, जि[illegible] सहकारिता सहायक हो सकती है उतनी और किसी संस्थासे आशा नहीं होती। परन्तु इसके प्रचारमें समय लगता है। यूरोपमें पच्चीस तीस वर्षके निरंतर उद्योगके बाद इसकी जड़ ज[illegible] थी। हमारे प्रान्तमें इसका बीज वपन हुए पन्द्रह सोलह वर्ष हुए। इतने समयमें जो कुछ [illegible] पाया है उससे कुछ लोगोंको सन्तोष नहीं है। वे समझते हैं कि ऐसी सफलता प्राप्त न[illegible] हुई जिससे भविष्यमें उन्नतिकी आशा की जाय। मतलब यह है कि उनकी रायमें सह[illegible] रिताका प्रचार कर लेनेकी न तो यहाँके लोगोंमें सामर्थ्य है और न बनी बनाई संस्थाओंके जीवित रखनेकी उनमें शक्ति है। सहकारिताके अन्य लाभोंको तो वे अभी समझ भी नहीं सके। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा सहकारिताके प्रचारमें यह प्रान्त पीछे है परन्तु निराश होनेका तो कोई कारण नहीं जान पड़ता। पन्द्रह वर्षके अल्पकालमें जो कुछ हो सका था वह हुआ कि नहीं यही देखना चाहिए। हमारी कठिनाइयाँ यह हैं कि अकाल और महँ[illegible] यहाँ विशेष भय रहता है। सहकारिताके यहाँ प्रचार होने पर दो तीन अकाल पड़ चुके हैं। नहरें यहाँ इतनी नहीं कि अनावृष्टिके कष्टको भली प्रकार दूर कर सकें। पंजाबकी तरह य[illegible] सुविधा यहाँ प्राप्त नहीं है। कृषक और श्रमजीवियोंमें शिक्षाका पूरा अभाव है सो तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं कही जा सकती। [illegible] प्रचारके लिए उतना उद्योग यहाँ नहीं किया है जितना उनके भाई अन्य प्रान्तोंमें कर रहे हैं। कृषि और कलाकी उन्नति भी यहाँ और जगह [illegible] नहीं है इनके कारण भी सहकारिताके प्रचारमें सहायता मिलती है। [illegible] भी अधिकता नहीं है। सहकारी ब[illegible] जो [illegible] लिया गया उनका बहुत [illegible] न हो सका। [illegible] कोई बन्द भी करना पड़ा। [illegible] की [illegible] और [illegible] भी [illegible] होने लगी है। [illegible] नहीं रहा। [illegible] तोड़ देना ही [illegible] है और अब यही किया जाता है। [illegible] समितियोंको [illegible] में तो यह [illegible] है कि जो [illegible] पूर्वक काम करें और [illegible] उत्साह बढ़ाते। [illegible] धीरे धीरे प्रचार होना अच्छा है। [illegible] होती थी। [illegible] ठीक नहीं [illegible] है देव [illegible] ही पूरा कर दिया है। [illegible] के लिए उनके [illegible] होता है। [illegible]

चाहिए कि यही भारतमें आकर चायबागोंकी कम्पनियोंमें रुपया न फँसे जायँ। इस कम्पनाओंके पहुंचनेपर मालूम हुआ कि बहुतसे काम जो खड़े किये गये हैं वह नहीं चलें। सभीसे सरकारने हस्तक्षेप करना निश्चय कर ही लिया। सांप्र कम्पनियोंके दुरुपयोग पर रुकावट लगाया जायगा। हमारी रायमें इस हस्तक्षेपकी आवश्यकता है। यदि कम्पनियोंके तरह कुछ कम्पनियाँ बैठ गईं तो दूसरी कम्पनियोंके काममें भी गड़बड़ी पड़ेगी और लोगोंके व्यापारकी सर्वत्र हानि होगी। सर दोराब तातानें इस विषयपर भाषण कर इसके सं साधारणका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। गतवर्ष ६०६ नई कम्पनियाँ खड़ी हुईं। उनका मूलधन २ अरब १४ करोड़ ६८ लाख तक बढ़ाया जा सकता है। १ अरब और २ करोड़ मूलधनकी कम्पनियाँ तो खाली बंगालमें खड़ी की गई हैं। इससे पिछले वर्षोंमें कुल मिलाकर केवल ८८२ कम्पनियाँ खड़ी की गईं और उनका मूलधन भी केवल ७८ करोड़ ६ लाख था। एक वर्षमें ६०६ कम्पनियाँ निकलना बहुत बड़ी बात है। इनमें कितनीको आम होती है। जो न चलेंगी उनसे दूनी हानि होगी, मूलधनमात्र नष्ट और दूसरे व्यवसायोंको भी धक्का पहुँचावेगा। कुछ भी हो परन्तु अब यह तो नहीं कहा जायगा कि देशी महाजन रुपयेको निकालकर व्यवसायमें नहीं लगाते।

पुरी जिलेमें अकाल

अहमदाबाद, भिवानी, ब्यावर और नार्थवेस्ट रेलवेकी हड़ताल अभी जारी है, कम करने वाले काम छोड़ कर वेतन वृद्धिके लिए कमर कसके कष्ट उठा रहे हैं उधर पुरी जिलेमें अकालने भी अपना रंग जमाया है। वैसे तो इस देशमें अकाल पड़ना कोई नई बात नहीं और फिर महँगीके कारण सभी जगह अकाल सा पड़ रहा है। ऐसी दशामें भी उड़ीसा प्रान्तके कुछ भागमें जब अन्नकी कमीसे प्रजा कष्ट पा रही है तो उसकी यातना कैसी भीषण होगी यह सहज ही अनुमान किया जासकता है। २२० वर्गमीलमें अकाल पड़ रहा है जिसके १०० गांवोंकी एक लाखके लगभग प्रजा अन्नके अभावसे दुःख पा रही है। सरकारी कर्मचारियोंने प्रजाकी मदद करनेमें बड़ी उदासीनता दिखाई है जो किसी प्रकार क्षम्य नहीं है। भारत-सेवक समितिके सदस्य मि० ए वी ठक्करने अपनी आँखों देखकर वहाँका हृदयविदारक वृत्त लिख भेजा है और साथमें सरकारी कर्मचारियोंकी बेपरवाहीकी शिकायत भी की है। कठोरहृदय और कर्तव्यभ्रष्ट अधिकारीसे ऐसे अवसरपर पाला पड़ना एक दुर्भाग्यका लक्षण है। महात्मा गांधीने पीड़ित प्रजाको मदद पहुँचानेके लिए धनकी याचना की है। हमको पूर्ण आशा है कि थोड़ासा धन जिसकी आवश्यकता है शीघ्रही एकत्र होकर कार्यकर्ताओंके पास पहुँच जायगा।



चाहिए कि यही पीतोंमें आकर चालबाजोंकी कम्पनियोंमें रुपया न फँस जावे। एक मजमूनं गमननमें पढ़नेपर मालूम हुआ कि बहुतसे काम जो खड़े किये गये हैं चल नहीं सकें। अतमें सरकारने इसपर ध्यान करना निश्चय कर ही लिया। शीघ्र कम्पनियोंके मूलधनपर कर लगाया जायगा। हमारी रायमें इस हस्तक्षेपकी आवश्यकता है। यदि बंगालके महज़ तरह कुछ कम्पनियाँ बैठ गईं तो दूसरी कम्पनियोंके काममें भी गड़बड़ी पड़ेगी और स्वदेशी व्यवसायकी सर्वत्र हानि होगी। सर दोराब ताताने इस विषयपर भाषण कर हालमें सर्व साधारणका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। गतवर्ष ६०६ नई कम्पनियाँ खड़ी की गईं। उनका मूलधन २ अरब १४ करोड़ ६८ लाख तक बढ़ाया जा सकता है। १ अरब और २ करोड़ मूलधनकी कम्पनियाँ तो खाली बंगालमें खड़ी की गई हैं। इससे पिछले वर्षोंमें कुल मिलाकर केवल ८८८ कम्पनियाँ खड़ी की गईं और उनका मूलधन भी केवल ७८ करोड़ ६ लाख था। एक वर्षमें ६०६ कम्पनियाँ निकलना बहुत बड़ी बात है। इनमें सफलता कितनीको प्राप्त होती है। जो न चलेंगी उनसे दुनी हानि होगी, मूलधनका नाश और दूसरे व्यवसायोंको भी धक्का पहुँचाना। कुछ भी हो परन्तु अब यह तो नहीं कहा जायगा कि देशी महाजन रुपयेको निकालकर व्यवसायमें नहीं लगाते।

पुरी जिलेमें अकाल

अहमदाबाद, भिवानी, ब्यावर और नार्थवेस्ट रेलवेकी हड़ताल अभी जारी है, काम करने वाले काम छोड़ कर वेतन वृद्धिके लिए कमर कसके कष्ट उठा रहे हैं उधर पुरी जिलेमें अकालने भी अपना रंग जमाया है। वैसे तो इस देशमें अकाल पड़ना कोई नई बात नहीं और फिर महगीके कारण सभी जगह अकाल सा पड़ रहा है। ऐसी दशामें भी उड़ीसा प्रान्तके कुछ भागमें जब अन्नकी कमीसे प्रजा कष्ट पा रही है तो उसकी यातना कैसी भीषण होगी यह सहज ही अनुमान किया जासकता है। २५० वर्गमीलमें अकाल पड रहा है जिसके ४०० गावोंकी डेढ लाखके लगभग प्रजा अन्नके अभावसे दुःख पारही है। सरकारी कर्मचारियोंने प्रजाकी मदद करनेमें बड़ी उदासीनता दिखाई है जो किसी प्रकार क्षम्य नहीं है। भारत-सेवक समितिके सदस्य मि० ए बी ठक्करने अपनी आँखों देखकर वहाँका हृदयविदारक हाल लिख भेजा है और साथमें सरकारी कर्मचारियोंकी बेपरवाहीकी शिकायत भी की है। कठोरहृदय और कर्तव्यभ्रष्ट अधिकारीसे ऐसे अवसरपर पाला पड़ना एक दुर्भाग्यका लक्षण है। महात्मा गाँधीने पीड़ित प्रजाको मदद पहुँचानेके लिए धनकी याचना की है। हमको पूरी आशा है कि थोड़ासा धन जितनी आवश्यकता है शीघ्रही एकत्र होकर कार्यकर्ताओंके पास पहुँच जायगा।



महँगीकी दर—विलायतकी पार्लिमेण्टने निम्नलिखित अंक प्रकाशित किये हैं जिनसे कितनी कितनी महँगी देशोंमें हुई है उसका पता चलता है—

विलायत	फ़ी सैकड़ा
पैरिस	१३०
फ्रान्सके अन्य नगर	१६७
अमरीका संयुक्त राज्य	२२०
डेनमार्क	८६
स्वीडन	१४२
रोम	१६६
मिलान	१९३
बेलजियम	२८२
नार्वे	२६६
जर्मनी	२०१
	१९६

भारतवर्षमें महँगी कहाँ तक बढ़ी है, यह स्वार्थके पिछले अंकमें लिखा जा चुका है।

सम्राट् पंचम जार्जको पार्लिमेण्टसे ७६,२०,००० रु० साल मिलते हैं। युवराज प्रिंस आफ वेल्सको ७५०,००० रु० साल और ड्यूक ऑफ कैनॉटको इसके आधे मिलते हैं।

यात्रियोंके किरायेसे रेलोंको लगभग २८ करोड़ रु० की आमदनी होती है जिसमें तीसरे दर्जेकी टिकटोंसे २४ करोड़ रु० मिलते हैं।

भारतमें बड़े महकमोंका वार्षिक वेतन व्यय

भारतीय सिविल सर्विस	२,६६,००,००० रु०
भारतीय पुलिस विभाग	६८,००,००० ,,
भारतीय शिक्षा विभाग	२७,००,००० ,,

शिक्षा विभागका स्थान कौनसा है अंकोंसे स्पष्ट है। इन विभागोंमें प्रायः अंगरेज ही हैं।

ब्रिटेनमें प्रत्येक मनुष्यके स्वास्थ्य रक्षा और शिक्षाके लिए ४४ रु० साल व्यय किया जाता है।

२. अभ्युदय निरूपण ('माला' का दूसरा ग्रन्थ)

[illegible] महत् पुस्तक [illegible] निकालने इसमें [illegible] ... [illegible] किया है। [illegible] ... [illegible] इसको ... [illegible] प्रकार दिखाया है। अभ्युदय निरूपण महान् ग्रंथ है ... [illegible] सम्प्रदायके शिक्षाविभागने इसे मदरसे पाठ्य ग्रन्थोंमें स्वीकार किया है। [illegible] ... [illegible] १६२, मूल्य ॥) आने।

३. बिहारीकी सतसई ('माला' का तीसरा ग्रन्थ)

श्री [illegible] बिहारीकी सतसईपर [illegible] हिंदी [illegible] सुप्रसिद्ध विद्वान् प० [illegible] ... [illegible] पेश कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू ... [illegible] है। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो हिंदी ... [illegible] पुस्तकही भाषा सरस और सजीव है। [illegible] ... [illegible] पुस्तक है। प्रथम भाग तैयार है। पृष्ठ संख्या [illegible] ... [illegible] सजिल्द मूल्य [illegible]।

'माला' में अन्य और जो महत्वके ग्रन्थ छप रहे हैं।

— [illegible] राजनीतिक प्रगति (सचित्र)। १०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।
—राष्ट्रीय आयव्यय। ११—अर्थशास्त्रका उपक्रम।
—भौतिक विज्ञान। १२—यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षा सुधारक।
—[illegible] यूरोप (सचित्र)। १३—रसायन शास्त्र।

सौर रोजनामचा सं० १९७७।

[illegible] सभी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पचांग, हिन्दीके प्रचार, राष्ट्रीय सम्पादों, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक लेन [illegible] उत्तम उत्तम ग्रंथ आदि कई नयी नयी बातें दी गयी है। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पंचांग सं० १९७७।

[illegible] बड़ा सुन्दर अक्षरोंमें छापा गया है। [illegible] लटकाने लायक है। इसके ऊपरी भाग और पीठपर [illegible] पचांगकी सारी बातें घण्टा तथा मिनिटोंमें दी है। इसको प्रायः सभी [illegible] समझ सकते हैं, यह ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक [illegible] भी दी गयी है। [illegible] कागजपर छपा है। मूल्य ।=) [illegible] आने।

प्रचारित,

[illegible]

२. अब्राहम लिंकन ('माला' का दूसरा ग्रन्थ)

इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेने निराशामें डूबी हुई कि-
ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुड़ाकर
कर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उच्चपद दिलाया है। अब्राहम लिंकनका महान् जीवन
उसीमेंसे एक है। मृतक मनमें भी पुनः प्राणका सञ्चार करनेवाला है। इसकी उपयोगिता
ही कारण मध्यप्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें स्वीकार किया है। पृ
संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १६२, मूल्य ॥) आने।

३. विहारीकी सतसई ('माला' का तीसरा ग्रन्थ)

कवि सम्राट् विहारीकी सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० पद्मसिंह
शर्माकी अपूर्व समालोचनाने सोनेमें सुगन्ध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू
कविताओंसे तुलनात्मक लेख बड़ेही चित्ताकर्षक हैं। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो कि
समय सरस्वतीमें छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरस और सजीव है। समालो-
चना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डबल
क्राउन १६ पेजी) २७८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

'माला' में अन्य और जो महत्वके ग्रन्थ छप रहे हैं।

१—जापानकी राजनीतिक प्रगति (अनूदित)। १०—नैतिक अद्वैतवाद।
२—राष्ट्रीय आयव्यय।
३—भौतिक विज्ञान। ११—[illegible]
४—पश्चिमीय यूरोप (अनूदित)

२. अब्राहम लिंकन ('माला' का दूसरा ग्रन्थ)

संसारके तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरितके पढ़नेसे निराशोंमें इसको भी स्थान श्री आरोग्योंके देशमें उस लगा दिया है। जिसने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामोंसे छुड़ाकर उनको मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उत्तर दिखाया है। अब्राहम लिंकनका महान् जीवन है उन्हींमेंसे एक है। इस समय मनमें भी पुनः आशाका संचार करनेवाला है। इसकी उपयोगिता ही कारण मध्यप्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें स्वीकार किया है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १६२, मूल्य ॥) आने।

३. बिहारीकी सतसई ('माला' का तीसरा ग्रन्थ)

कवि सम्राट् बिहारीकी सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० पद्मसिंह शर्माकी अपूर्व समालोचनाने सोनेमें सुगन्ध पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू कविताओंसे तुलनात्मक ढंगपर बड़ी विचारपूर्ण है। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो किसी समय सरस्वतीमें छपा था इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरल और सजीव है। समालोचना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ३०८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

'माला' में अन्य और जो महत्वके ग्रन्थ छप रहे हैं।

६—जापानकी राजनीतिक प्रगति (सचित्र)। १०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।
७—राष्ट्रीय आयव्यय। ११—अर्थशास्त्रका उपक्रम।
८—भौतिक विज्ञान। १२—यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षा सुधारक।
९—पश्चिमीय यूरोप (सचित्र)। १३—रसायन शास्त्र।

सौर रोजनामचा सं० १९७७।

यह जेबी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पञ्चाङ्ग, हिन्दीप्रचार, राष्ट्रीय संस्थाएँ, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक तेजनीतिके उत्तम उत्तम श्लोक आदि कई नयी नयी बातें दी गयी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पंचांग सं० १९७७।

यह बड़े बड़े सुन्दर अक्षरोंमें छापा गया है। दीवारपर लटकाने लायक है। इसके ऊपरी भाग और पीठपर बड़े पञ्चाङ्गकी सारी बातें घण्टों तथा मिनिटोंमें दी हैं। इसको प्रायः सभी लोग जंत्रीकी तरह समझ सकते हैं और ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक लग्नसारिणी भी दी गयी है। मोटे रंगदार कागजपर छपा है। मूल्य ।=) ढ आने।

प्रचारित पुस्तकें।

स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए० (.... बाद), एम० एस-सी० (विक्टोरिया), एफ० सी० एस० (लन्दन), ने विश्व परिचय, उद्योग तथा भारतमें नीलकी पुस्तकें ... थी यह बतलानेकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपने लघु जिन्दु, ... उपयोगी जीवनका समय इन पुस्तकोंकी रचना तथा प्रचारमें ही लगा दिया था। इनसे लाभ उठाना ... हमारा काम है।

हिन्दीमें दो नये नाटक।

नाटक-प्रेमियोंको इन अपूर्व नाटक द्वयको अवश्य मँगाकर देखना चाहिए।

१ सिंहल-विजय।

बंगालके राजकुमार विजयसिंहने किसी समय सिंहल या लंकाको जाकर फ़तह कि या और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया था। यही सिंहलविजयी विजयसिंह इस नाटकके प्रधान नायक हैं। देशभक्ति, पितृभक्ति, पतिभक्ति और पुत्रप्रेम आदिके भावोंसे नाटक सराबोर है। नायिका लीला और कुंअणाके चरित्र बड़े ही अपूर्व हैं। निःस्वार्थ पतिप्रेम और वासना-विहृन उद्दाम प्रेमके ये दो सजीव चित्र हैं। इन्हें पढ़ कर आप मुग्ध हो जायगे। मू० १॥), सजिल्द १॥)

२ पाषाणी।

यह पौराणिक नाटक है। इसमें महर्षि गौतम और उनकी पत्नी अहल्या देवीका चरित्र चित्रित किया गया है। रचना बड़ी ही कवित्वपूर्ण और भावपूर्ण है। समापराग्य महर्षिका चरित्र बहुत ही महिमामय और उज्ज्वल है। चिरंजीव शर्मा और माधुरीका चरित्र जैसा हँसाने वाला है, वैसा ही हृदय-द्रावक भी है। द्विजेन्द्र बाबूका यह सबसे पहला नाटक है। मू० ॥।), सजिल्दका १=)

जीवन-निर्वाह।

लेखक, श्रीयुत बाबू सूरज-भानुजी वकील।

बड़ी खोज और चिरकालके अनुभवसे लिखा हुआ मौलिक ग्रन्थ। मनुष्य-समाज जिन सब उपायोंसे सुख-शान्ति-पूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकता है। उन्हीं परइसमें स्वाधीनता, निष्पक्षतासे और युक्तियुक्ततासे विचार किया गया है। लोकमूढ़ता, अन्ध विश्वास, धर्मान्धता आदि पर खूब प्रकाश डाला गया है। संसारमें विविध धर्मोंकी उत्पत्ति कैसे हुई, धार्मिक लड़ाई-झगड़े कैसे बढ़े, धर्मोंकी असलियत कैसे नष्ट हो गई और अब वे देशकी कैसी दुर्दशा कर रहे हैं, आदि बातें भी खूब खोल खोल कर समझाई गई हैं। समझानेका ढंग बहुत ही अच्छा है। सर्व साधारणमें इन विचारोंके फैलनेकी बहुत ही ज़रूरत है। नवशिक्षितोंके लिए यह ग्रन्थ बहुत ही अच्छा है। पृष्ठ संख्या २१०, मू० १), सजिल्दका १॥)

देश-दर्शन।

कागज़ महँगा हो जानेसे और छपाईके बढ़ने लगभग दूने हो जानेसे देश-दर्शनके नव संस्करणका मू० बढ़ा दिया गया है। अब सादी पुस्तक २॥) में और सजिल्द ३) में मिलेगी।

साम्यवाद।

हिन्दीमें अपूर्व ग्रन्थ। इसमें प्राचीन साम्यवाद, अंग्रेजी साम्यवाद, जर्मन साम्यवाद, अराजकतावाद, बोल्शेविज्म आदि सब प्रकारके साम्यवादोंका स्वरूप, उनके पृथक् पृथक् सिद्धान्त उनके क्रमविकासका इतिहास आदि समझना आवश्यक बातोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। कीमत २॥) सजिल्दका ३)

अन्नपूर्णाका मन्दिर—तीसरा संस्करण छप कर तैयार है। कीमत १), सजिल्दका १।=)। बहुत ही उत्तम उपन्यास है। तीसरा छिड़ा जा रहा है।

मैनेजर हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीरा बाग, गिरगांव, बम्बई

हिन्दीमें दो नये नाटक।

नाटक-प्रेमियोंको इन अपूर्व नाटक द्वयको अवश्य मँगाकर देखना चाहिए।

१ सिंहल-विजय।

बंगालके राजकुमार विजयसिंहने किसी समय सिंहल या लंकाको जाकर फतह किया था और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया था। यही सिंहलविजयी विजयसिंह इस नाटकके प्रधान नायक हैं। देशभक्ति, पितृभक्ति, पतिभक्ति और पुत्रप्रेम आदिके भावोंसे नाटक सराबोर है। नायिका लीला और कुवेणीके चरित्र बड़े ही अपूर्व हैं। निःस्वार्थ पतिप्रेम और वासना-विहृत उद्दाम प्रेमके ये दो सजीव चित्र हैं। इन्हें पढ़ कर आप मुग्ध हो जायँगे। मू० १≈), सजिल्द ١॥)

२ पाषाणी।

यह पौराणिक नाटक है। इसमें महर्षि गौतम और उनकी पत्नी महल्या देवीका चरित्र चित्रित किया गया है। रचना बड़ी ही कवित्वपूर्ण और भावपूर्ण है। महर्षिका चरित्र बहुत ही महिमामय और उज्ज्वल है। चिरंजीव शर्मा और माधुरीका चरित्र जैसा हँसाने वाला है, वैसा ही हृदय-द्रावक भी है। द्विजेन्द्र बाबूका यह सबसे पहला नाटक है। मू० ॥।), सजिल्दका १≈)

जीवन-निर्वाह।

लेखक, श्रीयुत बाबू सूरज-भानुजी वकील।

बड़ी खोज और चिरकालके अनुभवसे लिखा हुआ मौलिक ग्रन्थ। मनुष्य-समाज जिन जिन उपायोंसे सुख-शान्ति-पूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकता है। उन्हीं परइसमें स्वार्थ निष्पक्षतासे और युक्तियुक्ततासे विचार किया गया है। लोभमूलता, अन्ध विश्वास, धर्मा आदि पर खूब प्रकाश डाला गया है। इसमें विविध धर्मोंकी उत्पत्ति कैसे हुई, आपसमें लड़ाई-झगड़े कैसे बढ़े, धर्मोंकी असलियत कैसे नष्ट हो गई और अब वे देशकी कैसी दुर्दशा कर रहे हैं, आदि बातें भी खूब खोल खोल कर समझाई गई है। समझानेका ढंग बहुत ही अच्छा है। सर्व साधारणमें इन विचारोंके फैलनेकी बहुत ही जरूरत है। [illegible] यह ग्रन्थ बहुत ही अच्छा है। पृष्ठ संख्या २१०, मू० १), सजिल्दका १॥)

देश-दर्शन।

[illegible] महँगा हो जानेसे और [illegible] बातें लगभग दूने हो जानेसे देश-दर्शनके अब [illegible] मू० बढ़ा दिया गया है। अब सादी पुस्तक २॥) में और सजिल्द ३) में मिलेगी।

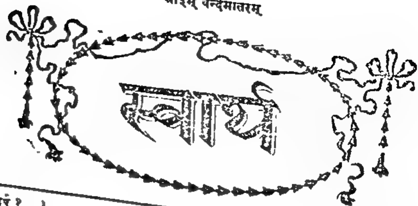
साम्यवाद।

हिन्दीमें अपूर्व ग्रन्थ। इसमें [illegible] साम्यवाद, [illegible] साम्यवाद, [illegible] [illegible], [illegible] आदि सब प्रकारके साम्यवादोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया है। मूल्य २॥) सजिल्द ३)

अन्नपूर्णाका मन्दिर—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मू० १), सजिल्द [illegible] बहुत ही [illegible] है। जीवनका चित्र खींचा गया है।

मैनेजर हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीरा बाग, पो० गिरगांव, बम्बई

ओ३म् वन्देमातरम्



वर्ष १ } खराड ३ }

ज्येष्ठ १९७७

{ अङ्क ? { पूर्णाङ्क ८

सामाजिक जीर्णोद्धार और उत्कर्षके अंग

सत्य धर्मास्युभयलोकहित धर्मामि लोकावनान्य परमार्थयुत च वंदेम ।
मार्गान्नशाश्वहृदय च नवीकरोमि स्वार्थं...

एवं प्रत्येक मनुष्य जन्म लेता है, यदि उसकी रक्षा शिक्षा और जीविकादि सब ठीक हो तो शारीरिक और बुद्ध्या अपनी प्रकृतिके अनुसार बढ़ता है, फिर आयुर्मध्यके पश्चात् क्रमशः घटता है, और अततः लीन हो जाता है। तथैव मानव कुल, गोत्र, वंश, जाति, समूह, राष्ट्र, समाज‡ आदिकी भी यही दशा देख पड़ती है। वंश, जाति, समाज आदिके क्या भेदक और विशेषक लक्षण हैं इसपर इस समय विचार करनेका अवसर नहीं है, यद्यपि विषय अनावश्यक नहीं है। अन्यथा प्रस्तुत विषयसे बहुत दूर तककी खोज करनी पड़ जायगी। सामान्यरीत्या यह मान लेना न्यायप्राप्त है कि ये सब शब्द अर्थशून्य नहीं हैं। तथा यह भी मानना न्यायप्राप्त है कि जैसे एक मनुष्य कई अंगों, अवयवों, प्रकृतिके विकारों, महाभूततत्वों, अथवा जड़ पुद्गल पिंडोंका समष्टिरूप, एक "जीवात्मा"की एक अहं-बुद्धि अर्थात् "मैं" रूपी भावनासे अन्वस्त और एकीकृत वस्तु है, वैसेही इन जाति, राष्ट्र, समाज आदि शब्दोंके भी अर्थभूत पदार्थ अनेक मनुष्योंके समष्टिरूप एक "सूत्रात्मा" की वय-बुद्धि अर्थात् "हम" रूपी भावनासे अन्वस्त और एकीकृत वस्तु होते हैं। "अहं-बुद्धि" के उड़ जानेपर शरीर मृत कहा जाता है और बिखर जाता है, यद्यपि उसके तत्वपरमाणु संसारसे लुप्त नहीं हो जाते। एवं "वय-बुद्धि" के लुप्त हो जाने पर जातीयता, राष्ट्रता, समाजता मृत हो जाती है, यद्यपि उस जातिके मनुष्योंकी सतान उच्छिन्न न भी हो। मालाके सूत्रके भंगसे सब दाने तितर बितर हो जाते है और मालापन जाता रहता है।

निचोड़ यह कि जैसे एक मनुष्यके स्वास्थ्य और आरोग्यका अर्थात् पित्त, कफ, वात, अथवा उष्ण, शीत, वायु, अथवा अग्नि, सोम, सूर्य, अथवा सत्त्व, तमस्, रजस्, अथवा ज्ञान, बल और क्रियाकी उचित निष्पत्ति, (अथवा साम्य, मुनासबत, अन्दाज, तौल) का उत्कर्ष-अपकर्ष होता है वैसे ही एक समाजके स्वास्थ्य आरोग्यका भी। अब प्रकृत कर्तव्य यह है कि अपने समाजके स्वास्थ्य, ज्ञान, बल, क्रिया आदिका उत्कर्ष कैसे हो, उसके दौर्बल्य और रोगकी जो अत्यन्त हैं चिकित्सा कैसे हो, इसका प्रकार विचार करके स्थिर किया जाय।

२—भारतीय-समाजकी रुग्णावस्था और चिकित्सा

भारतीय हिंदू समाजकी दुरवस्था तो निर्विवाद है। यहाँ तक कि उससे कुछ लोग ऐसे खिन्न हैं कि वे इसके रोगोंको असाध्य समझते है और कल्पना करते हैं कि इस समाज अर्थात् हिंदुत्वका आयुष ही क्षीण होगया है, इसके एक एक अंगको बैर फूट के रोगने चाल डाला है, इस अष्टावक्र उष्ट्र का सर्वांगरसशोध अब असाध्य है, जब तक कालयापन हो सके हो। यह विचारणीय है। मनुष्यव्यक्तिके विषयमें तो अवश्य ऐसा कहा जा सकता है कि "सति शेषे हि चिकित्सामायुषः", जब आयुः शेष नहीं है तब चिकित्सा व्यर्थ है। पर एक समाजके विषयमें यह उतना सहजमें निर्णय नहीं हो सकता कि इसकी आयु उतार ही पर है। सम्भव है कि जो रोग देख पड़ते हैं वे आगन्तुक और साध्य शाल्यसमलके अथवा यौवनकालके रोग हैं, और अभी समाजशरीर में उचित भेषज की सहायता पाकर उनका निरास करनेके लिये पर्याप्त आत्म बल

‡ Clan, tribe, race, state [illegible]

बाकी है। दूसरे यह कि यदि आयु उतारपर भी हो तब भी तो चिकित्साका यत्न करना ही चाहिए। "मृत्युना सह योद्धव्य यावद्बुद्धिबलोदयम्"।

इस देशकी प्राचीन प्रथा भी है कि नये मंदिरके निर्माणसे प्राचीनके जीर्णोद्धारमें अधिक पुण्य है। इस भावको नये शब्दोंमें कहना हो तो यह कहा जाय कि जैसे प्रत्येक मनुष्य-व्यक्तिमें एक विशेषता, एक सुसुक्षित, एक निजका विशेष शील, स्वभाव, प्रकृति, अथवा निसर्ग होता है, जैसे अपना अपना रूप, आकार, चेहरा, जिससे वह अन्य व्यक्तियोंसे विशिष्ट और भिन्न होता है, वैसेही प्रत्येक समाजका भी एक विशेष शील होता है। उस शीलके बदल जानेसे उस समाजकी समाजता जाती रहती है, वह आदमी पहिचाना नहीं जा सकता है। तो जीर्णोद्धार करके, चिकित्सा करके, वह स्वाभाविक नैसर्गिक शील बचाये रखना चाहिये, अन्यथा चिकित्सा क्या हुई, कायापलट हो जायगा। हाँ, यदि यह निश्चय हो कि पुराना मकान चाहे कैसा भी अच्छा रहा हो अब खडहल हो गया, मरम्मतके लायक बाकी नहीं, तब तो खोद कर नया बनाइये, चाहे नया कमहैसियत ही क्यों न हो। यदि शरीर ऐसा जीर्ण हो गया कि अब पैरों पर सभल कर चल ही नहीं सकता, तब अवश्य उसको मरने देना उचित है, फिर नया जन्म लेकर नया शरीर, चाहे छोटे बच्चे का ही, और चिरकाल तक असास्ही, पर होनहार, लेना अच्छा है। अथवा यदि यह भी निश्चय हो जाय कि वह शील दुःशील है, अब हमारे सामने दूसरा निदर्शनभूत उत्तम शील और समयाचार का नमूना उपस्थित है, नये ढाँचे का मकान बहुत सुखद देख पड़ता है जिसके आगे पुराना मकान बहुत दुःखद जान पड़ता है, तो भी पुरानेको सर्वथा छोड़ कर नयेकी ओर चलना उचित हो सकता है।

पर भारतीय हिंदू समाज और प्राचीन समयाचार या शिष्टता या सभ्यताकी पद्धति† के विषयमें अभी ऐसा नैराश्य करनेका हेतु नहीं देख पड़ता। रोग कठिन और चिरकालीन और सर्वांगव्यापी अवश्य जान पड़ता है, पर चिकित्सामें पूरा यत्न करलिये बिना उसे असाध्य कहना उचित नहीं है।

३—समाजके मुख्य अंग और जीवनके मुख्य उद्देश्य अर्थात् पुरुषार्थ

पहिली बात विचारनेकी यह है कि सामाजिक जीवन अथवा समाजके कायव्यूहके कौन कौन मुख्य अंग हैं, जिनपर विशेष ध्यान देना चाहिए, जिनकी स्वस्थता और बलवत्तासे दूसरे छोटे अंगों तथा समस्त समाजशरीरको सुख हो सकता है। यह तो स्पष्ट ही है कि सामाजिक स्वास्थ्य, उत्कर्ष, उन्नति, जीर्णोद्धार, सुधार आदि सबका उद्देश्य और अभीष्ट यही है कि वे सब बालक, स्त्रियाँ, और पुरुष, जिनकी समष्टिको समाज कहते हैं, सुखी हों। तो प्रायः जो मुख्य अंग मनुष्यव्यष्टिके जीवनके हैं वे ही मनुष्यसमष्टिके जीवनके भी होंगे। ऐसे अंग आज-कल प्रायः पाँच अथवा छः कहे जाते हैं, यथा, "शिक्षा सम्बन्धी, राजनीति अथवा राष्ट्र-

* The characteristic quality of a race, the genius of a people, the individuality of a nation, etc.

† Civilisation, culture, social convention

शासन संबंधी, धन संबंधी, व्यवसाय अथवा उद्योग धंधा रोज़गार परिश्रम संबंधी, सामाजिक परंपराचार भोजन विवाहादि संबंधी, और परलोक और ईश्वर संबंधी" *।

ये शब्द जो अभी कहे वे प्रस्तुत विषयमें जो अंगरेजी शब्द आजकाल प्रचलित हैं उनके प्रायः अक्षरानुवादस्वरूप हैं। यदि इनके भावों और आशयोंको भारतवर्षके प्राचीन शब्दोंके द्वारा प्रकट करना अभीष्ट हो तो "शिक्षाका अंग, रक्षार्थ अंग, वार्ताका अंग, सेवाका अंग, गार्हस्थ्यका अंग, और परमार्थका अंग" ऐसा कहना स्यात् अच्छा होगा।

सच पूछिये तो पहिले चार अंग साधन हैं, और पिछले दो अंग ही साध्य है †। इसमें हेतु यह है। जीवनका एकमात्र आत्यंतिक अभीष्ट, (उद्देश्य, लक्ष्य, साध्य) सुख अथवा आनन्द है। यह असंदिग्ध और निर्विवाद है। जो लोक दूसरे अभीष्टोंका निर्देश करते हैं यथा धर्म, ईश्वरप्राप्ति, परोपकार, दया, शारीर भोगविलास, इत्यादि, उनको भी अंतमें यही कहना पड़ता है कि उनको तत्तत् अभीष्टसे अपनी अपनी पृथक् प्रकृति अथवा स्वभावके अनुसार आनंद प्राप्त होता है। निष्कर्ष यह कि आनंद ही सबका एक अभीष्ट है। हां, आनन्दके प्रकार और उपाय और सामग्री भिन्न भिन्न व्यक्तिके लिए स्वस्वरुचिके अनुसार भिन्न हैं। अब इन सब आनन्दके उपायों और प्रकारोंपर विचार किया जाय तो ये भी प्रायः दो राशियोंमें विभक्त हो जाते हैं। यथा, (१) सांसारिक (२) पारमार्थिक। थोडे बहुत अंतरसे इनके पर्यायरूप और कई शब्द हैं, शारीरिक-आत्मिक, ऐहलौकिक-पारलौकिक, बंधसंबंधी व मोक्षसंबंधी, ऐंद्रिय-चैतन्य, अक्षज-अधोक्षज, प्रवृत्त-निवृत्त, आभ्युदयिक-नैश्रेयसिक, इत्यादि।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कर्म द्विविधमुच्यते ॥ मनु० अ० १२॥

शरीर और ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रियके द्वारा जो कामात्मक सुख होता है वह आनन्दका प्रथम प्रकार है। तदनन्तर इंद्रियविषयोंसे निवृत्त होनेसे जो आनंद होता है वह द्वितीय प्रकार है। मनुष्यके कामात्मक सुखके परिष्कारके लिए विविध प्रकारके अर्थ यानी धन दौलत आदि की आवश्यकता है। और अर्थ, बिना कायदा कानून अर्थात् धर्म की प्रबलताके और तद्द्वारा समाज की सुव्यवस्थाके किसीके पास स्थिररूपेण एकत्र नहीं रह सकता। इस हेतुसे मनुष्यके आनंद को केवल कामात्मक न कह कर प्राचीन धर्मशास्त्रोंने त्रिवर्गात्मक अर्थात् धर्म-अर्थ-कामात्मक कहा। यद्यपि तात्पर्यतः मुख्य अंग काम ही है, और अर्थ और धर्म उसके परिष्कारक और पोषक रक्षक ही हैं, तथापि मानवव्यवहारदृष्ट्या इन दो को पहिलेसे चेतना दी है। यथा—

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद् हि कुरुते किंचित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम् ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥

---

* [illegible]

† [illegible]

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ।
व्रतानि यमधर्मांश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥
तेषु सम्यग् वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ।
यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान् समश्नुते ॥
धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ।
अर्थ एवेह वा श्रेयः, त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥ अ० २ ॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मो श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ अ० १२ ॥

धर्म, अर्थ, कामके अनुभवसे छुटकारा पाकर मोक्षके आनन्दके लिए यत्न करना उचित है।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ अ० ६ ॥

कौटिल्यने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ लिखते हुए, अपने विशेष कार्यके अनुरोधसे, यह लिख तो दिया कि "अर्थ एव प्रधान. इति कौटिल्य:," तथापि यह भी उनको लिखना ही पड़ा कि, "धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत, न नि:सुखः स्यात्, एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामितरौ पीड़यति" । (अधिकरण १, अ० ७) ।

४—गृहस्थीकी महिमा और पुरुषार्थसाधकता

आभ्युदयिक आनन्द गृहस्थावस्थामें ही सिद्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं । इसलिए समाजके अंगोंमें गार्हस्थ्यका अंग मुख्य समझना चाहिए । परमार्थका अंग भी एक प्रकारसे तदधीन समझना चाहिए । बिना बन्धके अनुभवके मोक्षका अनुभव कैसे हो सकता है । इसी लिए धर्मशिक्षकने कहा है कि बिना तीनों ऋण चुकाये, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वनस्थ रह कर, अपने समाजमें ज्ञानवृद्धि, प्रजावृद्धि, इष्टापूर्त्तादि द्वारा परोपकारवृद्धि किये बिना, जो जन मोक्षकी इच्छा करते हैं वे मोक्ष न पाकर प्रायः और नीचे गिरते हैं । और गृहस्थकी श्रेष्ठता कई कई बार विविध प्रकारसे कहा है ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥

तः ।
सि हि ॥

कथा।
गयों

ब्रह्मचर्य आश्रममें रहनेवाले विद्यार्थियोंका, वानप्रस्थ अर्थात् अवैतनिक देशसेवकों का, और सर्वभूतस्थित परमात्माकी भावना करते हुए अतिवृद्ध विश्वजनीन सर्वभूतशुभचिंतक संन्यासियोंका भी अन्नदान तथा ज्ञानदानसे पोषण पालन गृहस्थ ही करता है। अन्नदानके विषय तो पूछना ही नहीं है, प्रत्यक्ष है। ज्ञानदानके विषयमें भी पुराणोंकी प्रथा यही है कि महागृह ब्रह्मा विष्णु और शिव ही सर्वज्ञानके प्रचारक हैं, और उनके अनंतर भी बड़े बड़े शास्त्रप्रवर्तक परमार्थ महाज्ञानके प्रवक्ता भी वसिष्ठ विश्वामित्र पराशर व्यास जनक तुलाधार धर्मव्याध सब गृहस्थ ही हुए हैं। यह भी स्पष्ट है कि परमार्थलाभ और मोक्षप्राप्तिके लिए जो परमात्म दृढ़ भावना और परमेश्वरकी एकाग्र भक्ति तथा शम दम आदि कल्याण गुण आवश्यक हैं सबका पूर्व अभ्यास गृहस्थीके अवस्थामें ही हृदयके संशोधक और सौहार्दके संपादक पति पिता माता पुत्र पुत्री भ्राता स्वसा बंधु बांधव मित्र सखा आदिके स्नेह प्रीति दया सेवा सहा दूसरेके हितके लिए अपने स्वार्थका त्याग इत्यादि सात्त्विक और उदार भावोंके द्वारा होता

आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा,
दीनानां पालनं मोचनं च ।

इत्यादि उत्कृष्ट भावोंकी शिक्षा प्राय. गार्हस्थ्यमें ही होती है। इसी हेतु गार्हस्थ्यके मह गान मनुने किया है। और थोड़े भी विचारसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि देशके गृहस्थी, स्त्री, पुरुष सब सुखी रहें और आनंदसे जीवन व्यतीत करें, इसीलिए और जितने समाजके हैं वे सब बने हैं। राजाके लिए प्रजा नहीं बनी, प्रजाके लिए राजा बनाया गया। "रंजनाद् राजा", जो प्रजाका रंजन करे, जो उनको सुखी रक्खे वही राजा, नहीं तो राजा का। अन्य सब अंग साधन है, गार्हस्थ्यसुख साध्य है, इस विषयपर थोड़ा और वि सकता है। साथ ही साथ गृहस्थके कर्तव्य, राजा अर्थात् राष्ट्रप्रबंधकर्ताके कर्तव्य, म पुरुषार्थ अर्थात् जीवनके उद्देश्य, जीवात्माके चित्तके गुण, समाजके प्रधान अंग, तथा इन वि प्राचीन विचारों और नवीन विचारोंका समन्वय, साजात्य, सामानाधिकरण्य, परस्पर यह सब भी देखा जा सकता है।

५—गृहस्थ तथा समाजप्रबंधकर्त्ताके मुख्य कर्तव्य

गृहस्थदम्पतिका अपनी संतानके विषयमें क्या कर्तव्य है ? (१) शिक्षा क (२) रक्षा कर देना, (३) वृत्ति, वर्त्तनोपाय, जीविका, रोजगारमें लगा देना, अथवा स की शक्ति और सामग्रीका संपादन कर देना, यही कर्तव्य है।

"शिक्षा"में धातु शिक्ष् है, जिसका अर्थ हिंदीमें सीखना है। सो यह शब्द ही शिक्षाका अपभ्रंश अथवा परिवर्त्तन है। पर कहा जाता है कि शिक्ष् धातुका भी और पूर्वरूप धातु शक् है, जिसका अर्थ सकना, शक्त होना, है। निष्कर्ष यह कि शि काम यह है कि शिष्यको शक्त कर दे, शक्तिसम्पन्न कर दे, शारीर बल और दृढ़ता बौद्ध बल और दृढ़ता अर्थात् विस्तृत और सकल ज्ञान तथा सद्भाव और सच्चरित्रता प्राप्त जिनकी सहायतासे वह मनुष्यके सब उत्तम अभीष्ट पुरुषार्थोंको साध ले सके। शि

सामाजिक जीर्णोद्धार और उसके अंग

पर्याय शब्द 'भजन' है उसका भी व्युत्पत्त्यर्थ यही है कि जिससे 'भजित' अभीष्ट पुरुषार्थों तक 'भजन', गमन, प्राप्ति, हो सके। यह पहिला कर्तव्य है।

रक्षाका अर्थ विघ्नोंसे रक्षा, हिफाजत कर देना, है। यह भी मूल संस्कृत शब्दका भावार्थ अथवा परिवर्तित प्रायः ही है। तरह तरहके उपद्रवोंसे, चोर चोट्टोंसे, आधि व्याधि अर्थात् मानस और शारीर रोगोंसे, अग्नि जीवोत्पन्न दुर्घटनाओंसे, हिंस्र पशु पक्षियोंसे, दुष्ट जनोंसे, हिफाजत कर देना, जनताकी प्राण रक्षा करना। यह दूसरा कर्तव्य है।

जीविका शब्दका पर्याय हिंदीमें भी जीविका ही है। अर्थ स्पष्ट है। अर्थात् बाल्यकाल और यौवनारम्भमें तथा विद्यार्थी अवस्थामें शिक्षा दिला देकर थोड़ा देना, पीछे स्वभावानुसार उपयुक्त रोजगारमें लगनेका प्रबंध कर देना जिससे अपने खाने और खाने पीने परिजन पालनेका प्रबंध कर ले, अपनी जीविका, अपना वर्तनोपाय, कमा ले। यह तीसरा कर्तव्य गृहस्थका है।

पहिला, दूसरा, तीसरा कहनेका अर्थ इन तीनों कर्तव्योंकी श्रेष्ठताका तारतम्य दिखानेका नहीं है, किंतु केवल गणनाका है। तीनों समकालीन और अन्योन्याश्रित हैं और समानरूपेण आवश्यक हैं, जैसे ज्ञान, इच्छा, और क्रिया।

यदि ये तीन कर्तव्य जनताके विषयमें गृहस्थके हैं, तो राजाके भी प्रजाके विषयमें ये ही तीन कर्तव्य हैं। राजा प्रकृतिरञ्जनात्। राजाका अर्थ प्रजाका रञ्जन करने वाला, राष्ट्रका प्रबंध करने वाला है, चाहे उसका विशेष स्वरूप कुछ भी हो, अथवा ग्रामका पंचायती चौधरी, नगरराष्ट्रके अधिकारीगण, रिपब्लिक अथवा जमहूरी सल्तनतका प्रेसिडेंट, अथवा वंशपरंपरा अथवा निर्वाचनद्वारा एकराट्, तथा राजभृत्य, राजपुरुष, कर्मचारी, आयुक्त, नियुक्त, पदस्थ, अधिकारी आदि भी, जिनको थोड़ा या बहुत शासनका अधिकार सौंपा गया है, वे सब यहाँ राजा शब्दसे उपलक्षित तथा उसमें अंतर्गत समझे जाने चाहिये।

कालिदासने रघुवंशके प्रथम सर्गमें कहा है।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

प्रजाका विनयाधान अर्थात् शिक्षण, रक्षण, और भरण अर्थात् जीविका संपादन करनेके कारण, राजा दिलीपही प्रजाके सच्चे पिता थे। और उनके शारीर पिता तो केवल उनके इस दुखिया संसारमें जन्म पानेके निमित्तमात्र थे। मनुने भी कहा है—

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्॥ अ० १॥
ब्राह्मणस्य तपो वार्त्ता तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्॥ अ० ११॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ म० ७ ॥
यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्यांकुशो यथा ।
नरेन्द्रधर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम् ॥ म० भा०, शां०, ८
सप्तांगस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरेत् ।
गुरुर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहंतव्य एव सः ॥
चातुर्वर्ण्यस्थापनात् पालनाच्च क्षात्रं श्रेष्ठं सर्वधर्मोपपन्नम् ।
एते वर्णाः सर्वधर्मैश्च हीना उत्कृष्टव्याः क्षात्रियैरेव धर्मैः ॥ म०,६०

शास्ताका एक बड़ा काम रक्षा है । पर यहाँ रक्षा शब्दका अर्थ केवल शासन है। अपने अपने स्वभावानुरूप उचित धर्ममें प्रवर्तमान सब प्रजागणके कर्तव्य पालनकी रक्षा, कर्तव्यवञ्चन और मर्यादाभंगका दंड, क्योंकि बिना ऐसे दंडके उक्त कर्तव्यकी रक्षा नहीं हो सकती, इतना अर्थ इस रक्षाका है । अर्थात् शासकका धर्म है कि ज्ञानप्रधान मनुष्यों द्वारा (जिनका सांकेतिक नाम ब्राह्मण है) समस्त प्रजागणकी उचित शिक्षा, अध्यापन, विद्या[illegible] ज्ञानवृद्धि करावे । क्रियाप्रधान मनुष्यों द्वारा (जिनका सांकेतिक नाम क्षत्रिय है) समस्त प्रजा[illegible] गणकी शारीर रक्षा, निरुपद्रवता, प्राणवृद्धि करावे । और इच्छाप्रधान मनुष्यों द्वारा (जिनका सांकेतिक नाम वैश्य है) अन्नवस्त्रादिसे समस्त प्रजागणके शरीरतर्पण और [illegible] वृद्धिका प्रबन्ध करावे । चौथे, यह भी कर्तव्य है कि इन तीनों विशेषबुद्धिगुणकर्मसम्पन्न [illegible] समूहोंकी सहायता अथवा सेवा को सामान्यशारीरपरिश्रमशक्तिसम्पन्न और मन्दबुद्धि [illegible] बुद्धिवाले मनुष्योंसे (जिनका सांकेतिक नाम शूद्र है) करावे । चातुर्वर्ण्यका मार्मिक [illegible] यह है, न केवल "जन्मना वर्ण" की लकीर पीटना * ।

६—पुरुषार्थचतुर्वर्ग और राष्ट्रीय कर्तव्योंका सम्बन्ध

मनुष्यके जीवनके उद्देश्य अर्थात् लक्ष्य, हेतु, पुरुषार्थ, भी इन्हींसे सम्बन्ध रखते हैं । [illegible] कह आये हैं कि प्रायः आभी आयु तक जीवनका लक्ष्य विविध प्रकारका शारीर सुख है जिसका सांकेतिक नाम "काम" सुख है । उसका परिष्कार बिना विविधप्रकारके धनधान्य यानी "अर्थ" के नहीं हो सकता । तथा किसीके पास चिरकालतक स्थायी अर्थका संचय बिना 'धर्म' के, बिना [illegible] कानून, दंडनीति, मर्यादानिर्णय, नियमस्थापन और नियमप्रवर्तनके नहीं हो सकता । [illegible] इनसे धर्म, अर्थ, काम, यह तीन पुरुषार्थ कहे गये । इनका समाहृत शब्द अभ्युदय है । [illegible] स्वाभाविक है, बिना सिखाये भी स्वतः अत्यन्त बलवान् है । इसके बढ़नेके लिए [illegible]

* अंगरेजी शब्दोंमें इन चार राष्ट्रीय कर्तव्यों अर्थात् [illegible] state को educational organisation, [illegible] organisation और industrial organisation कह सकते हैं । राजाकी उत्पत्ति अर्थ origin of the state है । अर्थात् [illegible] [illegible] the state है ।

आवश्यकता नहीं, किन्तु समाजके संगठन, स्थापन, और पालनके हेतु इसके नियमन और रोक टोककी आवश्यकता है, इसलिए प्राचीन प्रथाके अनुसार कामसे अधिक अर्थ पर और अर्थसे अधिक धर्म पर जोर दिया गया है। पिछली आयुमें शारीरसम्बन्धोंमें क्रमशः निवृत्ति और सांसारिक बन्धनोंसे "मोक्ष" पाकर परमात्माको पहिचानना अर्थात् जो ही अजर अमर देशकाल-क्रियातीत परमात्मा है, यह निश्चितरूपसे अनुभव करना, यही चतुर्थ अथवा परम पुरुषार्थ है। ये पुरुषार्थ सिद्ध होनेसे इहलोक परलोक, अथवा शरीर और चैतन्य, अधिभूत और अध्यात्म, इन दोनोंकी सिद्धि होती है। जिस समाजमें ऐसा समयाचार, ऐसा शिष्टाचार, ऐसी सभ्यता, शिक्षा, प्रथा, प्रचलित हो जिससे प्रतिव्यक्तिको इन दोनों आनन्दोंकी सिद्धिका अवसर प्राप्त हो, वही समाज और उसी समाजके राजा और शासक और प्रजा अपना कर्तव्य ठीक ठीक कर रहे हैं, अन्यथा घोर धोखेमें पड़े हैं।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

ऐसा वैशेषिक सूत्र है। जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि समाजान्तर्गत सब मनुष्योंकी समता हो, वही तो सर्वसमाजधारक धर्म है।

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।

जिस समाजमें ऐसा प्रबन्ध नहीं है, जहां लोग यही ठीक ठीक नहीं जानते हैं कि मनुष्यके जीवनके उद्देश्य क्या हैं, अथवा यही जानते हैं कि शारीरसुखही उद्देश्य है, जहां इहलोक परलोक अथवा [illegible] उचित रीतिसे अनुभव करनेके लिए कोई उपयुक्त मर्यादा नहीं बांधी है, जहां सब प्राय [illegible] रीतिसे परस्पर कलि अर्थात् कलह करते हुए अपना अपना शारीरसुख ही चाहते हैं, जहां [illegible] और परस्पर [illegible] मनुष्य दीन [illegible] है वह समाज नहीं किन्तु [illegible] है। [illegible] अर्थात् जहां सब मिलके एक दूसरेको आगे ओरसे लिए हुए [illegible] वही तो मानवसमाज है, नहीं तो [illegible], अथवा [illegible] है। [illegible] लिए धर्म शब्द यथार्थ होते हैं जैसे

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ (मुण्डकोपनिषद्)

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ (गीता)

[illegible]

[illegible]

अधिकार " धारण ", यद्द्वारा, और सुख मिलेगा, यही आचरण उस देश-काल-स्थितिमें लोकसमुदायकर्ता लोकधारयिता धर्म है*। इसके लिए विशेष ज्ञानशक्तिकी अपेक्षा है। और जब ज्ञान हो जाय तब उस ज्ञानके सर्वसाधारण जनतामें प्रचारकी परम आवश्यकता है, नहीं तो बिना उस ज्ञानके वैसा आचरण कैसे करेंगे। इसलिए धर्मका संबंध ज्ञानसे प्राधान्येन कहा है, और ज्ञानप्रधान जीवोंके द्वारा उसका प्रचार और निश्चय ठीक ठीक हो सकता है। "प्राधान्येन" इस शब्द पर ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि तत्त्वतः सबका सबसे अभेद सम्बन्ध है।

एवं, अपने अपने उचित कर्तव्य अर्थात् धर्मके करनेमें जब तक लोगोंका पालन, समर्थन, प्रोत्साहन, रक्षण, और तद्विपरीत आचरणसे वर्जन, भर्त्सन, दंडन नहीं होगा, तब तक धर्मका केवल ज्ञान निष्फल रह जायगा। यह रक्षण दंडन ऐसे जीवोंके द्वारा प्रधान है जो क्रियाप्रधान हैं। ऐसे रक्षणका फल यही है कि धर्मद्वारा अर्थका संचय हो। यह प्रवृत्ति मार्गके कर्म-धर्म की कथा है, जिससे इहलोकका अर्थ संचित होकर इहलोकके कामसुख प्राप्त होते हैं, अथवा अदृष्टफलद्वारा परलोकका अर्थ संचित होकर परलोकके कामसुख प्राप्त होते हैं। निवृत्तिमार्गके मोक्षधर्मकी कथा न्यारी है, यद्यपि उस धर्मके संचय करनेवाले संन्यासियों अवधूतोंकी भी रक्षा अधिकारप्राप्त क्रियाप्रधान जीवद्वारा ही होती है। इन हेतुओंसे कहा जाता है कि अर्थका संबंध प्राधान्येन क्रियासे है।

रहा काम। कामका तो पर्यायशब्द ही इच्छा है। इंद्रियसुखसाधक विविध पदार्थों की इच्छा का ही नाम काम है।

"श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाऽधिष्ठितानां
स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः" ॥ (वात्स्यायनः)

सुन्दर ललित साहित्य संगीतादि विविध कलाओंके परिष्कारसे परिष्कृत कामकी सिद्धि विविध प्रकारके अर्थसंचयसे होती है। इस हेतु यद्यपि अर्थका संचय करनेमें व्यापृत मनुष्योंकी रक्षा क्रियाप्रधान जीव करते हैं और इसहेतु अर्थका संबंध क्रियासे कहा गया, तथापि अर्थ अर्थात् काम सुख साधक काम्य वस्तुओं का साक्षात् संचय इच्छाप्रधान मनुष्योंके द्वारा होता है, इस हेतुसे कामका संबंध इच्छासे प्राधान्येन कहा जाता है।

तमसो लक्षणं कामः रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ (मनु० अ० १२)

ऐसा मनुने सिद्ध किया है, और विविध दर्शनग्रन्थोंसे यह निर्णय होता है कि सत्त्वका संबंध ज्ञानसे है, रजस्का क्रियासे, और तमस्का इच्छासे है। तथा यह भी कि जिन मनुष्योंका अंतःकरण अधिक जाग रहा है, जिनकी बुद्धि यत्किञ्चित् अन्तर्मुख है, जो आत्मज्ञानके अधिकारी हैं अर्थात् जिनको आत्मज्ञानका संभव है, जो इस हेतुसे द्विजाति कहाते हैं, उनमें प्रत्येक मनुष्य या तो सत्त्व-ज्ञान-प्रधान, या रजः-क्रिया-प्रधान, या तम-इच्छा-प्रधान होता है। बाकी मनुष्य,

* यह प्राचीन मतसे Principle of order का परिष्कृत स्वरूप है।

[illegible] इस [illegible] कोई [illegible] है, [illegible]

इन [illegible] प्रकारके [illegible], [illegible] है [illegible] इनके [illegible], [illegible], [illegible] किसी एक [illegible] विशेष [illegible] नहीं हुआ, और जो [illegible] हो [illegible] है, कोई नहीं। इनके [illegible] करना [illegible] अनुभूत अथवा [illegible] (नूतनि) [illegible], [illegible], किसी का अनुवाद, अनुसार, हो [illegible] सकता है, [illegible] करता है, और नवीन स्वतंत्र कल्पना नहीं कर सकता।

ज्ञानप्रधान, क्रियाप्रधान, इच्छाप्रधान [illegible] है जो प्रायः पूर्वजन्म अभ्यासजन्यभावानुसार [illegible], और [illegible] इन शब्दोंके साथ "जन्मना वर्ण" इस [illegible] विचारका [illegible] बंध गया है, और "आध्यात्मिकस्वभावगुणानुसार वर्ण [illegible]" इस [illegible] है। इसलिये उन शब्दोंको बदलकर [illegible] प्रयोगकी आवश्यकता [illegible] है जिनसे मन प्रच्छन्न आध्यात्मिक भावोंका [illegible] तथा अन्य [illegible] किसी [illegible] उदय हो। आश्रम वैसा भी उत्तम [illegible] आश्रम, कमण्डलु, माला, तुंबा आदि, पर यदि [illegible] और उसमें [illegible] दोष अनिवार्यरूपेण आगये हों, मालिन्य, दुर्गन्ध, [illegible] किया जाय, अतिप्रिय होने पर भी उनको हटाकर उनके स्थानमें [illegible], [illegible], [illegible] हो क्यों न हो, पर पुष्ट हो, [illegible] समर्थ हो, ऐसे नये [illegible] प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। हाँ, आपत्काल निवृत्त हो जानेपर, फिर [illegible] प्राप्त होने पर, यदि संभव हुआ तो पुराने नमूने पर फिरसे माला, तुंबा, कमण्डलु, आसन, दंड, कम्बल, वस्त्रोंमादि ठीक वैसे ही बनाकर बरते जा सकते हैं।

७—शिक्षांगका प्राधान्य

एक बात और इस स्थानपर कहने योग्य है। यद्यपि पहिले कहा कि शिक्षा, रक्षा, जीविकाका उद्देश पहिले, दूसरे, तीसरे इति शब्दोंसे जो किया, उससे इनकी श्रेष्ठताका तारतम्य दिखानेका आशय नहीं था, और ये तीनों सत्त्व-रजस्-तमस्के ऐसी अन्योन्यमिथुन और सर्वथा अभेद्य है, तथापि यह विवेक करना अनुचित न होगा कि मनुष्यके जीवनमें मनुष्यत्वका जो विशेष है उसकी सिद्धिके लिए शिक्षाका अंग प्रधान है, तदनंतर रक्षाका, तदनंतर जीविकाका, तदनंतर अनुचर्याका। यह चर्चा प्राधान्यकी है। आवश्यकताकी नहीं। आवश्यक सब ही हैं प्रधानतामें उत्तरोत्तर कमतीका क्रम है, विशेष कारणसे।

अन्योन्याभिभवाश्रयमिथुनजननवृत्तयश्च गुणाः॥ (सांख्यकारिका)

तत्त्वतः तो केवल प्राणधारणके लिए शारीर परिश्रमका अंग और अन्नपानादि द्वारा भूख प्यासका निवारणकरनेवाला अंग (अर्थात् विट्-शूद्र) यही अधिक आवश्यक है। राष्ट्रव्यूहमें

सात अथवा आठ अंग जो कहे जाते हैं उनमें यह एक अंग भी है तथा मूल प्रकृति भी है, अर्थात् और सब अंग इसीसे विकृतिरूपेण पैदा हुए हैं, जैसे मूलप्रकृतिसे महत्तत्व, अहंकार, मनस् आदि विकार पैदा हुए हैं। यथा—

> स्वाम्यमात्यः सुहृत् कोशो राष्ट्रं दुर्गं बलं तथा।
> पौरश्रेण्यौ च राज्यांगं प्रकृतिश्च भवेद् द्वयम्॥ (शब्दरत्नावली)

और—

> ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
> एते गृहस्थप्रभवाः चत्वारः पृथगाश्रमाः॥ मनु० अ० ६॥
> यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तंते सर्वजंतवः।
> तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तंते सर्व आश्रमाः॥ अ० ३॥

वेदोंमें साधारणरीत्या सर्वजनसमाजका नाम "विश." बहुधा कहा है। और ज्ञान और रक्षाका अंग (ब्रह्म-क्षत्र) क्रमश. उससे विकसित हुआ है। जैसा प्रत्येक मनुष्यके बाल्यकालसे वार्धक्य तकके जीवनको विचारनेसे जान पडता है, ज्ञान और आत्मरक्षणशक्ति की कला धीरे धीरे जागती हैं। पर यह भी प्रत्यक्ष है कि इन कलाओंके जाग जानेपर इनका आदर अधिक हो जाता है। पुरुषसूक्तमें विराट्शरीर के अंगोंसे जो मनुष्यसमाज के अंगोंकी सीधी सीधी प्रत्यक्ष उपमा कही है उससे भी यही देख पडता है। ज्ञानप्रधान अंग मनुष्यका सिर है, क्रियाप्रधान अंग बाहु है, इच्छाप्रधान अंग धड है, और अनुचर्याप्रधान पैर है जो इस अवस्थामें अन्य सबका बोझ उठाता है। सिर ही प्रधान अंग माना जाता है, यद्यपि अन्न वस्त्रादि द्वारा प्राणधारण, तर्पण, आप्यायन, तथा आच्छादन, आदि सब अंगोंका अंदरुनी तुल्यरूपसे किये जाता है। मनुष्यका विशेष मनुष्यत्व 'मनन' से अर्थात् ज्ञानसे है।

> आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥ (हितोपदेश)

धर्मका संबंध ज्ञानसे है यह पहिले कह आये हैं। धर्मका अभिप्राय न केवल पारलौकिक अदृष्टफलक धर्म है, किंतु प्राधान्येन ऐहलौकिक साक्षाद्दृष्टफलक राजधर्म और व्यवहारधर्म है जिसके बिना समाजकी एक क्षण स्थिति नहीं है, जिसके बिना

सामाजिक संघटन और उनके भेद

[illegible] है। [illegible] हैं। [illegible] national या social या [illegible] organisation [illegible] educational, political ([illegible] protective या defensive), commercial (या financial या economic) और industrial (या labour या workmen's या manual workers') organisations बहुत हैं।

[illegible] अनुमान आ सकता है।

अब जिज्ञासु [illegible] विचारणीय है।

[illegible]

भगवान्दास

मुक्तद्वार वाणिज्य तथा रक्षित व्यापार नीति

अपने देशके व्यापारकी रक्षा करना तथा
कि केवल गौण कर्त्तव्य थे। किन्तु आजकल
र यही रहता है कि अनेक उपायोंसे वह अपनी
व्यापारिक उन्नति करे। वर्तमान कालमें एक राष्ट्र निर्बल है या बलशाली इसकी जाँच, उसका वैदेशिक तथा आभ्यन्तरिक व्यापार उन्नति पर है या अवनति पर इसी कसौटी द्वारा होती है। आधुनिक सभ्यतानुसार जिसके पास बल है वही संसारमें कई दुर्गुणोंके होते हुए भी मान पाता है। निर्बलको चाहे वह सर्वगुण संपन्नही क्यों न हो प्रत्येक स्थानमें ठोकरेंही खानी पड़ती है। इस कारण आजकल किसी भी राष्ट्रको संसारमें सम्मान पानेके लिए प्रधानतः उसे अपनी आर्थिक उन्नति करनीही पड़ती है। प्रत्येक राष्ट्र इसी विचारमें मग्न रहता है कि वह अपने वाणिज्य तथा व्यापारकी किस तरह उन्नति करे। प्रत्येकके सामने यही प्रश्न रहता है कि किस नीतिके अवलंबनसे वह वहाँकी व्यापारिक स्थिति सुधार सकता है। इस प्रश्नके उत्तर भिन्न भिन्न कालमें अर्थशास्त्रज्ञोंने भिन्न भिन्न दिये हैं। कई लोगोंका यह मन्तव्य था और यही मत अब फिर अधिक जोरोंसे प्रचलित हो रहा है कि उद्योग धंधोंकी उन्नति अपनेही देशमें पर्याप्त रीतिसे करनेके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि विदेशीय स्पर्धासे देशके उद्योग धंधोंकी रक्षा की जावे। इसका मुख्य साधन यह है कि बाहरसे आनेवाले तय्यार मालपर कर लगा दिया जावे ताकि देशमें उत्पन्न होने वाला कच्चा माल यहीं पर तय्यार कराया जासके। इसीका नाम रक्षित व्यापार नीति है। इसके प्रतिकूल कई लोगोंका विश्वास है कि आर्थिक उन्नतिका मूल तत्व स्पर्धा है। बिना इसके वास्तविक आर्थिक उन्नति न होकर बहुतसे बेकाम धंधोंकी ओर जनता का ध्यान चला जाता है और जो देश जिस कार्यके करने में पूर्ण रूपसे योग्य है उसे न कर बहुतसे दूसरे धंधोंमें हाथ डाल देता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ लोगोंके लाभके लिए देश भर को कष्ट उठाना पड़ता है। इसलिए बाहरसे आने वाले मालपर व्यापार रक्षाके उद्देशसे आयात या निर्यात कर नहीं लगाना चाहिए। इसी नीतिका नाम मुक्तद्वार वाणिज्य नीति है।

अठारहवीं सदी तक यूरोपमें एक प्रकारकी रक्षण नीतिही प्रचलित थी जिसका नाम मर्केन्टाइल सिस्टम* था। इसके सिद्धांतके अनुसार इस बातपर विशेष जोर दिया जाता था कि देशके भीतरी व्यापारकी अपेक्षा विदेशीय व्यापार अधिक बढ़े, ताकि बाहर भेजे हुए पदार्थोंके मूल्यमें बाहरसे सोना या चाँदी देशमें अधिक आवे। इसके अनुसार चाँदी या सोना ही धनके प्रधान रूप माने जाते थे। यह प्रयत्न किया जाता था कि देशके बाहर कच्चा माल बिलकुल न जावे। प्रत्युत इसके कच्चा माल देशमें ही तय्यार किया जावे

* Mercantile system

और फिर बाहर भेजा जावे। बाहरसे कच्चा माल मंगानेमें कई तरहकी सुविधायें दी जाती थीं और बाहरसे आनेवाले तय्यार माल पर तरह-तरहके रोक रखे गये थे। इस नीतिके पूर्णरूपसे पालन करनेके लिए सरकारको कई तरहके आयात और निर्यात कर लगाने पड़ते थे। इस सिद्धांतके प्रतिकूल आवाज उठाने वाला इंग्लिस्तान का प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ एडम स्मिथ था। इसने सिद्ध किया कि स्पर्धा ही आर्थिक उन्नति का मूल मंत्र है और आर्थिक उन्नति इसीसे हो सकती है कि सरकार व्यक्तिगत आर्थिक उद्योग में किसी तरहकी बाधा न डाले। एडम स्मिथ के सिद्धान्तका नाम लेसेफेयर* अर्थात् कार्य करनेकी स्वतन्त्रता है। इसके प्रचारके कारण मरकेन्टाइल मतको बड़ा धक्का पहुंचा। यह कहना ठीक नहीं कि वर्तमान व्यापार नीति-*रक्षित या मुक्तद्वार वाणिज्य नीति-इन्हीं सिद्धान्तोंपर निर्धारित की गई हैं,* किन्तु इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है कि रक्षित व्यापार नीति वाले मरकेन्टाइल सिस्टमकी बहुतसी बातें मानते हैं तथा मुक्तद्वार वाणिज्यके समर्थकोंके बहुत कुछ सिद्धांत लेसेफेयरके सिद्धान्तोंसे मिलते हैं। यथार्थमें जितना विस्तृत अर्थ मरकेन्टाइल सिस्टम या लेसेफेयर सिद्धान्तका पहिले किया जाता था प्रचलित रक्षित व्यापार नीति तथा मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिका अर्थ अब उतना विस्तृत नहीं है।

मुक्तद्वार वाणिज्यवाले अपने सिद्धान्तोंका समर्थन इस तरह करते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक देशकी भौगोलिक स्थिति भिन्न होनेके कारण प्रत्येक देशको सब चीजें पैदा करनेकी एक सी सुविधा नहीं होती। किसी न किसी वस्तुमें अवश्य किसी को विशेषता प्राप्त होती है। इस कारण संसारके सब देशोंमें जहां जो चीज आसानीसे तथा कम खर्चेमें उत्तमता पूर्वक तय्यार होती हो वहींसे उसे मंगाना चाहिए और अपने यहाँ केवल उन्हीं चीजोंको तय्यार करना चाहिए जो उत्तमतासे सस्ते दामोंमें यहां तय्यार हो सकें। तात्पर्य यह कि संसार भरकी चीजें जहांसे अच्छी मिलें लोग वहींसे खरीदें और जिन चीजोंके तय्यार करनेमें जिस देशको विशेष सुविधा तथा योग्यता हो उन्हींको वह तय्यार करे। इसके अतिरिक्त दूसरी चीजें जहां वे आसानीसे तय्यार होती हों वहांसे मंगाई जायें। प्रत्येक वस्तुको अपनेही यहाँ तय्यार करनेका प्रयत्न न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त और दूसरी चीजें दूसरे देशोंसे न मंगाकर जहां वे स्वयं आसानीसे तय्यार होती हैं मंगाई जायँ। प्रत्येक वस्तु अपने *ही यहां तय्यार करनेका प्रयत्न न करें। इसीका नाम इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाग†* रखा है। इनका कहना है कि इस प्रथासे श्रम विभागसे होनेवाले सब आर्थिक लाभ ही नहीं होते वरन् आपसमें प्रीति बढ़कर एक देशका दूसरे देशसे सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ होता जाता है *जिससे युद्धकी सम्भावना कम होती जाती है।* इसके अतिरिक्त यदि तुम विदेशसे आने वाले मालपर आयात कर लगा दोगे तो निस्सन्देह तुम्हारे यहांसे भी उतना माल बाहर न भेजा जा सकेगा, जिससे अन्तमें देशही को आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। उनका मुख्य कथन यही है कि

---

* Laissez Faire

† International Division of Labour

स्पर्धामें ही वास्तविक आर्थिक उन्नति हो सकती है। रक्षित व्यापार नीति इसी स्पर्धाके कार्यमें बाधा डालता है। इससे कई उद्योग धंधेवाले उन्नतिका विचार स्वयं कुछ नहीं करते और आयात करके भरोसेही अपना निर्वाह कर जनतापर अपना भार रखते हैं। इस कारण आर्थिक बातोंमें सरकारका हस्तक्षेप न करना ही आर्थिक उन्नतिका मुख्य साधन है। कोई भी नियंत्रणात्मक कानून जिससे स्पर्धामें बाधा होती है देशकी सच्ची आर्थिक उन्नतिका घातक है। इसलिए देशकी यथार्थ आर्थिक उन्नतिके लिए मुक्तद्वार वाणिज्य ही आवश्यक है।

जबसे मुक्तद्वार वाणिज्यके मतका प्रचार हुआ रक्षित व्यापार नीतिवाले शिथिल पड़ गये। कारण इसका यह था कि मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिवालोंकी बहुत कुछ बातें यथार्थ भी हैं। किन्तु जर्मनीके अर्थशास्त्रज्ञ फ्रेडरिक लिस्टने मुक्तद्वार वाणिज्यके सिद्धान्तोंपर बड़ा आक्षेप किया। उसने यह सिद्ध किया कि इस प्रथामें यद्यपि कई बातें अच्छी हैं तथापि इनका प्रयोग हर अवस्थामें नहीं हो सकता और यदि यही नीति प्रत्येक अवस्थामें काममें लाई जावे तो इससे बड़ी हानि होनेकी सम्भावना रहती है। लिस्टके कथनानुसार प्रत्येक राष्ट्रकी उन्नतिमें तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम—कृषिकाल इसकालमें देशमें कलाकौशलकी ओर लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे नहीं रहता और लोग अपना निर्वाह केवल कृषिसे ही करते हैं। लिस्टका कथन है कि इस कालमें मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिके अनुसरणसे ही अधिक लाभ होता है। कृषिको ऊँची स्थितिपर लानेके लिए स्पर्धाकी अत्यंत आवश्यकता होती है और जो देश इस अवस्थामें हों उन्हें इसी नीतिके अनुसरणसे विशेष लाभ होता है। किन्तु ज्यों ज्यों देश कृषिमें उन्नति करता जाता है त्यों त्यों इस नीतिकी उपयोगिता कम होती जाती है। यहींसे समाजकी दूसरी अवस्था आरम्भ होती है जिसका नाम लिस्टने अध्ययन काल [1] रखा है। इस अवस्थामें उन्नतिशील कृषिके पश्चात् राष्ट्रमें उद्योग धंधोंकी ओर पहिली बार रुचि होती है। इनका प्रचार इसी अवस्थामें आरम्भ होता है। इस अवस्थामें देशको रक्षण नीतिकी अत्यन्त आवश्यकता होती है कारण कि बढ़ते हुए उद्योग धंधोंको बाहरकी तीव्र स्पर्धासे बचाना ही होता है। स्पर्धामें लाभ उसी समय हो सकता है जब स्पर्धा करनेवालोंकी औद्योगिक उन्नति एक समान हो। एक देशका जो आर्थिक उन्नतिके शिखरपर पहुँच चुका हो दूसरे देशके साथ स्पर्धा करना जहाँपर कि औद्योगिक उन्नतिका केवल श्रीगणेश ही हुआ हो, कभी लाभदायक नहीं हो सकता। जो देश ऐसी स्थितिमें रहते हैं वे बिना रक्षण नीतिके उन्नति ही नहीं कर सकते। पूर्ण आर्थिक उन्नति बिना इस नीतिके अनुसरण किये हो ही नहीं सकती। इंगलैन्ड प्रभृति देश जहाँ मुक्तद्वार वाणिज्यका राग आज अधिक बजाया जा रहा है, रक्षित वाणिज्य नीतिके ही कारण अपनी आधुनिक आर्थिक उन्नति कर सके हैं। यदि [illegible] एक न एक समय होता तो [illegible] अपनी आर्थिक उन्नति आजकलकी अधिक कभी नहीं होती। लिस्टके कथनानुसार नीतिका [illegible] जब देशकी औद्योगिक उन्नति पूरी हो चुकी है। इस [illegible] मुक्तद्वार [illegible]

1 [illegible]

श्यकता होती है कारण कि एक बार जब कोई देश उन्नतिके शिखरपर पहुँच जाता है तब उसका पतन न हो जावे इसलिए उसे स्पर्धाकी अत्यंत आवश्यकता होती है। लिस्टका कथन है कि आर्थिक उन्नतिमें हमें केवल कम मूल्यपर ही तथा अन्तर्राष्ट्रीय लाभपर ही ध्यान नहीं देना चाहिए। यदि अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम उचित है तो देशभक्ति भी तो कोई चीज़ है। लिस्टके कथनानुसार जब तक तुम अपनी राष्ट्रीय उन्नति नहीं कर लोगे तुम्हारी अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति हो ही नहीं सकती। संभव है कि तुमको अपने देशकी उत्पन्न की हुई चीज़ोंपर अधिक मूल्य देना पड़ता हो, किन्तु इससे तुम्हारे देशकी उत्पादक शक्ति तो अवश्य बढ़ती है। पुनश्च जब दूसरे देश रक्षण नीतिका अनुसरण कर रहे हों तो केवल एक ही देश मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिका अनुसरण कर उस नीतिसे होनेवाले सब लाभोंको कैसे उठा सकता है? लिस्टका कथन इतना सारगर्भित है कि अमरीकन अर्थशास्त्रज्ञ केरीने भी इसका प्रतिपादन किया। केरीका मत है कि श्रम विभागके लाभोंकी अपेक्षा अपने देशको सब आर्थिक बातोंमें स्वतन्त्र रखना विशेष लाभदायक है। सब यूरोपवाले केवल इंग्लिस्तानको छोड़ इसी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। वे दूसरोंके यहाँसे कच्चा माल मँगाकर अपने यहाँसे तय्यार माल भेजना अधिक पसन्द करते हैं। युद्धके पश्चात इंग्लिस्तानमें भी अब मुक्तद्वार वाणिज्यका उतना मान नहीं है। लन्दनके चेम्बर आफ कामर्सने प्रस्ताव पास किया है कि अब इंग्लिस्तानके लिए भी आवश्यक है कि वह विदेशोंकी स्पर्धासे राष्ट्रीय उद्योग धन्धोंकी रक्षा करे तथा साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंको एक सूत्रमें बाँधनेके लिए इसके साम्राज्यान्तर्गत मुक्तद्वार वाणिज्य नीति का ही अनुसरण करे।

स्पर्धामें ही वास्तविक आर्थिक उन्नति हो सकती है। रक्षित व्यापार नीति इसी स्पर्धा कार्यमें बाधा डालता है। इससे कई उद्योग धंधेवाले उन्नतिका विचार स्वयं कुछ नहीं करते और आयात करके भरोसेही अपना निर्वाह कर जनतापर अपना भार रखते हैं। इस प्रकार आर्थिक बातोंमें सरकारका हस्तक्षेप न ... नियन्त्रणात्मक कानून जिनसे स्पर्धामें बाध... इसलिए देशकी यथार्थ आर्थिक उन्नतिके लिए मुक्तद्वार वाणिज्य ही आवश्यक है।

जबसे मुक्तद्वार वाणिज्यके मतका प्रचार हुआ रक्षित व्यापार नीतिवाले शिथि... पड़ गये। कारण इसका यह था कि मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिवालोंकी बहुत कुछ ... यथार्थ भी है। किन्तु जर्मनीके अर्थशास्त्रज्ञ फ्रेडरिक लिस्टने मुक्तद्वार वाणि... सिद्धान्तोंपर बड़ा आक्षेप किया। उसने यह सिद्ध किया कि इस प्रथामें यद्यपि... बातें अच्छी हैं तथापि इनका प्रयोग हर अवस्थामें नहीं हो सकता और यदि ... नीति प्रत्येक अवस्थामें काममें लाई जावे तो इससे बड़ी हानि होनेकी संभावना रहती है। लिस्टके कथनानुसार प्रत्येक राष्ट्रकी उन्नतिमें तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम—कृषि... इसकालमें देशमें कलाकौशलकी ओर लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे नहीं रहता और लोग अप... निर्वाह केवल कृषिसे ही करते हैं। लिस्टका कथन है कि इस कालमें मुक्तद्वार वाणिज्य नीति... के अनुसरणसे ही अधिक लाभ होता है। कृषिको ऊँची स्थितिपर लानेके लिए स्पर्धाकी अत... आवश्यकता होती है और जो देश इस अवस्थामें हों उन्हें इसी नीतिके अनुसरणसे विशे... लाभ होता है। किन्तु ज्यों ज्यों देश कृषिमें उन्नति करता जाता है त्यों त्यों इस नीतिकी उ... योगिता कम होती जाती है। यहींसे समाजकी दूसरी अवस्था आरम्भ होती है जिसका न... लिस्टने अध्ययन काल [1] रखा है। इस अवस्थामें उन्नतिशील कृषिके पश्चात् राष्ट्रमें उद्... धंधोंकी ओर पहिली बार रुचि होती है। इनका प्रचार इसी अवस्थामें आरम्भ होता है। ... अवस्थामें देशको रक्षण नीतिकी अत्यन्त आवश्यकता होती है कारण कि बढ़ते हुए उद्यो... धंधोंको बाहरकी तीव्र स्पर्धासे बचाना ही होता है। स्पर्धासे लाभ उसी समय हो सकता ... जब स्पर्धा करनेवालोंकी औद्योगिक उन्नति एक समान हो। एक देशका जो आर्थिक उन्नति... शिखरपर पहुँच चुका हो दूसरे देशके साथ स्पर्धा करना जहाँपर कि औद्योगिक उन्नतिका केवल श्रीगणेश ही हुआ हो, कभी लाभदायक नहीं हो सकता। जो देश ऐसी स्थितिमें रहते हैं ... बिना रक्षण नीतिके उन्नति ही नहीं कर सकते। पूर्ण आर्थिक उन्नति बिना इस नीतिके अनु... सरण किये हो ही नहीं सकती। इंग्लिस्तान प्रभृति देश जहाँ मुक्तद्वार वाणिज्यका राग आज अधिक अलापा जा रहा है, रक्षित वाणिज्य नीतिके ही कारण अपनी आधुनिक आर्थिक उन्नति कर सके हैं। यदि मर्कन्टाइल समयमें नेविगेशन एक्ट न पास होता तो इंग्लिस्तानकी आर्थिक उन्नति आज इतनी अधिक कभी नहीं होती। लिस्टके कथनानुसार तीसरी अवस्था वह है जब देशकी औद्योगिक उन्नति पूरी हो चुकती है। इस अवस्थामें मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिकी ही आव-

[1] Educational stage

श्यकता होती है कारण कि एक बार जब कोई देश उन्नतिके शिखरपर पहुँच जाता है तब उसका पतन न हो जाय इसलिए उसे रक्षाकी अन्तर आवश्यकता होती है। लिस्टका कथन है कि आर्थिक उन्नतिमें हमें केवल कम मूल्यपर ही तथा अन्तर्राष्ट्रीय लाभपर ही ध्यान नहीं देना चाहिए। यदि अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम उचित है तो राष्ट्रीयता भी तो कोई चीज़ है। लिस्टके कथनानुसार जब तक तुम अपनी राष्ट्रीय उन्नति नहीं कर लोगे तुम्हारी अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति हो ही नहीं सकती। सम्भव है कि तुमको अपने देशकी उत्पन्न की हुई चीज़ोंपर अधिक मूल्य देना पड़ता हो, किन्तु इससे तुम्हारे देशकी उत्पादक शक्ति तो अवश्य बढ़ती है। पुनश्च जब दूसरे देश रक्षण नीतिका अनुसरण कर रहे हों तो केवल एक ही देश मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिका अनुसरण कर उस नीतिसे होनेवाले सब लाभोंको कैसे उठा सकता है? लिस्टका कथन इतना सारगर्भित है कि अमरीकन अर्थशास्त्रज्ञ करीन भी इसका प्रतिपादन किया। केरीका मत है कि श्रम विभागके लाभोंकी अपेक्षा अपने देशको सब आर्थिक बातोंमें स्वतन्त्र रखना विशेष लाभदायक है। सब यूरोपवाले केवल इंगलिस्तानको छोड़ इसी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। वे दूसरेके यहाँसे कच्चा माल मँगाकर अपने यहाँसे तय्यार माल भेजना अधिक पसन्द करते हैं। युद्धके पश्चात् इंगलिस्तानमें भी अब मुक्तद्वार वाणिज्यका उतना मान नहीं है। लन्दनके चेम्बर आफ कामर्सने प्रस्ताव पास किया है कि अब इंगलिस्तानके लिए भी आवश्यक है कि वह विदेशीय स्पर्धासे राष्ट्रीय उद्योग धन्धोंकी रक्षा करे तथा साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंको एक सूत्रमें बाँधनेके लिए केवल साम्राज्यान्तर्गत मुक्तद्वार वाणिज्य नीति का ही अनुसरण करे।

इस विषयपर पूर्णरूपसे विचार करलेनेके उपरान्त कि रक्षित तथा मुक्तद्वार वाणिज्यका क्या अर्थ है अब यह देखना है कि भारतीय उद्योग धन्धोंकी उन्नति करनेके लिए हमें किस नीतिका अनुसरण करना चाहिए। भारतवर्ष अब औद्योगिक उन्नति करनेके लिए अग्रसर हुआ है। इसकी उन्नतिके लिए इस प्रश्नका उचित उत्तर अत्यन्त आवश्यक है। महाराय रानाडे, गोखले, रमेशचन्द्रदत्त तथा जोशी प्रभृति अर्थशास्त्रज्ञोंने भारतमें रक्षण नीतिको ही लाभदायक बताया है। इनकी युक्ति इस प्रकार है—ये कहते हैं कि रक्षण नीतिसे जो सबसे बड़ी हानि हो सकती है वह यह है कि अयोग्य और अवनतिशील उद्योग धन्धे भी रक्षणनीतिके अनुसार खड़े किये जा सकते हैं। किन्तु इससे आर्थिक लाभ समाजको नहीं होता कारण कि समाजको अधिक मूल्यके रूपमें इसका भार उठाना पड़ता है। तथापि भारतकी आधुनिक स्थिति ऐसी है कि यहाँ रक्षण नीति ही विशेष लाभकारी है। जब भारतके कलाकौशलकी उन्नति दशामें थे, उस समय इंगलिस्तानवाले रक्षितनीतिके पोषक थे। भारतको इससे हानि हुई और भारतीय उद्योग धन्धोंका नाश हो गया। इस समय यदि इंगलिस्तानवाले भी मुक्त वाणिज्य नीतिको ही मानते तो भी भारतकी औद्योगिक स्थिति आजकलकी स्थितिसे बढ़ी अच्छी होती। किन्तु जब भारतको अपने पड़ते हुए उद्योग धन्धोंके लिए रक्षण नीतिकी आवश्यकता हुई तब इंगलिस्तान मुक्तद्वार नीतिका समर्थक हो गया। इस

तरह भारतको इंग्लिस्तानके दोनों ही नीतिके अवलंबनसे औद्योगिक हानि उठाना पड़ा। आधुनिक स्थिति तो उसकी अत्यन्त शोचनीय हो गई है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके जन्म के पूर्व भारतीय केवल कृषिपर ही अपने जीवनके लिए निर्भर नहीं रहते थे। कृषिके साथ साथ दूसरे उद्योग धंधे भी करते रहते थे, जिससे यदि कभी दुष्काल भी पड़ जाता था तो वे केवल अपने उद्योग धंधोंकी आमदनी ही से अपनी गुज़र करलेते थे किन्तु जब इंग्लिस्तानवालोंने यहां के मालपर १ से लेकर ८०० सेकड़ा तक अपने देशमें आयात और निर्यात कर लगाए और अपने यहांका मशीनसे बना सस्ता माल भारतमें बिना महसूल भरने लगे तब विलायती मालसे तय्यार देशी मालमें स्पर्धा होने लगी। और अनुचित आयात और निर्यात कर के कारण भारतके मालकी मांग विदेशमें तो कम हो ही गई थी, सस्ती मशीनसे बनी हुई चीजोंके सामने स्वदेशमें भी कम होने लगी और विवश हो उद्योग धंधे वालोंको अपना पैतृक रोज़गार छोड़ कर अपने जीवनके लिए कृषिपर ही निर्भर होना पड़ा। एक समय उन्नतिके शिखरपर चढ़ा हुआ हमारा कपड़ेका रोजगार सदैवके लिए नष्ट हो गया। और अब हमारी स्थिति यह है कि केवल विदेशमें हम कच्चा माल भेजते हैं और वहांसे केवल तय्यार माल ही अपने उपयोगके लिए मंगाते हैं। अब हमारे जीवन निर्वाहका एक मात्र आधार कृषि रह गया है। इसमें भी सिंचाई आदिका पूर्ण प्रबंध न होनेके कारण किसी न किसी स्थानमें प्रति वर्ष दुष्काल पड़ ही जाता है। इससे रक्षा पानेका उपाय उद्योग धंधे जो हमारे हाथमें पहिले थे अब नहीं हैं। इसलिए बहुसंख्यामें भूखसे मरना ही अब हमारे हिस्सेमें पड़ा है। केवल कृषिपर ही निर्भर होनेके कारण हमारी दरिद्रता भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। हमारे कारीगर जिनकी कार्य कुशलताकी भूरि भूरि प्रशंसा एक समय सम्पूर्ण संसार करता था आज विवश हो केवल कुलियोंकी संख्या बढ़ा भारत माताका मुख नीचा कर रहे हैं। हमारे उद्योग धंधोंके नाश होनेके ही कारण हमारे देशके मध्यमश्रेणीके लोगोंकी स्थिति और खराब होती जा रही है और यदि यही दशा उनकी बनी रही तो निश्चय हमारे देशका नाश हो जावेगा। सबसे मुख्य कारण हमारी औद्योगिक स्थितिको सुधारनेका यह है कि हम केवल कृषि द्वारा ही अपनी बढ़ती जनसंख्याका पोषण नहीं कर सकते। भूमि हमारे पास परिमित है और बड़े जोरोंसे हमारी जनसंख्या बढ़ रही है। यदि हम पर्याप्तरूपसे औद्योगिक उन्नति न कर लेंगे तो हमारे बहुतसे भाई इसी तरह पेटकी ज्वालासे ही प्राण देते रहेंगे। भारतीय अर्थशास्त्रज्ञोंका कथन है कि देशको विनाशसे बचानेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने उद्योग धंधोंकी उन्नति करें और हमारे उद्योग धंधोंकी उन्नति तब ही संभव है जब हम इन उठते हुए धंधोंको यूरोपके पूर्णरूपसे बढ़े हुए धंधोंकी स्पर्धासे बचावें। इस कार्यमें रक्षण नीति की आवश्यकता इसलिए प्रतीत होती है कि विदेशी अनुचित स्पर्धाके ही कारण इनका नाश हुआ और जब तक दोनों देशोंकी औद्योगिक स्थिति एक समान न हो जावे तब तक स्पर्धासे केवल हमको ही हानि उठानी पड़ेगी। उपरोक्त कारणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय अनुचित स्पर्धासे बचानेके लिए रक्षणनीतिकी आवश्यकता है।

मुक्तद्वार वाणिज्य तथा रक्षित व्यापार नीति

महात्मा गोखलेने रक्षित वाणिज्य नीतिका समर्थन निम्नलिखित कारणोंसे किया है।

पहिला—मुक्तद्वार वाणिज्यका तात्पर्य यह है कि किसी भी उद्योग धंधेको उन्नतिके लिए मार्ग न बताकर उसको *अपनी प्रकृतिके अनुसार बिना किसी बाधाके बढ़ने देना। जिस समय समस्त संसार अपने आर्थिक संगठनमें तन मन धनसे लगा हुआ है और चारों ओर यही प्रयत्न किया जा रहा है* कि सब स्थानोंमें आर्थिक स्वतंत्रता आजावे ऐसे समयमें हमारा इस प्रकार अपने उद्योग धंधोंके लिए उदासीन होना देशके लिए विशेष हानिकर होगा।

दूसरा—हम लोग जर्मनी या अमरीकाकी तरह अपने यहांके हर एक उद्योग धंधेको रक्षणनीतिका सहारा न देंगे किन्तु उन्हींको इसमें सहायता मिलेगी जिनकी उन्नतिकी पूर्ण सम्भावना है तथा सब साधन उपस्थित हैं।

तीसरा—विदेशी मालपर कर लगानेका केवल यही भय नहीं है कि यह नया कर केवल विदेशी वालोंपर ही पड़े जिससे वे हमारे यहांसे उतना माल न ले सकें जितना कि इस करके पूर्व लेते थे, किन्तु यह बिलकुल सम्भव है कि यह नया कर विदेशीय [illegible] पर न पड़ कर स्वदेशीय खरीददारोंकेही मत्थे पड़, इस दशामें इससे बाहर आनेवाले व्यापारमें भी हानि न होगी जैसा कि कई व्यक्तियोंका कथन है। इसके प्रतिकूल कई अर्थशास्त्रज्ञ भारतवासियोंको मुक्तद्वार वाणिज्य नीतिका ही समर्थन करनेकी सलाह देते हैं। इनमें एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ वाचा भी हैं किन्तु ये स्वयं स्वीकार करते हैं कि कई उद्योग [illegible] रक्षण नीतिकी आवश्यकता है। हाँ प्रत्येक स्थानमें इसी नीतिका अनुसरण व हानिकारक [illegible] बताते हैं। उपरोक्त कथनसे मुक्तद्वार वाणिज्यके पोषक होते हुए भी ये भारतीय रक्षण नीति समर्थक अर्थशास्त्रज्ञोंकी बहुतसी बातें मान लेते हैं। इसलिए इनके [illegible] करनेकी आवश्यकता नहीं है। भारतीय जनताको मुक्तद्वार वाणिज्यका [illegible] [illegible] मुक्तद्वार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिए भारतमें इसीके समर्थकोंकी [illegible] [illegible] [illegible] मुक्तद्वार [illegible] नीतिके ही पक्षपाती होना स्वीकार करते हैं। किन्तु [illegible] तथा इनके कथनका सार नीतिसम्बन्धी विचारोंपर ही [illegible] प्रकारकी स्वतंत्र आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

बनी हुई चीज़ोंपर कर लगाया जावे या नहीं। लीस्मिथका कथन है कि भारतमें कपासके कारखाने मैगत कालमें नहीं कर जा सकते। बहुत कालमें वे अपना काम करते हैं जब इतने स्वर्णके कालमें इन्होंने उन्नति नहीं की तो रक्षण कालमें तो ये कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए इनपर भी कर भारतीयोंको नहीं लगाना चाहिए। चमड़ेके सामानके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। चमड़ेके कारखानोंकी यहाँ पर्याप्त उन्नति आजतक इसलिए नहीं हुई कि लोग नये वैज्ञानिक तरीकोंको उपयोगमें न लाकर अपना पुराना ढर्रा चलाये जारहे हैं, इसीलिए इनके लिए भी रक्षणनीतिकी आवश्यकता नहीं है। लीस्मिथ साहब कहते हैं कि उनके कारखाने वाले तथा कागज बनाने वालोंकी भी यही दशा है। इनकी भी अवनतिका कारण इनकी प्राचीन-प्रथा-प्रियता है। इसलिए रक्षण-नीति इनके लिए भी हित-कर नहीं है। तात्पर्य यह है कि किसी तरहसे विदेशसे आने वाले सब तैय्यार मालपर विचार करते हुए, तथा स्वदेशमें विदेश जानेवाले कच्चेमालका विवरण कर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतको रक्षित वाणिज्य नीतिकी आवश्यकता नहीं है।

आयात और निर्यात कर लगानेके सम्बन्धमें लीस्मिथ साहबने जितने नियम बनाये हैं अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे सब उचित हैं। किन्तु उन्होंने लिस्टके कथनपर बिलकुल ध्यान नहीं दिया कि प्रत्येक राष्ट्रको केवल सस्ता माल विदेशसे लाने हीमें अपना कल्याण नहीं समझना चाहिए। बल्कि कष्ट उठाकर भी अपने देशको और देशोंमें किसी भी बातपर निर्भर नहीं करना, यह उनका परम कर्तव्य है। इस युद्ध कालमें यह स्पष्ट हो गया कि जो दूसरे राष्ट्रोंपर अपनी आवश्यकता पूर्तिके लिए निर्भर रहा उसे अनन्त कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं।

भारतकी बेकारीके विषयमें उनका कहना यथार्थ है कि यहाँ बेकारी का प्रश्न अभी उपस्थित नहीं है किन्तु उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि बेकारी यहाँ न होनेपर भी यहाँ की औसत मजदूरकी दशा विदेशीय मजदूरोंसे विशेष खराब है और यदि हमारे यहाँ हर स्थानमें नये नये उद्योग धन्धोंका आविर्भाव हुआ तो इन लोगोंकी आर्थिक दशा अवश्य सुधरेगी इसके अतिरिक्त भारतमें केवल जनसंख्याही नहीं बढ़ रही है बल्कि भारतके अधिक कृषक, वर्षमें ६ महीना दूसरा काम कर सकते हैं और दुष्कालमें तो इनकी जीवन-रक्षाके लिए इन्हें कार्य अवश्य ही देना चाहिए। इस कारण यदि हमारे यहाँ उद्योग धन्धोंकी उन्नति हुई तो हमारे देशवासी मजदूरोंको निस्सन्देह बहुत लाभ होगा। भारतमें आयात और निर्यात कर न लगानेका मुख्यकारण जो लीस्मिथ साहब पेश करते हैं वह भारतवासियोंकी अवनतिशीलता है इसका समर्थन वे रानाडेके कथन द्वारा करते हैं जिसमें उन्होंने भारतवासियों के विषयमें कहा है कि ये लोग आलसी तथा निरुत्साही होते हैं और इस कारण अपनी आर्थिक उन्नति पर्याप्त रीतिसे नहीं कर सकते। किन्तु लीस्मिथ साहब भूल जाते हैं कि रानाडे ने भारतीय जनताके विषयमें जो कुछ लिखा है वह १९वीं सदीकी बात है। आजकल विद्या-प्रचारके साथ साथ संसारकी गति पर विचार करनेके कारण भारतमें एक नई-जागृति हो गई

बढ़ जाय, ताकि उनकी कीमतमें वही पदार्थ भारत देशमें तय्यार हो सके, यदि आयात और निर्यात कर इतना नहीं लगाया गया जिसमें उस चीज़की कीमत काफ़ी बढ़ जाय, तो व्यापारकी रक्षाके लिए हो ही नहीं सकता। इस कारणसे यदि किसी ऐसे व्यापारको इसके लिए आयात कर लगाकर उसका मूल्य बढ़ा दिया जावे, जिसकी वास्तविक उन्नतिकी कोई सम्भावना न हो तो बढ़े हुए मूल्यके रूपमें थोड़ेसे व्यक्तिविशेषके लाभके लिए यह कर सभीपर पड़ता है। उनका कहना है कि इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर भारतीयोंको आयातकर लगाना चाहिए।

इनका यह कहना है कि रक्षित व्यापार नीतिसे एक ओर लाभ होता है यानी लोगोंको अधिक काम मिलता है जिससे बेकारी घटती जाती है। किन्तु भारतवर्षमें तो इस लाभमें अभी कोई प्रयोजन नहीं है कारण कि यहाँ तो बेकारीका अभी नाम नहीं है बल्कि उलटा रुई कारखानेवालोंको मजदूरही नहीं मिलते, इसलिए भारतवासी जो रक्षित वाणिज्य नीति चाहते हैं केवल उन्नतिशील उद्योग धन्धोंके शैशवकालके ही लिए चाहते हैं। इसपर लीरिमथ साहब कहते हैं कि यह बहुत कम सम्भव होता है कि एक बार जो कर लग जावे वह भविष्यमें फिर हटा दिया जावे। कारण कि उन्नतिशील उद्योग धन्धोंके साथ साथ बहुतसे ऐसे काम भी चल पड़ते हैं जिनका बिना रक्षणनीतिके चलना असम्भव होजाता है।

इसलिए आयात और निर्यात कर हटानेके विरुद्ध ये लोग अपना बड़ा दबाव डालते हैं। तथा सरकारकी आमदनीका ज़रिया जाता है इसलिए कभी कभी तो स्वयं सरकार ही कर हटानेमें आगा पीछा करती है। उनका कहना है कि भारतमें रक्षण नीतिद्वारा स्पर्धाको दूर कर देनेसे भारतके उद्योग धंधे और ढील पड़ जावेंगे और उनकी वास्तविक उन्नति न होकर समाजपर बोझा मात्र बढ़ेगा। उनकी सम्मति है कि भारतके लोग सुस्त है इसीलिए जर्मनी या अमरीकाकी तुलना इनसे करना ठीक नहीं है कारण कि जिस तरह अमरीकन या जर्मन अपनी औद्योगिक उन्नति कर सकते है भारतनिवासी नहीं कर सकते। उनका कथन है कि भारतमें जो औद्योगिक कमी है वह भारतीयोंके ही आलस्यके कारण है। उनकी सम्मतिके अनुसार भारतवासी नई प्रथाओंका प्रचार अपने उद्योगमें नहीं करते और सदैव पुराने लकीरके फ़क़ीर बने रहते है, वे स्वयं कुछ न कर सदैव स ...

उन्नति पर्याप्त रीतिसे नहीं हुई है। ...

तो बिना रक्षण नीतिके ही ये अपनी उन्नति कर सकते हैं।

सरसरी तौरसे भारतीय रक्षणनीतिकी आवश्यकता बताकर विदेशसे आ[ने]वाली सामग्रियोंपर पृथक् पृथक् विचार कर ये महाशय इस देशके लिए इस नीतिको बताते है। सबसे पहिले उन्होंने कोयला, कच्चा कपास, कागज़ बनानेके लिए लकड़ी तथा लोहेकी मशीन जो बाहरसे आती है उनपर अपनी सम्मति प्रकाशित की है। ... देशके व्यापारोन्नतिके लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये रक्षित वाणिज्य नीति सिद्धान्तानुसार इनपर किसी तरहका कर नहीं लगाना चाहिए। अब रहा प्रश्न कि ...

मुक्तद्वार वाणिज्य तथा अनियन्त्रित व्यापार नीति

...है। [illegible] कि विदेशी [illegible] और [illegible] देवें [illegible] न हो। [illegible] न लगानेकी जो युक्ति उन्होंने दी है [illegible] है। [illegible] और [illegible] है। भारतीय [illegible] वस्तुओं हीकी आवश्यकता [illegible] है [illegible] यदि विदेशी [illegible] के [illegible] और जो [illegible] कारखाने इनके [illegible] है [illegible] दिए [illegible] है। [illegible] कि [illegible] बहुतसे कारखाने [illegible] सकें। इनका आविर्भाव तभी हो सकता है जब विदेशी [illegible] करें। [illegible]-के कथन पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि [illegible] प्रयत्न कि सब भारतवासी मुक्त-द्वार वाणिज्यके समर्थक हो जाय बिलकुल निष्काम [illegible] नहीं है। [illegible] तो उनकी दलील ऐसी नहीं है जिससे भारतीय [illegible] नीतिक [illegible] सब युक्तियोंका खण्डन हो सके इसके विपरीत यदि उन्हींके दलीलोंपर विचार किया जाय तो [illegible] नहीं टिक सकती। दूसरे भारतवासी अपनी आर्थिक [illegible] अनुभव करते हैं और अपनी दशा का तथा उस दशामें पहुंचनेके कारणोंका उन्हें पूर्ण रूपसे अनुभव हो गया है। अर्थशास्त्रके सूखे सिद्धान्त उनको भुला नहीं सकते और वास्तवमें दूसरे सब देशोंकी तरह अपनी व्यापारोन्नति के लिए उन्हें संरक्षणनीतिकी बड़ी आवश्यकता है। आश्चर्य तो यह है कि बहुतसे हिन्दुस्थानी भी इनके वाग्जालमें आ इनका समर्थन करनेको तय्यार रहते हैं। श्रीस्मिथ साहबका भारतको मुक्तद्वार वाणिज्यका पोषक बनानेका यथार्थ कारण उन्हींके शब्दोंमें स्पष्ट हो जाता है। उनका कहना है कि भारतमें संरक्षणनीतिके होजानेसे अंगरेजी व्यापारको बड़ा भारी धक्का लगेगा, कारण कि आयात और निर्यात करका हम उसी देशमें सामना करना होगा जो हमारा सबसे भारी और केवल एक ही स्वतन्त्र ग्राहक है*। स्वार्थ वश जो उपदेश देवे, उसपर कितना अमल करना चाहिए यह सब जानते हैं। भारतको अपनी उन्नति किन तरीकोंसे करनी चाहिए इस पर फिर विचार किया जावेगा।

छेदीलाल

---

* The British trade will suffer staggering blow for we shall be confronted by a protection tariff in the only great free market which we now enjoy.

है और चारों ओरसे उत्साहके चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। टाटाके लोहेका कारखाना तथा सोनादलाका हाइड्रो इलेक्ट्रिक वर्क इसी नये उत्साहका परिणाम है यद्यपि सरकार इन लोग व्यापारियोंको उत्साहित नहीं करती तथापि गत ८ माहमें भारतवर्षमें जितनी कम्पनियाँ खुली हैं उनपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतवासी पूर्ण रूपसे उत्साहसे काम ले रहे हैं। बैंक जहाजी कम्पनी जिनकी ओर हिंदुस्तानी ध्यान तक नहीं देते थे उनके लिए भी कम्पनियाँ खोली गई हैं। यदि जापान प्रभृति देशमें जैसा उत्साह सरकार देती है उसी तरह यहाँके कारखानोंको भी उत्साह दिया जावे तो नहीं मालूम ये लोग क्या कर दें।

मोरिसन साहबका कथन है कि भारतवासी अपने कारखानोंमें नये नये वैज्ञानिक तरीकोंका प्रयोग नहीं करते, इसलिए वे अपनी पर्याप्त रीतिसे तरक्की नहीं कर सकते। इस यदि अनुचित नहीं तो अतिशयोक्तिपूर्ण तो अवश्य है। इस कथनमें बहुत कुछ सच्चाई है किन्तु यदि विचारपूर्ण दृष्टिसे देखा जावे तो भारतवासियोंका इसमें भी कुछ दोष नहीं है। उन्नति कारखानोंकी उसी समय होती है जब वहाँकी बनी हुई चीज़ोंकी विशेष माँग हो। एक तो सरकार भी उनके प्रति उदासीनता प्रकट करती है और रेलवे कम्पनियाँ विदेशी व्यापारियोंको विशेष सुविधा देती हैं। दूसरे विदेशसे आये हुए मालसे वे स्पर्धा नहीं कर सकते इसलिए उन्हें थोड़े ही में संतोष कर चुप रहना पड़ता है। यह कहा जावे कि कार्य अपनी उन्नति कर विदेशी मालपर क्यों विजय नहीं पाते, इसका उत्तर केवल इतना ही है कि सौ वर्षसे बराबर काम करनेवाले कारखानोंके साथ दस या पन्द्रह वर्षका चलता हुआ कारखाना कभी किसी बातमें बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि दोनोंकी अवस्था समान है, इसीको समान करनेके लिए विदेशी मालपर आयात और निर्यातकर लगानेकी आवश्यकता है। पुनश्च, हमें यूरोप और अमरीकाकी सब बातें पूर्ण रूपसे नकल नहीं करनी चाहिए। यूरोपियन प्रथासे यूरोपमें कितना असंतोष फैला हुआ है और बड़े बड़े कल कारखानोंके कारण वहाँके समाजमें कितनी बुराइयाँ घुसगई हैं यह सबको मालूम है। यूरोप वाले स्वयं अपनी सुधारकी फिक्रमें हैं फिर हम भारतवासी क्यों आँख मूँद कर इनकी प्रथाओंको स्वीकार कर लेवें। हम उन्हींका अनुकरण करेंगे जिससे हमारे सामाजिक संगठनमें धक्का न पहुँचे। पश्चिम की सब बातोंको स्वीकार कर हमें असंतोषका शिकार नहीं बनना है इसलिए हमारी पश्चिमीय तरीकोंके स्वीकार न करनेके कारण यह नहीं कहा जासकता कि हम उन्नतिशील नहीं हैं और हमारे लिए रक्षण नीतिकी आवश्यकता नहीं है हममें जो कुछ कमी अभी है वह विदेशीय अनुचित स्पर्धाकेही कारण है इसी अनुचित स्पर्धाको हटा देनेसे हम आसानीसे अपनी उन्नति कर सकेंगे।

भारतमें विदेशसे आनेवाले प्रत्येक सामानपर मोरिसनने जो विचार किया है उसकी विवेचना की जायेगी। उनका कहना कि कोयला मशीन आदि पर कर लगाना नहीं चाहिए। हमारे भारतमें कोयले तथा लोहेके कारखाने बहुत हैं और यहाँ भी लोहेका सामान अच्छी तरहसे अच्छा बनाया जा सकता है जैसे टाटाके कारखाना साकचीमें प्रत्यक्ष है।

मुक्तद्वार वाणिज्य तथा संरक्षित व्यापार नीति

[illegible] है। [illegible]
[illegible]
[illegible] नहीं। [illegible]
न लगानेकी जो युक्ति [illegible] है [illegible] है। [illegible]
[illegible] और [illegible] है।
[illegible] और [illegible] वस्तुएं ही [illegible] है लेकिन यदि विदेशी [illegible]
[illegible] उस देशमें [illegible] और
जो कुछ [illegible] तथा [illegible]
[illegible] इनके विरुद्ध [illegible] कि [illegible]
[illegible] है। इस [illegible] कि [illegible] बहुतसे कारखाने [illegible]
सकते। इनका प्रादुर्भाव तभी हो सकता है जब विदेशी [illegible] से हम इनकी रक्षा करें। [illegible] के कथन पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि [illegible] कि यदि भारतवर्ष ही मुक्तद्वार वाणिज्यके समर्थक हो जावें [illegible] अच्छा नहीं है [illegible] इनकी दलील ऐसी नहीं है जिनको भारतीय [illegible] नीतिक [illegible] खण्डन हो और इसके विपरीत यदि उन्हींके [illegible] विचार किया जाय तो ये [illegible] सकती। दूसरे भारतवासी अपनी आर्थिक हीनताका [illegible] अनुभव करते हैं और अपनी दशा [illegible]। [illegible] दशामें पहुंचनेके कारणोंका [illegible] पूर्ण रूपसे अनुभव हो गया है। अर्थशास्त्रके मुक्त सिद्धान्त उनको भुला नहीं सकते और [illegible] उस दशाकी तरह अपनी व्यापारोन्नति के लिए उन्हें स्वाधीनताकी बड़ी आवश्यकता है। आश्चर्य तो यह है कि बहुतसे हिन्दुस्थानी भी इनके वाक्जालमें आ इनका समर्थन करनेको तय्यार रहते हैं। [illegible] साहबका भारतको मुक्तद्वार वाणिज्यका पोषक बनानेका यथार्थ कारण उन्हींके शब्दोंमें स्पष्ट हो जाता है। उनका कहना है कि भारतमें स्वाधीनताके [illegible] व्यापारको बड़ा भारी धक्का लगेगा, कारण कि आयात और निर्यात करके हम उन्हीं देशोंसे [illegible] करना होगा जो हमारा सबसे भारी और केवल एक ही स्वतन्त्र ग्राहक है। स्वार्थ वश जो उपदेश देवें, उनपर कितना अमल करना चाहिए यह सब जानते हैं। भारतको अपनी उन्नति किन तरीकोंसे करनी चाहिए इस पर फिर विचार किया जायगा।

छेदीलाल

जाता है। इनके उत्साहको बढ़ानेके लिए हमें इन पर भी कर लगाना चाहिए। लेकिन विचारपूर्वक और धीरे धीरे, ताकि किसी उन्नति शील धंधेको धक्का न लगे और बाहरसे माल मँगानेमें अड़चन न हो। कपास तथा ऊनी सामान, चमड़े मादिरा सामान, इनपर कर न लगानेकी जो युक्ति उन्होंने दी है थोथी है। जितना विदेशीय कपड़ा बाहरसे आता है लगभग अधिक धनवान लोगोंहीके उपयोगमें महीन और सुन्दर होनेके कारण आता है। भारतीय मील बहुतकर मजदूरों ही की आवश्यकता पूरी करती हैं इसलिए यदि विदेशी कपास के मालपर कर लगाया जावे तो कपासके महीन सामान इस देशमें भी बनने लगेंगे और जो कुछ भार पड़ेगा धनवानोंपर ही पड़ेगा न कि गरीबों पर। रहे ऊन चमड़े तथा कागजके कारखाने इनके विषयमें इतना ही कहना बस है कि इस तरहके जितने कारखाने हैं वे देशके लिए थोड़े हैं। इस देशमें ऐसे प्राकृतिक साधन उपस्थित हैं कि ऐसे बहुतसे कारखाने चल सकेंगे। इनका आविर्भाव तभी हो सकता है जब विदेशी स्पर्धासे हम इनकी रक्षा करें। लीस्मिथके कथन पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि लीस्मिथसाहबका प्रयत्न कि सब भारतवासी मुक्तद्वार वाणिज्यके समर्थक हो जावें बिलकुल निष्काम आवेग नहीं है। एक तो उनकी दलील ऐसी नहीं हैं जिनसे भारतीय संरक्षक नीतिके समर्थकोंकी सब युक्तियोंका खण्डन हो सके इसके विपरीत यदि उन्हींकी दलीलोंपर विचार किया जावे तो वे नहीं टिक सकतीं। दूसरे, भारतवासी अपनी आर्थिक हीनताको पूर्णरूपसे अनुभव कर रहे हैं और अपनी दशा का तथा इस दशामें पहुँचनेके कारणोंका उन्हें पूर्ण रूपसे अनुभव हो गया है। अर्थशास्त्रके सूखे सिद्धान्त उनको भुला नहीं सकते और संसारके दूसरे सब देशोंकी तरह अपनी व्यापारोन्नतिके लिए उन्हें रक्षणनीतिकी बड़ी आवश्यकता है। आश्चर्य तो यह है कि बहुतसे हिन्दुस्थानी भी इनके वाक्जालमें आ इनका समर्थन करनेको तय्यार रहते हैं। लीस्मिथ साहबका भारतको मुक्तद्वार वाणिज्यका पोषक बनानेका यथार्थ कारण उन्हींके शब्दोंमें स्पष्ट हो जाता है। उनका कहना है कि भारतमें रक्षणनीतिके होजानेसे अंगरेजी व्यापारको बड़ा भारी धक्का लगेगा, कारण कि आयात और निर्यात करका हमें उसी देशसे सामना करना होगा जो हमारा सबसे भारी और केवल एक ही स्वतन्त्र ग्राहक है। स्वार्थ वश जो उपदेश देवे, उसपर कितना ध्यान रखना चाहिए यह सब जानते हैं। भारतको अपनी उन्नति किन तरीकोंसे करनी चाहिए इस पर फिर विचार किया जावेगा।

छेदीलाल

[illegible] तथा [illegible] उपरिलिखित वाक्यों [illegible] राजाको भूमियोंका जानने [illegible] छठी भाग राज्यकरको भाँति देना पड़ता है।' [illegible] ध्यान [illegible] कि इन वाक्योंसे यह स्पष्ट झलकता है कि राजाका प्रजाकी सम्पूर्ण भूमिपर [illegible] जो वैधानिक [illegible] भूमि होती थी उसपर खेती करनेके लिए छठी [illegible] राज्यकरके तौरपर देना पड़ता था।

प्रजाका भूमिपर स्वत्व था' इसी कारणसे भूमिकी मालगुजारी राजाओंने [illegible] [illegible]तिमें लिखा है कि—

प्रजापत्येन मानेन भूमिभाग हरेन्नृप.।
सदा कुर्याच्च स्वामर्षी मनुमानेन नान्यथा॥
[illegible] यस्तु हीयते सप्रजो नृप ॥

अर्थात् प्रजापति महाराजने जो भूमिभाग राजाके लिए नियत किया है उसीके [illegible] राजाको अपना भाग लेना चाहिए। जब बहुत विपत्ति पड़े तब मनु महाराजके अनु[illegible] [illegible]मित भाग ग्रहण करे। जो राजा भूमिसे अधिक मालगुजारी ग्रहण करते हैं वे प्रजाको [illegible] करते ही हैं परन्तु उसके साथ साथ आप स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी भारतसरकार अपनी इच्छा तथा जरूरतके अनुसार [illegible] मालगुजारी बढ़ाती जाती है। दुर्भिक्ष पड़ते हैं और करोड़ों लोग भूखों मरते हैं परन्तु [illegible] [illegible] समयसे अब मालगुजारी दुगनी ली जा रही है।

भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर भारत-सरकारका स्वत्व कहाँतक न्याययुक्त है



ह प्रश्न प्रायः चित्तमें उठता है कि भारतीय भूमि, जंगल, खान आदिपर भारत-सरकारका स्वत्व किस न्यायसे है ? क्योंकि इन प्राकृतिक संपत्तियोंको भारत-सरकारने नहीं बनाया है। भारत-सरकार आंग्लजनताकी प्रतिनिधि है और उसीके प्रति उत्तरदायी है। इस हालतमें प्रतिनिधिके रूपमें भारत-सरकारका इंग्लिस्तानकी भूमि खान नदी जंगल आदिपर स्वत्व होना उचित है। परन्तु भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर ऐसा स्वत्व न्यायसंगत कभी भी नहीं कहा जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्वत्व संबंधी यह झगड़ा उठा ही क्यों ? भारत-सरकारने भारतीय प्राकृतिक संपत्तिपर स्वत्व क्यों स्थापित किया ? यदि वह स्वत्व स्थापित न करती तो उसको क्या नुकसान था ? इन प्रश्नोंका उत्तर कुछ भी कठिन नहीं है। यह आगे चलकर दिखाया जायगा कि भारत-सरकारकी शिक्षाके सदृश ही आयव्ययकी नीति विचित्र है। उसने एक ओर तो भारतको कृषिप्रधान देश बनाया है और भारतके व्यापार व्यवसायका एकाधिकार इंग्लिस्तानके लोगोंके हाथोंमें दे दिया है और दूसरी ओर यूरोपीय व्यावसायिक देशोंके भयंकर तौरपर बढ़े हुए खर्चों को भारतपर फेंक दिया है। भारतको सैनिकोंका देश सरकारने बनाया है। और, जो सेना स्थलसेना तथा वायुसेनाकी वृद्धिमें सरकारको दिन-रात चिन्ता है। यूरोपीय लोगोंको भारतके उच्चसे उच्च पद सरकार देती है और उनकी तनख्वाहें भी बहुत ही अधिक रखती है। इन सब भयंकर खर्चों का परिणाम यह हुआ है कि शिक्षा आदि उत्तम बातोंपर कुछ भी खर्चा नहीं किया जाता है और दिवाला निकलनेके भयसे भारतकी प्राकृतिक संपत्तिको दिनपर दिन बड़ी तेजीसे हथियाया जाता है।

भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर स्वत्व स्थापित करनेमें भारत-सरकारको बड़ा भारी लाभ है। एक मात्र स्वत्व स्थापित करनेसे ही भारतकी प्राकृतिक संपत्ति उसके लिए कामधेनुका रूप धारण कर लेती है। वह उस संपत्तिसे जितना अधिक धन चाहे निकाल सकता है। उसको बजटके रूपमें एकबार भी पास करानेकी जरूरत नहीं पड़ती है क्योंकि बजटमें कर बढ़ाने या घटानेके मामलेको ही पेश किया जाता है। प्राकृतिक संपत्ति तो सरकारकी ही है। उसमें यदि सरकारकी आय बढ़ती है तो वह सरकारके ही प्रबन्धकी उत्तमता समझी जायगी। उसको बजटमें विशेष स्थान देकर क्यों पास कराया जाय ? इस कूटनीतिका ... यह हुआ है कि सरकारने भारतकी प्राकृतिक संपत्तिको बुरी तरहसे निचोड़ा है। भारतके ... के साथ अनुचित व उचित तरीकोंसे ... इसी प्राकृतिक संपत्तिपर ... है। इसमें ... की नीतियोंको उत्पादक शक्ति घट गयी है। किसान मालगुजारी देनेमें पूरी तरहसे ... । जंगलोंके नियमोंके कठोर होनेसे और जंगलोंका ... भारत सरकारके ...

होनेसे लकड़ी बहुत महँगी हो गयी है। मालगुजारीकी अधिकतासे किसानोंको अपना साराका सारा अनाज बेचना पड़ता है। इस अनाजको यूरोपीय देशोंके लोग खरीदते हैं। वे लोग समृद्ध हैं और अधिकसे अधिक दाम देकर यहाँका अनाज खरीदते हैं इससे भयंकर महँगी उत्पन्न हो गयी है। इस महँगीका दूर होना तबतक असम्भव है जबतक सरकार भारतकी प्राकृतिक संपत्तिसे अपना स्वत्व न हटावेगी। क्योंकि इस स्वत्वके हटते ही मालगुजारीका लेना रुक जायगा और भारतीय किसान समृद्ध हो जायँगे और उनके कर्ज चुकते हो जायँगे। वे लोग विदेशियोंके हाथमें अपना अनाज उस हद तक न बेचेंगे जिस हदतक अब बेच रहे हैं। इसके साथही साथ भारत-सरकारको भारतीय अनाजका विदेशमें जाना रोक देना चाहिए।

यहाँपर भारतसरकार यह कह सकती है कि भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर राज्यका स्वत्व अनंतकालसे चला आया है। हम क्यों उस स्वत्वका परित्याग क्यों करें? इसका उत्तर यह है कि जो बात अनुचित है वह अनुचित ही है। कबसे कौन बात चली और कबसे नहीं चली? और क्योंकि पुराने जमानेमें एकबात चली आयी है अतः वह ठीक ही है, इस ढंगके विचार तो बेईमान स्वार्थी दम्भी चोर लुटेरोंके होते हैं। यदि भारतसरकार स्वराज्य देनेमें जातपाँतको भारतीय स्वराज्यका दिलसे बाधक मानती है तो फिर क्यों भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर अपने स्वत्वके लिए वंशागत तथा पुरागतके तत्वोंको सामने रखती है। प्राचीनकालमें क्या था? इससे भारतसरकारको क्या मतलब? प्रश्न तो यह है कि भारतसरकारका भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर स्वत्व किस न्यायसे है? क्या भारतसरकारने भारतकी प्राकृतिक संपत्तिको बनाया है? क्या भारतसरकारने भारतभूमियोंकी दलदलोंको सुखाया है और जंगलोंको बढ़ाया है? यदि यह बातें भारतसरकारने नहीं की हैं और इससे विपरीत मालगुजारी ज्यादा बढ़ाकर भारतीय भूमियोंकी उत्पादक शक्ति तथा भारतीय किसानोंकी शक्तिको घटाया है और दोनोंको नीरस निःशक्त तथा दरिद्र कर दिया है तो इस हालतमें भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर उसका स्वत्व किस प्रकार माना जा सकता है?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारतके प्राचीन राजाओंने कभी भी भारतकी प्राकृतिक संपत्तिको अपनी संपत्ति नहीं बनाया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बंगाल ही है। बंगाली जमींदारोंका अनंतिक अपनी भूमियोंपर स्वत्व पूर्ववत् बना है। यद्यपि सरकारने सेसेस आदि अनेक राज्य-करोंसे जमींदारोंकी प्राकृतिक संपत्तिपर उनके स्वत्वको निरर्थक तथा लाभरहित बना दिया है परन्तु इससे कौन इंकार कर सकता है कि जमींदारोंकी प्राकृतिक संपत्तिपर उनका प्रजाका स्वत्व है।

भारतके प्राचीन राजा लोग भारतीय भूमिका अपने आपको मालिक न समझते थे। प्रजाका ही भारतीय भूमियों जंगलों तथा खानोंपर स्वत्व है। यही विचार मीमांसाकारोंने इस लोगोंके सम्मुख रक्खा है। महाराजा जैमिनीने मीमांसादर्शनमें लिखा है कि "न भूमिः सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्" मीमांसा अध्याय ६ पा० ७ अधि० १-२

देया न वा महाभूमिः स्वाराज्येन इदानु नाम्।
पाक्सर्वस्व राज्यराजस्व इदं भूर्दीयेत न सा॥ ३॥

" मथुराके आगे रेगिस्तान है। रेगिस्तान (राजपूताना) के लोग बौद्ध हैं। इसके समीप ही वह देश है जो कि मध्यप्रदेश कहलाता है। उस देशका जलवायु गरम और एकसा रहता है। न तो वहाँ पाला पड़ता है न बर्फ। वहाँके लोग बहुत अच्छी अवस्थामें हैं। उनको राज्यकर नहीं देना पड़ता और न राज्यकी ओरसे उनको कोई रोक टोक है। केवल जो लोग राज्यकी भूमिको जोतते हैं उन्हींको भूमिकी उपजका कुछ भाग देना पड़ता है। वह जहाँ चाहें जा सकते हैं और जहाँ चाहें रह सकते हैं।"

इसी प्रकार सवत् ६८७ में आये चीनी यात्री ह्वेनसांगका कथन है कि—

" देशकी शासन-प्रणाली उपकारी सिद्धान्तोंपर होनेके कारण सरल है। राज्य चार मुख्य मुख्य भागोंमें बटा है। एक भाग राज्य-प्रबंध चलाने तथा यज्ञादिके लिए। दूसरा भाग मंत्री और राज्यकर्मचारियोंकी आर्थिक सहायताके लिए। तीसरा भाग बड़े बड़े योग्य मनुष्योंके पुरस्कारके लिए और चौथा भाग धर्मकी वृद्धिके लिए होता है। इस प्रकारसे लोगोंके राज्यकर हलके हैं और उनसे शारीरिक सेवा हलकी ली जाती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी सांसारिक सम्पत्तिको शान्तिके साथ रखता है और सब लोग अपने निर्वाहके लिए भूमि जोतते बोते हैं। जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका छठाँ भाग राज्यकरकी भाँति देना पड़ता है। . . . नदीके मार्ग तथा सड़क बहुत थोड़ी चुंगी देने पर खुले हैं।"

ह्वेनसांग तथा फाहियानके उपरिलिखित वाक्योंमें "जो लोग राजाकी भूमियोंको जोतते हैं उनको उपजका छठाँ भाग राज्यकरकी भाँति देना पड़ता है।" ये शब्द अत्यन्त ध्यान देने योग्य हैं। क्योंकि इन शब्दोंसे यह स्पष्ट झलकता है कि राजाका प्रजाकी संपूर्ण भूमिपर स्वत्व न था। उसकी जो वैयक्तिक सम्पत्ति स्वरूप भूमि होती थी उसपर खेती करनेके लिए छठाँ भाग किसानोंको राज्यकरके तौरपर देना पड़ता था।

'प्रजाका भूमिपर स्वत्व था' इसी कारणसे भूमिकी मालगुजारी राजालोग न बढ़ाते थे। शुक्रनीतिमें लिखा है कि—

प्राजापत्येन मानेन भूमिभाग हरेन्नृप ।
सदा कुर्याच्च स्वायत्तं मनुमानेन नान्यथा ॥
लोभात्संकर्षये यस्तु हीयते सप्रजो नृप ॥

अर्थात् प्रजापति महाराजने जो भूमिभाग राजाके लिए नियत किया है उसीके अनुसार राजाको अपना भाग लेना चाहिए। जब बहुत विपत्ति पड़े तब मनु महाराजके अनुसार भूमिका भाग ग्रहण करे। जो राजा भूमिसे अधिक मालगुजारी ग्रहण करते हैं वे प्रजाको तो नष्ट करते ही हैं परन्तु उसके साथ साथ आप स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी भारतसरकार अपनी इच्छा तथा जरूरतके अनुसार भूमिसे मालगुजारी बढ़ाती जाती है। दुर्भिक्ष पड़ते हैं और करोड़ों लोग भूखों मरते हैं परन्तु भारतसरकारको इसकी क्या चिन्ता। बंगालके सिवाय सब जगह मालगुजारी दुगनी भी बढ़ा रही है।

यदा सार्वभौमो राजा विश्वजिदादौ सर्वस्वं ददाति, तदा गोपथ राजमार्ग जला-
ाद्यान्विता महाभूमिस्तेन दातव्या। कुतः भूमेस्तदीयधनत्वात्। " राजा सर्व-
दृष्टे ब्राह्मणवर्जम् " इति स्मृतेः। इति प्राप्ते ब्रूमः। दुष्टशिष्टाशिष्टपरिपालनाभ्यां
स्यः ईशितृत्वं स्मृत्यभिप्रेतम् इति न राज्ञो भूमिर्धनम्। किन्तु तस्यां भूमौ स्वकर्म-
लं भुञ्जानानां सर्वेषां प्राणिनां साधारणं धनम्। यतोऽसाधारणस्य भूखण्डस्य
यद्यपि दाने महाभूमेर्दानं नास्ति।

अर्थात् जब राजा सार्वभौम विश्वजित् यज्ञमें सर्वस्व दान करता है तो क्या वह नहर,
तालाव, सड़क आदि समेत सम्पूर्ण भूमिका भी दान कर सकता है? क्योंकि स्मृतियोंमें कहा
है कि राजा ब्राह्मणोंको छोड़कर सबका स्वामी है। ऐसा पूर्वपक्ष होनेपर सिद्धान्तीका उत्तर
है कि राजाका स्वामित्व प्रबन्धके विषयमें है न कि भौमिक संपत्तिके विषयमें है।
इस प्रकार सिद्ध है कि 'न भूमिः राज्ञो धनम्' अर्थात् भूमि राजाकी संपत्ति नहीं है, वह
तो उन सब प्राणियोंकी सम्पत्ति है जो कि उसपर निवास करते हैं (अर्थात् प्रजाकी सम्पत्ति
है)। यही कारण है कि राजा अपनी संपत्ति स्वरूप भूमिके किसी एक टुकड़ेका दान कर
सकता है, परन्तु सम्पूर्ण भूमिका दान नहीं कर सकता है।

महाराज जैमिनी भारतीय संपत्तिपर प्रजाका ही स्वत्व समझते हैं और राजाका स्वत्व
नहीं, यह उपरिलिखित प्रमाणसे सर्वथा स्पष्ट है। हमारा प्रश्न है कि किस न्यायसे ईस्ट
इंडिया कम्पनीने बंगालको आंग्ल प्रजाके हाथोंमें बेचा और किस न्यायसे आंग्ल प्रजाने बंगाल
खरीदनेका रुपया बंगालसे वसूल किया? असली बात तो यह है कि धर्म अधर्म, पाप पुण्य
तो पुराने जमानेकी बातें हैं। सरकारको जो कुछ करना है वह करती है। न्याय तथा धर्म
तो भारतके प्राचीन राजाओं तथा स्मृतिकारोंके साथ ही चितामें जल गये। परन्तु इसमें संदेह
नहीं है कि प्राचीन स्मृतिकारों तथा सूत्रकारोंने भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर राज्यका स्वत्व
कभी भी न माना और अपने आपको अपने ही हाथोंसे बेचनेका विचार तो उनके स्वप्नमें
भी न आया था। वह बेचारे जब कभी सोचते थे तब यही सोचते थे कि—

" स्वभाग भृत्या दास्यत्वे प्रजानांच नृपः कृतः
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा।"

शुक्रनीति अ० १ पृष्ट १७

अर्थात् राजा, प्रजाका धन राज्यकरके तौरपर लेता है। अतः वह प्रजाका दास है।
वह तो स्वामीके पदपर तभीतक है जबतक कि वह प्रजाका पालन करता है। इसके सिवाय
किसी अन्य समयमें वह प्रजाका स्वामी नहीं हो सकता।

परन्तु आंग्ल राज्यने तो उस स्वामित्वको उस हदतक बढ़ाया कि भारतकी भूमि वन
जंगल आदि सभी भारतीय प्राकृतिक संपत्ति उसके पेटमें चले गये, पालन करना तो दूर रहा।
उसने उसको कामधेनु समझकर बुरी तरहसे निचोड़ना शुरू किया है। परन्तु भारतके प्राचीन
राजा ऐसा न करते थे। सन् ४१७ में फाहियानने अपनी यात्रा लिखते समय लिखा है कि—

भारतकी प्राकृतिक संपत्तिपर भारत-सरकारका स्वत्व कहाँतक न्याययुक्त है

" मथुराके आगे मध्यदेश है। मध्यदेश (मज्झदेश) के लोग सुखी हैं। अनेक प्रकार हो कर देश है जो कि मध्यदेश कहलाता है। इस देशका जलवायु गरम और एकसा रहता है। न तो वहाँ पाला पड़ता है न बर्फ। यहाँके लोग बहुत अच्छी अवस्थामें हैं। इनको गृहकर नहीं देना पड़ता और न राजकर्मचारियोंमें इनकी कोई रोक टोक है। केवल जो लोग राजकी भूमिको जोतते हैं उन्होंको भूमिकी उपजका कुछ अंश देना पड़ता है। वह जहाँ चाहें जा सकते हैं और जहाँ चाहें रह सकते हैं। "

इसी प्रकार सन् ६२० में आये चीनी यात्री ह्वेनसांगका कथन है कि—

" देशकी शासन-प्रणाली उदारतापूर्ण सिद्धान्तोंपर होनेके कारण सरल है। राज्य चार मुख्य मुख्य भागोंमें बटा है। एक भाग राज्य-प्रबन्ध चलाने तथा यज्ञादिके लिए। दूसरा भाग मंत्री और राज्यकर्मचारियोंकी आर्थिक सहायताके लिए। तीसरा भाग बड़े बड़े योग्य मनुष्योंके पुरस्कारके लिए और चौथा भाग धर्मकी वृद्धिके लिए होता है। इस प्रकारसे लोगोंके राज्यकर हलके हैं और उनसे शारीरिक सेवा हलकी ली जाती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी सांसारिक सम्पत्तिको शान्तिके साथ रखता है और सब लोग अपने निर्वाहके लिए भूमि जोतते बोते हैं। जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उनको उपजका छठाँ भाग राज्यकरकी भाँति देना पड़ता है। नदीके मार्ग तथा सड़क बहुत थोड़ी चुंगी देने पर खुले हैं। "

ह्वेनसांग तथा फाहियानके उपरिलिखित वाक्योंमें 'जो लोग राजाकी भूमियोंको जोतते हैं उनको उपजका छठाँ भाग राज्यकरकी भाँति देना पड़ता है।' ये शब्द अत्यन्त ध्यान देने योग्य हैं। क्योंकि इन शब्दोंसे यह स्पष्ट झलकता है कि राजाका प्रजाकी सम्पूर्ण भूमिपर स्वत्व न था। उसकी जो वैयक्तिक सम्पत्ति स्वरूप भूमि होती थी उसपर खेती करनेके लिए छठाँ भाग किसानोंको राज्यकरके तौरपर देना पड़ता था।

'प्रजाका भूमिपर स्वत्व था' इसी कारणसे भूमिकी मालगुजारी राजालोग न बढ़ाते थे। शुक्रनीतिमें लिखा है कि—

प्राजापत्येन मानेन भूमिभागं हरेन्नृपः।
सदा कुर्याच्च स्वापत्सु मनुमानेन नान्यथा॥
लोभादाधिक्यकर्षेण यस्तु हीयते सप्रजो नृपः॥

अर्थात् प्रजापति महाराजने जो भूमिभाग राजाके लिए नियत किया है उसीके अनुसार राजाको अपना भाग लेना चाहिए। जब बहुत विपत्ति पड़े तब मनु महाराजके अनुसार भूमिका भाग ग्रहण करे। जो राजा भूमिसे अधिक मालगुजारी ग्रहण करते हैं वे प्रजाको तो नष्ट करते ही हैं परन्तु उसके साथ साथ आप स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी भारतसरकार अपनी इच्छा तथा जरूरतके अनुसार भूमिसे मालगुजारी बढ़ाती जाती है। दुर्भिक्ष पड़ते हैं और करोड़ों लोग भूखों मरते हैं परन्तु भारतसरकारको इसकी क्या चिन्ता। अकबरके समयसे अब मालगुजारी दुगनी ली जा रही है।

जब कि भूमिकी उत्पादक शक्ति उस समयकी अपेक्षा आधी रह गयी है। बंगाल, मद्रास तथा बम्बईके प्रान्त इसी मालगुजारीकी वृद्धिके उत्थानसे बीयाबान हो गये। मध्यका समृद्ध प्रान्त इसी मालगुजारीकी वृद्धिसे सबसे अधिक दरिद्र प्रान्त हो गया। परन्तु सरकारको इससे क्या मतलब। उसको तो भारतमें इंगलैंडके पूँजीपतियों तथा पुतलीघर मालिकोंके स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंको पूरा करना है। इसी कूटनीतिका परिणाम यह है कि भारतके सम्पूर्ण व्यवसाय लुप्त हो गये और जो बचे हैं वह भी दिनपर दिन लुप्त हो रहे हैं।

प्राणनाथ



दासताका इतिहास



सी समय दासताकी कुत्सित प्रथाने भी संसारकी सभ्यताके इतिहासमें एक नवीन युगका आरम्भ किया था। यह समय मानवजातिकी आदिम अवस्था था, जब मनुष्य केवल पशुओंको ही नहीं, बल्कि मनुष्यको भी मारकर अपनी उदरपूर्ति करता था। परन्तु यह अवस्था बहुत कालतक न रह सकी। धीरे धीरे मनुष्यके शिकारके अतिरिक्त और व्यवसाय ढूंढ निकाले। अब उसे यह ज्ञान होने लगा कि मनुष्यको पकड़कर खा जानेकी अपेक्षा, उसकी रक्षा करके, उसके श्रममें लाभ उठाना चाहिए। बस यहींसे संसारके इतिहासमें दासताकी प्रथाका श्रीगणेश होता है।

संसारकी दशामें इस समय बड़ा उथल पथल हो रहा था। भिन्न भिन्न जातियाँ लड़भिड़ कर राज्य स्थापित करनेमें लगी हुई थीं। चारों ओर मार काटका बाजार गरम था। इन लड़ाइयोंमें जो लोग पकड़े जाते थे उन्हें विजयी जातिका दास बनकर रहना पड़ता था। इन लोगोंसे मेहनतका काम लिया जाता था। पर आगे चलकर इनका अच्छा खासा व्यापार होने लग गया। यह लोग पशुओंकी तरह एक दूसरेके हाथ बेचे जाने लगे। औद्योगिक दृष्टिसे पहिले इससे थोड़ा बहुत लाभ अवश्य हुआ, पर नैतिकदृष्टिसे इसका प्रभाव मानवजातिके लिए बड़ा हानिकारक हुआ। एक ओर जो दास बनाये जाते थे उनमें आत्माभिमानका ह्रास होनेके कारण वे किसी योग्य न रहते थे, दूसरी ओर जो लोग दास रखते थे, उनमें निष्ठुरताकी मात्रा बढ़ जाती थी, वे खुशामदपसन्द बन जाते थे, और सदा अत्याचारी और क्रूर रहते थे। दासियाँ रखनेसे आचरणपर भी बुरा प्रभाव पड़ता था। पर इन सब दोषोंके होते हुए भी, इस प्रथाका संसारमें सहस्रों वर्षतक बोलबाला रहा, इसका मुख्य कारण यह था कि आर्थिक दृष्टिसे यह प्रथा प्राचीन सामाजिक संगठनका एक मुख्य अंग था।

सिपाही होनेके कारण, उसमें स्वयं उद्योग करनेकी अभिलाषा जाती रहती है, और अन्तमें जाकर विलास-प्रियता बढ़ जाती है। यह गुलाम अपनी शारीरिक शक्ति और मानसिक योग्यताके ही कारण रक्खा जाता था। इसलिए उसके मालिककी निगाहमें न गिरनेकी आशा तभी हो सकती थी, जब वह बराबर उद्योग करता रहे, और अपनी बुद्धिको काममें लाता जाय।

मुसलमानी गुलामोंमें बड़े बड़े विद्वान लोग होगये हैं। सलजुक साम्राज्यमें गुलामोंने बड़ी भारी उन्नति की थी। मलिक शाहके गुलाम होना एक प्रतिष्ठा और गौरवका पद समझा जाता था। तेरहवीं शताब्दीमें मिश्र मामलुक सुल्तानोंके अधीन था। इन सुल्तानोंके बड़े बड़े सरदार गुलाम ही थे।

भारतवर्षमें मुसल्मानी बादशाहतका आरम्भ गुलामोंने ही किया था। दिल्लीके अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराजपर विजय पानेवाला मोहम्मदगोरी निःसन्तान था। इस बातपर जब कोई खेद प्रगट करता, तो वह उत्तर देता "क्या मेरे हजारों तुर्की गुलाम मेरी सन्तान नहीं हैं?" दिल्लीके सतम्भपर प्रथम गुलाम बादशाहका बनाया कुतुबमीनार अब भी वर्तमान है। ८० वर्ष तक गुलामोंने ही भारतवर्षपर राज्य किया है। इस वंशमें कई एक गुलाम बड़े योग्य शासक हो गये हैं। अल्तमशकी पुत्री रजिया सुल्तानाके बाद जब मुसल्मान साम्राज्य डावाँडोल हो रहा था, तब फिर इसका उद्धार एक गुलामके ही हाथसे हुआ। इसका नाम था बलबन। बलबनका जन्म तुर्किस्तानमें हुआ था। उसका कद छोटा और शरीर भद्दा था। जब वह गुलाम अल्तमशके सामने पेश किया गया, तो सुल्तानने लेनेसे इनकार कर दिया। इसपर बलबनने हाथ जोड़कर कहा "जहाँपनाह आपने किसकी खातिर इतने गुलामोंको खरीदा है।" अल्तमशने हँसते हुए उत्तर दिया "अपनी खातिर" बलबनने कहा "तो फिर मुझे खुदाकी खातिर लेलो।" सुल्तानने कहा "खैर ऐसा ही सही" और उसको भिश्तियोंमें भरती कर दिया। अन्तमें बलबनने २१ वर्ष तक बड़ी योग्यताके साथ भारतवर्षमें राज्य किया।

इस तरह मुसलमान-सामाजिक-संगठनमें दासोंको अपनी उन्नति करनेका पूर्ण अवसर प्राप्त था।

परंतु पाश्चात्य देशोंमें दासताकी कथा दूसरे ही प्रकारकी है। यूनान में आदि कालसे इसका प्रचार था। युद्धके कैदियोंको दास बनकर रहना पड़ता था कभी कभी यह लोग उच्चवंशके भी होते थे पर लड़ाईमें पकड़े जानेका यही दण्ड था। लड़ाईके सिवा और भी कई रीतियोंसे यूनान दास बनाये जाते थे। कुछ तो जन्मसे ही दास होते थे पर इनकी संख्या कम रहती थी। स्वतन्त्र नागरिकको अपनी सन्तान बेचनेका अधिकार था, इसलिए प्रायः धनकी आवश्यकता पड़नेपर वे उनको बेच डालते थे। कोई मनुष्य यदि किसीका ऋण नहीं चुका सकता था तो उसे भी अपने महाजनका दास बनकर रहना पड़ता था, ऋण चुक जानेपर उसकी मुक्ति हो जाती थी। बहुतसे लोग बच्चोंको चुराकर बेचा करते थे। इस समय यूनानके नगरोंमें बराबर युद्ध छिड़ा रहता था, और यूनानी लोग अपने ही देशवासियोंको

तरह तरह का रूप उत्पन्न करते थे। अन्य देशोंसे दासोंका व्यापार भी खूब चलता था। सीरिया, लिडिया, एशिया माइनर और थ्रेसके लोगोंके दास बिकने आते थे। एथेन्सके दासोंकी बड़ी मांग रहती थी, क्योंकि वह बड़े अच्छे कारीगर होते थे और बहुतेरी शिल्पकारी वे ही करते रहते थे, इनका मूल्य भी अधिक होता था। यूनानी दास बाहर बिकनेके लिए भी बहुत जाते थे, यह लोग बड़े कला कुशल और गानेमें चतुर होते थे। तत्कालीन राजनैतिक स्वाधीनताके योद्धा जन्मदाता एथेन्स नगर इस व्यापारका केन्द्र था।

यह दास या तो घरका काम करते थे या खेतों पर रहते थे। उन्हें मजदूरीकी स्वतंत्रता न थी, इनलोगोंसे जबरन काम लिया जाता था। बड़े बड़े ठेकेदारोंको यह दास मेहनत लिये जाते थे, और ऐसी दशामें वे असाधारण सम्पत्ति समझे जाते थे। इसी तरह सार्वजनिक अधीन भी बहुतसे दास रहते थे। कभी कभी योग्यता दिखलानेपर, यह लोग गुलाम भी अपनी कर लिये जाते थे, पर वहाँ भी प्राय दूसरोंकी अपेक्षा इन्हें कामही अधिक करना पड़ता था। एथेन्समें १२०० सीथियन धनुर्धारी पुलिसके कामके लिए नियुक्त थे।

यूनानमें इनके साथ व्यवहार ऐसा बुरा न था, जैसा कि रोम तथा अन्य पाश्चात्य देशोंमें था। कुछ पुश्तोंके पश्चात् दास कुटुम्बकी सेवामें ले लिया जाता था। विवाह करना, या निजकी सम्पत्ति एकत्रित करना नियम विरुद्ध था पर तब भी व्यवहारमें, इसका अधिक ध्यान न दिया जाता था, और वे प्रायः विवाह करते थे। मरनेपर कुटुम्बके समाधिस्थानमें ही वे गाड़े भी जाते थे। यदि कोई दास स्वामीका अधिक प्रीति भाजन होता, तो उसकी समाधि-पर कभी कभी एक छोटासा स्मारक भी बना दिया जाता था। परन्तु जो दास दूकानों या खेतों-पर काम करते थे, उनको प्रायः चाबुककी प्रमाण बेदना भी सहनी पड़ती थी। जब घरके दास पर स्वामी क्रुद्ध होता, तो उसे दुकान या खेतपर भेज देता था, जहाँ उसकी अच्छी खासी मरम्मत होजाती थी। स्वामी मनमाना अत्याचार अवश्य करता था, पर और किसी दूसरे को दासके मारने पीटनेका अधिकार न था। स्वामीके कठोर व्यवहारसे तंग आकर न्यायालय द्वारा दास स्वामीको उसे किसी दूसरेके हाथ फिरसे बेचनेके लिए, बाधित कर सकता था। परन्तु इनलोगोंको किसी प्रकारके राजनैतिक अधिकार प्राप्त न होते थे।

पाश्चात्य राजनीतिके आदिगुरु अरस्तूके विचारानुसार दासता एक स्वाभाविक और आवश्यक अवस्था थी, जिससे दास और स्वामी दोनोंको ही लाभ होता था। इनके साथ व्यवहारमें उसका सिद्धान्त था कि "न तो इन्हें अधिक दुख दो और न इनसे अधिक सम्बन्ध बढ़ाओ"। प्लेटो केवल यूनानियोंको दास बनानेका विरोधी था, पर विदेशियोंको इस अवस्थामें रखना आवश्यक समझता था। व्यक्तिगत व्यवहारमें वह उदारता का पक्षपाती था पर दास वर्गको वह घृणाकी दृष्टिसे देखता था। अन्य यूनानी विद्वानोंका भी ऐसा ही मत था, व्यवहारमें मानवी भावोंको तिलांजलि देकर कठोरताके वे पक्षपाती न थे, पर साथ ही साथ यह उनका विश्वास था कि समाज शरीरमें दासोंका अंग एक आवश्यक अंग है।

रोममें दासोंकी अवस्था इससे बहीं गिरी हुई थी। आदिकालमें तो कुछ समय तक

अच्छा व्यवहार रहा, पर उसके रोमको विस्तृत होनेका रोग लगा, दासोंकी संख्या बहुत बढ़ गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे पशुवत समझे जानेलगे। रोमकी विजय पताका दूर दूर के देशोंतक पहुँची थी, जहाँसे सहस्रोंकी संख्यामें दास रोम लाकर बेचे जाते थे। सीजरने गाल देशसे एकही बारमें ६३००० कैदियोंको लाकर बेचा था। दासोंकी अधिकता जनसंख्याकी दृष्टिसे अधिक लाभकारी नहीं है, इसलिए रोमको अफ्रीका, स्पेन, गाल, सीरिया, और एशिया-से बराबर व्यापार जारी रखना पड़ता था। इसके अतिरिक्त यहाँ भी यूनानकी तरह ऋण न देनेके अपराधमें दासताका दण्ड दिया जाता था। नागरिकोंको अपनी सन्तान बेचनेका अधिकार था।

दासोंसे दो प्रकारके काम लिये जाते थे, एक तो जनता सम्बन्धी, और दूसरे घरेलू। पहिली श्रेणीके दास जनताकी सम्पत्ति थे, और दूसरी श्रेणीके व्यक्ति या कुटुम्बकी सम्पत्ति माने जाते थे। घरेलू दास भी दो प्रकारके होते थे, एक तो खिदमतगार, नहलाने, सुलाने और सफाई रखनेके लिए, और दूसरे जिनसे दुकान या खेतों पर काम लिया जाता था। इनके सिवाय और बहुतसे काम भी इन लोगोंसे लिये जाते थे। जो सुन्दर होते थे, वे सजधजकर अपने स्वामीके साथ बाहर जाते थे, जिनकी स्मरण शक्ति अच्छी होती थी, वे सन्देशा लेजाने-का काम करते थे। इतनाही नहीं, पढ़ाना, लिखाना, चिकित्सा करना, हिसाब किताब रखना, इसतरहके सभी काम कभी कभी इन दासों ही द्वारा होते थे। बड़े बड़े अमीर लोग सैकड़ोंकी संख्यामें दास रखते थे। कहा जाता है कि क्लाडियसके समयमें दासोंकी संख्या २०६३२००० थी।

नियमानुसार स्वामीका दासपर पूर्ण अधिकार रहता था; जब रोममें पिताको अपने पुत्र पर ही इसतरहके अधिकार प्राप्त थे, तो फिर बेचारे दासोंका कहना ही क्या था। उसको किसी प्रकारकी सम्पत्ति रखनेका अधिकार न था, जो कुछ वह कमाता था, वह सब स्वामीका धन था। स्त्रीको वह रख सकता था, पर उससे विवाह करनेकी आशा न थी। सेनामें नौकरी करनेपर प्राणदण्ड दिया जाता था। दण्ड देनेके लिए प्रत्येक बड़े घरानेमें एक काल-कोठरी रहती थी। स्वामीके विरुद्ध न्यायालयोंमें इनकी सुनवाई न होती थी। इनके-लिए दण्डकी व्यवस्था भी बड़ी कठोर थी।

यह बात संभव थी कि कुछ लोग दासोंको बड़े प्रेमसे रखते थे। केटो बराबर इन्हीं लोगोंके साथ खाता पीता था, यहाँ तक कि दासोंके बच्चोंको अपनी निजकी स्त्रीके स्तनसे दूध पिलाता था, जिसमें उन्हें कुटुम्बसे प्रेम बना रहे। पर साधारणतः इनके साथ व्यवहार बड़ा कुत्सित और नीच होता था। स्वयं केटो भी आर्थिक लाभके लिए दासोंसे पशुओंकी भाँई बर्तता था।

विक्रमकी दूसरी शताब्दीके बाद रोमन दासोंकी दशा कुछ सुधरने लगी। सेनिका तथा कई एक तत्कालीन दार्शनिकोंने इस प्रथाको प्रकृति नियमके विरुद्ध बतलाया, जिसका फल यह हुआ कि उनके प्रति व्यवहारमें थोड़ा बहुत परिवर्तन किया गया। इस

समय रोम प्रजातन्त्र राष्ट्र न था, इसके शासनकी बागडोर प्रसिद्ध सम्राटोंके हाथ थी। रोमन साम्राज्यका विस्तार भी उचित सीमाको पहुँच चुका था, इसलिए इस समय सम्राटोंका ध्यान विजयकी अपेक्षा औद्योगिक उन्नतिकी ओर अधिक था, जिसके लिए यह आवश्यक था कि दास स्वामीकी क्रूरतासे बचाये जायँ, इसके सिवा दासवर्ग इस समय एक राजनैतिक भयका कारण होरहा था। पददलित होनेसे धूलि भी मस्तकपर चढ़नेका प्रयत्न करती है। रोमके अमीरोंके निरन्तर निष्ठुर व्यवहारसे तंग आजानेके कारण इन दासोंमें भी विद्रोहके भाव जागृत होरहे थे। इसलिए इन सम्राटोंने दास सम्बन्धी विषयोंमें कुछ फेरफार करना उचित समझा। ऋणके बदलेमें बच्चोंका देना बन्द कर दिया गया। सम्राट् हेड्रियनके समयमें प्राणदण्डका अधिकार स्वामियोंके हाथसे छीन लिया गया और कालकोठरियोंको बन्द करनेकी आज्ञा प्रचारित कर दी गई। सम्राट नीरोके समयसे दासोंकी सुनवाई न्यायालयोंमें होने लग गई। प्रसिद्ध सम्राट् मार्कस आरीलियसने दासोंकी दशा सुधारनेकेलिए बहुतसे नियम बनाये। कुछ धन संचित करके मुक्ति प्राप्त करनेमें भी थोड़ी बहुत सुविधा कर दी गई।

ईसाई मतके प्रचार होनेपर रोमनसाम्राज्यमें, दासोंके प्रति बहुत कुछ भाव बदल गये। इस मतके बड़े बड़े प्रचारक दासोंके साथ अच्छा व्यवहार करनेका सदा उपदेश किया करते थे। ईसाई धर्मसंघने दासोंकी रक्षाके लिए बहुत प्रयत्न किया। परन्तु यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिए कि धर्मसंघ भी दासताकी प्रथाको उठानेका पक्षपाती न था। वह भी इसको समाज शरीरका एक आवश्यक अंग समझता था "ईश्वरकी दृष्टिमें सब मनुष्य समान हैं" धर्मसंघ इस सिद्धान्त का अनुयायी अवश्य था, पर "राजनैतिक नियमोंकी दृष्टिमें भी सब समान हैं" इसको माननेके लिए धर्मसंघ भी कदापि तयार न था। तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि धर्मसंघके उपदेशोंसे साधारण मनुष्योंके हृदयमें दासोंके प्रति दयाके पवित्र भावोंका सचार होने लग गया।"

कुछ काल पश्चात् इस प्रथाने एक दूसराही रूप धारण किया। रोमकी विजय-पिपासा बुझनेपर दासोंके व्यापारमें कमी आगई, क्योंकि यह दास प्राय. युद्धके कैदी ही होते थे। बाहरसे दासोंके आनेमें कमी होनेके कारण, दासोंका भाव बहुत महँगा होगया, जिसका फल यह हुआ कि प्रत्येक स्वतन्त्र मनुष्यको दासोंपर मनमाना अत्याचार करनेकी सुविधा न रही। प्रत्येक कुटुम्बको अपने पुराने दासोंको जैसे तैसे अपनी सेवामें बनाये रखनेका ध्यान रहने लगा। इसका एक दूसरा फल यह भी हुआ कि स्वतन्त्र मनुष्य भी थोड़ी बहुत मजदूरी करने लग गये। इधर रोम साम्राज्यका संगठन भी एक दूसरे ढगका होचला। इस समय इसकी प्रवृत्ति व्यवसायोंको परम्परागत बनानेकी ओर अधिक होरही थी। कृषिका प्रचार होनेसे दासोंको प्रायः खेतों पर काम करना पड़ता था। इसलिए अब इनके मत्थे यही काम पड़ गया। इसके सिवा जिनलोगोंको लगान देकर भूमि लेनी पड़ती थी, उनका पद समाजमें बहुत नीचा गिना जाता था और उनको भूमिस्वामीका दासही बनकर रहना पड़ता था। इस तरह एक नया दासवर्गही उत्पन्न होगया। इनको नागरिकोंके अधिकार प्राप्त न थे। जमीन्दार के खेतोंमें इन्हें बराबर बेगार करनी पड़ती थी। यह लोग सर्वथा जमीन्दारके अधीन थे, विवाह आमदाद तथा सामाजिक व्यवहारोंमें इनको कुछ भी स्वाधीनता न थी। यह भाव भूमिके और धनी अलग, किये भी जाते थे। मध्यकालीन यूरोपमें, इस तरहकी दासता, जिसको हम किसानी दासता कह सकते हैं, सर्वत्र प्रचलित थी। ([illegible])

गंगाशंकर मिश्र

भारतमें दुर्भिक्ष

३—आबपाशी



रत कृषिप्रधान देश है और यहाँपर अकाल, अनावृष्टिके ही कारण अधिक पड़ते हैं। यदि कोई ऐसा उपाय कर दिया जाय जिससे खेतीके लिए पानी यथेष्ट मिलजाय तो अकालकी आशंका बहुत कुछ मिट सकती है। इसलिए भारतको आबपाशीके लिए नहर, तालाब, कुएँ आदिकी बड़ी ही आवश्यकता है। सं० १९५५ में जो फेमीन कमीशन बैठा था उसके एक मेम्बरने रिपोर्टमें लिखा था कि "भारतमें आवश्यक रेलवे यथेष्ट बन गयी हैं और फेमीन फण्डकी सहायताके बिना ही और भी बननेकी सम्भावना है, पर वर्तमान दशामें अकालको रोकनेके लिए नहर आदि आबपाशीके साधन बढ़ाने चाहिए।"

उसी कमीशनकी रिपोर्टसे पता चलता है कि सं० १९५३-५४ तक सब प्रकारकी नहरोंसे भारतकी कुल १७३,१६,५०२ एकड़ भूमि सींची जाती थी। इनसे सरकारको आय भी अच्छी होती है। कमीशनने अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि ऐसे कार्योंकी उपयोगिता आयसे नहीं देखनी चाहिए, पर अनावृष्टिके समय खेतीको इनसे जो लाभ पहुँचता है उसमें इनकी उपयोगिता प्रकट होती है। बात भी यह ठीक है। आर्थिक विचारोंसे बढ़कर खेतीकी रक्षा करके भारत जैसे देशमें लोगोंके प्राणोंकी रक्षा करना सरकारका प्रथम कर्तव्य है। इस समय भारतमें जो बड़ाभारी दुर्भिक्ष लोगोंको सता रहा है उससे सरकारको पूर्ण विश्वास हो गया होगा कि देशके प्रत्येक भागमें अनावृष्टिके समय फसलके बचाने और पशु तथा मनुष्योंके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए पानी जमा करनेकी कितनी आवश्यकता है।

नहरोंके अतिरिक्त तालाब तथा कुओंकी संख्या बढ़ानी चाहिए। देशमें इनके लिए बहुत कुछ गुंजाइश है और इनकी नितान्त आवश्यकता है। प्राचीन समयमें बांध बनवानेकी प्रथा प्रचलित थी, जिनसे बहुत दूर दूरतक पानी इकट्ठा किया जाता था। जब उस समयके अशिक्षित लोग ऐसे ऐसे विशाल बांध बना सकते थे तो हमारी सरकार एञ्जिनियरिंग विभागकी सहायतासे इनसे बड़ी उत्तम और बड़े तालाब, बांध आदि बना सकती है। जहाँ नहरोंका बनाना असम्भव है वहाँ तालाब, बांध, कुएँ आदिकी बड़ी ही आवश्यकता है।

कमीशनके बादसे कुछ और भी नहरें बनी हैं पर देशकी आवश्यकता अभी पूरी

पर इन कठिनाइयोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर सरकारने 'चाही' जमीनोंके ऊपर अनिवार्य कर लगा दिया है। पहिले ऐसा था कि जो नहरसे पानी लेना चाहता था, उसे कर देना पड़ता था, पर अब सबको कर देना पड़ता है। अपनी खेतोंकी रक्षाके लिए किसान सदा पानी लेकर कर देते थे पर तो भी वह कर अनिवार्य कर दिया गया। मि. आर. सी. दत्तने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि मद्रासमें इस करको अनिवार्य करनेका कोई कारण नहीं था, क्योंकि भारतवर्षकी नहरोंमें लगायी रकमके ऊपर मद्रासमें ही सरकारको ६.३५ फी सैकड़ा सूद मिलजाता था। इसलिए इस करका लगाना कुछ विशेष लाभदायक नहीं हुआ। मि. दत्तका कहना है कि लोगोंके चित्तपर यह बात बैठ गयी है कि उनको थोड़ी सी आशापर यह आबपाशीका भी कर लग गया। मद्रास सरकारने इस प्रकारका कानून पास कर भयंकर भूल की है।

४—भूमिकर अर्थात् लगान

भारतमें दुर्भिक्षोंका चौथा और मुख्य कारण भूमिकरका अधिक होना है। मि. रमेशचन्द्र दत्त सी. एस. आई. ने लिखा है कि इस असहनीय लगानके कारण किसान दिनपर दिन गरीब होते जाते हैं और उन्होंने यह भी बतलाया है कि स० १८३४, १८६४ और १८६६ के अकालोंमें उन प्रान्तोंके किसानोंको अधिक कष्ट भोगना पड़ा था जहाँपर भूमिकरकी बड़ी ऊँची दर थी। मि. दत्तके कथनका उल्लेख करते हुए कामन्स सभामें स०१८६७ के चैत्र मासमें मि. सेम्यूएल स्मिथने कहा था कि 'भारतमें अकालोंको कम करनेका उपाय लगानका कम करना तथा आबपाशीके साधनोंको बढ़ाना है।' हिन्दूराजत्वकालमें भी भूमिकर बहुत कम लिया जाता था, अर्थात् पैदावारके बारहवें भागसे छठे भाग तक भूमिकर लेनेका नियम था। हिन्दुओंके धर्मशास्त्रोंमें इसका उल्लेख मिलता है। महात्मा गौतमने अपने धर्मसूत्रमें लिखा है कि पैदावारका आठवाँ अथवा छठाँ भाग किसानको भूमिकरमें देना चाहिए। वशिष्ठजीने भी लिखा है कि "जो राजा पवित्र धर्मशास्त्रानुसार शासन करे तो वह अपनी प्रजाके धनका छठाँ भाग लेसकता है।" मनु महाराज भी लिखते हैं कि "पशु और सोनेकी वृद्धिका ५०वाँ और फसलकी पैदावारका आठवाँ, छठाँ अथवा बारहवाँ भाग राजा ले सकता है। धर्मशास्त्रमें जो उल्लेख है उसीके अनुसार लगान लिया भी जाता था जिससे देश समृद्धिशाली था, और कृषकलोग खुशहाल थे जैसा कि विदेशियोंके उपर्युक्त वर्णनसे पता चलता है। मुसलमान बादशाहोंके समयमें भी भूमिका लगान बहुत कम लिया जाता था अर्थात् पैदावारका दसवाँ भाग लेनेकी प्रथा थी, पर इतना वसूल नहीं हो पाता था। जो वसूल हो जाता था वही बहुत समझा जाता था।"

आजकल भारतमें जो लगान सरकार लेती है उसका ब्योरा इस प्रकार है—

बंगाल जहाँ परमेनेंट सेटलमेंट है		...	५ से ६	फी सैकड़े
उत्तर भारत	...	...	८ से १०	,,
बम्बईमें	...	...	२० से ३३	,,
मद्रासमें	...	...	१६ से ३१	,,
मध्यप्रदेशमें रैटका	...	...	६०	,,

फिर वर्ष भर तक फाँकेकसी करना पड़ता है। इसी कारण पहले जो अकाल स्थानीय हुआ करते थे अब भारतव्यापी होते हैं। सरकारी रिपोर्टके अनुसार १९वीं शताब्दीके गत २५ वर्षोंमें १८ अकाल पड़े जिनमें २ करोड़ ६० लाख मनुष्य अन्न बिना मर गये। सर चार्ल्स एडवर्ड रसल लिखते हैं "स० १८६० के मद्रासके अकालमें झुण्डके झुण्ड मनुष्य सड़कोंपर मर गये। गाँवोंकी सड़कपर एक बड़े भीषण रणक्षेत्रका नज़ारा दिखाता था। मतूरमेंकी ५ लाख की आबादीमेंसे २ लाख मनुष्य भूखसे तड़प तड़पकर मरगये। स० १८६४ में उत्तरीय भारतके अकालमें १० लाख जानें गयीं। स० १८२२ में उड़ीसेकी तिहाई आबादी प्रायः १० लाख मनुष्योंने हा अन्न! हा अन्न! कहते हुए प्राण त्याग दिये। स० १९२६ के उत्तरीय भारतके अकालमें मृत्यु संख्या १२ लाख थी। स० १८३८ के मद्रासके अकालमें ५० लाखसे अधिक मनुष्य मरे। स० १९३५ के उत्तरीय भारतके अकालमें मृत्यु संख्या १२॥ लाख थी। सं० १९५४ के अकालमें ३० लाख मनुष्य केवल सरकारी सहायता पाकर जिन्दा रह सके।" मिस्टर डिगवीने लिखा है—"स० १८५० से स० १९५७ तक अर्थात् १०७ वर्षमें सारे संसारकी लड़ाइयोंमें ५० लाख मनुष्य मरे, पर स० १९४८ से स० १९५७ तकमें भारतके अकालसे १ करोड़ ६० लाख मनुष्य मरे।"

इस भयंकर दरिद्रताका मुख्य कारण सरकारी लगानका दबाव है, जिसके कारण लोगोंके पास पूंजी जमा नहीं हो सकती कि जिससे दुर्भिक्षके समय लोग अपना गुजारा कर सकें। इंग्लिस्तानमें स० १८६६ में स्पेनिश सम्मेलनके समय भूमिकर बढ़ायी गयी थी। इसके पहले वहाँ रेंटके ऊपर ५ से २० फी सैकड़े भूमिकर लिया जाता था। भारतमें स० १८६० में भूमिकर स्थायी किया गया और उस समयके लगानपर ६० फी सैकड़ेके हिसाबसे यह कर लगाया गया था। इस समय दूसरे कर मिलाकर यह ३५ फी सैकड़े है। दूसरे प्रान्तोंमें जहाँपर स्थायी बन्दोबस्त नहीं है सरकार पैदावारकी तिहाई भाग ले लेती है और इसके अतिरिक्त, सड़क, रेल तथा अन्य सेस-का भार भी किसानोंके ऊपर ही लादा जाता है। यह बात मि. दत्तने ग्लासगोवाले अपने व्याख्यानमें कही थी। उत्तर भारतमें लगानपर ६० फी सैकड़े भूमिकर है। युक्तप्रदेश और अवधमें स० १९६६ के बन्दोबस्तमें भूमिकर १८ फी सैकड़ेसे ५० फी सैकड़े कर दी गयी। मद्रासके कई जिलोंमें तो लगानपर १०० फी सैकड़े भूमिकर है। स० १९६५ के बन्दोबस्तमें मध्यप्रदेशमें ५० से ६० फी सदी भूमिकर कर दिया गया था और सेस आदि मिलाकर यह ७० फी सैकड़े तक पहुंचता है। मालाबारके बालोग एवं गुजरातके आरम्भमें ही भूमिकर ५५, ८८, ८६ और १०५ फी सैकड़े तक बढ़ गया है। इन प्रान्तोंमें बराबर अकाल बना ही रहता है।

सर चार्ल्स एडवर्ड रसल लिखते हैं कि "अकालोंका निकटस्थ कारण पानीका न बरसना है किन्तु उसका प्रारम्भिक और मूलकारण लगान और करकी अधिकता है।"

स० १९६० में बम्बई कौन्सिलके सदस्य माननीय मि जी रोजर्सने उपस्वराष्ट्रके भारत-सचिवको लिखा था—"स० १९१६ से १९४६ तक अर्थात् ३० वर्षोंमें ही लगान न

---

* १९००-०१।

और सन् १८८० के कमीशनके बाद कहीं कहीं १०० फ़ी सैकड़े तक हो गया है। ये सब बातें १८८० की हैं, तबसे इस परिस्थितिमें और भी वृद्धि हुई है।

लार्ड कैनिंग महोदयने अपने शासनकालमें भारतके अनेक भागमें स्थायी बन्दोबस्त करनेकी सिफारिश की थी। सर जान लारेंसने इसका समर्थन किया था। उस समयके दो भारत-सचिव सर चार्ल्स वुड और सर स्टाफोर्ड नार्थकोट महोदयोंने इस प्रस्तावको मान लिया था। सरकारको इसमें हानि अवश्य थी पर वे इस हानिको सहनेके लिए तैयार थे। मि. दत्त लिखते हैं कि इसके २० वर्ष बाद अर्थात् १८८० में यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया।

इस सम्बन्धमें मि. रमेशचन्द्र दत्तने लिखा है कि इसमें कुछ संदेह नहीं कि अकाल अनावृष्टिके कारण ही होते हैं पर यह भी निश्चय है कि भूमिकर कम करनेसे, आबपाशीके साधन बढ़ानेसे तथा भारतमें व्यर्थका व्यय रोकनेसे दुर्भिक्षमें जो कष्ट होता है वह बहुत कम हो जायगा। उन्होंने इस सम्बन्धमें अपने विचार लार्ड कर्जन महोदयको खुली चिट्ठियोंमें लिखकर भेजे भी थे और इस सम्बन्धमें उन्होंने यह बात प्रमाणित भी करदी थी कि भूमिकर घटानेसे भारतकी कृषिकी दशा बहुत कुछ सुधर जा सकती है। पर खेदकी बात है कि उसपर सरकारने विशेष ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार भारतकी प्रजाके कष्टोंकी उपेक्षा की। यही नहीं आबपाशीकी बड़ी बड़ी स्कीमें जो लाभदायक समझी जाती थी रद् करदी गयी, क्योंकि व्यय अधिक होता था। यह सब धन मजदूरोंको मजदूरी देनेमें व्यय होता था। अधिक खर्च होजानेसे उसका बोझा किसानोंपर पड़ता था कि वे पानी अधिक दाम देकर लें। इस देशको नहर आदिकी आबपाशीके साधनोंकी कितनी आवश्यकता है यह सभी लोग जानते हैं, इसलिए इनके अभावसे भारतको भयंकर हानि पहुँच रही है। इस प्रकार नहर आदि उतनी नहीं हैं जितनी देशको आवश्यकता है। अतएव खाद्य पदार्थोंका कम होना भी स्वाभाविक है। यदि नहरोंकी संख्या बढ़ायी जा सकती तो खाद्य पदार्थ भी अधिक पैदा होते।

इधर तो यह हाल है उधर भारतमें दरिद्रता बढ़ रही है। मि. एच. एम. हौंडिन लिखते हैं कि "ब्रिटिश राज्यकालमें भारतमें शान्ति अवश्य है और किसानोंको भी लुटेरोंके दलका कुछ भय नहीं रहा और आसपासके राजाओंके आक्रमणका भी भय जाता रहा, पर इसके साथ साथ भारतकी दरिद्रता बढ़ती जा रही है।" मि. हौंडिनका कहना है कि बावन तोले पाव रत्ती सच है। 'मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवाकी' की कहावत चरितार्थ हो रही है। लोगोंको हमेशा ही आधे पेट खानेको मिलता है और अकालके समय तो बिचारे तड़प तड़प कर मर जाते हैं। लोगोंके पास इतना धन भी जमा नहीं है कि अकालके समय एक दो मास भी आनन्दसे काट सकें। इसका मुख्य कारण यही है कि भूमिकर बराबर बढ़ाया जा रहा है। बिचारे किसान इसके भारसे दबे जाते हैं। अपनी दशा सुधारनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। वर्षा, जाड़ा और गर्मी सहकर आधे पेट खाकर बिचारे खेतोंपर काम करते हैं पर ज्योंही नाज कटकर घर आया कि लगान चुकाने, महाजनको देनेके लिए बेचना पड़ता है। बस

फिर वर्ष भर तक पेटकमजी करना पड़ता है। इसी कारण पहले जो अकाल स्थानीय हुआ करते थे वे अब भारतव्यापी होते हैं। सरकारी रिपोर्टके अनुसार १९वीं शताब्दीके गत २५ वर्षोंमें १८ अकाल पड़े जिनमें २ करोड़ ६० लाख मनुष्य अन्न बिना मर गये। सर चार्ल्स [illegible] लिखते हैं "सं० १८६० के मद्रासके अकालमें झुण्डके झुण्ड मनुष्य सड़कोंपर मर गये। गावोंकी सड़कपर एक बड़े भीषण श्मशानका नज़ारा दिखलाता था। गञ्जाममें ६ लाख की आबादीमेंसे २ लाख मनुष्य भूखसे तड़प तड़पकर मर गये। सं० १८६४ में उत्तरीय भारतके अकालमें १० लाख जानें गयीं। सं० १८७३ में उड़ीसेकी तिहाई आबादी प्रायः १० लाख मनुष्योंने हा अन्न! हा अन्न! कहते हुए प्राण त्याग दिये। सं० १९२६ के उत्तरीय भारतके अकालमें मृत्यु संख्या १२ लाख थी। सं० १८३८ के मद्रासके अकालमें ५० लाखसे अधिक मनुष्य मरे। सं० १९३५ के उत्तरीय भारतके अकालमें मृत्यु संख्या १२॥ लाख थी। सं० १९५४ के अकालमें ३० लाख मनुष्य केवल सरकारी सहायता पाकर जिन्दा रह सके।" मिस्टर डिगबीने लिखा है—"सं०१८५० से सं०१९५७ तक अर्थात् १०७ वर्षमें सारे संसारकी लड़ाइयोंमें ५० लाख मनुष्य मरे, पर सं०१९४८ से सं०१९५० तकमें भारतके अकालसे १ करोड़ ६० लाख मनुष्य मरे।"

इस भयङ्कर दरिद्रताका मुख्य कारण सरकारी लगानका दबाव है, जिसके कारण लोगोंके पास पूंजी जमा नहीं हो सकती कि जिससे दुर्भिक्षके समय लोग अपना गुजारा कर सकें। इंगलिस्तानमें सं० १८६६ में रेपिनिंग एसेसमेन्टके समय भूमिकर घटायी गयी थी। इसके पहले यहाँ रेंटके ऊपर ५ से २० फी सैकड़े भूमिकर लिया जाता था। भारतमें सं० १८६० में भूमिकर स्थायी किया गया और उस समयके लगानपर ६० फी सैकड़ेके हिसाबसे यह कर लगाया गया था। इस समय दूसरे कर मिलाकर यह ३५ फी सैकड़े है। दूसरे प्रान्तोंमें जहाँपर स्थायी बंदोबस्त नहीं है सरकार पैदावारकी तिहाई भाग ले लेती है और इसके अतिरिक्त, सड़क, रेल तथा अन्य सेस*का भार भी किसानोंके ऊपर ही लादा जाता है। यह बात मि. दत्तने ग्लासगोवाले अपने व्याख्यानमें कही थी। उत्तर भारतमें लगानपर ६० फी सैकड़े भूमिकर है। युक्तप्रदेश और अवधमें सं०१९५५ के बन्दोबस्तमें भूमिकर ६६ फी सैकड़ेसे ५० फी सैकड़े कर दी गयी। मदरासके कई जिलोंमें तो लगानपर १०० फी सैकड़े भूमिकर है। सं०१९४५ के बंदोबस्तमें मध्यप्रदेशमें ५० से ६० फी सदी भूमिकर कर दिया गया था और सेस आदि मिलाकर यह ७० फी सैकड़े तक पहुँचता है। आजाबादके इलाकोंमें इस शताब्दीके आरम्भसे ही भूमिकर ५५, ८८, ८६ और १०५ फी सैकड़े तक बढ़ गया है। इन प्रान्तोंमें बराबर अकाल बना ही रहता है।

सर चार्ल्स एडवर्ड रसल लिखते हैं कि "अकालोंका निकटस्थ कारण पानीका न बरसना है किन्तु उसका आरम्भिक और मूलकारण लगान और करकी प्रणाली है।"

सं०१९५० में बम्बई कौन्सिलके सदस्य माननीय मि. जी. रोजर्सने उससमयके भारत-सचिवको लिखा था—"सं० १९३६ से १९४६ तक अर्थात् १० वर्षमें ही लगान न

* Cess=कर।

देनेके कारण ८,४०,७१३ किसानोंकी १६,६३,३६४ एकड़ भूमि जिसपर उनका मौरूसी हक था नीलाम हो गयी। इसके अतिरिक्त २६,६६,०८१) रुपयेकी उनकी अपनी ख़ास जायदाद बिक गयी। इसमेंसे ११,७४,१४३ एकड़ भूमिका कोई ख़रीदार ही खड़ा नहीं हुआ और वह भूमि सरकारकोही ख़रीदनी पड़ी। ११ वर्षमें ८,६०,००० रैयतोंको अपनी १६,००,००० एकड़ भूमि बेचडालनी पड़ी। उनके खेत और खलिहानही नीलाम नहीं हुए पर उनके हल बैल, बरतन, बिस्तर चारपाई तक बिक गयी और इसका अधिकाश धन 'इम्पीरियल एड्वेन्चर' में व्यय हुआ।"

मि० सी० जे० ओडानलने 'लार्ड कर्जनकी असफलता' नामक पुस्तकमें मि० आर. सी दत्तके "दी इण्डियन लैण्ड किश्चन" शीर्षक लेखका कुछ अंश उद्धृत करके लिखा है कि "गत वर्ष १६५७ में सरकारी माल न दे सकनेके कारण मदरासके ११,७४६ किसानोंकी भूमि छिन गयी, ६०,८६६ एकड़ भूमि बकाया मालमें बिक गयी। इसमेंसे आधी भूमि किसीने नहीं ख़रीदी और वह सरकारने नाम मात्रके मूल्यमें ख़रीद ली। ६० लाख एकड़ भूमि लगान अधिक होनेके कारण परती पड़ी रही।" मि. एस. एस. थार्बर्नने रेवेन्यू कमि-श्नरकी हैसियतसे गवाहीमें कहा था कि चार सर्कलोंके १२६ गाँवोंमें आधेसे अधिक किसान बिलकुल नष्ट प्राय हो गये, जिनकी उन्नतिकी कुछ भी आशा नहीं है।" इसीलिए ऐसे देहाती जिलोंसे जहाँ पूँजी कम है अधिक मालगुजारी लेनेकी नीतिकी लार्ड सालिसबरी महोदयने स० १६३२ में ही निन्दाकी थी और कहा था कि राष्ट्रीय व्ययका थोड़ासा भाग किसानोंको देना चाहिए।

इतने प्रमाणोंके रहते हुए भी सरकारका ध्यान इस ओर नहीं जाता और प्रत्येक बदोबस्तमें लगान कुछ न कुछ बढ़ा ही दिया जाता है। प्रजाको जो इससे कष्ट होता है वह असहनीय है। दिनपर दिन किसानोंकी दशा शोचनीय हो रही है। भारतके किसान पल्लेदर्जेके धैर्यशील होते हैं और वे जल्दी किसी बातकी शिकायत नहीं करते। वे लोग धैर्यपूर्वक कर देते हैं और महाजनके अत्याचारोंको सहन कर लेते हैं। इनके विषयमें सर विलियम हण्टरने "दी इण्डियन एम्पायर" नामक पुस्तकमें इस प्रकार लिखा है-कि "यदि महाजन कानूनका दुरुपयोग करके किसानको सताता है तो इसका दोष हमारी अदालतोंके नियमोंका है। इन्हींके कारण महाजन किसानोंसे जो चाहता है लिखवा लेता है। पर यह बात देशी राजत्वकालमें नहीं थी। यदि महाजन हटा दिया जाय तो किसानको फ़सलके सिवा जीवन निर्वाहके लिए और कोई सहारा न रहेगा।"

भारतीय किसानोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे अज्ञान, सुस्त, आलसी और फ़जूल ख़र्च हैं। उनकी सुविधाका कोई भी उपाय जारी किया जाय तौभी वे अपने दोषोंके कारण दरिद्री ही रहेंगे। यह दोषारोपण उनपर अक्सर किया जाता है परन्तु भारतीय किसानोंके बराबर मेहनती और मित-व्ययी शायद संसारमें कोई नहीं होगा। इंगलिस्तानकी 'रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी' के रसायनिक परामर्शदाता डा० वालकरने लिखा है कि—

भारतमें दुर्भिक्ष

"भारतीय कृषिके लिए इंग्लिस्तानमें लोगोंका यह ख्याल है कि वह पुराने ढंगसे तथा खराब तरीके से होती है। यह बात बिलकुल गलत है। सब बातोंके देखने से और जिस दशामें भारतमें खेती होती है उसपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि भारतमें खेती बहुत ही अच्छे तरीकेसे होती है। अच्छी दशामें भारतीय किसान साधारण ब्रिटिश किसानसे किसी बातमें कम नहीं पर अधिक ही हैं। सुविधा न होनेके कारण उसकी दशा खराब हो जाती है तौभी वह धैर्यसे कठिनाइयोंका सामना इस प्रकार करता है जैसे संसारमें कोई नहीं करता होगा। इस बातपर ब्रिटिशोंको आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि भारतीय किसान हम लोगोंसे सैकड़ों वर्ष पहलेसे गेहूँकी खेती करते हैं, इसलिए उनकी खेतीकी उन्नतिमें बहुत कम गुञ्जाइश है। पानी तथा खादका यथेष्ट सुभीता न होनेके कारण वह बड़ी बड़ी फसल पैदा नहीं कर सकता, पर यदि किसानोंकी साधारण बातोंपर ध्यान दिया जाय तो कहीं पर खेत इतने साफ नहीं मिलेंगे जैसे भारतमें होते हैं और पानीमें खेत सींचनेके तरीके, बोने और काटनेका ठीक समयका विचार भी भारतीय किसानों जैसा किसीका नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि वे फसलका हेर फेर, मिले अनाज का बोना और परती जमीन रखनेकी कितनी ही बातें जानते हैं। इस तरह परिश्रम और सावधानीसे खेती होती भारतके सिवा मैंने कहीं नहीं देखी।"

उपर्युक्त प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि भारतके किसान अव्वलदर्जेके परिश्रमी और मितव्ययी हैं। वे कठिनाइयोंका सामना भी धैर्य और मुस्तैदीसे करते हैं, उनका कृषि-विषयक ज्ञान भी अद्वितीय है। पर लगानके भारसे बिचारे दबे जाते हैं। पूँजी न रहनेके कारण अपनी खेतीमें किसी प्रकारकी उन्नति भी नहीं कर सकते। यदि कर्ज लेकर उन्नतिकी भी तो आगामी बन्दोबस्तमें लगान बढ़जानेका भय रहता है। दूसरा कोई पेशा नहीं जिससे अपना गुजारा करें। भारतके कला-कौशल तो पहले ही अनुचित कर और एकाधिपत्यों के कारण नष्ट हो गये और बार बार अकाल पड़नेसे भारतकी दशा और भी बिगड़ती जा रही है। एक तो नहर आदि देशकी आवश्यकतासे बहुत कम हैं दूसरे उसपर के यहाँ वालोंको अधिक कर देना पड़ता है। भारतमें सुकाल हो चाहे अकाल पर करोड़ों रुपयेका कच्चा माल विदेश भेजा जाता है। ये ही कारण हैं कि अकाल पड़नेपर भारतवासियोंकी दशा सोचनीय हो जाती है और अन्न बिना बिचारे तड़प तड़पकर मर जाते हैं। कहीं तो सदा कमी ही रहती है जिसके कारण करोड़ों गरीब आधे पेट तो हमेशा ही जाते हैं जिसका उनके स्वास्थ्य तथा नैतिक, मानसिक और राजनीतिक विचारोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

सारांश यह है कि इस भुखमरीका हमारे जातीय जीवनपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिलकुल नष्ट हो रही है। क्योंकि सुडौल-तन्दुरुस्त दिखाई दिखाई नहीं देते। नवयुवकोंके मुख पीले और शरीर रक्तहीन दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि लो चेहरेपर सुर्खी दिखाई नहीं देती। किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिखा है कि भारतमें खाद्य पदार्थोंकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है, अर्थात् ७० लाख मनुष्य प्रतिवर्ष काल कवलित हो जाते हैं। यह कथन बिलकुल सत्य है। भारतवासीकी आयु कम हो जानेके सम्बन्धमें स्वराज्यसभाने अपनी सुधार स्कीमके मेमोरेण्डममें वायसराय तथा भारतसचिवका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था और इसका कारण अन्नकी महँगी बतलाया था। भारतकी बढ़ती हुई दरिद्रता, जीवनके लिए घोर संग्राम तथा अन्नकी महँगी आदि ही इसके कारण हैं।

इस कमजोरीके कारण, जरासी बीमारी में ही लोग चल बसते हैं। सच पूछिये तो भारतवासी अकालके मारे जैसे तैसे जीते हैं और ज़रासी घटनासे ही उनके प्राण पखेरु उड़ जाते हैं। इन सबका कारण अन्नकी महँगीके सिवा और कुछ नहीं। गत चार वर्षोंमें जो आवश्यकीय वस्तुओंका दाम २०० फी सैकड़े तक चढ़ गया है पर मजदूरोंकी मजदूरीमें तथा लोगोंकी आयमें कुछ भी वृद्धि नहीं हुई है। पहलेही मजदूरी आवश्यकतासे कम मिलती थी पर अब तो महँगीके कारण लोगोंकी बुरी दशा हो रही है। जिन लोगोंकी आय नियत है उनके कष्टका तो कहना ही क्या है। इस प्रकार भार के सामने विकट समस्या उपस्थित हो रही है।

आशा है कि हमारी सरकार तथा भारतके नेतागण इस ओर ध्यान देंगे और भारतीय किसानोंकी दशा सुधारनेके लिए कटिबद्ध होंगे, क्योंकि भारतका सब दारोमदार किसानोंके ही ऊपर है। भारतको समृद्धिशाली बनाने तथा पहलेकी भाँति सुखशान्तिकी वृद्धि करनेके लिए निम्नलिखित उपायोंका अवलम्बन श्रेयस्कर हो सकता है। इसमें सरकार और प्रजा दोनोंके सहयोगकी आवश्यकता है।

आजकल भारतसे विदेशको जो खाद्य पदार्थ जाता है उसका जाना एकदम बन्द करदेना चाहिए, जिससे भारतमें खाद्य पदार्थोंकी महँगी न रहेगी और प्रजाको भर पेट खानेको मिलेगा। कच्चेमालकी रफ्तनी भी एक दम बन्द कर देनी चाहिए जिससे भारतकी मिलोंको कच्चामाल सस्ता मिले और तैयार माल विदेश भेजा जाय। विदेशसे आनेवाले मालपर भारी कर लगाकर उनका भारतमें आना रोकना चाहिए जिससे भारतमें नये नये उद्योग धन्धे कारखाने खुलें और उन्हें विदेशी कारखानेवालोंसे बराबरी करनेका भय न रहे। [illegible] आदि आवश्यकीय साधनोंको बढ़ाना जिससे कृषिकी दशा सुधरे और अनावृष्टि होनेपर भी [illegible] [illegible]

[illegible]

नागरसिंह

सम्पादकीय

संसारमें अन्नकी कमी



संसारमें अन्नकी कमी है। अनुमान किया गया है कि अगली फसलसे संसारकी आवश्यकता अच्छी तरह पूरी न हो सकेगी। बहुतसे देश ऐसे हैं जो अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए भी काफी अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते। अन्य देशोंसे अन्न मँगाकर वे अपना काम चलाते हैं। युद्ध कालमें जब आयात और निर्यातमें बाधा पड़ने लगी तो कई देशोंको अन्नकी कमीसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। तबसे लोगोंको यह बात सूझी है कि जीवन निर्वाहकी आवश्यकताओंके लिए किसीके आश्रित रहना ठीक नहीं है। विलायतवालोंको अन्नकी उपज बढ़ानेकी चिन्ता हुई है और इसके लिए वहाँ सरकारकी सहायतासे पूरा उद्योग हो रहा है। कृषिकी ओर फिर एक बार लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है। इतनेपर भी यूरोपमें अकालका भय व्याप्त है। रूसके पास अपनी आवश्यकतासे थोड़ाही अधिक गेहूँ बाहर भेजनेको होगा। अमरीका शायद बिलकुल ही न भेज सकेगा। आस्ट्रेलियाके पास अपनेही लिए जितना चाहिए उससे अधिक नहीं है। जो देश गेहूँ दूसरे देशोंको भेजते थे उन सबमें उपजकी कमी है। दूसरोंकी आवश्यकता पूरी करनेमें वे असमर्थ हैं। इसलिए जो देश दूसरोंके आश्रित रहते थे उनमें अकालका पूरा भय है। अन्नकी कमीका प्रभाव अन्य पदार्थोंपर भी पड़ता है। इसलिए यह भी सम्भावना नहीं है कि अन्नके अतिरिक्त दूसरी चीजें सस्ती हो सकेंगी। युद्धकालके पहिलेकी बात तो अलग रही। ऐसा जान पड़ता है कि युद्ध कालसे भी कितनी वस्तुओंका मूल्य अधिक हो जायगा। देशोंकी उत्पादक शक्तिकी सुव्यवस्था अभी होने भी नहीं पाई और न उसमें अभी कोई वृद्धि हो पाई है कि अन्नकी कमीने आ दबाया है। चीनीकी भी कमी है और मक्खन विलायतमें युद्धसे पहिले तय्यार होता था उसका आधा ही रह गया है। यूरोपको प्रति वर्ष लगभग २०७५ लाख मन गेहूँ बाहरसे मँगाना पड़ता है। परन्तु इस वर्ष इतना मिलना कठिन है। भारतवर्षमें गेहूँकी फसल इस वर्ष अच्छी है। सरकारी अनुमान है कि इस वर्ष २७,२६,६६,००० मन गेहूँ उत्पन्न होगा। पिछले वर्ष केवल १६,६८,८१,००० मन ही हुआ था। इस प्रकार ३६ फी सैकड़ाकी अधिकता है। अर्जेन्टाइनमें २२,७०,७०,००० मन होनेका अनुमान है जो १६ फी सदी गत वर्षसे अधिक है परन्तु आस्ट्रेलियामें ३,१७,६२,००० मन ही होना अनुमान किया जाता है जो गत वर्षसे ८६ फी सदी कम है। इन्हीं कारणोंसे विलायतकी सरकारने कृषकोंको आर्थिक सहायता दी है जिससे कि वे यथासम्भव उपजको बढ़ावें। हमारी आवश्यकतासे गेहूँ हमारे पास कुछ अधिक बचेगा, परन्तु फिर भी उसको अन्य देशोंमें भेजनेका द्वार खोलना ठीक नहीं जान पड़ता। बाहरके लोग जिस भावपर हमारा अन्न लेनेको तय्यार हो जायेंगे उतना मूल्य हम न दे सकेंगे। ऐसी दशामें अन्नके होते हुए भी यहाँ उसकी कमी हो जाना सम्भव है। अतएव अन्नके निर्यातपर

सरकारी रोकका जारी रहना आवश्यक है। जितनी महँगी विलायतवाले सहन कर सकते हैं उतनी भारतवर्षकी निर्धन प्रजा नहीं सह सकती। फिर पुरी जिलेमें अकाल पड़ा ही हुआ है। चावलके निर्यातपर सरकारी रोक जारी है यह सन्तोषकी बात है। भारतवर्षकी गरीब प्रजा बर्माका मोटा चावल खाती है और यहाँका अच्छा चावल प्रदेशको जाता है। १३५ और १६२ लाख मनके लगभग प्रतिवर्ष चावल बाहर जाता है और बर्मासे १८६ लाख मनके लगभग आता है। इस वर्ष बर्मासे तो १३५ लाख मनके लगभग चावल आ चुका है परन्तु यहाँसे विदेशोंको चावल जाना रोक दिया गया है केवल ६७५ लाख मन बाहर भेजा गया है जो विशेषकर फ़ारिसको गया है जहाँके लोग बिलकुल हिन्दुस्तानी चावलके भरोसे रहते हैं। अगले तीन चार महीनोंमें केवल ४०५ हजार मन बाहर भेजनेकी आज्ञा सरकारने दी है। इस प्रबन्धसे अन्नकी महँगी विशेष न बढ़ने पावेगी और प्रजाको अन्न सस्ता मिल सकेगा। व्यापारी लोग माल रोककर लालच-वश अन्नका मूल्य कृत्रिम रीतिसे न बढाने पावें इस बातका भी समुचित प्रबध होना आवश्यक है,जिससे खाद्य पदार्थके होते हुए प्रजा महँगीका कष्ट न उठावे।

कागजकी कमी

सभ्य संसारके लिए कागज एक परम आवश्यक वस्तु हो गयी है। इसके बिना हमारा एक क्षण भी काम नहीं चल सकता। कागजका खर्च प्रतिदिन बढ़ता जाता है और वह बराबर बढ़ता ही जायगा। युद्धकालसे कागजके दाम बहुत बढ गये हैं। जगलोंकी लकड़ीसे विशेष कर कागज़ बनाया जाता है। इसका खर्च बढ जानेसे जगलके जगल साफ हो गये और उनके कागज बना डाले गये। वृक्षोंको काटकर काममें लाना आसान है पर थोड़े समयमें जंगलोंको हरे भरे बनाना असभव है। यही कारण है कि आज कागजका अकाल ससारमें पड़ रहा है। समाचारपत्रोंको अपना आकार छोटा करना पडा है। बहुतसे पत्रोंने मूल्य बढ़ा दिया है और पुस्तकें भी महँगी हो गयी हैं। विद्या और ज्ञान प्रचारमें यह बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी है। हिसाब लगानेसे मालूम हुआ है कि यदि कागजका खर्च ऐसाही बना रहा तो २५ वर्षके बाद कागज बिलकुल अप्राप्य हो जायगा। विलायतमें कागजका मूल्य ६०० फ़ीसदी बढ़गया है। अमरीकामें यही हाल रहा तो आवेसे अधिक पत्र शीघ्र बन्द हो जायँगे। इस समय समस्त देशोंमें २१६० लाख मन कागजकी खपत है। हिन्दुस्तानमें ८ कारखाने हैं जो केवल ७१० हजार मनके लगभग कागज़ बनाते हैं। यहाँ खर्च इससे दूनेसे अधिक है। अब प्रश्न यह है कि या तो कागज़ बनानेके लिए लकडी आदि कहींसे मिले या और दूसरी कोई ऐसी चीज़ निकाली जाय जो सस्ती हो और उससे अच्छा कागज़ बनाया जा सके। अमरीकामें वैज्ञानिक लोग इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि कोई नये आविष्कार द्वारा कागजके अकालको दूर करें। परन्तु इसमें समय लगेगा। जो देश कागज बनाकर बाहर भेजते थे, जैसे स्केन्डेनेविया, जर्मनी, आस्ट्रिया,केनेडा,वे अब पहिले जितनी माँग पूरी नहीं कर सकते और न शीघ्र ही अपनी उत्पादक शक्ति बढा सकते हैं। भारतवर्ष अपनी आधीके लगभग माँग पूरी कर लेता है बाकी कागज़ उसको बाहरसे मँगाना पड़ता है। बाहरके मालका अब विशेष भरोसा नहीं रहा और

इस तरह निःसंदेह बढ़ती ही जायगी। ऐसी दशामें देखना चाहिए कि यहाँ कागज ज्यादा बनाया जा सकता है या नहीं। विशेषज्ञोंकी राय है कि भारतमें थोड़ेसे प्रयत्नसे ही इतना कागज बन सकता है कि अपनी आवश्यकता पूरी करनेपर अन्य देशोंको भी यह कागज दे सकता है। घास, लकड़ा और बांसकी यहाँ और बनोंमें कमी नहीं है और इनका बहुत अच्छा कागज बन सकता है। यह बात जाँच कर देख ली गई है। एक बात और भी है कि यहाँका कच्चा माल ऐसा है जो एकबार काममें लानेपर भी उसकी कमी न होगी। बाँस काटनेपर भी थोड़े ही समयमें फिर बढ़ आता है। अमरीकामें जैसे जंगल साफ हो गये उस बातका यहाँ इतना भय नहीं है। लखद्वीप महलमें २०० हजार मन कागज बना सकता है। हिमालयकी तराईके जंगलोंसे भी पूरी मदद मिल सकती है। ऐसी दशामें इस व्यवसायको हाथमें लेना बहुत लाभदायक हो सकता है। कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। एक तो यहाँ विशेषज्ञोंकी कमी है जो इस व्यवसायको अच्छी तरह जानते और सब तरहकी सलाह दे सकते हों। दूसरे यह कि कागजका कारखाना खोलनेमें अब ५, ६ गुना रुपया विशेष लगता है। दो तीन कारखाने खुले भी हैं परन्तु हम समझते हैं कि हमारे व्यापारियोंको यह अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है कि पूँजी लगाकर एक व्यवसायकी उन्नति कर सकते हैं और देशमें अच्छा कागज तय्यारकर स्वयं लाभ उठा सकते हैं।

शक्कर और नीलका व्यवसाय

जैसे कागजके कारखाने खोलनेका इस समय यद्यपि पूँजीवालोंको सुअवसर प्राप्त है उसी तरह और भी व्यवसाय हैं जिनको तुरत हाथमें लेनेकी आवश्यकता है। वैसे तो औद्योगिक जागृतिके सन्तोषजनक चिन्ह दिखाई दे रहे हैं और नए उद्योग धंधोंका देशमें जन्म हो रहा है। देशकी औद्योगिक दुर्बलता धीरे धीरे अवश्य दूर होगी ऐसी आशा करनेका साहस लोग करने लगे हैं। शक्करके व्यापारमें बड़ी उन्नति हो सकती है। विलायतको शक्कर बाहरसे मँगानी पड़ती है। जर्मनीसे आया करती थी सो वहाँसे अब आना बन्द हो गया है और अब वहाँकी शक्करमें अंगरेजोंको मिठास भी न मालूम होगा। इसीलिए यह उद्योग किया जा रहा है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें शक्करकी उपज बढ़े। भारतवर्षमें भी शक्करके व्यवसायकी उन्नति करनेका सरकारका विचार मालूम होता है। कमीशन भी इसके लिए बैठा हुआ है। क्यूबाके बाद शक्कर उत्पन्न करनेमें भारतवर्षका नम्बर है परन्तु फिर भी २५ फी सदी शक्कर बाहरसे मँगाकर [redacted] अपना काम चलाते हैं। यदि वैज्ञानिक रीतिसे खेती की जाय और शक्कर बनाई जाय तो अपना खर्च पूराकर हम अन्य देशोंको शक्कर भेज सकते हैं। परन्तु अभी तक विशेषज्ञों और पूँजीवालोंने साथ मिलकर इधर पूरा ध्यान नहीं दिया है। यदि भारतवासी और विशेषकर पूँजीवाले इस व्यवसायको शीघ्र न अपनावेंगे तो विदेशी पूँजी शीघ्र ही इस व्यवसायमें लगाई जायगी और यह भी एक लाभदायक व्यवसाय दूसरोंके हाथमें चला जायगा। सुअवसर बीतनेपर पछताना पड़ेगा। शक्करकी तरह एक और व्यवसाय है जिसमें जान पड़ गयी है। एक समय यहाँ नीलकी खेती खूब होती थी और उससे रंग बनकर

भारतवासी बड़ा लाभ उठाते थे। जर्मनीने वैज्ञानिक रीतिसे सस्ता रंग बनाकर नीलकी खेतीका नाश कर दिया। लड़ाईके दिनों जर्मनी रंग न बना सका तो यहाँ फिर नीलकी खेती चमक उठी। अब एक विशेषज्ञका कहना है कि नीलकी खेतीको अब जर्मनीसे भय खानेका बहुत कालके लिए कोई कारण नहीं है। वहाँ उद्योग धंधोंकी व्यवस्था शीघ्र नहीं हो सकती और होनेपर भी वह माँग पूरी नहीं करसकता। इसलिए नीलके व्यवसायमें फिर जान पड़ गयी है। स्थायीरूपसे यह व्यवसाय चल सकेगा या नहीं इसमें सन्देह अवश्य है परन्तु कुछ वर्षोंके लिए तो हमको इससे अवश्य लाभ होता रहेगा। और भी बहुतसे उद्योग धंधोंकी यहाँ आवश्यकता है जिनके बिना हम दूसरेके आश्रित बने रहेंगे। परन्तु यहाँ हम दो तीन व्यवसायोंके लिए सुअवसर समझकर व्यवसाइयोंका ध्यान विशेषरूपसे आकर्षित करते हैं।

कृषि और उद्योग धन्धे

कुछ लोगोंका विशेषकर अगरेजोंका यह विश्वास है कि भारतवर्ष सदासे कृषिप्रधान देश रहा है और कृषि ही यहाँके अधिकांश लोगोंका मुख्य व्यवसाय रहेगा। इसमें तो सन्देह नहीं कि कृषि यहाँका एक मुख्य व्यवसाय है परन्तु इसका यह अर्थ लगाना कि उद्योग-धंधोंमें भारतवर्ष और देशोंकी अपेक्षा सदा पीछे रहा है और ऐसा ही रहेगा यह ठीक नहीं है। इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि थोड़े ही काल पहिले यहाँपर कृषि और उद्योग दोनों ही बड़ी अच्छी दशामें थे और यहाँका बना हुआ माल अन्य देशोंको जाता था और उसका वहाँ पूरा आदर होता था। देश व्यापारसे सम्पन्न था और इसकी सम्पत्ति सबकी आँखोंमें खटकती थी। यूरोपमें कलके आविष्कार और विदेशियोंकी अनीतिने यहाँके उद्योगका नाश किया है। अब फिर उद्योगकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है जिसमे देशकी आर्थिक दशा सुधरे और साधारण आवश्यक पदार्थोंके लिए दूसरोंका मुँह न ताकना पड़े। परन्तु विलायतके व्यापारियोंको हमारी उन्नति खटकती है। उनके मनका भाव कभी कभी बिलकुल व्यक्त हो जाता है। उनकी आन्तरिक इच्छा यही है कि हमलोग कच्चा माल उत्पन्न करते रहें और बने हुए मालके लिए उनके मुहताज बने रहें। क्योंकि इसके बिना विलायतवालोंको पूरा लाभ अपनी कला कौशलका नहीं मिल सकता। उनके व्यापारकी उन्नति तभी हो सकती है जब उनका बनाया हुआ माल दूसरे देशोंमें खपता रहे। हमारी औद्योगिक उन्नतिको देखकर जिनकी मति बहुत ही मन्द है, अब यह नेक सलाह दी जाती है कि कृषिकी उन्नतिकी ओर हम उतना ध्यान नहीं देते जितना अन्य उद्योग-धंधोंके पीछे पड़े हुए हैं। और इससे देशको बड़ी हानि होनेकी सम्भावना है। मतलब यह है कि कृषिकी ओर हम विशेष ध्यान न दें, इसीकी उन्नतिमें अपना कल्याण समझें, ऐसी सलाह हमको दी जाती है। जो हमारे हितको निष्पक्ष दृष्टिसे नहीं देखते, जिनका स्वार्थ और हमारा हित एक नहीं, जिनकी व्यापारनीति हमारी उन्नतिकी बाधक रही उनको इस प्रकार शिक्षा देना कहाँ तक शोभा देता है इस बातके बतलानेकी आवश्यकता नहीं। फिर भी एक सुप्रतिष्ठित अंगरेजी समाचारपत्रने कृषिके हितसाधनके लिए ऐसी ही बात कही है। कृषिकी उन्नति कई बातोंमें ऐसी नहीं

[illegible] है कि [illegible] और इतनी है। [illegible] कौन न कहेगा कि [illegible] ! विदेशोंकी फर्मोंको भी हम स्वीकार करते हैं, वैज्ञानिक शिक्षा [illegible] आवश्यक है परन्तु हमको औद्योगिक उन्नति और कृषिकी उन्नतिमें कोई [illegible] नहीं दिखाई देता। इसके कारण दूसरोंको हानि पहुँचनेकी सम्भावना हमको प्रतीत नहीं होती। यदि [illegible] हो सकता है परन्तु थोड़े ही समयमें वह हमारे विपक्षी भी समझने लगेंगे कि भारतवर्षका कल्याण केवल कृषिद्वारा ही नहीं हो सकता। ग्रामवासियों और [illegible] के लिए उद्योग-धन्धोंकी ओर पूरा ध्यान देना भी आवश्यक है।

ब्रिटिश व्यापारकी उन्नति

ब्रिटेनके व्यापारी अपने व्यापारकी उन्नतिके लिए बड़ा भारी प्रयत्न कर रहे हैं। जर्मनी और अन्य देश जो युद्धमें सम्मिलित थे उनको अपने व्यापारकी व्यवस्था कर लेनेके पहिले विलायतवाले चाहते हैं कि अपना व्यापार इस प्रकार देशोंमें जमा ले जिससे कि दूसरे देशोंके मुकाबिलेका भय न रह। जो इस समयकी मे माल अंग्रेजोंमें थे उनको विलायत-वाले अपने मालका ग्राहक बनाना चाहते हैं। अवसर अच्छा है और थोड़े ही दिनोंमें अंग्रेजोंको आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है ऐसा मालूम होता है। उनके विदेशी व्यापारने बड़ी जल्दी उन्नति की है। *व्यापारकी उन्नतिके लिए क्या क्या उद्योग हो रहे हैं यह* जानना हमारे लिए भी लाभदायक है। कुछ कम्पनियां बहुतसा मूलधन लगाकर साम्राज्य भरके लिए खड़ी की गयी हैं। तांबा और लोहेके लिए बड़े बड़े कारखाने खोलने का प्रबंध हो रहा है जिसके लिए विलायतके अतिरिक्त साम्राज्यके अन्यान्य उपनिवेशोंसे भी पूंजी ली गयी है। साम्राज्यके देशोंमें आपसमें इतना व्यापार नहीं होता जितना विदेशोंसे होता है। इसके लिए यह प्रबंध हो रहा है कि आपसमें मेल बढ़ाकर उपनिवेशोंसे व्यापार बढ़ाया जाय और अन्य देशोंसे व्यापारकी मात्रा कम की जाय। इसके लिए आस्ट्रेलिया, कैनेडा-ने वचन भी दिया है *कि यथासम्भव वे अपना व्यापारसम्बन्ध विलायतसे और भी घनिष्ट* करेंगे। फिर इस बातकी योजना हो रही है कि साम्राज्यके देश आपसमें रियायती कर लगावें और अन्य देशोंके मालपर विशेष कर लगावें। यह एक झगड़ेकी जड़ है। क्योंकि रापक्ष करसे सब उपनिवेशोंको एकसा लाभ होना सम्भव नहीं है। विशेषकर भारतवर्षको इससे लाभ होनेकी आशा नहीं है। यह प्रश्न अभी विचाराधीन है और हमको आशा है कि अन्तिम निर्णय भारतके लिए अहितकर न होगा। जानकार लोगोंको इस बातका भय अभी पैदा हुआ है कि सपक्षकरकी नीति भारतके गले कहीं जबरदस्ती न मढ़ दी जावे। इसके अतिरिक्त *साम्राज्यमें कपासकी उपज बढ़ानेका प्रयत्न हो रहा है। अंग्रेजोंको आशा है कि कपासकी* उपज बढ़ाकर कपड़ेके व्यापारका बहुत बड़ा भाग वे अपने हाथमें कर सकेंगे। दो वर्ष बाद विलायतमें साम्राज्यकी एक प्रदर्शिनी करनेका विचार है जिससे व्यापारको उत्तेजना मिलेगी और परस्पर मित्रभाव बढ़ेगा। इन सब कामोंमें सरकारकी पूरी मदद है। धन, सुव्यवस्था और सरकारकी मदद हो तो कौनसा कार्य सरल नहीं हो सकता ? उधर यह भी

प्रयत्न हो रहा है कि फारिस, मेसोपोटामियोंमें अंग्रेजोंका व्यापार चल निकले। अंग्रेजोंने वहाँ गड्ढे बनाई हैं और नहरें निकाली हैं। रूससे माल आना वहाँ बन्द हो गया है। अंग्रेजी मालकी माँग खूब बढ़ रही है। विनिमयका दर ऊँचा होनेसे फारिसके लोगोंको विशेष महँगा माल भी सस्ता पड़ता है। ऐसी दशामें अंग्रेज व्यापारियोंको नए ग्राहक मिल गये! चीनमें भी अपना व्यवसाय फैलानेका यह लोग उद्योग कर रहे हैं और वहाँ भी सफलताकी आशा है। फारिससे व्यापार करनेका भारतवासियोंको भी अवसर प्राप्त है। क्या हमारे व्यवसायी लोग फारिसवासियोंकी आवश्यकता अपने बनाये कुछ मालसे किसी अंशमें भी पूरी नहीं कर सकते? यदि कर सकते हैं तो वहाँके बाजारमें पैर जमानेका यही अवसर है। अंग्रेजोंने तो अब भी वहाँ धोखा दिये हैं। उद्योगी और व्यवहार कुशल भारतव्यापारियोंको वहाँ जाकर व्यवस्था स्वयं देखनी चाहिए और यथासाध्य प्रयत्न कर व्यापारिक नाता जोड़ना चाहिए।

संयुक्त प्रान्तके कारखाने

गतवर्ष संयुक्त प्रान्तमें ३१५ कारखाने चलते थे और उससे एकवर्ष पहिले २१६ थे। इनमें से १२४ तो ऐसे थे जो वर्षमें कुछ महीनोंके लिए चलते थे बाकी ६१ बराबर बारह महीने चलने वाले थे। १६ नये कारखानोंकी रजिस्ट्री हुई और १४ के नाम अलग कर दिये गये। कारखानोंके निरीक्षणका प्रबंध ठीक नहीं रहा। कारण इसका निरीक्षकोंकी कमी बताया जाता है। निरीक्षण ठीक न होनेसे कारखाने संबंधी कानूनकी पाबन्दी ठीक नहीं होती। कारखानोंके मालिक इस बातका पूरा विचार नहीं रखते कि वे कानून-विरुद्ध कोई बात न करें। कपास ओटनेके कारखानोंमें निरीक्षणकी विशेष आवश्यकता है क्योंकि इनमें श्रमजीवियोंकी दशा ठीक नहीं है और मालिक भी अपने कर्तव्यसे उदासीन जान पड़ते हैं। लड़के और स्त्रियोंसे काम लेनेमें कपासके कारखाने कानूनकी बहुधा अवहा करते हैं और कलके आस पास आड़ लगानेकाभी विचार नहीं रखते जिससे श्रमजीवियोंको चोट न लगे और उनकी जान जोखिमसे बचे। निरीक्षकोंकी कमी होगी परन्तु एक कठिनाई यह है कि बारह महीने एकसा काम नहीं होता। कुछ दिनोंके लिए कार्यभार बहुत बढ़ जाता है और बादमें काम बहुत कम हो जाता है। कारखानोंमें काम करनेवालोंके लिए पानीका प्रबंध सन्तोषजनक है। पानी न मिलनेकी शिकायत कहीं नहीं होती। परन्तु रोशनीका प्रबंध इतना अच्छा नहीं होता। जिन कारखानोंमें बिजलीका प्रबंध है वहाँ तो कोई शिकायत नहीं है परन्तु और जगह न तो काफ़ी रोशनीका प्रबंध होता है और न ठीक समयपर रोशनी की जाती है। यहाँ तक बेपरवाही की जाती है कि बत्तीसे आग न लग जाय, इसके लिए फानूस या काँचके ढकनेका प्रबंध नहीं किया जाता। अँधेरा हो जानेपर भी प्रकाश नहीं किया जाता। निरीक्षककी सब आज्ञाओंका पालन ठीक ठीक नहीं होता क्योंकि उसके पास इतना समय ही नहीं कि बार बार कारखानोंको देख सके। इसलिए यह प्रस्ताव उचित जान पड़ता है कि जिलेके हाकिम कभी कभी बिना सूचना दिये कारखानोंकी दशा जाकर देखा करें और कानूनकी पाबन्दी होती है कि नहीं इस बातकी जाँच कर लिया करें। कारखानेके अहाते साफ रहते हैं परन्तु जितने चाहिए उतने सब जगह नहीं। १४ कारखाने ऐसे हैं जो काम करनेवालोंके रहनेका प्रबंध भी करते हैं। कानपुरके कुछ कारखाने लड़कोंके पढ़ाने लिखानेका भी प्रबंध करते हैं। मज़दूरीकी दर १२ रुपये मासिकसे २३, २४ रुपये तक है। कहीं कहीं स्त्रियोंको ११ घण्टे तक काम करना पड़ता है। यह बन्द होना चाहिए। मज़दूरोंकी साधारण दशा अच्छी होनी चाहिए, क्योंकि इससे उनके काम करनेकी शक्ति भी बढ़ती है।

भारतवर्षमें नई कम्पनियाँ

संवत्	पूँजी	संख्या
(१६७० युद्धसे पहले)	६७,००,००,००० रु०	३५६
१६७५	२१,३६,००,००० ,,	२६१
१६७६	२,७४,७०,००,००० ,,	६०६
१६७७ (एक महीना)	८,७२,००,००० ,,	६१

इस वर्ष एक ही महीनेमें ६१ कम्पनियाँ खुल गयीं। इनमेंसे ४५ फी सदी पूँजीकी अर्थात् ४ करोड़ ५ लाख मूलधनसे बंगालमें खोली गयी हैं और ३४ फीसदी पूँजीकी अर्थात् २ करोड़ ६८ लाख मूलधनसे बंबई प्रान्तमें खोली गयी है। बाकी देशके अन्य भागोंमें खड़ी की गयी है। युद्धसे पहिलेके अंक भी देखने योग्य हैं।

गेहूँके भावमें वृद्धि

विलायत	...	१३५ फी सदी वृद्धि
फ्रान्स	...	२२० ,,
इटली	...	३०६ ,,
नार्वे	...	१६८ ,,
स्वीडेन	...	१६१ ,,

लड़ाईसे पहिले यदि भाव १०० था तो अब बढ़कर जो हो गया है वह ऊपरके अंक सूचित करते हैं। भारतवर्षमें महंगी इस प्रकार है —

गेहूं	...	३८ फी सदी वृद्धि
चावल		६० ,,
ज्वार		३६ ,,
बाजरा		५८ ,,

गेहूंकी खेती

भारतवर्षमें ३,६५,१७,००० एकड़ भूमिमें गेहूंकी खेतीका अनुमान किया गया है जो गत वर्षसे २८ फी सदी अधिक है। उसका अनुमान २१,३०,१८,००० मन है जिसमें १० फी सदीकी वृद्धि है। अन्य देशोंमें गेहूंकी खेतीके परिमाणमें इस प्रकार कमी हुई है —

अमरीका	...	२१ फी सदी
अर्जेन्टाइन	...	१२ ,,
आस्ट्रेलिया		१४ ,,
रूस		८ ,,
रूमानिया	...	५० ,,

ओ३म् वन्देमातरम्

स्वार्थ

वर्ष १ खण्ड २ | आषाढ़ १९७७ | अङ्क ३ पूर्णाङ्क ९

इंगलिस्तानकी आधुनिक आर्थिक स्थिति

यूरोपीय महासमर जिस समय चल रहा था लोगोंका उस समय प्रायः तौरसे ऐसा विश्वास था कि इसके अन्त होते ही संसारमें शान्तिका राज्य हो जायेगा। इंगलिस्तानके राजनीतिज्ञ भी वहांके निवासियोंको यह कह कर उत्साहित कर रहे थे कि युद्धके पश्चात् उन्हें निर्विघ्न शान्तिका आनन्द अवश्य मिलेगा। इस कारण जिस समय सन्धिकी शर्तें तय की जा रही थीं उस समय सबके हृदयमें आशाका संचार हो रहा था कि मनुष्यके दुःखमय जीवनका अब अन्त हो जायेगा और समाजमें अनुचित प्रतिद्वन्द्विताके हट जानेसे सब सुख पूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगे। किन्तु यह आशा केवल दुराशामात्र निकली। अन्तर्राष्ट्रीय युद्धके समाप्त होते ही प्रत्येक राष्ट्रके समाजकी भिन्न भिन्न शक्तियोंमें इतने आभ्यन्तरिक झगड़े खड़े होगये जिनका दुःखमय परिणाम महासमरसे बहुत कम नहीं है। [illegible] कारण शत्रुको पराजय करनेके लिए सब शक्तियाँ एकत्र काम कर रही थी। ज्यों ही युद्धके पश्चात् शत्रुका दबाव इनपर कम पड़ा, इनके आपसमें विरोधकी अग्नि भड़कने लगी। परिणाम यह है कि समाजकी स्थिति जैसी युद्ध कालमें थी आजकल उससे भी खराब कही जा सकती है। इंगलिस्तानमें जितनी हड़तालें गत दो सालोंमें हुई हैं और जितना तीव्र आन्दोलन मजदूरोंने पूंजीपतियोंके विरुद्ध किया है उतना इसके इतिहासमें कहीं भी नहीं मिलता। [illegible] [illegible] कुछ दिनों भी समाजमें [illegible] विरोध और इनमें पारस्परिक द्वेष इतना नहीं था। अब धनवानों और मजदूरोंका [illegible] स्पष्ट होता जाता है। पूंजीपतियोंके प्रति उनकी घृणा इतनी अधिक बढ़ रही है कि [illegible]

भारतवर्षमें नई कम्पनियाँ

संवत्	पूँजी	संख्या
(१९७० युद्धसे पहले)	६७,००,००,००० रु०	३५६
१९७५	२१,३६,००,००० ,,	३९१
१९७६	२,७४,७०,००,००० ,,	९०६
१९७७ (एक महीना)	८,७२,००,००० ,,	९१

इस वर्ष एक ही महीनेमें ९१ कम्पनियाँ खुल गयीं। इनमेंसे ४५ फ़ी सदी पूँजीकी अर्थात् ४ करोड़ ५ लाख मूलधनसे बंगालमें खोली गयी हैं और २४ फ़ीसदी पूँजीकी अर्थात् २ करोड़ ९८ लाख मूलधनसे बम्बई प्रान्तमें खोली गयी हैं। बाकी देशके अन्य भागोंमें खड़ी की गयी हैं। युद्धसे पहिलेके अंक भी देखने योग्य हैं।

गेहूँके भावमें वृद्धि

विलायत	१३५ फ़ी सदी वृद्धि
फ्रान्स	२२० ,,
इटली	३०६ ,,
नार्वे	१९४ ,,
स्वीडेन ...	१९१ ,,

लड़ाईसे पहिले यदि भाव १०० था तो अब बढ़कर जो हो गया है वह ऊपरके अंक सूचित करते हैं। भारतवर्षमें महँगी इस प्रकार है—

गेहू ... ...
चावल ... ...
ज्वार
बाजरा

गेहूँकी खेती

भारतवर्षमें २,९५,३७,००० एकड़ भूमिमें ... जो गतवर्षसे २४ फ़ी सदी अधिक है। उपजका अनुमान ... फ़ी सदीकी वृद्धि है। अन्य देशमें गेहूँकी खेतीके ...

अमरीका ... ...
अर्जेन्टाइन ... ...
आस्ट्रेलिया ... ...
स्पेन ... ...
रूमानिया ...

प्रश्नके उत्तरके लिए हमें अकशास्त्रकी ओर ही झुकना पड़ता है जिसके प्रति लोगोंकी विशेष अरुचि है। इस विषयमें डाक्टर बाउलेसे बढ़कर दूसरा प्रामाणिक लेखक कोई नहीं है। अपनी पुस्तक 'डिवीज़न आफ दि प्रोडक्ट आफ इन्डस्ट्री' में इस विषयमें उन्होंने निम्नलिखित अंक दिये हैं। उनका कथन है कि अन्य लोगोंने देशके व्यय करने योग्य सम्पत्तिका जो लेखा लगाया है वह अतिशयोक्ति पूर्ण है। उनका कहना है कि प्रत्येक कुटुम्बकी आभ्यन्तरिक व्यापारसे लगभग आय जिसमें औसत ४½ व्यक्ति सम्मिलित हैं रेट तथा टैक्स काट कर २२६५ रुपये प्रतिवर्ष है। विदेशीय आमदनी १५० रुपये फी कुटुम्ब है। इस तरह प्रत्येक कुटुम्बकी लगभग आमदनी २४४५ रुपये हुई। देशभरको जो कुल आय होती है उस कुल आमदनीका ६० सैकड़ा उन लोगोंको मिलता है, जिनकी आय प्रतिवर्ष २४०० रुपयेसे कम है बाकी ४० सैकड़ा उन लोगोंके हाथ लगता है जिनकी आमदनी इससे अधिक है और जो सरकारको इनकमटेक्स देते हैं। औसत वार्षिक आय प्रत्येक इनकमटेक्स देनेवालेकी जिसमें अधिकतर वेतनधारी लोग हैं लगभग २१०० रुपये प्रतिवर्ष है और इनकमटेक्स देनेवाले व्यापारियोंकी आय प्रतिवर्ष ७५०० रुपये है। देश भरकी कुल आमदनी ६१० करोड़ रुपये तक है और यदि यह रकम देश भरमें खर्च काटकर बांटी जावे तो प्रत्येक पुरुषको २६ रुपये ७ आना तथा प्रत्येक स्त्रीको १५ रुपया मिलेगा। उत्पत्तिके प्रत्येक साधनको कितना कितना मिलता है नीचे लिखे अंकोंसे स्पष्ट हो जावेगा।

५८' सैकड़ा मजदूरोंको ·

४' सैकड़ा छोटी तनख्वाह वालोंको।

६' सैकड़ा उनलोगोंको जिनकी तनख्वाह २४०० रुपयेसे अधिक है।

४' सैकड़ा ब्याजमें।

५ सैकड़ा रायल्टी तथा कर आदिमें।

२३ सैकड़ा मुनाफा आदिमें।

देशके धनके विभागके विरुद्ध सबसे मुख्य कारण यही है कि देशकी कुल आमदनीका इतना बड़ा हिस्सा यानी २३ सैकड़ा धनिकोंको मिल जाता है और आवश्यक यह है कि यह धन मजदूरोंको मिले जिससे वे अपनी स्थिति सुधार सकें। देशकी कुल आमदनी २३ सैकड़ा लगभग १ अरब १० करोड़ ३० लाख होता है। अब प्रश्न यह है कि क्या बड़े बड़े व्यापारियोंका १ अरब १० करोड़ ३० लाख रुपये लेना अन्याय है, विशेष कर जब ६० लाखसे ऊपर मजदूर उनके नीचे काम करते हों, १८ अठारह अरबसे अधिक पूंजी लगी हो जिसकी आमदनी लगभग ५ अरब १० करोड़ रुपये हो। इसमें किसी तरहका संदेह नहीं है कि बहुतसे कारखानेवाले बहुत थोड़ा ही मुनाफा पा रहे हैं। यदि धनके बटवारेकी दूसरी व्यवस्था कर दी जावे और हम १ अरब १० करोड़ ३० लाखमें मजदूरोंको कुछ और दिया जावे तो इन कारखानेवालोंको अपना काम बन्द कर देना पड़ेगा और इसके १६ होते ही धनकी उत्पत्तिकी बाधायें जरूर कम हो जायंगी किन्तु दरिद्रता कभी दूर होगा

अलग ही करदेना चाहते हैं। उदाहरणार्थ खानोंमें काम करनेवाले मज़दूर इस बातका आन्दोलन कर रहे हैं कि देशकी सब खानें सरकार अपने कब्ज़ेमें करलेवे और व्यक्ति विशेष इनके मालिक न रहें। श्रमजीवी अपने इस व्यवहारका यह कारण बताते हैं कि युद्धके समय खानोंके मालिकोंने बहुत लाभ उठाया है। सब चीजोंका मूल्य बढ़जानेसे उनकी दशा हीन हो रही है और इसके प्रतिकूल इन पूँजीवालोंको अधिकाधिक धन मिलता जा रहा है। इस कारण इस असमानताको दूर करनेके लिए राष्ट्रके धनके बटवारेकी रीतिमें परिवर्त्तन करना आवश्यक है। यही नहीं बल्कि युद्धके पश्चात् मजदूरोंको छोड़ बाक़ी सब समृद्धशाली होगये हैं। लोगोंको लाभ अधिक हो रहा है, इसका सबसे बढ़कर प्रमाण यह है कि बैंकोंमें सबकी अमानत बढ़ती जा रही है।

निम्न लिखित अङ्कोंसे स्पष्ट हो जावेगा कि लोगोंकी अमानत बैंकोंमें अधिक बढ़ रही है। सं० १९६९ में इङ्गलिस्तानके बैंकोंमें अमानतकी रकम १९ अरब ५९ करोड़ रुपया था, किन्तु सं० १९७४ के अन्तमें बैंकोंमें अमानतकी रकम २५ अरब बयासी करोड़ रुपये तक बढ़ गई। यद्यपि मूल्य भी सब चीजोंका बढ़ रहा है तथापि धनकी भी वृद्धि हो रही है। श्रमजीवी इस लाभमें भाग लेना चाहते हैं इसीलिए उनका कहना है कि ये आन्दोलन कर रहे हैं। इनका कथन है कि इङ्गलिस्तानमें उत्पत्तिकी मात्रा पर्याप्त रीतिसे है और अर्थशास्त्रके इस विभागमें देशने पूरी उन्नति करली है। इसलिए देशके सामने मुख्य प्रश्न अब धन उत्पत्ति करनेका नहीं है बल्कि जो कुछ उत्पन्न किया जाता है उसे किस तरह बटवारा करनेका है।

अब विचारणीय बात यह है कि मजदूरोंका यह कथन कहां तक ठीक है? क्या देशकी आर्थिक उन्नति वास्तविक है? श्रमजीवियोंके कार्यका औचित्य या अनौचित्य इसी प्रश्नके उत्तरपर बहुत कुछ निर्भर है। इसमें संदेह नहीं कि युद्धके पूर्व धनके बटवारेका प्रश्न उचित रीतिसे हल नहीं किया गया था। चीवोजामनीके समान अर्थशास्त्रज्ञ ऊँची आवाज़से यह बात कह रहे थे कि इङ्गलिस्तानमें गरीब दिन प्रति दिन गरीब होते जा रहे हैं और धनिकोंके धनकी मात्रा भी अधिक बढ़ रही है। उन्होंने विविध प्रकारके अङ्कोंसे अपने कथनको पूर्णतया सिद्ध कर दिया था। उनकी पुस्तक 'रिचेज़ और पावर्टी' के पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि धनके बटवारेका प्रचलित नियम देशमें विषमताका मुख्य कारण है और देशके हितके लिए उन नियमोंमें हेरफेर करना अत्यन्त आवश्यक है। युद्धके समय [illegible] एकमात्र [illegible] नियम लागू करना था, इसलिए यह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था और अब युद्धके उपरान्त मजदूरोंने यही आन्दोलन अधिक जोरसे आरम्भ कर दिया है। प्रश्न अब [illegible] है कि क्या इङ्गलिस्तानमें धनके बटवारेमें इतनी अधिक [illegible] मिलता है कि बिना इसके हेर फेर किये मजदूरोंकी दशा नहीं सुधर सकती।

इस प्रश्नका उचित उत्तर देनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि इङ्गलिस्तान में कितना धन बनता है और किस किस रीतिसे [illegible] बांटा जाता है। [illegible]

प्रश्नके उत्तरके लिए हमें अमेरिकाकी ओर की तुलना करना है जिसके प्रति लोगोंकी विशेष मर्यादा है। इस विषयमें डाक्टर बाउलेसे बढ़कर दूसरा प्रामाणिक लेखक कोई नहीं है। अपनी पुस्तक 'डिवीजन आफ दि प्रोडक्ट आफ इन्डस्ट्री' में इस विषयमें उन्होंने निम्नलिखित अंक दिये हैं। उनका कथन है कि अन्य लोगोंने देशके व्यय करने योग्य धनराशिका जो लेखा लगाया है वह अतिशयोक्ति पूर्ण है। उनका कहना है कि प्रत्येक कुटुम्बको आभ्यन्तरिक व्यापारसे लगभग आय जिसमें औसत ४½ व्यक्ति सम्मिलित हैं रेट तथा टेक्स काट कर २२६५ रुपये प्रतिवर्ष है। विदेशीय आमदनी १५० रुपये फी कुटुम्ब है। इस तरह प्रत्येक कुटुम्बकी लगभग आमदनी २४४५ रुपये हुई। देशभरको जो कुछ आय होती है उस कुल आमदनीका ६० सैकड़ा उन लोगोंको मिलता है, जिनकी आय प्रतिवर्ष २४०० रुपयेसे कम है बाकी ४० सैकड़ा उन लोगोंके हाथ लगता है जिनकी आमदनी इससे अधिक है और जो सरकारको इनकमटैक्स देते हैं। औसत वार्षिक आय प्रत्येक इनकमटैक्स देनेवालेकी जिसमें अधिकतर वेतनधारी लोग हैं लगभग ३१०० रुपये प्रतिवर्ष है और इनकमटैक्स देनेवाले व्यापारियोंकी आय प्रतिवर्ष ७६०० रुपये है। देश भरकी कुल आमदनी ६१० करोड़ रुपये तक है और यदि यह रकम देश भरमें खर्च काटकर बांटी जावे तो प्रत्येक पुरुषको २६ रुपये ७ आना तथा प्रत्येक स्त्रीको १६ रुपया मिलेगा। उत्पत्तिके प्रत्येक साधनको कितना कितना मिलता है नीचे लिखे अंकोंसे स्पष्ट हो जावेगा।

५८ सैकड़ा मजदूरोंको

४ सैकड़ा छोटी तनख्वाह वालोंको।

६ सैकड़ा उनलोगोंको जिनकी तनख्वाह २४०० रुपयेसे अधिक है।

४ सैकड़ा ब्याजमें।

५ सैकड़ा रायल्टी तथा कर आदिमें।

२१ सैकड़ा मुनाफा आदिमें।

देशके धनके विभागके विरुद्ध सबसे मुख्य कारण यही है कि देशकी कुल आमदनीका इतना बड़ा हिस्सा याने २१ सैकड़ा धनिकोंको मिल जाता है और आवश्यक यह है कि यह धन मज़दूरोंको मिले जिससे वे अपनी स्थिति सुधार सकें। देशकी कुल आयका २१ सैकड़ा लगभग १ अरब १७ करोड़ ३० लाख होता है। अब प्रश्न यह है कि क्या बड़े बड़े व्यापारियोंका १ अरब १७ करोड़ ३० लाख रुपये लेना अन्याय है, विशेष कर जब ६० लाखसे ऊपर मज़दूर उनके नीचे काम करते हों, १८ अठारह अरबसे अधिक पूँजी लगी हो जिसकी आमदनी लगभग ५ अरब १० करोड़ रुपये हो। इसमें किसी तरहका संदेह नहीं है कि बहुतसे कारखानेवाले बहुत थोड़ा ही मुनाफा पा रहे हैं। यदि धनके बटवारेकी दूसरी व्यवस्था कर दी जावे और इस १ अरब १७ करोड़ ३० लाखमेंसे मज़दूरोंको कुछ और दिया जावे तो इन कारखानेवालोंको अपना काम बंद कर देना पड़ेगा और इनके बंद होते ही धनकी उत्पत्तिकी मात्रामें ज़रूर कमी हो जावेगी जिसका परिणाम अन्तमें यह होगा

कि मज़दूरोंको मिलनेका धन चाहे औसत सैकड़ामें बढ़ जावे, किन्तु यथार्थमें धन कम ही मिलेगा। इसलिए मजदूरोंको यथार्थमें अधिक धन मिले इसका केवल यही एक उपाय है कि उत्पत्तिकी मात्रा बढ़ाई जावे। इसमें संदेह नहीं की धनके बटवारेमें बहुत कुछ सुधार हो सकता है और होना उचित भी है किन्तु केवल इसीमें सुधार कर मज़दूरोंकी दशा वास्तविक रीतिसे नहीं सुधारी जा सकती। तात्पर्य यह है कि इंग्लिस्तानमें भी अब उत्पत्ति-को बढ़ाना आवश्यक है और इसीके जरियेसे सुधार होनेकी सभावना है।

कई महाशय इसपर सन्तुष्ट न होंगे उनका अभी कहना होगा कि धनिक जो कुछ आजकल पाते हैं उसमें कमी की जा सकती है और वह मजदूरोंको दिया जा सकता है। अब इसपर विचार किया जावेगा कि यह बात कहाँतक सत्य है? यह कथन सर्वमान्य है कि आजकल उत्पत्ति करनेकी प्रथा अत्यन्त विस्तीर्ण तथा जटिल और पेचीदा है, और बिना कई व्यक्तिकी सहकारिताके इसका होना असम्भव है। मज़दूर, दिमाग़-से काम करनेवाले, उत्साही तथा हिम्मत करनेवाले व्यापारी और धनिक सब इस कार्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है। ये अपना सहयोग तभीतक दे सकते हैं जबतक उन्हें उसके बदलेमें कुछ मिले। इसलिए उत्पत्ति पूर्ण रूपसे करनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन लोगोंको इनका हिस्सा दिया जावे और इनसे काम लिया जावे। इनके कार्यमें शामिल होनेका मुख्य कारण इनकी स्वार्थ रक्षा है। इसलिए उन कामोंसे जिनसे इनके इस विचार-पर धक्का पहुँचनेका भय है उत्पत्तिमें हानि होनेकी पूर्ण सभावना है। इस कारणसे यदि प्रचलित प्रथामें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक भी प्रतीत हो तो वह धीरे धीरे किया जावे, सहसा नहीं जिसमें उनके विचारोंको किसी तरहका धक्का न पहुँचे। उत्पादकोंमें केवल श्रमजीवी ही शामिल नहीं है और बिना दूसरोंकी सहायताके ये स्वय कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए सबका हिस्सा इनको ही नहीं मिल सकता, जैसा ये चाहते हैं। यह हमें भूलना नहीं चाहिए कि आधुनिक कालकी उत्पत्तिमें मेशीनके आविष्कारसे बहुत धनकी आवश्यकता होती है। साथ साथ आविष्कारक बुद्धि, व्यापारको संगठित करनेमें बुद्धिकी भी बड़ी जरुरत होती है। व्यापारीय उत्साह तथा साहस भी अनिवार्य होते हैं। बिना इन साधनोंके आजकल उचित रीतिसे उत्पत्ति करना प्रायः असम्भव सा हो गया है। बिना इनके आये मज़दूर कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए मजदूरोंको अधिक उसी हालतमें मिल सकता है जब सबलोग काम करते हों और यह तब ही सम्भव है जब इन लोगोंको भी इनके सहयोगके बदले कुछ मिले। आजकल बिना धनके तो कुछ हो ही नहीं सकता और जबतक ...निरोंको ब्याज नहीं दिया जावेगा तबतक धन मिल ही नहीं सकेगा। बिना ...लालचके बहुत कम लोग अपने धनका बचत करेंगे। ब्याजकी प्रथा तोड़ ... पूँजीका अभाव हो जावेगा जिसका परिणाम मजदूरोंके लिए हितकारक कदापि ...गा। यदि पूँजी-पतिसे मजदूरोंको घृणा है तो इसका उपाय यह नहीं कि वे नाश करदें क्योंकि, ऐसा करनेसे वे पूँजी नहीं पा सकेंगे जिसके बिना उत्पत्तिका

होना ही असम्भव हो जायगा। सहयोग मिलनेसे उत्पादक स्वयं पूँजी-पति हो सकते हैं। यदि कोई कहे कि बिना ब्याज दिये पूँजी मिल सकती है तो यह सम्भव नहीं है। यदि पूँजी कम है और उसकी माँग अधिक है तो काफी पूँजी पानेके लिए ब्याज अधिक देना ही होगा। उत्पत्ति और माँगमें सुलभ होनेहीके कारण इसका भाव निश्चित होता है और इस नियममें फेर फार कृत्रिम उपाय द्वारा करनेका प्रयत्न करना निस्सन्देह निष्फल होगा। अर्थशास्त्रका यह नियम उत्पत्तिके प्रत्येक साधनपर भी लागू होगा। यदि कोई कहे कि पूँजी सरकार दे सकती है, किन्तु इतना स्मरण रखना चाहिए कि सरकारको भी तो कहींसे धन लेना ही होगा और उसे भी कर्ज देनेवालोंको कुछ न कुछ ब्याजके रूपमें देना ही पड़ेगा। बिना कुछ पाये अपना धन कोई क्यों देने लगा। उपरोक्त विचारसे स्पष्ट हो गया कि धनके लिए तथा उत्साह और साहसके लिए लोगोंको कुछ न कुछ देना आवश्यक है। बिना इस प्रलोभनके इनकी सहायता नहीं मिल सकती। उदाहरणार्थ जब इंग्लिस्तानमें कम ब्याज मिलने लगा तब वहाँके पूँजी पति अपने धनका प्रयोग उन देशोंमें करने लगे जहाँ उन्हें अधिक ब्याज मिलता था। तात्पर्य यह है कि जो कुछ इनको दिया जाता है यदि उसमें कमी कर मजदूरोंको अधिक दिया जाय तो ये लोग अपना सहयोग त्याग देंगे और बिना इनके उत्पत्तिका होना असम्भव सा है। इसलिए यदि मजदूर जितना पाते हैं उससे अधिक पाना चाहते हैं तो उन्हें उत्पत्तिकी मात्रामें वृद्धि करनी चाहिए।

अब केवल एक प्रश्न रह गया है जिसका उत्तर देना आवश्यक है। क्या कारण है कि युद्धके पश्चात् इंग्लिस्तान समृद्धशाली मालूम होता है। क्या उसकी यह स्थिति वास्तविक है? इसका जानना इसलिए जरूरी है कि इसीके कारण मजदूर हर बातमें अपनी तरक्की माँग रहे हैं। इंग्लिस्तानमें निर्यातसे आयात सदैव अधिक था। इस अधिक आयातका मूल्य इंग्लिस्तान अपनी बारबरदारीकी आमदनीसे तथा विदेशोंमें लगी अपनी पूँजीके ब्याजसे चुकाता था। युद्धके पूर्व इंग्लिस्तानकी आमदनी इन मदोंसे लगभग ४५० से ६०० करोड़ रुपये थी। और लगभग इतनी ही कीमतका अधिक माल आयातमें निर्यातकी अपेक्षा अधिक आता था। किन्तु गतवर्ष भी इंग्लिस्तानका आयात निर्यातसे लगभग ५ अरब २७ करोड़ ५० लाख रुपये अधिक था। इसमें संदेह नहीं कि युद्धके कारण इंग्लिस्तानने अपने बहुतसे विदेशी दस्तावेज बेच दिये जिससे ब्याजकी आमदनी जरूर कम हो गई होगी इसके साथ साथ बारबरदारीकी आमदनीमें भी कुछ कमी हुई होगी। इतना होनेपर भी इंग्लिस्तानका आयात पहिलेसे कुछ अधिक ही है। यही बात इंग्लिस्तानके समृद्धशाली होनेका प्रमाण मानी जाती है और इसी समृद्धिकी दुहाई देकर मजदूर अपने हकके लिए अधिक लड़ाई लड़ रहे हैं। अब देखना है कि क्या इससे हम यह कह सकते हैं कि इंग्लिस्तानकी आर्थिक दशा अच्छी है। किन्तु यथार्थमें इंग्लिस्तानकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है कारण कि अधिक आयातका मुख्य कारण इंग्लिस्तानका कर्ज है। इंग्लिस्तानने अमरीकासे लगभग १५ अरब रुपये कर्ज लिया है। और इसी कर्जके बदलेमें इंग्लिस्तानमें इतना अधिक माल आया। किन्तु इंग्लिस्तान

सदैव उधारपर ही नहीं रह सकता। उधार ली हुई रकमसे यदि इंग्लिस्तानका आयात बढ़े तो उससे उसके समृद्धशाली होनेका प्रमाण नहीं मिलता। कोई व्यक्ति यदि उधार लेकर उस धनको इधर उधरके कामोंमें लगावे तो वह समृद्धशाली नहीं कहा जा सकता। यही बात इंग्लिस्तानपर भी चरितार्थ होती है। इसी कर्जके कारण इंग्लिस्तानमें चारों ओर अधिक धन दिखाई देता है किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि एकदिन इंग्लिस्तानको इसे अदा करना होगा। इंग्लिस्तानको अधिक आयातका मूल्य बारबरदारीमें या ब्याजमें या अधिक निर्यातमें देना ही होगा। ऐसा न करनेसे आयात जरूर कम हो जावेगा। जिसके बिना इंग्लिस्तान-की दशा एक दम शोचनीय हो जावेगी, कारण कि बिना बाहरसे कच्चा माल प्रायः इंग्लिस्तान-के सब कल कारखाने बेकार हो जावेंगे और यह उसके लिए जीवन मरणका प्रश्न हो जावेगा। इंग्लिस्तानके लिए यह अनिवार्य ही है कि वह आयातका मूल्य निर्यातसे देनेका प्रयत्न करे।

दूसरा कारण अंगरेजोंको इस ओर ध्यान देनेका यह है कि यदि निर्यातसे आयात अधिक होगा तो व्यापारका सन्तुलन * इंग्लिस्तानके प्रतिकूल रहेगा, जिसका अर्थ यह है कि विनि-मयकी भी दर इंग्लिस्तानके विरुद्ध होगा। आजकल पाउन्डकी कीमत डालरमें १२½ सैकड़ा कम हो गई है तथा रुपयेमें १० सैकड़ा कम हो गई है। इसका अर्थ यह है कि उतने ही आयात-के लिए इंग्लिस्तानको अधिक मूल्य देना पड़ता है। इसको घटानेका केवल यही उपाय है कि इंग्लिस्तान या तो आयातको कम करे या निर्यातको बढ़ाकर या दूसरी तरहसे इसका मूल्य देवे। ऊपर बताया जा चुका है कि आयात कम करना असम्भव है कारण कि बिना इसके इंग्लिस्तान कुछ भी नहीं कर सकता। केवल इंग्लिस्तान अपनी धन देनेकी शक्तिको ही बढ़ा सकता है। और यह तभी सम्भव है जब वह अपनी उत्पत्तिको बढ़ा सके। किन्तु जब वहाँपर पूँजी-पति तथा मजदूरोंमें इस तरहका घमासान मचा हुआ है तब इसकी क्या संभावना है? यह आशा करना कि इसी तरह उधार लेकर इंग्लिस्तान अपना काम चलाता रहेगा असम्भव है। सब यूरोपको धनकी आवश्यकता है। देनेवाले बहुत कम हैं। ऐसी दशामें इंग्लिस्तानका एक कर्तव्य है कि वह अपनी उत्पत्तिकी मात्राको बढ़ावे। मजदूरोंका आंदोलन उस समय तक स्थगित रखा जावे जबतक इंग्लिस्तानकी अन्तर्राष्ट्रीय दशा सुधर न जावे।

निर्यातसे आयातका अधिक होना इंग्लिस्तानके समृद्धशाली होनेका प्रमाण माना गया था। इस धारणाके [illegible] एक और कारण है। पहिले [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, [illegible] यह [illegible] [illegible] था कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु युद्धके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। [illegible] [illegible] यह हुआ है कि बहुत [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गई है। [illegible] यह हुआ है कि [illegible] [illegible] [illegible]

* Balance of trade

इंग्लिस्तानकी आधुनिक आर्थिक स्थिति

होनेके कारण प्रत्येक चीजोंका मूल्य बढ़ता जा रहा है और यह अर्थशास्त्रका नियम है कि जब मुनाफाखोरोंकी यह दशा होगी तो सब तरफ धनवृद्धिके चिन्ह दृष्टिगोचर होंगे। किन्तु ये क्षणिक होते हैं और उनका बुरा परिणाम सब देशोंको बहुत समय तक भोगना पड़ता है। मूल्य बढ़नेके साथ साथ मुनाफा भी बढ़ता जाता है। इसलिए वास्तवमें यह इंग्लिस्तानके समृद्धशाली होनेका प्रमाण नहीं है बल्कि इसका यह सारांश है कि यदि इस बुराईको दूर करनेका उपाय इंग्लिस्तानने शीघ्र नहीं किया तो बुरे दिनोंके सब बुरे परिणाम इंग्लिस्तानको भोगने होंगे।

अन्तिम बात विचार करने योग्य यह है कि युद्ध आरम्भके पहिले इंग्लिस्तानकी जैसी आर्थिक स्थिति थी अब वैसी नहीं है। पहिले बहुतसे देश इंग्लिस्तानका कर्ज चाहते थे और संसारके रुपयेके बाजारका केन्द्र लन्दन था। अब एक तो इंग्लिस्तानने अपने बहुतसे विदेशी दस्तावेज बेच दिये, दूसरे इंग्लिस्तानका बहुत सा कर्जा रूसमें डूब गया और तीसरे स्वयं इंग्लिस्तानको बहुत सा धन कर्ज दूसरोंसे लेना पड़ा, जिसका उसे न केवल ब्याज ही देना होगा बल्कि कुछ समयके बाद मूलधन भी देना पड़ेगा। इन कारणोंसे इंग्लिस्तानकी आर्थिक अवस्था अब वैसी दृढ़ नहीं है। फिर यद्यपि जर्मनीकी प्रतिद्वंद्वितासे कुछ कालके लिए इंग्लिस्तान बच गया तथापि व्यापारिक क्षेत्रमें अमरीका और जापान दो बड़े भारी प्रतिद्वंदी इंग्लिस्तानके खड़े हो गये हैं। इस कारण उत्पत्तिके क्षेत्रमें भी इंग्लिस्तानकी अवस्था पहिले जैसी थी वैसी नहीं है। इंग्लिस्तान इस अवस्थासे तब ही बच सकता है जब वह अपनी उत्पत्ति-की मात्राको बढ़ावे। बिना इसके उसकी साखकी भी रक्षा होनी कठिन हो जावेगी और यह तब ही सम्भव है जब उत्पत्तिके सब साधन सहकारितासे एक राय होकर कार्य करें। इनके बीचमें झगड़ा होना उत्पत्तिका बड़ा बाधक होगा जिससे देशकी दशा अत्यन्त खराब हो जावेगी। अपने चुनावके लिए मत लेनेके समय जनतासे बहुतसे समाज सुधारके झूठे वायदे करनेकी अपेक्षा यदि अंग्रेजी राजनीतिज्ञ इस ओर ध्यान दें तो इंग्लिस्तानका विशेष उपकार तथा कल्याण हो सकता है।

छेदीलाल



सदैव उधारपर ही नहीं रह सकता। उधार ली हुई रकमसे यदि इंग्लिस्तानका आयात बढ़े तो उससे उसके समृद्धशाली होनेका प्रमाण नहीं मिलता। कोई व्यक्ति यदि उधार लेकर उस धनको इधर उधरके कामोंमें लगावे तो वह समृद्धशाली नहीं कहा जा सकता। यही बात इंग्लिस्तानपर भी चरितार्थ होती है। इसी कर्ज़के कारण इंग्लिस्तानमें चारो ओर अधिक धन दिखाई देता है किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि एकदिन इंग्लिस्तानको इसे अदा करना होगा। इंग्लिस्तानको अधिक आयातका मूल्य बारबरदारीमें या ब्याजमें या अधिक निर्यातसे देना ही होगा। ऐसा न करनेसे आयात ज़रूर कम हो जावेगा। जिसके बिना इंग्लिस्तानकी दशा एक दम शोचनीय हो जावेगी, कारण कि बिना बाहरसे कच्चा माल आये इंग्लिस्तानके सब कल कारखाने बेकार हो जावेंगे और यह उसके लिए जीवन मरणका प्रश्न हो जावेगा। इंग्लिस्तानके लिए यह अनिवार्य ही है कि वह आयातका मूल्य निर्यातसे देनेका प्रयत्न करे।

दूसरा कारण अंगरेजोंको इस ओर ध्यान देनेका यह है कि यदि निर्यातसे आयात अधिक होगा तो व्यापारका सतुलन * इंग्लिस्तानके प्रतिकूल रहेगा, जिसका अर्थ यह है कि विनिमयका भी दर इंग्लिस्तानके विरुद्ध होगा। आजकल पाउन्डकी क़ीमत डालरमें ११½ सैकड़ा कम हो गई है तथा रुपयेमें १७ सैकड़ा कम हो गई है। इसका अर्थ यह है कि उतने ही आयातके लिए इंग्लिस्तानको अधिक मूल्य देना पड़ता है। इसको घटानेका केवल यही उपाय है कि इंग्लिस्तान या तो आयातको कम करे या निर्यातको बढ़ाकर [illegible] दूसरी तरहसे उसका मूल्य देवे। ऊपर बताया जा चुका है कि आयात कम करना असम्भव है [illegible] इंग्लिस्तान कुछ भी नहीं कर सकता। केवल इंग्लिस्तान अपनी धन [illegible] सकता है। और यह तभी सम्भव है जब वह अपनी [illegible] यहाँपर पूँजी-पति तथा मजदूरोंमें इस तरहका घमासान मचा [illegible] है? यह आशा करना कि इसी तरह उधार लेकर इंग्लिस्तान असम्भव है। तब यूरोपको धनकी आवश्यकता है। [illegible] इंग्लिस्तानका एक कर्तव्य है कि वह अपनी उत्पत्तिकी आन्दोलन उस समय तक स्थगित रखा जाये जबतक [illegible] न जाये।

निर्यातसे आयातका अधिक होना इंग्लि[illegible] गया था। इस धनात्मक विचारका एक और कार[illegible] था उतना ही नगदी सोना रख लिया जाता था, [illegible] नोट चालू नहीं किये जा सकते थे, किन्तु युद्ध परिणाम यह हुआ है कि बहुत [illegible] और [illegible] वृद्धि हो गई है। परिणाम [illegible]

* Balance of trade

व्यावसायिक अधःपतनमें भारतसरकारका भाग

भारतका सबसे प्राचीन व्यवसाय वस्त्र व्यवसाय था। करोड़ों भारतीय विधवाएँ तथा साधारण स्त्रियाँ सूत कातकर जीवन-निर्वाह करती थीं। यहाँ जो कपड़े बनते थे वही यूरोपमें बिकने जाते थे और भारतको धन धान्यसे पूर्ण रखते थे। आंग्ल व्यापारियोंका जबसे भारत पर प्रभुत्व हुआ है तबसे उनकी स्वार्थाग्निमें भारतका-वस्त्र व्यवसाय झुलस गया है। चन्द्रगुप्तके समयमें भारतसे रोममें ६०० लाख रु० का सामान प्रति वर्ष जाता था। इससे रोमका धन भारतमें चला आता था। और रोमको इस धन क्षतिसे बचनेके लिए हमारे सामानको बहिष्कृत करना पड़ा था। मैगस्थनीजने चन्द्रगुप्त कालीन भारतीयोंके विषयमें लिखा है कि "भारतवासी शिल्पमें बहुत ही चतुर हैं। उनके कपड़ोंपर सुनहरी काम होता है और उनमें रत्न जड़े होते हैं। फूलदार मलमलके वस्त्र वे प्रायः पहनते हैं। उनके पीछे नौकर लोग छाता लगा करके चलते हैं क्योंकि वह लोग सुन्दरता पर बहुत ही ध्यान रखते हैं। अपनी सुन्दरता बढ़ानेके लिए सर्व प्रकारके उपाय करते हैं।" इस बातसे स्पष्ट है कि किस प्रकार भारतीयोंका शिल्प तथा वैभव बहुत ही अधिक बढ़ा हुआ था। चन्द्रगुप्तके कालसे मुसल्मानी कालके अन्त तक यह शिल्प तथा वैभव पूर्ववत् ज्योंका त्यों हरा भरा बना रहा। शुरू शुरूमें ...गल व्यापारियोंको भारतके वस्त्र व्यवसायको तबाह करनेकी इच्छा न थी। यही कारण है कि स० १७६५ से स० १८२२ तकके भारतीय व्यापारसे इंग्लिस्तानको भारतमें ४,२६०,१००,०००) रु० भेजने पड़े। इस पर इंग्लिस्तानमें बड़ा शोर मचा और इंग्लिस्तानने भारतके वस्त्रोंको अपने देशमें आनेसे सदाके लिए रोक दिया। स० १८५० से पूर्व तक भारतीय वस्त्रोंपर इंग्लिस्तानमें राज्यकी ओरसे जो सामुद्रिक बाधक कर लगा था उसका ब्योरा इस प्रकार है।

भारतीय पदार्थ	इंग्लिस्तानमें सामुद्रिक कर १५००) रु० के मालपर
छींट	१०२५) रु०
मलमल	२६०) रु०
रंगीन वस्त्र	भेजना बिलकुल बन्द

स० १८३० में यही सामुद्रिक कर इस प्रकार और भी अधिक बढ़ाता गया।

भारतीयपदार्थ	इंग्लिस्तानमें सामुद्रिक कर १५००) रु० के मालपर
छींट	११०५) रु०
मलमल	४६०) रु०
रंगीन वस्त्र	भेजना बिलकुल बन्द।

इन सामुद्रिक करों तथा बाधाओंसे इंग्लिस्तानने भारतके वस्त्रोंका स्वदेशमें पुनर्जन्म बनानेमें जुलाहों पर ऐसे भयंकर अत्याचार किये गये कि उन्होंने वस्त्रोंका बुनना [illegible]या। इन सब दुष्ट नीतियों... परिणाम यह हुआ कि ...इधर उधर भागना शुरू किया।

भारतसे वस्त्र व्यवसाय सदाके लिए लुप्त हो गया और जुलाहे लोग बेकार हो करके खेतीके कामोंको करने लगे।

१८ वीं सदीमें भारतीय पूँजी पतियोंने स्वतन्त्र व्यापार तथा निर्हस्तक्षेपकी नीतिका सहारा प्राप्त करके कपड़ोंको बुननेके लिए कुछ एक मिलें खोलीं। स० १९३५ में यह मिलें अच्छी तरह चलने लगीं और इन्होंने पतली धोतियाँ बनाना भी शुरू कर दिया। इस उद्योगसे मान्चेस्टर तथा पेस्लेके पुतलीघर मालिकोंके कान खड़े हो गये। उन्होंने शोर मचाया और भारतीय मिलोंके सत्यानाशके लिए यत्न किया। भारत सरकार तो इंग्लिस्तानके पुतलीघर मालिकोंके प्रति अप्रत्यक्ष तौर पर उत्तरदायी है। अतः उसने बिना किसी प्रकारकी हिच-किचाहटके भारतीय मिलों पर स० १९३६ में ३½ प्रति शतकका व्यावसायिक कर लगा दिया और मिश्रकी उत्पन्न रूईको भारतमें आनेसे रोक दिया। इससे भारतमें पतले कपड़ोंका बनाना असम्भव हो गया। आजकल भारत सरकारने इंग्लिस्तानके स्वार्थको पूरा करनेके लिए स्वतन्त्र व्यापारकी नीतिको छोड़ करके सापेक्षिक सामुद्रिक करकी नीतिका अवलम्बन किया है। उससे इंग्लिस्तानके बालक तथा छोटे मोटे व्यवसायोंको भारतीयोंपर अप्रत्यक्ष तौरपर राज्यकर लगा करके बढ़ाया जावेगा। विदेशोंसे जो सस्ता माल मिलता था और जिसके भारतमें कारखाने नहीं हैं उनपर सामुद्रिक कर लगाया जावेगा और भारतके उन पदार्थोंका मूल्य चढ़ा करके कारखानोंको बढ़ाया जावेगा। परन्तु भारतीय गाढ़ निद्रामें मस्त हैं। उनको इसकी क्या चिन्ता है कि वह मर रहे हैं या जी रहे हैं।

वस्त्र व्यवसायके सदृश ही भारतमें आंग्ल राज्यने नौ व्यवसायका लोप किया है। वैदिक कालसे मुसल्मानी काल तक भारतवर्ष नौ व्यवसायी देश रहा। महाभारत तथा रामायण जलयात्राके किस्सोंसे भरपूर है इसपर बहुत लिखना वृथा है। क्योंकि प्रत्येक भारतीयको यह बात मालूम है। युक्ति कल्पतरुमें भिन्न भिन्न भारतीय नौकाओंकी जो लम्बाई चौड़ाई दी है उससे यह स्पष्ट है कि भारतमें यह व्यवसाय बहुत उन्नति कर चुका था।

नाम	लम्बाई क्यूबिट्समें	चौड़ाई क्यूबिट्समें	ऊँचाई क्यूबिट्समें
क्षुद्रा	१६	४	४
मध्यमा	२४	१२	८
भीमा	४०	२०	२०
चपला	४८	२४	२४
पटला	६४	३२	३२
भया	७२	३६	३६
दीर्घा	८८	४४	४४
पत्रपुटा	९६	४८	४८
गर्भरा	११२	५६	५६
मन्थरा	१२०	६०	६०

व्यावसायिक अधःपतनमें भारतसरकार



रतका सबसे प्राचीन व्यवसाय वस्त्र व्यवसाय था। ...
तथा साधारण स्त्रियाँ सूत कातकर जीवन-निर्वा...
कपड़े बनते थे वही यूरोपमें बिकने जाते थे ...
पूर्ण रखते थे। आंग्ल व्यापारियोंका ज...

तबसे उनकी स्वार्थाग्निमें भारतका-वस्त्र व्यवसाय झुलस गया ...
रोममें ६०० लाख रु० का सामान प्रति वर्ष जाता था।
आता था। और रोमको इस धन क्षतिसे बचनेके लिए
पड़ा था। मैगस्थनीजने चन्द्रगुप्त कालीन भारतीयों...
शिल्पमें बहुत ही चतुर हैं। उनके कपड़ोंपर सुनहरी
हैं। फूलदार मलमलके वस्त्र वे प्रायः पहनते हैं
करके चलते हैं क्योंकि वह लोग सुन्दरता पर ...
बढ़ानेके लिए सर्व प्रकारके उपाय करते हैं ...
शिल्प तथा वैभव बहुत ही प्रसिद्ध बढ़ा हुआ था
तक यह शिल्प तथा वैभव पूर्ववत् ज्योंका त्यों
व्यापारियोंको भारतके वस्त्र व्यवसायको तबाह
१७६६ से स० १८२२ तकके भारतीय व्यापार...
रु० भेजने पड़े। इस पर इंगलिस्तानने बड़ा ...
अपने देशमें आनेसे रोकनेके लि...
इंगलिस्तानमें राज्यकी ...
भार...

जावेगी। परिणाम इसका यह हुआ कि कई सहस्र वर्षोंसे प्रफुल्लित होता हुआ भारतीय नौ व्यवसाय मुगल कालमें सदाके लिए नष्ट हो गया।

नौ व्यवसाय तथा अन्य व्यवसायोंके सदृश भारतीय शिल्प तथा चित्रण व्यवसाय भी मुगल कालमें नष्ट हुआ है। अशोकके स्तम्भ अथवा लाटें तथा स्तूपोंको जिन कारीगरोंने बनाया था उन्हींके सन्तानों तथा वंशजोंने मुसल्मानी समयकी बड़ी बड़ी इमारतोंको बनाया था ताजमहल, हुमायूंका मकबरा तथा आगरा तथा दिल्लीके किले भारतीय शिल्पियोंके शिल्पके ही नमूने हैं। शिल्पके सदृश ही प्राचीन कालमें भारतीय चित्रण व्यवसायने भी अपूर्व उन्नति प्राप्तकी थी। अकबरके राज्य दरबारमें निम्नलिखित चित्रकार प्रसिद्ध थे।

(१)	तबरीजके मीर सय्यद अली	(१०)	कल्मक
(२)	ख्वाजा अब्दुस्समाद	(११)	मधु
(३)	दसवन्त	(१२)	जगन
(४)	बसवान	(१३)	महेश
(५)	केशु	(१४)	खेमकरण
(६)	मकुन्द	(१५)	तारा
(७)	जल	(१६)	सन्नुल्लाह
(८)	मुश्किन	(१७)	हरिवंश
(९)	फर्रुख	(१८)	राम

इन चित्रकारोंकी आमदनीका इसीसे पता लगाया जा सकता है कि अकबरने रज्म-नामा नामकी पुस्तकको ६,००,०००) रु० में खरीदा था। जहाँगीरको अकबरकी अपेक्षा भी चित्रणकलामें अधिक शौक था। उसने इस कलाको बहुत उन्नत किया। आंग्ल कालमें इस कलाकी भी उपेक्षाकी गई और यह सर्वनाशको ही प्राप्त हो चुका था कि कुछ एक बंगाली वीरोंने इसका पुनरुद्धार किया।

महाशय ई० बी० हेवलकी सम्मति है कि "आंग्ल महाविद्यालयोंने चित्रण व्यव-सायको बहुत ही अधिक उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है। आंग्ल शासकोंने भी इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है।" अकबर जहांगीर तथा शाहजहांके कालमें बड़े बड़े चित्रकारोंके साथ मुगलसम्राट् तथा मुसलमानी नवाब मित्रोंके सदृश व्यवहार करते थे। हिन्दू राजाओंके समय-में राजपूतानेमें भी शिल्पियों तथा चित्रकारोंका अच्छा मान था। उनको उच्च उच्च राज्यपद दिये जाते थे। कलकत्ताके राजकीय पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित फारसीकी पुस्तक है जिसमें ताजमहल बनानेवाले भिन्न भिन्न शिल्पियोंकी वेतनोंको इस प्रकार दिया है।

	रुपया	मासिक वेतन
प्रथम श्रेणीके शिल्पीका	१०००	,,
द्वितीय ,,	८००	,,

जैपाला	१२८	१६	१२¾
धारिणी	१६०	२०	१६
वेगिनी	१७६	२२	१७⅓

पञ्जाबमें सिन्धु नदी उपरिलिखित प्रकारकी नौकाओंसे भरपूर थी। सिक-
न्दरने कुछही समयमें यहाँसे दो सहस्र नौकाओंको एकत्रित किया था और उनके
सहारे भारतपर आक्रमण किया था। महाराज चन्द्रगुप्तने जल सेना तथा नौका प्रबन्धके
लिए एक पृथक सभाका निर्माण किया था। अन्ध्र कुशान कालमें भारतका व्यापार रोमके
साथ शुरू हुआ और इससे भारतके नौ व्यवसायको विशेष उत्तेजना मिली। गुप्त तथा हर्ष-
वर्धनके समय तक भारतीय नौ व्यवसाय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता चला गया।
यही वह समय है जब कि चोल राज्यके पोत समूह गंगा तथा ऐरावती नदीको घेरे रहते थे।
कालिंगका पूर्वीयराज्य इस समय एक समृद्ध और वैभवशाली राज्य था। इस राज्यके कई
एक शिला लेखोंसे विदित होता है कि पोतविद्याका जानना तात्कालिक राजाओंकी शिक्षाका
एक प्रधान अंग था। मुसलमानी समयमें भारतका नौ व्यवसाय अपनी पूर्ण उन्नतिपर आ
पहुँचा। सिन्धका प्रसिद्ध बन्दरगाह दीवाल चीनी तथा यूनानके व्यापारियोंका केन्द्र था।
चीनी जहाज भड़ोच ठहरते हुए दीवाल आते थे। बलबनने सामुद्रिक पोतोंके द्वारा ही बंगाल-
को विजय किया था। अकबरके समयमें निम्नलिखित स्थान बंगालमें नौव्यवसायके लिए
प्रसिद्ध हो गये।

(१) सन्द्वीप
(२) दुधाली
(३) जहाज घाट
(४) चाकरती
(५) टाडा
(६) बल्क
(७) श्रीपुर
(८) सोनार गेयाल
(९) सन गेयाल
(१०) घौर

धारनगर चिरकालसे बंगालमें नौ व्यवसायका केन्द्र था। इसीके कुछ एक व्यापा-
रियोंने अपने अपने जहाजोंके द्वारा रूम तक यात्राकी थी और वहाँ रेशमका माल बेचा था
औरंजेबके समयतक भारतीय नौ व्यवसायको उन्नति तथा उत्तेजना मिली। अंग्रेजोंका राज्य
भारत पर आते ही इस व्यवसायके सदृश ही नौ-व्यवसायका लोप हो गया। महाशय टेलरने
अपने हिन्दुस्तानके इतिहासमें लिखा है कि 'हिन्दुस्तानी जहाज जब लन्दनके नगरमें पहुँचे,
उसी समय आंग्ल व्यापारियोंमें हलचल मच गई। उन्होंने भारतीय जहाजोंको देखते ही अपने
सत्यानाशको ताड़ लिया। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि अब भारतीय जहाजोंके कारण
आंग्ल नौ-व्यवसायियोंको भूखा मरना पड़ेगा। सन् १८०० में इंग्लिस्तानके अन्दर इस
प्रश्नने भयंकर रूप धारण किया। उसी समयसे आंग्ल राजने यह अपनी स्थिर नीति
बना ली कि भारतीय भारतीय नौ-व्यवसायियोंको किसी प्रकारकी भी सहायता न पहुँचायी

जाय। परिणाम इसका यह हुआ कि यह व्यवसाय कभी उन्नत न होगा, इसमें भारतीय भी व्यवसाय करनेसे रहित हो गये।

जो व्यवहार तथा यन्त्र कलाओंके साथ ही भारतीय शिल्प तथा चित्रण व्यवसाय भी बरबाद करनेमें नष्ट हुआ है। भारतीयोंके स्वयं आगे बढ़े तथा मुगलोंके जिन कारीगरोंने बनाया था उन्होंके गुम्बजों तथा अकबरने मुसलमानी मस्जिदें बड़ी बड़ी इमारतोंको बनाया था ताजमहल, जुम्मा मसजिद तथा आगरा तथा दिल्लीके किले भारतीय शिल्पियोंके शिल्पके ही नमूने हैं। जिनके सदृश ही प्राचीन कालमें भारतीय चित्रण व्यवसायने भी अपूर्व उन्नति प्राप्त की थी। अकबरके राज दरबारमें निम्नलिखित चित्रकार प्रसिद्ध थे।

(१)	नादिरीक मीर सय्यद अली	(१०)	कालमक
(२)	ख्वाजा अब्दुस्समद	(११)	मधु
(३)	दसवन्त	(१२)	जगन
(४)	बसावन	(१३)	महेश
(५)	केशु	(१४)	खेमकरन
(६)	मकुन्द	(१५)	तारा
(७)	लाल	(१६)	सन्वलदास
(८)	मुश्किन	(१७)	हरिबंश
(९)	फरुख	(१८)	राम

इन चित्रकारोंकी आमदनीका इसीसे पता लगाया जा सकता है कि अकबरने रज़मनामा नामकी पुस्तकको ६,००,०००) रु० में खरीदा था। जहांगीरको अकबरकी अपेक्षा भी चित्रणकलामें अधिक शौक था। उसने इस कलाको बहुत उन्नत किया। आंग्ल कालमें इस कलाकी भी उपेक्षाकी गई और यह सर्वनाशको ही प्राप्त हो चुका था कि कुछ एक बंगाली वीरोंने इसका पुनरुद्धार किया।

महाशय ई० बी० हेवलकी सम्मति है कि "आंग्ल महाविद्यालयोंने चित्रण व्यवसायको बहुत ही अधिक उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है। आंग्ल शासकोंने भी इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है।" अकबर जहांगीर तथा शाहजहांके कालमें बड़े बड़े चित्रकारोंके साथ मुगलसम्राट् तथा मुसलमानी नवाब मित्रोंके सदृश व्यवहार करते थे। हिन्दू राजाओंके समयमें राजपूतानेमें भी शिल्पियों तथा चित्रकारोंका अच्छा मान था। उनको उच्च उच्च राज्यपद दिये जाते थे। कलकत्तांके राजकीय पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित फारसीकी पुस्तक है जिसमें ताजमहल बनानेवाले भिन्न भिन्न शिल्पियोंकी वेतनोंको इस प्रकार दिया है।

	रुपया	मासिक वेतन
प्रथम श्रेणीके शिल्पीका	१०००	"
द्वितीय "	८००	"

		मासिक वेतन
	४००	,,
तृतीय ,,	२००	
चतुर्थ श्रेणी		

मुसल्मानी जमानेमें अनाज बहुत सस्ता। था अतः उपरिलिखित रुपयोंकी क्रय शक्ति वर्तमान समयसे दुगुनोंसे भी अधिक थी। परन्तु आजकल दशा विचित्र है। आज कल भारतीय शिल्पियोंका तीससे साठ तक ही वेतन बहुत समझा जाता है। राज्यकी ओरसे यदि उनको कभी कुछ प्रदर्शिनीमें दिया भी जाता है तो वह एक चार या पाँच रुपयोंका तमगा ही होता है*।

सारांश यह है कि कृषि व्यवसाय व्यापारका राज्यकी सहानुभूतिसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह वे लतायें हैं जो कि राज्यरूपी पेड़के सहारे रहती हैं। यदि राज्य ही नाशक चिनगारियाँ उगलने लगे तो देशके कृषि व्यवसाय व्यापारका नाश हो जाना स्वाभाविक है।

प्राणनाथ



* उपरिलिखित संपूर्ण प्रकरणों पर लेखकने अपने 'भारतीय संपत्ति शास्त्र'में
ते प्रकाश डाला है। वहाँ ही इस विषयका विस्तृत प्रकारसे भिन्न भिन्न प्रमाण
ों को देते हुए पर्य्यालोचनाकी गयी है।

दासताका इतिहास

(२)



आधुनिक राज्यक्रान्तियोंसे उसका अन्त प्रारम्भ हुआ, और योरोपवालोंने केवल स्पेनको छोड़कर, अन्य यूरोपीय देशोंमें यह प्रथा लुप्त हो गई। परन्तु अब इन्होंने एक दूसरा ही ढंग आरम्भ किया। यह ढंग पहिलेकी अपेक्षा अधिक घृणित और भीषण था। इसका प्रचार किसी सामाजिक आवश्यकताको दूर करनेके लिए नहीं हुआ था, इसका सम्बन्ध यूरोपीय जातियोंकी स्वार्थपरतासे था। यूरोपके बड़े २ समुद्रयात्रियोंने बहुतसे नये देश और टापू इस समय ढूंढ निकाले थे, जहां और और भिन्न भिन्न जातियां अपने उपनिवेश स्थापित कर रही थीं। वहांके जंगली आदमियोंको पकड़ पकड़कर इन जातियोंने उनका व्यापार भी आरम्भ कर दिया। इस व्यापारसे आगे चलकर बहुत उन्नतिकी और आजकलकी सब सभ्य कहलाने वाली यूरोपीय जातियोंने इससे खूब आर्थिक लाभ उठाया।

सबसे पहिले इस प्रकारके व्यापारका प्रारम्भ स्पेन और पुर्तगालने किया। स० १४४६ में राजकुमार हेनरीके साथ कुछ पुर्तगाल निवासी, अटलांटिक सागरसे अफ्रीकाकी यात्रा कर रहे थे। इन्हीं लोगोंमेंसे एक अफसरने कुछ मूर लोगोंको पकड़ा। इसका नाम था एन्टमगान गंजल्ज। राजकुमारने पकड़े हुए मूर लोगोंको उन्हींके देशमें छोड़ आनेकी आज्ञा दी। जब वह अफसर इन लोगोंको छोड़ने गया तो वहांके निवासियोंने, उनके बदलेमें उसको बहुत कुछ सोना दिया। बस इस थोड़ीसी बातसे, इन लोगोंको अफ्रीका निवासियोंको पकड़ पकड़कर कुछ सोना लेकर छोड़नेकी चाट पड़ गई। अफ्रीकाके समुद्र तटपर कईएक किले बनाये गये, और इस घृणित व्यापार चलानेके लिए एक जहाजी-बेड़ा तयार किया गया। इस समय स्पेनने अमरीकाके निकटवर्ती कईएक टापुओंमें अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। अफ्रीकाके हबशी पकड़ पकड़कर प्रायः इन्हीं उपनिवेशोंको भेजे जाते थे। इन लोगोंको ईसाई मतकी थोड़ी बहुत शिक्षा भी दी जाती थी, जिससे इन लोगोंके द्वारा इस मतका प्रचार उन उपनिवेशोंमें हो सके। स० १५१७ के लगभग, फर्डीनन्दके राजत्वकालमें हैती द्वीपमें अफ्रीकासे सहस्रों हबशी ले जाकर बसाये गये।

'सोनेकी चिड़िया' भारतवर्षकी तलाशमें कोलम्बसने अमरीकाको ढूंढ निकाला। यहांके जंगली निवासी 'भारतवासियों'के नामसे प्रसिद्ध किये गये, और कोलम्बसने इनको पकड़ पकड़कर स्पेन भेजना आरम्भ किया। स० १४६१ ई० में उसने ५०० आदमी भेजे, जिनको बेचनेकी राज्यसे आज्ञा मिल गई। परन्तु इन लोगोंके सरल स्वभावको देखकर रानी इसाबेलाको बहुत दया आई, और उसने इन लोगोंको वापस करा दिया। परन्तु इस व्यापारका अन्त नहीं हुआ, और यह बराबर चलता ही गया।

हैती द्वीपमें जो स्पेन निवासी बसे थे, उनको खानोंमें काम करनेके लिए, आद-

स्नापं

उपनिवेशोंमें माँग बराबर बढ़ते रहनेसे, अमरीकामें बिचारे हबशियोंका शिकार पशुओंकी तरह किया जाता था। यह लोग किस नीचतासे पकड़े जाते थे, इसकी कहानी बड़ी हृदयविदारक और सभ्य कहलानेवाले मनुष्योंके लिए लज्जास्पद है। कभी कभी इनको पकड़नेके लिए अमरीकाके डाकू व्यापारी रातको गाँवोंमें आग लगा देते थे, और जब प्राण रक्षाके लिए यह भाग निकलते थे, तो पकड़कर बाँध लिये जाते थे। जहाजोंपर इनके साथ ऐसा कठोर व्यवहार होता था कि बहुतसे तो मार्गमें ही कालका कलेवा बन जाते थे। उपनिवेशोंमें पहुँचनेपर भी वैसाही व्यवहार जारी रहता था। असह्य शारीरिक कष्टोंसे पीड़ित होकर इनकी दुखमयी जीवनलीला थोड़े ही कालमें समाप्त हो जाती थी। स्त्री-पुरुषोंकी संख्यामें अधिक असमानता होनेके कारण जनताकी स्वाभाविक वृद्धि भी रुक जाती थी। यह असमानता इस सीमा तक पहुँची थी कि स० १८४६ में जमैका द्वीपमें स्त्रियोंकी अपेक्षा ३०,००० पुरुष अधिक थे।

अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें, इंग्लिस्तानके कईएक उदार सहृदय विद्वानोंकी दृष्टि इस व्यापारपर पड़ी, और उन्होंने अपने लेखोंद्वारा जनताका ध्यान इसके दोषोंकी ओर आकर्षित किया, जिसका फल यह हुआ कि इस व्यापारको समूल नष्ट करनेके लिए एक आन्दोलन चल पड़ा। भावोंमें परिवर्तन लानेका यश इस समयके बहुतसे लेखकोंको प्राप्त है, जिनमेंसे मुख्य कवि पोप, सैवेज और काउपर, डाक्टर जानसन, और प्रसिद्ध अर्थशास्त्र-वेत्ता एडम स्मिथ और मिल हैं। स० १८३३में कामन्स सभामें हार्टलेने इस व्यापारको "ईश्वरीय नियम और मनुष्योंके स्वाभाविक अधिकारोंके प्रतिकूल" बतलाते हुए इसको बन्द करनेके लिए प्रस्ताव किया, परन्तु अभी तक जनता ऐसे उच्च विचारोंसे प्रेरित होकर इतने भारी आर्थिक लाभको छोड़नेके लिए कटिबद्ध न थी, इसलिए यह प्रथम प्रयत्न निष्फल गया।

इस ओर सबसे अधिक प्रयत्न एक विशेष सम्प्रदायके अनुयायियोंने किया जो 'क्वेकर' अथवा मित्रोंके नामसे प्रसिद्ध थे। इन लोगोंने यह नियम बना रक्खा था कि इनके संघ या समाजका कोई सदस्य दासोंके व्यापारियोंके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खे। अमरीकामें भी इसी सम्प्रदायवाले सबसे प्रथम इस व्यापारको बहिष्कृत करनेमें अग्रसर हुए। इन भावोंने बराबर उन्नति होती गई और मई स० १८४४ में इसके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिए एक विशेष सभा स्थापित की गई जिसने इस विषयकी खूब छान-बीन की, और लोगोंको पार्लामेन्टकी सभामें इसके विरुद्ध प्रार्थनापत्र भेजनेके लिए उत्तेजित किया। अन्तमें इस विषयकी जाँच करनेके लिए राजकी ओरसे प्रिवीकौंसिलकी एक कमेटी नियुक्त हुई, पर उसका प्रयत्न भी निष्फल हो गया। स० १८५१ तक विल्बर-फोर्स और फाक्स जैसे राजनीतिज्ञोंने कई बार कानून सभामें इसके विरुद्ध कई एक प्रस्ताव पास करनेका प्रयत्न किया। परन्तु इस समय इंग्लिस्तानके विरुद्ध नेपोलियनके युद्ध छिड़े होनेके कारण, इन लोगोंके पवित्र उद्देश्यकी सिद्धि न हो सकी। स० १८६४ में

पदी जाकर माईंगनमाने बहुत नीतिसे दासोंके व्यापारको बन्द करनेका प्रस्ताव स्वीकार
किया। इस प्रकारको धनन्न गमाने भी पास कर दिया, और फाल्गुन सं० १८६६
के बारमें उपनिवेशोंमें दासियोंका भेजना बिलकुल बन्द कर दिया गया। पर तब भी
तीन वर्ष तक यह व्यापार गुप्त रीतिसे कर होता रहा। अन्तमें सं० १८६८ में पार्लामेन्टने
नियम बना दिया कि जो कोई इस व्यापारको करता हुआ पकड़ा जायगा उसको देश निष्का-
सनका दण्ड दिया जायगा। तब जाकर इस मनानुषी अत्याचारका अन्त इंगिलस्तानमें हुआ।

फ्रान्समें इसके विरुद्ध आन्दोलन राज्यक्रान्तिके समयमें ही प्रारम्भ हो गया था।
कुछ भागोंमें अत्याचारका परिवर्तन लानेवाले कन्वेन्शनकी अध्यक्षतामें इस कार्यके लिए एक
सभा स्थापित हुई। मांग पत्र कर लाफैट और मिराबो ऐसे नेताओंने भी जोर लगाया था
और सं० १८४९ में मनुष्यके अधिकारोंकी जो घोषणा हुई, उसमें इस बातकी आशा होने लगी
कि कुछ उपनिवेश सेन्ट डोमिन्गो या हैतीके दास भी मुक्त हो जायेंगे, परन्तु वहांके कुछ
प्रवासियोंने इसका विरोध किया कि राष्ट्र सभाको कठिन नियमोंके पास करनेका साहस न
हो सका। इस समय दासोंका जो नेता परिश्रमसे स्वतन्त्रताकी भिक्षा मांगने आया था, वह
जब निराश होकर लौटा, तो कुछ प्रवासियोंने उसे जीवित एक पहियेसे बांधकर उसकी
हड्डियां तोड़ डालीं। सम्राट् नेपोलियनने इस प्रथाको अर्थात् रखनेके लिए दासोंको मुक्त
कर दिया, परन्तु थोड़े ही काल पश्चात् उसने अपनी प्रथम आज्ञा पलट दी। एल्बा द्वीपसे
भागकर जब वह दूसरी बार राज्य करने आया तो उसने फिरसे इस व्यापारको बन्द करने
की आज्ञा दी। तबसे बराबर राज्य इसकी चेष्टा करता रहा और जून सं० १८७६ में इस
व्यापारको बिलकुल बन्द कर दिया।

नेपोलियनके पतनके पश्चात् आस्ट्रियाकी राजधानी वीनामें यूरोपका बटवारा करनेके
लिए जो सभा बैठी उसने इस प्रश्नको भी हल करना चाहा, पर कृतकार्य न हो सकी।
परन्तु तबसे इसके लिए प्रत्येक देशमें प्रयत्न बराबर अवश्य होता रहा। इंगिलस्तानकी नीति-
का अनुसरण कई देशोंने अवश्य किया पर इस प्रथाको सबसे पहिले बन्द करनेका यश डेन-
मार्कको प्राप्त है। वैशाख सं० १८४९ की एक राजाज्ञासे सं० १८६० तक डेन्मार्कके कुछ
अधिकृत देशोंमें यह व्यापार एक दम बन्द कर दिया गया। सं० १८६१ में अमरीकाने भी
ऐसाही नियम बना दिया। सं० १८७२ में इस व्यापारसे सबसे अधिक लाभ
उठानेवाले, पुर्तगाल व्यापारियोंने भी इंगिलस्तानने ४५,००,००० रु० लेकर
सं० १८८७ तक इस व्यापारको बन्द करनेका वचन दिया। सं० १८८३ में
पुर्तगालके राज्यने इस व्यापारको रोक देनेका नियम पास कर दिया। स्पेनने भी अंगरेजोंसे
६०,००,००० रु० लेकर, सं० १८७७ में अपने इस प्राचीन धनके द्वारको बन्द कर दिया।
लोगोंने इसको सं० १८७१ ही में बन्द कर दिया था, और स्वेडनने भी इसका अन्त
१८७० में हो गया था। इसलिए सं० १८८७ तक यूरोपके सभी राज्योंने इस व्यापारको
करके कलंकके काले टीकेको अपने माथेसे मिटा डाला।

इस तरह आनेके लिए तो व्यापार अवश्य बन्द हो गया, पर जो लोग अभी दासताकी शृंखलामें पड़े थे वह मुक्त न हुए। इसलिए अब इनको मुक्त करनेके लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इंगलिस्तानमें विलबरफोर्सने इसके लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया। इधर उपनिवेशोंके प्रवासियोंने भी दासताके साथ विरोध करना चाहा, क्योंकि अब बाहरसे दासोंका आना तो बन्द ही था, इसलिए उनका काम जो दास उपनिवेशोंमें मौजूद थे, उन्हीं पर निर्भर था। परन्तु इस विरोधका ध्यान न करके स० १८३४ में पार्लमेन्टने सब अंगरेज उपनिवेशोंमें दासोंके मुक्त करनेका नियम बना दिया। इसके अनुसार कई करोड़ रुपया इन प्रवासियोंको हर्जानेमें ब्रिटिश सरकारको देना पड़ा। पर स० १८३८ तक प्रायः सभी उपनिवेशोंमें दास मुक्त हो गये। इंगलिस्तानकी इस उदार नीतिका अनुसरण यूरोपके अन्य देशोंने भी किया। अमरीकाने बहुत पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया था। स० १८४८ में फ्रान्सने इस ओर ध्यान दिया, पुर्तगालने स० १८५८ में नियम बनाया कि २० वर्षमें सब दास मुक्त कर दिये जायँ, और इस तरह स० १८७८ में लाखों दासोंको स्वतन्त्रता मिल गई। स० १८६३ में डच लोगोंने भी इसी उदार नीतिसे काम लिया। मेक्सिको तथा दक्षिणी अमरीकाकी कई एक अन्य रियासतोंने भी इस पवित्र कार्य्यमें भाग लिया। पर तब भी इस समय क्यूबा, ब्रेजिल और संयुक्त राज्योंकी कुछ दक्षिणी रियासतोंमें दासोंकी शृंखलाएँ न कट सकीं।

अमरीकाके संयुक्त राज्योंके जन्मदाता यद्यपि दासताके समर्थक न थे, तथापि कई एक रियासतोंमें यह प्रथा बहुत कालतक प्रचलित रही। अमरीका संयुक्त राज्योंके प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन, अपने निजके दासोंको मुक्त करनेके लिए अपनी वसीयतमें लिख आये थे। अमरीका जैसे स्वतन्त्र देशके मस्तकसे इस कालिमाको हटानेके वे बड़े पक्षपाती थे। दूसरे राष्ट्रपति जेफर्सनको इस प्रथासे बड़ी घृणा थी। वे कहा करते थे कि "जब मैं यह सोचता हूँ कि ईश्वर न्यायी है, तो मैं अपने देशका ध्यान करके काँपने लग जाता हूँ।" जिस समय संयुक्त राज्योंका संगठन हो रहा था, जेफर्सनने बहुत चाहा कि दासताको तोड़नेकी शर्त रख ली जाय, पर वैसा न हो सका। स० १७८७ में जब फिलाडेल्फियामें नवीन संगठनका निर्माण प्रारम्भ हुआ, तो फिर इस बातका प्रयत्न किया गया, परन्तु दक्षिणी कैरोलीना और जार्जियाने ऐसा विरोध किया कि तब भी स्वतन्त्रताकी जन्मभूमिमें दासताका अन्त न हो सका। परन्तु संयुक्त राज्य स्थापित हो जाने पर उत्तरीय रियासतोंमें इसके लिए बराबर प्रयत्न होता रहा, और धीरे धीरे स० १७८४ से लेकर स० १८०४ तक प्रायः इन सभी रियासतोंसे यह प्रथा निकाल बाहर कर दी गई। पर उत्तरसे हटकर इसने अपना अड्डा दक्षिणमें जमाया।

स० १८०३ में लुइसियाना अमरीकाके अधिकारमें, यहाँ दासोंकी बड़ी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त और बहुतसी बातें ऐसी हुईं, जिनसे दक्षिणी रियासतोंमें यह प्रथा जोर ही पकड़ती गई। साथही साथ दासों पर अत्याचारकी मात्रा भी बढ़ती गई। इस अन्यायको स्वतन्त्रता प्रिय उत्तरीय रियासतें सहन न कर सकीं। वहाँके लोग बराबर समाचारपत्रोंमें,

सभाओंमें दक्षिणी रियासतोंकी निन्दा किया करते थे। सं १९०९ में मिसेज़ हेरियट बीचर स्टोने अपने 'टाम बाबाकी कुटिया' नामक उपन्यासमें इस प्रथाका ऐसा हृदय विदारक चित्र खींचा कि सारी जनताके हृदयमें इस प्रथासे हाथ धोनेकी प्रबल आकांक्षा जागृत हो उठी। दक्षिणी रियासतोंने इस विचार स्वतन्त्रताको दबाना चाहा। इस समय यह रियासतें इतनी स्वार्थसे अन्धी हो रही थीं, कि यहाँ धर्म संघ भी दासताका पक्षपाती बन रहा था। अब सबको यह भासित होने लग गया कि बिना युद्धके अब इस प्रश्नका निर्णय न होगा। स० १९१७ में अब्राहम लिंकनको राष्ट्रपति चुनते ही, दक्षिणी रियासतोंने विद्रोहका झंडा ऊँचा किया। पाँच वर्षतक बराबर परस्परमें युद्ध होता रहा। एक ओर यदि मानव जातिको स्वतन्त्र करानेका उच, पवित्र, दृढ सङ्कल्प था, तो दूसरी ओर गहरी स्वार्थपरता थी। पर अन्तमें स्वतन्त्रताकी विजय हुई, और स० १९२२ में संयुक्त राज्योंके संगठनमें, दासताकी प्रथाको सदाके लिए बन्द करनेका नियम भी जोड़ दिया गया।

क्यूबा और ब्रेजिलने भी आगे चलकर अपने पड़ोसियोंकी नीतिका अनुसरण किया। स० १९४५ में यहाँसे भी दासता उठ गई। रूसमें इसका अड्डा बहुत दिन तक जमा रहा। पर यहाँकी दासता पुराने ढंगकी थी। सब किसान, भूमिपतियोंके दास समझे जाते थे। बचोंको बेचनेकी चाल थी। ऋणके बदलेमें भी महाजन ऋणीको दास बनाकर रखते थे। जमींदार अपने किसानोंको एक एक करके पशुओंकी भाँति बेचा करते थे। राज्यको इसपर टैक्स मिलता था, इसलिए वह कोई बाधा न डालता था। रानी कैथराइन द्वितीयाके समयमें दासता अपनी चरमसीमाको पहुँच गई। भूमिके साथ कभी वैसेही, कभी कुटुम्ब सहित, कभी अकेले ही, किसान बराबर बिका करते थे। किसानोंका नीलाम केवल 'एक यूरोपीय राज्यके लिए अयोग्य' समझा जाता था। बिना किसी प्रकारका न्यायालयमें अभियोग चलाये हुए किसानोंको पकड़कर साइबेरिया भेजदेने तकका भी अधिकार जमींदारोंको प्राप्त था। परन्तु पालके राजत्वकाल (स० १८५३—१८५८) से प्रवृत्ति बदलने लगी। ज़ार सिकन्दर द्वितीय, और ज़ार निकोलसके समयमें राज्यका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। जमीन्दारोंका विरोध होते हुए भी, इस विषयकी जाँचके लिए राज्यकी ओरसे कई एक कमेटियाँ नियुक्त हुईं। बहुत झगड़ोंके बाद स० १९१८ में ज़ारकी आज्ञासे किसानोंकी दासताका अन्त हुआ। कहा जाता है कि इससमय इन मुक्त हुए दासोंकी संख्या २१,६२५,६०९ थी, जिनमें २०,१५८,२३१ किसान थे, और शेष १४,६७,३७८ घरेलू दास थे। इतने दिनों तक [illegible] प्रथाके जारी रहनेका रूसपर क्या प्रभाव पड़ा, इसका पता रूस भरमें आजकल जो "बोलशेविज़्म" का ताण्डव नृत्य हो रहा है, उससे चल रहा है।

स० १९४५ के लगभग यह प्रथा रूम और मिश्र देशोंमें भी बन्द कर दी गई।

इस तरह संसारमें दासताका अन्त हुआ। पर यह न समझना चाहिए कि यह प्रथा संसारसे बिलकुल उठ ही गई है। यद्यपि आजकल इसका नाम 'दासता' नहीं है, तथापि कई एक रूपोंमें यह अब भी वर्तमान है। इसके सभी लक्षण आधुनिक कुली प्रथामें पाये जाते

है। पाठको, [illegible] भारतवासी कुछ ऐसे [illegible] हैं, और उनपर क्या क्या [illegible] होते हैं, उनको [illegible] नहीं आवश्यकता नहीं है। यदि यह 'इतिहास' नहीं है तो क्या है?

इतिहासके इस दृष्टान्तको ऊपर एक बार ध्यानमें रखना जरूरी है। भारतवर्षने प्राचीन समयमें प्रजातन्त्र शासनके आदर्शको चाहे समझा हो या न समझा हो, उसने अपने निवासियोंको सामाजिक स्वतंत्रता चाहे दी हो या न दी हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसने कभी ऐसे नीच, अनुचित, अस्वाभाविक और दूषित व्यवस्थामें अपना स्वार्थ साधन नहीं किया, और यह भारतवासियोंके लिए कुछ कम गौरवकी बात नहीं है।

गङ्गाशङ्कर

कौटिलीय अर्थशास्त्रकार



तिशास्त्र या शब्दान्तरमें अर्थशास्त्रका सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थ चाणक्य कौटिल्यका बनाया हुआ कौटिलीय अर्थशास्त्र ही है । इसमें सन्देह नहीं है कि अत्यन्त प्राचीन विद्वत्ताके ग्रन्थको प्रकाशित करके मैसूर सरकारी पुस्तकालयके अध्यक्षोंने लोकपर बडाही उपकार किया है । तिसपर भी प्रकाशक पं० श्यामशास्त्री महोदयने इसको यथाशक्ति प्रकाशितकर भारतवर्षके गौरवको उच्च किया है ।

इसी ग्रन्थके गौरवको बढानेका प्रयत्न बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् राधाकुमुद मुकुरजी तथा नरेन्द्रनाथ लॉ ने अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित करके किया है ।

इस ग्रन्थका प्रणेता, अर्थशास्त्रमें प्रवीण आचार्य, अत्यन्त बुद्धिमान चाणक्य नामक ब्राह्मण हुआ है । जो स्वयं भारतके राजमणि महाराजा चन्द्रगुप्तका महामात्य, तथा उसको स्वयं राजगद्दी देनेवाला हुआ है । इसीकी अनुपम कीर्तिको गानेवाले प्रसिद्ध कवि विशाखदत्तने संपूर्ण नाटकको मानो इसके नामपर अर्पण ही कर दिया है ।

मुद्राराक्षस नाटकमें चाणक्यने नव नन्दोंको किस प्रकार नाशकरके चन्द्रगुप्तको राज्यलक्ष्मीका मालिक बनाया यह बहुत अच्छी प्रकारसे दर्शाया है ।

विष्णुपुराणसे यही प्रतीत होता है कि यह महामात्य ब्राह्मण अवश्य ४०० वर्ष पूर्व स्वतः नन्दवंशका नाशकर चन्द्रगुप्त मौर्यकी प्रतिष्ठा करके प्रसिद्ध हुआ है १ ।

चन्द्रगुप्तका पोता अशोकवर्धन बड़ा भारी प्रसिद्ध बौद्ध धर्मानुयायी राजा इतिहास-प्रसिद्ध हो गया है । भारतके अनेकानेक स्थानोंपर विजयस्तम्भ तथा शासनलेख लिखवाकर व खुदवाकर उसने अपनी कीर्तिको मूर्तिमान किया है । उसका अभिषेककाल विक्रमसे २७६ वर्ष पूर्व है । उसका पिता चन्द्रगुप्त विक्रम से ३६६ वर्ष पूर्व राज्य करता था । इतिहासके अनुशीलनसे हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं ।

सुप्रसिद्ध कवि दण्डी अपने काव्य दशकुमारचरितमें इसी अर्थशास्त्रके कर्ताको विष्णुगुप्तके नामसे याद करते हैं । विशाखदत्तके बनाये मुद्राराक्षसमें चाणक्य, विष्णुगुप्त, कौटिल्य, ये तीनों नाम एकही व्यक्तिके लिए लिखे गये हैं ।

---

(१) "महापद्मः तत्पुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति नवैव तान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति तेषामभावे मौर्याश्चपृथिवीं भोक्ष्यन्ति । कौटिल्यएव चन्द्रगुप्तमभिषेक्ष्यति । तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति । तस्यापि अशोकवर्धनः ।" विष्णु० पु० अं० ४ अ० २४ ।

"महापद्म और उसके पुत्र १०० वर्षतक राजे रहेंगे । उन नव नन्दोंका कौटिल्य ब्राह्मण नाश करेगा । उनके मर जानेपर मौर्यवंशके राजा पृथिवीका भोग करेंगे । कौटिल्य ही चन्द्रगुप्तका अभिषेक करेगा । उसका पुत्र बिन्दुसार और उसका पुत्र अशोकवर्धन होगा ।"

कवि दण्डी चाणक्यके विषयमें निम्नलिखित वचन लिखता है।

"वृद्ध राजमन्त्री राजकुमारको समझाने लगा।

" अधीष्व तावद् दण्डनीतिम्। इयमिदानीं आचार्य विष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा "

" हे राजपुत्र! दण्डनीतिको पढ़। इसको आचार्य विष्णुगुप्तने ६००० श्लोक परिमाणमें संक्षेपसे बनाया है। इसको पढ़कर इसके अनुकूल कार्य करनेपर ठीक ठीक कर्म प्रकारसे फल मिलता है।"

इससे प्रतीत होता है कि दण्डीके वचनोंमें उद्धृत अर्थशास्त्र या दण्डनीतिका शास्त्र यही है क्योंकि इसी शास्त्रके आरम्भमें स्वयं कौटिल्य आचार्य कहते हैं कि—

" पृथिव्या लाभे पालनेच यावन्ति अर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः

प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्य इदमेकमर्थशास्त्रं कृतम् "

'पृथिवीकी प्राप्ति और रक्षा करनेके विषयमें जितने अर्थशास्त्र पुराने आचार्योंने बनाये हैं प्रायः उन सबका संक्षेप करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया है।'

इसी प्रकार अ[illegible] प्रचार नामक द्वितीय अधिकरणके दशम अध्यायकी समाप्ति-पर आचार्य कहते हैं कि—

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।

कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥

सब शास्त्रोंका अनुसरण करके उनके प्रयोगोंकी जाँच करके कौटिल्य आचार्यने राजा चन्द्रगुप्तके लिए यह शासनका विधान किया है।

इसी प्रकार ग्रन्थकी समाप्तिमें भी—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।

अमर्षेणोद्धृतान्याशु, तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

'जिसने शास्त्र, (शस्त्रोंके अधिकारके योग्य) शस्त्र और नन्द राजाकी पृथिवी को बड़े क्रोधसे उद्धार किया, उसने ही इस शास्त्र (अर्थशास्त्र) को बनाया है।'

इस श्लोकमें कुछ अद्भुत इशारा मिलता है। वह यह कि इस श्लोकमें दो शास्त्रों का उल्लेख है, जिनको पढ़कर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि इसने किस शास्त्रका उद्धार किया।

आलोचनासे ज्ञात होता है कि गौतम मुनिके बनाये प्रसिद्ध न्यायसूत्रपर वात्स्यायन मुनिका भाष्य इसी कौटिल्य आचार्यका बनाया हुआ है। जिन्होंने पूर्वकालमें गौतमके न्याय-सूत्रोंपर प्रमाणानुकूल अपने भाष्य रचकर अर्थका स्पष्ट किया था। उसी [illegible] मगध नन्दोंका सर्वनाश करनेके लिए [illegible] [illegible] उद्धार करनेके [illegible], [illegible] [illegible] किया था। ऐसा प्रतीत होता है। नहीं तो उक्त श्लोकमें दो बार शास्त्र शब्दका उल्लेख व्यर्थ हो जाता है।

इसी बातकी पुष्टि इस प्रकार की जाती है।

(१) दोनों शास्त्रोंकी लेखशैली एक सी प्रतीत होती है, तथा भाषा दोनोंकी दार्शनिक है।

(२) वात्स्यायनभाष्यमें न्यायके द्वितीय सूत्रपर भाष्य करते हुए आन्वीक्षिकीकी प्रशंसामें भाष्यकारने यह श्लोक उद्धृत किया है।

प्रदीपः सर्व शास्त्राणा मुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणाम् विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥

अर्थात्—'आन्वीक्षिकी विद्या सब विद्याओंका दीपक, सब कार्योंका उपाय और सब धर्मोंका आश्रय है ऐसा विद्योद्देशमें कहा गया है।'

विचार करनेकी बात है 'विद्योद्देशमें कहा गया है' इसका तात्पर्य क्या है। यदि उपरोक्त श्लोक किसी अन्य ग्रन्थ या ग्रन्थकारका वचन है तो आचार्यको चाहिए था कि वे ग्रन्थका नाम या ग्रन्थकारका नाम लेते। परन्तु ऐसा न करके केवल प्रकरणका नाम लिखा है, जो अपने बनाये ग्रन्थका ही एक भाग है। अर्थशास्त्रका सबसे प्रथम प्रकरण विद्योद्देश प्रकरण है, जिसमें उक्त श्लोक इस रूपसे है।

प्रदीपः सर्वशास्त्राणां उपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्व धर्माणाम् शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

इस प्रकार देखनेसे यह बहुत ही उपयुक्त जान पड़ता है कि 'विद्योद्देशे प्रकीर्तिता' अर्थात् विद्योद्देश प्रकरणमें कही गई है।

प्रसिद्ध विद्वान् जयन्त भट्टने अपने ग्रन्थमें न्यायपर परिष्कार लिखते हुए इसी श्लोकका उद्धरण किया है उसमें 'प्रकीर्तिता' के स्थानपर 'परिकीर्तिता' शब्द पढ़ा गया है। यह शब्द भी बड़ा उपयुक्त है, क्योंकि आन्वीक्षिकीकी पूर्ण व्याख्या विद्या समुद्देश प्रकरणमें ही की गई है।

वात्स्यायन और कौटिल्य दोनोंके एक ही होनेका निश्चय यह बात भी कराती है।

(३) वात्स्यायन भाष्य (न्याय) में वात्स्यायन लिखते है—

"इमास्तु चतस्रो विद्याः पृथक् प्रस्थानाः प्राणभृता—
मनुग्रहायोपदिश्यन्ते यासां चतुर्थीयमान्वीक्षिकी न्यायविद्या।

ये चार विद्याएँ पृथक् पृथक् अवस्थित है जो प्राणियोंपर अनुग्रह करके आचार्य लोगों द्वारा उपदेश की जाती है। जिनमेंसे चौथी यह आन्वीक्षिकी न्यायविद्या है।

ठीक इसी प्रकार कौटिल्य अपने अर्थशास्त्रमें कहते हैं।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। चतस्रः एवेति कौटिल्यः।

इस प्रकार समान सिद्धान्तता भी दोनों ग्रन्थकारोंकी एकताको प्रमाणित करती है।

(४) कामशास्त्रको सूत्ररूपमें बनानेवाला वात्स्यायन तथा अर्थशास्त्रका कर्ता कौटिल्य दोनोंकी सूत्ररचना सर्वथा समान है। समान प्रकरणोंमें समान पंक्तियों और वचनों तक समान

मिलती है। उदाहरणके लिए कामशास्त्र और अर्थशास्त्रके योगासन प्रकरणोंकी तुलना कर लीजिये।

इनसे हम इसी परिणामको पहुंचे हैं कि अर्थशास्त्रके प्रणेता आचार्यने आर्ष विद्याओं-पर भाष्य रचकर तथा उनका उद्धार करके महान् प्रामाणिकता लाभ किया है। यही ग्रन्थकार काम-सूत्र बनानेके समय वात्स्यायन, न्यायभाष्य करते हुए पक्षिल स्वामी तथा अर्थशास्त्र बनाते हुए कौटिल्यके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार आलोचनासे हम इस अनुमानपर भी पहुँचते हैं कि धर्म, अर्थ, कामपर इस आचार्यने क्रमसे न्यायभाष्य अर्थशास्त्र और कामशास्त्रका निर्माण किया है तो तिसरा मोक्षशास्त्र, वेदान्तपर भी इसने कोई भाष्य या वृत्ति अवश्य बनाई होगी।

अर्थशास्त्रकार कौटिल्यकी आलोचना करते हुए साथही अर्थशास्त्रके अन्दर आये हुए अन्य अर्थशास्त्र आचार्योंकी आलोचना करना भी आवश्यक है।

अर्थशास्त्रके अन्य आचार्य

निम्नलिखित आचार्य हमें उपलब्ध होते हैं।

मनु, उशना, बृहस्पति, विशालाक्ष, पिशुन, वातव्याधि, कौणपदन्त, भरद्वाज, आचार्य, कात्यायन, दीर्घचारायण, कर्णिक भारद्वाज, घोटकमुख, पिशुनपुत्र, बाहुदन्तीपुत्र, ।

मनु—इनमें मनु महाराज सर्व संसारको विदित हैं। इनकी मानवस्मृति भी सर्वत्र उपलब्ध है। इससे मनुके विषयमें विशेष कहना उचित नहीं है।

उशना—यह साक्षात् शुक्राचार्य हैं जिनके नामपर शुक्रनीतिका अद्भुत नीतिग्रन्थ अब भी उपलब्ध है।

विशालाक्ष—इस आचार्यके विषयमें देवीभागवत पुराणमें इस प्रकारकी कथा आती है कि—" नर और नारायण तपस्या करते थे उनके पास सहस्रों रम्भाएँ भोगकी कामनासे आईं। नारायणने उत्तर दिया कि मैं ही स्वयं द्वापरमें विशालाक्षका अवतार लूँगा। उसी समय तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा इत्यादि। इससे श्रीकृष्ण भगवान् विशालाक्ष प्रतीत होते हैं। सम्भवतः विष्णुस्मृति ही विशालाक्षका नीतिशास्त्र हो।

पिशुन—पिशुन आचार्यके विषयमें निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः नारदस्मृति पिशुनाचार्यका नीतिशास्त्र कहाता हो।

वातव्याधि—वातव्याधि कृष्णके छोटे भाई उद्धव ही हैं। जिनको माघ कविने अपने प्रसिद्ध काव्य शिशुपालवधमें पवनव्याधिके नामसे पुकारा है और उसीके नामपर नीति-शास्त्रका अच्छा मर्म रहस्य उद्घाटन किया है।

कौणपदन्त—कोषके अनुसार कौणपदन्त भीष्मका ही दूसरा पर्याय है। जैसा कि शब्दार्थ चिन्तामणिकारने लिखा है कि—

" कौणपदन्तः भीष्मे इति त्रिकाण्डशेषः "।

निश्चय है कि भीष्मपितामहका नीतिशास्त्र वही है जिसका भीष्मने महाराज युधिष्ठिरको शान्तिपर्वमें उपदेश किया है।

भरद्वाज तथा कणिङ्क भारद्वाज—इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। अर्थशास्त्रकार कौटिल्यने इन आचार्योंके पद्योंको स्थान स्थान पर उद्धृत किया है।

आचार्य—आचार्य शब्दसे कौटिल्यने अपने ही गुरुका नाम लिया है।

कात्यायन—कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरीके अनुसार कात्यायन, वररुचि और नन्दोंका अमात्य सुबुद्धि शर्मा राक्षस एक ही हैं। इसका कोई बनाया ग्रन्थ होगा यही यदाचित् कात्यायनके नामसे प्रसिद्ध हो। या कात्यायनस्मृतिको ही लिया गया हो।

दीर्घ चारायण—के विषयमें कुछ ज्ञात नहीं।

घोटकमुख—इसका नाम वात्स्यायनकामसूत्रमें भी आया है। यह कदाचित् विष्णुने हयग्रीवका अवतार लेकर जो धर्मोपदेश किया है उसीका अभिप्राय है।

अर्थशास्त्रोंके आचार्योंके विषयमें महाभारत

(शान्ति० अ० ५९) में लिखा है।

आचार्य विशालाक्षके विषयमें दण्डनीतिका सबसे प्रथम ग्रहण शंकरने किया। यही बहुरूप विशालाक्ष शिव, स्थाणु, उमापतिके नामसे प्रसिद्ध हैं। भगवान शिवने प्रजाओंकी आयुका ह्रास देखकर ब्रह्माके इस प्रबल शास्त्रका संक्षेप किया। यही शास्त्र वैशालाक्षक शास्त्र कहा जाता है। उसको भी इन्द्रने ५००० इन्द्रने प्राप्त किया। यह ग्रन्थ दस हजार अध्यायोंमें परिमित था। उसको भी इन्द्रने ५००० अध्यायोंमें संक्षिप्त किया। यह शास्त्र बाहुदन्तक कहा जाता है। इसी शास्त्रसे गम्बद्ध आचार्य बाहुदन्तीपुत्र कहा जाता है। उसीका संक्षेप ३००० अध्यायोंमें बृहस्पतिने किया। जिसको बार्हस्पत्य शास्त्र कहते हैं। इसी शास्त्रको उशनाने १००० अध्यायोंमें संक्षिप्त किया। इसी शास्त्रका उशना या शुक्राचार्यने किया।"

महाभारतमें भी कतिपय आचार्योंपर प्रकाश डाला है।

नीतिशास्त्रकार कामन्दक

अर्थ शास्त्रकार कौटिल्यका अत्यन्त भक्त कामन्दक भी सुप्रसिद्ध नीतिशास्त्रकार हुआ है। जिसने इन आचार्योंको निम्नलिखित शब्दोंमें याद किया है।

> यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः
> पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः।
> नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः
> समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ॥

[illegible]

पञ्चतंत्र

पञ्चतन्त्र एक प्रसिद्ध नीतिशास्त्रका कथानक ग्रन्थ अपनी प्रस्तावनामें लिखता है कि "अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि।"

जैनियोंके नन्दिसूत्रमें भी—

भारतं रामायणं भीमासुरक्कं कोडिल्लियं

इस प्रकार कौटिल्यशास्त्रको मिथ्याशास्त्र कहकर अपना द्वेष ही उगला है।

मल्लिनाथ

प्रसिद्ध टीकाकारने भी इस अर्थशास्त्रसे "क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्" इत्यादि नाना नीति वचनोंका उल्लेख किया है। इससे हम इस परिणामपर पहुंच जाते हैं कि भारतके विद्वानोंमें १५ वीं शताब्दीतक इस अर्थशास्त्रका अच्छा परिचय रहा है।

पाश्चात्यविद्वानोंके आक्षेप

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि शास्त्रकारने स्वमत दिखानेके लिए स्थान स्थानपर "इति कौटिल्यः" इस प्रकारसे दर्शाया है। इससे यह ग्रन्थ स्वयं चाणक्यका बनाया हुआ नहीं है। प्रतीत होता है कि उसकी शिष्य परम्परामेंसे किसी शिष्यने संग्रह किया है।

उनका यह कथन सर्वथा असंगत है। क्योंकि वे शास्त्रकारकी शैलीसे अनभिज्ञ हैं। भारतीय शास्त्रकारोंकी यही शैली है कि स्वमतको अपने नामके साथ ही दर्शाते हैं। जैसे पतञ्जलि भाष्यकार स्वमत दर्शाते हुए "गोनर्दीयस्त्वाह" ऐसा लिख देते हैं।

तब तो सन्देह ही कोई नहीं रहता जब कि स्वयं अर्थशास्त्रमें—

येन शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

इस श्लोकद्वारा यह शास्त्र स्वयं चाणक्यने बनाया है ऐसा स्वीकार किया है।

पाश्चात्योंकी दूसरी युक्ति यह है कि जिस प्रकार मनुके सूत्रोंको भृगुने तथा याज्ञवल्क्यके सूत्रोंको किसी उसके साम्प्रदायिकने श्लोकोंमें बद्ध किया है उसी प्रकार अर्थशास्त्रको भी चाणक्यके किसी शिष्यने बनाया है।

यह युक्ति भी विचित्र होनेसे समझमें नहीं आती। क्योंकि मनुस्मृतिके लिए तो भृगुका और याज्ञवल्क्यस्मृतिके लिए किसी शिष्यका होना तो विज्ञानेश्वरके लेखसे प्रमाणित भी होता है परन्तु अर्थशास्त्रके विषयमें ऐसी कोई युक्ति उपलब्ध नहीं होती है।

विरोधमें पूर्वप्रदर्शित प्रमाणोंमें ही दण्डिका उद्धरण और पञ्चतन्त्रका उद्धरण ही पर्याप्त है।

इस प्रकारसे अर्थशास्त्रके कर्ताओंके विषयमें विचार करते हुए कौटिल्य अर्थशास्त्रकी बाह्य आलोचना की गई है। कालान्तरमें अन्तर आलोचना भी क्रमशः की जावेगी।

जयदेव शर्म्मा

पितृ-ऋण पूरा करनेके लिए, सम्भव प्राचीन और अनन्य भारतीय जातियोंपर अपना अधिकार प्राप्त करनेके लिए, जनताकी संख्यावृद्धिकी परमावश्यकता थी। अतएव शास्त्रोंमें सन्तानोत्पत्तिपर इतना जोर दिया गया है। इस अर्वाचीन कालमें, जब कि जीविकोपार्जन करना समरभूमिमें उतरना है, रोगी और दुर्बल सन्तान उत्पन्न करनेसे निःसन्तान ही रहना भला है। ऐसी क्षीण सन्ततिसे देशका भला नहीं हो सकता, देशको ऐसे देशवासियोंकी आवश्यकता नहीं। जनता ही देशोन्नतिका मूल कारण है, परन्तु उसकी संख्या नहीं, गुण। केवल उन देशोंमें, जिनकी आर्थिक और सामाजिक दशा अच्छी है, जहाँ भोजन और वस्त्रका अभाव नहीं है, जनताकी संख्यावृद्धि देशके बल, अर्थ और गौरवकी उन्नति करती है, परन्तु इसके विपरीत दरिद्र देशमें उसके बल, अर्थ और गौरवको नाश करती है। यहाँ तो इस बातकी आवश्यकता होती है कि जो जनता है, उसीकी आय बढ़ानेका प्रयत्न किया जावे, न कि उसकी संख्या वृद्धिकर उसकी पीड़ाओंको बढ़ाया जावे। जब कि आय वर्तमान संख्याके लिए भी पर्य्याप्त नहीं है, तो अधिक संख्याके लिए कैसे होगी। जनताकी संख्यावृद्धि तभी समर्थनीय है जब कि साथही साथ उसकी आयकी भी उन्नति हो। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि जनताकी संख्यावृद्धि अनियमित रूपसे होती जाती है, और देशके व्यवसाय, वाणिज्य और कृषि उसके अनुरूप नहीं बढ़ते, तो देशमें दरिद्रता फैलती है। उक्त सज्जनोंका यह विचार है कि भारतवर्षकी दरिद्रताका यह भी एक मुख्य कारण है कि जनता तो बढ़ती जाती है परन्तु देशके व्यवसाय उसी हिसाबसे नहीं बढ़ते यदि इस प्रकार बढ़ती जावेगी तो कठिन आपत्तियोंका सामना करना होगा। इस समय जनताकी वृद्धि न कर उसकी आर्थिक दशा सुधारनेकी आवश्यकता है। अर्थशास्त्री क्रेसनेका कथन है कि 'राजनेताओंको चाहिए कि जनताकी संख्याके बढ़ानेका प्रयत्न न कर, देशकी आय बढ़ानेका प्रयत्न करें, क्योंकि वह सुखमय अवस्था, जो कि आयकी वृद्धिसे प्राप्त होती है, उस जनताकी वृद्धिसे कहीं श्रेयस्कर है, जो कि आयके अभावसे अपनी दैनिक आवश्यकताओंके भी पूर्ण करनेका प्रबन्ध नहीं कर सकती'। इस हीन दशामें, जब कि दरिद्रतामें इस वृद्ध-भारतकी कोई भी देश संसारमें समता नहीं कर सकता, देशकी आय कदापि ३१ करोड़से भी अधिक वृहत् संख्याके लिए किसी प्रकार भी पर्य्याप्त नहीं है, देशवासियोंको पेटभर भोजन और शरीर ढाँकनेके लिए वस्त्र भी नहीं मिलते,—देशकी जनता बढ़ाना देशकी दरिद्रता और व्यथा बढ़ाना है। इस समय तो 'वर्धनाद्रक्षणं श्रेयः' उचित प्रतीत होता है। जो जनताकी संख्या, इस समय, देशकी है, उसीकी रक्षा करना प्रार्थनीय है। उसकी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक दशा सुधारनेकी आवश्यकता है।

जनताकी संख्या, उत्पत्ति तथा मृत्यु संख्यापर निर्भर है। यदि उत्पत्ति मृत्युसे अधिक होती है, तो जनता बढ़ती है, अन्यथा घटती है। उत्पत्ति, विवाह और उत्पादन शक्तिपर निर्भर है। भारतवर्षमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विवाह करना तो प्रत्येक मनुष्यके लिए आवश्यक तथा धार्मिक बात समझी जाती है। कदाचित् ही कोई मनुष्य अविवाहित

भारतवर्षमें जनताकी संख्यावृद्धि



रतवर्षमें कदाचित ही कोई मनुष्य, जो कि तरुणावस्थाको प्राप्त हो, विवाहित न दिखाई दे। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन, सम्पत्तिवान् हो या दरिद्र, नीरोग हो या रोगी, विवाह अवश्य ही करेगा। यहाँतक कि देशके भिक्षुक, लूले, लँगड़े, अंधे, अपाहिज भी विना विवाहके नहीं रहते। विवाह करना इस देशमें एक आवश्यक बात समझी जाती है। इस विवाहकी बहुलता तथा उसके अवश्यंभावी परिणाम जनताकी संख्यावृद्धि-से देशकी जो हानि है, उसीके प्रकट करनेका इस लेखमें प्रयत्न किया जावेगा।

कहा है 'जनकानुरूपाः सुताः।' यदि माता पिता रोगी और निर्बल हैं, तो सन्तति कदाचित् ही नीरोग और बलवान हो सकती है। निर्बल और रोगी मनुष्यकी सन्तान निर्बल और रोगी होती है, जो यदि भाग्यवश किसी प्रकार जी कर बड़ी हुई तो उसे इस विकट-संग्रामभूमि जगत्में स्थान करलेना दुःसाध्य होता है। उसे अपने ही दिन काटने कठिन होते हैं, किसी दूसरेकी भलाई उससे क्या हो सकती है। देशकी उन्नति जनतापर निर्भर है। यदि जनताकी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक दशा अच्छी है तो देश-की उन्नति निःसन्देह होगी, और यदि उसकी सामाजिक दशा हीन है, वह निर्बल और दरिद्र है, तो देशकी उन्नति होना असम्भव है। प्रत्येक मनुष्य जनताका एक भाग है, और किसी न किसी अंशमें उसका और उसकी सन्ततिके गुणों और अवगुणोंका जनता एवं देशपर प्रभाव पड़ता है। यदि मनुष्य रोगी और निर्बल है तो उसे सन्तानोत्पादन कर, रोगी और निर्बलोंकी संख्या बढ़ा, देशकी अवनतिका कारण होना कदापि उचित नहीं है। पाश्चात्य तथा अन्य सभ्य देशोंमें ऐसा मनुष्य कदापि विवाह नहीं करता, जो कि अपनी सन्तति-के भरण पोषणका समुचित प्रबन्ध न कर सके। रोगी और कृश मनुष्योंका तो विवाह होना ही कठिन होता है, वे भविष्यका विचार कर स्वयं विवाह करना अन्याय समझते हैं। परन्तु यहाँ तो न्याय ही उलटा है, यहाँ तो प्रत्येक प्राणी विवाह करनेके लिए बाध्य है, विवाह करना तो एक धार्मिक बात है। कदाचित् ही कोई भविष्यपर विचार करता हो कि स्त्री और सन्ततिके पोषणका क्या प्रबन्ध होगा। यहाँ तो 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'। चाहे स्वयं भूखों क्यों न मरते हों, परन्तु विवाह अवश्य करेंगे, दूसरोंका भार अवश्य ओढ़ लेंगे।

शास्त्रोंमें विवाह तथा सन्तोत्पत्तिके लिए बड़ा जोर दिया गया है। बहुतसी कथाएँ ऐसी पढ़नेमें आती हैं, जिनमें मनुष्योंने सन्तानोत्पत्तिके लिए बड़े बड़े उपाय किये हैं। परन्तु यदि विचार-पूर्ण दृष्टिसे देखा जावे तो यह विवाह करनेकी शास्त्रकी आज्ञा इस आधुनिक अवस्थामें युक्त नहीं है। इन शास्त्रोंका निर्माण उस कालमें हुआ था जब कि आर्यजाति भारतवर्षके प्राचीन वासियोंको विजयकर इस देशमें बस रही थी। उस समय चिरस्थायी युद्धके लिए, भारतवर्षमें अपनी विजयपताका फहरानेके लिए, समुद्र पर्यन्त

विस्तृत भूमिपर बसनेके लिए, अनन्त प्राचीन और अनन्य भारतीय जातियोंपर अपना अधिकार सबल बनानेके लिए, जनताकी संख्यावृद्धिकी परम आवश्यकता थी। अतएव शास्त्रोंमें सन्तानोत्पत्तिपर इतना ज़ोर दिया गया है। इस अर्वाचीन कालमें, जब कि जीविकोपार्जन करना समर-भूमिमें उतरना है, रोगी और दुर्बल सन्तान उत्पन्न करनेसे निःसन्तान ही रहना भला है। ऐसी क्षीण सन्ततिसे देशका भला नहीं हो सकता, देशको ऐसे देशवासियोंकी आवश्यकता नहीं। जनता ही देशोन्नतिका मूल कारण है, परन्तु उसकी संख्या नहीं, गुण। केवल उन देशोंमें, जिनकी आर्थिक और सामाजिक दशा अच्छी है, जहाँ भोजन और वस्त्रका अभाव नहीं है, जनताकी संख्यावृद्धि देशके बल, अर्थ और गौरवकी उन्नति करती है, परन्तु इसके विपरीत दरिद्र देशमें उसके बल, अर्थ और गौरवको नाश करती है। यहाँ तो इस बातकी आवश्यकता होती है कि जो जनता है, उसीकी आय बढ़ानेका प्रयत्न किया जावे, न कि उसकी संख्या वृद्धिकर उसकी पीड़ाओंको बढ़ाया जावे। जब कि आय वर्तमान संख्याके लिए भी पर्याप्त नहीं है, तो अधिक संख्याके लिए कैसे होगी। जनताकी संख्यावृद्धि तभी समर्थनीय है जब कि साथही साथ उनकी आयकी भी उन्नति हो। कुछ अर्थशास्त्रियोंका मत है कि यदि जनताकी संख्यावृद्धि अनियमित रूपसे होती जाती है, और देशके व्यवसाय, वाणिज्य और कृषि उसके अनुरूप नहीं बढ़ते, तो देशमें दरिद्रता फैलती है। कुछ *सज्जनोंका यह विचार है कि भारतवर्षकी दरिद्रताका यह भी एक मुख्य कारण है कि* जनता तो बढ़ती जाती है परन्तु इसके व्यवसाय उसी हिसाबसे नहीं बढ़ते यदि यह इस प्रकार बढ़ती जायेगी तो कठिन आपत्तियोंका सामना करना होगा। इस समय जनताकी वृद्धि न कर उसकी आर्थिक दशा सुधारनेकी आवश्यकता है। अर्थशास्त्री ब्रेसलेका कथन है कि 'राजनेताओंको चाहिए कि जनताकी संख्याके बढ़ानेका प्रयत्न न कर, देशकी आय बढ़ानेका प्रयत्न करें, क्योंकि यह सुखमय अवस्था, जो कि आयकी वृद्धिसे प्राप्त होती है, उस जनताकी वृद्धिसे कहीं श्रेयस्कर है, जो कि आयके अभावसे अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी भी पूर्ति करनेका *प्रबन्ध नहीं कर सकती*'। *इस हीन दशामें, जब कि दरिद्रतामें इस वृद्ध-*भारतकी कोई भी देश संसारमें समता नहीं कर सकता, देशकी आय यद्यपि ३१ करोड़से भी अधिक वृहत् संख्याके लिए किसी अंशमें भी पर्याप्त नहीं है, देशवासियोंको पेटभर भोजन और शरीर ढाँकनेके लिए वस्त्र भी नहीं मिलते,—देशकी जनता बढ़ाना देशकी दरिद्रता और व्यथा बढ़ाना है। इस समय तो 'वर्धनाद्रक्षणं श्रेय' उचित प्रतीत होता है। जो जनताकी संख्या, इस समय, देशकी है, उसीकी रक्षा करना प्रार्थनीय है। उसकी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक दशा सुधारनेकी आवश्यकता है।

जनताकी संख्या, उत्पत्ति तथा मृत्यु संख्यापर निर्भर है। यदि उत्पत्ति मृत्युसे अधिक होती है, तो जनता बढ़ती है, अन्यथा घटती है। उत्पत्ति, विवाह और उत्पादन शक्तिपर निर्भर है। भारतवर्षमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विवाह करना तो प्रत्येक मनुष्यके लिए आवश्यक तथा धार्मिक बात समझी जाती है। कदाचित् ही कोई मनुष्य अविवाहित

रहे। प्रायः देखा जाता है कि युवावस्थाको प्राप्त होनेके पूर्व ही पति-पत्नीका संयोग हो जाता है और यह संयोग मृत्यु पर्य्यन्त रहता है। एवं उत्पादनशक्ति जीवनके किसी भागमें भी व्यर्थ नहीं जाती। और उत्पादनशक्ति भारतवासियोंमें कदाचित् ही अन्य देशवासियोंसे कम हो। अतएव उत्पत्ति संख्याकी वृद्धि नैसर्गिक है। जनताके प्रति सहस्र लगभग ४४ बालक और बालिकाएँ प्रतिवर्ष उत्पन्न होते हैं। बहुत कम सभ्य देशोंमें इतनी अधिक उत्पत्ति संख्या है। इंगलिस्तानमें केवल २२ प्रति सहस्र है। यद्यपि मृत्युसंख्या भी इस देशमें इतनी अधिक है, जितनी कि भूतलपर किसी और सभ्य देशमें नहीं है, तथापि उत्पत्ति-संख्याके अनियमित रूपसे अधिक होनेसे, जनताकी संख्यावृद्धि होती जाती है, जिससे कि देशको हानिकी संभावना ही नहीं है वरन् वह वस्तुतः हानि उठा रहा है। अस्तु देशकी उन्नतिके लिए उसे दरिद्रताके पाशसे मुक्त करनेके लिए प्रत्येक देशवासीका धर्म है कि जनताकी संख्यावृद्धि अनियमित रूपसे न होने दे। इसके तीन उपाय, देशकी वर्तमान अवस्थामें हो सकते हैं:—

(१) रोगी और दरिद्र जहाँ तक सम्भव हो विवाह न करें।

(२) कम अवस्थामें विवाह न हो।

(३) विवाह होनेपर भी यथासम्भव मनुष्य इन्द्रियनिग्रह करें।

इसमें प्रथम उपाय बहुत ही गुरुतर है। ऐसे मनुष्य यदि सन्तानोत्पत्ति करते हैं तो, उनका वीर्य दूषित होनेके कारण, सन्तान रोगी और निर्बल होती है, जो कि जनतामें रोग, अवगुण और पाप फैलाती है। इसके अतिरिक्त ऐसे मनुष्य अपनी सन्ततिके भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। अतएव प्रथम तो उनकी सन्ततिका जीना ही कठिन होता है और यदि जीकर बड़े भी हों, तो व्यर्थ जनतापर भार होता है। दूसरे उपायका कार्यरूपमें परिणत करना सर्वथा आवश्यक है। बाल-विवाहसे क्या हानि है, किस प्रकार बल-वीर्य नष्ट होता है, कैसी सन्तति होती है, यह सभीपर विदित है। अतएव इसे सविस्तार लिखनेकी आवश्यकता नहीं। तीसरे उपायसे देशका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। इन्द्रिय-निग्रहसे वीर्य-पुष्ट होनेसे सन्तति बलवान, गुणवान और हृष्ट-पुष्ट होगी। अनुत्साही, अकर्मण्य और 'व्यर्थ-भूतल-भार' मनुष्य देशसे लुप्त हो जावेंगे। अस्तु, इन उपायोंसे केवल उत्पत्ति संख्या ही न घटेगी, जनताकी अनियमित वृद्धि ही न रुकेगी, वरन् उसकी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दशा सुधरेगी; उसमें बल, बुद्धि और गुणोंका सञ्चार होगा, जो कि देशोन्नतिका मूल कारण है।

'माल्थस्' का विचार है कि—"यदि मनुष्य समुचित उपायोंसे जनताकी वृद्धि रोकनेका प्रबन्ध नहीं करता, तो उसकी अनियमित रूपसे वृद्धि होने लगती है, फिर या तो दरिद्रताके कारण (जो कि इस अनियमित वृद्धिका एक अवश्यम्भावी परिणाम है) या ईश्वरीय कोपद्वारा जनताका नाश होता है। राज्योंमें परस्पर युद्ध छिड़ जाता है, भाँति भाँतिके रोग देशमें फैलते हैं, और नेत्रग्रसलोंसे ही नवोत्पन्न बालकोंकी अकाल मृत्यु

होने लगती है।" यह दोनों ही बातें देशमें भीषणरूपसे दिखाई देती हैं। महामारी युद्ध तो कभी कभी आता है। रोगका तो भारत मानो नीड़ हो रहा है। प्लेग, विषूचिका, इन्फ्लुएन्ज़ा, सभी अपना अपना बल दिखाते हैं। बालकोंकी तो कदाचित् किसी और देशमें इस बहुतायतसे मृत्यु नहीं होती जैसी कि यहाँ होती है। २५ प्रति शत बालक अपनी आयुके प्रथम ही द्वादश मासमें कालके ग्रास हो जाते हैं। प्रति सहस्र लगभग ३६ मनुष्योंकी एक वर्षमें मृत्यु होती है। अन्य किसी देशमें मृत्युसंख्या इतनी अधिक नहीं है, १२ से २१ मनुष्योंकी मृत्यु प्रति सहस्र होती है। इंग्लिस्तानमें तो १३ से भी कमकी संख्या है।

इन सब आपत्तियोंका कारण ऐसे विवाहोंकी बहुलता है। स्वयं पेट भर भोजन मिलता नहीं, रहनेको स्थान नहीं, शरीरमें बल नहीं, परन्तु सन्तानोत्पत्ति आरम्भ करेंगे। फिर भला मृत्युसंख्या क्यों न बढ़े, बालकोंकी अकाल मृत्यु क्यों न हो?

जड़ संसारमें तथा नीच पशुओंमें यह एक प्राकृतिक नियम पाया जाता है कि वे अपनी जातिकी संख्यावृद्धिके लिए अज्ञातभावसे प्रयत्न करते हैं। वृक्ष अपने बीजोंको पवन द्वारा फैलाकर अपनी जातिकी वृद्धि करते हैं। एक ही जातिके पशु या पक्षी, उदाहरणार्थ सूअर या मुर्गीकी सन्तति, जितनी उत्पन्न होती है, जीवित रहे, तो कदाचित् थोड़े ही कालमें समग्र भूतलमें भी उनके रहनेका स्थान न रहे। इस असीम वृद्धिको रोकनेके लिए प्रकृतिने विविध प्रकारके उपाय रचे हैं। किसी न किसी भाँति उनका नाश होता है। इस निःसीम वृद्धिके लिए प्रयत्न करनेका प्राकृतिक नियम समग्र चैतन्य तथा जड़ पदार्थोंमें पाया जाता है। उच्चश्रेणीके पशुओंमें यह इतना प्रबल नहीं होता जितना कि नीच श्रेणीके पशुओंमें होता है। नीचश्रेणीके पशु उत्पन्न अगणित होते हैं, और उसी प्रकार नष्ट भी होते हैं। सारांश यह कि जितनी ही अधिक जिस जाति में उत्पत्ति होती है, उतनी ही अधिक मृत्यु भी होती है। यदि मनुष्य भी, इस जड़ संसारके नियमके अनुसार बिना भविष्यका विचार किये, नीच इन्द्रियोंकी शान्तिके लिए सन्तानोत्पादन करते हैं तो उनकी भी मृत्युसंख्या बढ़ती है। बल और बुद्धि, जिनपर कि व्यक्तिविशेष, जाति तथा सम्पूर्ण देशकी उन्नति निर्भर है नष्ट होते हैं। रोगी और दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती है। एक ओरसे बालक संसारमें प्रवेश करता है, दूसरी ओरसे काल, अपनी विकराल भुजाओंको फैलाकर, उसे उठानेका प्रयत्न करता है। उत्पत्ति तथा मृत्युसंख्या दोनों ही विकट रूप धारण करती हैं। ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि दी है, उसे सम्पूर्ण जड़ तथा चैतन्य जगत्का स्वामी बनाया है, उसे इस पशुवृत्तिके वशीभूत हो हानि लाभका विचार त्यागना सर्वथा लज्जाजनक है। इन्द्रियोंके दमन करनेसे उनकी उद्दण्डता घटती है, और यदि उन्हें निर्विघ्न भोगका मार्ग दिया जाता है, तो जितनी ही अधिकतासे उनके शान्त करनेका उपाय किया जाता है, उतनी ही तृष्णा बढ़ती है। मनु भगवान् ने कहा है कि—

स्वार्थ

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥'

इन्द्रिय-निग्रह न केवल व्यक्तिविशेषके लिए लाभदायक है—उसकी इस पार्थिव तृष्णाको शान्त करता है—किन्तु सम्पूर्ण देशके लिए हितकारी है क्योंकि इस मर्यादाके मृत्युसंख्याका उपाय उत्पत्तिसंख्यामें पड़ता है। केवल वे स्त्री-पुरुष—और वे भी जब तरुणावस्थाको प्राप्त हों—विवाह कर सन्तानोत्पादन करें, जिनकी आर्थिक तथा शारीरिक दशा अच्छी हो, जिनका वीर्य शुद्ध हो, जिनकी सन्तान नीरोग और हृष्ट-पुष्ट उत्पन्न होसके, जो कि उनके लालन पालनका समुचित प्रबन्ध कर सकें। जो मनुष्य स्वयं दरिद्र और रोगी हैं जोकि अपनी सन्तानके भरण पोषणका भी प्रबन्ध नहीं कर सकते, उनके लिए विवाह कर सन्तानोत्पादन करना, अनुचित ही नहीं प्रत्युत् हानिकारक है। वे देशके अधःपतनके मूल कारण हैं।

सम्भव है कि कुछ सज्जनोंका यह विचार हो कि अविवाहित एकाकी मनुष्यका जीवन सम्पूर्ण नहीं हो सकता, इस वेदनामय संसारमें अकेले सुखमय नहीं हो सकता, इस बातकी आवश्यकता होती है कि इस अरण्य जगत्में कोई ऐसा प्रियतम चिरसंगी मिले, जो कि अपने दुःखमें दुःख और सुखमें सुख माने, जिसके समक्ष अपने हृदयके उद्गार प्रकट भावसे रख सकें, और यह प्रियतम चिरसंगी केवल अपनी अर्धांगिनी ही हो सकती है। यह सत्य है परन्तु यदि गवेषणापूर्ण दृष्टिसे देखा जावे तो यह प्रतीत होगा कि जो मनुष्य स्वयं रोगी और दरिद्र है (यद्यपि उसके लिए यह सुख अत्यन्त प्रार्थनीय है) उसके लिए इस सुखकी प्राप्ति किसी अंशमें दुःसाध्य है, क्योंकि सब पति-पत्नी देवदेवी नहीं होते। दरिद्रतामें प्रेमबन्धन सुदृढ़ बना रहना कुछ सहज काम नहीं है। और यदि यह भी मान लिया जावे कि दरिद्रता पति-पत्नीके प्रेममें अन्तर नहीं डाल सकती, तब भी निजके सुखके लिए सम्पूर्ण वंशकी हानि करना कदापि समर्थनीय नहीं है।

नारायणप्रसाद श्रीवास्तव



महँगी



मनुष्यजातिके हितसे महँगीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारी आर्थिक स्थितिपर तो महँगीका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह सभी जानते हैं कि यदि चीजें महँगी हो जायँ और हमारी सम्पत्ति उतनीही बनी रहे जितनी की वह पहले थी तो हमारा अहित होगा और यदि हमारी सम्पत्ति बढ़ जाय और चीजोंका मूल्य ज्योंका त्यों बना रहे तो हमारा हित होगा। हमारा आर्थिक हिताहित हमारे पूर्ण हिताहितका एक भाग है। इसलिए यह हो सकता है कि आर्थिक हितमें परिवर्तन होनेसे सम्पूर्ण हितमें उतना या बिलकुल ही परिवर्तन हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे सम्पूर्ण हितपर आर्थिक हितकी वृद्धि या न्यूनताका पूरा पूरा प्रभाव अवश्य पड़ेगा। चाहे फिर यह प्रभाव अन्य निवारक कारणोंसे दूर ही क्यों न हो जाय। इससे यह सिद्ध हुआ कि महँगीका मनुष्य जातिके आर्थिक हितसे और मनुष्यजातिके आर्थिक हितका उसके सम्पूर्ण हितसे घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण महँगीका हमारे सम्पूर्ण हितसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए महँगीकी वृद्धिके इतिहासका अध्ययन करना सर्वथा निरर्थक नहीं।

पदार्थोंके मूल्यकी वृद्धिको महँगी कहते हैं। मूल्यकी माप दो प्रकार से होती है। एक तो एक पदार्थकी तादादकी, दूसरे पदार्थकी तादादसे, जैसे १० सेर गेहूँकी १६ सेर बेझरसे या १६ सेर बेझरकी १० सेर गेहूँसे और दूसरे एक व्यापक सिक्केके मूल्यकी अन्य समस्त पदार्थोंकी तादादसे। यथा, एक रुपयेके मूल्यकी माप १० सेर गेहूँ या १६ सेर बेझरसे। सुविधाके लिए पदार्थोंके मूल्यकी माप रुपयोंमें ही की जाती है। अतः महँगीकी माप करते समय यह ध्यानमें रखना चाहिए कि मूल्यकी माप रुपयोंके मूल्यसे की जा रही है। रुपयोंसे तात्पर्य गिनी चेक, नोट, सिक्का, डालर मार्क सभीसे है, अतः उसके स्थानपर 'सिक्के' का प्रयोग करना अधिक युक्तियुक्त है। सिक्कों और पदार्थोंका मूल्य परस्पर विरोधी है अर्थात् पदार्थोंके मूल्यकी वृद्धिका अर्थ है सिक्कों के मूल्यका घटना और सिक्कों के मूल्यकी वृद्धिका अर्थ है पदार्थों के मूल्यका घटना। उदाहरणार्थ यदि गेहूँ पहिले रुपयेके आठ सेर आते थे और अब दस सेर आने लगे तो गेहूँका मूल्य घट गया और रुपयेका मूल्य बढ़ गया। क्योंकि रुपया जहाँ पहले केवल आठ सेर गेहूँ खरीद सकता था वहाँ अब उसके बदलेमें दस सेर गेहूँ मिलते हैं अर्थात् रुपयेका मूल्य बढ़ गया और गेहूँका मूल्य घट गया।

जब सम्पूर्ण संसारके आर्थिक हितका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए महँगीकी माप की जाती है तब सिक्कोंके मूल्यकी किसी एक या एकाधिक पदार्थके मूल्यसे अलग, अलग माप नहीं की जाती, बल्कि समस्त पदार्थोंके साधारण मूल्यसे उसकी तुलना की जाती है। इसके लिए एक विशेष उपायका अवलम्बन किया जाता है। इस उपायको "इण्डेक्स नम्बर"* कहते हैं। इसके अनुसार महँगीकी माप करते समय किसी समुचित वर्ष या वर्षावलीको

* Index Number.

मापका आधार चुन लिया जाता है *। फिर समस्त पदार्थोंके प्रतिनिधि स्वरूप कुछ चुने हुए विशेष पदार्थोंके मूल्यका औसत निकालकर माप-परिमाण † स्थिर कर लेते हैं। तब अन्य वर्ष या वर्षोंके प्रतिनिधि स्वरूप माप कुछ चुने हुए विशेष पदार्थोंके औसत मूल्यसे उनकी तुलना की जाती है। साधारणतः जिस वर्ष या वर्षावलीको मापका आधार माना जाता है उसका औसत मूल्य एक सैकडेकी तादादमें कर लिया जाता है। यदि माप वर्ष या वर्षों-का मूल्य १०० से कम हो तो जानो कि पदार्थोंका औसत मूल्य गिर गया और यदि अधिक हो तो समझो कि बढ़ गया।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि पदार्थोंके मूल्यकी माप सिक्केके मूल्यसे की जाती है और पदार्थों तथा सिक्कोंका मूल्य परस्पर विरोधी है। इन्हीं बातोंके आधारपर, एक तरहसे यह कहा जा सकता है कि महँगीका निर्णय सिक्कोंकी संख्यापर भी निर्भर है। इस सिद्धान्त-के अनुसार यदि अन्य सब बातें पूर्ववत् रहें तो, सिक्कोंके मूल्य और फलतः पदार्थोंके साधारण औसत मूल्यमें, सिक्कोंकी माँग और उस माँगकी पूर्तिकी तुलनाके अनुसार परिवर्तन होगा। अर्थात् सिक्कोंका मूल्य और फलतः पदार्थोंका साधारण औसत मूल्य

(१) प्रचलित सिक्कोंकी संख्या
(२) उनके प्रचलनके वेग और
(३) व्यापारके परिमाण

पर निर्भर है। प्रचलित सिक्कोंकी संख्या और उनके प्रचलनके वेगमें धरोहर पर दिये हुए बंकोंके चेकोंकी संख्या और उनके प्रचलनका वेग भी सम्मिलित है। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए थोड़े शब्दोंमें मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि यदि सिक्कोंकी संख्या बढ़ जाय और संसारके व्यापारके पदार्थोंकी संख्या उतनी ही रहे जितनी कि वह पहले थी तो पदार्थोंका मूल्य बढ़ जायगा अर्थात वे महँगे हो जायेंगे। और यदि संसारके व्यापारके पदार्थोंकी तादाद बढ़ जाय और सिक्कोंकी संख्या पूर्ववत् रहे तो पदार्थोंका मूल्य कम हो जायगा अर्थात् पदार्थ सस्ते हो जायेंगे। यहाँ यह कल्पना कर ली गई है कि सिक्कोंमें प्रचलनका वेग यथापूर्व रहा है। पदार्थोंकी तादाद (उत्पत्ति) पर भौगोलिक एवं प्राकृतिक कारणों तथा श्रम विभाग और उत्पादन कलामें ज्ञान एवं पूँजीकी न्यूनाधिकता और ऋतुओंकी मौसमका प्रभाव पड़ता है। और सिक्कोंकी तादादपर, लोगोंकी धन-सञ्चय करनेकी आदत, धातुओंकी उत्पत्ति, घनी जनसंख्या तथा मार्ग की सुविधाका प्रभाव पड़ता है। इसलिए ये सब महँगीकी घटा बढ़ीमें कारणीभूत होते हैं। यदि इनमेंसे किसी एक या एकाधिक कारण या कारणोंमें कुछ परिवर्तन हो जाय और शेष कारणोंमें कोई विरोधक परिवर्तन न हो तो यह स्पष्ट है कि पदार्थोंके मूल्यमें भी परिवर्तन होगा। जैसे यदि अन्य सब कारण पूर्ववत् रहें और जनसंख्या बढ़नेसे पदार्थोंकी माँग बढ़ जाय तो मूल्य भी बढ़ जायगा और यदि अन्य सब कारण पूर्ववत् रहें और किसी व्यवसायके लोगोंकी जन संख्या कम हो जाय तो पदार्थोंका मूल्य कम हो जायगा। परन्तु महँगीसे पदार्थोंके मूल्य-

† Standard.

पर इतने अधिक कारणोंका घात-प्रतिपात होता है कि हम नहीं कह सकते कि किसी एक कारणका परिवर्तन निश्चित फल दिखायेगा या नहीं। वास्तवमें महँगीके कारण और उसके घटा-बढ़ीका अध्ययन करना उतनाही मनोरञ्जक और आनन्दप्रद है जितना कि आकाशमें ग्रहों और उपग्रहोंकी चालोंका निरीक्षण करना।

महँगीकी वृद्धिका प्राचीनकालसे लेकर अबतकका शृङ्खलाबद्ध इतिहास प्राप्य नहीं। परन्तु, अबतककी खोजसे जो थोड़ी बहुत सामग्री मिल सकी है उससे पता चलता है कि लगभग एक हजार वर्षसे पदार्थोंके मूल्यका झुकाव महँगीकी वृद्धिकी ओर रहा है। पदार्थोंका आजकलका मूल्य ग्यारह सौ वर्ष पहलेके मूल्यसे ५ से लेकर दस गुना तक अधिक है और पन्द्रहवीं शताब्दीके मूल्यसे ८-९ गुना अधिक। अमरीकाकी खोजके बाद तो महँगीकी लगातार वृद्धिही होती आई है। इस वृद्धिका कारण सोने चाँदीकी नई नई खानोंका मिलना था। अमरीकाकी खोजके बादकी आधी शताब्दीमें सोनेकी वार्षिक उत्पत्ति १५० लाख रुपयेसे भी कम थी। आजकल वह उससे लगभग सौ गुनी अधिक है। यही हाल चाँदीका भी है। नीचे पन्द्रहवीं शताब्दीसे लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तककी, प्रति शताब्दीमें, यूरोपमें सञ्चित धातुओंका परिमाण और पदार्थोंके साधारण औसत मूल्यकी तालिका दी जाती है। उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि महँगीकी वृद्धिका कारण सोने-चाँदीकी वृद्धि है।

शताब्दी	यूरोपमें धातुओंका परिमाण	पदार्थोंके साधारण मूल्यका औसत
१५००	लगभग ६ हजार १ सौ अर्ब रुपय (१०० बिलियन डालर)	२५
१६००	,, १६ ,, ५ ,, रुपये (५५० ,,)	७५
१७००	,, ४१ ,, ५ ,, रुपये (१४५० ,,)	६०
१८००	,, ५५ ,, २ ,, रुपये (१८५० ,,)	१००
१९००	,, १०६ ,, ७ ,, रुपये (२८६० ,,)	१२५

इस तालिकामें अठारहवीं शताब्दीके साधारण औसत मूल्यको एक सैकड़ा मानकर अन्य शताब्दियोंके मूल्य उसकी तुलना की गई है। तालिकामें स्पष्ट है कि पदार्थोंका मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही आया है। जेवन्सकी दी हुई तालिका इस प्रश्नको और भी सरल कर देती है इसलिए वह भी यहां दी जाती है —

काल	महँगी	यूरोपमें सोने-चाँदीका परिमाण
सन् १८४६—१८६६	वृद्धि	वृद्धि
,, १८६६—१८९६	कमी	स्थायी
,, १८९६—१९१०	वृद्धि	वृद्धि
,, १९१०—१९१४	कमी	कम वृद्धि
,, १९१४ से वर्तमान समयतक	वृद्धि	वृद्धि

सि. जेवन्स अपना पुस्तकमें उन्नीसवीं शताब्दीकी कमियोंका भी विवरण दी है।

इसी पुस्तकके आधारपर यहाँ पदार्थोंके साधारण औसत मूल्यका उन्नीसवीं शताब्दीका इतिहास दिया जाता है। ऊपर ब्रमरीकाकी जो तालिका दी गई है उससे स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दीमें पदार्थोंका मूल्य अठारहवीं शताब्दीसे ज्यादा अर्थात् २६ प्रति सैकड़ा अधिक रहा। परन्तु स्वयं उन्नीसवीं शताब्दीमें पदार्थोंके मूल्यमें जो उलट-फेर हुए वे नीचे दिये जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें सं० १८७७ से लेकर सं० १६०६ तक महँगीमें कमी हुई अर्थात् पदार्थोंका भाव गिर गया। इस कमीके तीन कारण थे—

(१) सुवर्णकी उत्पत्तिका कम होना (२) सिक्कोंकी माँगका बढ़ना और (३) पदार्थोंकी पैदावारका बढ़ना। सं० १६०६से लेकर सं० १६३१ तक महँगीकी वृद्धि हुई, परन्तु यह वृद्धि लगातार न हुई—कभी कम हुई, कभी बढ़ी। परन्तु कुल मिलाकर, वृद्धि ही रही। इस वृद्धिके कारण ये थे— (१) सुवर्णकी पैदावारका बढ़ना (२) साखके प्रचलनकी वृद्धि और (३) व्यापारकी उत्तेजना। सं० १६०३में सुवर्णकी जितनी उत्पत्ति हुई थी, सात वर्षके भीतर यह ६ या ७ गुनी बढ़ गई अर्थात् सं० १६०३में संसार भरमें जितना सोना पैदा हुआ था सं० १६०६ में उससे ६ या सातगुना पैदा हुआ। सं० १६२६ से सं० १६३१ तक व्यापारको भारी उत्तेजना मिली। इस उत्तेजनाके फलस्वरूप महँगीकी वृद्धि हुई। सं० १६३१ से लेकर सं० १६५३ तकके कालमें पदार्थोंका साधारण औसत मूल्य ४० फी सदी घट गया। भाव गिरनेके कारण ये थे—(१) पदार्थोंकी उत्पत्तिकी अधिकता (२) सोनेकी कमी और उसके मूल्यकी वृद्धि (३) अनेक देशोंने स्वर्ण-मुद्रा-प्रणालीका अवलम्बन किया। इसलिए चाँदीके मूल्यका कम होना और सोनेकी माँगका बढ़ना। सं० १६५३ से सं० १६५७ तक महँगीकी वृद्धि हुई। इस वृद्धिका मुख्य कारण सोनेकी पैदावारका बढ़ना ही था। इस कालमें सोनेके सञ्चित परिमाणमें सं० १८५२से ५० प्रतिशतक वृद्धि हुई। मि० लेटनकी सम्मति है कि महँगीकी वृद्धिका कारण सोनेकी पैदावारका बढ़ना ही है।

बीसवीं शताब्दीमें तो महँगीकी वृद्धिने और भी भयंकर रूप धारण कर लिया है। मि० फिशर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि भविष्यमें महँगीकी वृद्धि लगातार होगी और यह वृद्धि प्रतिवर्ष इतनी हुआ करेगी जितनी कि सोलहवीं शताब्दी भरमें हुई थी। दूसरी जगह यह भी उन्होंने लिखा है कि—'मैं यह निस्संकोच रीतिसे कह सकता हूं कि आगामी अनेक वर्षोंतक महँगीमें कमी न होगी'। इसी पुस्तकके आरंभमें आपने यह लिखा था कि युद्ध-कालमें और युद्धके बाद भी महँगी बढ़ेगी। युद्धके बाद महँगीकी वृद्धि होनेका आपने यह कारण बतलाया था कि युद्धके बाद यद्यपि पदार्थोंकी उत्पत्ति बढ़ेगी परन्तु उतनी नहीं जितनी कि सिक्कोंकी संख्या। आपका यह अनुमान बिलकुल सत्य निकला। यह सभी जानते हैं कि आजकल महँगी बढ़ रही है। हालके अङ्कोंसे यह भी पता चला है कि युद्ध-कालमें संसारका कागज़ी रुपया सातगुना बढ़ गया। आपने हिसाब लगाकर बताया है कि संसारमें सिक्कोंकी संख्या सात प्रति सैकड़ा बढ़ रही है जबकि व्यापारके पदार्थोंकी पैदावार

केवल साढ़े चार प्रति सैकड़ा ही बढ़ रही है। अतः महँगीकी वृद्धिकी गति (७-४½) २½ फी सदी है। (यह हिसाब युद्ध-कालसे पहलेका है।)

निम्नलिखित वर्षोंसे महँगीकी गति इस प्रकार रही है—

सम्वत्	१९५५	१००
”	१९५६	९३
”	१९५७	९२
”	१९५७	९३
”	१९५८	९३
”	१९५९	९६
”	१९६०	१०३
”	१९६१	१०७
”	१९६२	९७
”	१९६३	९९
”	१९६४	१०४

सं० १९६५ से सं० १९७१ तकके अंक, लेखकको इस समय प्राप्त नहीं। सं० १९७१ आषाढ़से लेकर सं० १९७६ के भाद्रपदतकका हिसाब 'इकनामिस्ट' नामक पत्रमें निकला है। उसमें १९५८ से लेकर १९६२ तकके औसत मूल्यको माप-परिमाण माना गया है। वह हिसाब इस प्रकार है:—

माप-परिमाण सं० १९५८–६२ का औसत मूल्य		१००
आषाढ़	१९७१	११५.९
ज्येष्ठ	१९७२	१५०.७
मार्गशीर्ष	१९७२	१६५.१
ज्येष्ठ	१९७३	१९१.५
मार्गशीर्ष	१९७३	२२३
ज्येष्ठ	१९७४	२४६.६
मार्गशीर्ष	१९७४	२६१.२
ज्येष्ठ	१९७५	२०७.५
कार्तिक	१९७५ (युद्ध बन्द होनेका समय)	२८२.६
मार्गशीर्ष	१९७५	२००.०
फाल्गुन	१९७६	२५९.४
ज्येष्ठ	१९७६	२८१.३
भाद्रपद	१९७६	३११.४

अर्थात् आहार १८७६ का औसत मूल्य १९४८–१९५२ के औसत मूल्यसे तिगुना था।

महँगीसे मज़दूरों और उन लोगोंको जिनकी आमदनी निश्चित होती है, बड़ी हानि होती है, व्यापारको कुछ उत्तेजना मिलती है और सूदखोरों, तथा मुनाफ़ा खानेवाले व्यापारियों एवं कारखानोंके मालिकोंके गुलछर्रे उड़ते हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि महँगीसे व्यापार और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है परन्तु यह विचार भ्रमपूर्ण है, क्योंकि समृद्धि की वृद्धि तो विज्ञानकी उन्नति, आविष्कारोंकी अधिकता, श्रमजीवियोंकी कार्यक्षमता और पूँजीकी वृद्धि आदि कारणोंपरही निर्भर है, महँगी पर नहीं। महँगीसे समाजके अधिकांश जनसमूहको बड़ी भारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। साम्यवादके धुआँधार प्रचारका एक मुख्य कारण महँगीकी वृद्धि भी है। वर्तमान समयमें तो बोल्शेविज्मकी भयंकरता और उसके शीघ्र प्रचारका प्रधान कारण भी अनेक देशोंमें महँगी ही है। महँगीने इस समय तो इतना भीषण रूप धारण कर लिया है कि अब यह असह्य हो गई है। संसारव्यापी अशान्ति, और हड़तालोंका मूल कारण महँगी है। अतः शान्ति-स्थापनके लिए महँगीका निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। महँगीको कम करनेका एक उपाय कागजी रुपयेको कम करना है। मि० फिशर कहते हैं कि महँगीके कष्टोंका निवारण सिक्कोंका मूल्य स्थिर करनेसे हो सकता है। संसारके विचारकोंका ध्यान इस ओर भी जाना चाहिए।

देवदत्त



पुस्तकावलोकन

तंत्र—अनुवादकर्त्ता पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी।
यूरोपमें बुद्धि-स्वा साहित्य भण्डार, देवरी-सागर, म० प्र०। पत्र संख्या
प्रकाशक—बुद्धि-स्वातंत्र्य स्य ?।)
१६३। जिल्द सादी। मू और विज्ञानका केन्द्र बना हुआ है। वह संसारको सभ्य बनाने
यूरोप आज सभ्यताका मार्ग दिखानेका दावा करता है। परन्तु एक दिन यही यूरोप
और पिछड़े हुए देशोंको उन्ना अन्धकारमें मस्त था। अन्ध तथा मूढ़ विश्वासोंका वहाँ साम्राज्य
अविद्या और असभ्यताके पोपरियाजोंकी रक्षाके लिए लोग बिना समझे हुए अनेक पाप और
था। धर्म, नीति और रीतिके नामपर नर-हत्या तक हुआ करती थी। विचार-स्वातन्त्र्यका नाम
अत्याचारोंको करते थे। धर्म और विश्वासोंके विरुद्ध किसीको तर्क करना जानपर खेला
तक नहीं था। प्रचलित म ज्ञानका उदय हुआ और विचारोंकी स्वतन्त्रताने समाजका रंग बदल
असम्भव था। धीरे धीरे वि यूरोप ऐसी उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुआ है। यूरोपमें विचार-
दिया, यहाँ तक कि आज, धर्मान्धतापर वैज्ञानिक विचारशैली और बुद्धिने किस प्रकार विजय
परिवर्तन किस प्रकार हुआ लेकीने अपनी सुविख्यात पुस्तक 'रैशनलिज्म इन यूरोप'में दिया है।
प्राप्त की, इसका इतिहास ही पुस्तकके प्रथम भागका अनुवाद है। जादू और डाकिनीवृत्ति,
प्रस्तुत पुस्तक इसी अर्थ, कला, विज्ञान और नीतिशास्त्रके विकासका इसमें वर्णन है।
धर्मसंस्थाओंका चमत्का गमें प्रकाशित होंगे। संसारकी प्रायः सभी भाषाओंमें मूल अंग्रेजी
बाकी अध्याय दूसरे भागका है। पुस्तकका कैसा आदर है और उसकी कैसी उपयोगिता है
पुस्तकका अनुवाद हो चुके हैं। अतएव हिन्दीमें भी इसका अनुवाद प्रकाशित हो गया यह देखकर
वह इस बातका प्रमाण ा है। समाज सुधार और विचार परिवर्तनपर जो यूरोपीय साहित्य है
चित्त अति प्रसन्न होता न समझा जाता है। भारतवर्ष और यूरोपके मध्यकालीन विचारोंमें
उसमें मूल मध एक और समाज सुधारमें सर्वत्र कैसी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं यह इस
कितनी समानता है इस मालूम पड़ता है। हमारे देशमें जहाँ अविद्याके अन्धकारने और
पुस्तकके देखनेसे ता रीतियोंने विचार और बुद्धिको सर्वसाधारणमें एक बड़ा हीन स्थान दे
बहुतसी प्राचीन मूल पुस्तकोंके प्रचारकी विशेष आवश्यकता है। यह भी प्रसन्नताकी बात
रक्खा है वहाँ ऐसे तरहकी अन्य पुस्तकें भी निकालनेका विचार रखते हैं। उनकी सफलता
है कि प्रकाशक इस है भाषाकी शुद्धता और सरलतापर विशेष ध्यान दिया जाय तो अच्छा हो।
इन हृदयसे चाहते गुजराती भाषान्तरपरसे दिया गया है बड़े महत्वका है और पुस्तककी उपयो-
उपोद्घात जो है।
मिलाकी बढ़ाता

सावित्री-सत्यवान—अनुवादक श्रीयुत नवजादिकलाल श्रीवास्तव। प्रकाशक—बाबू रामलाल वर्म्मा, ३७१ हैरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या १४६। मूल्य, साधारण जिल्द १।।), रेशमी सुनहरी जिल्द २)

सावित्री-सत्यवानकी पौराणिक कथा इस देशमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसी उपाख्यानको बा० सुरेन्द्रमोहनरायकी मूल बंगला पुस्तकसे अनुवाद कर प्रकाशित किया गया है। पुस्तककी भाषा शुद्ध तथा सरल है। यह स्त्रियों और बालिकाओंको समझने योग्य है। छपाई अत्यंत बढ़िया है और जिल्दके सुन्दर बनानेमें कोई बात उठा नहीं रक्खी गई है। ११ चित्र भी दिये गये हैं, जिनमेंसे ६ रंगीन हैं। छपाई आदिकी सुन्दरता और चित्रोंने पुस्तकको उपहार व पारितोषकमें देने योग्य बना दिया है।

* * *

कलंकिनी—अनुवादिका श्रीमती "सावित्री"। प्रकाशक—मनमोहन पुस्तकालय, नीचीबाग, काशी। पृष्ठ संख्या १५१। जिल्द सादी, मूल्य ।।।=)

बाबू योगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायके एक सामाजिक उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादिका एक महिला हैं जिनका यह प्रथम उद्योग है तिसपर भी भाषा बड़ी सरल और शुद्ध है। यह बड़े आनन्दकी बात है कि पहिले प्रयासमें एक महिलाने इतनी सफलता प्राप्त की है। उपन्यास गार्हस्थ्य जीवनसम्बन्धी है। अच्छे घर बेटीका विवाह उच्च कुलमें करनेमें जो बातें कठिनाइयाँ माँ बापको उठानी पड़ती हैं उनका इसमें अच्छा वर्णन है। कई घटनाएँ ऐसी हैं जो हिन्दू समाजमें प्रतिदिन देखनेमें आती हैं और यही इस पुस्तककी हम विशेषता समझते हैं। कहानी सरल है, घटना-वैचित्र्य न होनेपर भी रोचकताका गुण मौजूद है और साथमें शिक्षा भी प्राप्त होती है। पुस्तक अच्छी है।

[illegible]—सम्पादक [illegible] [illegible] एम० ए० [illegible] एम० ए० । प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग । पृष्ठ संख्या २८६ मूल्य ॥=)।

यह संग्रह हिन्दीके सुपरिचित लेखकोंका किया हुआ है और विशेषकर यह साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंके लिए है । इसमें १८ गद्य लेखकोंके चुने हुए लेख संगृहीत हैं । भिन्न भिन्न प्रकारकी रचना प्रणालीका संग्रह साहित्यके विद्यार्थीके लिए उपयोगी हुआ करता है । हिन्दीमें ऐसे संग्रहोंकी कमी है और [illegible] भी पुस्तक इसकी उपयोगिता [illegible] है । पुस्तकमें उर्दूके गद्य लेखकोंको भी स्थान दिया गया है । यह बात लोगोंको खटकेगी । सम्पादकोंकी यह [illegible] नहीं है कि हिन्दी उर्दू दो भाषा नहीं है केवल लिपि और फारसी शब्दोंके प्रयोगका भेद है । परन्तु यह मानना पड़ता है कि [illegible] हिन्दी और उर्दू दो [illegible] रूप धारण किये रहेंगी । [illegible] जब हिन्दीमें [illegible] है, उर्दूको भी [illegible] स्थान देनेमें पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ जाती । पुस्तक संग्रह योग्य है ।

∴

प्रथमालंकार-निरूपण—लेखक पण्डित श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री । प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग । पृष्ठ संख्या ३४ मूल्य =)।

पुस्तकका विषय नाममें ही प्रकट है । यह भी सम्मेलनकी प्रथमा परीक्षाके लिए लिखी गई है । अलङ्कारोंका वर्णन सरल भाषामें किया गया है और उनके समझानेके उदाहरण बड़ी सावधानीसे दिये गये हैं । विद्यार्थियोंके लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी होगी । अलङ्कारके बड़े ग्रन्थोंमें प्रवेश करनेके लिए यह अच्छी सहायक हो सकती है ।

∴

स्काउटिंग और स्काउटमास्टर—लेखक प० रामदुलारे बाजपेयी बी० ए० । प्रकाशक-सेवासमिति, प्रयाग । पृष्ठ संख्या ४३ मूल्य =)

स्काउटिंगका प्रचार देशमें भली प्रकार होने लगा है । नवयुवकोंको इसके द्वारा संयम और सदाचारकी पूर्ण शिक्षा मिलती है और साथ मिलकर काम करना आता है । देश-सेवाका उत्साह जागृत होता है और उचित रीतिसे उपयोगी सेवा भी बन पड़ती है । जैसे जैसे सेवा समितियोंकी संख्या बढ़ती जाती है स्काउटिंगके साहित्यकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है । इसीको पूरा करनेके लिए प्रयागकी सेवा-समितिने स्काउटस सीरीज़ निकाली है जिसकी यह चौथी पुस्तक है । इसमें सात परिच्छेद हैं । स्काउटकी प्रतिज्ञा और नियम देनेके बाद बालचरोंके संगठन और भर्तीके नियम दिये हैं । फिर उनके काम और बालकम समझाकर मैदानोंमें जाकर काम करना बतलाया है । मनोरंजन और संयमका वर्णनकर पुस्तक समाप्तकी गयी है । जहाँपर बालचरोंकी संख्या बनानी हो वहाँ इस पुस्तकसे लाभदायक बातें मालूम हो सकती हैं । नवयुवकोंको इसके पढ़नेसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

नल-दमयन्ती—अनुवादक—श्रीयुत नवजादिकलाल श्रीवास्तव । प्रकाशक—बाबू रामलाल वर्म्मा, ३७१, हरिसन रोड, कलकत्ता । मूल्य १॥) सजिल्द २).

'सावित्री-सत्यवान'की तरह नल-दमयन्तीका पौराणिक उपाख्यान भी देशकी एक सर्व-प्रिय कहानियोंमेंसे है और पातिव्रतधर्मकी शिक्षाके लिए बड़े महत्वकी समझी जाती है। ऐसे लोकप्रिय उपाख्यानको सुपाठ्य भाषामें बड़ी सजधजके साथ प्रकाशित करनेका श्रेय वर्म्मन प्रेसको है। १२ चित्र जिनमेंसे ६ रंगीन हैं, पुस्तककी सुन्दरता बढ़ानेमें कुछ कसर नहीं रखते। यह पुस्तक भी उपहारके योग्य है। वर्म्मन प्रेसकी छपाई एक नमूना है उसके बारेमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं।

* * *

वीर-पञ्चरत्न—रचयिता श्रीयुत लाला भगवानदीन, सम्पादक लक्ष्मी। प्रकाशक—बाबू रामलाल वर्म्मा, ३७१, हरिसन रोड, कलकत्ता । पृष्ठ संख्या ३२६, मूल्य, २॥). सजिल्द ३) और रेशमी जिल्द ३।) ।

यह रचना 'दीन' उपनाम हिन्दीके सुपरिचित कविकी रचना है। यह वीर-रस-प्रधान चरितकाव्य है। वीर-क्षत्राणी वीर-बालक, वीर-ब्राह्मणी, वीर माता और वीर-पत्नी इस तरह पुस्तकमें पांच रत्न हैं। कुल २६ वीर-चरित्रोंपर कविता रची गई है। पुस्तकका उद्देश्य छोटे पाठक-पाठिकाओंको भारतका प्राचीन वीरत्व प्रकट करना है। बालकोपयोगी साहित्यमें यह पुस्तक अपने ढंगकी पहली है अतएव रचयिता धन्यवादके पात्र हैं। कविता हिन्दी उर्दू मिश्रित बोलचालकी है। परन्तु 'दीन'जीकी लेखनी या कवित्व शक्तिका यह गर्वोच नमूना नहीं है। कहीं कहीं ऐसे वाक्य भी आ गये हैं जो बालकोंके पढ़नेके लिये सर्वथा अयोग्य हैं। श्रृंगारकी बातोंमें उनका अभिरुचिका होना अनावश्यक है, विशेषकर बालकोपयोगी पुस्तकमें। पुस्तकमें २१ चित्र भी हैं, जिनसे छोटे पाठकोंका मनोरंजन अवश्य होगा।

* * *

निम्न लिखित पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं

१ हिन्दी-प्रचारके उपयोगी साधन—लेखक, लाला कन्नोमल, एम० ए०।
२ प्रश्नोत्तर मणिरत्नमाला ,,
३ मास्टर पोयट्स आफ़ इण्डिया (अंग्रेजी) ,,
४ लार्ड हर्दनाज़ मैसेज ,, ,,
५ आत्मध्यान विधान—लेखक, मास्टर [illegible] जी अनुव्रती।
६ नवम हिन्दी साहित्य सम्मेलनका विवरण—
प्रथम भाग, कार्य विवरण।
द्वितीय भाग, लेख माला।

सम्पादकीय

पंजाबकी नहरें



कृषि-प्रधान देशमें आबपाशीका समुचित प्रबन्ध होना एक अत्यन्त आवश्यक बात है। परन्तु हमारे देशमें प्रायः दुर्भिक्ष पानीकी कमीके कारण हुआ करते हैं। वस्तुतः ही एक ऐसा प्रश्न है जहाँ प्रकृतिकी असमानता कारण होती है। यहाँके निवासी और सब प्रान्तोंमें अनावृष्टि हो जानेकी उलझनें बाधक होती है। कृषक कुएँसे काम लेते हैं परन्तु फिर भी पानीकी कमी होती है बहुतसे कुएँ सूख जाते हैं और पानी उठ नहीं दे सकते। इस प्रकार जल कष्ट और भी बढ़ जाता है और उपजमें बड़ी कमी हो जाती है। सबसे बढ़कर दूसरी कृषकोंको मेनोटर काम नहीं मिलता इसलिए आपको कोई दूसरा मार्ग खोजना पड़ता है। कृषि दैवाधीन है। परन्तु मनुष्य भी नितान्त निराश्रय नहीं है। कुएँ और नहरोंसे बड़ी भारी सहायता मिलती है। नहरें सब जगह तो बन नहीं सकती और उनका बनना भी सरकारके हाथमें है। ऐसी दशामें नहरोंके निकालनेका भार सरकार पर ही है और उसने दो तरहकी नहरें बना रक्खी हैं। एक तो वे जो आबपाशीके लगानसे लागत पूरा कर देती हैं और दूसरी वे जिनसे सरकारको आर्थिक लाभ बहुत कम होता है। जिनसे आर्थिक लाभ विशेष होता है उन नहरोंके बनानेमें सरकार सदा तत्पर रहती है परन्तु जिनसे प्रजाकी रक्षा होती है और सरकार को आर्थिक लाभ नहीं होता उनके बनानेमें संकोच करती है। पंजाबमें भाग्यवश नहरोंके बनानेकी बड़ी भारी सुविधा प्रकृतिने ही दे रक्खी है। जैसी नहरें पंजाबमें हैं और जैसा प्रजा और सरकारको उनसे लाभ होता है वैसा शायद ही किसी और देशमें होता हो। पंजाब गेहूँका भंडार है। उसकी उपज बढ़ानेमें और आर्थिक उन्नतिमें नहरोंका बड़ा भारी भाग है। रेलोंको भी अन्न लादनेसे बड़ी आमदनी होती है। कराची बन्दर द्वारा पंजाब अपना अन्न भेजकर विलायत की प्रजाका पालन करता है। पचास वर्ष पहिले पंजाबकी जन संख्या बहुत कम थी और दुष्कालका सदा भय बना रहता था। अब दूसरी ही बात हो गई है, अनावृष्टिका भय नहीं रहा। सं० १६७५ में नहरकी आबपाशीसे ५५ करोड़ रुपयेका अन्न उत्पन्न हुआ था। जितना रुपया नहरोंपर आज तक पंजाबमें व्यय किया गया है उससे ढाई गुनेका अन्न एक ही वर्षमें उत्पन्न हो गया। औसतसे एक एकड़ भूमिमें ६० रुपयेका अन्न उत्पन्न हुआ। आबपाशीके लिए लगानका औसत ५ रुपये एकड़ देना पड़ता है। कृषक और जिमींदारको कितना लाभ है और प्रजा अनावृष्टिके भयसे कैसी सुरक्षित है यह सहजमें अनुमान हो सकता है। परन्तु फिर भी अन्नके निर्यातके कारण प्रजाको विशेष सस्ता अन्न मिल जाता हो ऐसा नहीं है। सरकारको भी बड़ा लाभ है। उसी वर्ष सरकारकोभी २ करोड़ और २७ लाखकी बचत नहर विभागसे हुई। इस हिसाबसे लागत पर १० प्रति सैकड़ासे ऊपर सूद मिल गया। कुल नहरोंकी लम्बाई २०,००० मीलके लगभग है और ६०

लाख एकड़ भूमिकी आबपाशी उनसे होती है। पाँचों नदियोंके पानीका पूर्ण उपयोग अभी नहीं हो रहा है। अभी और नहरें बन सकती हैं। पंजाबकी तरह इस प्रान्तमें नहरोंकी सुविधा नहीं हो सकती, यह सच है। फिर भी, यहाँ और अन्य प्रान्तोंमें सरकार जल कष्ट निवारण करनेका जितना प्रयत्न करे उतना थोड़ा है। रेलोंके बनानेका जितना उत्साह है उतना नहरोंके लिए नहीं है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि रेल और नहरमें प्रजाको किसकी आवश्यकता विशेष है।

ब्रिटिश सरकार और विलायतके व्यापारी

संसारके समस्त देश अपनी व्यापारिक उन्नतिका घोर प्रयत्न कर रहे हैं। देशकी उन्नति और आर्थिक अवस्था सुधार व्यापारपर अवलम्बित है। युद्धने व्यापारमें शिथिलता उत्पन्न करदी थी और उसको पूर्णतया दूर करनेके लिए और अन्य देशोंमें बढ़चढ़कर रहनेके लिए विलायतके व्यापारी और सरकार मिलकर जो उद्योग कर रहे हैं वे हमारे लिए जानने योग्य हैं। एक तो इस कारण कि ऐसी सुव्यवस्था यदि यहाँ भी हो जाय और सरकार देशी व्यापारियोंके हितका उतनाही ध्यान रखने लगे तो इस देशका व्यापार भी चमक उठे। यह शिकायत तो यहाँ बहुत पुरानी है कि सरकार विदेशीय होनेके कारण हमारी आर्थिक दशा सुधारनेकी ऐसी इच्छुक नहीं है जैसी कि अंगरेजी व्यापारियोंकी सार्थक हितेच्छु है। युद्धकालमें बहुतसे व्यवसाय बन्द होगये थे और बहुतसे कारखानोंको अपना काम छोड़कर सरकारी काम करना पड़ा था। आयात निर्यातपर भी सरकारने रोक टोक लगादी थी। इससे व्यापारमें जो बाधा हुई इस लिए सरकार अब ऐसी नीतिका अवलम्बन करना चाहती है जिससे व्यापारियोंकी शिकायत दूर होकर उनको उत्तेजना मिले। इस निमित्त एक नया सरकारी विभाग खोला गया है। जिसका कार्य-क्षेत्र बड़ा विस्तृत है और व्यवस्था भी बड़े सोच विचार कर की गई है। वास्तविक उद्देश—अर्थात् विलायतके व्यापारकी श्रीवृद्धि—की सफलताके लिए सरकारी कर्मचारी और व्यापारी समुदायमें घनिष्ट सम्बन्ध किया गया है। इस विभागके द्वारा सब तरहकी व्यापार सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें मालूम हो सकेंगी। किस जगह किस तरहके कामसे लाभ होनेकी आशा है, व्यापारकी उन्नति और नये देशोंमें उसके लिए सुविधा कहाँ पर प्राप्त है, कच्चा माल कहाँसे सस्ता मिल सकता है और कहाँ तैयार मालकी विशेष खपत हो सकती है ऐसी अनेक उपयोगी बातोंकी जाँच इस विभागद्वारा की जायगी और उसकी सूचना पूछने पर और स्वय भी सरकार अपने व्यापारियोंको देगी। बैंक भी जमा किये जायँगे और साखके साथ व्यापारियोंको दूसरे देशोंमें व्यापार जमानेमें अन्य रीतियोंसे भी सहायता दी जायगी। विलायती मालकी प्रदर्शनी भी हुआ करेगी। इस तरह सरकार और व्यापारमें बड़ा गाढ़ा सम्बन्ध हो जायगा। फिर उन्नति न होगी ऐसा सम्भव नहीं। अंगरेजी कहावत है कि झंडेके पीछे पीछे व्यापार चलता है। इससे भी अंगरेजी व्यापारका भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है। एक ओर हम हैं कि दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनेकी भी पूरी शक्ति नहीं, अपनी सरकारसे इतनी बड़ी आशा करनेका हमको साहस भी नहीं हो सकता।

सावरेनका चलन

मिस्री और रुपयेके परस्पर भावने पिछले वर्षमें जो जो रंग दिखाये है वे सबको विदित है। अर्थ-शास्त्रका यह एक मान्य सिद्धान्त है कि उसके नियमोंके व्यापारमें सरकारका हस्तक्षेप साधारणतः ठीक नहीं होता है। इस सिद्धान्तके अपवाद भी हैं। अब यह बात मान ली गई है कि सरकारका हस्तक्षेप कई अवसरों पर उचितही नहीं वरन् आवश्यक भी होता है। परन्तु हम देखते हैं कि विलायतमें सरकार प्रजाहितके लिएही आर्थिक नियमों का उल्लंघन या पालन करती है और यहाँ पर उसको अपने उद्देश्य-सिद्धिसेही मतलब रहता है। इसका कारण यही है कि यहाँ दुर्भाग्यवश सरकार और प्रजाके हिताहितमें भेद है। इस बातका प्रमाण सावरेन सम्बन्धी और सरकारी हुण्डियोंको बेचनेकी नीति है, इस सम्बन्धमें पहिले कुछ लिखा भी जा चुका है। अब सावरेन १० रुपयेका कर दिया गया और सरकारी सिक्का नहीं रहा। इस नये भाव पर उसको पुन प्रचारित करनेके लिए सरकार कानून बनावेगी। सोना अब देशमें बेरोकटोक आ सकेगा।

रेलके किरायेमें वृद्धि

युद्धकालमें रेलोंका किराया बढ़ाया गया था तो प्रजाके प्रतिनिधियोंने इसका पूरा विरोध किया था। परन्तु हुआ वही जो रेलकी कम्पनियाँ करना चाहती थीं। आशा इस बात की कीजाती थी कि युद्ध समाप्त होतेही किरायेका दर घटा कर पहिले जितना कर दिया जायगा। यह अभी तक नहीं होने पाया। इसके विपरीत अब यह सुना जाता है कि किराया और भी बढ़ाया जायगा। हमको पूर्ण आशा है कि इसे प्रस्तावोंका घोर विरोध किया जायगा और दृढ़ता पूर्वक प्रजाका मन सरकारको दर्शाकर हमारे नेता किरायेको बढ़ने न देंगे। रेलकी कम्पनियोंको युद्धकालमें हानि नहीं हुई वरन्, अच्छा लाभ हुआ है, और यह अब भी हो रहा है। विलायतसे नया सामान नहीं मिल सकता था और जो मिलता था उसका दाम बहुत बढ़ गया था। लड़ाईके कामसे रेलोंसे बहुत काम भी लिया गया था। परन्तु लाभ उनको बराबर होता रहा है। रेलोंका प्रबन्ध तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिए कैसा है यह सब जानते हैं। रेलके कर्मचारियोंका साधारण यात्रियोंके आरामका कितना ध्यान है इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। जिस निर्दयता और स्वार्थपरताका परिचय पद पद पर यात्रियों को मिलता है उससे तो यही सिद्ध होता है कि बिना घोर आन्दोलन किये इस लज्जा-जनक अवस्थाका सुधार असम्भव है। अपनी चाल बदलनेके बजाय रेलकम्पनियाँ किराया और बढ़ाना चाहती हैं। यह कहाँका न्याय है। व्यापार और यात्रियोंके लिए इस महँगीमें एक और नई बाधा उपस्थित की जा रही है। किराया बढ़ानेके प्रस्तावका विरोध सभा और व्यापारी मण्डलों द्वारा हो तो रहा है परन्तु परिणाम क्या होगा यह नहीं कह सकते। मूल बात यही है कि कम्पनियाँ विदेशी हैं और उनका एक मात्र उद्देश्य धन उपार्जन करना ही है उनको यात्रियोंके आराम और व्यापारकी सुविधासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

लोकमान्य तिलकका स्वर्गवास *

देहधारीके लिए मृत्यु अनिवार्य है। जो जन्म लेता है वह एक दिन अवश्य ही मरता है असंख्य मनुष्य जन्म लेते हैं और फिर अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर संसारसे उठ जाते हैं। उनका कोई चिन्ह तक अवशेष नहीं रहता। परन्तु कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जो अपने आचरण और अन्य गुणोंके कारण अपार कीर्ति छोड़ जाते हैं और अपने यश द्वारा संसारमें सदा बने ही रहते हैं। ऐसे महापुरुष विरले ही होते हैं जो स्वयं मरकर तो अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं परन्तु अपनी मृत्युसे देशको एकबार बिलकुल निर्जीव और आशाहीन कर जाते हैं। उनके देहावसानसे देशकी ज्योति निकलजाती है और चारोंओर अंधकार छा जाता है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक एक ऐसे ही महान् व्यक्ति थे जो अपने स्वर्गवाससे समस्त देशको शोकाकुल बना उसको श्रीहीन करगये हैं। उनके स्वर्गवाससे भारतमाताका सबसे प्यारा लाल उठगया, देशाभिमानका सच्चा स्तम्भ चल बसा और जनताका वीर नेता जाता रहा। आज बेचारे भारतवासी दीन और असहाय बालकोंकी तरह बिलख बिलख कर रोते हैं और अपने हीन भाग्यको कोसते हैं।

लोकमान्यकी जीवनी हमारे देशका आधुनिक इतिहास है, उनकी उक्ति हमारा सिद्धान्त है, उनका कार्य जातीय सम्पत्ति है। इस पददलित देशमें ऐसे व्यक्तिका उत्पन्न होना इस बातकी घोषणा है कि हमारी जातीयता, हमारा देश, हमारा धर्म चाहे जैसी अवनत दशाको प्राप्त होगये हों उनका अभ्युदय अवश्य होगा और भारतवर्ष पुनः सजीव होकर एक महान् देश बनेगा। उनकी विद्या, बुद्धि, निर्भीकता, स्वार्थ-त्याग और अद्वितीय देश-सेवा हमारी आशाके प्राण हैं, हमारे अभिमानके कारण हैं। तिलकने देशका मस्तक ऊँचा कर दिया, भारतमाताके म्लान मुख पर फिर तेज झलका दिया और स्वराज्यके मन्त्रकी दीक्षा देकर देशवासियोंको आत्मबलिदानका कर्मयोग सिखा दिया।

लोकमान्यके किस किस गुणका वर्णन और वह भी किस प्रकार किया जाय। एक एक गुणने यह पराकाष्ठा दिखलायी कि केवल उसीके होते उनको देशमें उच्चस्थान प्राप्त हो जाता। ऐसा संयोग संसारके एक युगमें दुर्लभ होता है। जिन महापुरुषोंने संसारके इतिहासमें युगान्तर कर दिखाया है, अपने देश और जातिमें जिन्होंने नवीन जीवनका सञ्चार किया है, चाहे वे किसी देशके क्यों न हों हम लोकमान्यसे उनकी तुलना करनेके लिए तैयार हैं। यदि यह देश स्वाधीन होता और तिलक जैसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तिको एक विदेशी सरकारकी आलोचनामें इतना समय न देकर देशके लिए नवीन योजनाका अवसर मिलता तो पिछली सदीका कोई महापुरुष उनसे बढ़कर होता, इसमें हमें सन्देह है।

अपनी प्रतिभाका परिचय तो लोकमान्य बाल्यकालसे ही दे चुके थे। विद्याध्ययनमें जैसी विलक्षण रुचि आजन्म दिखलाई उससे आश्चर्य होता है। बुद्धि कैसी सूक्ष्म थी इस बातको उनके शत्रु और मित्र दोनों ही मुक्त कण्ठसे स्वीकार करते हैं। निर्भीकता उनके स्वभावका

---

* जन्म सम्वत् १९१२ आषाढ़ कृष्ण ६, मृत्यु सम्वत् १९७७ प्र० श्रावण कृष्ण १।

एक साधारण गुण था। स्वार्थ त्याग उनकी प्रकृतिका जन्मसिद्ध गुण था और देश-सेवा उनके जीवनका महान् व्रत था। इतने सद्गुण एक व्यक्तिको अपना निवास स्थान नहीं बनाया करते। लोकमान्यमें यह सब विद्यमान थे और वे उनकी सार्थकता इसीमें समझते थे कि वे सब देशको निस्संकोच होकर अर्पित कर दिये जाँय। देश-सेवाही उनका जीवन था। उदासीन भारतवासियोंको देश-प्रेमका आदर्श दिखानेके लिए ही मानों उन्होंने जन्म लिया था। स्वदेश सेवाका इससे बढ़कर उदाहरण खोजने पर भी कहाँ मिलेगा?

जो काम किया वह एकही नीयतसे किया। कार्य-विभिन्नतामें भी एकही उद्देश रहा। और वह यह था कि भारतको स्वराज्य प्राप्त हो, उसके गौरवकी रक्षा हो और देशवासी स्वाधीनता लाभ करें। पुस्तकें लिखीं तो प्राचीनभारतका गौरव दिखलानेके लिए अथवा सोते हुए और भटके हुए भारतवासियोंको सीधे मार्गपर लानेके लिए। उन्होंने हमारे लिए क्या नहीं किया, कौन सी यन्त्रणा नहीं भोगी देशके लिए किस बातको उठा रक्खा!

आज वह महारथी, वह सच्चा कर्मवीर नहीं रहा। तिलकने हार जीत और सुख दुःखको विस्मरण कर प्राण रहते अपने प्रणका पालन किया और जिस धुनसे काम उठाया उसको अन्त तक एकही शानसे निभाकर दिखा दिया। गीताके सच्चे उपदेशको समझाया ही नहीं वरन् प्रत्यक्ष अपने जीवनमें कर दिखाया। नवीन भारतके नेताओंमें केसरी, स्वराज्य की दीक्षाके गुरु, आत्म-त्यागकी मूर्ति, आदर्श हिन्दू अपना विचित्र क्रियात्मक संदेश सुनाकर लोकमान्य अन्तर्ध्यान होगए, परन्तु वे अपनी अक्षय कीर्ति सदाके लिए छोड़ गए हैं। भारतका स्वराज्य तिलकका सच्चा कीर्ति-स्तम्भ होगा। जिस दिन भारतके शिरपर स्वराज्यका मुकुट शोभायमान होगा उसके मुखकी कान्तिको चमकाने वाला तिलकही माना जायगा।

तिलक पर अभिमान करने वाले भारतवासियोंका यही कर्त्तव्य है कि देशके गौरवकी उनकी तरह रक्षा करें। भारत माताकी ओर किसीको कुदृष्टिसे देखनेका साहस न करने दें और उसकी श्रीवृद्धिका निरन्तर उद्योग करते रहें।

यही तिलकका उपदेश है, और इसका कर दिखाना उनके प्रति हमारा सच्चा तर्पण और श्राद्ध है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



द्रष्टव्य चित्र तथा ग्रंथ

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमाला का चौथा ग्रन्थ

सचित्र

प्राचीन भारत

छप गया।

शीघ्र ही ग्राहकोंके हाथमें उपस्थित होगा।

[illegible] "प्राचीन भारत" है जिसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] "प्राचीन भारत" [illegible] [illegible]

इसके अतिरिक्त 'माला' का पाँचवाँ ग्रन्थ

सचित्र

इटलीके विधायक महात्मागण

भी छप गया।

'अब आधीन पतितावस्था [illegible] [illegible] कि [illegible] इटलीकी दशा क्या थी। [illegible] [illegible] इसको स्वाधीन कर स्वतन्त्र बनाने जिन जिन महानुभावोंका परिश्रम [illegible] था, उन्हीं महात्माओंके जीवन तथा कार्यकलापका वर्णन इस ग्रन्थमें है। स्वदेशका उद्धार करने वाले युवकोंके लिए इससे अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ मिलती हैं।

नियमानुसार (१) जैसे स्थायी ग्राहकोंमें अपना नाम लिखा लेने वाले महाशयोंको ये ग्रन्थ पौनी मूल्यपर भेजे जायँगे।

१. स्वराज्यका सरकारी मसविदा ('माला' का पहला ग्रन्थ)

यह स्वराज्यकी पहली सीढ़ी है। स्वराज्यका अर्थ है कि भारतके शासन [illegible] सारा भार इन भारतवासी अपने सिर ले लें। नौकरशाहीको राज्यकी बागडोर थामनेका कष्ट वृथा कष्ट न देवें। उसे इस भारी भारसे धीरे धीरे मुक्त कर दें। इसके लिए, हम प्रत्येक भारत सन्तानको—हर स्त्री और पुरुषको—राजनीतिका ज्ञान परम आवश्यक है। इसे भारतसचिव और वाइसरायने मसविदेके रूपमें तैयार की है। स्वराज्याकांक्षी अंगरेजी न जाननेवाले अधिकांश भारतवासियोंका इससे अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। अतः बड़े परिश्रम तथा व्ययसे इस रिपोर्टका अनुवाद श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाशजी बी. ए., एल-एल. बी. (केम्ब्रिज) बार-एट-ला के सम्पादनमें तैयार हुआ है। इस आवश्यक विषयका पढ़ना प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है। दो भाग, पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ६८०, मूल्य केवल १॥) एक रुपया बारह आने।

२. अब्राहम लिंकन ('माला' का दूसरा ग्रन्थ)

इतिहास तथा महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रके पढ़नेने निराशामें डूबती हुई कितनी ही जातियोंका बेड़ा पार लगा दिया है। कितने ही पददलित राष्ट्रोंको गुलामीसे छुटकारा दिलाकर मानमर्यादा तथा स्वराज्यका उपभोग दिलाया है। अब्राहम लिंकनका महान् जीवन भी उन्हींमें एक है। मृतक मनमें भी पुनः प्राणका संचार करनेवाला है। इसकी उपयोगिताके ही कारण मध्यप्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें स्वीकार किया है। पृष्ठ-संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) १२३, मूल्य ॥) मात्र।

३. बिहारीकी सतसई ('माला' का तीसरा ग्रन्थ)

कवि सम्राट् बिहारीकी सतसईपर हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० पद्मसिंह शर्माकी अपूर्व समालोचनाने संसारमें धूम पैदा कर दी है। संस्कृत, फारसी और उर्दूके कविताओंसे तुलनात्मक लेख बड़ेही चित्ताकर्षक हैं। "सतसई संहार" नामक निबन्ध जो किसी समय सरस्वतीमें छपा था, इसमें उद्धृत है। पुस्तककी भाषा सरस और सजीव है। समालोचना विषयकी हिन्दीमें यह अपूर्व पुस्तक है। प्रथम भाग छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या (डबल क्राउन १६ पेजी) ३०८, सजिल्द मूल्य २) दो रुपया।

'माला' में अन्य और जो महत्त्वके ग्रन्थ छप रहे हैं।

६—जापानकी राजनीतिक प्रगति (सचित्र)। १०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।
७—राष्ट्रीय आयव्यय। ११—अर्थशास्त्रका उपक्रम।
८—भौतिक विज्ञान। १२—यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षा सुधारक।
९—[illegible] यूरोप (सचित्र)। १३—रसायन शास्त्र।

सौर रोज़नामचा सं० १९७७

यह जेबी रोजनामचा है। इसमें साधारण जरूरी बातोंके सिवा पंचांग, हिन्दीका प्रचार, राष्ट्रीय संस्थाएँ, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक [illegible] नैतिक उत्तम उत्तम दोहे आदि कई नयी नयी बातें दी गयी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पंचांग सं० १९७७

यह बड़े बड़े सुन्दर अक्षरोंमें छापा गया है। भीतपर लटकाने लायक है। इसमें [illegible] भाग और [illegible] पंचांग [illegible] तथा तिथियोंके दी हैं। इसको [illegible] ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक [illegible] भी दी गयी है। [illegible] मूल्य ।=) छ. आने।

प्रकाशित पुस्तकें।

[illegible]

१—हिन्दी कैमिस्ट्री—मिट्टीमें धन पैदा करनेकी रीति। देशी भाषा जाननेवालोंके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १४०। मूल्य १) एक रुपया।

२—सरल रसायन—रसायनशालाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय। पृष्ठसंख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—वार्निश और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

७—जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष—कारीगरोंके लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। भिन्न भिन्न व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिए माल कैसे तयार करना चाहिए, बातें मालूम होती हैं। संग्रहकर्ता बा॰ ठाकुरप्रसाद खत्री। पृष्ठसंख्या ४२६ मूल्य ५) पाँच रुपया।

८—देशी करघा—इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएँ तथा अन्य बहुत सी जरूरी बातोंका वर्णन है। पृष्ठसंख्या ११०, मूल्य ॥) आना।

९—सीनेकी कल (सचित्र)—पृष्ठसंख्या ४६ मूल्य ॥) आना।

१०—भारीभ्रम—यूरोपीय महायुद्धके वास्तविक रहस्यका इससे पता लगता है। पुस्तक बड़े मार्केकी है। अनुवादक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध लेखक अध्यापक रामदासजी गौड़ एम. ए हैं। मूल्य १॥)

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान अंगरेजीमें। मूल्य ॥) आना।

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना अंगरेजीमें। मूल्य ≈) आना।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उत्तर मुकदमा हिन्दीमें। पृ॰ सं॰ ३०२ मू॰ १॥) रु॰

१४—मानस मुक्तावली—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य।≈)

१५—भूमण्डलके प्राणी—श्रीयुत राधाचरणप्रसाद द्वारा सम्पादित। पृ.स ७८, ॥)

१६—रंगकी पुस्तक। मूल्य १) रुपया।

१७—डाक्टर सर जगदीशचन्द्र बसु तथा उनके आविष्कार। मूल्य ≈ ।≈) आना।

१८—राष्ट्रपति विलसन तथा संसारकी स्वाधीनता। मू॰ ॥)

१९—दिव्य जीवन। मूल्य ॥-) आने।

२०—छत्तीसवीं इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी रिपोर्ट। हिन्दी। मू॰ २)।

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त।

मिलनेका पता.—

शिवप्रसाद गुप्त,

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल, काशी।

ओम् वन्देमातरम्

स्वार्थ

वर्ष १ खण्ड २ | भाद्रपद १९७७ | अङ्क ५ पूर्णाङ्क ११

सामाजिक जीर्णोद्धार और उत्कर्षके अंग ।

सत्यं ब्रवीम्युभयलोकहितं ब्रवीमि लोकावतीत्य परमार्थसुखं च वच्मि ।
प्राचीनसारस्रहृदयं प्रकटीकरोमि स्वार्थेष्वनुग्रहमहो मनुजा विधध्वम् ॥

१०—शिक्षा क्या और उसका प्रयोजन क्या है ?



अध्ययनाध्यापनविषयक समस्त प्रश्नोंका समूह श्लोकरूपमें यों किया जा सकता है, यथा,

(१) किं स्यादध्ययनं (२) कस्मादध्येयं (३) किं च (४) केनाथ ।
(५) कथं (६) कुत्र (७) कदा चापि (८) कश्चैवाध्यापकोत्तमः ॥

अर्थात्, (१) अध्ययन, शिक्षाग्रहण, सीखना पढ़ना, क्या है, (२) किस लक्ष्यसे, किस कारण, किस प्रयोजनसे, क्यों अध्ययन करना, (३) क्या सीखना, (४) कौन अध्ययन करे, (५) कैसे, किस रीतिसे, किस प्रकारसे, (६) किस स्थानमें, (७) किस समयमें, (८) कौन उत्तम अध्यापक है। इनके अवान्तर प्रश्न बहुत हैं, पर मुख्य सिद्धान्तसूचक प्रश्न ये हैं।

अंतिम प्रश्नका उत्तर प्रसंगवशात् ऊपर दिया गया। और भी इस विषयमें कदाचित् आगे लिखनेकी आवश्यकता होगी।

सर्वं सर्वेण सम्बद्धं सर्वं सर्वत्र सर्वदा ।

इन प्रश्नोंमें यद्यपि व्याख्यानार्थ क्रम सुभीतेके लिए इनको पृथक् करना भी आवश्यक है, तोभी यह ध्यानमें रखना चाहिये कि वस्तुतः सर्वथा पृथक् नहीं है। एकका विषय दूसरेके विषयमें, दूसरेका एकमें, व्याप्त हो रहा है।

अब पहिले और दूसरे प्रश्नोंका विचार साथ ही साथ किया जायगा। इनके उत्तर अन्योन्याश्रित हैं।

आदिकाव्य वाल्मीकिरामायणमें लिखा है,

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति ।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः ॥ अयोध्या० स० ६३ ॥

फलको जाने पहिचाने बिना जो काम करनेको दौड़ता है वह पीछे वैसाही शोक करेगा जैसा स्वादु फलकी आशामें पलाशके पेड़को सींचनेवाला करता है।

और भी कहा है,

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ॥
निमित्तेभ्यः प्रवर्तन्ते सर्व एव स्वभूतये ।
अभिप्रायानुरोधोऽपि स्वार्थस्यैव प्रसिद्धये ॥ हरिकारिका ॥

अर्थात् बिना प्रयोजन जाने बताये कौन किस शास्त्रमें प्रवृत्त होता है, सब कोई किसी निमित्तसे अपने भलाके लिए काम उठाते हैं, किसी दूसरेके अभिप्रायका अनुरोध करना, अथवा अपने अभिप्रायका दूसरोंसे अनुरोध कराना, यह भी किसी न किसी स्वार्थ की सिद्धिके ही लिए किया जाता है।

नैयायिकों की कहावत है,

इष्टसाधनत्वमतिपूर्विका प्रवृत्तिः । अथ च,
प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोऽपि प्रवर्तते ॥

बिना प्रयोजन जाने प्रायः मंद जन भी किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते। तो फिर अपनी सन्तानकी शिक्षाका, जो बड़े गौरवका काम है, उसका आरम्भ बिना उसके लक्ष्यको उसके साध्यको उसके फलको निश्चय किये कर देना यह तो बड़े भूलकी बात होगी।

मनुष्यके जीवनका क्या साध्य है यह पहिले कह आये हैं। संस्कृतशास्त्रका सिद्धांत है कि अभ्युदय और निःश्रेयस ये ही दो साध्य हैं, और अभ्युदयके तीन अवांतर विभाग हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ, और काम। कामका अभिप्राय सब सांसारिक सुखका है, पारलौकिक स्वर्गादिके दिव्य सुखभी इसी कामके अन्तर्गत हैं।

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद् धर्मफलोदयः ।
इत्येवं निर्णयं शास्त्रे वर्णयन्ति विपश्चितः ॥ पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अ०२४७ ॥

महाभारतमें भी व्यास ऋषिने पुकारा है,

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥

धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम, कामसे धर्मके फलका उदय अर्थात् सांसारिक कामनाओंकी

पूर्ति, यह अभ्युदयकी कथा है। निःश्रेयस अर्थात् मोक्षकी कथा इसकी उल्टी है। उसकी दृष्टिसे काम हुआ भोजनाच्छादनसे देहधारणमात्र जीवन रूपी अर्थ, उस अर्थसे हुआ मोक्षसाधक धर्म, उससे फल हुआ मोक्ष अर्थात् अक्षय ब्रह्म का अनुभव।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥
वदन्ति तत् तत्त्वविदः तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ भागवत, स्कंध १, अ० २॥

यदि केवल कामहीका नाम लेते तो मनुष्यकी स्वरसतः उस ओर प्रवृत्ति होनेसे यह भय था कि कामका अतिमात्र सेवन करने लगते।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ दुर्गा॥
बलीयानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ मनु॥

ज्ञानी विद्वान् तो माया मोहमें पड़ही जाते हैं, साधारण जनका क्या कहना। और थोड़े भी कामके प्रति सेवनमें बड़े बड़े अनर्थ पैदा होने लगते हैं। इस कारण कामको अर्थ और धर्मकी घेरमें रख दिया। धर्म अर्थात् कायदा कानून वही है जिसकी पाबन्दीसे जिनके आचरणसे, अर्थ धन दौलत कमानेकी और रखनेकी और उसका उत्तम प्रकारसे प्रयोग करनेकी ओर तद्द्वारा इस लोकमें तथा परलोकमें परिष्कृत कामसुख भोगनेकी योग्यता और शक्ति पैदा हो। अर्थ वही जिसने अपना और पराया कामसुख सिद्ध हो सके। काम वही जिसमें मन ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय ग्यारहोंका सुखजनक व्यवहार हो। मोक्ष वह जिसमें इन सबसे तृप्ति विरक्ति शान्ति होकर जीवात्मा अपने जीवत्व और पृथक्त्वकी बुद्धिको त्यागकर परमात्मरूप सर्वव्यापी एकत्वके अनुभवमें लीन हो, अर्थात् संसारमें जो कुछ हो रहा है वह सब एक एकरस अखण्ड "मैं" ही अनुभव कर रहा है, ऐसा अनुभव करे।

तो अब चार प्रयोजन अथवा पुरुषार्थ शास्त्रने सिद्ध किए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इन चारकी सिद्धिमें सहायता देना यही शिक्षण अध्ययनाध्यापनका प्रयोजन है। जो शिक्षा इन चारों की प्राप्तिमें साक्षात् अथवा परम्परया सहायक न हो वह व्यर्थ है, और उसमें कालयापन करना लाभकर नहीं-प्रत्युत हानिकर है।

शिक्षा, अध्ययन, इन शब्दोंसे भी यही अर्थ निकलता है। शिक्षाका अर्थ शक्तिसंपादन। शक्ति जो इन चार पुरुषार्थोंके साधनकी शक्ति, जिसमें सब आंतर शक्तिके स्वरूप अन्तर्गत हैं। जो अधिकतर अभीष्ट है उनके पास अधिक पूर्णता और शीघ्रता और सम्पन्नतासे अयन, गमन, प्राप्ति, ज्ञानद्वारा, अभ्यासद्वारा, शास्त्रद्वारा, यही अधि-अयन है।

११-शिक्षणीय शास्त्र क्या है ?

शास्त्र शब्द भी इन्हीं भावोंको दिखाता है । जो सिखाया जाय, और जो सिखावे, वही शास्त्र । क्या सिखावे, तो इन्हीं चार पुरुषार्थोंके अपरोक्ष करनेके, साक्षात् सपादन करनेके उपाय सिखावे । इस हेतुसे शास्त्रोंका विभाग भी चतुर्धा किया गया है, यथा धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र । प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रस्थानभेदेन, दर्शनभेदेन, और और प्रकारसे भी शास्त्रोंका विभजन किया है, पर यह सब विभाग इस प्रकृत विभागसे सगत और इसीमें चरितार्थ होते हैं । "द्वे विद्ये" इत्यादि मुंडकश्रुतिका पहिले उद्धरण किया है । वहाँ विद्यामात्रकी दो राशिकी, एक अपरा, दूसरी परा । वेद, वेदांगादि सब अपरामें रक्खा, और अक्षर-ब्रह्म-ज्ञापिका मोक्षजननी विद्याको परा कहा । परा विद्या तो स्पष्टही मोक्षशास्त्र है । अपरामें धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, और कामशास्त्र अंतर्गत हैं ।

"अथ किमर्थं वेदो वेदांगानि च प्रवृत्तानि ? सर्वकामप्राप्त्यादिर्मोक्षान्तः पुरुषार्थो वक्तव्य इति वेदः प्रवृत्तः । तत्परिज्ञानाय वेदांगानि प्रवृत्तानि ॥" देवराजयज्वकृत-निरुक्तवृत्ति-भूमिका ॥

निरुक्तकी टीका करते हुए देवराजयज्वाने भूमिकामें लिखा है, कि वेद और वेदांग क्यों प्रवृत्त हुए, इस प्रश्नका उत्तर यही है, कि सर्व कामनाओंकी प्राप्ति पहिले होकर अन्तमें मोक्ष हो, यह जो परम पुरुषार्थ है उसको बतानेके लिये वेद प्रवृत्त हुआ, और वेदका ठीक ठीक अर्थ समझमें आ जाय इसलिए वेदांग प्रवृत्त हुए, अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष ।

पंचतंत्रके कथामुखमें भी कहा है,

"देव, द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते, ततो धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि, अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि, कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि, एवं च ततो धर्मार्थकामशास्त्राणि ज्ञायते ।"

योगभाष्यमें भी यमनियमोंके वर्णनमें लिखा है,

"स्वाध्यायः मोक्षशास्त्राणामध्ययनं, प्रणवजपो वा" । पा० २, सू० १ ॥

शुक्रनीतिमें राजाके अध्ययनके प्रसगमें लिखा है कि उसको चार विद्या सीखना आवश्यक है, यथा,

> आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
> विद्याश्चतस्र एवैता अभ्यसेन्नृपतिस्सदा ॥
> आन्वीक्षिक्यां तर्कशास्त्रं वेदान्ताद्य प्रतिष्ठितम् ।
> त्रय्यां धर्मो ह्यधर्मश्च कामोऽकामः प्रतिष्ठितः ॥
> अर्थानर्थौ तु वार्त्तायाम् दण्डनीत्यां नयानयौ ।
> वर्णाः सर्वाश्रमाश्चैव विद्यास्वासु प्रतिष्ठिताः ॥ अ० १, श्लो० १५२-४ ॥

धर्म, अर्थ, काम, ये तीनों नाम इन श्लोकोंमें प्रत्यक्ष ही देख पड़ते हैं । राज-व्यवहारस्पृहा केवल उनके शास्त्रोंके आकार और नाम कुछ बदल ... 'दण्डनीति,

[illegible], यह [illegible] हो या [illegible] है, उनको इनका बहुत विशेष ध्यान देना उचित है, इस [illegible] हो गया [illegible] । [illegible], [illegible], ऐसे [illegible] कहा, [illegible] इन ग्रन्थोंने [illegible] किया है, जिसका विचार देखो तो इसने किया [illegible] । [illegible] कहा । और [illegible] और [illegible] उनके मानने कहा । [illegible] यह कहा कि सब वर्ण और सब आश्रमका उचित व्यवहार इन्हीं चार [illegible] आश्रित है ।

जितने सब पुराने शास्त्र जितनी नई पुरानी विद्या हैं सबका अन्तर्भाव इन चार शास्त्रोंमें है । पाश्चात्य नवीन विज्ञान कोई भी ऐसा नहीं है जिसका अन्तर्भाव इनमेंसे किसी में न हो सके । अथवा दूसरी दृष्टियोंसे शास्त्रोंके दूसरे विभाग किये जा सकें, जैसा प्राचीन अर्वाचीन विद्वानोंने किया है । यथा प्रमेय की दृष्टिसे, आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक शास्त्र । तथा इहलोक-परलोक-विवेचनदृष्ट्या, ऐहिक और आमुष्मिक शास्त्र । तथा व्यवहारदृष्ट्या, व्यावहारिक और तार्किक शास्त्र । तथा पाश्चात्य विद्वान् कोंट, हर्बर्ट स्पेन्सर, हाब्सन आदिकोंने भिन्न भिन्न विभाजन शास्त्रोंका किया है । पर मनुष्यके पुरुषार्थसाधनकी दृष्टिसे, जीवनके उद्देश्यकी दृष्टिसे, पुरुषार्थकी दृष्टिसे, जिसमें सब प्रेय, सब व्यवहार, सब इहलोक परलोकका अनुभव अन्तर्भूत है, ऐसी दृष्टिसे यह चतुर्धा विभाग अधिकतम उपयोगी जान पड़ता है । इन्हीं चारो शास्त्रोंके जीर्णोद्धारसे, इनके पुनर्नवीकरणसे, इनका यथोचित ठीक ठीक ज्ञान और प्रयोग करनेसे, पुरुषार्थ चतुर्वर्ग प्रत्येक नरनारीके लिए यथासम्भव सिद्ध हो सकता है, और गिरे हुए समाज और देशमें नये प्राण और बलका संचार होकर उनकी उन्नति हो सकती है । इन चारु शास्त्रका जो यथार्थ स्वरूप है उसके भ्रष्ट हो जानेसे, और चतुर्वर्ग अर्थात् चार पुरुषार्थ, चतुराश्रम, चतुर्वर्ण, और उनके चार कर्तव्य अर्थात् धर्मकर्म, चार शक्ति अर्थात् अधिकार, चार वृत्ति, अर्थात् अन्नपानीयादि भोजनाच्छादनके उपाय, चार विशेष शुल्क, और चार उपहार, इन सबका मार्मिक सिद्धान्त भूल जाने और उसका अनुसरण न करनेसे देश और समाजका अधःपात हुआ है ।

इन चारो शास्त्रोंके यथातथ पुनरुज्जीवनसे और उनके मार्मिक सिद्धान्तोंका फिरसे अनुसरण करनेसे ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, चाहे कुटुम्ब, समाज, व्यापार, दण्डनीति, राज्य, देशशासन, शिक्षा, रक्षा, जीविका, धर्म, अर्थ, काम, इहलोक, परलोक आदिके सम्बन्धका, चाहे संसारसे छुटकारा और मोक्ष पानेके सम्बन्धका, कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जो इन प्रकारसे उत्तीर्ण न हो सके और उसकी कठिनाई सरल न हो जाय ।

अब इन चारो शास्त्रों पर पृथक् पृथक् विचार करना चाहिये ।

(क) धर्मशास्त्र

आजकल धर्म शब्दका अर्थ और तत्सम्बन्धेन धर्मशास्त्रका ज्ञान बहुत ही संकुचित हो रहा है । इस देशमें धर्म शब्दका प्रयोग और उसकी चर्चा तो बहुत क्या अत्यन्त है, पर उसके मुख्य अंश सब भूले जा रहे हैं ।

शौच आचारकी छोटी छोटी बातें, रहन सहन, उठक बैठक, नमस्कार चमत्कार, दुआ सलाम, खाना पीना, नहाना धोना, तुलसी रुद्राक्ष, टीका तिलक, पूजा पाठ, व्रत उपवास, देवालयभ्रमण तीर्थाटन, होम हवन, पहिरावा ओढ़ावा, जूता टोपी पगड़ी, रद दहन, रेलयात्रा जहाजयात्रा, छूत छात, दान प्रायश्चित्त, सुंघनी हुक्का, सुर्ती चुरट, कोट मंग, धोती पैजामा, मिर्जई मुँडासा, इत्यादिके विशेष प्रकारकी बातोंपर विशेष रूपा अत्यन्त ध्यान करना ही धर्मका तत्व समझा जा रहा है। कहनेका यह अर्थ नहीं है कि शौच आचार धर्मका अंग नहीं है। बहुत बड़ा अंग है। पर शौचाचारका भी जो तात्विक सिद्धान्त है उस ओर ध्यान नहीं है, ऊपरी बातोंपर बड़ा हठ और निर्बंध है। और धर्मके जो अन्य आवश्यक विभाग हैं उनपर तो ध्यानही नहीं है। दण्डनीति, राजनीति, राजधर्म, राज्यशास्त्र, इत्यादि नामसे जो धर्मका अंग पुराने ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है उसका पठन पाठन तो लुप्तप्राय है, यद्यपि इसका महिमा बड़े बड़े ओजस्वी शब्दोंमें कहा है,

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि संलीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थान् संप्रलीनान् निबोध॥
मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विरुद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे नष्टे राजधर्मे पुराणे॥
सर्वे भोगा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः॥
सर्वे योगा राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे धर्मा राजधर्मेषु दृष्टाः।
तस्माद् धर्मो राजधर्माद्विशिष्टो नान्यो लोके विद्यतेऽज्ञातशत्रो॥
नष्टा धर्माः शतधा शाश्वतास्ते क्षात्रेण धर्मेण पुनः प्रवृद्धाः।
युगे युगे ह्यादिधर्माः प्रवृत्ताः लोके ज्येष्ठं क्षात्रधर्मं वदन्ति॥
आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च।
विषण्णानां मोक्षणं पीड़ितानां क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम्॥
त्यागं श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजन्ति।
नित्यं व्यक्तं राजधर्मेषु सर्वं प्रत्यक्षं ते भूमिपालाः यथैते॥
एते वर्णाः सर्वधर्मेश्च हीना उत्कृष्टयाः क्षत्रियैरेव धर्मैः।
तस्माज्ज्येष्ठा राजधर्मा न चान्ये वीर्यश्रेष्ठा राजधर्मा मता मे॥

महाभारत, शांतिपर्व, अ० ६२, ६३, ६४॥

यह भीष्मने शरशय्यापरसे युधिष्ठिरको उपदेश किया है। अर्थात्, जैसे और पैरके चिन्ह हाथीके पैरके चिन्हमें लीन हो जाते हैं वैसे अन्य सब धर्म राजधर्ममें लीन हैं। यदि दंडनीति गवका पालन न करे तो सब धर्म परस्पर विरोधमें न आवें। क्षात्रधर्मके नाशसे सब आश्रमोंके धर्म लुप्त हो जायँ। सब भोग, सब दीक्षा, सब शिक्षा, सब विद्या, सब कला राजधर्ममें देख पड़ती हैं, सबका उपयोग

शौच आचारकी छोटी छोटी बातें, रहन सहन, उठक बैठक, नमस्कार चमत्कार, दुआ सलाम, खाना पीना, नहाना धोना, तुलसी रुद्राक्ष, टीका तिलक, पूजा पाठ, व्रत उपवास, देवालयभ्रमण तीर्थाटन, होम हवन, पहिरावा ओढ़ावा, जूता टोपी पगड़ी, घर बटन, रेलयात्रा जहाजयात्रा, छूत छात, दान प्रायश्चित्त, सुंघनी हुक्का, सुर्ती चुरट, कोट अंगा, धोती पैजामा, मिर्जई मुँड़ासा, इत्यादिके विशेष प्रकारकी बातोंपर विशेष क्या अत्यन्त ध्यान करना ही धर्मका तत्व समझा जा रहा है। कहनेका यह अर्थ नहीं है कि शौच आचार धर्मका अंग नहीं है। बहुत बड़ा अंग है। पर शौचाचारका भी जो मार्मिक सिद्धान्त है उस ओर ध्यान नहीं है, ऊपरी बातोंपर बड़ा हठ और निर्बंध है। और धर्मके जो अन्य आवश्यक विभाग हैं उनपर तो ध्यानही नहीं है। दण्डनीति, राजनीति, राजधर्म, राज्यशास्त्र, इत्यादि नामसे जो धर्मका अंग पुराने ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है उसका पठन पाठन तो लुप्तप्राय है, यद्यपि इसका महिमा बड़े बड़े ओजस्वी शब्दोंमें कहा है,

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि संलीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि।
एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थान् संप्रलीनान् निबोध॥
मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विरुद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे नष्टे राजधर्मे पुराणे॥
सर्वे भोगा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः॥
सर्वे योगा राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे धर्मा राजधर्मेषु दृष्टाः।
तस्माद् धर्मो राजधर्माद्विशिष्टो नान्यो लोके विद्यतेऽजातशत्रो॥
नष्टा धर्माः शतधा शाश्वतास्ते क्षात्रेण धर्मेण पुनः प्रवृत्ताः।
युगे युगे ह्यादिधर्माः प्रवृत्ताः लोके ज्येष्ठं क्षात्रधर्मं वदन्ति॥
आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च।
विषण्णानां मोक्षणं पीडितानां क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम्॥
लोके श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] राजधर्मेषु सर्वे [illegible] ते भूमिपाला नरेन्द्र॥
एवं धर्माः राजधर्मेण हीना [illegible] पार्थिवेन्द्र [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] राजधर्मा मता मे॥

[illegible] है, [illegible] है। [illegible] हैं और [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] धर्मका [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] रक्षा, शिक्षा, भरण, पोषण [illegible], प्रबन्ध, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], यह सब उदार और उत्कृष्ट भाव [illegible] हैं। [illegible] [illegible], राजाके धर्म, धर्मोंके [illegible], सब [illegible] [illegible] [illegible] हैं।

जो इस [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] सर्वथा शिथिल हो गया है, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा सामाजिक जीवनमेंसे गौरव ही निकल गया है, बुद्धिको [illegible] [illegible] [illegible] और क्षुद्र हो रही है, तरह तरहके [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] देखने और सुननेमें आते हैं, जो [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] सुन्दर और [illegible] [illegible] ध्यान उपासना और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चला जा रहा है, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] स्थिर होनेही नहीं पाती आज एक [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दूसरे [illegible] वाग्धारा उसकी जड़ खोदकर दूर बहाकर [illegible] [illegible] है। [illegible] और अशान्ति [illegible] उद्वेग [illegible] मचा हुआ है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही नहीं है किन्तु इसमें भी अधिक [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] अवस्था [illegible] और प्रति राष्ट्र और परमसिद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ही। इन सबका मुख्य कारण यही है कि इस देशसे राजधर्मके मूल [illegible] सिद्धान्तोंका ज्ञान और प्रचार उठ गया है, और दूसरे देशोंके मन्त्री व विद्वान पहिचाने ही नहीं गये हैं। जिन सिद्धान्तोंपर काम चलाया जा रहा है वे सच्चे और सात्त्विक नहीं हैं किन्तु राजस तामस भावोंकी नींवपर प्रतिष्ठित हैं।

> व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
> तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥
> तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
> ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ गीता॥

यदि राजधर्म दण्डनीति राज्यशास्त्रके तत्त्वोंका जनतामें अच्छी प्रकारसे प्रचार हो जाय, ऐसा कि सब स्थानों स्त्री पुरुषोंमें तथा आबाल इनकी प्रसिद्धि हो जाय, तो यह सब दुर्दशा बहुत कुछ शान्त हो जाय।

अंगरेजीमें जो शिक्षा आजकाल इस राजनीति अथवा दण्डनीतिके विषयकी अंगरेजी विद्यालयोंमें विद्यार्थियोंको हो रही है, तथा समाचार पत्रोंके द्वारा जो साधारण जनताको

मिलती है, उससे यद्यपि एक प्रकारका बड़ा लाभ है, अर्थात् यह कि इस गुर्वर्थ विषयकी ओर कुछ ध्यान तो खिंचता है, पर साथही एक भयावह हानि भी यह है कि इस देशके प्राचीन राजधर्मके सिद्धांतोंका उस शिक्षामें कुछ उपयोग नहीं किया जाता, यद्यपि राष्ट्रशासनके प्रबंधकी नींव सच्ची और दृढ़ उन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार डाली जा सकती है। न केवल उपयोग नहीं किया जाता, किंतु चर्चा उठनेपर अनादर किया जाता है। अनादरमें कारण भी है, कि पूर्वापरानुसंधानपूर्वक समग्र राज्यशास्त्रका ज्ञान रखनेवाले और उसका ठीक ठीक अर्थ समझाने वाले ही नहीं मिलते। संस्कृतकी विद्वत्ता कुछ कालसे संसारके दैनंदिन व्यवहारसे ऐसी अलग पड़ गई है कि वह व्यवहारोपयोगी शास्त्रोंका तथा अर्थ भूलकर प्रायः अनर्थ ही करती है। आज एकादशी मानना कि दशमी, कौन लग्न यात्राके लिये अच्छा है, यह महशांति कैसे हो, त्रिपुण्ड्र लगाना कि ऊर्ध्वपुण्ड्र, प्रायश्चित्तके लिये चौबीस गाय दान करना पर्याप्त है अथवा अड़तालीस, इत्यादि विषयपर अनन्त विद्वत्ताका प्रयोग देख पड़ता है, तथा व्याकरणकी फक्किका और न्यायके अवच्छेदकावच्छिन्न भी प्रसिद्ध हैं। समाजका तात्त्विक स्वरूप क्या है, राजा क्या है, प्रजा क्या है, राज्य अथवा राष्ट्र क्या है, इनका परस्पर कर्तव्य क्या है, समाजके क्या अंग हैं, इन अंगोंका पृथक् पृथक् धर्म कर्म क्या है, किस प्रकारसे वार्ता बढ़े, किस प्रकारसे देशकी सम्पत्ति बढ़े, किस प्रकारसे सर्वसाधारण को पेट भर खाना तनभर कपड़ा मिले, इत्यादिबातोंकी चर्चा संस्कृत-विद्वन्-मण्डलमें नहीं सुनने में आती, यद्यपि मनुने स्पष्ट लिखा है,

सर्वेषां ब्राह्मणो ब्रूयाद् वृत्युपायान् यथाविधि।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्॥ म० १०॥

शिक्षामें पहिला स्थान धर्मशास्त्रका, उसकी नींवीपर अर्थशास्त्र, उसकी कुर्सिपर कामशास्त्र कलाशास्त्र, तदनन्तर इन तीनोंपर विरक्ति होनेसे मोक्षशास्त्र, यह क्रम हुआ। तो सामाजिक उत्कर्षमें जो प्रथम अंग शिक्षाका है उसके पोषणके सम्बन्धमें धर्मशास्त्रके शिरोमणिभूत किन्तु लुप्तप्राय राजधर्मके जो मुख्य मुख्य सिद्धांत हैं उनका यहां पर प्रसंगवशात् दिग्दर्शन करा देना उचित जानपड़ता है।

समाज क्या है। इस शब्दका विवरण पहिले कर आये हैं। परमलघु समाज निश्चयतः पति-पत्नी-अपत्य इन तीनका है। पश्चिमके नीतिशास्त्रके ग्रंथोंमें प्रत्येक मानव जीवको समाजका आरंभकअणु मानते हैं, तथा "नेशन", कौम, जाति, को उसका परममहत् स्वरूप। पर अब थोड़ेसे पुरुषार्थके अनुवादेंगे, नई पुरत पुरानी पुरतके [illegible] और "नेशन" "नेशन" अर्थात् राष्ट्र राष्ट्रकी आवाजकी [illegible] रंग स्पष्ट होनेपर कुछ कुछ "उपरे [illegible]," और [illegible] पूर्वसिद्धान्तोंके [illegible] विचारोंको और झुकने लगे हैं। अर्थात् यह कि माता पिता और [illegible] एक पुत्र जो होता है, वही [illegible] मानव [illegible] है, और [illegible]

परममहत् स्वरूप है। इसमें भी आगे बढ़कर जीवमात्र इस महाविराट्में वेदांतकी दृष्टिसे अन्तर्भूत होते हैं, पर राजनीतिदृष्टया मानवजातिमात्र ही कहना अलम् है। "पृथिव्यां सर्वमानवाः," "नास्ति तु पञ्चम." इत्यादि मनुके वाक्योंका उद्धार पहिले कर आये हैं, एक श्लोक यह और लिखना चाहिये जिससे पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है,

> एतावानेव पुरुषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति ह।
> विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना॥ अ० ९, श्लो० ४५॥

कुलोंके समुदायका नाम समाज है। स्त्री पुरुषकी सन्तान बढ़ने बढ़ते महाकुल अथवा कुटुम्ब, फिर वंश, गोत्र, जाति आदि, अततः महासमाजका रूप प्रकट होता है, जिसमें वंशपरंपराकी स्मृति कालप्रवाह और व्यक्तिबाहुल्यसे उच्छिन्न हो जाती है, केवल "हम" बुद्धिसे और सूक्ष्म स्नेहसूत्रसे एकत्वका भाव बना रहता है, और पूर्वजोंकी एकताकी प्रतीति "ब्रह्मदेवकी सबही संतान हैं," "सब वर्ण एक दूसरेके अग्रजन्मा अनुजन्मा हैं, अथवा एक अंगीके अंग हैं," केवल ऐसे अव्यक्त भावोंमें बनी रहती है। तथा और प्रकारके एकत्व उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे समाज सम्बन्धित बना रहता है, जैसे एक भाषा, एक धर्म, एक साहित्य, एक आचार, एक पहिरावा, एक देश, एक शासनप्रबन्ध, इत्यादि। इनमेंसे कोई भी अत्यन्त निश्चित नहीं होता, कभी कोई कभी कोई घटते बढ़ते हैं, तौ भी जबतक लोकस्थापक ऐक्य और अभेदबुद्धिका बल किसी न किसी प्रकारसे अधिक रहता है और लोकविनाशक नानात्व और भेदभावका बल कमती, तब तक समाज सजीव बना रहता है। इसके विपरीत हो जानेपर शरीरधारक प्राणरूपी धर्मके क्षीण होनेसे जैसे उसके अंग अंग क्षीण होकर गलने लगते हैं और अन्य अधम कीटादि जन्तु उनमें पैदा हो जाते हैं, वैसी ही दशा समाजकी हो जाती है, जिसमें फूट वैर भेदभाव जात पाँतके अनन्त झगड़े और वैमनस्य बढ़ जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लगता है कि दूसरेकी हानि किये बिना मेरा स्वार्थ नहीं सिद्ध होगा।

यदि किसी समाजमें इस प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाय, जिसमें भेदभाव और परस्पर कलह बढ़ने लगे, तो उसकी चिकित्सा क्या है? इस प्रश्नके उत्तरमें राजा क्या है, और प्रजा क्या है, और उनके परस्पर कर्तव्य क्या हैं, और राष्ट्र क्या है, इन सब प्रश्नोंके उत्तर अंततः पतित हैं। इस सब अर्थको महाभारतके शान्तिपर्वमें कथारूपेण कहा है,

> अराजकाः प्रजा पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्।
> परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान्॥
> समेत्य तास्ततश्चक्रुः समयानिति नः श्रुतम्।
> वाक्शूरो दण्डपरुषो यश्च स्यात्पारदारिकः॥
> यश्च नः समयं भिन्द्यात् त्याज्या नस्तादृशा इति।
> विश्वासार्थं च सर्वेषां वर्णानामविशेषतः॥
> तास्तथा समयं कृत्वा समयं नावतस्थिरे।

सहितास्तदाजग्मुरसुखार्त्ताः पितामहम् ॥
अनीश्वरा विनश्यामो भगवन्नीश्वरं दिश।
यं पूजयेम संभूय यश्च नः प्रति पालयेत् ॥
ताञ्शो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिननंद ताः।
बिभेमि कर्मणः पापाद् राज्यं हि भृशदुष्करम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा ॥ म० ६६ ॥

अर्थात् मनुष्योंमें आपसमें काम क्रोध लोभादिक बढ़े, दुर्बलोंको बलवान् पीड़ा देने लगे, तब सबने मिलकर समय अर्थात् क़ौल क़रार अहद वादा किया, कि जो दुर्वचन बोले मारपीट करे, पराई स्त्रीकी लालच करे, उसको त्याग देना अर्थात् समाजके बाहर निकाल देना। पर इस समय पर लोक ठहरे नहीं। तब सबने मिलके ब्रह्मासे अर्थात् अन्तरात्मासे प्रार्थनाकी कि कोई ईश्वर हाकिम निश्चत किया जाय जो समर्थोंका पालन करावे, और वहाँ से उपदेश मिला कि उस कालमें सर्वश्रेष्ठ मनुको ऐसा ईश्वर, हाकिम, राजा, मुखिया, बनाओ। मनुने अरुचि दिखाई, यह कहके कि मैं पापसे डरता हूँ, और राज्यका काम बड़ा कठिन है, क्योंकि मनुष्य मिथ्या आचरण नित्य करते हैं। तब सबने उनको समझाया, और परस्पर क़ौल क़रार होकर मनुने राज्यधर्मका बोझ उठाना स्वीकार किया। तबसे राजा प्रजा यह नाम बने। प्रजाने प्रतिज्ञा की कि हमलोग आपको "पशूनामथ पंचाश", "धान्यस्य दशमं भाग" इत्यादि देंगे, और आपके साथ चलनेवाले शस्त्रपाणि मनुष्य देंगे, इत्यादि। और मनुने प्रतिज्ञा की कि मैं आप लोगोंकी रक्षा धर्मशास्त्रके अनुसार करूँगा, अपने मनमाना काम कभी न करूँगा। यह प्रतिज्ञा अन्य स्थान पर लिखी है,

प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥
यश्चात्र धर्म इत्युक्तो दंडनीतिव्यपाश्रयः।
तमशंकः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥ म० ५८ ॥

प्राचीन समयमें राजाके अभिषेककर्मके प्रसंगमें जो प्रतिज्ञा "राजकर्त्तारः" अर्थात् राजाको बनानेवाले, राजपदवीपर अधिकारी नियुक्त करनेवाले, होते थे, वे और पुरोहित जो प्रतिज्ञा राजा से कराते थे उसका स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण में यह कहा है, "यां च रात्रीमजायेऽहं यां च प्रेतास्मि तदुभयमंतरेणेष्टापूर्त्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृंजीथा यदि ते द्रुह्येयम् इति"।

(क्रमशः)

भगवान्दास

एकाधिकारकी समस्या

एकाधिकार तथा स्पर्धा

एकाधिकारोंको एक नव उन्नतिका परिणाम समझना भूल करना होगा। क्योंकि प्राचीनमें अर्वाचीन कालमें एकाधिकारोंकी सत्ता विद्यमान थी। इसमें सन्देह करना भी वृथा है कि एकाधिकारका प्राचीनकालमें वह रूप न था जो कि आजकल है। उन दिनोंमें एकाधिकारोंका आकार बहुत ही छोटा था परन्तु आजकल वैसा नहीं है। इस अवस्थामें एकाधिकारोंके भिन्न भिन्न व्यवसायोंका स्वाभाविक गुण समझना ठीक नहीं है।

प्रोफेसर एडवर्ड्स वेन्टरका कथन है कि वर्तमानकालीन व्यवसायपति स्पर्धाकी अपेक्षा दृढ़ या पूलके रूपमें सम्मिलनकोही अधिकतर पसन्द करते हैं। प्रोफेसर मार्शलने एक स्थान पर निर्देश किया है कि "स्पर्धासे ही सम्मिलनकी उत्पत्ति हुई है। स्पर्धाजन्य भयंकर विनाशसे बचनेका एकमात्र उपाय यही है"। इससे स्पष्ट है कि स्पर्धाका सम्मिलनद्वारा उच्छेद करनेके अनन्तर ही प्रायः भिन्न भिन्न व्यवसाय एकाधिकारका रूप धारण कर लेते हैं। प्रायः शब्द यहाँ पर इसलिए प्रयुक्त किया है कि बहुतसे व्यवसाय सम्मिलनके बिना भी भिन्न भिन्न कृपाओं तथा सहायताओंके द्वारा एकाधिकारी बन जाते हैं। दृष्टान्तकी तौरपर बहुत से अमरीकन व्यवसायोंने रेलवे कम्पनीकी कृपासे और राजकीय सरकार-नीतिसे एकाधिकारी स्वरूप धारण कर लिया है। जो कुछ भी हो। साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यवसाय वर्तमान कालमें एकाधिकारी बन सकता है यदि उसमें पूंजी बुद्धिमत्तासे लगाई जावे। इसका कारण यह है कि स्पर्धाजन्य-घाटेसे बचनेके लिए प्रत्येक व्यवसायोंके स्वामी सम्मिलनका अवलम्बन कर सकते हैं। सम्मिलन सभी व्यवसायोंमें सम्भव है, उसका किसी एक व्यवसायसे ही विशेष सम्बन्ध नहीं है। सम्मिलन किस प्रकार एकाधिकारका उत्पादक है इसका अभी वर्णन किया जा चुका है। बड़ी मात्रामें पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले व्यवसायोंको छोटी मात्रावाले व्यवसायोंकी अपेक्षा जो विशेष लाभ प्राप्त हैं उनका विवरण उत्पत्ति विभागमें विस्तृत रूपसे किया जाता है। उसको स्पष्ट करनेके लिए यहाँपर कुछ शब्द और लिखे जाते हैं।

अल्प मात्राकी उत्पत्तिपर बहुमात्राकी उत्पत्तिकी प्रबलता

(१) कीमतका कम होना। सम्पत्तिशास्त्रका यह सार्वभौम नियम है कि जितना पदार्थ अधिक खरीदा जावे उसके प्रत्येक भागका मूल्य कम होता जाता है। इस नियमके-द्वारा अल्पमात्राकी उत्पत्तिवालोंका बहुमात्राकी उत्पत्तिवालोंकी अपेक्षा न्यून लाभको प्राप्त करना स्वाभाविक ही है। क्योंकि बहुमात्रावालोंको अल्पमात्रावालोंकी अपेक्षा पदार्थ सस्ते प्राप्त हो सकते हैं। थोक की अपेक्षा फुटकरकी कीमतें किस प्रकार अधिक होती हैं यह पाठकोंको ज्ञातही है।

(२) जिस प्रकार व्यवसाय क्रमशः बढ़ते जाते उनमें पदार्थोंका उत्पत्ति व्यय उसी अनुपातसे शनैः शनैः कम होता जाता है । व्यवसायके प्रत्येक व्यक्तिसे पूरा काम लिया जा सकता है ।

मिस्त्रियों, एंजिनियरों आदिको कार्यके न्यून होनेकी शिकायत नहीं रहती है और उनको अपना बहुत सा समय परपर काटनेको मिलता है । इस विशेष लाभसे वृहत् कम्पनियोंका खर्चा बहुत कुछ प्रति पदार्थ कम हो जाता है और वह अपनी बहुतसी पूँजी वैज्ञानिकोंके रखनेमें व्यय कर सकती हैं जिससे उत्तम पदार्थ बनाया जा सके ।

(३) वृहत्कम्पनियाँ एंजिनसे उसकी शक्ति भर काम लेनेके लिए पर्याप्त पूंजी लगा सकती हैं, परन्तु अल्पमात्रामें उत्पन्न करनेवालोंकी शक्तिमें यह नहीं है कि वह ऐसा कर सकें । इससे उनके एञ्जिनकी बहुत सी अमल शक्ति निरर्थक नष्ट होती है । पूँजीके अभावसे वह उससे कुछभी लाभ नहीं उठा सकते हैं ।

(४) वृहत्कम्पनियोंके पास अपनी पूँजी होती है । इससे उनको अपना व्यवसाय न ऋणके रुपयेपर चलाना पड़ता है और न किसीको ब्याजही देना पड़ता है । आर्थिक दुर्घटनाके कालमें छोटे छोटे व्यवसायोंको ब्याजके चढ़ जानेसे और लाभके कम हो जाने से जो जो आपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं वे किसीसे भी छिपी नहीं रहती हैं । वृहत्कम्पनियाँ इन सब आपत्तियोंसे बची रहती हैं ।

(५) वृहत्कम्पनियाँ माँगकी वृद्धिके अनुसार ही उपलब्धिकी वृद्धि जिस शीघ्रतासे कर सकती है, छोटे छोटे व्यवसाय उस शीघ्रतासे नहीं कर सकते हैं । इससे वृहत्कम्पनियोंको बड़ा भारी लाभ होता है । जिन पदार्थोंकी उपलब्धिपर सभ्य समाजका प्रभुत्व नहीं है, उनपर भी वृहत्पूँजीके सहारे चिरकालीन ठेकोंके द्वारा बहुतसे व्यवसायपति प्रभुत्व पा रहे हैं । दृष्टान्तरूपसे इण्डिया रबड़, गटापर्चा, हाथीदाँत, ह्वेलकी हड्डी आदि पदार्थ हैं जिनकी उत्पत्ति असभ्योंके हाथमें है । इनको भी अपनी वृहत्पूँजीके सहारे बहुतसे व्यवसायपतियोंने एकाधिकार सा कर लिया है । उन्होंने असभ्योंके साथ ऐसे ऐसे ठेके कर लिए हैं जिनसे वे पदार्थ किसी दूसरेके हाथमें बेचे ही नहीं जा सकते ।

(६) एकाधिकारके द्वारा स्पर्धाजन्य पदार्थोंका नाश बहुतही कम रह जाता है ।

(क) कलाओं तथा अन्य पदार्थोंके विक्रय करनेवाली दुकानोंको दुगना या तिगुना नहीं करना पड़ता है । परन्तु जो पूर्वमें विद्यमान हैं उन्हींसे बड़ी मात्राकी उत्पत्तिके लिए काम चल जाता है ।

(ख) एजेन्ट्स या दलालोंकी बड़ी भारी सेना रखनेकी आवश्यकता नहीं होती है ।

(ग) एकाधिकारी व्यवसायमें इश्तिहारबाजीके लिए व्यर्थका रुपया व्यय नहीं करना पड़ता है ।

(घ) लोगोंको उपहार या नमूने भेजने नहीं पड़ते हैं । इसको थोड़ा लाभ समझना

न चाहिये, कम्पनीकी मिलोंको बन्द करनेके लिये मिलोंको [illegible] न देनेमें ४,८१,३५० रु० की बचत की है।

(६) जब व्यवसायोंमें स्पर्धा प्रबल होती है, तब अपना माल उन व्यक्तियोंपर विश्वास करके उधार देते हैं जिनको कभी भी उधार न देना चाहिये था। एकाधिकारी व्यवसायोंमें यह घटना बहुत कम होती है।

(७) जब एकही वस्तुके भिन्न भिन्न व्यवसायोंके पेटेन्टसके व्यवसायपति एक व्यवसायके रूपमें परस्पर मिल जाते हैं तब उनकी संपूर्ण उन्नतिमें एकही वस्तुके निर्माणमें लगाई जाती है जिससे व्यवसायपतियोंके साथ साथ समाजको बड़ा भारी लाभ होता है।

(८) बड़ी मात्रामें उत्पत्तिद्वारा व्यवसायपति पदार्थोंकी उत्पत्ति मांगके अनुसार कर सकते हैं अतः उसमें उत्पत्ति पदार्थोंके मालका भाग और भी कम हो जाता है और व्यवसायपतियोंको विशेष लाभ पहुंचता है।

(९) बड़े बड़े एकाधिकारी तथा ट्रस्टोंने व्यापार, अपने निर्मित पदार्थोंके कच्चे मालकी कीमत घटानेमें जो भाग लिया है उसका वर्णन करना कठिन है। अमरीकाके मिट्टीके तेलको शुद्ध करनेवाली कम्पनीने ऐसाही प्राप्त किया है। यह कहांतक न्याययुक्त है, इसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

(१०) एकाधिकारमें परिवर्तित होनेपर व्यवसाय निर्मित पदार्थोंकी कीमतको उसके उत्पत्ति व्ययसे नीचे नहीं गिरने देते हैं। जिन दिनोंमें स्पर्धाके अति प्रबल होनेसे पदार्थोंका मूल्य बहुतही गिर जाता है उस समय भिन्न व्यवसायोंका एक ट्रस्ट बनानेकी ओर प्रवृत्ति होती है, जिसके द्वारा लाभजन्य अथवा कीमतोंकी कमीसे बच सके।

उपरोक्त कारण व्यवसायोंको सम्मिलनके द्वारा एकाधिकारी हो जानेको प्रेरित करते हैं। वर्तमान कालमें प्रायः सभी व्यवसाय एकाधिकारी बन जाते, यदि कुछ शक्तियाँ उनको इस कार्यमें रोकती न होतीं। उन शक्तियोंको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

(१) प्राचीन कालसे मनुष्योंमें यह आदत चली आती है कि वह अपना आर्थिक कार्य एक दूसरेसे मिलकर नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह है कि लाखों आदमी एकही पदार्थको अपने अपने घरोंमें उत्पन्न करते हैं और सम्मिलनके द्वारा ट्रस्टके रूपमें कार्य करने पर सन्नद्ध नहीं होते हैं।

(२) ट्रस्टका विकास अभी कुछही वर्षोंसे हुआ है। बहुतसे उत्पादकोंको यह पता तक नहीं है कि ट्रस्ट चीज क्या है, किस प्रकार ट्रस्ट द्वारा काम होता है और उसके लाभ क्या हैं। जबतक इन बातोंका पूर्ण तौरपर ज्ञान न होवे तबतक ट्रस्टका सभी व्यवसायोंमें बनना सम्भव नहीं है।

(३) वैयक्तिक मान्य भी बहुतसे व्यवसायपतियोंको एकाधिकारके रूपमें परिवर्तित होनेसे रोकता है। बहुतसे व्यवसायपति अपने व्यवसायोंके स्वामी होते हुए ट्रस्टकी अधीनता स्वीकार करनेपर उद्यत नहीं होते हैं। जब स्पर्धा प्रबल होवे और उनको किसी

एक अन्य उत्तम व्यवसायद्वारा नीचा देखना पड़े और वह जब अपने सर्वनाशको शीघ्रही होता देखने लगे, उस समय बाधित होकर वे लोग ट्रस्टके रूपमें परिवर्तित होनेमें उद्यत होते हैं। इससे पाठकोंपर स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार वैयक्तिकमान्य व्यवसायको ट्रस्ट बननेसे रोकता है।

(४) वैयक्तिक पारस्परिक अविश्वास भी व्यवसायोंको ट्रस्ट नहीं बनने देता है ट्रस्ट बननेके लिए व्यवसायोंके कार्यकर्त्ताओं की बहुसम्मति होनी आवश्यक होती है बहुत बार देखा गया है कि बहु सम्मति न होनेसे बहुतसे व्यवसाय ट्रस्ट न बन सके

(५) जब कोई बड़ा ट्रस्ट टूट जाता है तो अन्य व्यवसायोंके कार्यकर्त्ता ट्रस्ट बनाने में डरने लगते हैं ट्रस्टके टूट जानेके निम्नलिखित कारण कहे जा सकते हैं।

(क) कई बार ट्रस्ट अल्प पूँजीके होते हुए या किसी बृहद् व्यवसायके बिना सहायताके ही बनाये जाते हैं, परिणाम इसका यह होता है कि वह चिरकालतक नहीं चलते है और शीघ्रही टूट जाते हैं।

(ख) ट्रस्टके सभ्य व्यवसायोंमें किसी एकके धोखा देनेसे ट्रस्टका टूट जाना स्वाभाविकही है। कई बार यह देखा गया है ट्रस्टमें सम्मिलित व्यवसायोंमेंसे किसी एक व्यवसायके कार्यकर्त्ता धूर्त्तता और चतुरतासे अपनेही व्यवसायके सब पदार्थोंको अधिक बेच देते हैं और दूसरे भिन्न व्यवसायोंको पर्याप्त नुकसान पहुँचा देते हैं।

(६) बहुतबार यह आक्षेप किया जाता है कि इन ट्रस्टोंसे लाभ बहुत नहीं होता है परन्तु यह आक्षेप सत्य नहीं है क्योंकि उत्तम प्रबन्ध तथा दूर-दर्शितासे कार्य करते हुए एक ट्रस्ट भी उसी प्रकार विशेष लाभ अपने सभ्योंको देता है जिस प्रकार कि एक बड़ा भारी व्यवसाय।

इन उपरिलिखित छः निरोधक शक्तियोंका यदि कार्य देखना हो तो व्यापारिक संस्थाका इतिहास देखना चाहिये। प्रत्येक व्यावसायिक संस्थाको ६ क्रमोंमेंसे गुजरता हुआ कहा जा सकता है। वे क्रम इस प्रकार हैं।

प्रथम क्रम। व्यवसायोंका प्रथम क्रम यह है जब कि छोटे छोटे उत्पादक एक दूसरेके साथ स्पर्धा करते हुए पदार्थोंको उत्पन्न करते हों। भारतमें १०० वर्ष पूर्व संसारके बहुत देशोंमें यही दशा थी। अन्य देशोंके अन्दर ग्रामोंमें अब भी यही दशा पायी जाती है। इस क्रमका उत्तम दृष्टान्त किसी बड़े शहरके उत्पादकोंमें मिल सकता है यथा मास्को तथा [illegible] [illegible] बनाने वाले।

द्वितीय क्रम। व्यवसायोंका द्वितीय क्रम यह है जब कि व्यवसायोंके [illegible] [illegible] पूँजीकी आवश्यकता हो। [illegible] व्यवसायोंमें यही अवस्था विद्यमान है [illegible] [illegible] तथा कार्यकर्त्ताओंकी संख्या दिनपर दिन कम हो रही है और इनकी उत्पत्ति [illegible] बहुत ही अधिक बढ़ रही है। [illegible] [illegible] व्यवसायमें विद्यमान होती है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] व्यवसायोंकी संख्या [illegible]।

तृतीय क्रम। अपने तृतीय क्रममें व्यवसाय संख्यामें न्यून और आकृतिमें महान होने लगते हैं। स्पर्धा इस क्रममें भी इतनी प्रबल होती है कि दर्शकोंको ऐसा प्रतीत होता है कि मानो एक महान व्यावसायिक युद्ध हो रहा है। प्रत्येक व्यवसाय एक दूसरेसे भयकर स्पर्धा करता है और अपने अपने पदार्थोंकी कीमतें कम करने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि उत्पत्ति मात्राकी अपेक्षा अधिक हो जाती है। आजसे कुछ वर्ष पूर्व शिकागोमें मार्मरके चूनाखानेकी यही अवस्था थी।

चतुर्थ क्रम। तृतीय क्रमकी भयकर स्पर्धासे क्लान्त तथा पीड़ित व्यवसाय चतुर्थक्रममें स्पर्धासे अपने आपको बचानेका यत्न करते हैं और स्पर्धाको नष्ट करनेके लिए सम्मिलनको ही अपना एकमात्र आधार बनाते हैं। सम्मिलनके प्रथम रूपका नाम 'पूल' है जिसको हम 'अपूर्ण संमिलन' या 'पूल' कह सकते हैं। पूल द्वारा सम्मिलित व्यवसायोंका मुख्य कार्य यह होता है वह अपने उत्पन्न तथा मिश्र व्यवसायोंके पदार्थोंकी कीमत और उत्पत्तिको परिमित कर देते हैं। पूलमें सम्मिलित व्यवसायोंका संघटन बहुत कुछ अस्थिर होता है। इस स्थिरताके तीन कारण कहे जा सकते हैं।

(क) पूलमें सम्मिलित व्यवसायोंकी अपनी सत्ता नष्ट नहीं होती है। वह अपने आपको एक नहीं समझते हैं। उनका अपना अपना स्वार्थ भिन्न होता है। इसी कारणसे पूलका प्रत्येक व्यवसाय यही यत्न करता है कि वह अपने यहाँ उत्पन्न किया हुआ पदार्थ जितना अधिक हो सके उतना अधिक बेचे। इस उद्देश्यकी प्राप्ति के लिए पूलद्वारा निश्चित कीमतको अतिक्रमण करनेका प्राय व्यवसाय यत्न करते रहते हैं। इन स्वार्थ विषमताओंके कारण ही पूलके अधिवेशन झगड़ोंसे परिपूर्ण होते हैं। उनमें शान्ति बहुत कम दिखायी देती है।

(ख) एक ही व्यक्ति या समरके हाथमें उत्पत्ति न होनेसे पूलमें सम्मिलित व्यवसायोंको वह लाभ नहीं प्राप्त होते हैं जो कि उनको प्राप्त होने चाहिये थे। इस प्रकार पूलमें संघटित होनेका व्यवसायोंको जो कुछ लाभ होता है वह यही है कि वह कीमतोंको बढ़ाकर रखते हैं। उत्पत्ति तो पूलके साथ व्यवसायोंमें अधिक ही होती है। अधिक उत्पत्तिसे उत्पन्न सत्यानाशसे वह व्यवसाय पूलद्वारानिश्चित अधिक कीमतोंसे बचे रहते हैं।

(ग) पूलद्वारा पदार्थोंके कीमतोंके बढ़ जानेसे सभ्य देशोंमें बड़ा भारी शोर मच जाता है और इन व्यावसायिक मामलोंमें राज्यको हस्ताक्षेप करना पड़ता है। राज्य [illegible] सम्मिलनोंके विरुद्ध नियम बनाते हैं जिनसे पूलमें सम्मिलित व्यवसायोंके कष्ट और भी अधिक बढ़ जाते हैं। क्योंकि राज्य नियम ट्रस्टपर न पड़कर पूलपर पड़ते हैं जिससे दुर्बल तो मर जाता है और प्रबल ट्रस्ट रूपी शत्रु वैसाका वैसाही शक्तिशाली बना रहता है। परिणाम इसका यह होता है कि पूल ट्रस्टका आकार धारण कर लेते हैं। पूलकी अवस्थामें जहाँ व्यवसायोंका अपूर्ण सम्मिलन था वहाँ ट्रस्टके रूपमें उनका पूर्ण सम्मिलन हो जाता

है। वह अपनी अपनी सत्ताको छोड़कर ट्रस्टके रूपमें एक शरीरी व्यवसायका आकार धारण कर लेते हैं जिससे सम्मिलनके विरुद्ध बने हुए राज्य-नियमोंका उनपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि ट्रस्ट, राज्यके सम्मुख अपने आपको एक ही व्यवसाय प्रगट करते हैं न कि व्यवसायोंका संमिलन, इस प्रकार राज्य जिन बुराइयोंको दूर करना चाहता है, उसके नियमोंके द्वारा वही बुराइयाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं।

पञ्चम क्रम। व्यवसायोंका पूलसे ट्रस्टमें परिवर्तन हो जाना ही पंचम क्रम है। ट्रस्टके हाथमें ही संपूर्ण सम्मिलनके व्यवसायोंकी उत्पत्ति होती है। इसीके द्वारा वह अपने यहाँ उत्पन्न किये हुए पदार्थोंको, एकाधिकारी कीमत पर बेच सकते हैं। यदि यह कीमतें इतनी अधिक होवें कि अन्य नये व्यवसाय अपने उत्पन्न पदार्थोंके द्वारा उनसे स्पर्धा करने पर सन्नद्ध हो जावें उस दशामें वह उस सीमा तक कीमतें कम भी कर सकते हैं जिससे वह अपने शत्रु स्वरूप नये व्यवसायोंकी स्पर्धासे सर्वथा सुरक्षित हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि ट्रस्टके द्वारा उत्पन्न किये हुए पदार्थोंकी कीमतें अपने उत्पत्तिव्ययकी अपेक्षा नितान्त अधिक होती हैं।

षष्ठ क्रम। व्यवसायोंका छठा क्रम वह है जब कि उनके ट्रस्टोंके पास उतना रुपया हो जावे कि वह व्याजपर उसको लगा सकें, अर्थात् उनकी व्यावसायिक जगतमें वही स्थिति हो जावे जो कि सामाजिक जगतमें पूँजीपतियोंकी स्थिति है। अमरीकामें ५२ ऐसे ट्रस्ट सं० १६४६ में थे जिनकी कुल पूँजी १ अरब ६६ करोड़ २६ लाख रु० थी।

इस उपरिलिखित व्यावसायिक संस्थाके इतिहाससे पाठकोंको ज्ञात हो गया होगा कि किस प्रकार दिन पर दिन व्यवसायोंकी पूल तथा ट्रस्टके रूपमें परिवर्तित होनेकी प्रवृत्ति है। अब प्रश्न केवल यही है कि व्यावसायिक संस्थाकी यह प्रवृत्ति समाजके लिए किस सीमातक हितकर हो सकती है और यदि हितकर नहीं है तो उसके दूषण क्या हैं? और उन दूषणों से किस प्रकार बच सकते हैं? इस प्रश्नको सरल करनेसे पूर्व व्यावसायिक सम्मिलन तथा ट्रस्टपर कुछ शब्द लिख देना आवश्यक है। इसके अनन्तर उन प्रश्नोंपर विस्तृत तौर पर विचार हो सकेगा।

प्राणनाथ

भारतीय श्रमजीवियों की दुर्दशा



स किसी नर नारीने भारतके मजदूरोंकी ओर ध्यान दिया है उन्हें अवश्य उनकी शोचनीय दशाका परिचय हुआ होगा। उनकी भयानक दरिद्रता प्राकृतिक रहन सहन, नंगे शरीर गंदे मकान या बेमकानी, अल्प भोजन, दबी हुई आत्माएँ, संकुचित दिमाग और भीरु विचार ये सब उन्नति-विरोधी अवस्थाएँ इनके मजदूरोंको अधोगतिके दलदलमें फँसा रही हैं। परन्तु यह दुरवस्था अनिर्वचनीय भी हो जाती है जब हम इंगलिस्तानके मजदूरोंके रहन सहनको देखते हैं। मुझे इंगलिस्तानके बहुतसे नगरों और ग्रामों में मजदूरों और कारीगरोंको देखने-का अवसर मिला है और [illegible] अनुभवका परिणाम मस्तिष्कमें यही है कि भारतीय तथा आंग्ल श्रमजीवियोंमें भूमि आकाशका भेद है। भारतीय श्रमी नरकमें हैं और आंग्ल श्रमी स्वर्गमें। दोनोंकी आमदनियोंमें एक महानन्तर है। उनकी मानसिक अवस्थाओं, संसारको देखने और भोग करनेकी आशाओं, उनके उद्देशों, उनकी तरंगों, उनके संगठन और सहयोगकी शक्तियोंका अनुमान लगाना कठिनसा हो जाता है। भारतीय और आंग्ल स्वभावमें मौलिक भेद है। जब किसी भारतीयपर दुःख दर्द या आपत्ति आती है तो वह अपनी किस्मत या भाग्यका दोष अर्थात् अपना दोष समझता है। वह भूखा मरता है, नंगा फिरता है। मैला कुचैला रहता है, उसकी झोपड़ी गन्दी हो, यह सब उसकी किस्मतका दोष है, उसके अपने कर्म खोटे हैं। किसी अन्यका दोष नहीं, राज्यका दोष नहीं, जाति इसके लिए जिम्[redacted] नहीं, उ[illegible]र, सेठ, कारखानेवाले अर्थात् उससे

कोई दोष नहीं। अतः इस विश्वास में पड़ा होनेसे वह सन्तोष करके नहीं बैठता, अपने भाग्यको नहीं रोता, परन्तु अपने जालिमोंको लहूके आँसू बहाता और लोहेके चने चबवाता है, अपनी दुर्दशाको सुधारनेमें यत्न करता है, इस दुरवस्थाके लिए वह अपने तईं ज़िम्मेवार नहीं समझता, परन्तु जाति, राज्य, या जातिके किसी एक भाग को उत्तरदाता समझता है। बस, यही उसकी सफलताकी कुंजी है। उनके आराम या भोगों, उनकी उन्नतिका मूल मन्त्र उसी समयमें है। भारतवासियोंको अवश्यमेव अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा। जबतक वे सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवनके इस तत्वको न समझेंगे तबतक उनका उठना कठिन है।

जहाँ भारतमें फूंसकी कुटिया, टूटी चारपाई, फटी रजाई, मक्की या बाजराकी रोटी और नमक या प्याज़के साथ बिना तेल या घीके गुज़ारा मज़दूरोंके नसीबमें है, वहाँ इंग्लिस्तानमें पक्के लाल ईंटोंके मकान, शीशोंकी खिड़कियाँ, सुन्दर रंगोंसे सुसज्जित परदोंसे ढकी खिड़कियाँ और द्वार, कुर्सियाँ, आराम कुर्सियाँ मखमलसे ढकी एक दो कुर्सी, मेज़ें, मेज़पोश, चीनी, शीशे और चाँदीके बर्तन, पुस्तकें और पुस्तकोंकी अल्मारियाँ कीमती तस्वीरें, फर्शके गलीचे, सुन्दर गुलदस्ते दान, बहुत घरोंमें पियानो बाजा आदि अन्य कीमती सामान मज़दूरोंके घरोंमें मौजूद हैं। जहाँ भारतीय मज़दूर बारह घण्टे कारखानेमें काम करता है-वहाँ आंग्ल मज़दूर आठ घण्टे या साढ़े आठ घण्टे काम करके शेष समय आराम शिक्षा सामाजिक चर्चामें लगाता है। शनिवार आधे दिन काम करता है और आधा दिन पूरा आराम सैर तमाशेमें व्यतीत करता है, सारा आदित्यवार इस प्रकार भोग विलास सैर तमाशेमें लगाता है। शनि और रविवार इंग्लिस्तानके नर नारियोंको अवकाश मनाते देखकर मन प्रफुल्लित हो जाता है। जिस प्रकार सब उद्यान, वाटिका नदी और झीलों और समुद्रके तट नरनारियोंसे भरे होते हैं, और जिस बेपरवाहीसे कमाये हुए धनको सैर तमाशे में यह लोग व्यय करते हैं-वह देखने योग्य है।

इनके मुकाबलेमें हम लोग सचमुच नरकका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारे मज़दूर पक्ष, उच्च दर्जेके लोगोंमें भी जीवनको आनन्दमय बनानेकी रुचि और बुद्धि नहीं है। केवल धनकी लीला ही नहीं, बल्कि जीवनको सुखी, निरोग, दीर्घ बनानेका विशेष ढंग इन आंग्ल लोगोंको आता है। हमारे बड़े धनी भी वह आराम प्राप्त नहीं कर सकते जो यहाँके मजदूरोंको नसीब है। अतः भारतमें मज़दूरोंकी अवस्थाके सुधारकी विशेषतः, और अन्योंके जीवनोंको भी सुखी और दीर्घ करनेके लिए दृष्टिकोण बदल डालना चाहिये। झूठा गिरानेवाले और आत्माको दबाए रखनेवाले भाग्यवादको शीघ्र त्याग कर सामाजिक रोगोंके मूल कारणको समझते हुए उन्हें दूर करके सुख और उन्नतिके भागी बनना चाहिये।

बालकृष्ण

सम्राट् अकबरके जैन-गुरु



इन अकबरीके अन्तिम अध्यायमें अकबरके दरबारके १४० विद्वानोंकी सूची है। उन विद्वानोंको पाँच कक्षामें विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणीमें उनका उल्लेख है जो ऐहिक और पारलौकिक रहस्योंको समझे हुए हैं। उनमें अबुलफजलके पिता शेखमुबारक अग्रगण्य हैं। पहिली श्रेणीकी नामावलीमें अन्तिम इक्कीसवाँ नाम एक हिन्दू ब्राह्मण आदित्यका है। पहिले बारह मुसलमान हैं और १३-२१ पर्यन्त हिन्दू हैं। सोलहवाँ स्थान एक परम विद्वान जैन हरिजीसूरका है। दूसरी तीसरी चौथी श्रेणीके विद्वानोंको छोड़कर हमें पाँचवीं श्रेणीमें १००-१४० नाम मिलते हैं जिनमें ३८ मुसलमान और दो हिन्दू हैं। ये अपने अपने शास्त्रोंमें पारंगत समझे जाते थे। पाँचवीं श्रेणीके दो हिन्दू विजयसेन सूर और भानुचन्द्र बड़े विख्यात जैन थे।

सम्राट् अकबर अपने युगके विक्रमादित्य थे। वे विद्वानोंका बड़ा आदर करते थे। उनकी गोष्ठीमें वे प्रायः दिन व्यतीत करते थे। जैन गुरुओंका भी स्वागत उनके दर्बारमें होता था। यथार्थ तो यह है कि २४ वर्ष तक अकबरने जैन गुरुओंका सत्संग किया।

अबुलफजलका कथन है कि सं० १६३५ में धार्मिक विषयों पर इबादतखानेमें वादानुवाद होना आरम्भ हुआ, जिसमें बहुतसे सम्प्रदायके प्रतिनिधि भाग लेते थे। सूफी, सुन्नी, शीया, ब्राह्मण जती चार्वाक ईसाई यहूदी, पारसी स्यूरा ये सब लोग उस स्थल पर सम्मिलित होते थे। जती और स्यूरा यह दो शब्द श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायके वाचक हैं। पर इस मतका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि बौद्ध लोग भी इस धार्मिक शास्त्रार्थमें सम्मिलित हुए हों। अतएव अकबर एवं अबुलफजलको बौद्ध धर्मके विषयमें कुछ जानकारी न थी। अबुलफजलका स्पष्ट रूपसे यह कथन है कि बौद्ध श्रमणोंका हिन्दुस्तानमें बहुत समयसे पता नहीं लगता। वे केवल तिब्बत में मिलते हैं। अकबरको विद्वान बौद्धोंसे मिलनेका कभी सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ।

लेकिन अकबर कई वर्षों तक जैन गुरुओंके साथ रहा और उनकी शिक्षासे उसने अलभ्य लाभ उठाया। उसके मानसपर जैन धर्मका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। वह प्रभाव इतना अगाढ़ था कि लोकमें अकबरके जैन धर्मावलम्बी होनेकी जनश्रुति चारों ओर फैल गई। हरिविजयसूरी इन जैन गुरुओंमें शिरोमणि थे। विजयसेनसूरी और भानुचन्द्र इतने बड़े दार्शनिक न थे पर जैन शास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। इन तीन जैन गुरुओंसे जो अकबरका सम्बन्ध रहता था उस विषयकी हम संक्षिप्त चर्चा करना चाहते हैं।

हरिविजय का जन्म गुजरातके प्राचीन नगर प्रह्लाद पाटनमें सवत् १५८३ में हुआ था। तेरह वर्षकी अवस्थामें वे विजयदान सूरिके शिष्य बने, जिन्होंने दक्षिणमें उन्हें न्यायशास्त्रके अध्ययन करनेके लिए भेजा। अठारह वर्षके अध्ययनके पश्चात् वे नारदपुरमें वाचककी उपाधिसे विभूषित किये गए, और दो वर्षके उपरान्त वे

कोई दोष नहीं। अतः इस विरवास में पला होनेसे वह सन्तोष करके नहीं बैठता, भाग्यको नहीं रोता, वरञ्च अपने जालिमोंको लहूके आँसू बहाता और लोहेके चने चबवाता है, अपनी दुर्दशाको सुधारनेमें यत्न करता है, इस दुरवस्थाके लिए वह अपने तईं ज़िम्मेवार नहीं समझता, वरञ्च जाति, राज्य, या जातिके किसी एक भाग को उत्तरदाता समझता है। बस, यही उसकी सफलताकी कुञ्जी है। उसके भाग्य वा भोगों, उसकी उन्नतिका मूल मन्त्र उसी समयमें है। भारतवासियोंको अवश्य अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा। जबतक वे सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवनके तत्त्वको न समझेंगे तबतक उनका उठना कठिन है।

जहाँ भारतमें फूंसकी कुटिया, टूटी चारपाई, फटी रजाई, मक्की या मडुवाकी रोटी और नमक या पयाज़के साथ बिना तेल या घीसे चुपड़ी मज़दूरोंके नसीबमें है, वहाँ इङ्गलिस्तानमें पक्के लाल ईंटोंके मकान, शीशोंकी खिड़कियाँ, सुन्दर लेखोंसे सुसज्जित पर्दोंसे ढकी खिड़कियाँ और द्वार, कुर्सियाँ, आराम कुर्सियाँ मखमलसे ढकी एक दो कुर्सी, मेजें, मेज़ पोश, चीनी, शीशे और चाँदीके बर्तन, पुस्तकें और पुस्तकोंकी अल्मारियाँ कीमती तस्वीरें, फर्शके गलीचे, सुन्दर गुलदस्ते दान, बहुत घरोंमें पियानो बाजा आदि अन्य कीमती सामान मज़दूरोंके घरोंमें मौजूद हैं। जहाँ भारतीय मज़दूर बारह घण्टे कारखानेमें काम करता है-वहाँ आंग्ल मज़दूर आठ घण्टे या साढ़े आठ घण्टे काम करके शेष समय आमोद शिक्षा सामाजिक चर्चामें लगाता है। शनिशर आधे दिन काम करता है और ... दिन पूरा आराम सैर तमाशेमें व्यतीत करता है, सारा आदित्यवार इस प्रकार भोग ... सैर तमाशेमें लगाता है। शनि और रविवार इङ्गलिस्तानके नर नारियोंको अवकाश ... देखकर मन प्रफुल्लित हो जाता है। जिस प्रकार सब उद्यान, ... और समुद्रके तट नरनारियोंसे भरे होते हैं, और जिस ... तमाशे में वह लोग व्यय करते हैं-वह देखने योग्य है।

इनके मुकाबलेमें हम लोग सचमुच नरकका ... दूर क्या, उच्च दर्जेके लोगोंमें भी जीवनको ... केवल धनकी लीला ही नहीं, बल्कि ... आंग्ल लोगोंको आता है। हमारे बड़े ... के मज़दूरोंको नसीब है। अतः ... अन्योंके जीवनोंको भी सुखी और दीर्घ ... गिरानेवाले और आत्माको दबाए रखने ...

थाने एक घण्टेमें कण्ठस्थ कर लेते थे। उनकी इसी अलौकिक धारणा शक्तिसे अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें 'खुश-फहम' की उपाधि दी।

सिद्धिचन्द्र की कादम्बरी की प्रस्तावनासे मालूम होता है कि उनके गुरु भानुचन्द्र ने अकबर को १००० सूर्य के नाम सिखलाये थे और उन्हें अकबरने एक फरमान सं० १६५० में लिखा था जिससे शत्रुंजय की यात्रा नामक जैन तीर्थ को जाने वाले यात्रियों परसे कर उठा लिया गया और सारे जैन-तीर्थ हरिविजयसूरिके समर्पण कर दिये गये।

फिर विजयसेनसूरी दरबारमें निमन्त्रित किये गये। वे लाहौरमें सं० १६५५ तक रहे। इन्होंने ३६६ विद्वान ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। अकबरने प्रसन्न हो इन्हें 'सवाई' की उपाधि प्रदान की। भानुचन्द्र कदाचित् सं० १६६२ तक दरबारमें उपस्थित रहे। इन सब बातोंका सारांश यह है कि अकबर न्यूनातिन्यून बीस वर्ष तक जैन गुरुओंका सत्संग करता रहा।

पालीतानाके आदिनाथके पर्वतस्थ जैन-मन्दिर के द्वार पर एक संस्कृत का शिला-लेख है। इसमें ६७ श्लोक हैं जिन्हें १६५० संवत् में हेमविजयने रचा था। यह शिला-लेख ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्वका है। सम्राट् अकबरका जैन-गुरुओंके साथ कैसा मित्र भाव रहता था इस बातका परिचय देने वाला यह तत्कालीन लेख है। इसका अभि-प्राय यह है कि हरिविजयके अनुरोधसे सम्राट् अकबर ने ६ मास तक जीव-हिंसा रोक दी, मृत लोगोंके धनका जब्त करना बन्द किया, जजिया और शुल्क की कर-प्रथा मनसूख की।

उसने बहुतसे पशु-पक्षी और कैदी रिहा किये, शत्रुञ्जयकी पहाड़ी जैनियोंके भेंटकी और एक जैन पुस्तक-शाला भी स्थापित की। इस शिला-लेखसे ज्ञात पड़ता है कि अकबर जैन-धर्म का विम्बसार और अजात-शत्रु की भाँति रक्षक था। इस शिला-लेख का समर्थन अकबरका तत्कालीन अन्य इतिहास-कारों की पुस्तकों से भी होता है।

सारांश यह कि अकबर ने अहिंसा-धर्म बड़े महानुभाव जैन-गुरुओं से सीखा था। उसके धार्मिक विचार और दिन-चर्या में जैन और पारसी धर्मका बहुत बड़ा प्रभाव था। अकबरने भी गुरु-दक्षिणा के उपलक्ष्य में अपने राज्य में जीव हिंसा बन्द की और अनेक बुरी, दूषित प्रथाओं के दूर करने की चेष्टा की।

गंगाप्रसाद महता



दक्षिण-पश्चिम राजपूतानाके सिरोही नगरमें सूरिपदारूढ़ हुए। इस प्रकार वे जैन सन्यासियोंके तपागच्छ सम्प्रदायके नेता बने।

तपागच्छकी पत्तावलिमें उनकी जीवनी निम्नलिखित रूपमें मिलती है। सम्राट् अकबरको जैन धर्मावलम्बी बनानेवाले हरिविजयका जन्म विक्रम संवत् १५८३, मार्ग सुदी नवमीको प्रह्लादनपुरमें हुआ। दीक्षा संवत १५९६ कार्तिक वदी द्वितियाको पाटणमें हुई। संवत् १६०८ माघ सुदी पंचमीको नारदपुरीमें वाजक पद मिला। सिरोहीमें १६१० में सूरिपद और भाद्र सुदी ११ संवत् १६५२ विक्रमीमें उन्मानगरमें देहान्त हुआ।

जब हरिविजयकी कीर्ति-कथा सम्राट् अकबरने सुनी तो उसने तुरन्त ही उन्हें दरबार में उपस्थित होनेका निमन्त्रण भेजा। गुजरातके सूबेदार शिहाब खाँ सम्राट्का संदेश लेकर प्रस्थित हुए और सूरिजीकी यात्राका समुचित प्रबन्ध किया। अपने सम्प्रदायके कठोर नियमानुसार उन्होंने यात्रा की। सभी सामग्रीको अस्वीकृत किया और पैदल ही सम्राट् के दरबारकी ओर चल दिए। यह बात सुनकर अकबर सम्राट् बहुतही अचम्भित हुआ और बड़े आदर और समारोहके साथ इनका स्वागत किया। धार्मिक विषयोंपर इस बड़े धुरन्धर विद्वानसे अबुलफजलने वादानुवाद किया, जब अकबरको अवकाश मिलता था तब वह सूरिजीसे धार्मिक उपदेश सुना करता था। सूरिजीने जैन सन्यासियोंके पाँच व्रत अहिंसा, सत्य, अप्रतिग्रह, ब्रह्मचर्य्य और त्यागकी व्याख्या सम्राट् को सुनाई। सम्राट्ने सूरिजीको कुछ पुस्तकें भेंटकीं जिन्हें उन्होंने बड़े अनुत्साहसे लिया।

सूरिजी सं० १६३७ में आगरे गये और फतहपूर सीकरी में सम्राट् अकबर से मिल कर जैनधर्म्मानुसार चलनेके लिए उससे कुछ आज्ञा पत्र विवेचन कराए। जिनके अनुसार मछलियोंको पकड़ना बंद हुआ और सूरिजीको जगद्गुरुकी उपाधि प्रदान कीगई। सूरिजी ने अपने घरकी ओर अब चलनेकी तैयारीकी, मार्गमें प्रयाग और सिरोहीको देखते हुए अपने देश पाटण पहुँचे और शान्तिचन्द्र उपाध्याय नामक एक अपने शिष्यको अकबरके राजदर्बारमें नियुक्त कर आए। सं० १६५२ में ६६ वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हो गया और उनकी स्मृतिमें एक स्मारक बनाया गया।

हरिविजय शान्तिचन्द्र को सम्राट् अकबरकी राजसभामें नियुक्त कर अपने देशको चल दिये। शान्तिचन्द्रने राजसभामें कुछ काल व्यतीत कर अकबर सम्राट् की प्रशंसामें कृपारस कोष नामकी एक पुस्तक लिखी जिसमें सम्राट् अकबर की दयालुताका वर्णन किया है जिसको पढ़कर अकबर स्वयं बहुत प्रसन्न होता था। सं० १६४२ में शान्तिचन्द्र की इच्छानुसार उसने उसको स्वदेश लौट जानेकी आज्ञा दे दी, साथही साथ अकबर हिन्दुओं परसे जज़िया कर भी उठा दिया और पशुवधका सर्वथा होना एक दम बंद कर दिया।

भानुचन्द्र अकबरी दरबारमें रहने लगे। उनके शिष्य महामहोपाध्याय सिद्धिचन्द्रने बाणकी कादम्बरी पर एक सुन्दर टीका रची। सिद्धिचन्द्र अष्टावधानी थे अर्थात् १०८

ये दोनों नितान्त एक पक्षीय मत हैं। यह स्पष्ट है कि कोई संस्था किसी एक उद्देश्य से निर्मित हुई हो, पर उसके उद्देश्य आगे चलकर बढ़ सकते हैं। उसी प्रकार "राज्यका निर्माण जीवनरक्षाके लिए भले ही हुआ हो पर उसका अस्तित्व तो जीवन उच्च बनानेके लिए ही है।" राज्य केवल मनुष्य समुदाय नहीं है, उससे वह कुछ अधिक है। इसी प्रकार लोगोंकी भलाईमें उसकी भलाई समाप्त नहीं हो जाती। व्यक्ति इच्छा लोग लघु-कालस्थायी रहते हैं पर राज्य दीर्घकालस्थायी रहता है। इस कारण राज्यके चालकोंको बहुत दूर तक विचार करना होता है। इस कारण कभी कभी लोगोंके सुखसे राज्यके सुखका मेल नहीं खाता, कभी कभी तो नितान्त विरोध हो जाता है, कभी कभी लोगोंके सुख और स्वातन्त्र्यको तिलांजलि भी देनी पड़ती है। कभी कभी लोगोंके सुखके लिए अनेक भारी भारी जवाबदारियाँ भी उठानी पड़ती हैं। इसलिए इस प्रश्नका अधिक विचार करना आवश्यक है।

परन्तु ऐसा करने से पहिले इस विषय में जो अनेक सिद्धान्त बतलाये जाते हैं उनका विचार करना चाहिये।

एक यह सिद्धान्त है कि राज्यसत्ता की रक्षा करनी चाहिये। कई बार व्यवहार में इसका प्रयोजन भी होता है। जहाँ राज्यसत्ता राजा वगैरः के हाथ में रहती है, वहाँ इसका परिणाम विशेषही दीख पड़ता है। परन्तु यही अगर राज्य का उद्देश्य रहे तो अनियंत्रित राज्यप्रबन्ध ही फिर सर्वोत्तम समझा जावे। परिणाम यह होगा कि अनियन्त्रित सर्वव्यापी राज्यतंत्र का संस्थापन ही अन्तिम उद्देश्य हो जावेगा, फिर वहाँ वैयक्तिक स्वातन्त्र्य को स्थान ही कहाँ?

परन्तु इस सिद्धान्त में कुछ भी तथ्य नहीं है। यह अनियन्त्रित सत्ता के इच्छुक राजाओंके स्वार्थी सिद्धान्त हैं। ये राज्यतन्त्र नहीं, वरन् स्वार्थतंत्र हैं, राज्यमें एक राष्ट्र है, राज्याधिकारियोंके समानही लोग भी मनुष्य हैं, उन्हें भी वही भावना और शक्ति है, इन बातों को न भूलना चाहिये एक अथवा कुछ निश्चित लोग ही सब अधिकारोंके मालिक नहीं हो सकते और न लोगोंको पशुवत् समझ कर चाहे जैसा राज्य चलानाही योग्य है।

राज्य का मुख्य लक्षण सत्ता अवश्य है। पर वह साध्य नहीं है, वह केवल साधन है। लोगोंके प्रति अपना कर्तव्य करनेके लिए अधिकारीको इस सत्ताकी आवश्यकता है, निजके लिए नहीं।

इसलिए सत्ता परिमित होनी चाहिए और वह भी राज्य परत्वामें ही निश्चित होनी चाहिये। कभी कभी एक मर्तबा राज्य कुछ कारणोंसे निर्मित हुआ इसलिए वह सदाही लाभकारी रहना ऐसा नहीं कह सकते जैसे लोगोंके विचार और आदर्शमें परिवर्तन हो, वैसे वैसे राज्यप्रणालीमें बदल होना आवश्यक है।

कोई कोई राज्यतन्त्र राज्य के बाहर अपनी दृष्टि फैलाये रहते हैं। राष्ट्र और देशको छोड़कर वह किसी दूसरी बाहरी वस्तुओंकी चाह करते रहते हैं। दूसरे बाहरी कार्योंके लिए

राज्यके उद्देश्य

हमारी संस्थाओंको बनाने में कुछ न कुछ उद्देश्य रहताही है। राज्य भी एक प्रकार की संस्था है। फिर उसके उद्देश्य क्या हैं ? किस हेतु और सिद्धिके लिए इसका अस्तित्व है ? यह प्रश्न बहुत कम लोग किया करते हैं। परन्तु इसका भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। उद्देश्य निश्चित होनेपर किसी संस्थाके कार्योंका निश्चय हो सकता है। कार्योंके द्वारा ही उद्देश्यकी सिद्धि होती है। बहुत बार कहा करते हैं कि सरकारका अमुक कर्तव्य है, अमुक कर्तव्य है। परन्तु उद्देश्य पर दृष्टि न देते हुए कर्तव्यका निश्चय करना कठिन है। राज्यका संगठन चाहे जैसा हो, उससे उद्देश्यमें विशेष बदल न होनी चाहिये, उद्देश्य संगठन पर अवलंबित नहीं रहते। बल्कि संगठन कभी कभी उद्देश्य पर अवलंबित रहता है। इस दृष्टिसे संगठनोंका थोड़ा बहुत परिणाम व्यवहारमें उद्देश्यों पर अवश्य होता है, पर ऐसा क्यों होना चाहिये, इसका कोई तात्विक कारण नहीं है। संगठन चाहे जैसा हो, उद्देश्य सब राज्योंका समान होना चाहिये।

कभी कभी किसी देशकी सरकार लोगोंके वैयक्तिक अधिकारोंपर अधिक्षेप भलेही करे, पर यह कोई न कहेगा कि हमें राज्यकी आवश्यकता नहीं है, न कोई कहेगा कि राज्य केवल आपत्ति है। समाज उसके बिना संगठित नहीं रह सकता। समाजका वह आत्माही है। राज्य प्रबंध रूपी शरीरके द्वारा यह आत्मा अपना कार्य किया करता है। इतिहासमें अगर कोई बात स्पष्टतया दीख पड़ती है तो वह यह है कि बिना किसी न किसी तरहके राज्य प्रबंधके कोई समाज नहीं है। राज्य संस्था केवल प्राकृतिक है। उसका मूल मनुष्य स्वभावमें ही जमा है। वास्तवमें मनुष्य स्वभावसे ही राजकीय प्राणी है। मनुष्य इतना उच्च होनेपर भी, ज्ञानपूर्ण रहनेपर भी, उसे समाजके बिना पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। अपने रक्षण के लिए मनुष्य दूसरोंपर अवलम्बित रहता है और यह समाज द्वारा ही होता है। समाज यह कार्य्य राज्य संस्था द्वारा सिद्ध करता है।

परन्तु क्या राज्यका उद्देश्य 'रक्षा' में ही समाप्त हो जाना चाहिये ? कई तो यही कहेंगे कि राज्य एक बला है, अनिवार्य आपत्ति है। इसलिए उसका हस्तक्षेप हमारे जीवनकी बातोंमें यथासंभव जितना कम हो उतना अच्छा। जितने कार्य रक्षाके लिए नितान्त आवश्यक हों, उतने ही वह करे। व्यक्ति स्वातंत्र्यका उतनाही भाग नष्ट किया जावे जितना समाजकी रक्षाके वास्ते बिलकुल जरूरी है। बाकी बातोंमें व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र रहें। दूसरे कई ऐसे हैं जो यहाँतक कहेंगे और कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं। राज्य सर्वोच्च संस्था है। इसलिए राज्यके उद्देश्य सर्वोच्च होने चाहिये। इसतरह वे तो राज्य को माँ बापका घरही बना देना चाहते हैं। वह सब कुछ ही करे, कोई बात उसके करनेसे बाकी न रहे।

की भलाई सम्पादन राज्यके उद्देश्योंमेंसे एक मुख्य उद्देश्य है। और उसकी वृद्धि करना मङ्गलकारक है। न्याय, सार्वजनिक शांति, इत्यादि सब इसमें शामिल हो जाते हैं। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कभी कभी वैयक्तिक भलाई का त्याग करना पड़ता है। जब शत्रु देशपर आक्रमण कर चुका है और अपना शासन प्रस्थापित करना चाहता है, उस समय वैयक्तिक प्रश्नोंको दूर ही रखना पड़ता है। इतिहासमें इसके सैकड़ों उदाहरण दीख पड़ते हैं। इस कारण यह उद्देश्य भी अपूर्ण दीख पड़ता है।

परन्तु यदि हम कहें कि राष्ट्रीय शक्तियोंका विकास, और जीवनकी पूर्णता करना राज्यका उद्देश्य है तो हमें उचित कसौटी मिल जाती है। हाँ, इतना अवश्य स्मरण रखें कि किसी प्रकार नैतिक और राजकीय विकासकी पद्धतिमें और मानवी जीवनके उद्देश्योंमें विरोध तो नहीं है। फिर राज्यके उद्देश्योंका यह मत ही बन जावेगा। राज्यके उचित कार्योंमेंसे न तो कोई छूट ही जाते हैं, न अधिक आही जाते हैं। राज्यकी एकता का विचार उसमें है, और विविध विकासका भी विचार है। व्यक्तिका कार्य है कि वह अपनी शक्तियोंका विकास करे, उसी प्रकार राज्यका कार्य है कि राष्ट्रकी शक्तियोंका विकास करे। राष्ट्रीय वस्तुका विकास इसमें अन्तर्हित है। क्योंकि उसके सिवा राज्यके हुक्म कौन मानेगा? बाहरी और भीतरी शान्ति का विचार उसमें रखा है। कई तरहके आर्थिक प्रश्न उसमें रखे ही हैं। शिक्षाका प्रश्न कभी दूर नहीं हो सकता। जिस तरह से मानसिक विकासको उत्तेजना मिले, वे उपाय करने ही होंगे। वैयक्तिक स्वतन्त्रता कभी नष्ट की नहीं जा सकती। क्योंकि उसके बिना राष्ट्रीय विकास होनेकी सम्भावनाही नहीं है। साथही अनेक कार्योंमें राज्यके हस्तक्षेपका डर नहीं रह जाता। आध्यात्मिक विकासकी परिस्थिति यानी शांति, स्वतन्त्रता इत्यादि राज्य उत्पन्न कर सकता है, पर प्रत्यक्ष इस कार्य का भार उठाना अनुचित है। और यह उससे होही नहीं सकता। फिर वैयक्तिक बातोंमें दखल देना अनुचित है। जहाँ कहीं केवल व्यक्तिका प्रश्न है वहाँ व्यक्तिको ही कार्य करना चाहिये, राज्यको नहीं। विवाहकी पद्धति, जायदादका प्रबंध, धर्मका आचरण इत्यादि राज्य के कार्योंमें आही नहीं सकते।

सम्भव है इतने विवेचनसे भी राज्यका उद्देश्य स्पष्टतया न दीख पड़े। तथापि, हम कह सकते हैं कि जिस किसी कार्यसे राष्ट्रीय विकास होनेकी सम्भावना है—जिस किसी कार्यसे राष्ट्रीय जीवन पूर्ण हो सकता है—वे सब कार्य राज्यको करने चाहिये, इस उद्देश्यका जहाँ जिस कार्यसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो वहाँ राज्यको अपना हाथ खींच लेना ही उचित है। हमारे हिन्दुस्तानी भाइयोंको यह उद्देश्य कदाचित संकुचित ज्ञात पड़े। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ अनेक तरहके लोग हैं, अनेक धर्म हैं, अनेक रीतिरिवाज हैं, वहाँ राज्य अपना हाथ इससे आगे नहीं बढ़ा सकता। और यह स्थिति आजकल पृथ्वीके सबही देशोंमें है।

गोपालदामोदर तामस्कर

राज्य साधनमात्र बन जाते हैं। कोई भी कहेगा कि यह ध्येय नितान्त अनुचित है। किसी राज्यका निर्माण अथवा अस्तित्व इस कार्यके लिए करना मूल राज्यके लिए बड़ा हानिकारक है। एक राज्य किसी दूसरे राज्य, राजा अथवा लोगोंका पोषक नहीं हो सकता।

एक ध्येय ऊपर बतलाही चुके हैं। राज्यका अस्तित्व केवल लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा के लिए है। बाहरी शत्रुओंसे और भीतरी झगड़ोंसे राज्यने मनुष्यकी रक्षा की कि बस हो गया। 'व्यक्तिकी सुरक्षा ही राज्यका उद्देश्य है'। जब व्यक्तिके प्रत्येक कार्यमें सरकार दखल डालने लगती है और फिर जुल्म और सख्तीका प्रारंभ होकर वैयक्तिक स्वातंत्र्य रह नहीं जाता, तब ऐसे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होना स्वाभाविकही है। जब जब सरकार सब बातोंमें हस्तक्षेप करने लगती है, तो "व्यक्तिकी सुरक्षाके उद्देश्य" की उत्पत्ति होती ही है। उस समय ऐसा मालूम होने लगता है कि सरकार इसके सिवा कुछ भी अधिक न करे। क्योंकि उसकी प्रत्येक वृत्तिसे जुल्मकी ही संभावना अधिक है। परन्तु फिर सड़कें बनाना, नहरें खुदवाना, तार डाक का प्रबंध करना, शिक्षादेना, आयात निर्यात मालोंका नियंत्रण करना ऐसे सैकड़ों काम सब सरकारोंको छोड़ देने पड़ेंगे। ये काम सरकार के सिवा अच्छे न होनेके। उन्हें सरकार को ही करना चाहिये। उद्देश्यकी इस परिमित और संकुचित परिभाषासे सब कठिन प्रश्न सरकारी कार्योंकी सूचीसे निकल जावेंगे, मानसिक वृद्धिके प्रश्नोंसे उसका कुछ वास्ता न रहेगा, राष्ट्रमें सार्वजनिक जीवनकी मात्रा नहींके बराबर होगी, राज्य कमजोर पड़ जावेगा। और शायद छोटे छोटे झगड़े बहुत हो जावेंगे।

कभी कभी लोगोंका सामान्य सुखही उद्देश्य समझा जाता है। परन्तु इस उद्देश्यमें कोई सीमा ही नहीं दीख पड़ती, न कोई निश्चितताही है। यह सत्य है कि राज्य पर लोगोंका सुख बहुत कुछ अवलंबित रहता है, तथापि बिलकुल उससे सम्बन्धित नहीं है। घर, भोजन, वस्त्र इत्यादि सबही राज्यसे नहीं मिलते, वे वैयक्तिक श्रमसे ही मिलते हैं। फिर मानसिक सुख व्यक्ति पर ही निर्भर है। बुद्धि और योग्यता का दान राज्य नहीं करता। यह प्रकृति की देनगी है और सबको समान नहीं मिलती। मैत्री और प्रेम का लाभ शास्त्रीय ज्ञान अथवा कविता का आनंद, धर्मकी शान्ति अथवा आत्माकी पवित्रता इनमेंसे कुछभी राज्यके कारण नहीं मिल सकता। अगर राज्यका उद्देश्य यह हो जावे तो फिर उसे व्यक्ति की कई ऐसी बातोंमें हस्तक्षेप करना होगा कि जहाँ ऐसा करना वास्तवमें अनुचित है। फिर वैयक्तिक विकास रुक जावेगा, वास्तविक उद्देश्य दूरही रह जावेंगे और फिर सुख बढ़नेके बदले घटनेही लगेगा। जैसा ऊपर कह चुके हैं, वैयक्तिक सुख केवल राज्य पर अवलंबित नहीं है।

कभीकभी लोग कहा करते हैं कि राज्यका उद्देश्य न्याय करना है। परन्तु इतनेमें किसी राज्यका कार्य समाप्त नहीं हो जाता। नैतिक जीवनका उद्देश्य सुखके उद्देश्यके समान अतिविस्तृत और अनिश्चित है। और नैतिक जीवन केवल सरकार ही पर अवलंबित नहीं रहता। 'लोगोंकी भलाई' कहो तो वह कुछ निश्चित अवश्य जान पड़ता है। राष्ट्र-

व्यक्तिगत मितव्ययता



माज और व्यक्तिमें घनिष्ट सम्बन्ध है। क्यों न हो, जब कि व्यक्ति ही समाज है। संसारमें कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो समाजसे सम्बन्ध तोड़ कर एकान्तवासकी कामना करता हो। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि यद्यपि जंगल में रहा करते थे तौभी हम उन्हें समाजसे दूर नहीं समझते। प्रत्येक मुनिका आश्रम था। इन्हीं आश्रमोंमें बालक-समाजको शिक्षा दी जाती थी। बालक ही समाजके रत्न और अमूल्यधन हैं। कवीन्द्र-रवीन्द्र द्वारा स्थापित बोलपुर शान्ति-निकेतन तथा ब्रह्मचर्याश्रम इन्हीं प्राचीन आश्रमोंका आदर्श रूप है। रवीन्द्र जंगलमें तो वास करते हैं। पर हम उन्हें एकान्तवासी अर्थात् समाजसे दूर नहीं समझते। वह अकर्मण्य नहीं कहाते। परन्तु उनके द्वारा जो समाज-सेवा हो रही है वह कदाचित ही आजकल किसीसे हो।

समाज-सुधारके आधार हमारे प्रत्येक व्यक्ति हैं। प्रत्येक व्यक्ति आत्म-चरित्रको उत्तम आदर्श बनाकर अपने समाजको सुन्दर बना सकता है। यह समझ कर कि प्रत्येक मनुष्यका प्रभाव अवश्य किसी पर पड़ता है-प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह, ऐसा काम न करे जिससे समाजकी थोड़ी या अधिक हानि होती है। यदि मुख्यतः देखा जाय तो समाजका आधार व्यक्तिगत मितव्ययता है। चाहरूपेण व्यय करनेसे खासी सम्पतिकी बचत होती है। और इस सम्पत्तिसे दीन-हीन और असमर्थोंका समुचित उपकार हो सकता है। दीनोंकी संख्या भारतीय समाजमें अधिक है। उनके पालन-पोषणका भार प्रत्येक धनी पर है। इन बातोंको सोचकर प्रत्येक धनी व्यक्ति, अपने समाजका सुधार किसी कष्टके बिना वास्तवमें कर सकता है।

व्यक्ति-व्ययकी ओर देखनेसे हमें ज्ञात होगा कि उनके व्यय करनेके कोई निश्चित नियम या उद्देश्य नहीं। मनमाना व्यय करनेकी उनमें लतसी पड़ गयी है। हमारा मारवाड़ी-समाज अधाधुन्ध व्यय करनेका [illegible] है। वेश्या-क्रीड़ा, भोग विलासिता आदि भीषण भीषण दुर्गुण उनमें प्रवेश कर गये हैं। इनमें लाखों रुपयोंका दुरुपयोग हो रहा है। यदि [illegible] जाय तो हमारा मारवाड़ी-समाज ही [illegible] है। और यदि इन [illegible] उचित [illegible] हो जाय तो मारवाड़ी [illegible] क्योंकि [illegible] और [illegible] है।

[illegible] है, और [illegible] और [illegible] [illegible] भिन्न भिन्न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

प्रत्येक व्यय भिन्न भिन्न होते हैं। और प्रत्येक, वे व्यय अपने अनुसार किये जाते हैं। दवाईका व्यय एक कुशलके व्ययसे अधिकतर अधिक हुआ करता है। इसी कारण इनके विषयमें कोई निश्चित व्यय-नियम स्थापित करनेकी जरूरत नहीं। कुछ कार्योंमें जो व्यय नहीं किया करता है उस व्ययसे दूसरा मनुष्य जो कर्तव्य नहीं, नवेश युक्त होता है। जैसे मादक, धूम्र, देन्ट इत्यादि। हाँ, यदि कोई निश्चित नियमका स्थापन सम्भव है तो हमें 'उद्देश' निर्णय करना चाहिए। किसी निश्चित उद्देश्यसे व्यय करना चाहिए। अमितव्ययी परिवारकी मनुष्योंको निर्धन बना देती है। कितने धनी पुरुषोंकी ऐसी दशा देखी गयी है कि उनकी मृत्युके पश्चात उनके पास कफन के लिए भी पैसे धन नहीं। टेबुल-चेयर आदि बेच कर किसी तरह काम निकाला गया है।

प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह मासिक व्यय निश्चित कर ले। और उसके अनुसार चलनेकी प्रारम्भमें चेष्टा करे। समय देखकर वह उसका उल्लंघन कर सकता है। परन्तु किसी निश्चित उद्देशसे। जैसे बालकोंका विवाह करना हो तो रण्डियोंके नाच-गान और आतशबाजीमें बिलकुल कम व्यय या बिलकुल ही नहीं करना चाहिए। मित्रोंको प्रीति-भोज या दीनोंको परिधान-दान विवाहमें विशेष कार्य हों। साथ ही समाजका भी कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्तिके लिए निश्चित उद्देश स्थापित करे। समाजके इस कर्तव्य पर विचार करनेके पहिले हमें एक प्रश्नका उत्तर दे देना होगा। वह प्रश्न है—व्यक्तिगत व्यय या आय पर दखल जमानेका समाजको क्या अधिकार है? क्या वह समाजकी सम्पत्ति है?

यदि इस प्रश्नपर बाह्य प्रकाश डाला जाय तो यह अक्षरशः सत्य प्रतीत होगा। परन्तु यथार्थमें यह अक्षरशः मिथ्या है। इसमें तनिक भी सार नहीं। इस मतका अनुयायी अवश्य दुखी होगा। मनुष्यको यह मत स्वार्थी और नीच बना देता है। उन्हें उन सुख वैभवसे वञ्चित कर देता है जो सहयोगिता या परार्थपरायणतासे प्राप्त होते हैं। सहयोगिता ही मानव जीवन या इस संसारका प्रधानतम उद्देश है। मनुष्यको प्रत्येक कार्यमें दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता होती है। यदि कुछ कालके लिए स्वार्थ ही जीवनका परमभूषण मान लिया जाय तो हम अपने सारे काम अपने सहारे क्यों नहीं कर लेते? विपत्ति समय दूसरों की शरण क्यों लेते हैं। दार्शनिकोंमें मान्य अरस्तू का मत है कि—"जन्म हीसे मनुष्य सामाजिक या राजनैतिक जीव है।" ठीक ही है। क्योंकि पैदा होते ही हमें माता पिताकी सहायताओंकी आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने लिए नहीं जीता परन्तु दूसरोंके लिए जीता है यह निर्विवाद है।

अब रहा प्रश्न यह कि समाज व्यक्तिगत जीवनकी ओर क्यों आँख फेरता है? उसकी सेवा हम करनेको तत्पर हैं। इसके समाधानमें यह कहा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्तिका जीवन ही सुन्दर नहीं तो वह व्यक्ति व्यक्ति-समूह समाजकी योग्य सेवा क्योंकर कर सकता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर जान पड़ता है कि प्रत्येक मनुष्य समाजकी सेवा करता तो अवश्य है परन्तु चारुरूपसे नहीं। क्योंकि उसे सेवा करने की उचित रीति अवगत नहीं।

व्यक्तिगत मितव्ययता

समाज और व्यक्तिमें घनिष्ट सम्बन्ध है। क्यों न हो, जब कि व्यक्तिसमूह ही समाज है। संसारमें कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो समाजसे सम्बन्ध तोड़ कर एकान्तवासकी कामना करता हो। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि यद्यपि जंगल में रहा करते थे तोभी हम उन्हें समाजसे दूर नहीं समझते। प्रत्येक मुनिका आश्रम था। इन्हीं आश्रमोंमें बालक-समाजको शिक्षा दी जाती थी। बालक ही समाजके रत्न और अमूल्यधन हैं। कवीन्द्र-रवीन्द्र द्वारा स्थापित बोलपुर शान्ति-निकेतन नामक ब्रह्मचर्याश्रम इन्हीं प्राचीन आश्रमोंका आदर्श रूप है। रवीन्द्र जंगलमें तो वास करते हैं। पर हम उन्हें एकान्तवासी अर्थात् समाजसे दूर नहीं समझते। वह अकर्मण्य नहीं कहाते। परन्तु उनके द्वारा जो समाज-सेवा हो रही है वह कदाचित ही आजकल किसीसे हो।

समाज-सुधारके आधार हमारे प्रत्येक व्यक्ति हैं। प्रत्येक व्यक्ति आत्म-चरित्रको उज्ज्वल आदर्श बनाकर अपने समाजको सुन्दर बना सकता है। यह समझ कर कि प्रत्येक मनुष्यका प्रभाव अवश्य किसी पर पड़ता है-प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह, ऐसा काम न करे जिससे समाजकी थोड़ी या अधिक हानि होती है। यदि मुख्यतः देखा जाय तो समाजका आधार व्यक्तिगत मितव्ययता है। चारुरूपेण व्यय करनेसे ख़ासी सम्पत्तिकी बचत होती है। और इस सम्पत्तिसे दीन-हीन और असमर्थोंका समुचित उपकार हो सकता है। दीनोंकी संख्या भारतीय समाजमें अधिक है। उनके पालन-पोषणका भार प्रत्येक धनी पर है। इन बातोंको सोचकर प्रत्येक धनी व्यक्ति, अपने समाजका सुधार किसी कष्टके बिना चारुतया कर सकता है।

व्यक्ति-व्ययकी ओर देखनेसे हमें जान पड़ेगा कि उनके व्यय करनेके कोई निश्चित नियम या उद्देश्य नहीं। मनमाना व्यय करनेकी उनमें लतसी पड़ गयी है। हमारा मारवाड़ी-समाज अधाधुन्ध व्यय करनेका पूरा पक्षपाती है। वेश्या-प्रियता, भोग-विलासिता आदि भीषण भीषण दुर्गुण उनमें प्रवेश कर गये हैं। इससे लाखों रुपयोंका दुरुपयोग होता जा रहा है। यदि सत्य कहा जाय तो हमारा मारवाड़ी-समाज ही भारतका धनाढ्य समाज है। और यदि इसमें उचित शिक्षाका प्रचार हो जाय तो भारतकी यथेष्ट सेवा हो सकेगी। क्योंकि धन ही समस्त सेवा और उन्नतिका आधार है।

समाज, श्रेणियोंसे बना है, और श्रेणियाँ व्यक्तिसे। जैसे धनी, मध्यम और निकृष्ट श्रेणियाँ। इन श्रेणियोंका भिन्न भिन्न व्यय भी व्यक्तियोंका व्यय है। व्यक्तियोंका व्यय भी नितान्त भिन्न है। किसीको घोड़ीका शौक है तो किसीको सिगरेटका। जिनको इनका शौक नहीं है वे और किसी शौकमें मस्त हैं। मतलब, एक ही श्रेणीके व्यक्तियोंमें भी व्यय-विभिन्नता है। जिससे व्यय करनेका कोई निश्चित नियम स्थापित नहीं किया जा सकता। पद पद पर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

प्रत्येक व्यय भिन्न भिन्न होते हैं। और क्रमशः ये व्यय आयके अनुसार किये जाते हैं। दर्शनका व्यय एक कुटुंबके व्ययसे अधिकतर अधिक हुआ करता है। इसी कारण इनके लिए कोई निश्चित व्यय-नियम स्थापित करनेकी जगह नहीं। इन कार्योंमें जो व्यय एक व्यक्ति करता है उस व्ययसे दूसरा मनुष्य जो करता नहीं, सर्वथा मुक्त होता है। जैसे साबुन, बूट, पेन्ट इत्यादि। हाँ, यदि कोई निश्चित नियमका स्थापन असम्भव है तो इसमें 'उद्देश' निर्माण करना चाहिए। किसी निश्चित उद्देशसे व्यय करना चाहिए। अथवा इसकी परिपाटी मनुष्योंको निर्धन बना देती है। कितने धनी पुरुषोंकी ऐसी दशा देखी गयी है कि उनकी मृत्युके पश्चात उनके शव दहन के लिए भी पर्याप्त धन नहीं। टेबुल-चेयर आदि बेच कर किसी तरह काम निकाला गया है।

प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह मासिक व्यय निश्चित कर ले। और उसके अनुसार चलनेकी प्रायशः चेष्टा करे। समय देखकर वह उसका उलटन कर सकता है। परन्तु किसी निश्चित उद्देशसे। जैसे बालकोंका विवाह करना हो तो रसिकोंके नाच-गान और आतशबाजीमें बिलकुल कम व्यय या बिलकुल ही नहीं करना चाहिए। मित्रोंको प्रीति-भोज या दीनोंको परिधान-दान विवाहमें उचित कार्य हों। साथ ही समाजका भी कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्तिके लिए निश्चित उद्देश स्थापित करे। समाजके इस कर्तव्य पर विचार करनेके पहिले हमें एक प्रश्नका उत्तर दे देना होगा। वह प्रश्न है—व्यक्तिगत व्यय या आय पर दखल जमानेका समाजको क्या अधिकार है? क्या वह समाजकी सम्पत्ति है?

यदि इस प्रश्नपर वाह्य प्रकाश डाला जाय तो वह अक्षरशः सत्य प्रतीत होगा। परन्तु यथार्थमें यह अक्षरशः मिथ्या है। इसमें तनिक भी सार नहीं। इस मतका अनुयायी अवश्य दुखी होगा। मनुष्यको यह मत स्वार्थी और नीच बना देता है। उन्हें उन सुख वैभवसे वञ्चित कर देता है जो सहयोगिता या परार्थपरायणतासे प्राप्त होते हैं। सहयोगिता ही मानव जीवन या इस संसारका प्रधानतम उद्देश है। मनुष्यको प्रत्येक कार्यमें दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता होती है। यदि कुछ कालके लिए स्वार्थ ही जीवनका परमभूषण मान लिया जाय तो हम अपने सारे काम अपने सहारे क्यों नहीं कर लेते? विपत्ति समय दूसरों की शरण क्यों लेते हैं। दार्शनिकोंमें मान्य अरस्तू का मत है कि—"जन्म हीसे मनुष्य सामाजिक या राजनैतिक जीव है।" ठीक ही है। क्योंकि पैदा होते ही हमें माता पिताकी सहायताओंकी आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने लिए नहीं जीता परन्तु दूसरोंके लिए जीता है यह निर्विवाद है।

अब रहा प्रश्न यह कि समाज व्यक्तिगत जीवनकी ओर क्यों आँख फेरता है? उसकी सेवा हम करनेको तत्पर हैं। इसके समाधानमें यह कहा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्तिका जीवन ही सुन्दर नहीं तो वह व्यक्ति व्यक्ति-समूह समाजकी योग्य सेवा क्योंकर कर सकता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर जान पड़ता है कि प्रत्येक मनुष्य समाजकी सेवा करता तो अवश्य है परन्तु चारुरूपसे नहीं। क्योंकि उसे सेवा करने की उचित रीति अवगत नहीं।

इसी उचित रीतिको दिखला देनेका भार समाज पर है। उसके विद्वान नेताओं या धुरि-धारियोंपर है। और इसी कारण प्रत्येक व्यक्तिपर समाजका पूर्ण अधिकार है। और इस अधिकारको देना प्रत्येक व्यक्तिका सर्वप्रथम कर्तव्य है।

परन्तु वर्त्तमानकालमें व्यक्ति कुछ इसके विपरीत करता है। उसे गुप्त रहना सदा भाता है। वह अपने कार्य्योंको प्रकाशित करना नहीं चाहता। यदि किसीने कोई वस्तु सस्ते भावमें खरीदी तो पूछे जाने पर वह उसका वास्तविक मूल्य कभी नहीं प्रगट करेगा। क्योंकि दूसरे उसे खरीद लायेंगे। आजकल लोगोंका यह स्वभाव सा हो गया है कि वे अपनी बहादुरी या विचित्रतापर घमण्ड करते हैं। यह बहादुरी या विचित्रता भी कैसी? केवल यही कि हम खुशामद बरामद कर उसे सस्ते मोलपर लाये हैं और साथ ही दूकानदारसे यह वादा कर आये हैं कि यह भाव किसीपर प्रगट न होगा। या हमारे पास ही यह रहे, और किसीके पास नहीं। और, यदि हमने उसके लिए अधिक मूल्य दिया है तो उसे भी नहीं बतानेके। इस डरसे, कि लोग हमें मूर्ख न ठहरावें। सारांश मनुष्य अपनी व्यक्तिगत बातें नहीं बताना चाहता। वह चाहता है कि लोग उसपर टीका-टिप्पणी न करें। परन्तु सच पूछा जाय तो टीका-टिप्पणीके ही द्वारा सत्यकी खोज और उसके करने वालोंमें ज्ञानकी वृद्धि होती है।

यदि किसी गृहस्थके यहाँ कोई विशेष खाद्य वस्तु तैयार हुई है तो वह गृहस्थ यह प्रयत्न करता है कि पड़ोसीको इसकी गन्ध तक न लगे। यदि कोई विशेष रोगकी उत्तम औषधि पास है तो वह उसका उपयोग करता है अपनी चहारदीवारीके अन्दर ही अन्दर। और इतने गुप्त रीतिसे कि उसका नाम तक कोई न जान पावे। क्योंकि समय आ पड़नेपर कोई उसे माँग ले जायगा। सारांश, अभी मनुष्योंमें समाजिकता नहीं आयी। प्रत्येक व्यक्ति को समाजिकताका ज्ञान हो और उस ज्ञानके अनुसार वह चले, तब ही समाजका सुधार हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

व्यक्तिगत आयपर भी समाजका पूर्ण अधिकार है। औसत और व्ययके अनुसार आय हुई तो ठीक। नहीं तो समाज वा व्यक्तिमें कुरीतियाँ प्रवेश कर जाती हैं। मान लिया जाय बचत मिलाकर किसी मनुष्यको ५०) मासिक मिलना चाहिए। अर्थात् ५०) से उसका भली भाँति गुजारा हो सकता है। परन्तु जब उसे यह न मिलकर १००) रुपये मिलते हैं। तो ऐसी अवस्थामें यह समझा जाय कि ५०) रुपये उसे व्यर्थ मिले। दीनोंका ग्रास छीन लिया गया। उस रकमसे किसी भिक्षुकका पालन हो जाता। समाजका मुख्य कर्तव्य है कि वह दीन और असहायकी सहायता प्रथम करे। उन्हें उन्हींके भरोसे न छोड़ दे। उन्हींके भरोसे यदि उनसे कुछ होता तो वे भीख माँगने या भूखे रहनेका कष्ट सहन न करते।

अच्छा, वे ५०) उसे दिये भी गये तो उस पाने वाले व्यक्तिका कर्तव्य हो कि वह उसका सदुपयोग कर उस समाजका उपकार करे जिस समाजने उसे वह अधिक रकम

मिली है। हमारेके बीच केवल दो ही चार व्यक्ति ऐसे होंगे जो इस कर्तव्यका पालन करते हों। नहीं तो प्रायः धनी उसका दुरुपयोग करते हैं। कञ्जूसोंकी बात हम यहाँ नहीं कहते। क्योंकि उनका तो एक निराला ही व्यापार है।

इनमेंसे कुछ लोग अपने स्वार्थकी ओर देखते हैं। अनाजका भाव अधिक हो गया—कुछ कालके बाद अभी और अधिक होनेकी सम्भावना है—यह जान कर धनी क्या करेगा कि उन अधिक दामोंमें एक मुश्त अनाज खरीद कर घर भर देगा। अनाजके अभाव हो जानेसे उसका भाव और भी अधिक हो जावेगा। उधर वे बेचारे असमर्थ लोग चिल्लाने लगते हैं। परन्तु उनकी कौन सुनता है। क्योंकि इधर तो गुलछर्रे उड़ रहे हैं। लोग उसकी इस असामान्य कृति पर अपनी राय प्रगट करते हैं, कि अच्छा काम किया, चार कुछ दिनोंके लिए अब निश्चिन्त रहे। वाह! क्या यही बहादुरीका काम है। अवश्य यह मक्खी मारने की बहादुरी है या एक घूंसेमें सौ पापड़ तोड़ने की।

समाजको अपना समझकर, प्रत्येक मनुष्यको ईश्वरका पुत्र समझकर, उस दीनबन्धु परमात्माकी इच्छाओंका मननकर, अपने परिवारका उपकार करते हुए उस समाजका उपकार करे जिससे वह पलता है। जिसकी सहायताकी आवश्यकता उसे हर समय है। 'दान' या उच्च भावके सिवा सब ही बातें घरसे शुरू होती हैं। परन्तु कोई भाव उच्च तब कहाता है कि जब समस्त मनुष्योंको प्रिय हो। परिवार ही के प्रश्नोंको केवल प्रधान माननेसे परार्थ दृष्टिमें नहीं आता और न जीवनका वास्तविक रहस्य ही समझमें आता है।

सारांश यह कि प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि व्यय करनेके उद्देश निर्म्माण करले, और उसके अनुसार चलकर कुछ बचत करे, और इस बचतसे समाजकी सेवा करे, तब ही समाजका सच्चा सुधार हो सकेगा। व्यक्तिगत मितव्ययता ही सामाजिक सुधारका मूलमन्त्र है।

मनोहरप्रसाद मिश्र

इसी उचित रीतिको दिखला देनेका भार समाज पर है। उसके विद्वान नेताओं या धुरिधारियोंपर है। और इसी कारण प्रत्येक व्यक्तिपर समाजका पूर्ण अधिकार है। और इस अधिकारको देना प्रत्येक व्यक्तिका सर्वप्रथम कर्तव्य है।

परन्तु वर्तमानकालमें व्यक्ति कुछ इसके विपरीत करता है। उसे गुप्त रहना सदा भाता है। वह अपने कार्य्योंको प्रकाशित करना नहीं चाहता। यदि किसीने कोई वस्तु सस्ते भावमें खरीदी तो पूछे जाने पर वह उसका वास्तविक मूल्य कभी नहीं प्रगट करेगा। क्योंकि दूसरे उसे खरीद लायेंगे। आजकल लोगोंका यह स्वभाव सा हो गया है कि वे अपनी बहादुरी या विचित्रतापर घमण्ड करते हैं। यह बहादुरी या विचित्रता भी कैसी? केवल यही कि हम खुशामद बरामद कर उसे सस्ते मोलपर लाये हैं और साथ ही दूकानदारसे यह वादा कर आये हैं कि यह भाव किसीपर प्रगट न होगा। या हमारे पास ही यह रहे, और किसीके पास नहीं। और, यदि हमने उसके लिए अधिक मूल्य दिया है तो उसे भी नहीं बतानेके। इस डरसे, कि लोग हमें मूर्ख न ठहरावें। सारांश मनुष्य अपनी व्यक्तिगत बातें नहीं बताना चाहता। वह चाहता है कि लोग उसपर टीका-टिप्पणी न करें। परन्तु सच पूछा जाय तो टीका-टिप्पणीके ही द्वारा सत्यकी खोज और उसके करने वालोंमें ज्ञानकी वृद्धि होती है।

यदि किसी गृहस्थके यहाँ कोई विशेष खाद्य वस्तु तैयार हुई है तो वह गृहस्थ यह प्रयत्न करता है कि पड़ोसीको इसकी गन्ध तक न लगे। यदि कोई विशेष रोगकी उत्तम औषधि पास है तो वह उसका उपयोग करता है अपनी चहारदीवारीके अन्दर ही अन्दर। और इतने गुप्त रीतिसे कि उसका नाम तक कोई न जान पावे। क्योंकि समय आ पड़नेपर कोई उसे माँग ले जायगा। सारांश, अभी मनुष्योंमें समाजिकता नहीं आयी। प्रत्येक व्यक्ति को समाजिकताका ज्ञान हो और उस ज्ञानके अनुसार वह चले, तब ही समाजका सुधार हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

व्यक्तिगत आयपर भी समाजका पूर्ण अधिकार है। औसत और व्ययके अनुसार आय हुई तो ठीक। नहीं तो समाज या व्यक्तिमें कुरीतियाँ प्रवेश कर जाती हैं। मान लिया जाय बचत मिलाकर किसी मनुष्यको ५०) मासिक मिलना चाहिए। अर्थात् ५०) से उसका भली भाँति गुजारा हो सकता है। परन्तु जब उसे यह न मिलकर १००) रुपये मिलते हैं। तो ऐसी अवस्थामें यह समझा जाय कि ५०) रुपये उसे व्यर्थ मिले। दीनोंका ग्रास छीन लिया गया। उस रकमसे किसी भिक्षुकका पालन हो जाता। समाजका मुख्य कर्तव्य है कि वह दीन और असहायकी सहायता प्रथम करे। उन्हें उन्हींके भरोसे न छोड़ दे। उन्हींके भरोसे यदि उनसे कुछ होता तो वे भीख माँगने या भूखे रहनेका कष्ट सहन न करते।

अच्छा, वे ५०) उसे दिये भी गये तो उस पाने वाले व्यक्तिका कर्तव्य हो कि वह उसका सदुपयोग कर उस समाजका उपकार करे जिस समाजसे उसे यह अधिक रकम

भारतमें भी ऐसे संकट आ चुके हैं और आवेंगे। और इनके लिए प्रधान बैंकके बिना और कोई अच्छा उपाय नहीं है। इस समय तो भारतमें इनके लिए कोई भी दरवाजा खुला नहीं है। क्योंकि बहुतसे बैंकोंके पास नकदी बहुत कम रहती है और इनका प्रेसिडेन्सी बैंकों तकसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उपरोक्त आपत्ति आते ही अधिकांश बालूकी भीतिकी नाईं गिर पड़ेंगे।

बैंकोंका साधारण काम है कि व्यापारियोंके प्रामिसरी नोट या हुंडी और विनिमय के पुर्जे लेकर उनको नकद दें। इस कामसे उनका लाभ होता है। यूरोपमें जब किसी बैंकके पास ये पर्चे और नोट अधिक हो जाते हैं और नकद कम रह जाता है तो वह उनमेंसे कुछको प्रधान बैंकको दे देता है और अपने नकदका हिस्सा उठा लेता है। भारतमें प्रधान बैंक न होनेसे यह सुविधा नहीं है। इस लिए बैंक अधिक बिल, नोट, व पर्चे लेते घबराते हैं और अपना इतना नकदी रुपैया और नोटमें, या अन्य ऐसी जायदादमें लगाते हैं जिसका अधिक उपयोग बैंकके सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे उचित नहीं है। यदि यहाँ कोई प्रधान बैंक खुल जाय तो यह कठिनाई दूर हो जायगी।

अन्य देशोंमें प्रधान बैंकोंको सरकारके खजानेका बन्दोबस्त और सरकारका बैंक सम्बन्धी काम (उसके शेष-नकदको रखना और आवश्यकता पड़ने पर कर्जा देना इत्यादि) भी सौंप दिये जाते हैं। इससे सरकार बैंक, और व्यापारियों, तीनोंको अनेक लाभ होते हैं। सरकारको अपने शेष नकदपर व्याज मिल जाता है और समय पर कर्जा भी, और व्यापारको बैंकके जरिये वह नकद मिल जाता है जो 'कर' के रूपमें समय समय पर सरकारके पास इकट्ठा हो जाता है। बैंकको तो अपने परिश्रमका फल प्राप्त हो ही जाता है।

क्योंकि बैंक और सरकारी बैंकका काम एक साथ करनेसे अनेक प्रकारके लाभ होते हैं। इंगलिस्तानके प्रधान बैंकके कार्य पर दृष्टि डालनेसे यह बात स्पष्टतया दीख पड़ेगी। वहाँ फाल्गुन मासमें सरकारको अपने कर्जे पर व्याज देना होता है। इसके लिए उसके पास कर द्वारा धन जमा हो जाता है। जमा धन और व्याज अदा करना दोनों प्रधान बैंकके हाथ होते हैं। यदि ये काम साधारण बैंकके हाथ हों तो उसको बहुत सा नकद रखना पड़े। पर प्रधान बैंक यह कार्य थोड़ेसे नकदसे कर लेता है। बहुधा व्याज पाने वाले मनुष्य प्रधान बैंक पर चेक काट कर अपने बैंकमें जमा कर देते हैं। ये छोटे बैंक प्रधान बैंकको वह चेक भेज कर उस रुपयेको अपने नाम जमा करा लेते हैं। प्रधान बैंक उक्त धनको सरकारी हिसाबसे काट कर उपरोक्त बैंकके नाम लिख देता है। इस प्रकार बिना नकदके बहुतसा कार्य तय हो जाता है। इस प्रकारके लाभ भी बिना प्रधान बैंकके नहीं मिल सकते।

भारतवर्षमें इस विषयमें बड़ी गड़बड़ाध्याय है। प्रधान बैंक तो कोई है नहीं। कलकत्ता, बम्बई, और मदरासमें तीन बड़े बैंक हैं जिनको प्रेसिडेन्सी बैंक कहते हैं। सं० १९२३ में इन बैंकोंको सरकारी सब शेष अपने कार्यमें लगानेका अधिकार मिल गया था, पर सं० १९३१ में ये बैंक सरकारको आवश्यकता पड़नेपर भी शेषको वापिस न कर सके।

भारतमें राष्ट्रीय बंक अथवा प्रधान बंकोंके बंक की आवश्यकता



रतकी बैंकिंग-प्रणालीके अनेक दोष इस प्रकारके हैं जिनके कारण राष्ट्रीय बैंककी आवश्यकता और अधिक हो गयी है। यह आवश्यकता अनेक देशोंमें अनुभव हुई है। इंग्लिस्तान, फ्रांस, जर्मनी, रूस, आदि सभी देशोंमें इस प्रकारके बैंक खुल गये हैं। जिन देशोंमें ऐसे बैंक नहीं खुले उनमें प्रधान अमरीकाके संयुक्त राष्ट्र, कैनाडा, और स्काटलैण्ड हैं।

बैंकोंका कारोबार ग्राहकोंके परस्पर विश्वासपर निर्भर है। यदि कोई बंक पूँजी जमा करने वालोंकी माँगको नकद देकर एक साथ सबको भी पूरा न कर सके तो वह दिवालिया कहा जाता है। इस माँगको पूरा करनेके लिए बंक कुछ जमाको तो नकद रखता है-कुछ ऐसा माल रखता है जो शीघ्रतासे बेचा जा सके-और शेष जमा किये धनको कर्ज़पर दे देता है। इसी अंतिम भागसे उसकी आमदनी होती है। यदि सब ग्राहक अपना अपना धन एक साथ ही माँग लें तो बंक एकदम दिवाला निकाल दे।

साधारणतः ऐसे अवसर नहीं आते। पर कभी कभी ग्राहकोंका विश्वास बंक परसे उठ जाता है। वे सब एकदम अपनी जमा पूँजी वापिस माँगने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें अच्छे बंक भी—जिनकी मालियत उनके कर्जसे अधिक हो—बैठ जाते हैं। उनका दिवाला निकल जाता है। इस दशामें रक्षाका एक ही उपाय है। यदि कोई बड़ा बंक, जिसकी अवस्था बहुत अच्छी हो। संकटमें पड़े बंकको आवश्यकीय नकद उधार देदे तो ग्राहकोंमें फिर विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है। नकद पाते ही मनुष्योंमें विश्वास हो जाता है। माल होने पर भी नक़द न होनेसे यह संकट आ जाता है। दूसरे साधारण बंकोंकी नकदी दशा ऐसी नहीं होती कि संकटमें पड़े बंककी रक्षा कर सकें। केवल राष्ट्र बंक उन बंकोंकी सहायता कर सकता है जिनके पास माल तो यथेष्ट है पर जो नकद न होनेसे आपत्तिमें पड़ गये हों।

ऐसे संकटके समय यूरोपमें बार बार आते देखे गये हैं। बहुधा दस दस सालमें ऐसी आपत्तियाँ आती हैं। इंगलिस्तानके प्रधान बंकने ऐसे समय कई बार बहुतसे बंकोंकी रक्षा की है। इसी कारण और कुछ राजनैतिक कारणोंसे फ्रान्स और जर्मनीके प्रधान बंक खोले गये। अमरीकाके संयुक्तराष्ट्रमें बंकोंने परस्पर रक्षाके लिए कुछ समझौता कर रक्खा था। पर सं० १८६४में कुछ न चली। सबका दिवाला तयार दिखाई दिया। सबने ग्राहकोंकी पूँजी वापिस करनेसे इन्कार कर दिया। उसके बाद वहाँ भी तीन रिज़र्व बंक प्रधान बंकका काम करनेके लिए खोले गए हैं।

भारतमें राष्ट्रीय बंक अथवा प्रधान बंकोंके बंककी आवश्यकता

भारतमें भी ऐसे संकट आए हैं और आएंगे। और इनके लिए प्रधान बंकके सिवा और कोई अच्छा उपाय नहीं है। इस समय तो भारतमें इनके लिए कोई भी उपाय उपलब्ध नहीं है। क्योंकि बहुतसे बंकोंके पास नकदी बहुत कम रहती है और इनका प्रेसिडेन्सी बंकों तकसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उपरोक्त संकट आते ही अधिकांश बंकोंकी भी किसी तरह गिर पड़ेंगे।

बंकोंका साधारण काम है कि व्यापारियोंके प्रामिसरी नोट या हुंडी और विनिमय के पुर्जे लेकर उनको नकद दे। इस कामसे बड़ा नफा होता है। यूरोपमें जब किसी बंकके पास ये पर्चे और नोट अधिक हो जाते हैं और नकद कम रह जाता है तो वह उनमेंसे कुछ को प्रधान बंकको दे देता है और अपने नकदका हिस्सा बढ़ा लेता है। भारतमें प्रधान बंक न होनेसे यह सुविधा नहीं है। इस लिए बंक अधिक बिल, नोट, व पर्चे लेते घबड़ाते हैं और अपना रुपया सरकारी कर्जे और नोटोंमें, या अन्य ऐसी चीजोंमें लगाते हैं जिनका अधिक उपयोग बंकके सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे उचित नहीं है। यदि यहाँ कोई प्रधान बंक खुल

इसलिए सरकारने अपने विशेष खजाने इस धनको रखनेके लिए खोले । सं० १८३१ और सं० १८६३ के बीच सरकारी पौलिसी कई बार बदली । कभी कम और कभी अधिक शेष प्रेज़िडेन्सी बंकोंमें रखनेकी आज्ञा दी गई। पर सं० १८६३ से सं० १८७१ तक कुछ शेष न दिया गया सिवाय उस थोड़ेसे भागके जो सं० १८१६ के एक्टके अनुसार रखना पड़ता है। पर युद्धके समय सरकारी शेषको व्यापार संसारसे अलग रखनेके परिणाम बहुत बुरे होते। इसलिए इस प्रकारकी आज्ञा फिर दी गई। विशेष कर कर्ज़ेमें उघाया हुआ धन काम पड़ने तक बंकोंके हाथमें रहा।

भारतमें जाड़ोंमें सरकारके पास बहुतसा धन इकट्ठा हो जाता है। दुर्भाग्य वश इसी समय व्यापारको भी अधिक नकदकी आवश्यकता होती है। फल यह होता है कि बंक रेट (जिस रेट पर प्रेज़िडेन्सी बंक रुपया उधार देते हैं) ३ से उठकर ८ सैकड़ा हो जाती है। इससे व्यापारको बड़ा कष्ट होता है। यह सच है कि भारत सचिव कौंसिल बिल बेचकर व्यापारियोंके लिए सरकारी शेष प्राप्त कर देता है पर यह कार्य कुछ समयके बाद ही हो सकता है। इस बीचमें व्यापारको कष्ट और हानि होते हैं। यह भी ठीक है कि सरकारी शेषको प्रेज़िडेन्सी बंकोंको उधार देनेसे भी यह कष्ट कम हो सकता है पर कर्ज़ा लेने देनेके कामकी योग्यतामें सरकार बहुत योग्य नहीं है। किन शर्तोंपर रुपया देना चाहिये, कितने समयके लिए, किस ब्याज पर, क्या चीज गिरवी लेकर, इत्यादि प्रश्नोंसे ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं जिनको बिना प्रधान बंक खुले सरकार खूबीसे दूर नहीं कर सकती। बिना बंक खुले इस सम्बन्धमें सरकारको खुद ही एक अच्छे बैंकरका काम करना पड़ता है। सरकार इसके योग्य नहीं ।

प्रधान बंकके खुलनेके लिए एक बड़े महत्वका कारण है। प्रत्येक देशके व्यापारके लिए कुछ नकद रुपये और नकद धनकी (नोट चैक आदि भी इसमें शामिल है) आवश्यकता होती है। पर यह आवश्यकता सदा एक सी नहीं रहती। कभी कम, कभी अधिक नकद धनकी ज़रूरत पड़ती है। व्यापार तीव्र होने पर अधिक नकद चाहिये, व्यापार शिथिल होने पर कम। कृषि प्रधान देशोंमें फसल कटने पर व्यापार तीव्र हो जाता है। ऐसे देशोंमें बहुधा छ छ महीनेमें अधिक नकद चाहिये। यदि आवश्यकतानुसार नकद धन घट बढ़ न सके तो उसका प्रभाव चीजोंके मूल्यपर अच्छा नहीं होता। स्वाभाविक कारणोंके अतिरिक्त रुपयेके कम अधिक होनेके इस अस्वाभाविक कारणसे मूल्योंमें खूब गड़बड़ मचती है।

जिन देशोंमें चैक प्रणाली प्रचलित है वहाँ यह कठिनाई दूर हो जाती है। थोड़ेसे नकद पर बंक अपने मूलधनको घटा बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार चैक रूपी रुपया आसानी से घट बढ़ सकता है। पर भारतमें यह प्रथा अधिक फैली हुई नहीं है।

दूसरा उपाय नोट रूपी रुपयेको घटाने बढ़ानेका है। पर भारतमें नोट इस रीतिसे निकाले जाते हैं कि व्यापारकी आवश्यकतासे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं होता। यदि बंकके हाथ नोट निकालना हो तो यह व्यापारकी आवश्यकतानुसार इस कार्यको कर सकता है।

हड़ताल



जब कभी किसी कारखाने के मज़दूर आपसमें सलाह कर अपनी मजदूरी की अवस्थामें कुछ सुधारके निमित्त अथवा और किसी कारणसे काम बन्द कर देते हैं उसीका नाम हड़ताल है। यह अपनी शर्तोंको मानने और अपनी प्रार्थनाओंको स्वीकार करनेके लिए स्वामीको विवश करनेका मजदूरोंका व्यवस्थित प्रयास है। यह पूंजी वाले अधिकारियोंके साथ युद्धमें मज़दूरोंका औद्योगिक शस्त्र है।

कुछ दिनोंसे यह हड़ताल रूपी शस्त्र (अर्थात् कामकी बन्दी) भारतवर्ष में राजनैतिक अभिप्रायसे भी प्रयोग किया जाने लगा है। सम्वत् १९७६ चैत्र शुक्ल ६ (सन् १९१९ की छठीं अप्रेल) की हड़ताल जो समस्त भारतवर्षमें महात्मा गांधीके आदेशसे मनाई गई थी इसी उद्देशसे की गई थी कि भारतीय जनताके रौलट एक्टके विरुद्ध भाव सरकार पर प्रगट हो जावें और सरकारको इस कानूनके रद्द करनेकी आवश्यकता और उपयोगिता विदित हो जावे। पुनश्च कार्तिक कृष्ण ६ (१७ नवम्बर) की हड़ताल—खिलाफत-दिवस—का लक्ष्य भी राजनैतिक ही था। यह हड़ताल राजकुमारके प्रस्तावित आगमनसे जनित भारतवासियोंके हृदयके दुःख और कोपको व्यञ्जित करनेके उद्देशसे की गई थी।

इस लेखमें मेरा अभिप्राय केवल उस हड़तालसे है जिसका सम्बन्ध औद्योगिक लाभधन्धोंसे है—अर्थात् मज़दूरोंकी हड़ताल। यही हड़तालका साधारण अर्थ भी है जो समस्त संसारमें मान्य है।

हड़तालके कारण

स्वामी और मजदूरोंके सम्बन्धसे उठने वाले प्रश्नोंकी भांति हड़तालके तात्कालिक कारण भी नाना प्रकारके होते हैं। हड़तालके सामान्य कारण बहुधा इन विषयोंसे सम्बन्ध रखते हैं—मजदूरोंके दाममें बढ़ती या घटती भावोंकी नवीन सुबोध प्रचार, कामके घंटोंमें कमी, स्वास्थ्यहित नियम। भारतवर्षमें इधर जितनी बड़ी २ हड़तालें हुई हैं, उदाहरणतः अहमदाबादके रुईके कलोंकी हड़ताल, कलकत्ताके जूटमिलोंकी हड़ताल इत्यादि, प्रायः वे सब मज़दूरोंके दर बढ़वानेके निमित्त ही की गई हैं।

इंगलिस्तानकी हड़तालोंका आधुनिक इतिहास भी अधिकतर, अनेक घंटोंमें कमी तथा मज़दूरोंके दाममें वृद्धिके निमित्त भिन्न भिन्न कारखानोंके मजदूरोंके आन्दोलनोंका प्रमाण-पत्र है। गत अक्टूबर मासकी रेलवे कर्मचारियोंकी हड़ताल जो इतनी भयानक अवस्थाको प्राप्त हो रही थी और जो केवल प्रधान सचिवके उदार और राजनीतिज्ञोचित भावसे ही रुक सकी थी केवल मजदूरीके दरमें उपस्थित कमीको रोकनेके निमित्त हुई थी।

कभी कभी मजदूरदल भी अपनी अवस्थाको सुदृढ़ बनाने, अथवा अपने पूर्व-अधिकारको स्थिर रखने अथवा मजदूरदलसे पृथक् मनुष्योंको या स्त्रियों और बालकोंको

मशहूरीके कारण जनताका विश्वास इन बंकोंमें बढ़ जायगा और इससे देशके व्यापार और उद्योग धंधोंको बहुत सहायता मिलेगी ।

इस समय देशी हुंडियों और बंकोंको कोई बंक स्वीकार नहीं करता । नए प्रधान बंक खुलने पर यह कमी भी समाप्त हो जायगा । यदि ऐसा हो जाय तो देशी व्यापारमें बहुत सहायता मिल जायगी ।

प्रधान बंकके स्थापनके विरुद्ध अनेक बातें कही जाती थीं जिनमें अधिकतर कारण जनता और सरकारकी भूलफहमी थी । उनमें बहुतसी बातोंका संतोषजनक उत्तर तो समय और अनुभवने दिया है । यह कहा जाता था कि प्रधान बंकके लिए कोई विशेष मांग और आवश्यकता नहीं है, प्रेजिडेन्सी और एक्सचेन्ज बंक उसके विरुद्ध होंगे, कार्य बहुत कम और बिलकुल नवीन होगा । जिन कठिनाइयोंको इस प्रकार हटाना चाहते हो उनके दूसरे उपाय भी मिल सकते हैं । प्रधान बंकके लिए किसी एक स्थानके छांटनेमें दूसरे स्थानोंमें विरोध होगा इत्यादि ।

युद्धके समय प्रेजिडेन्सी बंकोंको सरकारी कोष और कर्जेमें प्राप्त धन बिये बिना काम न चला । इससे बंकोंको बहुत लाभ हुआ, सरकार और व्यापारको भी । नोटोंके सम्बन्धमें जो फेरफार किये गये उनमेंसे कुछ, बहुत उपयोगी सिद्ध हुए, दिनों दिन प्रधान बंककी आवश्यकता स्पष्ट होती गई । इसलिए तीनों प्रेजिडेन्सी बंकोंने एक प्रधान बंक खोलनेका स्कीम सरकारके सामने पेश किया । बहुत दिन तो न मालूम उस पर क्या होता रहा पर कुछ मास व्यतीत हुए सरकारने उसकी ओर अपनी रुचि दिखाई और यह प्रश्न कौंसिलके सामने उपस्थित हुआ । यद्यपि इसका नाम इम्पीरियल या राष्ट्रीय बंक रक्खा गया है । इसमें भारत सरकारका उतना हाथ न रहेगा जितना फ्रान्स और जर्मनीमें है । इस बंकको यथार्थमें तीन प्रेजिडेन्सी बंकोंका मिलकर खोला हुआ एक प्रधान बंक कहना चाहिये । इस प्रकार खुलनेपर भी बहुतसे उपरोक्त लाभ प्राप्त होंगे, पर अधिक अच्छा होता यदि इसमें पाश्चात्य अनुभवके अनुकूल सरकारका अधिकार अधिक होता । इस विषयमें सब बातें तय नहीं हुई है । प्रधानकी कठिनाइयाँ क्या हैं, किन तत्वोंपर वह स्थापित होना चाहिये, उसका संगठन किस प्रकारका होना चाहिये, कहाँ तक यह नया राष्ट्रीय बंक इन सिद्धान्तोंके अनुकूल होगा । और कहाँ तक वह हमारी जातीय आवश्यकताओं और स्वार्थोंको पूरा करेगा कभी फिर दूसरे लेखमें लिखा जायगा ।

पिताम्बरदत्त पांडे



जनताको भी ज्ञान रहे और उसे सहानुभूति हो। जनताका यह कष्ट उस दशामें बिलकुल व्यर्थ दिखाई पड़ता है जब किसी छोटे नगण्य लोकोपयोगी व्यापारमें हड़ताल हो जाती है। यह सब कष्ट और असुविधा उसी दशामें क्षन्तव्य कहा जा सकता है जब हड़ताल मजदूरोंकी दशा सुधारनेमें सफल हो जिससे मनुष्य समाजके एक बड़े भागको अधिक सुख और आनन्दका अवसर मिले। यही कारण है जिससे हड़तालको लोग एक भयंकर शस्त्र मानते हैं जिसका प्रयोग अत्यन्त आवश्यकता पड़ने ही पर—इसे मजदूरोंके दशासुधारका अन्तिम साधन मानकर—करना चाहिए।

पर कुछ देशोंमें एक ऐसा दल भी है (संघवादियोंका दल) जिसके विचारमें हड़ताल मजदूरोंका वह शस्त्र है जिसका प्रयोग जब कभी सम्भव हो किया जाना चाहिए। संघवादीगण छोटी छोटी हड़तालोंको उस बड़ी सर्वव्यापक हड़तालके मार्गको ठीक करनेके लिए सफरमैना समझते हैं। इनका विचार यह है कि एक सर्वव्यापक हड़ताल से आधुनिक समाज-व्यवस्था को उलट दिया जावे, और पूंजीवालोंके अन्यायका अन्तकर मजदूरोंका राज्य स्थापित किया जावे। ये लोग समझते हैं कि मजदूरोंके राज्यमें प्रत्येक मनुष्यको संसारके उत्तम उत्तम पदार्थोंके भोग करनेका समान अवसर प्राप्त होगा और सब लोग सुखी रहेंगे। इस विचारके लोगोंकी संख्या फ्रांसको छोड़ कर अन्य देशोंमें बहुत थोड़ी है।

सफलता के साधन

हड़तालोंकी सफलताके लिए प्रथम आवश्यकता है मजदूरोंके संगठनकी। मजदूर समुदाय जितनाही अधिक सुसंगठित होगा उतनाही अधिक काल तक वह स्वामीके विरुद्ध ठहर सकेगा। यदि हम औद्योगिक झगड़ोंके इतिहासकी ओर दृष्टि करें तो हमें ज्ञात होगा कि असंगठित मजदूरोंकी हड़तालोंकी अपेक्षा मजदूर संघमें संगठित मजदूरोंकी हड़तालें कहीं अधिक सफल सिद्ध हुई है। साथही साथ मजदूर संघोंके इतिहाससे हमें यह भी विदित होगा कि इन संघोंमें संख्या और द्रव्य सम्बन्धी सुदृढ आधारकी कितनी बड़ी आवश्यकता है।

ज्यों ज्यों उद्योग धंधों में एकाग्रता की मात्रा बढ़ती जाती है और ज्यों ज्यों पूंजी वाले और मजदूरगण सुसंगठित होते जाते हैं त्यों त्यों हड़तालको सफल अथवा निष्फल बनाने में लोकमतके प्रभावकी महत्ता भी बढ़ती जाती है। आजकल किसी धंधेमें हड़ताल हो जानेका मतलब है मनुष्योंके एक बड़े समुदायका बेकार हो जाना तथा औद्योगिक जीवनमें बड़ी गड़बड़ी मच जाना, ऐसी दशामें जनता चुपचाप नहीं बैठी रह सकती। उसका ध्यान उस ओर बलात् आकर्षित हो जाता है। और चूंकि जनता ही सब पैदावारका अन्तिम लक्ष्य और समस्त मजदूरोंकी पूर्तिका एक मात्र अविरत हेतु है लोकमतके प्रभावका महत्व स्वाभाविकही है। यही कारण है कि पूंजी वाले और मजदूर-

नियुक्ति रोकनेके निमित्त हड़तालें करा दिया करते हैं। कभी कभी मैनेजर या मिस्त्रीके कोई कटुवचन ही अथवा स्वामीके स्नेहशून्य व्यवहार ही हड़तालोंके कारण बन जाते हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी एक कारखानेके मज़दूर अपने लिए हड़ताल नहीं करते वरन् अपने भाई दूसरे कारखानेके मज़दूरोंके हित जो अपने कष्ट मिटाने के लिए हड़तालें कर चुके हैं काम बन्द कर देते हैं। इस तरहकी हड़तालें जो दूसरे कारखानों या उद्योगधन्धोंके मज़दूरोंको उनके स्वामीके साथ युद्धमें सहायता देनेके लिए की जाती हैं **सहानुभूति अथवा सिद्धान्त विषयक** हड़तालें कह सकते हैं।

कभी कभी व्यापार विशेषपर किस मजदूर समुदायका स्वत्व है इस विषयपर भी हड़तालें हो जाया करती हैं। ये हड़तालें मजदूरोंके आपसमें स्वत्व निश्चय करनेके हेतु होती हैं। इनसे स्वामीका प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं है, पर उसको इन हड़तालोंसे जो असुविधायें अथवा क्षतियाँ होती हैं वे उठानी ही पड़ती हैं।

इन तात्कालिक कारणोंके अन्तर्गत एक व्यापक कारण है, अर्थात्—पूँजीपर सगठित आधुनिक समाजका अटल साथी—स्वामी और मजदूरका परस्पर विरोध। यदि हम ध्यानपूर्वक अधिक गहराई तक देखें तो हमें ज्ञात होगा कि सब औद्योगिक झगड़ोंका एक ही उद्देश है अर्थात् इस निःसहाय दशासे निकलने तथा लाभका अधिक अंश और उद्योगधधोंके प्रबन्धमें अधिक भाग पानेके लिए मजदूरोंका प्रयत्न। अबतक उद्योगधन्धोंका प्रबन्ध उनका प्रायः समस्त लाभ पूँजी वालों ही के हाथमें है और इसीसे वे इतने शक्तिशाली भी हैं।

हड़तालका समुचित प्रयोग

हड़ताल कोई साधारणशस्त्र नहीं है जिसका प्रयोग जब चाहें तब मनमाना कर लिया। यह ऐसा शस्त्र है जिसका प्रयोग बड़ी सावधानी व बुद्धिमत्तासे किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग उसकाल तक अनुचित है जब तक कि अन्य सब शस्त्रोंका प्रयोग निष्फल सिद्ध न हो जावे। हड़तालसे सबसे प्रथम मज़दूरों ही को कष्ट होता है। प्रतिदिन जबतक हड़ताल जारी रहती है हड़ताल करने वालोंकी मज़दूरीकी हानि होती है जिसकी पूर्ति फिर नहीं हो सकती। स्वामी तो झगड़ा निबटजानेकी प्रतीक्षा बहुत काल तक सुगमतासे कर सकता है, पर मज़दूरोंके लिए ऐसा करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उनका सञ्चित द्रव्य अल्प है मज़दूरोंका कुशल इसी बातमें है कि हड़ताल सफल हो और उनकी बातें मानली जावें। स्वामीको भी हड़तालसे अवश्य ही बहुत हानि होती है। उसके आयमें बहुत कमी हो जाती है। दिन रात उसे चिन्ता घेरे रहती है। उसका हित इस बातमें है कि अपने कामका प्रबन्ध इस प्रकार करे कि जहाँ तक सम्भव हो हड़तालोंका अवसर न दिया जाय और यदि दैववशात्, हड़तालोंका अवसर आही जाय तो

हड़तालोंसे केवल स्वामी या मज़दूरोंहीको

है। सब वस्तुओंकी खरीदार

है कि धन आवकी

अपने बन्धन निर्मोक्तके निमित्त प्रयत्नमें बड़ी सहायता दी है। अब मज़दूरोंके पक्षमें लोकमत बड़ी प्रबल हो गई है, और मज़दूर लोग इस सुअवसरसे उचित लाभ उठा रहे हैं।

मज़दूर सम्बन्धी समस्यायें दिन पर दिन अधिक तीव्र हो रही हैं। अब लोगों का ध्यान इस बात की जाँचमें लगा हुआ है कि सबलों का निर्बलोंपर तथा धनिकोंका निर्धनोंपर अत्याचार किस प्रकार रोका जावे, और समाजकी ऐसी व्यवस्था कर दी जावे कि जातिपाँतिके युद्धका अन्त हो जावे, ऊँचनीचके भेद भावका नाम न रहे और सर्वथा शान्ति और समृद्धिका सुराज्य रहे।

औद्योगिक शान्तिके साधन

पूर्वकथित उद्देशकी पूर्तिके लिए कोई साम्यवाद, कोई सामान्यवाद और कोई निराजकतावादका प्रस्ताव करते हैं। अब यह तो साधारण प्रतीति हुई जा रही है कि समाज की वर्तमान अवस्था बड़ी ही दोषपूर्ण और प्रायः असहनीय भी है, और इसमें परिवर्तन की अत्यावश्यकता है। कुछ लोग राज्यक्रान्ति और मौलिक परिवर्तनके पक्षपाती हैं। दूसरे लोग इतनी दूर तक नहीं बढ़ना चाहते वरन वर्तमान स्थिति ही की नींव पर समाजके जनहितोपयोगी व्यवस्थासे सन्तुष्ट हो जावेंगे। हम यहाँ कुछ उन साधनोंकी चर्चा करना चाहते हैं जिनका प्रस्ताव वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको स्थिर रखते हुए पूँजीवालों और मज़दूरोंके इस निरन्तर संग्रामके रोकनेके उद्देशसे किया जाता है।

ये साधन दो वर्गोंमें विभक्त किये जा सकते हैं।

(क) जिनका मुख्य विषय झगड़ेपर उनके समाधानसे है।

(ख) जिनका उद्देश विवादोंका निवारण करना है।

प्रथम वर्गमें निम्नलिखित साधनोंका उल्लेख किया जा सकता है।

(१) सन्धान कर्त्री परिषद्—ये परिषद सरकारी और गैर सरकारी दो प्रकारकी होती हैं। गैर सरकारी परिषदकी स्थापना स्वामी और मज़दूर दल मिलकर करते हैं। ऐसी परिषदोंका काम होता है स्वामी और मज़दूरोंमें किसी विषयपर मतभेद हो जाने पर उनका समाधान कराना। ये परिषद कभी कभी अपनी रिपोर्टें इस उद्देशसे प्रकाशित करती हैं कि विवाद शान्त करनेमें उन्हें लोकमतकी सहायता मिले।

(२) माध्यस्थ्य—यह भी सरकारी और गैर सरकारी दो प्रकारका हो सकता है। गैर सरकारी माध्यस्थ परिषद मालिकों और मज़दूरोंकी सम्मतिसे स्थापित होती है। इसकी सफलता सुसंगठित मज़दूर संघोंके अस्तित्व पर निर्भर है। कहीं कहीं सरकारी परिषद भी होती है जो अपने सामने उपस्थित किये गये प्रश्नोंका निर्णय करती है। पूर्वोल्लिखित सन्धान परिषदोंका मुख्य काम विवाद ग्रस्तोंका उपस्थित करना और उनका निर्णय माध्यस्थ्य का काम है।

गया दोनों दलोंके लोग लोकमतको अपने पक्षमें लानेके लिए बहुत द्रव्यका व्यय कर समाचारपत्रोंके सञ्चालनका भार अपने ऊपर लेते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हड़तालकी सफलताके लिए मुख्यतः दो बातोंकी आवश्यकता है-एक तो सुदृढ़ संगठन, दूसरी अपने पक्षकी सत्यता जिससे जनताकी सहज ही सहानुभूति हो।

हड़तालके लिए कौनसा अवसर चुना जाता है इस पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। जब व्यापार उन्नत अवस्था में और वृद्धिके मार्ग पर रहता है तब हड़तालोंके सफल होनेकी अधिक सम्भावना होती है क्योंकि उस समय मज़दूरी का दर बढ़ादेनेसे अथवा मज़दूरोंकी और बातें मानलेनेसे पूँजी वालोंकी उतनी हानि नहीं होती जितनी काम बन्द हो जानेसे। अब यह बात मज़दूरगणोंके नेताओंकी समझमें भली भाँति आगई है और वे अपने अनुगामियोंको यही उपदेश देते हैं कि हड़तालके लिए ऐसा अवसर ढूँढ़ना चाहिए जब पूँजी वाले सहजही उनकी बातें मानलें और जनताकी चित्तवृत्ति मज़दूरोंके साथ सहानुभूति दिखानेके अनुकूल हो।

हड़तालोंका सूक्ष्म इतिहास

पाश्चात्य देशोंमें बहुत दिनोंसे मज़दूर संघ इस बातका निरन्तर प्रयास कर रहे हैं कि स्वामी और मजदूरोंके बीच व्यक्तिगत क्रयविक्रयके स्थानपर सामुदायिक क्रयविक्रय नियमकी स्थापना की जावे। इन देशोंकी हड़तालोंका इतिहास मज़दूर संघोंके इन प्रयत्नोंके इतिहासका ही एक भाग है। यदि हम इंगलिस्तानके व्यापार परिषद्के प्रकाशित चिट्ठोंमें औद्योगिक झगड़ोंके सम्बन्धमें (जो बढ़कर हड़तालकी अवस्था तक पहुँच गए) झगड़ोंकी संख्या उनमें शरीक मज़दूरोंकी संख्या, झगड़ेके अवधिकालकी गणना इत्यादिकी समीक्षा करें तो हमें बहुतसी उपयोगी बातोंका पता लग जायगा। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम दश वर्षोंमें जब मज़दूर संघोंके संगठनका उन्नतिकाल था हड़तालोंकी संख्यामें तो कमी हुई पर हड़तालकारी मज़दूरोंकी संख्या घटनेकी अपेक्षा बढ़ती ही गई क्योंकि अब मज़दूरोंमें अधिक व्यवस्था थी। सं० १९५८ के टाफवेल् मुक़द्दमेके समयसे जिसमें यह निर्णय हुआ था कि मज़दूर संघों पर हड़तालोंसे स्वामीको जो क्षति होती है उसके लिए नालिश गवर्नमेंटकी हो सकती है हड़तालोंकी संख्या में बहुत कमी हो चली थी। पर इस निर्णयका असर बहुत कुछ सं० १९६३ में पास हुए व्यापार सम्बन्धी झगड़ोंके क़ानून (ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट) से जाता रहा।

इधर प्रायः सब देशोंमें कई वर्षोंसे सब पदार्थोंके मूल्योंमें वृद्धि हो जानेसे तथा [illegible] अनुसार [illegible] मिली हुई रकमके [illegible] मज़दूरों की माँगें बढ़ जानेसे अधिक वेतन तथा मज़दूरोंको [illegible] के लिए की जाती हुई हड़तालोंकी संख्यामें वृद्धि हो रही है। अब हड़तालोंमें [illegible] कहीं अधिक लोग शरीक होते हैं और वे हड़तालें अधिक काल तक चलती रहती हैं। [illegible] महायुद्ध ने मज़दूरोंको

पुस्तकावलोकन

[illegible] १९२६ [illegible] कलकत्ता । [illegible])

[illegible] हो गई है । [illegible] हो सकता है कि इस [illegible] बहुतसी बातें [illegible] परन्तु [illegible] इस विषयपर बहुतसी छोटी पुस्तकें हैं [illegible] सिद्धान्तोंके [illegible] विवेचन है परन्तु [illegible] अर्थशास्त्रका न जानने वाला भी इस पुस्तकको अच्छी तरह समझ सकता है । इतने पर भी यह दुर्बोध नहीं है । इसमें तीन भाग हैं जिनके अन्तर्गत [illegible] अध्याय हैं । प्रथम भागमें सम्पत्ति और उसके उपार्जन करनेके साधनोंका वर्णन है । जमीन, कृषि, खनिज एवं मेहनत पूंजी, संगठन आदि जो धनोत्पत्तिके साधन हैं इनका वर्णन करते हुए भारतवर्षमें इनकी क्या दशा है और वे कहां तक अपना काम करते हैं यह बताया गया है । इनमें क्या त्रुटियाँ हैं और उनके दूर करनेके क्या उपाय हैं इस बातपर भी विचार किया गया है । दूसरे भागमें यहांके उद्योग धन्धोंका विवरण है । भारतकी क्या अवस्था है उसमें कहां उन्नतिका अवसर है । यह बातें सब इस भागमें आ गई हैं । सरकारी अङ्कों और नक्शोंसे बड़ी उपयोगी बातें सहजमें मालूम हो जाती हैं । तीसरे भागमें विनिमय, व्यापारके मार्ग और सिक्कोंका वर्णन है । अर्थशास्त्र सम्बन्धी बहुतसी बातें विवाद-ग्रस्त हैं । स्वार्थ-दृष्टि भी असली बातको देखनेसे संकोच किया करती है । परन्तु इस पुस्तकमें लेखक महाशयने बड़ी निष्पक्षता दिखाई है । स्वदेश प्रेम ने उनकी दृष्टिपर परदा नहीं डाल दिया है । जो बातें आपने प्रतिपादित की हैं वे प्रायः सभी भारतीयोंको मान्य हैं । हमारे शासक चाहे इन्हें न मानें, परन्तु भारतीयोंमें इन बातोंपर विशेष मत विरोध नहीं है । जहां तहां प्रमाण दे कर मत समर्थन किया है । सरकारी विवरण और अङ्कोंका भी अच्छा प्रयोग किया गया है । एक विशेषता इसमें यह भी है कि भाषा बड़ी ही सरल, सुबोध और शुद्ध है । ज्ञातव्य विषयोंसे परिपूर्ण होते हुए भी रोचकतामें कहीं कमी नहीं हुई है । साधारण पाठकोंका भी मन इसके पढ़नेमें अवश्य लगेगा । लेखक

स्थानाभावसे इस लेखमें इन औद्योगिकशान्तिके साधनोंके गुण और लाभ इत्यादि का समुचित वर्णन नहीं हो सकता। अतएव उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है।

(ख) विवाद निवारणके प्रधान साधन निम्नलिखित हैं।

(१) लाभ विभाग—अर्थात् व्यापारके लाभका एक अंश मज़दूरोंको देना। इसका उद्देश है मज़दूरोंको उद्योगधन्धोंकी सफलताका पक्षपाती बनाना और स्वामी और मज़दूरोंके परस्पर भेदमें कमी करना।

(२) सम्भूय समुत्थान अथवा समांशिता।

यह अधिक संयोगका सूचक है।

(३) आरोहावरोहयुक्त वेतनपरम्परा—अर्थात् कारखानेके लाभके बढ़ती व घटतीके अनुसार मज़दूरीके दरमें बढ़ती व घटती।

(४) सहकारिता अथवा सहोयोग।

सच पूछिये तो यह विवाद निवारणका एक प्रधान साधन तो अवश्य है, पर इसका काम स्वामी और मज़दूरोंमें अच्छे व्यवहारका स्थापन करना नहीं वरन् पूँजी वाले स्वामीका निराकरण है।

(५) शिक्षा प्रचार—औद्योगिक शान्तिका एक प्रधान साधन शिक्षा-प्रचार भी है। मज़दूरोंको साक्षर बनाने तथा सुशिक्षा द्वारा अपने आश्रितोंके प्रति स्वामी चित्तवृत्तिमें सुधार करनेसे भी इस प्रश्नको हल करनेमें बड़ी सुविधा हो सकती है। रात्रि पाठशाला, पुस्तकालय तथा ऐसी ही अन्य मजदूर हितकारिणी संस्थाओंको स्थापित कर स्वामी, शान्ति-स्थापनके कार्यको अधिक सुगम बना सकता है।

सारांश यह कि जैसा हम ऊपर लिख चुके है हड़ताल किसी व्यापारके मज़दूरों और स्वामीके बीच एक प्रकारका संग्राम है जिससे बहुत सी उपयोगी शक्तिका व्यर्थ ह्रास होता है। इसका प्रयोग अवश्य कर्तव्यता ही के वश उचित कहा जा सकता है। प्रत्येक उपाय जिससे स्वामी और मज़दूरोंके परस्पर विरोधका निवारण अथवा उसमें न्यूनता हो सके सराहनीय है।

रामनाथ सेठ



सम्पादकीय

विनिमयका अन्धेर



यदि संसारमें कोई ऐसा देश है जहां अधिकारीवर्गको आर्थिक नीतिमें मनमाना काम करनेकी पूरी स्वच्छन्दता है तो वह अभागा भारतवर्ष ही है। उसका दुर्भाग्य यह है कि जिस नीतिका भी अवलम्बन किया जाता है वह हमारे ही हितके लिए बनाई जाती है। हम इतने सीधे तो नहीं हैं कि अपनी हानि और लाभको समझ ही न सकते हों परन्तु अधिकारियोंकी नीति बदल देनेकी शक्ति हमारे हाथमें नहीं है। उनकी नेक नीयती पर पूरा विश्वास रखनेसे ही यदि हमारा कल्याण होता तो बड़ी ही उत्तम बात होती, परन्तु दुर्भाग्यसे अधिकारियोंका स्वार्थ और प्रजा-हित अलग अलग है। यही सब झगड़ेकी जड़ है। प्रजा अपनी भलाई देखती है तो अधिकारियोंको अंगरेजी व्यापारकी रक्षा और उन्नतिका ध्यान रहता है। जहां तक इनमें परस्पर विरोध न हो अधिकारी देशहित साधनके लिए भले ही तय्यार हों परन्तु विरोध होते ही आंखें बदल जाती हैं। विनिमयकी गड़बड़ी और इस सम्बन्धमें सरकारकी धींगाधींगी की 'स्वार्थ'में कई बार चर्चा हो चुकी है। अभी तक यह प्रश्न हल नहीं होता। अर्थशास्त्रका यह एक सर्व-मान्य मूल सिद्धान्त है कि विनिमयमें हस्तक्षेप करना अनुचित है। जबतक कि कोई कारण विशेष उपस्थित न हो विनिमय को उसीके भरोसे छोड़ देना चाहिए। आर्थिक दशा उसे अपने आप ठीक पर ले आती है। परन्तु सरकारको यह पसंद नहीं। युद्धकालमें चांदीकी कमी हो गई थी। सोनेके हिसाबसे उसका मूल्य बढ़ गया। विनिमयकी दर इससे बढ़ गई। जितने रुपये देकर पहिले हम गिन्नीका भुगतान विलायतमें कर सकते थे उतने ही रुपयोंमें अधिक गिन्नियोंका भुगतान होने लगा। सोनेके आने जानेपर रोक टोक हो गई। देशमें रुपये की माँग बढ़ती गई और साथमें चाँदी बहुत मंहगी हो गई। अन्तमें करेन्सी कमेटीने इस प्रश्नकी जाँचकी और यह निश्चय कर दिया कि सावेरनका मूल्य १०) रक्खा जाय। साथ ही साथ कमेटीके आदेशानुसार भारत सरकारने विदेशी हुण्डियोंको खूब बेचना भी आरम्भ कर दिया जिससे विनिमय की दर घट जाय। देशी सज्जनोंने आपत्ति की तो कुछ सुनवाई नहीं हुई। विदेशी हुण्डियोंके बेचनेसे व्यापारमें गड़बड़ी हुई, लोगोंने सट्टा भी खूब किया और देशको ३३ करोड़ रुपयेकी हानि हुई। विलायतमें जो भारतका सुवर्ण कोष था वह सब अस्तव्यस्त हो गया। हमारा जो कुछ विलायत पर करोड़ोंका लेना चढ़ा था उसको इसी तरह उड़ा दिया गया। फिर भी विनिमय स्थिर न हो पाया। धीरे धीरे अंगरेजोंका व्यापार चेतने लगा। व्यापारका सतुलन जो हमारे पक्षमें था उसमें कमी होने लगी। विनिमय इसीसे गिर जाता, तिसपर भी विदेशी हुण्डीका बेचना जारी रक्खा गया। जब विनिमयकी दर ऊंची थी तो विदेशी माल मँगाने वालोंको बड़ा लाभ था, परन्तु धीरे धीरे यह लाभ घटने लगा। इससे अंगरेज व्यापारियोंको हानि की शंका होने लगी। अस्तु

महाशयके विस्तृत ज्ञान और अनेक ग्रन्थोंके अवलोकनका यह सुन्दर फल है। जो बातें कई पुस्तकोंको देखनेसे मिलती हैं वे यहाँ एकही जगह मौजूद हैं।

देशके सुविख्यात विद्वान प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार एम० ए०, पी० आर० एस०, आई० ई० एस० ने भूमिका लिखकर पुस्तकका गौरव और भी बढ़ा दिया है। इसकी प्रशंसा करते हुए आप लिखते हैं—"भारतकी किसी भी भाषामें ऐसा उत्कृष्ट और उपकारी ग्रन्थ अबतक नहीं छपा"। प्रोफ़ेसर साहबका उक्त मत इस पुस्तकके सम्बन्धमें पढ़ कर हमको बड़ा आनन्द होता है। क्योंकि वास्तवमें यह ऐसी ही स्तुति के पात्र है। सरकार महाशयके शब्दोंमें हम भी सहर्ष अनुरोध करते हैं कि इस ग्रंथको लोग पढ़ें और देश सम्बन्धी अज्ञानताको दूर करें। वे तो भारतीय अन्य भाषाओंमें इसका अनुवाद करनेकी सलाह भी देते हैं। अन्तमें हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि प्रो० राधाकृष्णजीको इस ग्रन्थ रचनाके लिए हृदयसे बधाई दें।

भाव-चित्रावली—*प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, १२६ हरिसनरोड, कलकत्ता। मूल्य ४)*

यह एक नई चीज है। ललितकलाके प्रेमी तो अवश्य ही इसे देख मुग्ध हो जायँगे। श्रीयुत धीरेन्द्रबाबू ने बंगालमें अच्छा नाम पैदा कर लिया है। आप अनेक भावोंको अपनी चेष्टा, हावभाव आदिसे प्रकट करनेमें बड़े निपुण हैं। तरह तरहके भावों और मानसिक विकारोंको दर्शाकर आपने चित्र खिचवाये हैं। उन्हींका यह संग्रह है। चित्र बड़े स्वाभाविक जान पड़ते हैं और पात्रकी कुशलताका परिचय देते हैं। यह मनोरंजनकी बड़ी ही अच्छी सामग्री है, और जो लोग नाटकोंमें पात्र बनते हैं उनके लिए शिक्षा भी इससे मिल सकती है। कुछ चित्र रंगीन भी हैं। परन्तु चित्र सूची न होना इसका बड़ा दोष है, जो अगले संस्करण में न रहना चाहिए। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने संक्षिप्त भूमिका भी लिखी है। चित्रावली बड़ी मनोहारिणी है, और शौकीन लोगोंके सग्रहकी वस्तु है।

सुशीला या स्वर्गदेवी—*लेखक पं० अविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल-बी०। प्रकाशक, साहः मदनमोहन, लक्ष्मण-साहित्य-भण्डार चौक लखनऊ। पृष्ठ संख्या ११४ मूल्य ॥)*

हिन्दीमें उपन्यासोंकी कमी नहीं है परन्तु ऐसे कितने हैं जो उत्तम ढंगसे लिखे गये हों, जिनमें मनुष्य का चरित्र दिखाया गया हो और साहित्यकी दृष्टिसे उनका कुछ मूल्य हो। मानना पड़ेगा कि उनकी गिनती उंगलियों पर ही हो जायगी। अच्छे उपन्यासके गुण प्रस्तुत पुस्तकमें प्रायः सभी मौजूद हैं। हिन्दू गृहिणियोंकी दुर्दशा का यह सजीव और स्वाभाविक चित्र है। चरित्रोंमें कोई बनावट जान नहीं पड़ती। इसका आधार हिन्दू समाजके सूक्ष्म अवलोकन और अनुभव पर है। उपन्यासमें रोचकता भी एक प्रधान गुण है, इसको पूरा निभाया है। पढ़ने लगा समाप्त किये बिना रह नहीं सकता। लेखक महाशय अपनी साहित्य प्रतिभाका अच्छा परिचय दे रहे हैं।

अधिवेशन उनमें नई जान फूँक देगा। किसानोंकी भलाई भी कम नहीं है। इन सब बातों पर विचार करनेसे यही नतीजा निकलता है कि देशके लिए एक बड़ी शक्ति उत्पन्न हो रही है। इस शक्तिका सदुपयोग तभी हो सकता है जब उनके नेता उनको ठीक मार्ग पर चलनेमें पूरी सहायता दें। नहीं तो इस शक्तिका दुरुपयोग विप्लवकारी और समाजके लिए भयानक हो जायगा। हमारी तो यही कामना है कि ऐसे अवसर आवे ही नहीं कि विलायतके श्रमजीवियोंकेसे दंगे यहाँ हुआ करें। हड़तालियोंको जैसे स्वयं अपने बलका अनुभव हुआ है क्या वैसाही उनके विरोधियोंको हुआ या नहीं। यदि उन्होंने इसकी शिक्षा ग्रहणकी होगी तो श्रमजीवी अवश्यही उनकी सहानुभूतिके अधिकारी बने रहेंगे।

प्रजावृद्धि

हिसाब लगानेसे मालूम हुआ है कि यदि दुष्काल, युद्ध, महामारी आदि न हों तो

सरकारने करोड़ोंका नुकसान देशका हो जानेपर जैसे तैसे विदेशी हुण्डियोंका बेचना बंद किया। अंगरेजी व्यापारी अब भी ज़ोर दे रहे हैं कि सरकार उनका बेचना फिरसे जारी कर दे। क्योंकि मालूम होता है कि हमारे कृषकोंको, निर्यात व्यापारको जो हानि पहुँच चुकी है उससे उनको सन्तोष नहीं हुआ है। यही लोग यह भी चाहते हैं कि सरकार सोनेको भी फिरसे बेचना शुरू कर दे। अब दशा यह है कि सरकार द्वारा निश्चित दर तो २ शिलिंग है परन्तु विनिमयका बाजार दर कुछ और ही है। युद्धके पहिले एक शिलिंग और ४ पेन्सकी दर थी। ख़ैर, तो यह दशा ठहर नहीं सकती। कारण ऊपर बता दिये गये हैं अब सरकारी दर तो दो शिलिंगकी ही कागजोंमें चली आती है, परन्तु बाजार दर १ शिलिंग और ७ या ८ पेन्सके लगभग है। इसका नतीजा यह हुआ है कि जिन लोगोंने विलायतसे माल मँगवानेको लिख दिया था उनको अब उसी चीज़के लिए दाम अधिक देने पड़ते हैं। ड्योढ़ेका अन्तर हो जाता है। बहुतसे व्यापारियोंने तो माल मंगाकर उसको लेनेसे इन्कार कर दिया। क्या करें जब चीज़के आते आते दाम इतना बढ़ गया और लेनेके देने पड़ गये।

दूसरी ओर देखिये और भी चिन्ताजनक दशा दिखाई देती है। व्यापारकी बाकी जो हमारे पक्षमें थी अर्थात् व्यापारका सतुलन हमारे पक्षमें था वह अब विपक्षमें हो गया है। युद्धकालमें जितना माल हम विलायतसे मँगाते थे उससे अधिकका विलायत को भेजते थे। परन्तु अब विलायती व्यापार चमक उठा है और विनिमयका यह हाल है तो जितनेका माल आता है उतनेसे कमका माल बाहर जाता है। बम्बई प्रान्तके अंकोंको देखनेसे मालूम हो जायगा कि कैसी भयङ्कर स्थिति हो रही है। पिछले वर्षके पहिले ६ महीने में ३२ करोड़के लगभगका माल आया और ६० करोड़से ऊपर का माल बाहर गया। इस वर्ष उन्हीं ६ महीनोंमें ६१ करोड़का आया और ४५ के लगभग बाहर गया। तो १४ करोड़ रुपयेकी बाकी हमारे नाम ६ महीने ही में निकल आई। इसतरह बारह महीने होने पर ३० करोड़ रुपयेका देना सिर पर चढ़ जायगा। यह दशा हो रही है। सरकारने जो विनिमयकी दर निश्चयकी थी यह तो चली नहीं। अब देखें आगे क्या होता है। जो उपाय मि० दलालने करेन्सी कमिटीके विवरणमें बताये थे उनको सरकार ने अस्वीकार किया। जानते तो सभी थे यह नतीजा होने वाला है। सरकार कुछ धोखे में थी ही नहीं और न हम थे। तमाशा तो यही है कि करता कोई है और उसका पाप दूसरोंके सिर है। क्या अबभी सरकार कुछ उचित उपाय करनेके लिए तय्यार है या वह वही पुरानी चाल चलना चाहती है?

श्रमजीवी प्रजा

यह समयका प्रभाव है कि मुट्ठीभर आदमियोंके हाथसे सत्ता धीरे धीरे जनसाधारणके हाथमें आ रही है। अन्य देशोंमें तो इसके लिए आन्दोलन बहुत कालसे सफलतापूर्वक होते आ रहे हैं और यहाँ भी अब प्रजा अपनी सत्ता पहिचानने लगी है।

विचार बदल कर १६० लाख मन गेहूँको करांची बन्दरसे बाहर जानेकी आज्ञा दे दी है। इस बातका लोगोंने विरोध भी किया परन्तु सरकारका कहना यह है कि ३८६ लाख मन गेहूँ देशमें आवश्यकतासे अधिक मौजूद है। हम समझते हैं कि सचमें इतना ज्यादा गेहूँ है तो फिर अन्न सस्ता हो जाना चाहिए। या तो सरकारका अनुमान ठीक नहीं है या अपने फायदेके लिए दाम बढ़ाकर बेचने वाले व्यापारियोंने अन्न रोक रक्खा है। यदि व्यापारियोंने माल रोक रक्खा है और महँगी के कारण उनकी यह चाल है तो भी सरकारको इसका उपाय शीघ्र ही करना चाहिए। अबकी फसल अच्छी नहीं है और इधर गेहूँ परसे निर्यातकी रोक ढीली हुई तो फिर महँगी और भी बढ़ जायगी। प्रजाका बहुत कुछ कष्ट निवारण हो सकता है, क्योंकि ये सब सरकारके ही हाथमें। जब अन्नकी कमी होगी तो पशुओंका तो पूछना ही क्या है। चारे बिना वे भी मरेंगे। पशुओंका प्रश्न बड़े महत्वका हो गया है। अभी तक इसकी ओर लोगोंका ध्यान अच्छी तरह आकर्षित नहीं हुआ था। यह ऐसी बात नहीं है जिसके लिए एक दिनका भी विलम्ब सहन किया जा सके। पशु वृद्धि और रक्षाके लिए जो उपाय हैं उनका तुरन्त अवलम्बन होना चाहिए। अच्छी नसलके पशु उत्पन्न करनेका उद्योग होना चाहिए और पशु चिकित्सालयकी कमी दूर होनी चाहिए। समय समय पर पशुओंके स्वास्थ्य आदिकी परीक्षा करनी भी आवश्यक है, और साथ ही दूध, मक्खनके कारखानोंका निरीक्षण भी होना चाहिए। पशुओंकी गणना ठीक ठीक हो जाय जिससे उनकी वृद्धि आदिका पता चल सके। गुजरातमें गोरक्षिणी सभाएँ भी बननी चाहिए। इन्हीं सब बातोंकी प्रार्थना गवर्नमेन्टसे भी बम्बईके बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जनोंने की है। सरकार चाहे तो दूध देने वाले जानवरोंका मारा जाना, बाहर भेजना आदि बहुत कुछ रोक सकती है।

जर्मनीकी व्यापार वृद्धि

कुछ लोगोंका यह विश्वास है कि जर्मनीकी आर्थिक दशा ऐसी बिगड़ गई है कि उसको युद्धकालके पूर्वकी उन्नति कर लेना बहुत वर्षोंके लिए असम्भव हो गया है। परन्तु यह विश्वास ठीक नहीं है। जर्मनीने सन्धिकी शर्तोंका पालन करते हुए अपनी आर्थिक दशा और उत्पादक शक्तिमें आश्चर्यजनक उन्नति दिखाई है। विलायतमें जर्मनीका बना रंग आया है। विलायतवाले रंग बनानेका स्वयं पूर्ण उद्योग कर रहे हैं जिससे जर्मनीसे उन्हें न मँगाना पड़े। पर जो रंग जर्मनीने भेजा है वह विलायती रंगसे [illegible] माना गया है। इसके अतिरिक्त गत ६ महीनोंमें जर्मनीने विलायतको १ करोड़ ७० लाख पौंडका माल भेजा है। अंगरेज व्यापारी इससे घबरा रहे हैं। जर्मनीके रंगपर तो वे रोक टोक लगावेंगे। अपने व्यापारकी रक्षाके लिए आयात पर कर लगानेमें कोई बात नहीं मगर भारतवर्षके लिए यही नीति वे ठीक नहीं समझते।



साधारणत: एक देशकी प्रजा २० वर्षमें संख्यामें दो गुनी हो जाती है । कुछ अर्थ-शास्त्रियोंको यह भय है कि इस संख्या वृद्धिसे एक दिन ऐसा आजायगा जब सबको पेटभर भोजन मिलना असंभव हो जायगा। ख़ैर अभी तक तो अन्नकी उपज जनताकी वृद्धिसे अधिक बढ़ रही है । भारत जैसे अभागे देशकी बातको तो जाने दीजिये कि जो औरोंका पोषण अपने अन्नसे करे और स्वयं भूखा मरे । सब देशोंकी दशा एक सी नहीं होती । कहीं मनुष्य संख्या बढ़नेसे देशका आर्थिक लाभ होता है जैसा कि यूरोपमें है । वहाँ युद्धमें इतने आदमी मारे गये हैं कि मनुष्य वृद्धिकी फिक्र पड़ रही है । फ्रान्सको लीजिए । एक साहब-का कहना है कि यदि शीघ्र जनता वृद्धिके उपाय नहीं किये जायँगे तो फ़रासीसी लोग अगले २० वर्षमें नाशको प्राप्त हो जायँगे । इस समय फ्रान्समें २० लाख अविवाहित स्त्रियाँ हैं जो वयमें विवाहके योग्य हैं । समस्त यूरोपमें पुरुषोंकी अपेक्षा १ करोड़ ५० लाख स्त्रियाँ अधिक हैं । डाक्तर कार्नोका मत है कि यूरोपकी भी दशा अच्छी नहीं है परन्तु फ्रान्सका तो नाश ही हो जायगा । प्रजा-वृद्धिके लिए उन्होंने उपाय बताए हैं । यदि स्त्रियोंको अन्य देशोंके पुरुषोंसे विवाह करनेको कहा जाता है तो भी जनसंख्या कम हो जायगी और यदि एक फरासीसी पुरुषको एकसे अधिक स्त्रीसे विवाह करनेकी आज्ञा दे दी जाती है तो वह भरण पोषणका भार ही नहीं उठा सकेगा । आजकल एकही स्त्रीका होना भाररूप हो रहा है । तो फिर यही उपाय उनकी समझमें आता है कि विवाहकी प्रथाको ही उठा दिया जाय । और फिर जो स्त्रियें माता हों उनको राज्यकी ओरसे सहायता दी जाय । अर्थात् स्त्रियोंको बच्चे उत्पन्न करनेपर सरकारसे कुछ इनाम इत्यादि मिला करे । और तीसरे यह कि परिवार स्त्री या माताके अधीन हो न कि पुरुषोंके । यह तो हम मानते हैं कि फ्रान्सको अधिक मनुष्योंकी आवश्यकता है परन्तु जो उपाय बताये गये हैं वे पश्चिमी लोगोंके ही योग्य हैं । हमारे देशमें जनता वृद्धिसे लाभ नहीं है । महात्मा गांधीका भी आदेश है कि भारतवासी स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य पालन करें और सन्तानोत्पत्तिमें विवेकसे काम लें । जिस देशमें करोड़ों मनुष्योंको अन्न वस्त्रका कष्ट हो वहाँ प्रजावृद्धिसे तब तक कोई लाभ ही नहीं हो सकता जब तक कि आर्थिक अवस्थाका सुधार न हो जाय । अन्य देशोंके मनुष्य शारीरिक बल और कार्य कौशल और मेहनतमें भारतवासियोंसे बढ़कर हैं । इसके कारण कुछ भी हों परन्तु बात सही है । निर्बल, बलहीन बहु सन्ततिसे थोड़ी पर बलवान और पुष्ट सन्तान देशके लिए विशेष हितकारी है ।

अन्न और पशुओंकी कमी

इस वर्ष महँगीके साथ साथ बड़ी बड़ी [illegible] भी भय लगा हुआ है । [illegible] नहीं है । कृषि भारतमें तो अच्छी हुई पर बादमें [illegible] बिलकुल [illegible] हो गए । यहाँ तो महँगी ही [illegible] है अब इससे बढ़कर जब [illegible] तो न [illegible] क्या दशा होगी । एक ही उपाय इसके लिए हो सकता है कि [illegible] अन्न भेजना बन्द रक्खा जाय । [illegible] बन्द कर दिया था परन्तु फिर कुछ

विचार वश तब १६० लाख मन गेहूँको करांची बन्दरसे बाहर जानेकी आज्ञा दे दी है। इस बातका लोगोंने विरोध भी किया परन्तु सरकारका कहना यह है कि १८८६ लाख मन गेहूँ देशमें आवश्यकतासे अधिक मौजूद है। हम समझते हैं कि यदि देशमें इतना ज्यादा गेहूँ है तो फिर अन्न सस्ता हो जाना चाहिए। या तो सरकारका अनुमान ठीक नहीं है या अपने फायदेके लिए दाम बढ़ाकर बेचने वाले व्यापारियोंने अन्न रोक रक्खा है। यदि व्यापारियोंने माल रोक रक्खा है और महँगी के कारण उनकी यह चाल है तो भी सरकारको इसका उपाय शीघ्र ही करना चाहिए। अगली फसल अच्छी नहीं है और इधर गेहूँ परसे निर्यातकी रोक ढीली हुई तो फिर महँगी और भी बढ़ जायगी। प्रजाका बहुत कुछ कष्ट निवारण हो सकता है, क्योंकि है सब सरकारके ही हाथमें। जब अन्नकी कमी होगी तो पशुओंका तो पूछना ही क्या है। चारे बिना वे भी मरेंगे। पशुओंका प्रश्न बड़े महत्वका हो गया है। अभी तक इसकी ओर लोगोंका ध्यान अच्छी तरह आकर्षित नहीं हुआ था। यह ऐसी बात नहीं है जिसके लिए एक दिनका भी विलम्ब सहन किया जा सके। पशु वृद्धि और रक्षाके लिए जो उपाय हैं उनका तुरन्त अवलम्बन होना चाहिए। अच्छी नसलके पशु उत्पन्न करनेका उद्योग होना चाहिए और पशु चिकित्सालयकी कमी दूर होनी चाहिए। समय समयपर पशुओंके स्वास्थ्य आदिकी परीक्षा करनी भी आवश्यक है, और साथ ही दूध, मक्खनके कारखानोंका निरीक्षण भी होना चाहिए। पशुओंकी गणना ठीक ठीक हो जाय जिससे उनकी वृद्धि आदिका पता चल सके। सुप्रबन्धमें गोरक्षिणी सभाएँ भी बननी चाहिए। इन्हीं सब बातोंकी प्रार्थना वाइसरायसे भी बम्बईके बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जनोंने की है। सरकार चाहे तो दूध देने वाले जानवरोंका मारा जाना, बाहर भेजना आदि बहुत कुछ रोक सकती है।

जर्मनीकी व्यापार वृद्धि

कुछ लोगोंका यह विश्वास है कि जर्मनीकी आर्थिक दशा ऐसी बिगड़ गई है कि उसको युद्धकालके पूर्वकी उन्नति कर लेना बहुत वर्षोंके लिए असम्भव हो गया है। परन्तु यह विश्वास ठीक नहीं है। जर्मनीने सन्धिकी शर्तोंका पालन करते हुए अपनी आर्थिक दशा और उत्पादक शक्तिमें आश्चर्यजनक उन्नति दिखाई है। विलायतमें जर्मनीका बना रंग आया है। विलायत वाले रंग बनानेका स्वयं पूर्ण उद्योग कर रहे हैं जिससे जर्मनीसे उन्हें न मँगाना पड़े। पर जो रंग जर्मनीने भेजा है वह विलायती रंगसे रुपयेमें चार आना सस्ता है। इसके अतिरिक्त गत ६ महीनोंमें जर्मनीने विलायतको १ करोड़ ३० लाख पौंडका माल भेजा है। अंग्रेज व्यापारी इससे घबड़ा रहे हैं। जर्मनीके रंगपर वे रोक टोक लगावेंगे। अपने व्यापारकी रक्षाके लिए आयात पर कर लगावें कोई बात नहीं मगर भारतवर्षके लिए ऐसी नीति हम ठीक नहीं समझते।



ज्ञातव्यविषय तथा अंक

भारतवर्षकी निर्धनता



न्य देशोंकी अपेक्षा भारतवर्ष कितना कम धनी है इसके जाननेके लिए प्रति मनुष्य पीछे वार्षिक आय भिन्न भिन्न देशोंकी मिलानी चाहिए। वार्षिक आयको सुरमान एक मनुष्य पीछे कितनी सम्पत्ति होती है यह भी मालूम हो सकता है।

देश	व्यक्ति पीछे वार्षिक आय		व्यक्ति पीछे सम्पत्ति	
इङ्गलिस्तान	३३.७	पौंड	३०२	पौंड
फ्रान्स	२७.८	,,	२६२	,,
डेन्मार्क	३२.५	,,	३३०	,,
अमरीका (संयुक्तराज्य)	३९.०	,,	२३४	,,
आस्ट्रेलिया	४०.२	,,	२५६	,,
रूस	११.५	,,	६१	,,
भारतवर्ष	२.०	,,	१०	,,

इसका अर्थ यह नहीं है कि इन देशोंमें किसीकी आमदनी या सम्पत्ति इससे कम नहीं है। पौंडका मूल्य अस्थिर होनेसे रुपयोंमें हिसाब नहीं दिया गया है। हमारे देशका स्थान कहां है? सबसे नीचे।

ब्रिटिश साम्राज्य

ब्रिटिश साम्राज्यका क्षेत्रफल युद्धसे पहिले देश प्रदेश मिलाकर १३,१५३,७१२ वर्गमील था। विजयी होने पर उसमें और भी वृद्धि हो गई है। जो नये प्रदेश *मिले हैं उनका ब्योरा इस प्रकार है—*

प्रदेश	क्षेत्रफल		जन संख्या
पेलिस्टाइन	७,७६०	वर्ग मील	६८१,६००
मेसोपोटामिया	१४३,२५०	,,	२,०००,०००
अरब	१०७,३८०	,,	१,०६०,०००
फारिस	६२८,०००	,,	९,५००,०००
मिश्र	३५०,०००	,,	१२,४६९,०००
जर्मनीके प्रदेश उपनिवेश और आधीन प्रदेश	१,०२१,६२०	,,	११,८६७,०९२
	२,२६४,०४०	,,	३७,५६७,२६९

(भारतबन्धु)



'माला' में अन्य और जो महत्त्वके ग्रन्थ छप रहे हैं।

६—जापानकी राजनीतिक प्रगति (सचित्र)।
७—राष्ट्रीय आयव्यय।
८—भौतिक विज्ञान।
९—पश्चिमीय यूरोप (सचित्र)।
१०—वैज्ञानिक अद्वैतवाद।
११—अर्थशास्त्रका उपक्रम।
१२—विलुप्त पूर्वीय सभ्यता।
१३—रसायन शास्त्र।

सौर रोज़नामचा सं० १६७८

यह जेबी रोज़नामचा है। इसमें साधारण ज़रूरी बातोंके सिवा पंचांग, हिन्दीका चार, राष्ट्रीय संस्थाएँ, सामयिक हिन्दी पत्रोंकी सूची, महापुरुषोंकी जयन्तियाँ, दैनिक लेख, नीतिके उत्तम उत्तम दोहे आदि कई नयी नयी बातें दी गयी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

सौर पंचांग सं० १६७८

यह बड़े बड़े सुन्दर अक्षरोंमें छापा गया है। भीतपर लटकाने लायक है। इसके ऊपरी भाग और पीठपर बड़े पंचांगकी सारी बातें घण्टों तथा मिनिटोंमें दी हैं। इसको प्रायः सभी लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, यह ज्योतिषियोंके भी मतलबका है। इसमें दैनिक लग्नसारिणी भी दी गयी है। मोटे सफेद कागजपर छपा है। मूल्य ।=) छः आने।

प्रचारित पुस्तकें।

स्वर्गवासी प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए० (इलाहाबाद), एम० एस-सी० (-विक्टोरिया), एफ० सी० एस० (लन्दन), ने किस परिश्रम, उद्योग तथा भावसे नीचेकी पुस्तकें लिखी थीं यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं है। उन्होंने अपने लघु किन्तु, परम उपयोगी जीवनका बहुत समय इन पुस्तकोंकी रचना तथा प्रचारमें ही लगा दिया था। उनसे लाभ उठाना या न उठाना, हमारे हाथमें है।

१—हिन्दी कैमिस्ट्री—मिट्टीसे धन पैदा करनेकी रीति। देशी भाषा जाननेवालोंके लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १४०। मूल्य १) एक रुपया।

२—सरल रसायन—रसायनशालाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका परिचय पृष्ठसंख्या १२०, मूल्य १) एक रुपया।

३—रोशनाई बनानेकी पुस्तक। मूल्य ॥) आठ आना।

४—सुगन्धित साबुन बनानेकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

५—तेलकी पुस्तक। मूल्य १) एक रुपया।

६—वार्निश और पेण्ट। मूल्य १) एक रुपया।

७—जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष—कारीगरोंके लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। भिन्न भिन्न व्यापारिक उपयोग, व्यापारके लिए माल कैसे तयार करना चाहिए, बातें मालूम होती हैं। संग्रहकर्ता बा० ठाकुरप्रसाद खत्री। पृष्ठसंख्या ३२६ मूल्य ५) पाँच रुपया

८—देशी करघा—इसमें करघा चलानेके सिद्धान्त, आवश्यकताएँ तथा अन्य बहुत सी ज़रूरी बातोंका वर्णन है। पृष्ठसंख्या ११०, मूल्य ॥) आना।

९—चीनकी कल (सचित्र)—पृष्ठसंख्या ८६ मूल्य ॥) आना।

१०—भारीभ्रम—यूरोपीय महायुद्धके वास्तविक रहस्यका इससे पता लगता है। पुस्तक बड़े मारकेकी है। अनुवादक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध लेखक अध्यापक रामदासजी गौड़ एम. ए. हैं। मूल्य १॥)

११—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान अंगरेजीमें। मूल्य ।=) आना।

१२—स्वराज्यके सरकारी मसविदेपर श्रीमान् माननीय मालवीयजीकी समालोचना अंगरेजीमें। मूल्य =) आना।

१३—लोकमान्य तिलकके स्वराज्यपर २० व्याख्यान और उनपर मुकदमा हिन्दीमें। पृ० सं० ३०२, मू० १) रु०

१४—मानस मुक्तावली—श्रीयुत मुकुन्दलालजी कृत मूल्य ।=)

१५—भूमण्डलके प्राणी—श्रीयुत राधाचरणसाह द्वारा सम्पादित। पृ स. ७८, ॥)

१६—रंगकी पुस्तक। मूल्य १) रुपया।

१७—डाक्टर सर जगदीशचन्द्र वसु तथा उनके आविष्कार। मूल्य छ ।=)

१८—राष्ट्रपति विलसन तथा संसारकी स्वाधीनता। मू० ॥)

१९—दिव्य जीवन। मूल्य ॥-) आने।

२०—इकतीसवीं इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी रिपोर्ट। हिन्दी। मू० २) रु

सूचनाः—डाकव्यय मूल्यके अतिरिक्त।

मिलनेका पताः—

सञ्चालक, ज्ञानमण्डल, काशी।

स्वार्थका सिंहावलोकन

एवं

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

मान्य महोदय,

इस अंकके साथ 'स्वार्थ' का प्रथम वर्ष समाप्त होता है। पिछले तीन अंकोंके निकलनेमें बड़ा विलम्ब हुआ इससे हमें जितना दुःख है उसका अनुमान स्वार्थके प्रेमी पाठक स्वयं कर सकते हैं। विलम्बके कारण अनेक हैं जिन्हें हम न रोक सके और अन्तिम अंकके निकलनेमें प्रायः चार मासका विलम्ब हो गया। यह समझकर कि पाठक अनुचित विलम्ब होनेके कारण कहीं यह न समझ बैठें कि पिछले अंक आवेंगे ही नहीं, इसके पहिलेही यह सूचना निकाली थी कि जो सज्जन अपना मूल्य वापस चाहें उन्हें वापस किया जाय। किन्तु हर्षकी बात है कि इतना विलम्ब होनेपर भी स्वार्थके किसी ग्राहकने इस पत्रसे अपना प्रेम नहीं घटाया। किन्तु विलम्बसे दुःखी होते हुए भी इसकी राह देखते रहे।

इस घटनाने हमारे उत्साहके बढ़ानेमें बड़ी सहायता की है और हमारा विश्वास है कि 'स्वार्थ' ने जो काम आरम्भ किया है उसे हिन्दीके प्रेमी तथा विद्वानोंने पसन्द किया है।

हिन्दी संसारमें शुद्ध रूपसे किसी विशेष शास्त्र सम्बन्धीके पत्र जिसमें उसी विषयोंके लेख रहते हों निकलनेकी कमी रही है। अर्थशास्त्र जैसे आवश्यक विषयका स्वार्थ भी ऐसे ही पत्रोंमें गिने जानेके उद्देश्यसे निकाला गया। अपने प्रिय पाठकोंको यह सूचना देते हुए हमें प्रसन्नता एवं और गौरव है कि हमारी अनेक त्रुटियों और भूलोंके रहते भी हिन्दी पाठकोंने एवं गम्भीर विद्वानोंने इसका समुचित समादर किया और हमें अपने इस कठिन कार्यमें पूर्णतया प्रोत्साहन दिया जिसके लिए हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। हम जानते हैं कि अपनी त्रुटियोंको सुधारकर और पत्रको अधिकाधिक उन्नत करकेही हम सचमुच उनकी पसन्द और प्रशंसाके पात्र हो सकते हैं।

इस पत्रकी छपाईमें कागजमें, इसके लेखकोंको पुरस्कृत करनेमें एवं इसे व्यावसायिक दृष्टिसे नहीं, बल्कि शास्त्रीय दृष्टिसे निकालनेमें हमें जो घाटा पड़ रहा है, उसकी चर्चा हम अपने अनुग्राहक ग्राहकोंसे नहीं करना चाहते। हम केवल यही चाहते हैं कि हमारा अर्थशास्त्र विषयक हिन्दीका पत्र किसी वैदेशिक पत्रसे अन्तरंग मूल्यमें कम न समझा जाय, और उसका बहिरंग भी घटिया न ठहरे।

नये वर्षमें हम इस बातका उद्योग करेंगे कि इसके लेख और उपयोगी और गम्भीर हों कागज भी हम नये वर्षसे बहुत अच्छा लगायेंगे। इन कारणोंसे हम आपकी आज्ञा चाहते हैं कि हम इसका मूल्य बढ़ाकर ४) की जगह ६) रुपये कर दें। जो ग्राहक इसे

स्वीकार करें, कृपाकर जो पोस्टकार्ड इसके साथ जाता है उसपर हस्ताक्षर करके हमारे पास लौटा दें। जो सज्जन अगले वर्षके ग्राहक किसी कारणसे न रहना पसन्द करें वे भी उसी कार्डके द्वारा हमें सूचना दे दें जिसमें हम उनकी सेवामें अंक न भेजें।

हमें अपने अनुग्राहक ग्राहकोंसे यह भी निवेदन करना है कि यदि वह "स्वार्थ"की ग्राहक संख्या बढ़ानेका उद्योग करेंगे और भविष्यमें हमें घाटेसे बचावेंगे तो हम केवल हृदयसे उनके कृतज्ञ ही न होंगे, वरन् अवश्य इस पत्रको और भी समुन्नत कर सकेंगे।

नये वर्षमें हम इसका यत्न करेंगे कि जो अंक हमारे पिछड़ गये हैं उन्हें पूरा कर दें।

व्यवस्थापक

ओम् वन्देमातरम्

स्वार्थ

वर्ष १ खण्ड २ | आश्विन १९७७ | अङ्क ६ पूर्णाङ्क १२

घरेलू धन्धे।


रेलू धन्धोंसे उन कारबारोंसे अभिप्राय है जिनको लोग अपने घरमें ही कर सकते हैं। ऐसे धन्धे तो अनेक हैं जो घरमें किये जा सकते हैं किन्तु इस लेखमें केवल उन्हींपर विचार किया जायगा जिनको हमारे किसान लोग अपने साधारण खेतीके काममे बचे खुचे समयमें कर सकते हैं। यह प्रसिद्ध है कि किसानोंको इतना समय अवश्य बचता है कि उसका सदुपयोग करनेसे वे अपनी आमदनी बढा सकते हैं।

अनेक घरेलू धन्धोंमें नीचे लिखे ऐसे हैं जो इस प्रदेशके लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं:—

(१) मुर्गी आदि चिड़ियोंको पालना, (२) मधुमक्खियोंको पालना, (३) लाखका व्यवसाय (४), अण्डी रेशम निकालना (५) सूत कातना।

ये सब थोड़ी पूँजीसे हो सकते हैं और किसानोंको इनके करनेमें मजूरीका भी व्यय न होगा।

किन्तु इनमेंसे कुछ जैसे मुर्गी पालनेका काम केवल चमार, दुसाध, भर या मुसलमानोंको छोड़ और जातिवाले न करेंगे। इस समय भी ये लोग यह काम करते हैं किन्तु ये न तो इसको ठीक प्रकारसे करते और न सब लोग करते ही हैं। छोटी जातिवाले अगर दसबीस मुर्गियाँ ही रखलें तो उनको बहुतसे अण्डे मिला करेंगे। हमने देखा है कि शायद ही कभी ऐसा होता है कि एक मुर्गी साल भरमें ६० या ५० अण्डा दे, नहीं तो अच्छी देख रेख रखनेसे एक मुर्गी सालमें कमसे कम १५० अण्डे देती है। मामूली जो लोग मुर्गी रख सकते हैं वे भी इस कामको नहीं करते। अगर उनको इस कामको करनेकी उत्तेजना दी जाय तो हमारे देशके अधिक लोगोंकि भोजनकी मात्रा बढ़ सकेगी।

स्वीकार करें, कृपाकर जो पोस्टकार्ड इसके साथ जाता है उसपर हस्ताक्षर करके हमारे पास लौटा दें। जो सज्जन अपने आपको ग्राहक किसी कारणसे न रखना पसन्द करें वे भी उसी कार्डके द्वारा हमें सूचना दे दें जिससे हम उनकी सेवामें अङ्क न भेजें।

हमें अपने अनुग्राहक ग्राहकोंसे यह भी निवेदन करना है कि यदि वह "स्वार्थ"की ग्राहक संख्या बढ़ानेका उद्योग करेंगे और भविष्यमें हमें घाटेसे बचावेंगे तो हम केवल हृदयसे उनके कृतज्ञ ही न होंगे, वरन् अवश्य इस पत्रको और भी समुन्नत कर सकेंगे।

नये वर्षमें हम इसका यत्न करेंगे कि जो अङ्क हमारे पिछड़ गये हैं उन्हें पूरा कर दें।

व्यवस्थापक

जायगा।

इन प्रयोगशालाओंके लिए इनके कुछ सीखे हुए आदमियोंकी आवश्यकता होगी जो इन कामोंको सिखा भी सकें।

मैं जानता हूँ कि पूसामें (जिला दरभंगामें बड़ी गण्डकके किनारेपर जहाँ खेतीका बहुत बड़ा और प्रसिद्ध कालेज है) ये धन्धे थोड़े दिनोंमें सिखाये जाते हैं। हम लोगोंको चाहिए कि गाँवके उत्साही तथा पढ़े लिखे लोगोंको छात्रवृत्तिदेकर सीखनेके लिए वहाँ भेजें। वहाँ छः मास तक पढ़ना होगा जिसमें १२५) से १५०) तक व्यय होगा। फीस, पुस्तकका व्यय नहीं लगता और अंगरेजीका ज्ञान भी आवश्यक नहीं है। पूसामें उन धन्धोंको पूर्णतया करके दिखाया जाता है। अतएव जैसे मनुष्योंका ऊपर उल्लेख किया गया है वे उपयुक्त होंगे। यह उचित होगा कि पूसा जानेवाले लोगोंसे यह शर्त न कराई जाय कि उनको लौटनेपर हमारे ही काममें लगना होगा या हमारी ही ओर से उन धन्धोंको सिखाना पड़ेगा।

इतना तो सीखनेके सम्बन्धमें हुआ। किन्तु इतनाही प्रचार और विकासके लिए पर्याप्त न होगा। इतनेसे तो केवल चीजोंका बनना ठीक हो जायगा, परन्तु जबतक गाँव वाले इनकी खपतका भी पूरा प्रबन्ध न कर पावेंगे यह सब व्यर्थ ही होगा। अभिप्राय यह है कि इस कार्यकी सफलताके लिए मालके बराबर खपतका भी पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। इसके लिए ऐसी सोसाइटियाँ स्थापित होनी चाहिए जो इन धन्धेवालोंसे सूत, कपड़ा, शहद रेशम तथा लाह खरीद लिया करें और साथही साथ उन धन्धोंके लिए जरूरी सामग्रियोंका पता लगा कर इकट्ठा करें और बेचें। जैसे कातनेके कामके लिए इन सोसाइटियोंका कर्तव्य होगा कि जहाँ रुई नहीं होती वहाँ रुई पहुँचावें, सूत कत जानेपर स्थानीय जुलाहों से उसको बुनवानेका प्रबन्ध करें और तब स्वय बेचें और बिक जानेपर दूसरे स्थानपर भेजदें।

इन सोसाइटियोंको यह भी चाहिए कि धन्धेवालोंको जिस प्रकारके सूतकी आवश्यकता हो बताया करें और उसके लिए आवश्यक यत्र या साधनोंको दिया करें।

गाँवकी खपतसे बचे हुए कपड़े शहरोंमें खप सकते हैं अथवा दूसरे स्थानोंमें भी भेजे जा सकते हैं।

कातना भी ऐसा काम है जो किसानोंके लिए बहुत उपयोगी है और इसमें विशेष कुशलताकी भी आवश्यकता नहीं है। इसकी मशीनें भी बहुत साधारण होती हैं और गांवके ही बढ़ई बना सकते हैं। यह भी बड़ा भारी सुभीता है कि उस कामको जब और जहाँ चाहे रोक दीजिए और फिर जब चाहे चलाने लगिए। इसके अतिरिक्त यह ऐसा काम है कि सभी जातिके लोग यहाँ तक कि औरतें और बच्चे भी कर सकते हैं। इससे बढ़ कर सुविधा किसानोंके लिए और क्या होगी?

प्राचीन कालमें कातनेका काम प्रायः सभी घरोंमें होता था और अब तक कितने लोगोंको वह दिन याद है जब हरएक घरमें माताएँ अपने बच्चोंके लिए कपड़ा बुन लिया करती थीं। बुननेका काम विदेशी उपरा चढ़ी और जनताकी पसन्दके बदलनेके कारण ही उठ गया। किन्तु गत कई वर्षोंसे विदेशी वस्तुओंकी बढ़ती और अवस्था भेदसे आशा की जाती है कि यह कारबार फिर भी अपनी पहिली स्थितिपर आ जायगा। जालहपुर तथा बरहजके परगनोंमें कितनोंने इस कामको आरम्भ कर दिया है। जिससे यह प्रतीत होता है कि लोगोंका झुकाव इस ओर है और इस धन्धेको फिरसे जगानेमें अधिक परिश्रमकी आवश्यकता नहीं है।

शेष तीन धन्धे इस प्रदेशके लिए नए हैं किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि उनको चलाया जाय तो यहाँ भी सफलता पूर्वक जम जायँगे। इनमेंसे मधुमक्खियोंका पालना अधिक आशाजनक प्रतीत होता है। इस समय एक तो शुद्ध शहद मिलना प्रायः असम्भव है दूसरे उसको निकालनेका प्रकार निर्दयतासे भरा हुआ एवं अवैज्ञानिक है। आधुनिक प्रकारसे मक्खियोंको रखनेसे बहुत अधिक शहद भी मिल सकेगा और उनके प्रति मानुषिक व्यवहार भी हो सकेगा। प्रत्येक खेतिहर छोटा सा बाग रखनेवाला थोड़ेसे खर्चे बहुत ही कम श्रम और व्ययसे रख सकेगा।

इन धन्धोंको देहातमें प्रचलित करनेके लिए क्या उद्योग किया जा सकता है यह नीचे लिखा जाता है—

(१) सबसे पहिले यह आवश्यक है कि लोगोंको ये काम सिखाए जायँ और स्वयं करके दिखाया जाय कि इनके द्वारा लोगोंको अपने बचे खुचे समयमें बहुत कुछ आमदनी हो सकती है। इसके लिए डिस्ट्रिक्टबोर्ड, सेवासमिति अथवा किसी और सभाको चाहिए कि देशी भाषामें रोचक लेखों द्वारा इन धन्धों की शिक्षा दें। ऐसे लेखोंको खूब बाँटना चाहिए, विशेषतः उनको अवश्य देना चाहिए जो पढ़े लिखे एवं प्रभावशाली हैं। यदि कुछ जमींदारोंकी रुचि इस कामकी ओर हो जाय तो बड़ा काम हो। छोटी जातियोंमें उनके पञ्चोंद्वारा प्रचार करना चाहिए क्योंकि वे लोग अधिक बुद्धिमान भी होते हैं और जब उन्होंने कामको उठा लिया तो दूसरे तुरन्त ही उनका अनुकरण करने लगेंगे।

(२) इन धन्धोंको इस जिलेमें सिखानेका भी प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए दो स्थानोंमें प्रयोगशालाएँ होनी चाहिए। इसके लिए बरागाँव और नवाबगंजडीहा उपयुक्त

एकाधिकार समस्या

(२)

व्यावसायिक सम्मिलन तथा ट्रस्ट

पिछले प्रकरणमें यह विस्तृत रीतिसे प्रकट किया गया था कि किसप्रकार ट्रस्ट अभी व्यावसायिक सम्मिलन पूर्ण सम्मिलन नहीं है। इसमें सम्मिलित व्यवसायोंके मजदूरोंकी तथा स्वार्थी होनेमें सम्मिलनकी शिथिलता कुछ भी गलत तक नहीं रहती है, परन्तु कुछ ही दिनोंमें व्यावसायिक जगतमें ट्रस्ट द्वारा क्रान्ति आ गयी है। प्रारम्भ प्रारम्भमें विभिन्न पूंजी वाले व्यवसायोंके हिस्सेदार अपने हिस्सोंको कुछ एक व्यक्तियोंके हाथमें दे देते थे। वह व्यक्ति ही उन हिस्सेदारोंकी ओरसे सम्मति देनेकी शक्ति प्राप्त करके सहुां सम्मिलित व्यवसायोंका संचालन अपने हाथमें ले लेते थे। परन्तु राज्यने उन प्रतिनिधियोंके सम्मिलनको राज्य नियमानुकूल न ठहराया। परिणाम उसका यह हुआ कि ट्रस्टका यह प्रारम्भिक रूप चिर काल तक न चल सका। आज कल ट्रस्टोंका निर्माण किन्हीं अन्य सिद्धान्तों पर हो गया है। एक नवीन सभा बनायी जाती है और वह अन्य व्यवसायोंकी पूंजी को अपने हाथमें ले लेती है और इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवसायोंका सञ्चालन स्वयं करती है। इस सभाके डाइरेक्टरही व्यवसायोंके मुख्य प्रबन्धकर्ता रहते हैं। यद्यपि अन्य व्यवसायोंकी अपनी अपनी सभा रहती है परन्तु उनका सञ्चालन उस सभाकेही एक मात्र हाथमें होता है। इस प्रकार पाठकोंपर स्पष्ट हो गया होगा कि ट्रस्टका प्राथमिक रूप जहाँ कुछ कुछ व्यावसायिक सम्मिलनके स्वरूपमें था, वहाँ उसका द्वितीय रूप व्यवसायोंके एकत्व प्रतिपादनमें हो गया है। यही कारण है कि आजकल ट्रस्ट अपने आपको एक ही व्यवसाय प्रगट करते हैं न कि व्यवसायोंका सम्मिलन। व्यवसायोंने ट्रस्टका द्वितीयरूप धारण करके जो शक्ति प्राप्त करली है उसका आगे चल करके वर्णन किया जावेगा यहाँ पर जो कुछ कहना है वह यही है कि अब राज्य नियमोंके बलपर उनको तोड़नेमें सर्वथा असमर्थ हो गये हैं। क्योंकि व्यावसायिक संमिलनका विरोधी प्रत्येक प्रकारका राज्य नियम उनपर नहीं लग सकता है। ट्रस्टने आजकल एक तृतीय रूप और धारण करना प्रारम्भ किया है जिसमें भिन्न भिन्न व्यवसायोंकी अपनी सत्ता सर्वथा ही लुप्त हो गयी है और उन्होंने अपने आपको एक बड़े व्यवसायका भाग सा बना लिया है। आजकल **ट्रस्ट** का यही रूप दिन पर दिन सर्वत्र प्रचलित हो रहा है। पाठकोंको इस बातसे अभिज्ञ कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आगे चल कर ट्रस्ट शब्दसे हमारा निर्देश ट्रस्टके इस तृतीय रूपसे ही होगा न कि प्रथम रूपसे।

अमरीकामें व्यवसायोंने किसप्रकार ट्रस्टका रूप धारण किया इसका अभी वर्णन किया जा चुका है। जर्मनी तथा अन्य यूरोपियन राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके राज्य

दूसरे मालमें भी ऐसा ही होना चाहिए। थोड़ेमें अभिप्राय यह है कि खपतका बराबर पूरा प्रबन्ध रहना चाहिए और माल बनने और उसकी खपतका तारतम्य रखना आवश्यक होगा।

यदि सम्भव हो तो इन सोसाइटियोंको भी कोआपरेटिव बंकके अधीन रख कर व्यापारके उद्देश्य और रीतिसे चलाना चाहिए। और जहाँतक सम्भव हो उसी स्थानका मूलधन उसमें लगाया जाय जिससे उसका कुल लाभ वहींके ग्रामीणोंको मिले। हमारे कोआपरेटिव बंकों द्वारा इस समय भी दूकानों और आढ़तोंका संगठन किया जा रहा है। यह काम भी वे आसानीसे कर सकेंगे।

सी० के० देसाई

भी करना प्रारम्भ किया। रेलों की कम्पनियाँ अपने अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें पूर्ण सफल हुईं। इन्होंने देशका देशको अपनेअपने एकाधिकारमें करनेको एक प्रकार बाँट लिया और प्रत्येक रेलकम्पनीने अपना भाग निश्चित कर लिया। इन्हीं दिनोंमें अनेक कोयलेके खानोंके व्यवसायों-के कॉर्नरने भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।

इन ट्रस्टों तथा कॉर्नरोंकी सफलताको देखते हुए यह प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होता है कि यह साधारण जनताके लिए कहाँतक लाभदायक है और यह स्वयं जो लाभ प्राप्त कर रहे हैं वह कहाँतक स्थायी है?

ट्रस्टों तथा कॉर्नरोंको जो लाभ प्राप्त होते हैं उनका वर्गीकरण करना कठिन है क्योंकि वह लाभ सबके एक तुल्य नहीं होते हैं भिन्न भिन्न ट्रस्टों तथा कॉर्नरोंके अपने अपने लाभ भिन्न भिन्न होते हैं। यह होते हुए भी कई एक ट्रस्टोंमें इन ट्रस्टों तथा कॉर्नरोंने पर्याप्त अनुचित लाभ उठाये हैं। अमरीकामें भिन्न भिन्न रेलवेकम्पनियोंकी आपसमें स्पर्धा है। इस स्पर्धामें रेलोंके बड़े बड़े व्यवसायोंने पर्याप्त लाभ उठाया है। और इस लाभके द्वारा ट्रस्टका इन बहुत सी कम्पनियोंमें प्राप्त किया है और एकाधिकारी बन गये हैं। स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीका इतिहास इस बातको प्रगट कर रहा है कि किस प्रकार इन रेलोंके कारण उसको एक महान् प्रकार उन्नतिमें सहायता मिली है। आजकल अमरीका आदि देशोंमें रेलवे कम्पनियों ने भी पारस्परिक स्पर्धाको नष्ट करके आपसमें मिलनेका यत्न करना प्रारम्भ किया है। सं० १८८७ के अमरीकाके व्यापारीय नियमके द्वारा रेलवेके प्रबन्धमें सुधार हो गया है और पूर्वतः अयानक पक्षपात तथा हया दुर्घटनाओं तथा एकाधिकारियोंके साथ अब रेलवे कम्पनियोंकी नहीं रही है।

ट्रस्टों तथा एकाधिकारी व्यवसायोंकी शक्ति अमरीकामें साधारण जनताके लिए अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुई है। इन्होंने समय समयपर पदार्थोंकी कीमतें भयंकर तौरपर कम करके छोटे छोटे व्यवसायोंका बहुत ही अधिक क्रूरतासे गला घोंट दिया है। स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीने तो एक अन्य विधिके द्वारा भी अपने एकाधिकारको स्वरक्षित किया है। यह अपने व्यवसायका पदार्थ थोक बेचनेवालोंके स्थानपर फुटकर बेचनेवालोंको ही बेती है। इसमें थोक विक्रताओंके लाभ जहाँ यह स्वयं ही उठाती है वहाँ फुटकर विक्रेताओं-के व्यापारीय क्षेत्रके अति न्यून होनेसे उनकी अल्पशक्तिसे पूर्ण लाभ उठाती है। क्योंकि फुटकर विक्रेता व्यापारी एक दूसरेसे बहुत बड़ी स्पर्धा करनेमें तथा सारेके सारे मालको एकदा खरीद करके उस पदार्थके कीमतोंके चढ़ाने या उतारनेमें असमर्थ होते हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी जिस कीमत पर अपने पदार्थोंको बिकवानी चाहती है उसी कीमतपर बिकते हैं। यह कीमत स्वयं इतनी कम होती है कि दूसरे व्यवसाय उसका मुकाबला करनेमें असमर्थ हैं।

बहुत ट्रस्टोंने तो अपने ग्राहकोंसे यह ठेका कर लिया है कि वह उनके बनाये हुए पदार्थोंके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थको बेचते ही नहीं। इससे छोटे छोटे व्यवसायों-

नियमोंसे प्रभावित हो करके व्यवसायोंने नये नये रूप धारण किये हैं। अमरीकन ट्रस्टके सदृश ही जर्मन व्यवसायियोंने जो रूप प्राप्त किया है उसको कर्टेल के नामसे पुकारा जाता है। कर्टेल अमरीकन ट्रस्टके प्रथम रूपसे अधिकतर मिलता है। कर्टेल एक वृहत व्यवसायके रूपमें होते हुए पदार्थोंकी कीमतोंको निश्चित करता है और अपने अद्भुत व्यवसायों को एक दूसरेसे स्पर्धा करनेसे रोकता है। पूलके ऊपर लिखते हुए हमने यह प्रगट किया था कि पूलज अपने अन्दर सम्मिलित व्यवसायोंकी उत्पत्तिको परिमित नहीं कर सकते हैं परन्तु जर्मन कर्टेलके पास यह भी शक्ति विद्यमान है। वह अपने व्यवसायों को जितना उत्पन्न करनेकी आज्ञा देते हैं वह उतनाही उत्पन्न करते हैं। इतना होने पर भी जर्मन कर्टेलमें सम्मिलित व्यवसाय अमरीकन ट्रस्टों की अपेक्षा अधिकतर स्वतन्त्र होते हैं *। इसका कारण यह है कि कर्टेलका प्रत्येक व्यवसाय अपना प्रबन्ध आप करता है। सारांश यह है कि जहाँ अमरीकन ट्रस्टोंका अपने सभ्य व्यवसायोंके प्रबन्ध तथा पदार्थ उत्पत्तिपर प्रभुत्व रखना मुख्य उद्देश्य होता है वहाँ जर्मन कर्टेल अपने व्यवसायोंपर उनकी उत्पत्तिके द्वारा प्रभुत्व रखता है। आजकल संपत्तिशास्त्रके विद्वानोंमें इस बातपर विशेष विवाद चल रहा है कि व्यावसायिक संमिलन का अन्तिमरूप किसको समझा जावे? ट्रस्टको या कर्टेलको? जो कुछ भी हो। इस झमेलेमें न पड़ कर एक बात लिख देना मैं आवश्यक समझता हूँ। वह यह कि व्यावसायिक समिलनों द्वारा स्पर्धाका सर्वथा नाश होजाना कोई आवश्यक नहीं है, परन्तु स० १८३७ के अनन्तर अमरीकन व्यवसायपतियोंने अपना यह उद्देश्य ही बना लिया है कि वह इन व्यावसायिक-संमिलनोंके-द्वारा एकाधिकारी बन जावें। अमरीकाकी स्टैन्डर्ड आयल कम्पनीने पहिले पहिल एकाधिकारी बननेका यत्न किया और इसके अनन्तर इसीके पीछे पीछे शक्करको शोधनेवाली कम्पनीने

---

*जर्मनीमें व्यावसायिक समिलनोंने बड़ी शीघ्रतासे उन्नति प्रारम्भ की हैं। इन समिलनोंमेंसे रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करनेवाले समिलनोंकी संख्या खूब अधिक है। स० १९०२ में जर्मनी में कुल ३८५ कर्टेल थे। जिनमेंसे ४६ एकमात्र रासायनिक पदार्थोंके ही थे।

जर्मनीमें कर्टेलोंका मुख्य उद्देश्य विदेशीय व्यवसायोंको संसारके बाजारसे निकाल कर सारे संसारका एकाधिकारी होना है। इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए जर्मन कर्टेलज स्वजातीय व्यवसायियोंको हानि पहुँचानेका यत्न नहीं करते हैं। और यदि कहीं दैवी-घटनासे स्वार्थसे प्रेरित हो करके वह ऐसा करना भी चाहते तौभी वह नहीं कर सकते थे। इसका कारण यह है कि जर्मन राज्यकी शक्ति पर्य्याप्त अधिक है। जनताके कार्योंपर वह तीक्ष्ण दृष्टि रखती है। इस अवस्थामें कर्टेलोंका स्वजातीय व्यवसायियोंपर अत्याचार करना कुछ सहज काम नहीं है।

—माडर्न जर्मनी। पेज ५१६ से ५४२।

की कठिनताएँ और भी अधिक बढ़ गयी हैं। क्योंकि उनके पास इतने तो पदार्थ होते ही नहीं हैं कि वह भी ट्रस्टोंके सदृश अपने अपने नये ग्राहक बना लेवें। ट्रस्टोंके पदार्थ बेंचने वालोंको वह अपने पदार्थ बेंचनेके लिए देही नहीं सकते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि छोटे छोटे व्यवसायोंको हर समय टूट जानेका भय रहता है।

बड़े बड़े व्यवसाय अन्य विधियोंके द्वारा छोटे छोटे व्यवसायोंके संचालनको असम्भव कर देते हैं। विज्ञापन आदियोंपर जो रुपया बड़े बड़े व्यवसाय खर्च करते हैं, छोटे छोटे व्यवसायोंकी शक्तिमें यह कहाँ है कि वह उतना रुपया खर्च कर सकें।

ट्रस्टोंके उपरिलिखित भयानक अत्याचारोंसे साधारण जनताको बचानेके लिए अमरीकन राज्यने बहुतसे नियम बनाये हैं, परन्तु उनसे किसी प्रकार सफलता न प्राप्त होसकी।

एकाधिकारके दूषण और उनके उपाय

एकाधिकार तथा ट्रस्टोंके द्वारा कुछ ऐसी विकट समस्यायें उत्पन्न होती हैं जिनका सरल करना प्रत्येक समाजके लिए आवश्यक है। उन विकट समस्याओंको निम्नलिखित तीन संख्याओंमें प्रगट किया जा सकता है।

(१) एकाधिकार सम्बन्धी समस्या।
(२) व्यावसायिक सम्मिलनसम्बन्धी समस्या।
(३) पूँजी के एकत्रण सम्बन्धी समस्या।

एकाधिकार सम्बन्धी समस्या। एकाधिकारके दूषणों पर बहुत स्थानों पर प्रकाश डाला जा चुका है। सन् १६६६ में आंग्ल न्यायालयने एकाधिकारकी निम्नलिखित हानियां प्रगट की थीं।

(क) पदार्थोंकी कीमतें बढ़ा दी जावेंगी क्योंकि जब किसी पदार्थका विक्रय किसी एकके ही हाथमें होवे उस समय वह उस पदार्थकी कीमत जितनी अधिक चाहे रख सकता है।

(ख) एकाधिकारी उन पदार्थोंको पूर्णतः उत्तम नहीं बनाते हैं। क्योंकि उनको अपने लाभों तथा स्वार्थके पूर्ण करनेका अधिक ध्यान होता है। उनको इस बातकी कम चिन्ता हो सकती है कि समाजको बुरा पदार्थ मिल रहा है या उत्तम पदार्थ।

जिनकी अधीनता हो सकती है जिसमें अधिक संख्या तो नौकर चाकरोंकी हो और उनमें थोड़ेसे अमीर मालिकों हो जोकि उनके अपने अनुसार कार्य करावें। इस कारणसे राज्यकी यह नीति उचित ही प्रतीत होती है कि वह छोटे छोटे व्यवसायियोंको बढ़ावे और बड़े बड़े व्यवसायों तथा ट्रस्ट आदिको अधिक बढ़नेसे रोके। राज्यकी इस नीतिके द्वारा ही नागरिकोंमें धनका समान विभाग सम्भव है जो कि एक प्रतिनिधि सभाके शासन-पद्धति वाले देशके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(क) दूषणपर विचार :—इन उपरिलिखित आंग्ल न्यायालय द्वारा प्रदर्शित एकाधिकारके दूषणोंसे पाठकों को पता लग गया होगा कि आंग्ल न्यायालयकी सम्मतिमें कीमतोंको नियत करना एकमात्र एकाधिकारियोंके हाथमें होता है। वह जो चाहे अपने व्यवसायमें उत्पन्न पदार्थकी कीमत रक्खे। परन्तु कई विद्वानोंकी सम्मतिमें न्यायालयकी यह सम्मति सर्वथा भ्रममूलक है। पूर्णमें पूर्ण एकाधिकारी व्यवसाइयोंके हाथमें यह नहीं है कि वह मनमानी कीमतें पदार्थोंकी रक्खें। इसका कारण यह है कि एकाधिकारी व्यवसायपतियोंके हाथमें पदार्थकी उत्पत्तिही होती है न कि उसकी मांगकी। यदि कीमतोंका निश्चय एक मात्र उपलब्धिपरही होता तब तो एकाधिकारी जो चाहे कीमत रख सकता, परन्तु व्यावसायिक जगतमें यह घटना नहीं होती है। कीमतके निश्चय करनेमें उपलब्धिके सदृश मांगका भी बड़ा भारी भाग होता है। मांगपर एकाधिकारी व्यवसायपतियोंका बहुतही कम प्रभुत्व होता है यह पाठकोंसे छिपा नहीं है। उनका यह प्रभुत्व भी अप्रत्यक्ष तौरपर कीमतोंके द्वाराही होता है। कीमतोंको घटा बढ़ा करही वह मांगको बढ़ा घटा सकते हैं अन्य किसी विधिके द्वारा नहीं। इन विद्वानोंके प्रति हमारा एक प्रश्न है। वह यह कि क्या कारण है कि इतिहास इस बातको कहता है कि एकाधिकारके द्वारा कीमतें बढ़ जाती हैं? आंग्ल न्यायालयके कथनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ह्यूमका कथन है कि "एकाधिकारी पदार्थोंका मूल्य इंग्लिस्तानमें बहुतही अधिक हो गया था। नमकका मूल्य तो कई कई स्थानोंपर दस गुणा और इससे भी अधिक गुणा चढ़ गया था।" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एकाधिकारोंके द्वारा कीमतें अवश्य बढ़ जाती हैं। इसका कारण यह है कि एकाधिकारी पदार्थकी उपलब्धिके द्वारा जो कीमत पर प्रभाव डालते हैं उससे पदार्थकी कीमत स्पर्धाजन्य कीमतकी अपेक्षा किसी सीमा तक उच्च हो जाती है। यह सत्य है कि प्रजाकी मांग पर प्रभुत्व न होनेसे मनमानी तौर पर एकाधिकारी जन पदार्थोंकी कीमतें नहीं बढ़ा सकते हैं परन्तु उपलब्धि पर प्रभुत्व होनेसे वह स्पर्धाजन्य कीमतोंकी अपेक्षा अपने पदार्थोंकी अधिक कीमत रखते हैं इसको कौन छिपा सकता है। हो सकता है कि किसी स्थान पर एकाधिकारी पदार्थकी कीमत स्पर्धाजन्य कीमत ही हो परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता है। एकाधिकारी पदार्थोंकी कीमत स्पर्धाजन्य कीमतकी अपेक्षा अधिक ही होती है।

(ख) दूषणपर विचार। आंग्ल न्यायालयका प्रदर्शित एकाधिकारका

की कठिनताएँ और भी अधिक बढ़ गयी हैं। क्योंकि उनके पास इतने तो पदार्थ होते ही नहीं हैं कि वह भी ट्रस्टोंके सदृश अपने अपने नये ग्राहक बना लेवें। ट्रस्टोंके पदार्थ बेचने वालोंको वह अपने पदार्थ बेचनेके लिए देही नहीं सकते है। परिणाम इसका यह होता है कि छोटे छोटे व्यवसायोंको हर समय टूट जानेका भय रहता है।

बड़े बड़े व्यवसाय अन्य विधियोंके द्वारा छोटे छोटे व्यवसायोंके सचालनको असभव कर देते हैं। विज्ञापन आदियोंपर जो रुपया बड़े बड़े व्यवसाय खर्च करते हैं, छोटे छोटे व्यवसायोंकी शक्तिमें यह कहाँ है कि वह उतना रुपया खर्च कर सकें।

ट्रस्टोंके उपरिलिखित भयानक अत्याचारोंसे साधारण जनताको बचानेके लिए अमरीकन राज्यने बहुतसे नियम बनाये हैं, परन्तु उनसे किसी प्रकार सफलता न प्राप्त होसकी।

एकाधिकारके दूषण और उनके उपाय

एकाधिकार तथा ट्रस्टोंके द्वारा कुछ ऐसी विकट समस्यायें उत्पन्न होती हैं जिनका सरल करना प्रत्येक समाजके लिए आवश्यक है। उन विकट समस्याओंको निम्नलिखित तीन सख्याओंमें प्रगट किया जा सकता है।

(१) एकाधिकार सम्बन्धी समस्या।

(२) व्यावसायिक सम्मिलनसम्बन्धी समस्या।

(३) पूँजी के एकत्रण सम्बन्धी समस्या।

एकाधिकार सम्बन्धी समस्या। एकाधिकारके दूषणों पर बहुत स्थानों पर प्रकाश डाला जा चुका है। स० १६६६ में आंग्ल न्यायालयने एकाधिकारकी निम्नलिखित हानियां प्रगट की थीं।

(क) पदार्थोंकी कीमतें बढ़ा दी जावेंगी क्योंकि जब किसी पदार्थ किसी एकके ही हाथमें होवे उस समय वह उस पदार्थकी कीमत जितनी रख सकता है।

(ख) एकाधिकारी उन पदार्थोंको पूर्ववत् उत्तम नहीं बना उनको अपने लाभों तथा स्वार्थोंके पूर्ण करनेका अधिक ध्यान होता बातकी क्या चिन्ता हो सकती है कि समाजको बुरा पदार्थ [illegible] पदार्थ।

(ग) जिन जिन पदार्थोंका एकाधिकार हो जाता उत्पादक [illegible] न रहो ने [illegible] लगे हैं। [illegible] कारण उत्पन्न हो जाती है। इसकी सचाईका इसीसे अनुम अमरीकन न्यायालयने भी एकाधिकारकी इस तृतीय ह [illegible] है—"यह तृतीय हानि अत्यन्त ध्यान देने योग्य तथा

परन्तु फ्रान्स और जर्मनीमें इंगलिस्तानके समान अवस्था नहीं है। वहाँ राज्यने इस एक स्थानपर जहाँ ट्रस्टोंद्वारा कार्योंने किसी एक दलको विशेष लाभ नहीं पहुँचाया है तथा ऐसा हो जानेको रोकनेके लिए एक प्रबल यत्न भी किया है वहाँ बाधित व्यापारकी नीतिके द्वारा ट्रस्टकी स्थापनाकी सबकी सब अनुकूल अवस्थाएँ उत्पन्न कर दी हैं। परिणाम इसका यह हुआ है कि वहाँपर भी ट्रस्ट रूपी व्यावसायिक संस्थाका अभाव नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ट्रस्ट कोई एक अमरीकन आर्थिक घटना नहीं है। इसकी विद्यमानता यूरोपियन सभी देशोंमें है। अमरीकाके सदृश जो यूरोपियन अन्य जातियोंमें ट्रस्टके भयङ्कर दूषणोंने अपना राक्षसी रूप नहीं प्रगट किया है उसका यह कारण है कि वहाँपर प्रजा तथा ट्रस्टका पारस्परिक हित विरोध नहीं है। वहाँ जिस बातमें प्रजाका स्वार्थ है उसीमें राष्ट्रका और जिस बातमें राष्ट्रका स्वार्थ है उसीमें प्रजाका स्वार्थ है"।

आजसे कुछ वर्ष पूर्व जर्मनीके एक पत्रमें बहुतही विचारपूर्ण लेख निकला था, जिसमें अमरीकन तथा जर्मन ट्रस्टोंके ऊपर लिखते हुए इस बातपर प्रकाश डाला गया था कि जर्मनीमें केवल राष्ट्रीय होनेसे ट्रस्टोंने वह रूप नहीं धारण किया है जो कि अमरीकन ट्रस्टोंने संसारको अपना राक्षसी रूप दिखाया है। सम्पूर्ण यूरोपमें तथा अमरीकामें स्टैन्डर्ड आयल कम्पनीके विरुद्ध जो आवाज उठी है उसका वर्णन करना कठिन है। रूसने अपने यहाँ शक्करके कारखानेवालोंको उन्नति करनेके लिए पर्याप्त उत्तेजना दी है और अब यह कारखाने एकाधिकारीका रूप धारण करके शक्करकी कीमत बढ़ानेका यत्न करते हैं तो रशियन राज्य विदेशसे शक्कर मँगा कर सस्ती बेचना प्रारम्भ कर देता है जिससे उन कारखानोंको भी अपने अपने शक्करकी कीमतें घटानी पड़ती हैं। ट्रस्टों तथा एकाधिकारोंके इतिहासके अध्ययनसे यह पता लगता है "राज्यकरोंको अति विचारसे न लगानेपर प्रायः एकाधिकार उत्पन्न हो जाते हैं" फ्रान्स, जर्मनी आदि देशोंमें तो पेटेन्ट्सका अधिकार भी व्यक्तियोंको इस बुद्धिमत्तासे दिया गया है कि वह प्रजाकी स्वतन्त्रतापर किसी प्रकारका भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। कोई भी व्यवसायी उनके कारण अपने आपको कष्टमें अनुभव नहीं करता है। इस विषयपर हम अभी आगे चलकर लिखेंगे, अतः इसको मैं यहींपर छोड़ता हूं।

(२) व्यावसायिक संमिलन सम्बन्धी समस्या।—यह प्रायः कहा जाता है कि जिसको हम अमरीकामें ट्रस्टकी समस्या समझते हैं वास्तवमें वह व्यावसायिक संमिलनकीही समस्या है। बालकों तथा स्त्रियोंसे श्रम तथा श्रमियोंके साथ बुरा व्यवहार आदि दूषणोंपर पूर्व परिच्छेदोंमें प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँपर जो कुछ लिखना है वह यही है कि व्यावसायिक संमिलनके जो जो दूषण प्रगट किये जाते हैं उनमेंसे बहुत ही थोड़े ऐसे दूषण हैं जिनको उनका समझा जा सके क्योंकि वह उस समयमें भी विद्यमान थे जब कि बहु मात्राकी उत्पत्तिका प्रचार न था और न व्यावसायिक संमिलन ही विद्यमान थे।

द्वितीय दूषण सर्वथा सत्य है। रसायनके द्वारा पता लगाया गया है कि पदार्थोंके अन्दर एकाधिकारद्वारा उत्पन्न होनेपर वह उत्तमता नहीं रही है जो कि उनमें पूर्व विद्यमान थी। इसका कारण स्पष्टही है। व्यवसायपति लोग परोपकार तथा सामाजिक प्रेमसे प्रेरित होकर तो पदार्थ उत्पन्नही नहीं करते हैं। उनको तो अपने लाभकीही परवाह होती है। ऐसी अवस्थामें एकाधिकार द्वारा पदार्थोंकी उत्तमताका नष्ट होना कुछ भी आश्चर्यप्रद प्रतीत नहीं होता है।

(ग) दूषणपर विचार। एकाधिकारका तृतीय दूषण अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। एकाधिकारके द्वारा यदि एक मात्र बेकारीही बढ़ी होती तब भी कोई बात थी। बहुतसे एकाधिकारी व्यवसाय कच्चे माल उत्पन्न करने वालोंपर बड़ा भारी अत्याचार करते हैं। अमरीकाकी स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीने ऐसे ही भयंकर अत्याचार असंस्कृत मिट्टीके तेलके व्यवसाय वालोंपर किये हैं। इन अत्याचारोंका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि महाशय एम० डी० रोज़ियर्ज़ जैसे विद्वान् भी कहते हैं कि मिट्टीके तेलकी स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीने अन्य व्यवसायियोंके साथ बहुतही बुरा व्यवहार किया है।

आजकल सभ्य संसार स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुभावका प्रेमी होरहा है। व्यवसायोंमें एकाधिकारियोंके स्वेच्छाचारी राज्यको कोई भी व्यक्ति स्वीकृत नहीं कर सकता है। अमरीका और इंग्लिस्तानमें अब लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि एकाधिकारोंके कारण उनकी स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। अब प्रश्न केवल यही है कि एकाधिकारकी इन हानियोंसे किस प्रकार बचा जाय।

एकाधिकार और उनके दूषणोंके उपाय

इस विषयपर लिखनेसे पूर्व यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि एकाधिकारके दूषणोंका भयंकर रूप प्रायः अमरीकामेंही विशेष तौरपर प्रगट हुआ है। यूरोपके फ्रान्स, इंग्लिस्तान आदि महाप्रदेशोंमें भी ट्रस्ट तथा पूल हैं परन्तु इनके प्रति जनता कुछ भी असन्तुष्ट नहीं है, यही कारण है कि उन देशोंमें इनके विरुद्ध किसी प्रकारका भी राज्य या प्रजाको यत्न नहीं करना पड़ा है। जर्मनीमें कुछ कुछ ट्रस्ट तथा पूल आदिके विरुद्ध लेख लिखे गये थे और उनपर विवाद भी पत्रोंमें होता रहा था परन्तु उन सबको "ट्रस्टके विरुद्ध एक एजिटेशन"का नाम नहीं दिया जा सकता है। महाशय एम० डी० रोज़ियर्ज़ने इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि,

"यूरोप तथा अमरीका दोनोंही महाद्वीपोंमें ट्रस्ट सम्बन्धी घटना उत्पन्न हो सकती है। इंग्लिस्तानमें जो किसी ट्रस्टका विशेषतः नाम सुनाई नहीं पड़ता है, उसका कारण यह है कि वहाँ एकाधिकारके कृत्रिम कारण विद्यमान नहीं है। अबाधित व्यापारकी नीतिके अवलम्बन करनेसे आंग्ल-राज्य प्रजाके वैयक्तिक मामलोंमें बहुत कम हस्तक्षेप करता है। राज्यके कार्य वहाँ सारी प्रजाके लिएही होते हैं न कि किसी एक दलको विशेष लाभ पहुँचानेके लिए।

परन्तु [illegible] नहीं है। [illegible] कुछ एक [illegible] नहीं पहुँचता है [illegible] है नहीं [illegible] कर दी है। [illegible] कि [illegible] प्रभाव नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ट्रस्ट कोई एक व्यावसायिक संगठित [illegible] नहीं है। इसकी विभिन्नता [illegible] होती है। अमरीकाके [illegible] जो [illegible] उन्होंने ट्रस्टके स्वरूप [illegible] नहीं प्रगट किया है उसका यह कारण है कि [illegible] विशेष नहीं है। वहाँ जिस कार्यमें [illegible] है उसीमें [illegible] और जिस कार्यमें [illegible] है उसमें प्रकाश डाला है"।

आजसे कुछ वर्ष पूर्व अमरीकाके एक पत्रमें बहुतही विचारपूर्ण लेख निकला था, जिसमें अमरीकन तथा जर्मन ट्रस्टोंके ऊपर लिखते हुए इस बातपर प्रकाश डाला गया था कि जर्मनीमें [illegible] होते हुए उन्होंने वह रूप नहीं धारण किया है जो कि अमरीकन ट्रस्टोंने [illegible] अपना रक्खा रूप दिखाया है। सम्पूर्ण यूरोपमें तथा अमरीकामें ट्रस्टके कारण [illegible] विरुद्ध जो आवाज उठी है उसका वर्णन करना कठिन है। इसमें सन्देह नहीं ट्रस्टने व्यवसायियोंकी उन्नति करनेके लिए पर्याप्त उत्तेजना दी है और अब यह व्यवसाय एकाधिकारीका रूप धारण करके [illegible] सीमा बढ़ानेका यत्न करते हैं तो [illegible] राज्य विरुद्ध बाहर [illegible] कर [illegible] बनना प्रारम्भ कर देता है जिससे उन व्यवसायोंको भी अपने अपने राज्यकी सीमामें पड़नी पड़ती है। ट्रस्टों तथा एकाधिकारके इतिहासके अध्ययनसे यह पता लगता है "राज्यकरोंके प्रति [illegible] समान्तर प्रायः एकाधिकार उत्पन्न हो जाते हैं" अमरीका, जर्मनी आदि देशोंमें तो पेटेन्टस्वत्व अधिकार भी व्यक्तियोंको इस बुद्धिमत्तासे दिया गया है कि वह प्रजाकी स्वतन्त्रतापर किसी प्रकारका भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। कोई भी व्यवसायी उनके कारण अपने आपको बन्धनमें अनुभव नहीं करता है। इस विषयपर हम अभी आगे चलकर लिखेंगे, अतः इसको मैं यहींपर छोड़ता हूं।

(२) व्यावसायिक संमिलन सम्बन्धी समस्या :—यह प्रायः कहा जाता है कि जिसको हम अमरीकामें ट्रस्टकी समस्या समझते हैं वास्तवमें वह व्यावसायिक संमिलनकीही समस्या है। बालकों तथा स्त्रियोंसे श्रम तथा श्रमियोंके साथ बुरा व्यवहार आदि दूषणोंपर पूर्व परिच्छेदोंमें प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँपर जो कुछ लिखना है वह यही है कि व्यावसायिक संमिलनके जो जो दूषण प्रगट किये जाते हैं उनमेंसे बहुत ही थोड़े ऐसे दूषण हैं जिनको उनका समझा जा सके क्योंकि वह उस समयमें भी विद्यमान थे जब कि बहु मात्राकी उत्पत्तिका प्रचार न था और न व्यावसायिक संमिलन ही विद्यमान थे।

(३) पूंजीके एकत्रण सम्बन्धी समस्या।—ट्रस्टके मामलेमें पूंजीकी एकत्रण सम्बन्धी जो तृतीय समस्या प्रगट की जाती है उसका सम्बन्ध विशेषतः सम्पत्तिशास्त्रके 'धन विभाग' के प्रकरणसे है। किसी एक व्यक्तिके हाथमें पूंजी रूपी अधिक शक्तिका होना किसी विद्वान्‌को अभीष्ट नहीं है। अरस्तूसे लेकरके अबतक सभी राजनीतिज्ञ यह कहते आये हैं कि धन विभागकी असमानता प्रजातन्त्र राज्योंके लिए बहुत ही अधिक हानिकर है। एकाधिकार तथा ट्रस्टके साथ पूंजीके एकत्रणका जो सम्बन्ध है वह पाठक पूर्ण तौरपर जानतेही हैं अतः अब इन एकाधिकारों तथा ट्रस्टोंसे बचनेके लिए क्या क्या उपाय किये गये हैं और क्या क्या वास्तविक उपाय हैं इसपर प्रकाश डालनेका मैं यत्न करूंगा।

एकाधिकारके दूषणोंके उपाय

(१) अमरीकाको छोड़कर अन्य सभ्य देशोंने एकाधिकारोंके दूषणोंसे बचनेके अप्रत्यक्ष यत्न किये हैं। इसने शक्करके कारखानेकी एकाधिकारी अधिक कीमतोंको कम करनेका जो उपाय किया था वह लिखा जा चुका है। परन्तु अमरीकाकी भिन्न भिन्न रियासतोंने एकाधिकारों पर सीधेही कुठार चलाया है। उन्होंने एकाधिकारों तथा ट्रस्टोंको बननेसेही राज्य नियमद्वारा रोकना चाहा है। डाक्टर अर्न्स्टवान हेलिने लिखा है कि—

"स० १६५१ में अमरीकन राष्ट्र संघटन और उसकी बाईस रियासतोंने ट्रस्ट आदिके विरुद्ध नियम बनाये। स० १६३४ में सबसे पहिले पहिल जिआर्जिया रियासतने यह नियम बनाया कि "साधारण सभाके हाथमें यह न होगा कि वह किसी भी व्यवसाय या कम्पनीको किसी दूसरे व्यवसाय या कम्पनीके साथ किसी प्रकारका भी ठेका करनेकी आज्ञा दे, यदि वह ऐसी आज्ञा देगी भी तो वह नियम-विरुद्ध समझा जायगा"। उसने यह नियम वास्तवमें रेलवे कम्पनियोंके प्रति बनाया था। परन्तु कुछ ही समयमें यह ट्रस्टोंपर भी लगाया जाने लगा। स० १६४६ में निम्नलिखित रियासतोंने भी ट्रस्टोंके विरुद्ध नियम बनाये।

(१) कन्सास (२) मेन (३) मिचिगन (४) मिसूरी (५) निब्रास्का (६) नार्थ केरोलिना (७) टिनेसी (८) टैक्सास (९) ईदाहो (१०) मान्टोना (११) नार्थ डेकोटा (१२) वाशिंगटन (१३) वीयोमिंग।

स० १६४७ में निम्नलिखित अवशिष्ट अमरीकन रीयासतोंने भी ट्रस्टोंके विरुद्ध नियम पास किये।

(१४) केन्टुकी (१५) लुसीना (१६) मिसूरी (१७) साउथ डेकोटा (१८) अलबामा (१९) इल्लिनायस (२०) न्यू मेक्सिको (२१) न्यूयार्क और (२२) विस्कान्सिनने स० १६४६ में अपने अपने राज्यों तथा प्रदेशोंमें उपरिलिखित प्रकारके नियमोंके द्वारा ट्रस्टोंके रोकनेका यत्न किया। समय समयपर उपरिनिर्दिष्ट रियासतोंने ट्रस्ट विरोधी नियमोंमें परिवर्तन भी किये परन्तु उन सब परिवर्तनोंका उद्देश्य एक ही रहा

कि किसी प्रकारसे व्यावसायिकसमिलन तथा स्पर्धाका अभाव पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा विक्रयमें न होने पावे।"

इन विरोधी नियमोंके साथ साथ भिन्न भिन्न अमरीकन पत्रोंने कई एक मुख्य मुख्य अमरीकन ट्रस्टोंके विरुद्ध जो लेख लिखे हैं उनके पढ़नेसे प्रतीत होता है कि किस प्रकार सम्पूर्ण अमरीका इन ट्रस्टों तथा एकाधिकारोंके द्वारा पीड़ित है। परन्तु प्रश्न जो कुछ सम्मुख है वह यही है कि "क्या ट्रस्ट-विरोधी नियमोंके द्वारा राज्य ट्रस्टों तथा व्यावसायिक समिलनोंके होनेको रोक सकता है?" लेखककी सम्मतिमें इन राज्य-नियमोंके-द्वारा ट्रस्टोंका रोकना शक्य नहीं है। इस कार्यमें यदि किसी प्रकारके यत्नसे सफलता प्राप्त हो सकती है तो वह अप्रत्यक्ष यत्न ही है। राज्य-नियमोंके द्वारा ट्रस्टोंको रोकना निरर्थक है क्योंकि ट्रस्ट स्वतः भी किन्हीं कारणोंसे उत्पन्न होते हैं। ट्रस्टोंके कारणोंके दूर करनेसेही उनको नष्ट किया जा सकता है अन्यथा नहीं। ट्रस्ट विरोधी नियमोंके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि उनका प्रभाव दुर्बल व्यवसायोंके नाशमेंही हुआ है, प्रबल व्यवसायोंने तो उन नियमोंके द्वारा और भी अधिक शक्ति प्राप्त करली है। देशमें एकाधिकार और ट्रस्टोंकी संख्या और भी अधिक बढ़ गई है।

ट्रस्टोंको बननेसे रोकना वास्तवमें एक विकट समस्या है। पूल तो नष्ट किये जा सकते हैं क्योंकि वह एक व्यावसायिक समिलनके रूपमें होते हैं। परन्तु ट्रस्टोंकी अवस्था यह नहीं होती है। ट्रस्ट व्यावसायिक समिलनके स्थानपर एकही व्यवसायके रूपमें होते हैं। कोई बड़ा व्यवसाय अन्य छोटे छोटे व्यवसायोंको खरीद करके ट्रस्टका रूप धारण कर सकता है। किसी व्यवसायको ट्रस्ट बननेसे राज्य नियमोंद्वारा रोकना वैयक्तिक स्वतन्त्रताको पदाघात किये बिना कभी भी सम्भव नहीं है। जिस प्रकार किसी व्यक्तिको किसी पदार्थके क्रय करनेसे राज्य-नियमोंके द्वारा रोकना सर्वथा अनुचित तथा अन्याययुक्त है उसी प्रकार किसी एक व्यवसायको अन्य व्यवसायोंके क्रय करनेसे रोकना भी कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है। अमरीकन राज्योंने ट्रस्टकी उत्पत्ति तथा निर्माणको न जानते हुए उनको भिन्न भिन्न व्यवसायोंका समिलन स्थूल दृष्टिसे समझ करके समिलनके विरुद्ध भयकर नियम बनाये, परन्तु परिणाम इसका यह हुआ कि वे नियम ट्रस्टोंपर न पड़ कर पूलोंपर जा पड़े। राज्यको जिनकी रक्षा ट्रस्टोंके विरुद्ध करनी चाहिये थी राज्यने अज्ञानतासे अपने नियमोंके द्वारा उन्हींका सर्वनाश किया। ट्रस्टोंके भयकर आक्रमणोंसे अपनी आयको स्वरक्षित करनेके लिए भिन्न भिन्न व्यवसायोंने पूलोंका धारण किया था परन्तु राज्यने अपनी शक्तिके द्वारा अज्ञानतासे उन्हींको भयकर आघात पहुँचाया। पूलोंके निःशक्त होतेही ट्रस्टोंकी शक्ति और भी अधिक बढ़ गयी। सारांश यह है कि राज्य-नियमोंके द्वारा ट्रस्टोंका नाश करना कभी भी शक्य नहीं है। अतः किसी अन्य विधिका इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अवलम्बन करना चाहिये।

(२) राज्यनियमोंद्वारा ट्रस्टोंको बननेसे रोकना कठिन समझ करके कई एक शान्ति-

शास्त्रज्ञोंकी सम्मति है कि पदार्थोंकी उत्पत्तिको कम्पनियों द्वारा करना रोक देना चाहिये। जब कम्पनियाँ ही नहीं बनेंगी तब ट्रस्टोंका भी बनना स्वभावतः ही रुक जायगा। परन्तु उनका यह विचार हमको ठीक नहीं प्रतीत होता है। मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियोंका बनाना नियम विरुद्ध ठहरानेपर धनाढ्योंकी और बन आवेगी। और वह लोग घर बैठे ही पूँजीके बलपर शीघ्रही एकाधिकारी बन जावेंगे। बड़े बड़े धनाढ्योंकी ताकत तथा प्रभावको नष्ट करने तथा उनके मुकाबलेपर ठहरनेके लिए निर्धनियोंके पास एकही विधि है कि वह मिश्रित पूँजीके द्वारा कम्पनियोंको बना करके बृहत्पूँजीपतियोंके तुल्य शक्तिशाली हो जावें। मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियोंका आविष्कार चिरकालकी सभ्यताका परिणाम है। राज्य-नियमोंद्वारा उनका व्यवसायोंकी उच्छेद करना कुछ भी बुद्धिमत्ताकी बात नहीं प्रतीत होती है।

(३) कई विद्वान् ट्रस्टों तथा एकाधिकारोंसे बचनेका उपाय करको बताते हैं। हमारी सम्मतिमें करोंके द्वारा वे बहुत कुछ ट्रस्टों तथा एकाधिकारी व्यवसायपतियोंकी शक्तिको कम कर सकते हैं परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि करोंके लगानेमें अपूर्व विवेक तथा चातुर्यसे काम लिया जावे।

(४) बहुतसे विचारकोंका मत है कि स्पर्धा द्वारा एकाधिकारके दूषणोंको दूर किया जा सकता है। एकाधिकारी व्यवसाय जब पदार्थोंकी कीमत बढ़ावे उस समय नये नये व्यवसाय खुल करके उनके साथ स्पर्धा करना प्रारम्भ कर दें जिससे उनको स्वतःही कीमतें कम करनी पड़ जावेंगी। जो कुछ भी हो। हमारी सम्मतिमें अभीतक इसके द्वारा कुछ भी लाभ नहीं प्राप्त हुआ है। दृष्टान्त तौरपर 'बाल्टिमोयर' के गैसके व्यवसायको लीजिये। इसके ऊपर ५ या ६ बार नवीन नवीन गैसके व्यवसायोंने आक्रमण किया परन्तु वह सफल न हो सका। यहाँपर पाठकोंको यह पता होना चाहिये कि बाल्टिमोयरके व्यवसायकी गैस न उत्तम है और न सस्ती है। नवीन व्यवसायोंका पुराने क्रमागत वृद्धि नियम शील, धनाढ्य व्यवसायोंके साथ मुकाबला करना कुछ सहज काम नहीं है। इस अवस्थामें स्पर्धा एकाधिकारके दूषणोंको क्या कम कर सकती है? स्पर्धाको नष्ट करकेही तो एकाधिकार उत्पन्न होते हैं। यदि स्पर्धा प्रबल हो तो एकाधिकारका जन्मही कैसे हो सकता था।

(५) इन सब उपरिलिखित उपायोंसे निराश हो कर बहुतसे संपत्तिशास्त्रके विद्वानोंने यह सिद्धान्त सा बना लिया है कि "अभी कुछ भी उपाय न करना चाहिये। जो कुछ इस समय करना चाहिये वह यही है कि प्रतीक्षा करें और एकाधिकारोंके दूषणोंके दूर करनेके उपाय और साधनोंपर गम्भीर विचार करें।" उस विचारसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं है। प्रतीक्षा करनाही उचित प्रतीत होता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि प्रतीक्षा कबतक करते रहें? प्रतीक्षाका भी कोई समय होता है। एकाधिकार और ट्रस्टोंके दूषणोंसे जब

इस दिन रात पीड़ित हो रहे हों उस समय प्रतीक्षासे कैसे काम चल सकता है। कोई न कोई उपाय तो शीघ्र करनाही पड़ेगा।

(६) भिन्न भिन्न सम्पत्तिशास्त्रज्ञोंके प्रदर्शित उपायोंकी आलोचना की जा चुकी है। अब हम एकाधिकारोंके दूषणोंके दूर करनेके उन उपायोंको प्रगट करेंगे जिनको कि हम ठीक समझते हैं और जिनसे कि बहुत कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। एकाधिकारों और ट्रस्टोंके दूषणोंसे बचनेके लिए हमको समाजमें साधारण ज्ञान तथा विशेष ज्ञानका पूर्ण प्रचार करना चाहिये। साधारण ज्ञानसे जहाँ प्रत्येक व्यक्ति जीवनके संघर्षों तथा कष्टोंसे अपने आपको किसी सीमातक स्वरक्षित कर सकेगा वहाँ विशेष ज्ञान से बहुत सी आर्थिक घटनाओंपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सकेगा।

दृष्टान्त रूपसे "प्राकृतिक एकाधिकारों"को लीजिये। प्राकृतिक एकाधिकारोंमें रेलवे टेलिफोन आदिके ऐसे व्यवसाय नहीं हैं जिनमें स्पर्धाकी अधिक सम्भावना हो सके। इस अवस्थामें इनमें राज्य जो कुछ कर सकता है वह यही है कि विशेष विशेष सहायताओं-का इनको अवसर न दे। साथ ही इनपर कर आदि भी इस प्रकारके लगावे जिससे यह अन्य व्यवसायोंके सदृश अवस्थामें हो रहें। यह सब करनेपर भी सफलता प्राप्त करनेमें बीसों विघ्न हैं। राज्य जैसा कहते एकाधिकारी व्यवसाय न था, ट्रस्ट आदि वैसा ही करने लगते तब तो कोई बात न थी। परन्तु यह होता ही नहीं है। जो कुछ होता है वह इससे सर्वथा विपरीत है। एकाधिकारी व्यवसाय तथा ट्रस्ट किसी प्रकार भी राजकीय करकी कुछ भी परवाह नहीं करते हैं। पदार्थोंके रेलोंपर भेजनेके रेट शीघ्र शीघ्र बदलते रहते हैं। रेलवेके प्रबन्धकर्त्ताओंका एक दूसरी कम्पनियोंपर विश्वास नहीं है। इनसे यह लोग विशेष विशेष बड़े बड़े धनाढ्य व्यवसाइयों तथा व्यापारियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान-में पदार्थ भेजनेमें साधारण व्यापारी व्यवसायियोंकी अपेक्षा कम दर रखते हैं। परन्तु यह सब चोरी छिपे छिपेही की जाती है और जनसाधारणको पदार्थोंके दूर दूरतक भेजनेकी एक ही दरका पता दिया जाता है। इन बातोंसे जो कुछ लाभ पहुँचता है वह धनाढ्योंकोही पहुँचता है, साधारण प्रजाको तो एकही बढ़ी हुई दरपर पदार्थ भेजने पड़ते हैं। रेलवेके प्रबन्धकर्त्ताओंकी उपरिलिखित धोखेबाजीसे जहाँ साधारण व्यापारी व्यवसायी पूर्ण हानियाँ तथा घाटा अपने व्यापार व्यवसायमें उठाते हैं वहाँ समाजका जो आचार नष्ट होता है वह कभी भी सहन नहीं हो सकता है।

इन सब विकट समस्याओंसे पार होनेका कई एक सम्पत्तिशास्त्रज्ञ यह उपाय बताते हैं कि रेलवे, ट्राम्वेके सदृश बड़े बड़े एकाधिकारशील प्राकृतिक व्यवसायोंको राज्य अपने हाथमें ले ले। यहाँपर लेखकका जो कुछ कथन है वह यह है कि अमरीका जैसे प्रतिनिधि-सत्ताक राज्योंमें यह बहुत सम्भव नहीं है। जर्मनीमें राज्यकी शक्ति पर्याप्त है और उसका प्रत्येक कार्य भी निर्द्वन्द्व तथा पूर्ण उत्तम है परन्तु अमरीकामें यह कहाँ! वहाँ यदि राज्य, धनाढ्यों तथा ट्रस्टवालोंकी शक्ति लेनेका यत्न

करे तो राज्यकी अपनी ओर नहीं है । क्योंकि यह पूंजीपति लोग रुपयोंके बलपर साम्राज्यके नियामक तथा शासक सभाओंको अपनेही प्रतिनिधियोंसे भर देंगे जैसा कि अभीतक भरते भी हैं । इस अवस्थामें साम्राज्यकी दोनों सभाओंमें धनाढ्योंकी इच्छाओंके विपरीत कुछ भी कार्य न हो सकेगा । सारांश यह है कि राष्ट्रीय समष्टिवाद स्वेच्छाचारी राज्योंमें ही सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है, प्रजासत्ताक राज्योंमें उससे बहुत सफलताओंकी आशा करना वृथा है । इस बातकी सचाईका इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि शिकागो जैसे नगर अपने यहांकी रेलवेको अपनी अत्यन्त आवश्यक इच्छाओंपरभी चलनेको बाधित नहीं कर सके हैं ।

इसप्रकार स्पष्ट है कि जबतक समाजके व्यक्तियोंका आचार उच्च न हो और उनका राजनैतिक जीवन निस्स्वार्थ न हो तबतक धनाढ्योंपर प्रभुत्व पाना और उनको समाजके हितोंके अनुसार चलाना सर्वथा असंभव है । एक बात अवश्यमेव हो सकती है और यह यह है कि राज्य बहुत सी, कानें मिट्टीका तेल आदि भूगर्भकी वस्तुओंको तथा अन्य इसी प्रकारके प्राकृतिक पदार्थोंको अपनी संपत्ति बना ले और उनका कुछ समयके लिए ठेका तथा प्रबन्ध बड़े बड़े धनाढ्योंके हाथमें दे दे। यही एक विधि है जो कि बहुत कुछ सफलताको दे सकती है । किसी पदार्थको धनाढ्यों-की सर्वदाके लिए संपत्ति बना करके छीनना बहुतही कठिन है । जो कुछ हो सकता है वह यही है कि उन पदार्थोंको धनाढ्योंकी संपत्ति बनने ही न दिया जावे ।

(७) ट्रस्ट तथा एकाधिकारोंके कारण भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके पास जो धन एकत्रित हो जाता है उसको जायदाद तथा दायादके नियमोंके द्वारा बहुतोंमें विभक्त कर देना समाजके लिए बहुतही हितकर है । करद्वारा भी इसी उद्देश्यके पूर्ण करनेमें पर्याप्त सहायता पहुँच सकती है । दृष्टान्तरूपसे इङ्गलिस्तान, न्यूयार्क और कुछ एक स्विस् राष्ट्रोंमें दूरके सम्बन्धियोंको जब जायदाद मिलती है तब उनपर उसका २० शतकतक राज्यकरके तौरपर लेता है, यही नहीं । संकुचितसे संकुचित विचारवाले न्यायाधीश भी इसी बातके पक्षमें हैं कि जायदाद तथा दायादभागी पुरुषोंपर जितना अधिकार लग सके उतना अधिक कर लगना चाहिये । फ्रान्समें प्राचीनकालसे यह नियम चला आया है कि पिता-की जायदाद सब पुत्रोंमें समान तौर पर बँटनी चाहिये । इस नियमके द्वारा वहाँपर आश्चर्य-प्रद धनकी समानता हो गयी है । चूँकि इंगलिस्तानमें ऐसे राज्य नियम विद्यमान नहीं हैं अतः वहाँपर अभी तक बड़े बड़े जमींदारोंकी पर्याप्त अधिक संख्या विद्यमान है, इस विषयपर हमने अपनी पुस्तकके 'समष्टिवाद' नामी परिच्छेदपर पर्याप्त तौरपर लिखा है अतः इस प्रकरणको यहाँपर छोड़ते हैं ।

(८) जायदाद तथा दायादपर कर तथा उसके सम विभागके सदृशही एक और भी विधि है जिससे बृहत्पूँजीपति एकाधिकारी शीघ्र न बन सकेंगे । जिन पदार्थोंमें तट-करके कारण एकाधिकारने जन्म लिया हो उन उन पदार्थोंके आयातको स्वतन्त्रता देनी चाहिये

और उसने [illegible] हेतु [illegible]। [illegible] विदेशोंमें [illegible] बेचने [illegible] अपने [illegible] एकाधिकारी व्यवसायोंको भी अपने [illegible] बेचने लगे। इसी [illegible] भी अपने यहाँके एकाधिकारी व्यवसायोंको [illegible] कम [illegible], [illegible] विदेशके [illegible] [illegible], बेचनेपर [illegible] कर दिया था। तात्पर्य यह है कि [illegible] तथा एकाधिकारी व्यवसायोंके प्रभुत्वको तोड़ा जा सकता है। अन्यथा [illegible] द्वारा उनके आधिपत्यको नष्ट करना असम्भव है।

(९) पेटेन्ट सम्बन्धी एकाधिकारोंके प्रभुत्वको कम करनेकी बहुतसी विधियाँ भिन्न भिन्न अर्थशास्त्रज्ञोंने प्रगट की है जिनमेंसे कुछ एकका उल्लेख हम यहाँपर कर देते हैं।

(१) अधिक वेतन लेनेवाले या बुरा माल बेचनेवाले या अन्य इसीप्रकारके गर्हित कर्म करनेवाले पेटेन्ट्सके स्वामियोंसे उनके पेटेन्ट्सको राज्य उनको उचित दाम दे दे तथा उन पेटेन्ट्सको सारी प्रजापर प्रकाशित करके उन पेटेन्ट पदार्थोंके निर्माणकी सारी प्रजाको आज्ञा दे दे। ऐसा करनेसे पेटेन्ट्सकी सबसे बुराइयाँ शीघ्रही दूर की जा सकती हैं।

(२) दूसरी विधि यह है कि राज्य पेटेन्ट्सका अधिकारही किसी व्यक्तिको इस शर्तपर दे दे कि जो उस व्यक्तिको कमीशनद्वारा नियत दाम दे दे वह हर भी उस पदार्थको बनाकर बेचने लग सके।

(३) तृतीय विधि यह है कि पेटेन्ट्सके स्वामियों पर अतिरिक्त कर बढ़ाया जावे। इन विधियोंका अन्य देशोंने प्रयोग किया है और इनके द्वारा उनको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इस कार्यमें अभी तक इङ्गलैण्ड और जर्मनी आगे हैं। अमरीकाही एक ऐसा देश है जिसमें इन विधियोंसे एकाधिकारोंको रोकनेका यत्न नहीं किया गया है।

(१०) इन ट्रस्टों तथा एकाधिकारोंकी वृद्धिको रोकनेका एक सबसे अच्छा उपाय यह है कि आवश्यकीय वैयक्तिक व्यवसायोंका निरीक्षण राज्यके हाथमें हो। राष्ट्र संघटनात्मक अमरीका जैसे देशोंमें यह निरीक्षण मुख्य राज्यहीके अपने हाथमें होना चाहिये। यदि राष्ट्रोंके हाथमें यह निरीक्षणका कार्य होगा तो इन ट्रस्टों तथा एकाधिकारोंकी वृद्धिको रोकना कुछ असम्भव हो जावेगा। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी विशेष आमदनीका साधन भी तो यह ट्रस्ट तथा एकाधिकारी व्यवसायही होते हैं। इस अवस्थामें ऐसा कौन राष्ट्र होगा जो कि अपनी आमदनी घटाना चाहेगा? क्योंकि एकाधिकारी व्यवसायों तथा ट्रस्टोंकी वृद्धिके रोकनेसे उस राष्ट्रकी आमदनीका घट जाना स्वाभाविकही है। यही नहीं, यदि कहीं गलतीसे यह कार्य राष्ट्रोंके हाथोंमें चला जावे तो बहुत सम्भव है कि यह बुराई और अधिक न बढ़ जावे जिसके रोकनेके लिए एक प्रबल प्रयत्नकी अत्यन्त आवश्यकता हो।

प्राणनाथ



शब्द ढूंढने व गढ़नेका कार्य्य सौंप देना चाहिये। यह काम किसी एक लेखकसे नहीं हो सकता। उस कमेटीके इस कामसे लेखकोंको बड़ा लाभ होगा और अर्थशास्त्र संबंधी पुस्तकोंके लिखनेमें एक बड़ी कठिनता दूर होजायगी आशा है कि हमारे साहित्य-सम्मेलनके सचालकगण इस निवेदनपर उचित ध्यान देंगे।

अर्थशास्त्र संबंधी पुस्तकोंका अभाव दूर करनेके लिए साहित्य भंडार, नागरी-प्रचारिणी सभा, साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय, ज्ञानमंडल सरीखी संस्थाओंको हिंदीके धुरंधर लेखकोंसे मौलिक ग्रंथ लिखवाकर शीघ्रही प्रकाशित करना चाहिये। जबतक विदेशी विनिमयपर कोई मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होता तबतक इस लेखमालाद्वारा इस विषयपर अपने विचार पाठकोंके सामने रखना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ और यदि इन लेखोंद्वारा मैं उन्हें इस विषयको समझानेमें किंचितमात्र भी सहायता पहुँचा सका तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

अंगरेजी भाषामें फारेन एक्सचेंज शब्द दो तीन अर्थोंमें उपयोग किया जाता है। व्यवहारमें यह शब्द कभी कभी विनिमयकी दरके अर्थमें उपयोग किया जाता है। श्रीयुत कमोमल एम० ए० ने माघ सं० १९७६ की सरस्वतीमें एक्सचेंज शीर्षक लेखमें भी उसका इसी अर्थमें उपयोग किया है। आप लिखते हैं—"वह भाव जिससे एक देशमें प्रचलित सिक्का दूसरे देशके प्रचलित सिक्केसे बदला जा सके, एक्सचेंज कहाता है। भारतवर्षमें चाँदीका सिक्का—रुपया है। उसके सोलह आने होते हैं; और प्रत्येक आने-की बारह पाइयाँ होती हैं। इंगलिस्तानका प्रचलित सिक्का सोनेका—पौंड है, जिसके बीस शिलिंग होते हैं, और प्रत्येक शिलिंग १२ पेंसके होते हैं जिस भावसे रुपये, आने, पाइयोंके पौंड, शिलिंग, पेंस, बन सकते हैं, उसे एक्सचेंज कहते हैं।"

किन्तु मेरी समझमें एक्सचेंजकी यह परिभाषा अपूर्ण है। इंगलिस्तान और आस्ट्रेलियामें प्रचलित सिक्के एकसे हैं। दोनोंमें पौंड, शिलिंग, पेंस प्रचलित हैं। उप-रोक्त परिभाषाके अनुसार इन दोनों देशोंका एक्सचेंज क्या होगा यह सरलतासे समझमें नहीं आता और यह समझनेमेंभी कठिनता पड़ती है कि इन दोनों देशोंके विनिमयकी दरमें भी घटाबढ़ी हुआ करती है। यदि यह मानलें कि संसारके सब देश पौंड, शिलिंग, पेंस-का उपयोग करने लग जावें जैसा कि बिलकुल असंभव नहीं है तो फिर समस्या और भी कठिन हो जाती है। विनिमयकी दरके विवेचनके अतिरिक्त विदेशी विनिमयमें उन सब लेन देनका विवेचनभी शामिल है जिनके द्वारा एक देश अन्य देशोंका कर्जदार व लेनदार बन जाता है और इसमें इसका विचारभी किया जाता है कि वह कर्ज व लेनी किस प्रकार-से चुकाई जाती है और इसका विनिमयकी एक्सचेंजकी दरपर क्या प्रभाव पड़ता है। विदेशी विनिमयमें एक देशका अन्य देशोंसे लेनी देनीका विनिमय होता है और इसी लेनी देनीके बारेमें सब बातोंकी जाँच करना विदेशी विनिमयका प्रतिपादित विषय है।

यहाँ पहिले पहिल हम इस प्रश्नपर विचार करेंगे कि एक देश अन्य देशोंका

विदेशी विनिमय



अर्थशास्त्रमें विदेशी विनिमयका विषय वस्तुतही गूढ़ है। वह बहुत सी बारीकियोंसे भरा हुआ है। साधारण मनुष्योंको उन सबका समझना सरल नहीं है। अर्थशास्त्रका साधारण ज्ञान रखनेवाले मेरे समान कई मनुष्योंको इस विषयको अच्छी तरह समझनेमें कभी कभी बड़ी कठिनता पड़ती है। विषय गूढ़ होनेपर भी व्यापारियोंके लिए यह वस्तुतही महत्वका है क्योंकि विनिमयकी दर थोड़ी भी बदली कि कई व्यापारियोंको हजारों रुपयोंका एक दिनमें नुकसान, और कई व्यापारियोंको उतनाही फायदा हो जाता है। विनिमयकी दरकी घटाबढ़ी कुछ खास खास सिद्धान्तोंके अनुसार होती है और उनका समझना प्रत्येक व्यापारीके लिए परमावश्यक है।

आजकल तो इस विषयका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि हमारे विनिमयकी दरमें दिन प्रति दिन घटाबढ़ी हो रही है जिससे देशके व्यापारमें बड़ी असुविधा पड़ रही है। गतवर्षकी करसी कमेटीने सोनेके सावरिनका दस रुपयोंके बराबर दर नियुक्त किया है और भारत सरकारके भरसक प्रयत्न करनेपर व कई करोड़ रुपयोंके रीवर्सकौंसिल (भारतसचिवके नामपर खींचीहुई हुंडियें) घाटेसे बेचनेपर भी सावरिनकी दर १५ रुपयेसे अधिक कम न होने पायी है। अन्य देशोंके विनिमयकी दरोंमें भी भारतके समान घटाबढ़ी हो रही है और उन सबको भली प्रकार समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि एक देश अन्य देशोंका कर्जदार व लेनदार कैसे होता है, वह लेन देन किस तरहसे चुकाया जाता है और उसका प्रभाव विनिमय (उस कर्जके चुकाये जाने) की दरपर क्या पड़ता है।

अंगरेजी भाषामें इस विषयपर कई पुस्तकें लिखी गई हैं परन्तु हिन्दी भाषामें मेरे देखनेमें कोई ऐसा एक भी ग्रंथ नहीं आया जिसमें यह विषय भलीप्रकारसे प्रतिपादित किया गया हो। हिन्दी भाषामें अर्थशास्त्रमें मौलिक पुस्तकोंका व ख़ासकर विदेशी विनिमय सम्बन्धी एक भी पुस्तकका अभाव प्रत्येक शिक्षित पुरुषको अवश्यही खटकता होगा। क्या हमारे लिए यह लज्जाकी बात नहीं है कि हमारी भाषामें, जिसके कि संपूर्ण भारतकी राष्ट्रभाषा होनेमें कुछ भी शक नहीं है, अर्थशास्त्र सम्बन्धी ख़ास ख़ास अंगरेजी शब्दोंके टेक्निकल उपयुक्त हिन्दी शब्द नहीं मिलते हैं। लेखक अपनी इच्छानुसार एक ही अंगरेजी शब्दके लिए भिन्न भिन्न शब्द प्रयोग किया करते हैं जिससे जनताको इस विषयको समझनेमें बड़ी असुविधा पड़ती है। हिन्दीमें जो कोश तय्यार किये गये हैं उनमें भी शब्द बराबर नहीं मिलते। साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय अथवा नागरी-प्रचारणी सभा-को यह कार्य शीघ्रही हाथमें लेना चाहिये और हिन्दी जाननेवाले अर्थशास्त्रज्ञोंकी एक कमेटी बनाकर उनसे अर्थशास्त्र सम्बन्धी सब अंगरेजी ख़ास ख़ास शब्दोंके उपयुक्त हिन्दी

विदेशी विनिमय

[illegible] दूने व [illegible] करना चाहिये। यह काम किसी एक लेखकसे नहीं हो सकता। उस समय तक इस कामसे [illegible] बड़ा लाभ होगा और अर्थशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकोंके लिखनेमें एक बड़ी कठिनता दूर होजायगी। आशा है कि हमारे साहित्य-सम्मेलनके कार्यकर्ता इस विषयपर उचित ध्यान देंगे।

अर्थशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकोंका अभाव दूर करनेके लिए साहित्य भंडार, नागरी-प्रचारिणी सभा, साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय, इत्यादि संस्थाओं तथा सज्जनोंको हिंदीके धुरंधर लेखकोंसे मौलिक ग्रंथ लिखवाकर शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहिये। जबतक विदेशी विनिमयपर कोई मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होता तबतक इस लेखमालाद्वारा इस विषयपर अपने विचार पाठकोंके सामने रखना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ और यदि इन लेखोंद्वारा मैं उन्हें इस विषयको समझानेमें किंचिन्मात्र भी सहायता पहुँचा सका तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

अंगरेजी भाषामें फॉरेन एक्सचेंज शब्द दो तीन अर्थोंमें उपयोग किया जाता है। व्यवहारमें यह शब्द कभी कभी विनिमयकी दरके अर्थमें उपयोग किया जाता है। श्रीयुत बधीमल एम० ए० ने माघ सं० १९७६ की सरस्वतीमें एक्सचेंज शीर्षक लेखमें भी उसका इसी अर्थमें उपयोग किया है। आप लिखते हैं—"वह भाव जिसमें एक देशका प्रचलित सिक्का दूसरे देशके प्रचलित सिक्केमें बदला जा सके, एक्सचेंज कहाता है। भारतवर्षमें चांदीका सिक्का—रुपया है। उसके सोलह आने होते हैं; और प्रत्येक आने की बारह पाइयाँ होती हैं। इंग्लिस्तानका प्रचलित सिक्का सोनेका—पौंड है, जिसके बीस शिलिंग होते हैं, और प्रत्येक शिलिंग १२ पेंसका होते हैं जिस भावसे रुपये, आने, पाइयों पौंड, शिलिंग, पेंस, बन सकते हैं, उसे एक्सचेंज कहते हैं।"

किन्तु मेरी समझमें एक्सचेंजकी यह परिभाषा अपूर्ण है। इंग्लिस्तान और आस्ट्रेलियामें प्रचलित सिक्के एकसे हैं। दोनोंमें पौंड, शिलिंग, पेंस प्रचलित हैं। उपरोक्त परिभाषाके अनुसार इन दोनों देशोंका एक्सचेंज क्या होगा यह सरलतासे समझमें नहीं आता और यह समझनेमेंभी कठिनता पड़ती है कि इन दोनों देशोंके विनिमयकी दर भी घटाबढ़ी हुआ करती है। यदि यह मानलें कि संसारके सब देश पौंड, शिलिंग, पेंस का उपयोग करने लग जावें जैसा कि बिलकुल असम्भव नहीं है तो फिर समस्या और भी कठिन हो जाती है। विनिमयकी दरके विवेचनके अतिरिक्त विदेशी विनिमयमें उन सब लेन देनका विवेचनभी शामिल है जिनके द्वारा एक देश अन्य देशोंका कर्जदार व लेनदार बन जाता है और उसमें इसका विचारभी किया जाता है कि यह कर्ज व लेनी किस प्रकार से चुकाई जाती है और इसकी विषमताका एक्सचेंजकी दरपर क्या प्रभाव पड़ता है। विदेशी विनिमयमें एक देशका अन्य देशोंकी लेनी देनीका विनिमय होता है और उस लेनी देनीके बारेमें सब बातोंकी जांच करना विदेशी विनिमयका प्रतिपादित विषय है।

यहाँ पहिले पहिल हम इस प्रश्नपर विचार करेंगे कि एक देश अन्य देशों

कर्जदार व लेनदार किन किन कारणोंसे होता है। इसके समझनेके बाद हम यह बतलावेंगे कि यह पारस्परिक लेन देन किस प्रकारसे चुकाया जाता है।

और उसके बाद इस प्रश्नपर विचार करेंगे कि लेन देनकी विषमताका उस दरपर क्या प्रभाव पड़ता है, उसकी घटाबढ़ीके क्या कारण हैं और वह कैसे स्थिर किया जा सकता है।

कोई देश अन्य देशोंका किन किन कारणोंसे कर्जदार होता है

कई मनुष्योंको यह भ्रम प्रायः हो जाया करता है कि देशकी आयात और निर्यातकी विषमतापरही विदेशी विनिमयकी दर निर्भर रहती है। और इसलिए वे विदेशी विनिमयके विषयपर विचार करती समय अन्य सब कारणोंपर उचित ध्यान नहीं देते। आयात व निर्यातका प्रभाव विदेशी विनिमयकी दरपर अवश्य होता है परंतु यह हमेशा ध्यान देना चाहिये कि किसीभी देशका लेन-देन उसके आयात या निर्यातपर ही निर्भर नहीं रहता। इंग्लिस्तानके सम्बन्धमें यह अक्सर देखनेमें आया है कि उसके निर्यातसे आयातकी मात्राही अधिक रहती है और तिसपर भी यह अन्य देशोंका कर्ज़दार नहीं रहता। देशके लेन देनकी विषमता कई बातोंपर निर्भर रहती है और उनका वर्णन नीचे किया जाता है। नीचे दिये हुए कारण ऐसे हैं जो कि सब देशोंको लागू हो सकते हैं और जब किसी ख़ास एक देशके बारेमें विचार करना हो तो यह जाननेका प्रयत्न करना चाहिये कि प्रत्येक कारण देशकी लेन देनपर कितना प्रभाव डालता है।

एक देश अन्य देशोंका नीचे लिखे कारणोंसे कर्ज़दार हो जाता है।

(१) **देशका सम्पूर्ण आयात** :—विदेशी व्यापारके कारण देशमें कुछ चीज़ें दूसरे देशोंसे आती हैं और कुछ चीजें उससे दूसरे देशोंमें बाहर जाती हैं। जितना माल दूसरे देशोंसे आता है उसके लिए वह देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। यह माल या तो व्यापारियोंद्वारा या सरकारद्वारा मँगाया हुआ रहता है और उसमें जवाहिरात (हीरा पन्ना) वगैरह भी शामिल रहता है। भारत इसी कारणसे प्रतिवर्ष लगभग १२५ करोड़ रुपयोंका अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(२) **विदेशी जहाज़ोंका भाड़ा** :—यदि देशमें अन्य देशोंसे माल विदेशी जहाज़ोंमें आता है तो जहाज़ोंके भाड़ेके लिए यह अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। जैसे कि भारतमें बहुतसा माल अंगरेजी जहाज़ोंमेंही आता है। इसलिए भारत अंगरेज़ोंका इन जहाज़ोंके भाड़ेके लिए ऋणी हो जाता है। ऐसाही अन्य देशोंका भी समझना चाहिये।

(३) **विदेशी जहाज़ोंकी खरीदी और देशी जहाज़ोंके कम्पनियोंका विदेशमें उधारी** :—देशके व्यापारी स्थान जो रुपया उधार लेकर विदेशोंमें खर्च करते हैं और जो विदेशी जहाज़ खरीदा करते हैं उनका रुपया चुकानेके लिए यह दूसरे

देनदार ऋणी हो जाता है। जैसे कि इंग्लिस्तानके किसी जहाजका कप्तान अपने जहाजके मरम्मतके लिए बम्बईमें किसी बनिये से उधार लेता है तो उसका इंग्लिस्तानको भारतमें भेजना पड़ता है और उसके लिए वह भारतका कर्जदार हो जाता है। इसी तरहसे यदि भारतका कोई धनी इंग्लिस्तानकी एक जहाज खरीदता है तो भारत इंग्लिस्तानका उसकी कीमतके लिए कर्जदार हो जाता है।

(४) देशी अथवा विदेशी कर्जके बांड, शेयर, हुण्डियें इत्यादि की विदेशमें खरीदी। देशके निवासी या देशकी सरकार यदि दूसरे देशवालोंसे उनके या अन्य देशकी गौवर्नमेंटकी व डिबेंचर बांड (कर्जके बांड) 'स्टाक' शेयर व अन्य हुण्डियें किसी भी कारणसे खरीदते हैं तो वे उन देशोंके उनकी कीमतके बराबर कर्जदार हो जाते हैं। जैसे कि यदि भारतमें किसी मनुष्य या सरकारने ब्रिटिश सरकारकी गौवर्नमेंटकी किसी बड़ी कम्पनीका डिबेंचर बांड अथवा शेयर या फायदेकी गरजसे कुछ हुण्डियें इंग्लिस्तानमें खरीदली तो भारत उनकी कीमतके बराबर इंग्लिस्तानका कर्जदार हो जावेगा।

(५) विदेशियोंको अपने देशमें रहकर इस देशकी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूपसे सेवायें। जैसा कि आगे बतलाया जावेगा विदेशके लेनदेन प्रायः बंकों द्वारा होते हैं और उनको यह काम करनेके लिए कमीशन देना पड़ता है। मालका बीमा करानेके लिए भी विदेशी बीमा कम्पनियोंको कुछ देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूपसे दूसरे देशमें रहनेवाले एक देशकी जो कुछ सेवायें करते हैं उन सब सेवाओंको इस देशको चुकाना पड़ता है और उसके लिए व उनके ऋणी हो जाते हैं।

(६) दूसरे देशोंको दिया हुआ कर्ज (देनेके समय)। दूसरे देशोंकी सरकारों व अन्य किसी व्यक्तियोंको या फर्मोंको थोड़े समयके लिए या अधिक समयके लिए जो कर्ज दिया जाता है तो जिस समय वह दिया जाता है उस समय कर्ज देनेवाला देश अन्य देशोंका उतनी रकमके लिए कर्जदार हो जाता है। जैसा कि मान लीजिये कि इंग्लिस्तानवासियोंने भारतवासियों या भारत सरकारको पाँच करोड़ रुपयोंका कर्ज दिया तो इंग्लिस्तानको यह रुपया उसी समय देना पड़ेगा इसलिए वह उस समय भारतका पाँच करोड़ रुपयोंका कर्जदार हो जावेगा। ऐसेही सब देशोंका समझना चाहिये। परन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि कर्ज जब कर्जदार देशको दे दिया जाता है तो फिर जबतक उसका वापिस चुकानेका समय नहीं आता तबतक उसका देशकी लेन देनपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

(७) विदेशसे लिया हुआ कर्ज (चुकानेके समय)। जब दूसरे देशोंका कर्ज चुकानेका समय आता है तो जिस देशको कर्ज चुकाना है वह अन्य देशोंका कर्जदार हो जाता है। चाहे वह कर्ज विदेशी सरकार या बंकरोंसे लिया गया हो या वह थोड़े या अधिक समयके लिए लिया गया हो। मान लीजिए कि भारत सरकारने

विलायतमें १० करोड़ रुपयोंका [illegible] १८ करोड़के [illegible] । [illegible] तुलनेका समय आता है तो इंगलैण्ड भारत १० करोड़ रुपयोंके लिए कर्जदार हो जाता है।

(८) विदेशी कर्जपर ब्याज और विदेशी पूंजीपर मुनाफ़ा। किसी एक देशवालोंने अन्य देशवालोंको रुपये उधार दे रखे हैं उनका ब्याज और देशमें जो विदेशी पूंजी लगी हुई है व अन्य देशवालोंने जो इस देशकी कम्पनियोंके शेयर आदि खरीद रखे हैं तो उनका मुनाफ़ा इत्यादिके लिए वह देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें जितनी विदेशी पूंजी लगी हुई है उसका वार्षिक मुनाफ़ा, भारतकी सार्वजनिक ऋण जो अन्य देशवालोंने खरीदे हैं उनका डिविडेंड और भारत सरकार व अन्य कम्पनियों और व्यक्तियोंने जो अन्य देशवालोंसे रुपये उधार लिये हैं उनका ब्याज इत्यादि सब बातोंके लिए भारत अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(९) विदेशियोंकी बचत व मुनाफ़ा। देशमें विदेशी लोग नौकरी पर तथा व्यापार इत्यादि करके धन कमाकर जो बचत करते हैं और अपने देशोंको भेजते हैं उसके लिए देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें सरकारी बड़ी बड़ी जगहोंपर विदेशी कर्मचारीही नियुक्त किये गये हैं और उनको तनख्वाह बहुत अधिक दिये जानेसे वे बहुत धन बचा लेते हैं और वे उसका बहुतसा भाग अपने देशको भेजते हैं। भारतके चायके बहुतसे खेत, जूटकी मिलें, कोयलेकी बहुत सी खानें व भारतीय व्यापारका बहुत सा भाग, विदेशियोंके हाथमें है और उनका सब मुनाफ़ा भी विदेश भेज दिया जाता है, इसलिए भारत इन सब रकमोंके लिए अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(१०) देशवासियोंका अन्य देशोंकी सफ़र व वहाँ रहनेका ख़र्च। जब किसी देशके निवासी अन्य देशोंको सफर करनेको या वहाँपर कुछ दिनोंके रहनेके लिए जाते हैं व अपना सब खर्च अपने देशसे मँगाते हैं तो वह देश अन्य देशोंका उस रकमके लिए कर्ज़दार हो जाता है। जैसे कि अमरीकावाले फ्रांस व स्विट्ज़रलैंडमें कई ग़ुज़र करनेको या वहाँपर कुछ समयके लिए निवास करने को आते हैं और वे अपना सब खर्च अमरीकासे ही मँगाते हैं इसलिए अमरीका इन देशोंका इस खर्चके लिए कर्ज़दार हो जाता है।

(११) अन्य देशोंका विशेष कर देना। जब कोई देश किसी कारणसे अन्य देशोंको विशेष कर देनेके लिए बाधित किया जाता है तो वह देश उस रकमके लिए अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। [illegible] १९१४ से १९१८ [illegible] ... [illegible] कई करोड़ मार्क [illegible] ... है। ... है और [illegible] कई [illegible] ... [illegible]

(१२) देशकी सरकारका अन्य देशोंमें खर्च। कभी कभी सरकारको राजनैतिक व देश-रक्षा सम्बन्धी कई कारणोंसे अन्य देशोंमें बहुत खर्चा करना पड़ता है और इन सब खर्चोंके लिए देश अन्य सब देशोंका कर्जदार हो जाता है। भारत सरकारको विलायतमें प्रतिवर्ष कई करोड़ रुपयोंका खर्च करना पड़ता है जिसे कि होम चार्जेज कहते हैं। इसके अतिरिक्त उसको मेसोपोटामिया सरीखे देशोंमें रखी हुई हिन्दुस्तानी फौजोंका भी कुछ खर्च देना पड़ता है। इन सब खर्चोंके लिए भारत अन्य देशोंका ऋणी हो जाता है।

देश अन्य देशोंका लेनदार किन किन कारणोंसे होता है

देश अन्य देशोंका कर्जदार किन कारणोंसे होता है यह जाननेके उपरान्त यह जानना बहुत आवश्यक है कि वह दूसरे देशोंका लेनदार किन किन कारणोंसे होता है। ये कारण ऊपर दिये हुए कारणोंके बहुत कुछ समान हैं। ये भी सब देशोंसे लागू हो सकते हैं। यदि किसी एक देशके सम्बन्धमें विचार करना हो तो यह जाननेका प्रयत्न करना चाहिये कि प्रत्येक कारणका देशकी लेनदेनपर कितना प्रभाव पड़ता है।

कोई भी देश नीचे लिखे कारणोंसे अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है।

(१) देशका सम्पूर्ण निर्यात। देशमें जितना माल बाहर जाता है उन सबके लिए वह अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। इसमें व्यापारियोंद्वारा भेजा हुआ माल, सरकारद्वारा भेजा हुआ माल, विदेशोंसे आया हुआ बाहर भेजा हुआ माल और देशसे बाहर भेजा हुआ जवाहरात शामिल है। भारत केवल इसी कारणसे प्रायः १५० करोड़ रुपयोंका प्रति वर्ष लेनदार हो जाता है।

(२) देशी जहाजोंका विदेशी माल लेजानेका भाड़ा। जब किसी देशकी जहाजें अन्य देशोंका माल एक जगहसे दूसरी जगह ले जाती हैं तो वह अन्य देशोंसे उसके भाड़ेका लेनदार हो जाता है। जैसे कि संसारका बहुतसा व्यापार इंग्लिस्तानकी जहाजोंद्वाराही होता है इसलिए इंग्लिस्तान इसी भाड़ेके कारण अन्य देशोंसे कई लाख रुपयोंका लेनदार हो जाता है।

(३) जहाजोंका विदेशियोंको बेचना और नीज विदेशी जहाजोंके कप्तानोंका देशमें उधार लेना। जब कोई देश अपने देशमें बनी हुई जहाजोंको अन्य देशोंको बेचता है तो वह अन्य देशोंसे उनकी कीमतका लेनदार हो जाता है। और जिस देशमें बहुतसे जहाजगाह होते हैं और विदेशी जहाज वहांपर आते हैं तो कभी कभी उनके कप्तान अपना खर्च चलानेके लिए वहांके व्यापारियोंसे कुछ उधार लेते हैं जिसके लिए वह देश अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। इंग्लिस्तान इस प्रकार अन्य देशोंको जहाज बेचता है तो वह इसी कारणसे कई करोड़ रुपयोंका लेनदार हो जाता है।

(४) देशी अथवा विदेशी कर्जके बांड, शेयर, हुण्डियें इत्यादिका विदेशियोंको बेचना। यदि देशके निवासी अन्य देशवालोंको हुंडी, बांड व

विलायतमें १० करोड़ रुपयोंका कर्ज़ १५ वर्षके लिए लिया। १५ वर्ष पूर्ण होनेपर जब उसके चुकानेका समय आता है तो उससमय भारत १० करोड़ रुपयोंके लिए कर्जदार हो जाता है।

(८) विदेशी कर्जपर ब्याज और विदेशी पूंजीपर मुनाफ़ा। *जितनी रकम देशवालोंने अथवा सरकारने अन्यदेशोंसे उधार ली है उसका ब्याज और* देशमें जो विदेशी पूँजी लगी हुई है व अन्य देशवालोंने जो इस देशकी कम्पनियोंके शेयर बांड इत्यादि खरीदे हैं तो उनका मुनाफा इत्यादिके लिए वह देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें जितनी विदेशी पूँजी लगी हुई है उसका वार्षिक मुनाफ़ा, भारतकी कंपनियोंके शेयर जो अन्य देशवासियोंने खरीदे हैं उनका डिविडेंड और भारत सरकार व अन्य कंपनियों और फर्मोंको जो अन्य देशवासियोंने रुपये उधार दिये हैं उसका ब्याज इत्यादि सब बातोंके लिए भारत अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(९) विदेशियोंकी बचत व मुनाफ़ा। देशमें विदेशी लोग सरकारी नौकरी कर तथा व्यापार इत्यादि करके धन कमाकर जो काम करते है और अपने देशोंको भेजते है उसके लिए देश अन्य देशोंका कर्जदार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें सरकारी बड़ी बड़ी जगहोंपर विदेशी कर्मचारीही नियुक्त किये गये हैं और उनको तनख्वाह बहुत अधिक दिये जानेसे वे बहुत धन बचा लेते है और वे उसका बहुतसा भाग अपने देशको भेजते है। भारतके चायके बहुतसे खेत, जूटकी मिलें, कोयलेकी बहुत सी खदानें व भारतीय व्यापारका बहुत सा भाग, विदेशियोंके हाथमें हैं और उनका सब मुनाफ़ा भी विदेश भेज दिया जाता है, इसलिए भारत इन सब रकमोंके लिए अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(१०) देशवासियोंका अन्य देशोंकी सफ़र व वहाँ रहनेका खर्च। जब किसी देशके निवासी अन्य देशोंको सफ़र करनेको या वहाँपर कुछ दिनोंको रहनेके लिए जाते है व अपना सब खर्च अपने देशसे मँगाते है तो वह देश अन्य देशोंका उस रकमके लिए कर्ज़दार हो जाता है। जैसे कि अमरीकासे फ्रांस व स्वीट्ज़रलैंडमें कई मनुष्य सफ़र करनेको या वहाँपर कुछ समयके लिए निवास करने को आते है और वे अपना सब खर्च अमरीकासे ही मँगाते है इसलिए अमरीका इन देशोंका इस खर्चके लिए ऋणी हो जाता है।

(११) अन्य देशोंका विशेष कर देना। जब कोई देश किसी कारणसे अन्य देशोंको विशेष कर देनेके लिए बाधित किया जाता है तो वह देश उस रकमके लिए अन्य देशोंका कर्जदार हो जाता है। जब फ्रांस स० १८४७ में जर्मनीसे हार गया था तब उसे प्रतिवर्ष कई करोड़ फ्रांक जर्मनीको कररूपमें देना पड़ता था, वही हाल अब जर्मनीका भी हुआ है और उसको कई करोड़ रुपयोंकी वार इंडेम्निटी देनी पड़ती है। इसलिए अब जर्मनी अन्य देशोंका उसी रकमके लिए ऋणी हो गया है।

(१२) देशकी सरकारका अन्य देशोंमें खर्च। कभी कभी सरकारको राजनैतिक व देश-रक्षा सम्बन्धी कई कारणोंमे अन्य देशोंमें बहुत खर्चा करना पड़ता है और इन सब खर्चोंके लिए देश अन्य सब देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। भारत सरकारको विलायतमें प्रतिवर्ष कई करोड़ रुपयोंका खर्च करना पड़ता है जिसे कि होम चार्जेज़ कहते हैं। इसके अतिरिक्त उसको मेसोपोटामिया सरीखे देशोंमें रक्खी हुई हिन्दुस्तानी फ़ौजोंका भी कुछ खर्च देना पड़ता है। इन सब खर्चोंके लिए भारत अन्य देशोंका ऋणी हो जाता है।

देश अन्य देशोंका लेनदार किन किन कारणोंसे होता है

देश अन्य देशोंका कर्ज़दार किन कारणोंसे होता है यह जाननेके उपरान्त यह जानना बहुत आवश्यक है कि वह दूसरे देशोंका लेनदार किन किन कारणोंसे होता है। ये कारण ऊपर दिये हुए कारणोंके बहुत कुछ समान हैं। ये भी सब देशोंको लागू हो सकते हैं। यदि किसी एक देशके सम्बन्धमें विचार करना हो तो यह जाननेका प्रयत्न करना चाहिये कि प्रत्येक कारणका देशकी लेनदेनपर कितना प्रभाव पड़ता है।

कोई भी देश नीचे लिखे कारणोंसे अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है।

(१) देशका *सम्पूर्ण निर्यात*। देशसे जितना माल बाहर जाता है उन सबके लिए वह अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। इसमें व्यापारियोंद्वारा भेजा हुआ माल, सरकारद्वारा भेजा हुआ माल, विदेशोंसे आया हुआ बाहर भेजा हुआ माल और देशसे बाहर भेजा हुआ जवाहरात शामिल है। भारत केवल इसी कारणसे प्राय १५० करोड़ रुपयोंका प्रति वर्ष लेनदार हो जाता है।

(२) देशी जहाज़ोंका विदेशी माल लेजानेका भाड़ा। जब किसी देशकी जहाजें अन्य देशोंका माल एक जगहसे दूसरी जगह ले जाती हैं तो वह अन्य देशोंसे उसके भाड़ेका लेनदार हो जाता है। जैसे कि संसारका बहुत सा व्यापार इंग्लिस्तानकी जहाजोंद्वाराही होता है इसलिए इंग्लिस्तान इसी भाड़ेके कारण अन्य देशोंसे कई लाख रुपयोंका लेनदार हो जाता है।

(३) जहाज़ोंका विदेशियोंको बेचना और और विदेशी जहाज़ोंके कप्तानोंका देशसे उधार लेना। जब कोई देश अपने देशमें बने हुए जहाज़ोंको अन्य देशोंको बेचता है तो वह अन्य देशोंसे उसकी कीमतका लेनदार हो जाता है। और जिस देशमें बहुतसे बन्दरगाह होते हैं और विदेशी जहाज़ वहाँपर आते हैं तो कभी कभी उनके कप्तान अपना काम चलानेके लिए वहाँके बैंकोंसे कुछ रुपया लेते हैं जिसके लिए वह देश अन्य देशोंका लेनदार होजाता है। इंग्लिस्तान तथा अन्य देशोंको जहाज़ बेचता है तो वह इसी कारणसे कई करोड़ रुपयोंका लेनदार हो जाता है।

(४) देशी अथवा विदेशी कर्ज़के बांड, शेयर, हुण्डियों इत्यादिका विदेशियोंको बेचना। यदि देशके निवासी अन्य देशवालोंको हुंडियां, बांड

विलायतमें १० करोड़ रुपयोंका कर्ज़ १५ वर्षके लिए लिया। १५ वर्ष पूर्ण होनेपर जब उसके चुकानेका समय आता है तो उससमय भारत १० करोड़ रुपयोंके लिए कर्ज़दार हो जाता है।

(८) विदेशी कर्जपर ब्याज और विदेशी पूंजीपर मुनाफ़ा। जितनी रकम देशवालोंने अथवा सरकारने अन्यदेशोंसे उधार ली है उसका ब्याज और देशमें जो विदेशी पूँजी लगी हुई है व अन्य देशवालोंने जो इस देशकी कम्पनियोंके शेयर बांड इत्यादि खरीदे हैं तो उनका मुनाफ़ा इत्यादिके लिए वह देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें जितनी विदेशी पूँजी लगी हुई है उसका वार्षिक मुनाफ़ा, भारतकी कम्पनियोंके शेयर जो अन्य देशवासियोंने खरीदे हैं उनका डिविडेंड और भारत सरकार व अन्य कम्पनियों और फर्मोंको जो अन्य देशवासियोंने रुपये उधार दिये हैं उसका ब्याज इत्यादि सब बातोंके लिए भारत अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(९) विदेशियोंकी बचत व मुनाफ़ा। देशमें विदेशी लोग सरकारी नौकरी कर तथा व्यापार इत्यादि करके धन कमाकर जो काम करते हैं और अपने देशोंको भेजते हैं उसके लिए देश अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। उदाहरणके लिए भारतमें सरकारी बड़ी बड़ी जगहोंपर विदेशी कर्मचारीही नियुक्त किये गये हैं और उनको तनख्वाह बहुत अधिक दिये जानेसे वे बहुत धन बचा लेते हैं और वे उसका बहुतसा भाग अपने देशको भेजते हैं। भारतके चायके बहुतसे खेत, जूटकी मिलें, कोयलेकी बहुत सी खदानें व भारतीय व्यापारका बहुत सा भाग, विदेशियोंके हाथमें है और उनका सब मुनाफ़ा भी विदेश भेज दिया जाता है, इसलिए भारत इन सब रकमोंके लिए अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है।

(१०) देशवासियोंका अन्य देशोंकी सफ़र व वहाँ रहनेका ख़र्च। जब किसी देशके निवासी अन्य देशोंको सफर करनेको या वहाँपर कुछ दिनोंको रहनेके लिए जाते हैं व अपना सब ख़र्च अपने देशसे मँगाते हैं तो वह देश अन्य देशोंका उस रकमके लिए कर्ज़दार हो जाता है। जैसे कि अमरीकासे फ्रांस व स्वीट्ज़रलैंडमें कई मनुष्य सफ़र करनेको या वहाँपर कुछ समयके लिए निवास करने को आते हैं और वे अपना सब ख़र्च अमरीकासे ही मँगाते हैं इसलिए अमरीका इन देशोंका इस ख़र्चके लिए ऋणी हो जाता है।

(११) अन्य देशोंका विशेष कर देना। जब कोई देश किसी कारणसे अन्य देशोंको विशेष कर देनेके लिए बाधित किया जाता है तो वह देश उस रकमके लिए अन्य देशोंका कर्ज़दार हो जाता है। जब फ्रांस सं० १८४७ में जर्मनीसे हार गया था तब उसे प्रतिवर्ष कई करोड़ मार्क जर्मनीको करके रूपमें देना पड़ता था, यही हाल अब जर्मनीका भी हुआ है और उसको कई करोड़ रुपयोंकी चार इंडेम्निटी देनी पड़ती है। इसलिए अब जर्मनी अन्य देशोंका उतनी रकमके लिए ऋणी हो गया है।

यदि किसी देशके निवासी अन्य देशोंमें व्यापार व नौकरी करनेको जाते हैं तो वहाँपर वे बचत करके या मुनाफा उठाके अपने देशको जो रकम भेजते हैं उस रकमके लिए वह देश अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। जैसे कि इंग्लिस्तानके निवासी अपना व्यापार बढ़ाने व नौकरी करनेके लिए संसारके प्रायः सब देशोंमें जाते हैं व वहाँपर वे जो बचत करके अपने देशको भेजते हैं उस रकमके लिए इंग्लिस्तान अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है।

(१०) **अन्य देशवासियोंका देशमें सफर व रहनेका खर्च।** यदि किसी देशमें अन्य देशोंके निवासी उसकी सुन्दरता अथवा अच्छी आबहवाके कारण सफर करने या कुछ समयके लिए रहनेको आते हैं और उसका सब खर्च अपने देशोंसे ही मँगाते हैं तो वह देश उन सब खर्चोंके लिए अन्य देशोंसे लेनदार हो जाता है। इटली व फ्रांसमें बहुतसे विदेशयात्री अन्य देशोंसे सफर करने या कुछ समयके रहनेके लिए आते हैं और खर्च अपने देशोंसे मँगाते हैं इसलिए इटली खास अन्य देशोंके लेनदार हो जाते हैं।

(११) **अन्यदेशोंका विशेष कर का देना।** यदि किसी सधि या खास ठहरावके अनुसार दूसरे देश किसी देशको विशेष कर देते हैं तो वह देश उस करके देनेके समय दूसरे देशोंसे लेनदार हो जाता है। इंग्लिस्तान इस प्रकारसे कई देशोंसे विशेष कर अथवा वार इंडेम्निटी प्रतिवर्ष वसूल करता है इसलिए वह अन्यदेशोंका इसी कारणसे कई करोड़ रुपयोंका लेनदार हो जाता है।

(१२) **विदेशी सरकारोंका देशमें खर्च।** यदि राजनैतिक, देशरक्षा सबंधी तथा सैनिक कारणोंसे अन्य देशोंकी सरकारें किसी देशमें कुछ खर्च करती हैं तो वह देश अन्य देशोंका उस खर्चके लिए लेनदार हो जाता है।

अब हम दूसरे लेखोंमें इन प्रश्नोंपर विचार करेंगे-कि देशोंका पारस्परिक लेन देन किस किस प्रकार चुकाया जाता है और उसकी विषमताका विनिमयकी दरपर क्या प्रभाव पड़ता है विनिमयकी दरकी घटाबढ़ीके क्या कारण है और [illegible] स्थिर किस प्रकारसे रखा जा सकता है।

दयाशंकर दुबे



व अन्य देशोंके शेयर इत्यादि बेचते हैं तो वे उन लोगोंके उनकी कीमतके लेनदार हो जाते हैं। जिनके पास पूंजी रहती है वे अपनी पूंजीको ऐसी जगह लगाना चाहते हैं जहाँपर उन्हें अधिक सूद मिलनेकी सम्भावना हो चाहे वह फिर कोई सा देश हो व कहींकी भी कम्पनी हो। इसलिए जिस देशकी व्याजकी दर कुछ कारणोंसे अधिक बढ़ जाती है वहाँपर अन्य देशोंके पूंजीपति अपना धन लगानेकी कोशिश करते हैं और उस देशके बैंक नोट, कम्पनियोंके शेयर व हुण्डियें इत्यादि खरीद लेते हैं इसलिए वह देश अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है।

(५) देशवासियोंद्वारा अन्य देशवासियोंकी सेवाएँ। जब किसी देशके निवासी अन्य देशवासियोंकी परोक्ष अपरोक्ष किसी भी प्रकारसे सेवा करते हैं तो वह देश अन्य देशोंका उन सेवाओंके लिए लेनदार हो जाता है। संसारका बहुतसा लेन देन इंगलैंडके जहाजोंद्वारा होता है और उसके कमीशनके लिए अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है।

(६) विदेशियोंका दिया हुआ कर्ज़ (चुकानेके समय)। जब कोई देश अन्य देशोंको कर्ज़ देता है और उसका चुकानेका समय आता है तो वह उस कर्ज़के लिए अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। जैसे कि मान लीजिये इंगलिस्तानने फ्रांसको २२५ करोड़ रुपये दस वर्षोंके लिए कर्ज़ दिए। दस वर्षके बाद जब उसका चुकानेका समय आया तो इंगलिस्तान फ्रांससे २२५ करोड़ रुपयेका लेनदार हो गया। कर्ज़ चाहे थोड़े समयके लिए हो अथवा बहुत समयके लिए हो चुकानेके समय देशकी पारस्परिक लेनदेनपर उसका प्रभाव एकसा पड़ जाता है।

(७) विदेशियोंसे लिया हुआ कर्ज़ (लेनेके समय)। जब किसी देशके निवासी या सरकार अन्य किसी देशसे कर्ज़ लेते हैं तो उस समय वह देश उस कर्ज़की रकमके लिए दूसरे देशका लेनदार हो जाता है। मान लीजिये इंगलिस्तानकी सरकारने अमरीकासे १५० करोड़ रुपये २० वर्षोंके लिए उधार लिए तो कर्ज़ लेनेके समय इंगलिस्तान अमरीकासे १५० करोड़ रुपयेका लेनदार हो जाता है। इस कर्ज़के रुपये इंगलिस्तानको मिलनेपर जबतक उसका चुकानेका समय नहीं आता तबतक इस कर्ज़का दोनों देशकी पारस्परिक लेन देनपर कुछ भी असर नहीं पड़ता।

(८) अन्य देशोंमें लगाई हुई लागतपर मुनाफ़ा और [illegible] फो दिये हुए कर्ज़ोंपर व्याज। जब किसी एक देशके निवासी अन्य दे[illegible] लगाते या अन्य देशोंको रुपया उधार देते हैं तो वह देश उस लागतके [illegible] कर्ज़के व्याजके लिए अन्य देशोंका लेनदार हो जाता है। [illegible]गलिस्तान [illegible] रुपयोंकी लागत भारतमें लगाई है और कई करोड़ रुपये उसने भारत [illegible] हैं इसलिए इंगलिस्तान लागतके मुनाफ़े और कर्जके व्याजके लिए [illegible]

(९) देशवासियोंका अन्य देशोंमें

और न्यायालय भी नियमबद्ध होते हैं। इन सब अदालतोंकी कार्रवाई देखनेसे इनमें बड़ी समानता है। बड़े मामलोंको मजिस्ट्रेट सेशनसुपुर्द नहीं भेजते हैं। कभी कभी इंग्लैंडमें भी अपराधके अतिरिक्त सार्वजनिक मुकदमे पेश होते हैं। आज कल सूरतें कोतवालीमें फौजदारी कानूनोंकी भी मदद हो सकती है। अंग्रेजोंने सौभाग्यसे हिन्दुस्तानका फौजदारी कानून और कचहरियोंकी मौजूदा हालत बनाई गई है। कितने शतकोंके उपरान्त यह दशा प्राप्त हुई है, यह कानूनी इतिहासकी खोज करनेवाला जान सकता है, अभी हम इस देशके फौजदारी कानून और कचहरियोंकी प्राचीन दशापर आलोचना करते हैं। उससे और हमारे देशके समकालीन इंग्लिस्तानकी दशामें कितनी विभिन्नता है यह फिर कभी विचार किया जायगा।

फ़ौजदारी और दीवानी क़ानूनमें भेद

मामूली बोलचालमें फौजदारीसे लड़ाई झगड़ा मारपीटका ही बोध होता है। पर फौजदारी कानून केवल मारपीटको ही इसका मतलब नहीं है। उसमें चोरी डकैती लूटमार आदि बहुतसे व्यापारोंके दण्डका विषय है। फौजदारी और दीवानी कानूनमें भेद यह है कि एकमें राजा, राष्ट्र, या सरकारके विरुद्ध अत्याचार रोकनेका दण्ड नियमित है, दूसरेमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे हानि उठाकर राष्ट्रद्वारा किस उपायसे मदद पा सकता है इसकी रीतिका वर्णन है। एक हदतक यह कहना ठीक है कि फौजदारी मामलेमें सरकार मुद्दई होती है और दीवानीमें मुद्दई मुद्दालेके बीचमें फैसला करती है। यदि कोई राष्ट्रके, अथवा उसके छोटेसे छोटे अंग एक प्रजाके, शरीर या जायदादके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करता है जो सरकार वर्जित कर चुकी है और जिससे राष्ट्रकी शान्ति और प्रबन्धमें अन्तर आता है और सदाचार आघात होता है तो राष्ट्र व सरकार उसको दण्ड देती है। ऐसे वर्जित कार्य ही जुर्म कहते हैं। फौजदारीके हाकिम मजिस्ट्रेट आदि जुर्म साबित होनेपर जुर्माना या कारागारका दण्ड देते हैं। पर यदि एक व्यक्ति दूसरेको शारीरिक, आर्थिक या मानसिक हानि पहुँचाए, तो उसे अधिकार है कि *वादी* बनकर, *प्रतिवादी हानिकर्त्ता*से न्यायालयमें अपनी हानिका दावा करे। ऐसी सूरतोंमें अर्थीको प्रत्यर्थीसे हानिका भरपाई करके रुपया दिलाया जाता है। उस रुपयेको हर्जाना, और आघात या नुकसानको हानि कहते हैं, इस हानिके लिए कोई यथार्थ शब्द मुझे नहीं सूझता। संभव है किसी बड़े पुराने कोषमें भी न मिले। मेरी समझमें जुर्म और व्यक्ति-हानिका स्पष्ट भेद विलायती कानूनवेत्ताओंने हमारी न्यायालयपद्धतिमें प्रवेश कराया है। जिस समयमें राजा, दीवान, या काजी, मुकदमोंका फैसला करने बैठते थे, उस समयमें यदि यह अन्तर रहा भी हो तो उसको देखना और विवेचना करना इतना सरल नहीं रहा होगा, जितना अब है जब कि मजिस्ट्रेट फौजदारी और मुन्सिफ दीवानी मामले फैसल करते हैं। मुझे यदि कोई छड़ी मारे, या मेरी कुर्सी तोड़ डाले, या मेरी बदनामी

फ़ौजदारी क़ानूनका प्राचीन इतिहास

रूमी क़ानूनका प्रभाव



जिन फ़ौजदारी क़ानूनोंके आजकल हम पाबन्द हैं उसके निर्माणमें अगरेज़ोंके लिये विद्वानोंका हाथ था। यह कहना कि भारतवर्षका आधुनिक फ़ौजदारीका क़ानून विलायतके आधार पर बना है अनुचित न होगा हिन्दू धर्मशास्त्र और मुसलमानी क़ानूनका विचार इस विषयमें लगभग कुछ नहीं किया गया है। यह भलीप्रकारसे जानी हुई बात है कि केवल इंगलिस्तानके नहीं, विलायतके अधिकतर देशोंके क़ानून पर रूमके क़ानूनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसलिए यदि रूमके फ़ौजदारीके क़ानूनकी उत्पत्ति और वृद्धि पर विचार करें तो व्यर्थ न होगा। किन्तु हमें अपने वर्तमान न्यायालयोंकी स्थिति पर आद्योपान्त विचार करनेका अवसर मिलेगा। हिन्दूधर्मशास्त्र और मुसलमानी क़ानून राष्ट्रविरोधी दोषोंको समझते थे या नहीं, उनके दण्ड देनेकी प्रथा प्राचीन रूमी और आधुनिक रीतिसे कहाँ तक मिलती थी और कितनी भिन्न थी, यह सब विस्तार पूर्वक विचार करनेके योग्य हैं। अभी अधिकतया रूमके क़ानूनी इतिहासके अवलम्बन पर फ़ौजदारी क़ानूनके प्रारम्भिक परिवर्तन पर विचार किया जाता है।

फ़ौजदारी क़ानून किसे कहते हैं ?

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि आधुनिक फ़ौजदारी क़ानून क्या है। अधिकतर उसका हिस्सा हमारे देशमें ताजीरात हिन्द और फ़ौजदारी विधानमें मौजूद है। इसके अतिरिक्त और कई एक्टोंमें भी ख़ास ख़ास सूरतोंमें दण्ड देनेका अधिकार दिया गया है। जैसे, प्रेसएक्टमें छापाख़ाना और समाचारपत्रोंपर रोक थाम करनेके लिए ज़मानत माँगना और ज़ब्त करनेका उपाय है। डिफ़ेन्स आफ़ इण्डिया एक्टमें भारत रक्षाके हेतु षड्यन्त्रों और राज-विप्लवकी जड़ काटनेके लिए विशेष कमीशनद्वारा मुक़दमेकी जाँचकी रीति दी गई है। यह भी सर्वसाधारणको विदित है कि इस न्यायका प्रयोग साधारणतया मजिस्ट्रेटोंद्वारा होता है। महा विकट खटकेकी हालतमें सरकार फ़ौजी क़ानून (मार्शल-लाका) प्रचार करती है। उसमें फ़ौजी अफ़सर शस्त्रद्वारा, किन्तु कुर्सीपर बैठकर घटाघट मामला तय करते जाते हैं, यह प्रचण्ड उपाय प्रजाकी भयकर दशामें काममें लाया जाता है। तीसरे दर्जेके आनरेरी मजिस्ट्रेटोंसे लेकर तहसीलदार, डिप्टी-कलक्टर, कलक्टर जिनको जैसे अख़्तियारात हों तीसरे, दूसरे, अव्वल दर्जेकी मजिस्ट्रेटीका दण्ड दे सकते हैं। फ़ौजदारी विधानमें यह ज़ाहिर किया गया है कि किस किस अपराधकी जाँच किस किस दर्जेका मजिस्ट्रेट कर सकता है। उसी हिसाबसे मुक़दमे उनके यहाँ जाते हैं। कलक्टर और ज़िला मजिस्ट्रेट एकही साहब होते हैं। डिप्टीकलक्टर

और तहसीलदार भी मजिस्ट्रेट होते हैं। इन सब अफ़सरोंकी मजिस्ट्रेटी हैसियतसे हमसे यहाँ मतलब है। बड़े अपराधोंको मजिस्ट्रेट सेशनजजके यहाँ भेजते हैं। कभी कभी हाईकोर्टमें भी अपीलके अतिरिक्त प्रारम्भिक मुकदमे पेश होते हैं। ख़ास ख़ास सूरतोंमें प्रीवीकौंसिलमें फ़ौजदारी मामलोंकी भी अपील हो सकती है। संक्षेपमें इसीप्रकार हिन्दुस्तानका फ़ौजदारी कानून और कचहरीकी मौजूदा हालत बनाई गई है। कितने रूपान्तरके उपरान्त यह दशा प्राप्त हुई है, यह कानूनी इतिहासकी खोज करनेवाला जान सकता है, अभी हम इस देशके फ़ौजदारी क़ानून और कचहरीकी प्राचीन दशापर आलोचना करते हैं। उससे और हमारे देशके समकालीन ऐतिहासिक दशासे कितनी विभिन्नता है यह फिर कभी विचार किया जायगा।

फ़ौजदारी और दीवानी क़ानूनमें भेद

मामूली बोलचालमें फौजदारीसे लड़ाई झगड़ा मारपीटका ही बोध होता है। पर फौजदारी कानून केवल मारपीटको ही हदतक सङ्कुचित नहीं है। उसमें चोरी डकैती लूटमार आदि बहुतसे अत्याचारोंके दण्डका विवरण है। फौजदारी और दीवानी कानूनमें भेद यह है कि एकमें राजा, राष्ट्र, या सरकारके विरुद्ध अत्याचार रोकनेका दण्ड नियमित है, दूसरेमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे हानि उठाकर राष्ट्रद्वारा किस उपायसे मदद पा सकता है इसकी रीतिका वर्णन है। एक हदतक यह कहना ठीक है कि फौजदारी खण्डमें सरकार मुद्दई होती है और दीवानीमें मुद्दई मुद्दालेके बीचमें फैसला करती है। यदि कोई राष्ट्रके, अथवा उसके छोटेसे छोटे अंग एक प्रजाके, शरीर या जायदादके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करता है जो सरकार वर्जित कर चुकी है और जिससे राष्ट्रकी शान्ति और प्रबन्धमें अन्तर आता है और नुक़सान पहुँचता होता है तो राष्ट्र व सरकार उसको दण्ड देती है। ऐसे वर्जित कार्यको जुर्म कहते हैं। फौजदारीके हाकिम मजिस्ट्रेट आदि जुर्म साबित होनेपर जुर्माना या कारागारका दण्ड देते हैं। पर यदि एक व्यक्ति दूसरेको शारीरिक, आर्थिक या मानसिक हानि पहुँचाए, तो उसे अधिकार है कि वादी बनकर, प्रतिवादी हानिकर्तासे न्यायालयमें अपनी हानिका दावा करे। ऐसी सूरतोंमें अर्थीको प्रत्यर्थीसे हानिका अन्दाजा करके रुपया दिलाया जाता है। उन रुपयेको हर्जाना, और आफ्त या नुकसानको हानि कहते हैं, इस हानिके लिए कोई यथार्थ शब्द मुझे नहीं सूझता। संभव है विना गढ़े पुराने कोषमें भी न मिले। मेरी समझमें जुर्म और व्यक्ति-हानिका स्पष्ट भेद विलायती कानूनवेत्ताओंने हमारी न्यायालयपद्धतिमें प्रवेश कराया है। जिस समयमें राजा, दीवान, या काज़ी, मुकदमोंका फैसला करने बैठते थे, उस समयमें यदि यह अन्तर रहा भी हो तो उसको देखना और विवेचना करना इतना सरल नहीं रहा होगा, जितना अब है जब कि मजिस्ट्रेट फौजदारी और मुन्सिफ़ दीवानी मामले फैसल करते हैं। मुझे यदि कोई छड़ी मारे, या मेरी कुर्सी तोड़ डाले, या मेरी बदनामी

फ़ौजदारी क़ानूनका प्राचीन इतिहास

रूमी क़ानूनका प्रभाव



स फ़ौजदारी क़ानूनके आजकल हम पाबन्द हैं उसके निर्माणमें बड़े बड़े विद्वानोंका हाथ था। यह कहना कि भारतवर्षका आधुनिक फ़ौजदारीका क़ानून विलायतके आधार पर बना है अनुचित न होगा। हिन्दू धर्मशास्त्र और मुसलमानी क़ानूनका विचार इस विषयमें लगभग कुछ नहीं किया गया है। यह भलीप्रकारसे जानी हुई बात है कि केवल इंगलिस्तानके नहीं, विलायतके अधिकतर देशोंके क़ानून पर रूमके क़ानूनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसलिए यदि रूमके फ़ौजदारीके क़ानूनकी उत्पत्ति और वृद्धि पर विचार करें तो व्यर्थ न होगा। किन्तु हमें अपने वर्तमान न्यायालयोंकी स्थिति पर आद्योपान्त विचार करनेका अवसर मिलेगा। हिन्दूधर्मशास्त्र और मुसलमानी क़ानून राष्ट्रविरोधी दोषोंको समझते थे या नहीं, उनके दण्ड देनेकी प्रथा प्राचीन रूमी और आधुनिक रीतिसे कहाँ तक मिलती थी और कितनी भिन्न थी, यह सब विस्तार पूर्वक विचार करनेके योग्य हैं। अभी अधिकतया रूमके क़ानूनी इतिहासके अवलम्बन पर फ़ौजदारी क़ानूनके प्रारम्भिक परिवर्तन पर विचार किया जाता है।

फ़ौजदारी क़ानून किसे कहते हैं ?

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि आधुनिक फ़ौजदारी क़ानून क्या है। अधिकतर उसका हिस्सा हमारे देशमें ताजीरात हिन्द और फ़ौजदारी विधानमें मौजूद है। इसके अतिरिक्त और कई एक्टोंमें भी ख़ास ख़ास सूरतोंमें दण्ड देनेका अधिकार दिया गया है। जैसे, प्रेसएक्टमें छापाखाना और समाचारपत्रोंपर रोक थाम करनेके लिए ज़मानत माँगना और ज़ब्त करनेका उपाय है। डिफ़ेन्स आफ़ इण्डिया एक्टमें भारत-रक्षाके हेतु बलवाइयों और राज-विप्लवकी जड़ काटनेके लिए विशेष कमीशनद्वारा मुक़दमेकी जाँचकी रीति दी गई है। यह भी सर्वसाधारणको विदित है कि इस न्यायका प्रयोग साधारणतया मजिस्ट्रेटोंद्वारा होता है। महा विकट खटकेकी हालतमें सरकार फ़ौजी क़ानून (मार्शल-लाका) प्रचार करती है। उसमें फ़ौजी अफ़सर शस्त्रद्वारा, किन्तु कुर्सीपर बैठकर खटाखट मामला तय करते जाते हैं, यह प्रचण्ड उपाय प्रजाकी भयकर दशामें काममें लाया जाता है। तीसरे दर्जेके आनरेरी मजिस्ट्रेटोंसे लेकर तहसीलदार, डिप्टी-कलक्टर, कलक्टर जिनको जैसे अख्तियारात हों तीसरे, दूसरे, अव्वल दर्जेकी मजिस्ट्रेटीका दण्ड दे सकते हैं। फ़ौजदारी विधानमें यह जाहिर किया गया है कि किस किस अपराधकी जाँच किस किस दर्जेका मजिस्ट्रेट कर सकता है। उसी हिसाबसे मुक़दमे उनके यहाँ जाते हैं। कलक्टर और ज़िला मजिस्ट्रेट एकही साहब होते हैं। डिप्टीकलक्टर

और तहसीलदार भी मजिस्ट्रेट होते हैं । इन सब अफ़सरोंकी मजिस्ट्रेटी हैसियतसे हमसे यहाँ मतलब है । बड़े अपराधोंको मजिस्ट्रेट सेशनजजके यहाँ भेजते हैं । कभी कभी हाईकोर्टोंमें भी अपीलके अतिरिक्त प्रारम्भिक मुकदमे पेश होते हैं । खास खास सूरतोंमें प्रीवीकौंसिलमें फ़ौजदारी मामलोंकी भी अपील हो सकती है । संक्षेपमें इसीप्रकार हिन्दुस्तानका फ़ौजदारी क़ानून और कचहरीकी मौजूदा हालत बनाई गई है । कितने रूपान्तरके उपरान्त यह दशा प्राप्त हुई है, यह क़ानूनी इतिहासकी खोज करनेवाला जान सकता है, अभी हम इस देशके फ़ौजदारी क़ानून और कचहरीकी प्राचीन दशापर आलोचना करते हैं । उससे और हमारे देशके समकालीन ऐतिहासिक दशासे कितनी विभिन्नता है यह फिर कभी विचार किया जायगा ।

फ़ौजदारी और दीवानी क़ानूनमें भेद

मामूली बोलचालमें फ़ौजदारीमें लड़ाई झगड़ा मारपीटका ही बोध होता है । पर फ़ौजदारी क़ानून केवल मारपीटको ही हदतक सङ्कुचित नहीं है । उसमें चोरी डकैती लूटमार आदि बहुतसे अत्याचारोंके दण्डका विवरण है । फ़ौजदारी और दीवानी क़ानूनमें भेद यह है कि एकमें राजा, राष्ट्र, या सरकारके विरुद्ध अत्याचार रोकनेका दण्ड नियमित है, दूसरेमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे हानि उठाकर राष्ट्रद्वारा किस उपायसे मदद पा सकता है इसकी रीतिका वर्णन है । एक हदतक यह कहना ठीक है कि फ़ौजदारी अदालतमें सरकार मुद्दई होती है और दीवानीमें मुद्दई मुद्दालेके बीचमें फ़ैसला करती है । यदि कोई राष्ट्रके, अथवा उसके छोटेसे छोटे अङ्ग एक प्रजाके, शरीर या जायदादके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करता है जो सरकार वर्जित कर चुकी है और जिसमें राष्ट्रकी शान्ति और प्रबन्धमें अन्तर आता है और महसूसपर आघात होता है तो राष्ट्र व सरकार उसको दण्ड देती है । ऐसे वर्जित कार्यको जुर्म कहते हैं । फ़ौजदारीके हाकिम मजिस्ट्रेट आदि जुर्म साबित होनेपर जुर्माना या कारागारका दण्ड देते हैं । पर यदि एक व्यक्ति दूसरेको शारीरिक, आर्थिक या मानसिक हानि पहुँचाए, तो उसे अधिकार है कि वादी बनकर, प्रतिवादी हानिकर्तासे न्यायालयमें अपनी हानिका दावा करे । ऐसी सूरतोंमें अर्थीको प्रत्यर्थीसे हानिका हरजाना करके रुपया दिलाया जाता है । उस रुपयेको हर्जाना, और आघात या नुकसानको हानि कहते हैं, इस हानिके लिए कोई यथार्थ शब्द मुझे नहीं सूझता । सम्भव है किसी बड़े पुराने कोशमें भी न मिले । मेरी समझमें जुर्म और व्यक्ति-हानिका स्पष्ट भेद विलायती क़ानूनरचनाओंने हमारी न्यायालयपद्धतिमें प्रवेश कराया है । जिस समयमें राजा, दीवान, या क़ाज़ी, मुक़दमोंका फ़ैसला करने बैठते थे, उस समयमें यदि यह अन्तर रहा भी हो तो उसको देखना और विवेचना करना इतना सरल नहीं रहा होगा, जितना अब है जब कि मजिस्ट्रेट फ़ौजदारी और मुन्सिफ़ दीवानी मामले फ़ैसल करते हैं । मुझे यदि कोई छड़ी मारे, या मेरी कुर्सी तोड़ डाले, या मेरी बदनामी

करे तो मेरे लिए दो उपाय हैं। पहिला—तहसीलदार या [illegible] कचहरीमें उनसे मजिस्ट्रेटकी हैसियतसे प्रार्थना करूँ कि अपराधीको दण्ड दिया जाय दूसरा—मुंसिफ़ या सबजजकी कचहरीमें अपनी हानिका बदला माँगूँ। सरकार कसूरके लिए दो प्रकारकी मदद इन सूरतोंमें देगी। (१) मजिस्ट्रेटद्वारा [illegible] जुर्माना या क़ैद आदि। (२) मुंसिफद्वारा मुद्दईको मुद्दालेके ऊपर हर्जाकी डिगरी पहिली हालतमें सरकार इस विचारसे हस्तक्षेप करती है कि, यदि एक व्यक्ति [illegible] अत्याचार करता है तो वह सरकारकी उपस्थितिको भुला देता है, अथवा राष्ट्रकी स्थिति पर धक्का देना चाहता है, और राजाके नियमका उल्लंघन करता है, इस कारण वह दण्डनीय है। जुर्माना सरकार वसूल करती है और अपने प्रबंधसे जेलखानेमें अपराधीको बंद करती है और अपने ख़र्चसे रखती है। दूसरी हालतमें बली या दोषी प्रजाके दुष्कर्मका पलटा निर्बल या बाधित प्रजाको दिलानेमें सहायता देती है, स्वयं हस्तक्षेप नहीं करती।

सर हेनरीमेन साहबकी राय

सर हेनरीमेन साहबने इस विषयपर विचार किया है। वह लिखते हैं* कि प्राचीनकालके लोगोंमें फौजदारी कानून जुर्मका कानून नहीं होता, हर्जानेका होता था। बाधित व्यक्ति बाधकपर वैसाही दावा करता था जैसा आजकल दीवानीका होता है। सफलता प्राप्त करनेपर रुपयेके रूपमें उसे प्रतिकार दिलाया जाता था। धर्मशास्त्रकी बाल्यावस्थामें इस विचारका प्रादुर्भाव नहीं होता कि एक व्यक्ति दूसरे पर अत्याचार करके राष्ट्रका अभियोगी समझा जावे। रूम और यूनानके कानूनमें एक हिस्सा पारलौकिक विषयमें था। कुछ वर्जित कर्म ऐसे थे जिनके उल्लंघन करनेसे ईश्वरका अपराधी बनना पड़ता था। धर्मनीति और राजप्रणीत कानूनकी सीमा अलग अलग और साफ नहीं थी। सच तो यह है कि धर्मका प्राबल्य था और धार्मिक आज्ञा ईश्वरी समझी जानेसे सबसे श्रेष्ठ समझी जाती थी। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्र और मुसलमान कानूनमें भी धार्मिक और राष्ट्रीय नियमोंका वर्णन साथही साथ किया गया है। ईश्वरीय (केवल धर्म सम्बन्धी), राष्ट्रीय और व्यक्तिगत नियम अब सीमाबद्ध हैं। उनकी विभिन्नता हमें आपको समझनेमें आज कठिनाई नहीं होती। किन्तु उनका रूपान्तर पहिले इतना प्रत्यक्ष नहीं था।

पाप, जुर्म और हानिमें अन्तर

धर्म या ईश्वरके विरुद्ध जो दुष्कर्म किया जाय वह पाप है, राष्ट्र या राजाके विरुद्ध जो हो वह जुर्म, एक व्यक्ति दूसरेके विरुद्ध जो करे वह हानि, व्यक्तिहानि या ज़ाती नुक़सान है। इसके कानूनी इतिहासका उदाहरण देकर उक्त साहबने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि फौजदारी कानूनकी उत्पत्ति, इस विचारसे नहीं हुई कि राजा या

*एन्शियन्ट-ला—प्राचीन कानून—का अध्याय १० देखिए।

राज-कर्मचारी यह पहिलेसेही समझे हों कि अमुक कार्य राष्ट्र या जनता समूहके विरुद्ध है, इस कारण उसके दण्डका उपाय नियमित और नियुक्तरूपसे सदैव होता रहना चाहिए। वास्तवमें होता यह था कि, जब किसी कार्य विशेषसे रूमी जनताको यह प्रतीत हुआ कि राज्य समुद्धर मापान पहुंचा है तो उसका बदला लेनेके लिए करीब करीब वैसाही उपाय होता था जैसा एक व्यक्ति दूसरेके विरुद्ध करता। राष्ट्रकी ओरसे विशेष उपाय काममें लाया जाता था; अर्थात् प्रत्येक जुर्मके लिए अलग अलग राष्ट्र आज्ञाका विकास होता था। एक एक्टमें एक जुर्मके दण्डके नियम बनाए जाते थे; उसका फैसला होनेपर मामला खतम। जैसे एक मुकदमेका निर्णय होनेपर दो व्यक्तियोंका झगड़ा निपट जाता है वैसे ही एक राज-नियमसे राष्ट्र और व्यक्तिके बीचका मामला तय हुआ, और उनका झगर जाता रहा। वही राजनियम राष्ट्र और दूसरे व्यक्तिके उसी किस्मके मामलेमें काममें नहीं आता था। नये एक्टकी फिर आवश्यकता होती थी।

पुराने मुकदमोंकी सूरत

प्राचीन न्यायालय प्रणालीमें दो झगड़ेवाले आदमियोंकी नकल सी की जाती थी। न्यायकर्ता बीच बचाव करनेवाले सालिस या पञ्चकी सूरत रखता था। उदाहरणके लिए रूमी कानून लेखक 'गायस'के अनुसार मुकदमेका तरीका नीचे वर्णित किया जाता है। "जिस चीजके बारेमें झगड़ा होता है, अदालतमें वह मौजूद मानी जाती है। यदि वह वस्तु लाई जा सकती है तो उपस्थित की जाती है। यदि अटल हुई तो उसका थोड़ासा नमूना कचहरीमें लाया जाता है; अर्थात् जमीनके मुकदमेमें मिट्टीका टुकड़ा, और मकान-के झगड़ेमें ईंट लाई जाती है। मान लीजिए दासके बारेमें लड़ाई है। मुद्दई हाथमें लकड़ी-की छड़ी लेकर बढ़ता है और कहता है 'यह मेरा गुलाम है'। उस छड़ीसे, जो बर्छा सूचक होती है और मुद्दईके हाथमें होती है, वह गुलामको छूता भी है। मुद्दाले भी वही क्रिया दोहराता है। न्यायाधीश दोनोंसे कहता है 'इसे छोड़दो'। दोनों मान जाते हैं। मुद्दई मुद्दाले से पूछता है 'तुम क्यों दस्तन्दाजी करते हो?' जवाब मिलता है 'वाह! यह मेरा है।' तब वादी एक रकमकी बाजी लगाता है। प्रतिवादी मञ्जूर कर लेता है। इसके बाद दूसरी कारर्वाई चलती है।" बाजीमें जो रकम जमा होती थी उसे सेक्रामेण्टम् कहते थे। यह राजकोषमें जमा होती थी। विद्वानोंमें इस बातमें थोड़ा मतभेद है कि सेक्रामेण्टकी रकम क्यों वसूल की जाती थी। कुछ कहते हैं कि जुर्मानेकी उत्पत्ति उससे हुई है। परन्तु सर हेनरीमेनने रूमी और यूनानी प्रणालियोंसे मिसाल देकर यह नतीजा निकाला है कि राष्ट्र उस रुपयेको यह समझ कर नहीं लेता था कि अभियुक्तने राष्ट्र गौरवमें धक्का दिया इस कारण उसका पलटा धनदण्डमें लिया जाय किन्तु वास्तवमें न्यायकर्त्ताके समय और कष्टकी वाजबी कीमत वसूल की जाती थी।

प्राचीन न्यायकर्ता हर्जा दिलाते वक्त इस बातका भी ख्याल रखते थे कि निर्-

ज़ोरदार तहकीकात किया करता था। इसी लिए ... कम या ज्यादा दण्ड देते थे। अगर वह चोरी करते हुए कहीं चोर पकड़ा जाय, तो उसको इतनी जोरसे बहुत मारे, और चारको चोर कम हो जानेसे उन माल जानेको मँगवाना है। इसी प्रकारके अनुसार प्राचीन रूमके क़ानूनने भी एक और अलग चोरीके सज़ा निश्चित की गई है।

फ़ौजदारी क़ानूनके चार रूपान्तर

सर हेनरीमेनने रूमके फ़ौजदारी क़ानूनको सामने रखकर और कहीं कहीं यूनानके क़ानूनके ऐतिहासिक उदाहरण देकर ज़ोरदार यह सिद्ध किया है कि प्राचीन फ़ौजदारी क़ानूनने चार रूपान्तर ग्रहण किए। संक्षेपमें हेनरीमेन साहबकी खोजका फल निम्नलिखित है। प्रथम दशामें, राष्ट्रको ज्योंही यह ज्ञान हुआ कि किसी कार्य विशेषसे राष्ट्रके गौरव और महत्ताको हानि पहुँची है, तो उसके रक्षाका उपाय यह था कि क़ानून-विशेष तय्यार कर डाले, और तब उससे बदला ले ले। प्रत्येक दण्डप्रणाली नये एक्ट या बिलकी तरह होती थी। उसमें अभियुक्तका नाम और दण्डका विवरण अलग अलग दर्शा दिया जाता था। इसके उपरांत दूसरा रूपान्तर उस दशामें प्राप्त हुआ जब जुर्मोंके बढ़ जानेसे उनकी जाँच स्वयं न कर सकनेके कारण राष्ट्रकी ओर से कई संस्थाएं (कमीशन) नियुक्त कर दी गईं। हर कमीशनको यह अधिकार था कि विशेषप्रकारके जुर्मकी तहक़ीक़ात करें और साबित होनेपर उस अभियुक्तको—जिसका नाम दिया गया है—सज़ा कर दें। तीसरी हालत तब पहुँची जब जुर्मके समाप्त होनेकी इन्तज़ारी नहीं की जाती। अवधिविशेष और खास जुर्मोंके लिए कमीशन पहिलेसे ही नियुक्त कर दिये जाते थे, इस ख़याल और आशासे कि विशेष प्रकारके जरायम किये जानेकी संभावना है। चौथी, आख़िरी और पूर्ण दशा तब प्राप्त होती है जब कमीशनोंके अवधिविशेष या बीच बीचमें नियुक्त होनेसे काम नहीं चलता, स्थाई संस्थाएँ, पक्का जजसमूह अर्थात् प्रतिदिनके लिए न्यायाधीशवर्ग नियुक्त कर दिये गये। उन्हें अधिकार दे दिया गया कि अमुक अभियोगके लिए अमुक दण्ड दें। भविष्यके लिए भी यह प्रकाशित कर दिया गया कि किस योग्यता और किस प्रकारके लोगोंमेंसे न्यायकर्ता बनाये जाकर पहिलेवालोंका स्थान पूर्ण करते जायँगे। इस अन्तिम दशासे वर्तमान फ़ौजदारी कचहरीकी नींव पड़ी। हम देखते हैं कि छुट्टीके अलावा, प्रतिदिन मजिस्ट्रेट कचहरी करते हैं, अपने अधिकारके भीतर जुर्मपर ग़ौर करके थोड़ी या बहुत सज़ा देते हैं। एकके बदलने या हटनेपर सरकारी आज्ञासे दूसरे साहब कचहरी जारी रखते हैं। यह बातें, सब साधारण प्रतीत होती हैं। पर जब यह विचार कीजिये कि राजासे उतर कर, और सालिस या पञ्चसे बढ़कर कितनी रद्दबदलके बाद मजिस्ट्रेटने यह सूरत हासिल की तब कुछ मनोरञ्जन इसमें भी मालूम होगा।

गंगाधर पन्त

भारतीय व्यवसायोंमें विदेशीय पूंजी

यदि भारतके आयात और निर्यातके आंकड़ोंपर दृष्टि डाली जावे, तो बड़ा सन्तोष होता है कि व्यापारकी बाढ़ी बराबर आगामिक भी चलती रही है। केवल सम्वत् १९७१ में निर्यातका मूल्य आयातसे लगभग ८० करोड़ रुपये अधिक था, सम्वत् १९७४ में लगभग ८३ करोड़ और सम्वत् १९७५ में लगभग ७० करोड़ अधिक था। और यह संख्या सम्वत् १९७६ में बढ़कर एक अरबको पहुंच गयी। स्वार्थके ज्येष्ठ मासकी संख्यामें कुछ अंक दिये गये थे, जिनसे ज्ञात होगा कि केवल सम्वत् १९७५ और ७६ में ११८७ कम्पनियाँ खुलीं। यह तो बड़े सन्तोषजनक अंक हैं। इनसे तो यही प्रतीत होता है कि भारत का पुनरुद्धार हो रहा है। नित्य-प्रति नये कारखाने, खुल रहे हैं। नवीन उद्योग धन्धोंकी नींव पड़ रही है, और पुरानोंकी क्रमशः उन्नति हो रही है। देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारसे बहुत कुछ लाभ उठा रहा है; विदेशोंसे इस अनुकूल व्यापारके भुगतानमें सोना आ रहा है, क्रमशः देश दरिद्रताके कठिन पाशसे मुक्त हो रहा है। परन्तु यह सन्तोष भ्रम-मूलक है। यदि भारतवासियोंकी आन्तरिक अवस्थापर दृष्टि डाली जावे, तो इसके विपरीत स्पष्ट दिखाई देगा कि उनकी दरिद्रता घटनेकी कौन कहे प्रति दिन बढ़ती ही जाती है। देशवासियोंके आयमें निस्सन्देह वृद्धि हुई है, परन्तु प्रतिदिनकी आवश्यकताके अन्यान्य पदार्थोंके मूल्यमें जितनी वृद्धि हुई है उससे कहीं कम। अस्तु, आयके उसी हिसाबसे न बढ़नेसे दारिद्र्य-जन्य कठिनाइयोंका बढ़ना अवश्यम्भावी है, क्योंकि वस्तुतः, आयकी वृद्धि होते हुए भी, दरिद्रता बढ़ती जा रही है। चारों ओर यही सुननेमें आ रहा है कि,—"जिस आनन्दसे पहिले जीवननिर्वाह होता था वह अब स्वप्न भी दुर्लभ है।"

यह कैसा विपरीत परिणाम है? इसका क्या कारण है? क्या ये अंक अशुद्ध हैं? क्या देशने उन्नति नहीं की? उत्तरमें तो यही कहना होगा कि देशमें उन्नति हुई है इन अंकोंकी शुद्धतामें कोई संशय नहीं। व्यापार और व्यवसाय दोनोंहीका परिमाण बहुत कुछ बढ़ गया है। परन्तु यह व्यापार, यह व्यवसाय, भारतवासियोंके स्वत्वमें बहुत कम है। जो कुछ देशमें उन्नति हुई है, वह देशवासियोंद्वारा नहीं, परन्तु विदेशीय पूंजी और उद्योगसे सम्पादित हुई है। अतएव विदेशीयही उस उन्नतिसे लाभ उठा रहे हैं, और भारतवासी जैसेके तैसे दरिद्रताके बन्धनमें जकड़े हुए हैं।

भारतवर्षके अधिकांश प्रधान व्यवसाय विदेशियोंके स्वत्वमें हैं*। खानें, बड़े बड़े कारखाने, और मिलें सब विदेशियोंके हाथमें हैं। सनके कारखानोंमें तो भारतवासियोंका बिलकुल भाग नहीं है। ट्राम, रेल और जहाजोंके विषयमें तो कहना ही

---

* स्वार्थके वैशाख मासकी संख्यामें कुछ अंक दिये गये हैं। उनसे ज्ञात होगा कि किस अधिकतासे देशके व्यवसाय विदेशियोंके स्वत्वमें हैं।

गया। जो कुछ लाभ इन बड़े व्यवसायोंसे होता है, वह देशमें न रहकर विदेश जाता है। जो कुछ निर्यातके आधिक्यसे देश उपार्जन करता है, उसका बहुत बड़ा भाग देशके व्यवसायोंमें लगी हुई विदेशीय पूँजीके लाभ या व्याजके स्वरूपमें फिर विदेशियोंको भेजता है। जो मायात या निर्यातकी अनुकूल बाकीकी वृहत् संख्या दिखाई देती है, उसका कोई अंश भी मिलना देशको दुर्लभ हो जाता है। यदि देशके व्यवसायोंमें लगी हुई पूंजी देशकी ही होती, तो यह बात न होती। इस अनुकूल बाकीसे वस्तुतः देशका हित-साधन होता, विदेशसे धन आता और देशकी दरिद्रता घटती।

जो कुछ व्यवसायिक उन्नति देशमें हुई है, उसे—अधिकतर विदेशीय पूँजीद्वारा सम्पादित होनेके कारण—उन्नति कहना अनुचितही प्रतीत होता है। उन्नति कहना तो तभी उचित है, जब देशका हितसाधन हो, देशवासियोंकी दशा सुधरे, उनकी दरिद्रता घटे। परन्तु यहाँ यह कुछ भी नहीं, अतएव यदि इस उन्नतिको भारतवर्षमें विदेशीय पूँजीवालों और व्यापारियोंकी उन्नति कहें, तो सर्वथा न्याय-संगत प्रतीत होता है। क्योंकि इससे जो कुछ लाभ उठा रहे हैं, वह वेही, भारतवासी नहीं। इन व्यवसायोंसे, जैसा कि मिस्टर चैटरटनने कहा भी है, जो कुछ लाभ देशको है वह केवल यह कि जनताका कुछ भाग कुलीगिरी इत्यादि निकृष्ट कर्म कर जीविकोपार्जन कर लेता है। सो भी बेचारा भी प्रातःकालसे सन्ध्यातक दीर्घयाम दिनभर कठिन परिश्रम करनेपर भी उदरपूर्तिके लिए पर्य्याप्त धन नहीं प्राप्त कर सकता। परन्तु इसमें अधिक दोष हमारे ही अनुत्साहका है। यदि हम सोत्साह नवीन पश्चिमी प्रणालीके अनुसार उद्योग-धन्धोंमें लगते, कारखाने, मिलें इत्यादि खोलनेका समुचित प्रबन्ध करते, तो कदाचित् विदेशियोंके लिए यहाँके व्यवसायोंको अपने स्वत्वमें कर लेना इतना सहज न होता, इस अधिकतासे जिस व्यवसायमें देखिये, उसीमें विदेशी पूँजी लगी न दिखाई देती। संसार एक संग्राम भूमि है, सभी अपने अपने लिए स्थान कर लेनेका प्रयत्न करते हैं। जो अकर्मण्य जातियाँ निज अवसर हाथसे जाने देती हैं, उनका स्थान दूसरी जातियाँ दबा बैठती हैं। यही दशा भारतीय व्यापारियोंकी हुई। समयपर न चेतनेसे उसका स्थान विदेशियोंके स्वत्वमें चला गया।

अब इसका क्या उपाय हो सकता है? किस प्रकार स्वदेशीय व्यवसाय विदेशीय व्यापारियोंके स्वत्वसे निकल कर स्वदेशीय व्यापारियोंके स्वत्वमें आ सकते हैं? या किस प्रकार उनके स्वत्वमें यह भी सम्मिलित हो सकते हैं? यह एक कठिन समस्या है। अभी तो बहुतसे नीतिज्ञोंका यही विचार है कि विदेशीय पूँजीसे कोई हानि नहीं प्रत्युत लाभ है। वे कहते हैं कि यदि देशके व्यवसाय विदेशीय पूँजी द्वारा सञ्चलित न हुए होते, तो कदाचित अभी तक देश अकर्मण्यताके अंधकारमें ही पड़ा होता। कहीं भी अर्वाचीन कला-कौशल, कारखाने, मिलें इत्यादि न दिखाई देतीं। इस विदेशीय पूँजी द्वारा स्थापित कारखानों इत्यादिने भारतवासियोंको नवीन पश्चिमी प्रणालीके अनुसार काम करना सिखला दिया है। नवीन उद्योग-धन्धोंकी व्यवस्थामें इन्होंने उदाहरणका काम दिया है।

फिर इसका यह अर्थ है कि, [illegible] देशके व्यवसाय या व्यापारके लिए सुगम और सुव्यवस्थित पूँजीको उत्पत्ति नहीं की है। भारतवर्षने व्यावसायिक उन्नतिको बहुत कुछ सम्पन्न है। प्रकृति देवीने इसे अनेक उपहारोंसे मंडित किया है। भूमि उर्वरा है। सब प्रकारके कच्चे माल सुलभ हैं। व्यवसायमें उपयोग सभी वस्तु बहुतायतसे प्राप्त की जा सकती है। मजदूरभी कठिन परिश्रम करनेमें बाधक नहीं हैं। परन्तु इनके रहते भी देश दरिद्र है, यहाँ पूँजीका अभाव है। अस्तु, यदि देश व्यावसायिक उन्नति करना चाहता है, तो उसे पूँजी की आवश्यकता प्रतीत होती, और इस पूँजीका देशमें प्रबन्ध होना दुःसाध्य है, अतएव उसे अवश्य विदेशीय पूँजीका आश्रय लेना होगा।

उपरोक्त तर्क निःसन्देह किसी सीमा तक उचित है। परन्तु यदि विवेचना-पूर्ण दृष्टिसे देखा जाय, तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि जो विदेशीय पूँजीको उपयोगिताका समर्थन किया गया है, वह केवल व्यावसायिक उन्नतिको प्रारम्भिक अवस्थामें ही ठीक है, तभी उसके आवश्यकता होती है। परन्तु ज्यों ज्यों देशके व्यवसाय उन्नति करते जाते हैं त्यों त्यों उसकी उपयोगिता घटती जाती है, और जब देशके व्यवसाय पूर्णतः उन्नत हो जाते हैं, तब वे, हित न कर, प्रत्युत अनहितके कारण बनते हैं। जब व्यवसायोंकी व्यवस्थाके लिए पर्याप्त पूँजी देशमें प्राप्त हो सकती हो, तब भी निरंकुश विदेशीय पूँजी तथा उद्योगसे सञ्चालित कारखानोंकी स्पर्धामें, स्वदेशीय व्यापारियोंके लिए कारखानोंका स्थापित करना दुःसाध्य हो जाता है, और यदि स्थापित करनेमें समर्थभी होते हैं, तो उनकी स्पर्धाकर उनका स्थान छीन लेना असम्भव हो जाता है। विदेशीय पूँजीसे स्थित कारखाने लाभतो यह पहुँचाते हैं कि उदाहरणका काम करते हैं, परन्तु यह लाभभी, जब उनकी संख्या अपरिमितकर धारण करती है, तब विकट स्पर्धाके कारण, कार्यरूपमें परिणत होना असम्भव सा हो जाता है। व्यावसायिक उन्नतिकी प्रारम्भिक अवस्थामें कुछ काल तक लाभ पहुँचाकर सर्वदाके लिए देशके व्यापारियोंकी उन्नतिमें बाधक हो जाते हैं, विदेशियोंके लिए देशका धन (कारखानोंके लाभरूपमें) निज देशको ले जानेके लिए साधक बनते हैं।

विदेशीय पूँजी कुछ व्यवसायोंमें (जिनसे आय तो पूँजीवालोंको निस्सन्देह होती है, परन्तु उस आयसे कहीं अधिक जनताका हित साधन होता है) निस्सन्देह उपयोगी प्रमाणित होती है। ऐसे व्यवसायोंमें रेल मुख्य है। जो रेलें देशमें सञ्चलित हैं, वे या तो विदेशीय व्यापारियोंके सघद्वारा हैं, या इंग्लिस्तानमें लिये हुए ऋणद्वारा सरकारसे स्थापित की गई हैं। रेलोंकी व्यवस्थाके लिए बहुत बड़ी पूँजीकी आवश्यकता होती है। इतनी पूँजी इस दरिद्र देशमें प्राप्त कर लेना दुःसाध्य था। और, रेल अर्वाचीन कालमें व्यावसायिक उन्नतिका प्रधान उपादान है। बिना सुगम और सुलभ वाहनके व्यापारका उन्नत होना किसी सीमातक असम्भव है। अतएव रेलमें विदेशीय पूँजीकी उपयोगिता समर्थनीय है। परन्तु, इतना अवश्य था कि यदि भारत सरकार चाहती तो किसी भागमें इस व्यवसाय-

के लिए यहाँ भी पूँजी प्राप्त कर सकती थीं, और इसी प्रकार विदेशीय व्यापारियोंके संघ भी प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे ऐसा क्यों करते? जब कि उन्हें अपने देशमेंही पर्याप्त पूँजी प्राप्त हो सकती थी, तो निज देशवासियोंको निज व्यवसायमें सम्मिलित न कर, उनको लाभ न पहुँचा, विदेशीय भारतवासियोंको सम्मिलित कर उनको लाभ क्यों पहुँचाते। परन्तु जो कुछ भी हो रेलसे भारतवर्ष लाभ ही उठा रहा है। जो कुछ उसे रेलोंमें लगी हुई पूँजीके लाभ या सूदके स्वरूपमें देना होता है, उससे कहीं अधिक देशीय व्यवसाय और व्यापारको लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार इंग्लिस्तानमें ऋण लेकर सरकारने जो नहरें खोदी हैं, उनसे भी लाभ है, परन्तु इसे व्यवसाय नहीं कह सकते। क्योंकि उनकी स्थिति सर्वथा जनताके कल्याणके लिए है—ऐसा कहा जाता है। ऐसे व्यवसायोंमें विदेशीय पूँजीकी उपयोगिता निःसन्देह समर्थनीय है, अधिकांश व्यवसायोंमें उसे अनुपयोगी ही नहीं, किन्तु अहितकर कहना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

सर विट्ठलदास दामोदरका विचार है कि विदेशीय पूँजी व्यवसायिक उन्नतिके लिए उपयोगी है, परन्तु उसके व्यवहारमें बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। इस बातका ध्यान रखना परमावश्यक होता है कि जो लाभ हम विदेशीय पूँजीसे उठा रहे हैं, उससे अधिक हमको नहीं देना होता। यदि किसी व्यवसायमें लगी हुई पूँजीके सूदसे अधिक हमको विदेशियोंको देना होता है, तो निस्सन्देह यह व्यवहार हानिकारक है। सनके कारखानोंमें जोकि सभी विदेशियोंके हाथमें हैं, नील, चाय और कहवेके कारखानों और खेतोंमें जोकि अधिकांश विदेशियोंके हाथमें है, लगी हुई पूँजीके व्याजसे कहीं अधिक लाभ होता है। अतएव सर विट्ठलदासके कथनानुसार इन सभी व्यवसायोंमें लगी हुई पूँजी अहितकर है।

इनके अतिरिक्त कुछ व्यवसाय ऐसे हैं, जिनमें लगी हुई पूँजीका यदि केवल व्याज ही विदेशियोंको मिले, तब भी उनका उनके द्वारा सञ्चालित होना देशके अशुभका कारण होता है। ऐसे व्यवसाय वे हैं, जिनकी आय चिरस्थायी नहीं होती—उदाहरणार्थ बंगालकी कोयलेकी खानें, मैसूरकी सोनेकी खानें, बर्माके मिट्टीके तेलके कूएँ इत्यादि। इन व्यवसायोंके विदेशियोंके हाथमें होनेसे, जो हानि देश उठा रहा है, वह पूरी नहीं हो सकती। खानों की सम्पत्ति चिरस्थायी नहीं हो सकती। फलतः जब सोना और कोयला खानोंसे निकल जायगा, मिट्टीके तेलके कूएँ खाली हो जायेंगे, प्रकृति दरिद्र हो जायगी। और जब भारत-सन्तति इन व्यवसायकी व्यवस्थाके लिए समर्थ होगी, तब सम्पत्ति-पूर्ण भारत-भूमि विदेशियोंद्वारा निचोड़ी जा चुकी होगी, और भारत-सन्तति हाथ मलमल कर ही रह जायगी। ऐसे व्यवसायोंके विषयमें सर विट्ठलदासका विचार है कि—"इनके चिरस्थायी हित साधनके [illegible] नहीं [illegible] है कि [illegible] अधिक [illegible] हो रहा है, और सोना [illegible] [illegible] हो रहा है, [illegible] कि भारतका क्रमशः पुनरुद्धार नहीं होगा, [illegible] विदेश-[illegible] [illegible] है, और इसके [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] और लाभ [illegible]। [illegible]

देश जहाँ तीन करोड़ जनता जीविकोपार्जन करती है, एक लाख मनुष्योंको जीविकाके अभावसे भूखों न मरने देगा। और यही संख्या उन श्रमजीवियोंकी है, जोकि इन व्यवसायोंमें लाभ उठाती है। विदेशीय पूँजीके व्यवहारसे देशको जो लाभ हो रहा है, उसके लिए जो मूल्य दिया जा रहा है अपरिमित है।"

इस विषयमें इन प्रतिष्ठित महाशयका मत पर्याप्त है। ऐसे व्यवसायोंमें विदेशीय पूँजीका व्यवहार कैसा अनुपयोगी है, कैसा अहितकर है—यह स्पष्ट है। फिर और भी बहुतसे भारतहितैच्छु सज्जनोंका यही मत है। यदि सच पूछिये तो इन व्यवसायमें जो उन्नति हुई है, उसे तो अवनति ही कहना उचित है। देशकी प्राकृतिक सम्पत्ति नष्ट हो रही है, और उससे लाभ उठा रहे हैं विदेशीय पूँजीवाले। सर टामस हालेण्डने सं० १९६२ की भारतीय व्यवसायिक कान्फ्रेंसमें कहा था कि, मिट्टीके तेलके व्यवसायमें और इसी श्रेणीके और भी बहुतसे व्यवसायोंमें जबतक भारतीय पूँजीवाले निज सञ्चित धन न लगाएँगे, तबतक इनकी उन्नतिके फल-स्वरूपमें भारत एक अनावश्यक और अनुचित कर विदेशियों-को देता रहेगा।"*

यह कर कितना है, इस प्रकार कितना धन दरिद्र भारतको विदेश भेजना होता है—इसका ठीक ठीक परिमाण निकालना कठिन है। परन्तु, यदि व्यापारकी अनुकूल बाकीकी ओर दृष्टिपात किया जाय तो निस्सन्देह इसका कुछ अनुमान हो सकता है। भारतवर्षको निज व्यापारकी अनुकूल बाकीद्वारा प्रतिवर्ष लगभग ७५ करोड़ रुपये विदेश-से पाना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत भारत सरकारको 'होमचार्जेज' † के लिए भारत-सचिवको इंगलिस्तान प्रतिवर्ष ३१ करोड़ रुपयेसे भी अधिक भेजना होता है, और सम्भवतः इससे कुछ ही कम रुपया विलायती व्यापारियोंको भारतवर्षके व्यवसायोंमें लगी हुई पूँजीके ब्याज या लाभमें पाना होता है, क्योंकि इस ७५ करोड़की वृहत् संख्याका सप्तम भाग भी भारतवर्ष वस्तुतः नहीं पाता और लौटफेर कर सब विदेश ही जाता है। यह भारतीय व्यवसायोंका विदेशी पूँजीद्वारा व्यवस्थित होनेका परिणाम है। यदि वे भारतवासियोंके ही स्वत्वमें होते, उन्हींकी पूँजीद्वारा सञ्चलित होते, तो यह हानि देश क्यों उठाता। इन व्यवसायोंका लाभ विदेशियोंको क्यों देता। इतनी अनुकूल बाकी होते हुए भी, अब-तक दरिद्रताके बन्धनसे क्यों न मुक्त हुआ होता।

---

*पी० बैनरजीकी इण्डियन इकानोमिक्ससे उद्धृत।

†जो धन भारतसरकार इंगलिस्तानमें भारतवर्षके लिए व्यय करती है। इसके मुख्य भाग निम्नलिखित हैं :—

(१) सरकारी ऋणका प्रबन्ध और रेलों और नहरोंमें लगी हुई पूँजीका ब्याज इत्यादि, (२) भारत सचिवका कार्यालय, (३) सेना (जल और थलकी), (४) छुट्टी-पर गये हुए पदाधिकारियोंका वेतन, और (५) पेन्शिन। इनमेंसे बहुत बड़ा व्यय सरकारी ऋण और पेन्शिनका है, जो कि २६ करोड़के लगभग होता है।

उपरिलिखित प्रमाण और तर्कद्वारा जो बहुतसे व्यवसायोंमें विदेशीय पूँजीकी अनुपयोगिता सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है, उससे यह अभिप्राय नहीं कि वह सर्वकाल और अवस्थामें अहितकर ही प्रमाणित होगी। बहुतसे व्यवसायोंमें, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, उसकी उपयोगिता अतर्क्य है, बहुतसे व्यवसायोंमें किसी सीमातक वह उपयोगी है, और कुछ व्यवसायोंमें वह सर्वथा अनुपयोगी ही है। सारांश यह कि उसकी उपयोगिता या अनुपयोगिता उसके उचित या अनुचित व्यवहारपर ही निर्भर है। यदि विदेशीय पूँजीसे जो देशका हितसाधन होता है, उससे अधिक मूल्य देशको देना होता है, तो उसका व्यवहार अनुचित है। परन्तु, जो हितसाधान होता है, यदि उससे कम मूल्य देना होता है, तो उचित है। भारतवर्षके अधिकांश व्यवसायोंमें जो पूँजी लगी हुई है, उससे जो लाभ देश उठाता है, उससे कहीं अधिक धन उसके मूल्यमें विदेश भेजता है, अतएव अधिकांश व्यवसायोंमें वह अहितकर ही है। और जबतक इसका कुछ समुचित प्रबन्ध न होगा, भारतीय जनता अपना उचित स्थान देशके व्यवसायोंमें प्राप्त न कर सकेगी, भारतका कल्याण दुःसाध्य है।

देशके व्यवसायिक उद्धारमें देशवासियोंको उचित स्थान दिलाना, इस अनुचित करसे,—जोकि विदेशीय पूँजीवालोंको देना होता है दरिद्र भारतको मुक्त करना, इस ओर विशेष ध्यान देकर इनके प्रतिकारका समुचित प्रबन्ध करना, जनताके नेताओं तथा सरकारका परम कर्त्तव्य है। नीचे इस विषयपर विचार करनेका प्रयत्न किया जाता है।

ऊपर जिन व्यवसायोंमें विदेशीय पूँजी लगी हुई है, तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं। प्रत्येक भागपर पृथक् पृथक् विचार किया जाता है।

प्रथम भागमें रेल मुख्य है, और इस व्यवसायमें विदेशीय पूँजीके व्यवहारसे कोई विशेष हानि नहीं, प्रत्युत लाभ ही है, क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है, जो लाभ देश उठा रहा है, वह उस धनसे कहीं अधिक है, जोकि उसे विदेशीय पूँजीके व्यवहारके लिए देना होता है। परन्तु यहाँ भी यह विषय विशेषतः विचारणीय है कि ऐसे गुरुतर व्यवसायके—जिसपर कि बहुत कुछ देशकी आर्थिक उन्नति निर्भर है—विदेशियोंके हाथमें होनेसे, वे अनुचित लाभ तो नहीं उठा रहे हैं, जैसा कि वस्तुतः बहुतसी बातोंमें देखा जाता है। रेलका किराया इस प्रकार रक्खा गया है कि विदेशसे मालके आयातमें तो सुविधा होती है, परन्तु देशके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें माल ले जानेमें असुविधा। इससे देशीय व्यवसायोंको हानि पहुँचती है, क्योंकि देशके किसी भागमें बने हुए मालको दूसरे भागमें ले जानेमें अधिक किराया देना होता है और विदेशसे माल मँगानेमें कम। इससे देशमें स्थित कारखानोंको विदेशीय कारखानोंकी स्पर्धा करनेमें असुविधा होती है और उन्नतिमें बाधा पड़ती है। फिर इस समय रेलके पदाधिकारियोंका यह निश्चय हो रहा है कि जहाँतक सम्भव हो—जहाँतक किरायेकी वृद्धि जनता सहन कर सकती हो—किराया बढ़ाया जाय। युद्धकालमें भी किराया बढ़ाया जा चुका है, जिससे कि विदेशीय हिस्सेदारोंको लाभ भी

शुरू हुआ, और अब फिर किराया बढ़ानेका प्रश्न हो रहा है। यह तो दूर रहा कि किराया इस प्रकार रक्खा जाय कि देशीय व्यवसायोंको विदेशीय व्यापारियोंके प्रतिकूल सहायता मिले, उनको लाभ हो, यात्रियोंको तकलीफ-आरामका ध्यान रक्खा जाय, प्रत्युत किराया बढ़ाया जा रहा है। यह, सर्वथा अनुचित है। इस ओर देशके नेताओंको विशेष ध्यान देना चाहिए और यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिए कि किराया न बढ़ने पावे तथा इन अन्य आपत्तियोंका प्रतिकार हो।

अधिकांश रेलें सरकारी हैं। परन्तु उनका भी प्रबन्ध कम्पनियोंद्वारा ही होता है। कम्पनियाँ विदेशीय व्यापारियोंकी हैं, जिनको देशकी व्यावसायिक उन्नति या अवनतिका विचार होना कठिन है। उनका एक मात्र उद्देश्य धनोपार्जन करना स्वाभाविक ही है। यदि सरकार इन कम्पनियोंके हाथमें न रखकर इनका प्रबन्ध स्वयम् अपने अधीनस्थ करले, तो सम्भव है बहुतसी आपत्तियाँ मिट जायँ, और उनके विदेशीय पूँजीद्वारा सञ्चालित होनेसे जो कष्ट और असुविधायें जनता, मुख्यतः व्यापारी, उठा रहे हैं जाती रहें।

यद्यपि रेलसे व्यापार और व्यवसाय दोनोंकोही बहुत कुछ लाभ हो रहा है, परन्तु अब देशकी आवश्यकतानुसार रेलें काफी हो गयी हैं, अतएव भविष्यमें विदेशीय पूँजीद्वारा नई लाइनोंका निर्माण कर, जनताको और भी ऋणमें दबाना अनुचित होगा। यदि कहीं रेल निकालनेकी आवश्यकता समझी ही जाय, तो सरकार भारतीय पूँजीवालोंको इस कार्य्यके लिए उत्साहित करे और यथासम्भव उनकी सहायता करे। अथवा सरकार स्वयम ही ऋणद्वारा देशमें ही पूँजी उठा कर यह कार्य्य करे, परन्तु विदेशियोंको अब भविष्यमें अवसर न दे।

अब दूसरे प्रकारके व्यवसायोंपर विचार कीजिये। ये वे हैं, जिनमें लगी हुई विदेशीय पूँजी, यद्यपि प्रकट रूपमें कोई विशेष हानि नहीं पहुँचा रही है, परन्तु वस्तुतः विदेशीय स्पर्धाको बढ़ाकर देशके व्यापारियोंकी उन्नतिमें बाधक हो रही है, जिनके द्वारा बहुत कुछ धन लाभस्वरूपमें विदेश जाता है, जो इस बातका भ्रम उत्पन्न करते हैं कि देशने व्यावसायिक उन्नतिकी प्रारम्भिक दशाको समाप्त कर लिया है। इस कोटिमें हम वर्कशाप, फैक्टरी अथवा मिलोंद्वारा काम करनेवाले व्यवसायोंको रख सकते हैं, जैसे—वस्त्र बिनने-की मिलें, चायके खेत और कारखाने, रबरके कारखाने, कागजकी मिलें, सनके कारखाने इत्यादि। इनमें चाय, सन और रबरके कारखानोंकी बड़ी शोचनीय अवस्था है। ये दो चारके अतिरिक्त, सभी विदेशीय पूँजीद्वारा सञ्चालित हैं, लाभभी बहुत है जोकि सब विदेश जाता है।

इसके प्रतिकारके लिए इस समय इस बातके प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है कि जिन व्यवसायोंमें देशीय पूँजी बिलकुल नहीं लगी हुई है, उनमें लगाई जाय, और जिनमें विदेशीय तथा देशीय दोनों ही प्रकारकी पूँजी लगी हुई है, उनमें देशीय पूँजीकी मात्रा

बढ़ाई जाय और भविष्यमें विदेशीय पूँजीकी मात्रा न बढ़ने पावे, इसके लिए कुछ उपाय नीचे दिये जाते हैं :—

(१) जिन व्यवसायोंकी व्यवस्था सर्वदा विदेशीय पूँजीद्वारा हुई है और जिनमें उन्नतिकी सम्भावना है उनमें देशके कल्याणके लिए, सरकारको इस बातकी प्रतीक्षा करना अनुचित है कि क्रमशः देशके व्यापारी इसमें स्थान प्राप्त कर लेंगे, परन्तु स्वयम् उनमें हस्तक्षेप करना चाहिए। केवल यही नहीं कि उनको इन व्यवसायोंको हस्तगत करनेमें उत्साहित करे और सहायता दे, परन्तु जबतक यह कार्य्य सम्पादित न हो, तबतक भारतवर्षमेंही, ऋणद्वारा अथवा जिस प्रकारसे उचित समझे, पूँजी खड़ीकर सरकार स्वयम् कुछ कारखाने खोले। इससे बहुत कुछ सफलताकी आशा हो सकती है। भारतीय पूँजीवालोंको पूंजी लगानेका अवसर मिलेगा, विदेशीय पूँजीवालोंके कारखानोंकी स्पर्धाके लिए देशमें कारखाने हो जायँगे, जिससे कि वे अनुचित लाभ न उठा सकेंगे। और फिर भारत सरकारको भी इससे लाभ ही होगा। देशकी अवस्था सुधरेगी और सरकारकी आय बढ़ेगी। सं० १६७१ में मद्रासकी इण्डस्ट्रियल कान्फ्रेन्सने भी ऐसा ही एक प्रस्ताव सरकारसे किया था, परन्तु कोई विशेष फल न निकला था।

(२) कुछ व्यवसायोंमें विदेशीय कम्पनियोंके साथ साथ देशीय कम्पनियाँ भी काम कर रही हैं। सरकारको उचित है कि उनको अपना काम बढ़ानेके लिए उत्साहित करे। जो वस्तुएँ यह बनाती हैं, यदि वे सरकारी दफ्तरों, सेना इत्यादिके लिए उपयोगी हों, तो सरकार उन्हें यथासम्भव इन्हींसे मोल ले, यदि विदेशीय कम्पनियों और इनके मूल्यमें विशेष अन्तर न हो। जब कि विदेशीय सरकार करोड़ों रुपये व्यय कर निज देशकी व्यवसायिक उन्नति करती है, तब क्या हम अपनी सरकारसे यह भी आशा नहीं कर सकते।

(३) देशीय पूँजी द्वारा सञ्चालित कम्पनियोंकी आयपर विदेशीय कम्पनियोंसे कम कर रक्खा जाय। यद्यपि किसी सीमा तक यह न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता, परन्तु देशके हितके लिए इसका अवलम्बन सर्वथा समर्थनीय है। निस्सन्देह यह करकी कमी विदेशियोंको रुचिकर न होगी, परन्तु इससे देशकी पूँजीवालोंका बहुत कुछ हितसाधन हो सकता है। इससे इनको व्यवसायिक कार्य्योंमें निज पूँजी व्यय करनेका उत्साह बढ़ेगा और विदेशियोंकी स्पर्धा करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

(४) विदेशीय कम्पनियोंको यदि पूँजी बढ़ानेकी भविष्यमें आवश्यकता हो, तो वे उसे भारतवर्षमेंही उठावें और जिनकी क्रमशः ५० प्रतिशत पूँजी भारतीय हो जाय, उनमें और स्वदेशीय कम्पनियोंमें कोई भेद न समझा जाय। इन उपायसे देशीय पूँजीकी मात्रा बढ़नेकी बहुत कुछ सम्भावना होगी, क्योंकि उपरोक्त करके आधिक्यसे बचनेके लिए वे निज कारखानोंमें भारतीय पूँजीकी मात्रा यथासम्भव बढ़ावेंगे।

(५) भविष्यमें यदि किसी नई विदेशीय कम्पनीकी स्थापना हो, तो उसमें कमसे कम ५० प्रतिशत पूँजी भारतीय होना चाहिए। इसके लिए उसे अपना प्रास्पेक्टस इत्यादि

भारतवर्षमें भी प्रकाशित करना चाहिए और भारतवासियोंको वहीं सुगमता पूँजी लगानेकी होना चाहिए, विदेशियोंको इस उपायसे भी वही हितसाधन होगा जो कि चतुर्थसे।

इन उपायोंके अवलम्बनसे बहुत कुछ देशीय व्यवसाइयोंकी उन्नतिकी सम्भावना हो सकती है। विदेशियोंको निस्सन्देह कुछ असुलाह होगा, परन्तु इससे देशकी कुछ हानि नहीं। यदि विदेशियोंद्वारा व्यवस्थित कारखाने बन्द भी हो जायँ, तबभी देशका कोई विशेष अहित नहीं हो सकता। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओंको लेकर निज आवश्यकताओंको पूर्ण करनेमें और विदेशसे मँगाकर पूर्ण करनेमें कोई विशेष अन्तर नहीं। क्योंकि इनसे जो लाभ होता है वह भी विदेश ही जाता है।

अब तीसरे भागके व्यवसायोंपर विचार करना शेष है। इसमें खानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायोंकी गणना की गई है। खानोंमें लगी हुई विदेशीय पूँजी देशके लिए कैसी अहितकर हो रही है, किस प्रकार देशकी प्राकृतिक सम्पत्ति नष्ट कर विदेशियोंका हित साधन कर रही है, हानिके अतिरिक्त देशको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा रही है—यह सब विस्तार सहित ऊपर लिखा जा चुका है। अतएव इस व्यवसायमें इसे निर्मूल कर देनेका प्रयत्न करना ही देशवासियोंका परमकर्त्तव्य है। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, मर बिरलदासका मत है कि खानोंका बन्द पड़ा रहना, विदेशियोंके स्वत्वमें होनेसे, देशके लिए कहीं क्षेमस्कर है। परन्तु इस अवस्थामें जबकि खानका व्यवसाय, यद्यपि विदेशियोंद्वारा व्यवस्थित है, इतना उन्नत हो चुका है, विदेशियोंके स्वत्वसे निकालकर बन्द कर देना कदाचित देशके लिए हितकर प्रमाणित न हो, क्योंकि बहुतसी धातुएं जोकि खानोंमें निकलती हैं, देशकी व्यवसायिक उन्नतिकी साधन हैं। कोयलेके बिना एक घड़ी भी मिलों और कारखानोंका काम नहीं चल सकता। यदि बर्मासे मिट्टीके तेलकी आयात बन्द हो जाय तो कदाचित देशमें अन्धकार ही छा रहे। कोयला और मिट्टीका तेल देशके लिए परमोपयोगी हैं, इनका अभाव देश किसी प्रकार स्वीकृत न करेगा।

परन्तु यदि इस बातका प्रयत्न किया जाय कि विदेशीय पूँजीकी मात्रा घटकर स्वदेशीय पूँजीकी मात्रा बढ़े, तो बहुत कुछ सफलताकी आशा की जा सकती है, क्योंकि वर्तमान अवस्थामें ही इन दोनों व्यवसायोंमें स्वदेशीय पूँजी, दूसरे व्यवसायोंको देखते हुए कम नहीं लगी हुई है। ४८ प्रतिशत कोयलेकी खानें स्वदेशियोंके हाथमें हैं। मिट्टीके तेलकी कम्पनीमें स्वदेशियोंका किसी प्रकारका हाथ नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि स्वदेशीय पूँजीकी मात्रा बढ़ानेका प्रयत्न किया जाय, और सरकार इस ओर ध्यान दे, तो शीघ्र ही सफलता प्राप्त हो सकती है। जो स्वदेशीय पूँजीद्वारा सञ्चालित कम्पनियाँ काम कर रही हैं, उन्हें अपना काम बढ़ानेके लिए सरकार उत्साहित करे, नई खानोंके ठेके देनेके समय उनका, विदेशीय कम्पनियोंकी अपेक्षा विशेष विचार करे। सरकारी रेलों तथा और कार्योंमें यथासम्भव स्वदेशी कोयला और मिट्टीका तेल काममें लावे। फिर जो उपाय दूसरे भागके व्यवसायोंके लिए ऊपर लिखे गये हैं, उन सबोंका कार्यरूपमें परिणत करना इसके लिए भी

उपयोगी ही नहीं, सर्वथा आवश्यक है। इससे बहुत कुछ देशका हित साधन हो
और किसी प्रकार हानिकी आशंका नहीं। जो कोयलेकी उपज है, वह देशकी
कताओंके लिए पर्य्याप्त है, इसके बढ़ानेकी अभी कोई विशेष आवश्यकता नहीं।
यदि उन उपायोंके अवलम्बनसे विदेशियोंको कुछ अनुग्रह भी हो और वे अपना
बढ़ा सकें, तब भी देशका लाभ ही होगा, हानि नहीं।

कुछ ऐसी धातुएँ हैं, जिनका निकलना यदि बन्द हो जाय, तो देशकी
यिक उन्नतिमें कोई विशेष बाधा नहीं पड़ सकती, उदाहरणार्थ सोना। और सोनेकी
सब विदेशियोंके स्वत्वमें हैं,—अतएव इस व्यवसायमें देशको सर्वथा हानिही पहुँच रही
जबतक देशके पूँजीवाले इन खानोंको स्वयम् अपने हाथमें लेनेके लिए समर्थ नहीं हो
तबतक इनका बन्द ही रहना देशके हितसाधनका उपाय है। और इसीका प्रयत्न
नेताओंको करना चाहिए।

अब यहाँपर, यद्यपि यह विषयसे किसी सीमातक बहिर्गत है, दो बातें
ऋणके विषयपर कह कर ही, यह लेख समाप्त करना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि
हानि, देश निज व्यवसायोंमें लगी हुई विदेशीय पूँजीसे उठाता है, करीब करीब वही
सरकारी ऋणसे जोकि विदेशमें लिया गया है, उठा रहा है। सरकारके अधिकांश व्यवसा-
कार्य्य, जैसे रेलें, नहरें इत्यादि, तथा अन्यान्य और भी कार्य्य ऋणद्वारा ही
हैं। यह ऋण सवा चार अरबसे भी अधिक है, जिसके ब्याजमें प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़से
अधिक वृहत् संख्यामें रुपया इंगलिस्तान जाता है। यदि यह ऋण इंगलिस्तानमें न उठाकर
भारतवर्षमेंही उठाया गया होता, तो देशका हितसाधन हो सकता था। देशके पूँजी-
वालोंको रुपया लगानेका अवसर मिलता, और विदेश ब्याजके लिए इतना रुपया न भेजना
होता। इसमें संशय नहीं कि यह ऋणकी वृहत संख्या सम्पूर्णतः देशमें खड़ी होना अस-
म्भव सी थी, परन्तु यदि गतवर्षोंमें जिस उत्साहसे युद्धके लिए ऋण उठानेका प्रयत्न
किया गया है, उसी प्रकार इन कार्योंके लिए भी किया गया होता, तो निःसन्देह किसी
उचित सीमातक देशमेंही पूँजी उठ सकती थी। अब भी देशके कल्याण-साधनके लिए
सरकारको इस ओर ध्यान देना सर्वथा उचित है; और यथासम्भव देशमें ऋण ले कर
विदेशीय ऋण अदा करनेका उद्योग करना और देशके पूँजीवालोंको निज पूँजी सरकारी
वृहत व्यवसायिक कार्योंमें निःशंक लगाकर लाभ उठानेका अवसर देना, उसका परम-
कर्त्तव्य है।

नारायणप्रसाद श्रीवास्तव 'रंजन'

पुस्तकावलोकन

भारतीय जागृति—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत भगवानदास केला, सम्पादक 'प्रेम' वृन्दावन। पृष्ठ संख्या २०२ मूल्य १)

भारतीय ग्रन्थमालाकी यह एक पुस्तक है। विषय नाममे प्रकट है। देशमेंजो जागृति और हलचल मच रही है और जिसका प्रभाव जातीय जीवनके सब अंगों पर पड़ रहा है उसीका इस पुस्तकमें विवेचन है। जागृतिके सिद्धान्त, भारतीय जागृतिका सामान्य विवेचन समाजसुधार, औद्योगिक विवरण, शिक्षा साहित्य राजनीति आदि जितने जातीय जीवनके मुख्य विषय हैं उनपर विचारपूर्ण निबन्ध लिखे गए हैं। निबन्धोंकी विचार प्रणाली सराहनीय है और शैलीभी सरल है। मालूम होता है कि जन साधारणका ध्यान रखकर लेखकने सरल और साधारण भाषाका ही प्रयोग किया है। उन्नतिके विचारोंको समझाने के लिए पुस्तक अच्छी है।

गान्धी-सिद्धान्त—सम्पादक श्रीयुत लक्ष्मी नारायण गर्दे, सम्पादक भारतमित्र। प्राप्तिस्थान ग्रन्थ प्रकाशक समिति, १, नृसिंहलेन, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या १४७ मूल्य १)

महात्मा गान्धीने 'होमरूल फार इण्डिया' नामक एक अंगरेजी पुस्तक लिखी है। वास्तवमें [redacted] पुस्तक महात्माजीकी गुजराती पुस्तक "हिन्द स्वराज्य"का स्वयं किया हुआ अंगरेजी अनुवाद है। मूल पुस्तक ट्रान्सवालमें प्रकाशित हुई थी और अब उसका हिन्दी अनुवादभी गर्दे महाशयकी कृपासे हो गया। इसका नाम गान्धी सिद्धान्त उपयुक्त है क्योंकि महात्माजीके सिद्धान्तोंको समझनेके लिए इससे अच्छी और कोई पुस्तक नहीं है। स्वयं उन्हींकी पुस्तकका अनुवाद है। परिशिष्टमें जो बातें दी हैं वे जानने योग्य और रोचक हैं। महात्माजीने अपना मत प्रश्नोंके उत्तर देकर समझाया है। पुस्तक अच्छी छपी है और भाषाभी अच्छी है। आजकल सबके पढ़ने योग्य है। यदि इसका प्रकाशन और पहिले होता तो और भी अधिक लाभ हिन्दी पढ़ने वालोंको होता।

निबन्ध-रत्नमाला—लेखिका पण्डिता चन्दाबाई। प्रकाशक श्रीयुत कुमार देवेन्द्र प्रसाद, प्रेममन्दिर, आरा। पृष्ठ संख्या १२० मूल्य ॥)

सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित निबन्धोंका यह संग्रह है। एक महिला द्वारा लिखे हुए निबन्ध और वे भी स्त्री शिक्षा सम्बन्धी होनेसे आदरके पात्र हैं। परन्तु जब हम विषय सूचीको देखते हैं तो वास्तवमें सची शिक्षाके यत्नपूर्वक एकत्र किये रत्नोंकी लड़ी पाते हैं। विषय बड़ी अच्छे रखे हैं और वे स्त्रियोंको विशेष रीतिसे जानने योग्य हैं। विचार बड़े रम्य हैं और भाषा भी बड़ी मनोहर है। शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थ प्रायः रसहीन हो जाते हैं और विषयके भारसे दबकर मनोरञ्जक नहीं रहते। इस संग्रहमें यह बात नहीं है। छपाई 'इण्डियन प्रेस' प्रयागकी है, कागज बढ़िया है। जिसपर भी मूल्य बहुतही थोड़ा रखा है। स्त्री-समाजके लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी साबित होगी।

हिन्दी डिक्टेशन वा वाचानुलेखन—लेखक पं० गोकुलचन्द्र शर्म्मा-प्रकाशक साहित्य-सदन अलीगढ़। पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य।≈)॥

नागरी सब लिपियोंमें अधिक शुद्ध मानानेमें लिपीजा सकती है फिरभी उसके लिखनेमें प्रायः त्रुटियां होती हैं। बहुतसे शब्द हैं जिनको बड़े बड़े विद्वानभी एकही तरह नहीं लिखते। भाषा शैलीतो अभी बन रही है। मुहाविरे आदिका भेद होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं जबकि हिन्दीकी पुस्तकें प्रायः सभी प्रान्तोंसे प्रकाशित होती हैं। छोटे बालकोंको शुद्ध हिन्दी लिखना सीखनेके लिए और विशेष कर परीक्षार्थी-गणके लिए यह पुस्तक बड़ी लाभकारी होगी। इसका प्रचार होनेसे भाषा सम्बन्धी गड़बड़ी दूर हो सकेगी। सरकारी मदरसोंमें इसका प्रचार विशेषरूपसे होना चाहिए।

(१) उत्पादकोंका बटोतरा, (२) सहकारिता। लेखक श्रीमपुरे श्रीयुत प्रो० बालकृष्णपति बाजपेयी, एम० ए० लश्कर, ग्वालियर। मूल्य दो दो आना।

'हिन्दीमें अर्थ-शास्त्र दुअन्नी पुस्तकमाला'की यह दोनों छोटी छोटी पुस्तकें हैं। विषय नामसे प्रकट है। अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंको जनसाधारणको समझानेमें ऐसी सस्ती पुस्तकें अवश्यलाभकारी हो सकती हैं। इनको सरल बनानेकी तो लेखक महाशयने अवश्य कोशिश की है परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ये जल्दीमें लिखी गई हैं। भाषाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। हम आशा करते हैं कि ऐसी पुस्तकों द्वारा अर्थशास्त्रका ज्ञान लोगोंको सहजमें होगा।

सौरभ—सम्पादक पं० रामनिवास शर्मा। वार्षिक मूल्य ४)

सरस्वतीके आकारका यह एक नया मासिकपत्र झालरापाटन, राजपूतानासे निकलने लगा है। प्रत्येक अंकमें ५० से अधिक पृष्ठ रहते हैं। हमारे सामने 'सौरभ'के तीन अंक हैं। लेख सामायिक और सुपाठ्य हैं। साहित्य, विज्ञान, शिक्षा आदि उपयोगी विषयों पर अच्छे अच्छे विद्वानोंके लेख निकलते हैं। कविताको ऊंचा स्थान प्राप्त है। इस पत्रकी एक विशेषता यह भी है कि महाराज राणाझालावाड़ नरेश जिनकी गणना विद्वानोंमें है इसके संरक्षक हैं। सौर मण्डल पर स्वयं लिखित लेखभी प्रकाशित किया है। हमारी कामना है कि 'सौरभ'से हिन्दी साहित्य महक उठे।

निम्न लिखित पुस्तकेंभी प्राप्त हुई हैं :—

१. शिक्षण—लो० प्रो बालकृष्णपति बाजपेयी एम० ए०
२. स्त्रीधर्मविमर्श ”
३. जीवनोद्देश ”

सम्पादकीय

भारतमें विदेशी व्यवसायी

अपना व्यापार चमकाने के लिए अंगरेज लोग जी जानसे कोशिश करते हैं उनकी चालाकी-स्वार्थ प्रेम और सुव्यवस्थाका यदि भारतवासी पासभी पहुँचें तो भी उनकी बराबरी करना मुमकिन नहीं है क्योंकि राज्यकी पूरी सहायताका उनको सदा भरोसा रहता है और भारतवासी उससे वञ्चित रहते हैं। मि० एन्टवर्क जो मुख्य ट्रेड कमिश्नर हैं भारतवर्ष पधारे हैं। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि वे अंगरेज व्यापारियोंको मालामाल होनेके नये उपाय सोच निकालने आए हैं न कि हम लोगोंके व्यापारकी उन्नति करने। इसमें नई बात तो कोई नहीं है केवल उनके विचार और चालबाजीका परिचय करा देना आवश्यक मालूम होता है। उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि भारतवर्षको विलायती मालसे भर दिया जावे दूसरे देशोंके मुकाबिलेमें विलायतका ही माल यहां आवे और इस देशको तय्यार विदेशी मालका एक बड़ा ग्राहक बना रखा जाय। अपने पैरों हम खड़े न हो सकें, अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए विलायतवालोंका मुँह ताका करें, इसीमें उनको लाभ है, और यही उनकी उद्देश सिद्धि है। विलायतसे भारत रवाना होते समय आपने कहा कि विलायती मालका सबसे अच्छा बाजार हिन्दुस्तान ही है। सन् १९१३ ई० में यहां ७८,०००,००० पौंडका माल आया जिसमें ९६ फी सदी तय्यार माल था। युद्धसे पहिलेके ५ वर्षोंमें आयातका ८० फी सदी माल विलायतसे आया था। एन्टवर्क साहब यही चाहते हैं कि विलायती व्यापारीका सिक्का यहां जमा रहे और हो सके तो कुछ और भी हाथ लग जाय। जर्मनी और इंगलिस्तान जब युद्धमें लगे हुए थे तो अमरीका और जापानने अपना अपना व्यापार भारतसे एक दम बढ़ा लिया। अब एन्टवर्क साहबको यह चिन्ता हो रही है कि अमरीका और जापानको यहांसे निकाल बाहर किया जाय। जापानकी तो उनको चिन्ता नहीं है क्योंकि वहांका माल आपही अब कम आने लगा है और हिन्दुस्तानियोंको वह पसन्दभी नहीं है। परन्तु अमरीकाको दबा देना इतना सहज नहीं है। उसके लिए आप यह तरकीब बताते हैं कि अंगरेज व्यापारियोंको भारतवर्षमें आकर स्वयं अपनी पूँजी लगाकर कारखाने खोलने चाहिए और यहांकी सस्ती मजदूरीका लाभ उठाना चाहिए। इसका नतीजा यह होगा कि अब जो कच्चा माल विलायत भेजा जाता है और तय्यार होकर फिर यहां आता है उसका एक हिस्सा यहीं पर अंगरेजोंकी पूँजीसे तय्यार हो जायगा। अमरीकाको नीचा दिखानेका उपाय सहल है और अपनी पूँजीको विशेष उत्पादक बनानेकी भी तरकीब निकल आई। साहब बहादुरको एक बात नहीं सूझी और वह यह है कि हिन्दुस्तानीभी अपने देशमें अपने व्यापार और उत्पादक शक्तिकी उन्नति करना चाहते हैं। उन्होंने एक बात बहुतही अच्छी कही है कि भारत-

वासियोंको भी व्यापारमें शरीक करो जिससे बहुतसे भेदोंका पता चल जाय और मजूर भारतीसे मिल जायें। मगर उनका हिस्सा होना इतना ही चाहिए कि वे कुछ आप अधिक लाभ न उठा ले जायें। सरकारी अफसर होकर साहब बहादुरने अपनी नीयतका परिचय बड़े साफ शब्दोंमें दे दिया है और फिरभी भारतवासियोंको यही विश्वास दिलानेकी कोशिश रहती है कि उनके स्वत्वोंकी रक्षा साम्राज्यमें अच्छी तरह की जायगी। हम विदेशी पूँजीके विरोधी नहीं हैं। विदेशोंसे ऋण लेकरभी व्यवसायकी उन्नति की जा सकती है परन्तु ऋण लेना एक बात है और उसके कारण व्यवसायिक दासत्व स्वीकार करना दूसरी बात है।

श्रमजीवियोंका प्रश्न

श्रमजीवियोंमें एक नवीन शक्तिका सञ्चार हो रहा है। अन्य देशोंकी तरह यहां पर भी श्रमजिवियोंने अपने दल बना लिये हैं और पूँजी-पतियों से लड़ने झगड़ने और वेतन वृद्धिके लिए हड़ताल करना भी सीख लिया है। इसके बिना उन बेचारोंकी बात भी कौन सुनता। दबकर ही कोई कुछ अपने लाभका हिस्सा दूसरोंको देता है। श्रमजीवियोंकी दशा सुधारनेके लिये तीन उपाय हो सकते है। एक तो कानून द्वारा, जो हो रहा है। और समय समय पर कानून संशोधन से हो सकता है। दूसरा उपाय है परस्पर पूँजी पतियोंमें समझौता या हड़ताल आदि। तीसरा उपाय अपना काम थोड़ा बहुत करता ही रहता है परन्तु उसको प्रबल बनानेकी आवश्यकता है। वह है ,समाजका हस्तक्षेप जिससे नीति की बात मानने के लिये दोनों पक्ष दबाये जा सकें और उचित बात करनेपर समाजके भयसे बाध्य समझे जा सकें। तीनोंही उपाय उपयोगी हैं और उनका साथ साथ काम करना पूरा लाभ दे सकता है। मि० कानूनगोने इस सबन्धमें कुछ अपने विचार प्रकट किये हैं जिनको पूँजी पतियोंको विचार कर काममें लाना चाहिए। इसबातको सब जानते हैं कि श्रमजीवीसे पूरा लाभ उठानेके लिये उसको पेटभर भोजन, कपड़ा और रहने का मकान ऐसे मिलने चाहिएँ जिनसे उसका स्वास्थ्य और काम करने में फुर्ती बनी रहे। इनके बिना श्रमजीवी न पूरा काम कर सकता है और न पूँजीवाला ही पूरा लाभ उठा सकता है। मि० कानूनगो चाहते हैं कि पूँजी-पति उदारताका परिचय देकर तीन बातें अपने श्रमजीवियोंके लिये करें। पहिली तो यह कि अपनी मिलोंके मजूरोंको एकसी वर्दी दें। इस वर्दीका खर्च दोनों ही पक्षके लोग दें। और कपड़े इतने काफी हों कि एक जोड़ धोबीके यहां धुलने जा सके। यदि पूँजीपति स्वयं वर्दी बनवा दें तो मजूरोंको काम छोड़कर भागनेकी लालच कम होगी। वर्दी पहिननेसे काममें भी फुर्ती आती है। दूसरी बात यह है कि मजूरोंको अच्छा भोजन नहीं मिलता। इस कष्टको दूर करनेके लिये मिलके मालिकों को चाहिए कि वे स्वयं उनके भोजन, खोराकका प्रबन्ध करें। स्वास्थ्यके लिये यह एक ही मार्ग होगा। और मजूर बड़ी झंझटसे बच जायेंगे। तीसरी बात मि० कानूनगो यह कहते हैं कि मजूरोंको कभी कभी [illegible] घरोंको जानेके लिये [illegible] जिसमें उनकी तंदुरुस्ती [illegible] हो और वे

कुछ और काम काज भी सीखकर अपनी कार्य-कुशलता बढ़ा सकें। विचार तो यह बहुत अच्छा है और इनसे लाभ भी अवश्य हो सकता है। परन्तु इसको अमलमें लाना न लाना केवल मालिकोंके हाथमें है। यदि तजुर्बा साबित करे कि इनसे मजूरोंकी उत्पादक शक्ति बढ़ती है और वे विशेष सन्तुष्ट रहते हैं तो आशा की जा सकती है कि मालिक लोग इसका लाभ उठावेंगे। पहिले किसी मालिकको आगे बढ़कर परीक्षा करनी चाहिए। हमको सन्देह नहीं कि इससे लाभही होगा।

देशमें खाद्यपदार्थकी कमी

स्व० दादाभाई नौरोजीने बड़े प्रयत्नसे इस बातको सिद्ध किया था कि भारतवर्ष बड़ा निर्धन देश है और उसकी निर्धनता दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। तबसे अबतक अर्थशास्त्रके जाननेवाले इस प्रश्नपर बराबर विचार करते आ रहे हैं कि देशवासियोंकी बड़ी संख्याको पेटभर भोजन नहीं मिलता। और देशोंमें भी भूखों मरनेकी नौबत आ जाती है परन्तु यहां तो भर पेट भोजन न मिलना एक साधारणसी बात हो गई है। 'इण्डियन जर्नल आफ इकनोमिक्स' में अध्यापक दयाशंकर दुबे, एम० ए० ने इस प्रश्नपर कई नवीन बातोंका उल्लेख किया है। आपने देशके खाद्य पदार्थोंका हिसाब दिया है और एक मनुष्यको साधारणतः कितना भोजन चाहिए इसको बताकर यह दिखाया है कि सबको पेटभर भोजन मिलना हिसाबसे असम्भव प्रतीत होता है। जिससे स्पष्ट यह परिणाम निकलता है कि बहुसंख्यक लोगोंको बिना पेट भरे जीवन बिताना पड़ता है। जो आपने अंक दिये हैं उनमें भूल चूकसे बचनेके लिये आपने पूरा प्रयत्न किया है। अतएव बहुतसी बातें जो आप कहते हैं वे सत्यही हैं। पिछले सात वर्षोंमें जितना अन्न उत्पन्न हुआ उसका हिसाब देखने से यही नतीजा निकलता है कि किसी वर्षभी प्रजाको प्रचुर अन्न नहीं मिला। प्रत्येक वर्ष आवश्यकतासे कमी रही। उन्होंने यह परिणाम निकाला है कि जब उपज अच्छी हुई और अन्न बाहर कम भेजा गया तब भी १६ करोड़ मनुष्यों को केवल ७६ फी सदी भोजन सामग्री मिली। अर्थात् जहां १०० की आवश्यकता थी तो ७६ ही मिला और यह भी १६ करोड़ लोगोंको। जिस वर्ष फसल अच्छी नहीं हुई तो ७६ फी सदी की बजाय ६२ फी सदी ही अन्न १६ करोड़ मनुष्योंको मिला। इसका यह मतलब हुआ कि जनसंख्या का ⅔ भाग केवल ¾ खाद्य पदार्थपर निर्वाह करता है। इससे क्या होता है? अंगरेजी राज्यके अन्ध भक्त तो यही कहते चले आते हैं कि देशकी समृद्धि अंगरेजी राज्यमें बहुत बढ़ गई है। कर बढ़ते जाते हैं, सरकारका खर्च बढ़ता जाता है और भूखी निर्बल प्रजापर इनका भार भी बढ़ता जाता है। अकाल और मरी असंख्य मनुष्योंको देह मुक्त करते हैं और यही उपाय गरीब प्रजाके लिए अपने सङ्कटोंके निवारणका रह जाता है। विद्वानोंने इस भयंकर दशासे बचनेके लिए उपाय भी बताये हैं परन्तु वे सब सरकारके हाथमें है और सरकारको पहिले विलायतवालोंके स्वार्थकी पूर्ति करनी है और फिर यहांकी प्रजाकी भलाई सोचनी है। हमारे खूनसे विलायत समृद्ध और सम्पन्न हो रहा है। फिरभी

किसानोंकी दशा [illegible] । [illegible] रहता है । इसका [illegible] नहीं कि जिन खेतोंको जोतते हैं वह उनके कब्जेमें बराबर रही [illegible] मालिकी । [illegible] लगान [illegible] भी बसर नहीं करते। या तो किसानों का बढ़ा हुआ लगान देनेको राजी होना पड़ता है या बेदखल होना पड़ता है। किसानोंकी ये मुख्य शिकायतें हैं। [illegible] यह है कि यहां जिमींदारी है और इस्तमरारी बन्दोबस्त नहीं है यहां [illegible] शिकायत किसानोंकी है। कानूनमें जितनी रक्षा होती है वह किसानों के लिये काफी नहीं है। इस और दूसरे [illegible] की जांचतो हुआही करेगी परन्तु इसबातको मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है कि किसानोंकी दशा सुधरने के लिए कानूनमें परिवर्तन होना आवश्यक है। सरकारने वायदाभी किया है कि कानून परिवर्तन पर शीघ्र विचार होगा। ठीक है प्रतापगढ़में जो किसान सभाका अधिवेशन हुआ वह भी एक विचित्रही दृश्यथा। दूसरी कांग्रेसकी बल्कि कांग्रेससे भी अधिक मनुष्य जमा हुए थे। कुछ लोगोंका ख्याल है कि असहयोग आन्दोलनका यह एक फल है। यह कहां तक सत्य है कहना कठिन होगा। आन्दोलन संसारभरमें हो रहे हैं तो किसानभी उनसे कैसे बच सकते हैं और फिर यह भी याद रखना चाहिए कि उन्होंने कैसे कैसे कष्ट निरन्तर सहे हैं और फरियाद तक नहीं की। कभी अकाल है तो कभी मरी है और जिमींदारकी टेढ़ी निगाह और बनियेका ऋण सदा सर पर सवार है। नेताओंसे हमारी फिर यही प्रार्थना है कि किसानोंके आन्दोलनको उचित मार्ग पर चलाते हुए उनका और देशका भला करें।



ज्ञातव्य

भारतीय मिलोंमें

महीना	सन् १९३०
अक्तूबर ...	६,९५,००,००० रु०
अप्रैल से अक्तूबर ...	३७,३३,००,००० ,,

यह तो मालके मूल्यका हिसाब है। कपड़ा जितना
अप्रैलसे अक्तूबर तक बना उतना उन्हीं महीनोंमें सन् १९२
कारण कई हैं उनमेंसे मुख्य हड़ताल भी है।

विदेशसे आया हुआ सूती कपड़ा

महीना	सन् १९३०	स
अक्तूबर ...	७,९६,००,००० रु०	४,६६,
अप्रैल से अक्तूबर ...	५७,३६,००,००० ,,	३३,०७,००,

ओ३म् [illegible]

स्वार्थ

वर्ष २ खण्ड १ | वैशाख १९७८ | अङ्क १ पूर्णाङ्क १३

नवीन युग



गत पांच वर्षोंमें जितना परिवर्तन संसारमें हुआ है उतना परिवर्तन जगत्के इतिहासमें सौ वर्षोंमें भी किसी युगमें नहीं हुआ। यह परिवर्तन सार्वभौम और आश्चर्यकारी था। परिवर्तन मानवजातिके विचार, आदर्श, आकांक्षा, इत्यादिमें तो प्रत्यक्ष ही है पर औद्योगिक और राजकीय स्थितिमें भी आश्चर्यजनक है।

बेलजियमकी भूमिके पददलित होनेपर यूरोपका आकाश मण्डल बड़े बड़े उच्च विचार और स्वार्थहीन उद्देश्य और वचनोंसे गूंज उठा था। इस लेखका लेखक यूरोपीय महाभारतके समय विलायत (इंग्लैण्ड) में था। बड़े बड़े शान्तिप्रिय और जगत्में शान्ति चाहने वाले शान्तिवादी स्त्री पुरुष भी बेलजियमके नामपर फड़क उठे थे और सब यही कहते थे कि बेलजियमको जर्मनीके पञ्जेसे छुड़ाना मानव जातिका धर्म है। शान्ति प्रचारकी सभाओंके जन्मदाता और ६० ७० वर्षके बूढ़े दार्शनिक अंग्रेज अध्यापक भी रण-क्षेत्रके लिए तय्यार होने लगे थे।

बेलजियमको बचाने वाले दो विजयी राष्ट्र स्वयं स्वतन्त्र राष्ट्रोंको आज बिना डकार लिए ही हड़प जा रहे हैं। यही बेलजियमके नामपर लड़ने वाले शान्ति और स्वतन्त्रता प्रिय दार्शनिक पाश्चात्य आज मिश्र, ईरान (परशिया) टर्की, अरब इत्यादि राष्ट्रोंको छिन्न भिन्न होते अपने आंखोंके सामने देख रहे हैं और तिसपर भी उनकी स्वातन्त्र्य प्रियता उनको उसी भांति उत्तेजित नहीं कर रही है जैसा कि उसने उन्हें संवत् १९७१ के आरम्भमें उन्मत्त कर दिया था।

जब कि मित्र राष्ट्रोंने ग्रीस (यूनान) के साथ वही बर्ताव किया था उससे वही काम लिया जो कि जर्मनीने बेलजियमसे लिया था उस समय किसी भी स्वतन्त्रता प्रिय पाश्चात्य दार्शनिकने आवाज नहीं उठायी। जब राष्ट्रपति दार्शनिक विलसनने सन्धिके सम्बन्धमें १४ शर्तें छपवायीं उस समय सबने विलसनकी प्रशंसाके पुल बांध दिये और सबने उसके उच्च आदर्शोंको स्वीकार किया। पर जब उन्हीं १४ शर्तोंको मित्र राष्ट्रोंने सन्धिके मञ्चपर विराजमान होकर एक एक कर भंग किया तो विलसनके गुण ग्राहकोंने भी आहुतिकी ध्वनिमें स्वर मिला कर एक स्वरसे चौदहों सिद्धान्तोंकी आहुति देते हुए कहा "ओ३म् स्वाहा"

ज्ञातव्यविषय तथा अंक

भारतीय मिलोंमें बुनेहुए मालका मूल्य

महीना	सन् १९२०	सन् १९१९
अक्तूबर ...	६,४४,००,००० रु०	६,०७००,००० रु०
अप्रैल से अक्तूबर ...	३७,३३,००,००० ,,	३६,११,००,००० ,,

यह तो मालके मूल्यका हिसाब है। कपड़ा जितना सन् १९१९ के ७ महीने अप्रैलसे अक्तूबर तक बना उतना उन्हीं महीनोंमें सन् १९२० में नहीं बना। जो कारण गए हैं उनमेंसे मुख्य हड़ताल भी है।

विदेशसे आया हुआ सूती माल

...रोंको थोड़ीसी मजूरी दे काम देते हैं। इन धनियोंके हाथोंमें ... उन्हें गुद मकान धरनेके लिए नहीं देते हैं। बड़े बड़े शानदार ... इन्होंने साधारण लोगोंके निवास-स्थान व गरीब लोगोंके बालकोंके ...के लिए गृह बना दिये हैं उसी तरह बड़े बड़े तालुकेदारोंने ...छोटे छोटे काश्तकारोंको दे दिया है और यह नियम बना दिया ...उतनीही जमीन अपने कब्जेमें रखे जितनी कि वह खुद जोत बो व ... ...इनके बालक बालिकाओंकी शिक्षा और पालन पोषण बोलशेविक ...न ले लिया है। राज्यके खर्चसे बालक बालिकाओंकी शिक्षा होती है। ...त फीसही नहीं माफ है बल्कि उनको पढ़नेके लिए पुस्तकें और पेटके लिए ...ता है।

...ो राज्यपद्धति जिसको 'सोवियट रिपब्लिक' कहते हैं बहुतही साधारण और ...वर्षकी उमरका पुरुष अथवा स्त्री जो खुद काम करके या अपने कामके जरिये ...त पहुंचा कर उदर पूर्ति करते हैं उन सबको अपना प्रतिनिधि चुननेका हक ...ध निम्नांकित नियमानुसार चुने जाते हैं। हर एक गांवको अपने यहांसे अपने ...गांव की सदी एक आदमी और कमसे कम तीन और ज्यादेसे ज्यादे पचास ...भेजनेका हक है। परगने (तालुके) व जिलेकी सभामें एक हजार पीछे एक ...भेजनेका स्वत्व प्राप्त है और प्रत्येक परगनेसे अधिकसे अधिक ३०० आदमी ...ते हैं। प्रान्तीय सभाके लिए प्रत्येक शहरमें २ ०० पीछे एक आदमी और प्रत्येक ...या तालुकेसे प्रत्येक १०,००० पीछे एक प्रतिनिधि भेजनेका स्वत्व प्राप्त है ...अधिकसे अधिक प्रतिनिधि किसी नगरके ३०० होने चाहियें। इन सबके प्रतिनिधि ...समग्ररूसकी सोवियट कांग्रेसमें इस रीतिसे आते हैं कि फी २५००० इलेक्टरोंका एक ...निधि शहरोंसे और प्रति १२५,००० इलेक्टरोंका एक प्रतिनिधि या डेलिगेट प्रान्तीय ...वियटसे जाता है। सारी कांग्रेस अपनेमेंसे २०० सभासदोंको चुनकर एक समग्ररूसकी ...व्यवस्थ कार्य कारिणी "रशियन सेंट्रल एक्जिक्यूटिव कमेटी" नियत करती है और वही ...सब राज्यकार्यके प्रबन्धके लिए निम्नलिखित विभागों द्वारा चालीस मन्त्री नियत करती है। इस मन्त्री मण्डलको "कौंसिल-आफ-पीपल्स कमिसरीज" अर्थात 'जनताके मुख्तारोंकी मण्डली' कहते हैं।

१८ विभागोंके नाम ये हैं।

विदेशी विभाग	Foreign Affairs
घरेलू विभाग	Home Affairs
सामाजिक स्वास्थ्य	Social Welfare
-	Justice
	State Control

ज्ञातव्यविषय त

मारतीय मिलोंमें बुनेहुए

महीना	सन् १९२०
अक्तूबर ...	६,४५,००,००० रु०
अप्रेल से अक्तूबर ...	३७,३३,००,००० ,,

यह तो मालके मूल्यका हिसाब है। कपड़ा जि
अप्रैलसे अक्तूबर तक बना उतना उन्हीं महीनोंमें सन् '
कारण कई हैं उनमेंसे मुख्य हड़ताल भी है।

विदेशसे आया हुआ सूती

महीना	सन् १९२०	
अक्तूबर ...	७,९६,००,००० रु०	
अप्रेल से अक्तूबर ...	४७,३६,००,००० ,,	

ज्ञातव्यविषय तथा श्रंक

भारतीय मिलोंमें बुनेहुए मालका मूल्य

महीना	सन् १९२०	सन् १९१९
अक्तूबर ...	६,४५,००,००० रु०	६,०७००,००० रु०
अप्रेल से अक्तूबर ...	३७,३३,००,००० ,,	३६,११,००,००० ,,

यह तो मालके मूल्यका हिसाब है। कपड़ा जितना सन् १९१९ के ६ महीनेमें अप्रैलसे अक्तूबर तक बना उतना उन्हीं महीनोंमें सन् १९२० में नहीं बना। इसके कारण कई हैं उनमेंसे मुख्य हड़ताल भी है।

विदेशसे आया हुआ सूती कपड़ा

महीना	सन् १९२०	सन् १९१९
अक्तूबर ...	७,९६,००,००० रु०	४,६६,००,००० रु०
अप्रेल से अक्तूबर ...	५७,२६,००,००० ,,	२२,०७,००,००० ,,

भारतीय मिलोंमें बनेहुए कपड़ेपर चुंगी

नवीन युग

हुक्म करते हैं और मजदूरोंको थोड़ीसी मजूरी दे ध्यान देते हैं। इन धनियोंके हाथोंमें कारखाने लेकर वे मजदूरोंमें उन्हें खुद अपने फायदेके लिए चलाना रहे हैं। बड़े बड़े प्रासाद और महलोंको छीनकर उन्होंने सामान्य लोगोंके निवास-स्थान व गरीब लोगोंके बालकोंके पालन पोषण तथा शिक्षाके लिए गृह बना दिये हैं उसी तरह बड़े बड़े तालुकेदारोंसे जमीन छीनकर उन्होंने छोटे छोटे काश्तकारोंको दे दिया है और यह नियम बना दिया है कि हर एक मनुष्य उतनीही जमीन अपने कब्जेमें रखे जितनी कि वह खुद जोत बो व रखा सकता है। राष्ट्रके बालक बालिकाओंकी शिक्षा और पालन पोषण बोलशेविक सरकारने अपने हाथमें ले लिया है। राष्ट्रके खर्चसे बालक बालिकाओंकी शिक्षा होती है। उनके स्कूलोंमें केवल फीसही नहीं माफ है बल्कि उनको पढ़नेके लिए पुस्तकें और पेटके लिए खाना मुफ्त मिलता है।

उनकी राज्यपद्धति जिसको 'सोवियट रिपब्लिक' कहते हैं बहुतही साधारण और सरल है। १८ वर्षकी उमरका पुरुष अथवा स्त्री जो खुद काम करके या अपने कामके जरिये औरोंको फायदा पहुंचा कर उदर पूर्ति करते हैं उन सबको अपना प्रतिनिधि चुननेका हक है। प्रतिनिधि निम्नांकित नियमानुसार चुने जाते हैं। हर एक गांवको अपने यहांसे अपने परगनेकी सभामें फी सदी एक आदमी और कमसे कम तीन और ज्यादेसे ज्यादे पचास प्रतिनिधि भेजनेका हक है। परगने (तालुके) से जिलेकी सभामें एक हजार पीछे एक प्रतिनिधि भेजनेका स्वत्व प्राप्त है और प्रत्येक परगनेसे अधिकसे अधिक ३०० आदमी भेजने होते हैं। प्रान्तीय सभाके लिए प्रत्येक शहरमें २ ०० पीछे एक आदमी और प्रत्येक परगने या तालुकेसे प्रत्येक १०,००० पीछे एक प्रतिनिधि भेजनेका स्वत्व प्राप्त है और अधिकसे अधिक प्रतिनिधि किसी नगरके ३०० होने चाहियें। इन सबके प्रतिनिधि फिर समस्तदेशकी सोवियट कांग्रेसमें इस रीतिसे जाते हैं कि फी २५००० इलेक्टर्सका एक प्रतिनिधि शहरोंसे और प्रति १२५,००० इलेक्टर्सका एक प्रतिनिधि वा डेलिगेट प्रान्तीय सोवियटसे जाता है। सारी कांग्रेस अपनेमेंसे २०० सभासदोंको चुनकर एक समस्तदेशकी मध्यस्थ कार्य कारिणी "रशियन सेंट्रल एकजिक्यूटिव कमेटी" नियत करती है और वही सब राज्यकार्यके प्रबन्धके लिए निम्नलिखित विभागों द्वारा चालीस मन्त्री नियत करती है। इस मन्त्री मण्डलको "कौंसिल-आफ-पीपल्स कमिसरीज" अर्थात् 'जनताके मुख्तारोंकी मण्डली' कहते हैं।

१८ विभागोंके नाम ये हैं।

विदेशी विभाग	Foreign Affairs
घरेलू विभाग	Home Affairs
सामाजिक स्वास्थ्य	Social Welfare
न्याय विभाग	Justice
राज्य प्रबन्ध	State Control

स्वार्थ

जब विजयी राष्ट्रोंने जर्मनी और आस्ट्रियाके अधीन छोटे छोटे राष्ट्रोंको मुक्त किया तो यूरोप तथा अमरीकाके स्वातन्त्र्य प्रिय लोगोंने करतल ध्वनि की और जब उन्हीं विजयी राष्ट्रोंने स्वतन्त्र जातियोंको अपने अधीन कर लिया तब किसीने इसका प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि उलटे पराजित राष्ट्रोंके प्रति स्वभाग्य निपटारेकी घोषणा की और अपने अधीन राष्ट्रोंसे कहा कि "तुम्हारे भाग्यका निपटारा करने वाले हम हैं, तुम नहीं हो"।

जब रूसमें राज विप्लव हुआ तब मित्र राष्ट्रोंने विप्लवकारियोंको बधाई दी। पर जब राज विप्लवसे वहाँके लोग लाभ उठाने लगे और जनता राज्य प्रबन्ध अपने हाथमें लेने लगे तब वही राज्यविप्लवके गुण ग्राहक रूसके शत्रु होकर रूसके विरुद्ध लड़नेको तयार हो गये यहाँ तक कि मित्र राष्ट्रोंके समाचारपत्रोंने नवीन रूस जिसको 'बोलशेविक' साम्यवादी रूस कहते हैं उसके प्रति सैकड़ों झूठी खबरें उड़ायीं। उदाहरणके लिए यहाँपर केवल दो बातोंका उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा। प्रिंस कोपटकिन जोकि रूसके बड़े पुराने विप्लवी 'रिवोल्युशनिस्ट' हैं और जो रूसके विप्लवसे आल्हादित हो इंगलिस्तानसे स्वदेश (रूस) को लौट गये थे और बोलशेविकोंसे असहयोग करते हुए एकान्तवास कर रहे थे इंगलिस्तानके पत्रोंने कई बार प्रकाशित किया कि उन्हें बोलशेविकोंने मार डाला, यहाँ तक कि उनकी तसवीरें भी छाप डालीं कि ये वही राज्यक्रान्तिकारी (बागी) हैं जिनको बोलशेविकोंने मार डाला है। वास्तवमें उनका बाल भी बांका नहीं हुआ था। वे अभी तक जीवित हैं।

एक और झूठी खबर बोलशेविकोंको बदनाम करनेके लिए विलायतमें यह उड़ायी गयी कि बोलशेविकोंने विवाह प्रथाको तोड़ दिया है और स्त्री मात्रको सारी जातिकी सम्पत्ति करार दिया है। जो चाहे वह किसी भी स्त्रीके साथ अचिरस्थाई सम्पर्क करले। यह बात भी नितान्त झूठी है। क्योंकि मेरे पास बोलशेविकोंके विवाह सम्बन्धी नियम (कानून) मौजूद हैं। वहाँके विवाह नियम विलायतके "सिविल मैरेज एक्ट" के समान हैं। भेद इतनाही है कि इसमें रजिष्ट्रारके यहाँ जानेकी जरूरत नहीं होती। यदि युवक तथा युवती कह दें की हम पति पत्नि हैं तो इतनाही काफी है। वहाँ कोई हराम की औलाद नहीं मानी जाती। अर्थात् बाप तथा माता इतनाही कहना काफी है कि यह हमारा लड़का या लड़की है। कानूनकी दृष्टिमें इतनाही काफी है। बोलशेविज्म नवीन युगका नवीन आदर्श है और यह [illegible] बिना [illegible] आगे [illegible] रहा है। [illegible] कारण यह है कि यह [illegible] नवीन आदर्श रखता है और [illegible] बोलशेविज्म कोई नयी बात नहीं। [illegible] उनका कहना है कि [illegible] चाहिये और [illegible] चाहिये। [illegible]

[illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] है। इन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] है। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] लोगोंके [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] बना दिये हैं। इसी तरह बड़े बड़े [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को दे दिया है और यह नियम बना दिया है कि हर एक मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिससे कि वह [illegible] [illegible] [illegible] बना सकता है। इसके कारण [illegible] शिक्षा और [illegible] [illegible] वैज्ञानिक [illegible] करने [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] कारण [illegible] शिक्षा होती है। उनके स्कूलोंमें केवल [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] उनको पढ़नेके लिए पुस्तकें और [illegible] खाना मुफ्त मिलता है।

उनकी राज्यपद्धति जिसको 'सोवियट सिस्टिम' कहते हैं बहुतही साधारण और सरल है। १८ वर्षकी उमरका पुरुष अथवा स्त्री जो खुद काम करके या अपने कामके जरिये औरोंको फायदा पहुंचा कर उदर पूर्ति करते हैं उन सबको अपना प्रतिनिधि चुननेका हक है। प्रतिनिधि निम्नांकित नियमानुसार चुने जाते हैं। हर एक गांवको अपने यहांसे अपने परगनेकी सभाम फी सदी एक आदमी और कमसे कम तीन और ज्यादेसे ज्यादे पचास प्रतिनिधि भेजनेका हक है। परगने (तालुके) स जिलेकी सभामें एक हजार पीछे एक प्रतिनिधि भेजनेका स्वत्व प्राप्त है और प्रत्येक परगनेसे अधिकसे अधिक ३०० आदमी भेजन होते हैं। प्रान्तीय सभाके लिए प्रत्येक महकमे २ ०० पीछे एक आदमी और प्रत्येक परगने या तालुकेसे प्रत्येक १०,००० पीछे एक प्रतिनिधि भेजनेका स्वत्व प्राप्त है और अधिकसे अधिक प्रतिनिधि किसी सभाके ३०० होने चाहियें। इन सबके प्रतिनिधि फिर समस्तरूसकी सोवियट कांग्रेसमें इस रीतिसे आते हैं कि फी २५००० इलेक्टरोंका एक प्रतिनिधि शहरोंसे और प्रति १२५,००० इलेक्टरोंका एक प्रतिनिधि या डेलिगेट प्रान्तीय सोवियटसे जाता है। यही कांग्रेस अपनेमेंसे २०० सभासदोंको चुनकर एक समस्तरूसकी मध्यस्थ कार्य कारिणी "रशियन सेंट्रल एग्जिक्यूटिव कमेटी" नियत करती है और वही सब राज्यकार्यके प्रबन्धके लिए निम्नलिखित विभागों द्वारा चालीस मन्त्री नियत करती है। इस मन्त्री मण्डलको "कौंसिल-आफ-पीपल्स कमिसारीज" अर्थात् 'जनताके मुख्तारोंकी मण्डली' कहते हैं।

१८ विभागोंके नाम ये हैं।

विदेशी विभाग	Foreign Affairs
घरेलू विभाग	Home Affairs
सामाजिक स्वास्थ्य	Social Welfare
न्याय विभाग	Justice
राज्य प्रबन्ध	State Control

विभिन्न जातीय	Nationalities
कृषि विभाग	Agriculture
शिक्षा ,,	Education
आर्थिक विभाग	Finance
फौजी ,,	Military Affairs
जलसेना ,,	Naval ,,
वैदेशिक वाणिज्य	Foriegn Trade
सर्वोका तन्दुरुस्ती	Public Health
श्रमजीवी विभाग	Labour
डाक और तार विभाग	Post and Telegraph
रेल और सड़कोंका विभाग	Communications
खाद्यपदार्थ ,,	Food Supply
राष्ट्रीय किफायतशारी	Supreme Council of National Economics

इस लेखसे मेरा आशय बोलशेविज़मकी व्याख्या देना या सोवियट संगठनपर निबन्ध लिखनेका नहीं। अवकाश मिलनेपर यह कार्य अवश्य करूँगा। यहांपर थोड़ा सा सोवियट प्रजातन्त्रके संगठनके विषयमें लिखनेकी आवश्यकता इसलिए हुई कि नवीन राज्यादर्श सोवियट प्रजातन्त्रही है। उसी राज्यपद्धतिका संसारके समस्त साम्राज्योंमें प्रचार हो रहा है। अब नेता व बुजुर्ग और पढ़े लिखे लोगोंका अंधोंकी तरह अनुकरण करनेका समय नहीं रहा। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार शक्तिसे काम लेने लगा है। नेता तभी तक नेता है जब तक वह जनताकी आकांक्षा और मनोकामना तथा विचारोंको प्रगट करता है। अर्थात् यह जनताका जमाना है। साधारण स्थितिके लोग और युवकगणही नवीन युगके वास्तविक नेता हैं। श्रमजीवी और किसान लोग अपने स्वत्व-रक्षा और अपनी आर्थिक दशा सुधारनेको उद्यत प्रस्तुत हो गये हैं। अब जनताका वेग किसीके रोकने से नहीं रुकेगा। नवीन युगके नवीन आदर्शोंकी बुनियाद मानव प्रकृति व मानव जीवनपर निर्भर है। अतः इसमें लेनिन वा ट्रौट्स्कीको दूर नवीन आदर्शके प्रचार करनेको भ्रमण करनेकी ज़रूरत नहीं। मनुष्यका स्वार्थ और स्वत्व-रक्षा और प्राकृतिक स्वराज्य कामना उसे जाग्रत करती है और वह समयानुसार युग युगमें अपने पैरों खड़ा होकर अपने बाहुबल वा आत्मीय शक्तिसे अपने भाग्यका निपटारा स्वयं करता है और देश कालके अनुसार स्वराज्य स्थापितकर अपने स्वत्वोंकी रक्षा करता हुआ जीवन निर्वाह करता है।

मुकुन्दीलाल

ग्राम्य पञ्चायत विधान



पना राज्य आपही सँभालना अथवा अपने ऊपर आपही राज्य करना स्वराज्य है। यह स्वराज्य बड़ी प्यारी, बड़े मोलकी वस्तु है। पराधीनताके बराबर दुःख नहीं, और स्वाधीनताके बराबर सुख नहीं। स्वराज्य होनेसे ही स्वाधीनता प्राप्त होती है। हां, स्वाधीनों और स्वतन्त्रोंको भी अपनी स्वाधीनता या स्वतन्त्रताको एक निश्चित सीमाके भीतरही रखना पड़ता है। स्वाधीनताके जोशमें उन्हें कोई ऐसा काम करनेका अधिकार नहीं रहता जिससे दूसरोंके सुखमें बाधा पड़े। पर इतने बन्धनसे कोई हानि नहीं होती। पराधीनता नरक है और स्वाधीनता या स्वराज्य स्वर्ग। इसीसे स्वराज्यकी इतनी महिमा है। इसीसे स्वराज्य प्राप्तिके लिए अनन्तकालसे लड़ाई झगड़े, युद्ध-विग्रह और रक्तपात होते चले आ रहे हैं। आयरलैण्डमें इस समय जो अराजकता फैल रही है उसका प्रधान कारण स्वराज्य प्राप्तिकी चेष्टाही है। आयरलैण्डको जाने दीजिए, अपनेही देशको लीजिए। यहाँभी इस समय जो जागृति हो रही है वहभी तो इसीलिए है।

अच्छा, यदि किसी तरहका स्वराज्य इस देशको मिलजाय तो क्या हो? तो यह हो कि ऊँची शिक्षा पाये हुए भारतवासियोंको ऊँचे ऊँचे अधिकार मिल जायें और थोड़ी शिक्षा पाये हुओंको छोटे छोटे। बात यह है कि शासनके कामके लिए शिक्षाकी बड़ी जरूरत है। अशिक्षित मनुष्य कलेक्टर या कमिश्नरका काम नहीं कर सकता। यदि वह जबरदस्ती उस पदपर बिठा दिया जाय या खुदही बैठ जाय तो वह अपना काम अच्छी तरह न कर सकेगा। सो, स्वराज्य मिलनेमें राज्य-कार्य विशेषकर पढ़े लिखे लोगोंही-को अधिक करना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षित अधिकारी अपने अशिक्षित भाइयोंके सुखदुःखका ख्याल रखेंगे और उन्हें हर तरहके सुभीते करदेनेकी चेष्टा करेंगे। यदि कुछ अधिकारियोंसे पूर्णांशमें ऐसी आशा न भी की जाय तो भी स्वराज्यमें अधिक आराम मिलनेकी बहुत बड़ी सम्भावना है। परन्तु फिरभी अशिक्षितों और अनपढ़ोंको दूसरोंहीका मुँह ताकना पड़ेगा। यदि हमारेही भाई हमपर शासन करें तो भी तो वे अन्तर्यामी न होंगे। गरीबके घरका प्रबन्ध यदि अमीर करने जायगा तो उसमें जरूर कुछ न कुछ भूलें होंगी, क्योंकि अपने सुभीतेका जितना ज्ञान गरीबको होगा उतना अमीरको नहीं। अपने सुखदुःखका यथार्थ ज्ञान अपनेहीको हो सकता है।

अच्छा तो स्वराज्य पानेपर यदि अपढ़ और गँवार देहातियोंके लिएभी अपना शासन आपही करनेकी योग्यता करदी जाय तो कैसा हो? तो सोनेमें सुगन्ध हो जाय या नहीं? मैं तो समझता हूं कि जरूर हो जाय। बड़े लोग शासनके बड़े बड़े कामकरें और छोटे लोग छोटे छोटे। अपना काम आपही करनेसे अच्छा भी होता है। जिलेका कलेक्टर कलीरपुर ग्रामकी सफाईपर कहांतक ध्यान दे सकेगा? यह काम तो तभी अच्छा

होगा जब कानूनगुर वालेही उसे करेंगे। इससे एक बात और भी होगी। देहातियोंको शासनके कामका सबक भी मिलेगा और बहुत सम्भव है इस तरह काम करते करते थोड़ा बहुत शिक्षित देहाती कालान्तरमें बड़े बड़े काम करनेके भी लायक हो जायँ। अतएव इस तरहकी योजनासे बड़े बड़े लाभ हो सकते हैं।

हिन्दुस्तानको स्वराज्य तो जब मिलेगा तब मिलेगा। पर इस सूबेके देहातियोंको उसका कुछ अंश मिल भी गया है। खेद है इस तरफ़ लोगोंका बहुत कम ध्यान गया है। स्वराज्य सम्बन्धी चर्चाका काम जिन लोगोंने अपने ऊपर लिया है वे बहुत बड़े आदमी हैं। छोटी छोटी बातोंकी ओर उनकी नज़र जा भी कैसे सकती है? चींटीको चारा मिला है या नहीं, इसकी पूंछपाछ करना दिग्गजोंका काम नहीं। उन्हें तो पृथ्वीके चारों कोनोंको सिरपर सँभालनेहीसे फुरसत नहीं। अतएव इसमें उनका क्या दोष!

देहातियोंको स्वराज्यके स्वल्पांश मिलनेकी घोषणा निकले कई महीने हो चुके। यह घोषणा जिन्हें पढ़ना हो वे विलेज पञ्चायत एक्टमें पढ़ सकते हैं। इस सूबेके कानूनी कौंसिलने इस एक्टको २२ आश्विन १६७७ को पास किया था। गवर्नर जनरलने भी अब इसे जारी करनेकी मंजूरी देदी है।

इस पञ्चायती कानूनकी कृपासे देहातियोंको छोटे छोटे दीवानी और फौजदारी दोनों तरहके, मुकद्दमे खुदही निपटा लेनेका अधिकार दे दिया गया है। इसके सिवा सफाई और तन्दुरुस्ती तथा तालीमसे सम्बन्ध रखनेवाले भी कुछ अधिकार दिये गये हैं। और भी कुछ मुतफर्रिक काम देहाती पञ्चोंसे लिये जा सकेंगे। इन अधिकारोंको थोड़ा न समझिए। कल्पना कीजिए कि यदि कृष्णदत्तको देवदत्तने एक चपत मार दी और बेचारे कृष्णदत्तको फरियाद करनेके लिए जिलेके सदर मुकाम या दूरवर्ती किसी आनरेरी मैजिस्ट्रेटकी कचहरीको दौड़ना पड़ा। वहां उसे अनेक झंझट उठाने और बहुत कुछ खर्च करनेपर दाद मिली। इधर इस दौड़ धूपके कारण उसकी खेतीका काम रुका रहा। इससे उसकी बड़ी हानि हुई। ऐसे मामलोंमें फरियादीको दाद मिलनेमें भी सन्देह रहता है। क्योंकि वहाँ तो दाद देनेवाले गवाहोंहीकी आंखोंसे घटनाओंके दृश्य देखते हैं। जैसा दृश्य ये दिखाते हैं तदनुकूलही वे न्याय करते हैं। अपनेही गाँव या पड़ोसके किसी गाँवमें पञ्चायत मुकर्रर हो जानेसे ये सारे झंझट दूर हो सकते हैं। पञ्च यदि ईमानदार और सच्चे हैं तो वे दूधका दूध और पानीका पानी करदेंगे। पञ्चायत होनेसे दो दो चार चार रुपयोंकी दीवानी नालिशोंके लिए भी देहातियोंको दूर जाने और खर्च करनेकी ज़रूरत न पड़ेगी।

पञ्चलोग अपने गाँवोंकी सफाईका भी बन्दोबस्त खुद कर सकेंगे; मदरसोंकी देख भाल कर सकेंगे, नये मदरसे खुल जानेकी सिफारिश कर सकेंगे। जुरमाने वगैरहसे जो रुपया जमा होगा उसे वे पुराने कुओंकी मरम्मतमें, नये रास्ते बनानेमें, और बरसातमें

अपनी आमदनीके मुताबिक़ कर इनसे खर्च कर सकेंगे। मतलब यह कि वे किसीकी सिफारिशके अपना काम कारबाई कर लेंगे। किसी औरका मुँह उन्हें न ताकना पड़ेगा।

मुकदमे और फीस आदिसे जो रकम वसूल होगी तथा जो रकम गवर्नमेण्ट या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदिसे प्राप्त होगी वह सब पञ्चायतके फण्ड (कोष) में जमा होगा। पञ्चायतको अधिकार होगा कि वह उस रकमसे ऐसे काम करे कि जिसमें उस हलकेके निवासियोंको फायदा पहुँचे। उदाहरणार्थ कुएँ और तालाब आदि खुदवाना या उनकी मरम्मत कराना, रास्ता निकालना और उन्हें दुरुस्त करना, सफाई रखना और शिक्षा प्रचार करना।

गवर्नमेण्ट यदि ऐसे नियम बना दे तो पञ्चायतको सरकारी अफसरोंकी मदद भी करनी होगी और जरूरत पड़नेपर डिस्ट्रिक्ट बोर्डके कार्य्य निर्वाहमें भी योग देना पड़ेगा। कोई मजिस्ट्रेट यदि चाहे तो माल और फौजदारीके मामले भी कलेक्टरी अफसरोंसे पञ्चायतोंके पास तहकीकातके लिए भेज सकेगा।

यहाँतक जो कुछ लिखा गया उससे यह सिद्ध है कि इस कानूनकी कृपासे खासकरके ग्राम्य मुख्य भागोंके ग्रामीण देहातियोंके लिए अनुकूल हो गये हैं। इसकी बदौलत अब वे अपना रगड़ा झगड़ा निपटानेकी सुविधा भी प्राप्त कर सकते हैं और अपने पड़ोसियों, अपने भाइयों और ग्राम वालोंके मार्फत निवासियोंको कुछ आराम भी पहुँचा सकते हैं। इस कानूनको पास करानेमें कौंसिलके कितनेही हिन्दुस्तानी मेम्बरोंने बहुत प्रयत्न और परिश्रम किया है। गवर्नमेण्टकी इच्छाको तो प्रधान समझनाही चाहिए, क्योंकि यदि वह न चाहती तो इस कानूनका मसविदा कौंसिलमें पेश ही न हो सकता। पर जिन मेम्बरोंने गवर्नमेण्टपर बार बार दबाव डालकर इसे पास कराया है उनके भी हम लोग बहुत कृतज्ञ हैं। प्रजाकी हितचिन्तना करना और उनके सुभीतेके कानून पास कराना यद्यपि इन लोगोंका कर्तव्यही है तथापि संसारमें ऐसे बहुत कम लोग हैं जो अपना कर्तव्य अच्छी तरह समझते हों और उसके पालनकी चेष्टा भी यथाशक्ति करते हों। प्रस्तुत कानूनके मसविदेमें अनेक बड़े बड़े दोष थे। परन्तु जो कमेटी इस मसविदेपर विचार करनेके लिए बनायी गयी थी उसने उनमेंसे कितनेही दोष दूर कर दिये। इस कमेटीमें माननीय सी० वाई० चिन्तामणि भी थे। सरकारपर बार बार वाक्यरूप अङ्कुशका प्रहार करके इस कानूनको मसविदेके रूपमें पेश कराने और पेश होनेपर कमेटीमें उसकी कितनीही त्रुटियोंको दूर करानेका श्रेय सबसे अधिक उन्हींको है।

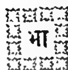
समझदार और शिक्षित देहातियोंको चाहिए कि इस कानूनको और उससे सम्बन्ध रखनेवाले नियमोंको पढ़ें। फिर मुनासिब पञ्च तजवीज करके पञ्चायत कायम करनेके लिए जिलेके हाकिमको दरख्वास्त दें। हर जिलेसे एक एक आदमी कौंसिलका मेम्बर चुना गया है। चुनाव हो गया है, काम निकल गया है। अतएव उन लोगोंमेंसे बहुत कमसे यह आशा है कि वे अपने जिलेके देहातियोंको इस कानूनसे होनेवाले लाभ बतलानेका कष्ट स्वीकार करेंगे और जगह जगह पञ्चायतें खुलवानेकी तजवीज करके उन लोगोंकी

स्वार्थ

उपासना करें जिन्होंने उन्हें जीवितमें बैठनेका स्वर्गीय सुख सुलभ कर दिया है। अतएव देहाती आदमी यदि अपना काम करनेकी खुदही चेष्टा न करेंगे तो इस विज्ञ प्रधान देशका नाश होना ही प्रायः व्यर्थ हो जायगा। उसी तरह व्यर्थ हो जायगा जिस तरह कि विनेस चोरिंग ऐसट आम कोई एक वर्षके बराबर प्रायः व्यर्थ होता चला जाता है। क्योंकि किसानेकी जिले अब भी ऐसे है जहाँ एक भी विज्ञ कोई नहीं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी।

भारतवर्षका प्राचीन और अर्वाचीन व्यापार



भारतवर्षके पश्चिममें अरबका समुद्र है। दक्षिणमें भारत समुद्र और पूर्वमें बंगालकी खाड़ी है। खम्भात और कारोमण्डलके किनारों पर व्यापारके लिए अनेक बन्दर हैं। जिस देशकी स्थिति इस प्रकारकी हो तो यह बात स्वयं सिद्ध है कि उस देशका अन्य देशोंके साथ समुद्रके मार्गसे व्यापार अवश्य ही होता रहा होगा। चाहे इस बातके प्रमाण इतिहासमें अत्यन्त प्राचीनताके कारण पूर्णतया न मिल सकें। तदपि प्रमाणोंकी कमी नहीं है ऋग्वेदमें जो संसार भरमें सबसे प्राचीन पुस्तक है व्यापार सम्बन्धी समुद्र यात्राओंके कितनेही प्रमाण हैं। यह बात ऐतिहासिक रीतिसे सिद्ध हो गयी है कि विक्रमसे १६२० वर्ष पहिले मिश्रदेश और भारतवर्षमें पारस्परिक व्यापारिक व्यवहार था। यह व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गोंसे होता था। सिरावीसे फर्मुजस्थानको माल जाता था और वहांसे ईरानके किनारे किनारे मिश्र और यूनानको पहुंचता था। व्यापारका उत्तरमार्ग हेरात और काबुलसे ईरानकी खाड़ी तक माल जानेका था और मालाबार किनारे और सीलोनसे अदन और मोचा तक जाता था। इतिहासमें यह बात भी सिद्ध हुई है कि एशिया माइनर, ईराक, सीरिया, फारस और अरबमें जो प्राचीन राज्य थे उनके साथ भी हिन्दुस्तानका व्यापार स्थल मार्गसे था। ईरान और भारतवर्षमें परस्पर व्यापार ही नहीं होता था बल्कि राजनैतिक विचारोंका परिवर्तन भी होता रहता था। यह बात भी प्रमाणित हो चुकी है कि भारतवर्ष और चीनमें १५०० वर्ष पहिले स्थल मार्गसे व्यापार होता था। जबसे भारतवर्षमें सभ्यताका विकास हुआ तबसे उसका अन्य देशोंके साथ व्यापारका सम्बन्ध भी हुआ। जिस प्रकार पूर्वमें सूर्य उदय होता है उसी प्रकार पूर्वमें सभ्यताका विकास हुआ है। पश्चिम देशोंमें सभ्यताका विकास होनेसे पहिले पूर्वी देशोंमें सभ्यताकी स्थिति बहुत प्राचीन समयमें दृढ़ हो चुकी थी। पूर्वी देशोंहीसे संसारके बड़े बड़े धर्मोंकी उत्पत्ति हुई। हिन्दू धर्म, पारसी धर्म, बौद्ध धर्म, कनफ्यूशियन धर्म, ईसाई धर्म और [illegible] धर्मोंका जन्म पूर्वीय देशोंमें हुआ है। जिस [illegible] ग, कला आदिका विकास होता जाता [illegible] के शिल्पकलाव्यापार

है कि विक्रमसे पाँचवी शताब्दी पहिले इस बादशाहका राज्य पंजाबमें भी था और भारतवर्षके राजा इसको भेटमें बहुतसा चाँदी, सोना, भारतवर्षके शिल्प कलाओंकी सुन्दर और मनोहर चीजें, मसाले और चन्दन भेजा करते थे। ईरानमें चन्दनकी बहुत माँग थी क्योंकि ईरानके बादशाहोंको जो पारसी धर्मके थे अपने अग्नि मन्दिरोंमें जलानेके लिये बड़ी आवश्यकता रहती थी। भारत व्यापारकी वृद्धिका तीसरा काल यह था जब सिकन्दर बादशाह पंजाबमें आया और सिन्ध नदीके रास्तेसे तक्षशिला तक जहाज़ोंके द्वारा गया। इस समय बेबिलोनिया देशके साथ व्यापारमें फिर उन्नति हुई और यह उन्नति विक्रमसे पहिले प्रथम शताब्दी तक रही, जब यूनानी और रोम वाले भारतवर्षके जवाहिरात, मोती और बढ़िया बढ़िया मसाले बड़ी लालसासे मँगाया करते थे। जिस समय रोम देशका बादशाह नीरो था उस समय रोमके साथ भारतका व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा था, उसके पीछे जब अगस्तस और दूसरे बादशाह रोमके राजसिंहासनपर बैठे तब भारतवर्षकी वस्तुओंकी इतनी माँग बढ़ गयी कि, उनके बिना उच्चकोटिके नर नारी रह ही नहीं सकते थे। जो चीजें भारतवर्षसे इस देशमें जाती थीं उनमें मुख्यतः रेशमी कपड़े, सूती छींटें, मसाले, विशेषतः जावित्री आदि वस्तुएँ थीं।

जिस समय रोममें मुसलमान बादशाहोंका राज्य स्थापित हुआ, उस समय भी भारतवर्षका व्यापार उस देशके साथ बहुत बढ़ गया। इसके पीछे जिस समय ईसाई धर्म सम्बन्धी युद्ध मुसलमानोंके साथ होने लगे तब इस व्यापारकी फिर उन्नति हुई। पन्द्रहवीं शताब्दीमें जब पाश्चात्यदेशोंके लोगोंको पूर्वी द्वीपोंसे परिचय होने लगा उस समय इस व्यापारने फिर उन्नति की। इंगलिस्तानकी महारानी एलिजबेथके समयमें अंगरेजोंका हिन्दुस्तानके साथ सम्बन्ध हुआ। सं० १८९० तक जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथमें भारतवर्षका कुल व्यापार न रहा उस समय पश्चिमी देशोंके अनेक व्यापारी हिन्दुस्तानमें आये और यहाँकी चीज़ें अपने अपने देशोंमें ले गये। सं० १९१५ में जबसे भारतवर्षका राज्य इंगलिस्तानके राज्य शासनमें आया है और ईस्ट इण्डिया कम्पनीका कारबार उठा दिया गया है तबसे इस व्यापारने कुछ औरही रूप धारण किया है।

इतिहास-कालके पूर्वका व्यापार कैसा था इस विषयमें हम कुछ नहीं कह सकते, लेकिन विक्रमसे २०५७ वर्ष पहिलेके सिक्के शिलालेख, अन्य प्रकारके लेख ऐसे मिले हैं जिनसे तत्कालीन भारत व्यापारका पता लगता है। विक्रमसे १५५७ वर्ष पहिले तो भारतका व्यापार पश्चिमी देशोंमें अच्छी तरह स्थापित हो चुका था, पश्चिमी देशोंमें आराम-की सभी चीजें भारतवर्षसे जाती थीं। व्यापार सम्बन्धमें पहिले पहिल भारतवासियोंको काम अरब देशसे पड़ा, क्योंकि अरब देश भारतके समीप था। अरब और अफ्रीकाके बीचमें लाल समुद्र है और यह लाल समुद्र व्यापारिक दृष्टिसे बड़े मार्केकी जगह है। अत्यन्त प्राचीन समयसे समस्त व्यापारिक वस्तुएँ चीनसे लगाकर मिश्र और रोम देशों तक लाल समुद्रके ही मार्गसे गयी हैं। लाल समुद्रके मुहानेपर बाबुलमण्डप स्थानपर अरब व्यापारियोंका

उन्नत रहता था। हिन्दुस्तानमें जितना माल देशसे और बरोचकी खाड़ीमें आता था वा सब इसी बन्दरमें पहुँचता था। जिस तरह अरबके व्यापारियोंके लिए बाबलमन्दब प्रसिद्ध व्यापारिक स्थान था, उसी तरह हिन्दुस्तानके बाहर जानेवाले मालके लिए बरोच और देवल स्थान थे। अरबवाले लोबान, हीरा और ऐसीही दूसरी चीजें जो अरबमें होती थीं बाबल-मन्दबके किनारे से लाते थे और यहां इनके बदलेमें हिन्दुस्तानके व्यापारियोंसे मसाले, कपड़, जावित्री, कपड़े, रुई, सोना, मोती, ढाकेकी मलमल, आदि वस्तुएं लेते थे।

सोना हिन्दुस्तानमें कई स्थानोंमें निकलता है लेकिन उस समय सोना तिब्बतके पास बहुत निकलता था। ईरानके बादशाह डेरियसको हिन्दुस्तानवाले करना कर सोनेमेंही देते थे, इसका मूल्य १ करोड़ उन्नीस लाख रुपया होता है तिब्बतसे सोना पेशावरमें आता था और पेशावरसे किराची और बरोचमें और बरोचसे यह मिश्र, असीरिया और बेबेलोनिया आदि देशोंमें जाता था और इन देशोंमें वहांके बादशाहोंके मन्दिरोंमें और उनके जेवरोंके काममें आता था। जिस समय रोम देशमें अगस्तस बादशाह था तो हिन्दुस्तानकी वस्तुओंकी ऐसी मांग हुई कि रोम देशसे मिश्रके मार्गसे लाल समुद्रको जहाज आते थे और इनमें हिन्दुस्तानके मसाले, जड़ी बूटियां, पर, हाथीदांत, सोना आदि ले जाते थे।

जावित्री को रोमवाले बहुत पसन्द करते थे क्योंकि इसकी सुगन्ध उन्हें बहुत पसन्द थी। जब रोमके बादशाह नीरोकी रानी मरी थी तब वह जावित्रीमेंही जलाई गयी थी और इसमें १२५० मन जावित्री जली थी। रोमवाले काली मिर्च और सोंठको भी बहुत पसन्द करते थे और ये सब चीजें भारतवर्षहीसे वहां जाती थीं और उनकी वहांपर ऐसी अधिक मांग थी कि उनका मूल्य सोनेके मूल्यके बराबर था यानी एक तोला जावित्री या काली मिर्च एक तोले सोनेके बराबर थी, इस कीमतसे आप समझ सकते हैं कि १२५० मन जावित्री जिसमें नीरो बादशाहकी महारानी जलाई गई थी कितनी कीमतकी होगी? यदि सोनेका भाव २५) तोला हो तो इसकी कीमत दस करोड़ रुपये होती है। उस समय भारतवर्षके मलमलकी कीमत भी रोममें बहुत अधिक थी, उच्च कोटिकी महिलाएँ ढाकेहीके मलमल पहनती थीं और यह हिन्दुस्तानसे इतनी जाती थी कि रोम देशमें इस बातकी शिकायत थी कि इस देशका सब चांदी सोना, भारतवर्षहीको चला जा रहा है। उस समय रोम और भारतवर्षके व्यापारमें व्यापारकी बाकी भारतवर्षकी ओर अत्यन्ताधिक रहती थी, यह बाकी एक या डेढ़ करोड़ रुपया सालकी थी। उन दिनों चीन देशका रेशमी कपड़ा पश्चिमी देशोंको भारतवर्षहीके मार्गसे जाता था इस मालको व्यापारियोंके झुण्ड स्थल-मार्गसे लाया करते थे। चीनसे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानसे पश्चिमकी ओर कास्पियन समुद्र तक आने जानेके कई स्थलमार्ग थे। तिब्बत और चीनके रेशमी कपड़े और दूसरी वस्तुएँ पेशावरमें आती थीं और वहांसे वे बरोच और केम्बेकी खाड़ीमें लायी जाती थीं और इन जगहोंसे वे हिन्दुस्तानी जहाजोंमें एशिया माइनर तक पहुँचायी जाती थीं। काठियावाड़के मल्लाह बड़े परिश्रमी और हिम्मतवाले थे वे इन चीजोंको व्यापारके लिए जहाजोंमें लादकर

भारतवर्षसे अन्य देशोंको ले जाया करते थे। यह बात दो तीन हज़ार वर्ष पहिलेकी है स्थल मार्गोंमें भी व्यापार बहुत कुछ होता था। असीरिया और बेबिलोनियाके बादशाहो व्यापार मार्गोंकी रक्षा करनेके लिए और व्यापारी और उनके भारवाहक पशुओंको आराम देनेके लिए इन मार्गोंपर जगह जगह बड़ी बड़ी सरायें बनवा दी थीं, इन सरायोंके खण्डहर कहीं कहीं अब भी मिलते हैं।

भारतवर्षमें लोग जहाज़ बनानेकी कला अच्छी तरहसे जानते थे जब सिकन्दर बादशाहने हिन्दुस्तानपर चढ़ाई की है और जब वह यहांसे लौटा है तो उसने अपनी बहुत सी फ़ौज हिन्दुस्तानके बने हुए जहाज़ोंमें सिंध नदीके मुहानेपर भेजी थी। इतिहासज्ञ लिखते हैं कि सिकन्दर बादशाहने इस कामके लिए २००० जहाज़ हिन्दुस्तानकी लकड़ीकेही बनवाये थे। भारतवर्षके मयूर सम्राटोंके समय जहाज बनानेका काम खूब बढ़ा चढ़ा था। ये सम्राट् जहाज़ोंके बड़े शौकीन थे। जहाजोंके द्वारा सिंध और गंगा नदियोंपर बहुत व्यापार होता था। जिनको इस बातमें आशंका हो वे अजन्ता गुफाओंके अत्यन्त प्राचीन चित्र जो दिवारों-पर खिंचे हैं देख सकते हैं। इन चित्रोंमें अनेक प्रकारके जहाज़ बने हैं। अशोक सम्राट्के समयमें भारतवर्षका घनिष्ठ सम्बन्ध सीरिया, मिश्र, साइरीन, मैसिडोनिया आदि देशोंसे हो गया था। इस सम्राट्ने अपने विशाल राज्यकी सीमाओंपर बौद्ध धर्म सम्बन्धी स्तम्भ स्थापित किये थे और इन्होंने इस धर्मका बहुत दूर दूर तक प्रचार किया था। इस धर्म प्रचारसे हिन्दुस्तान की चीज़ोंका व्यापार दूर दूर अन्य देशोंमें हो गया था, इसी तरह दक्षिण भारतमें अन्य राजाओंने व्यापारको बड़ी तरक्की दी थी। भारत और मिश्र देशोंमें परस्पर व्यापार स्थापित करनेके लिए अशोक सम्राट्ने सिकन्द्रिया नामक स्थानको व्यापारकी मण्डी बनायी थी उसी समयमें भारतवर्ष और पश्चिमी देशोंके बीचमें बड़े बड़े स्थल मार्ग खोले गये थे। ये मार्ग मध्य एशियामें होकर आक्सस नदीके किनारे किनारे कास्पियन और काले समुद्रों तक जाते थे अथवा ईरान होकर एशिया माइनरको या ईरानकी खाड़ी और यूफ्रेटीज नदीसे दमिश्क और पामरा स्थानमें होते हुए लेवन्ट तक जाते थे।

भारतवर्षमें जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित हुई तो उसने भारतवर्षकी सब मूल्यवान वस्तुओंका व्यापार अपने हाथमें ले लिया। भारतवर्षकी अत्यन्त मनोहर छींट, बहुमूल्यवान ढाकेकी मलमलें मालाबार किनारेके बने हुए सुन्दर सुन्दर रेशमी कपड़े इन सबका व्यापार इस कम्पनीके हाथमें चला गया। ये चीजें इस कम्पनीके द्वारा इंगलिस्तानको बहुत जाती थीं। जब इंगलिस्तानवासियोंने देखा कि इन चीज़ोंके आनेसे उनके देशी व्यापारको धक्का लगता है तो इन चीजोंपर भारीसे भारी महसूल लगा दिया। छींटों और रेशमी कपड़ोंपर ८०), ६०) सैकड़ा महसूल लगा दिया गया और इसका यह परिणाम हुआ कि भारतवर्षका व्यापार अत्यन्त अवनतिकी दशामें पहुँच गया। इस तरहसे भारतके व्यापारका विनाश होता रहा, यहाँतक कि सं० १८८७ में इंगलिस्तानके व्यापारियोंने जो भारतवर्षसे व्यापार करते थे पार्लामिन्टमें अर्जी दी कि इन भारी महसूलोंके कारण व्यापा-

प्रकारकी बनी हुई वस्तुएँ अन्य अन्य देशोंको जाया करती थीं। यदि हम भारतवर्षके प्राचीन हिन्दू सम्राटोंके समयकी सभ्यताका भी स्मरण न दिलावें और केवल मुसलमानी राज्यके समयकी बातें ही लिखें तो आपको मानना होगा कि इस पिछले समयमें भी भारतवर्षकी सभ्यता उस समयके सब देशोंसे बढ़ी चढ़ी थी। जितने ऐश आरामकी चीजें अथवा शिल्प-कला सम्बन्धी वस्तुएँ इस समयमें थीं उतनी उस समय अन्य देशोंमें नहीं थीं।

अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि महा प्रतापी मुसलमान बादशाहोंके दरबारोंका हाल अंग्रेजी लेखकोंने भी लिखा है जिससे मालूम होता है कि उस समय शिल्प-कला सम्बन्धी वैभव इतना बढ़ा हुआ था कि यूरोपके किसी बादशाहके दरबारोंमें ये बातें देखनेमें नहीं आती थीं। उस समय इन दरबारोंका सब सामान भारतवर्षका ही बना हुआ था, विदेशी वस्तु कोई भी न थी। अब प्रश्न होता है कि इन्हीं पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें जबसे अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ है सो ऐसी कौन सी बात हुई है कि जिससे भारतवासी उन सब चीज़ोंको बनाना भूल गये और उन्हें अपने प्रतिदिनकी आवश्यक वस्तुओंके लिए भी अन्य देशोंका मुँह देखना पड़ा। भारतीय व्यापार सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़नेसे भलीभांति ज्ञात होता है कि भारतके व्यापार तथा शिल्प-कला सम्बन्धी औद्योगिक धंधे किसी दृढ़ राजनीतिसे अवनति दशापर पहुँचा दिये गये हैं। यदि ऐसी कोई कूटनीति न होती तो आज भारतकी व्यापारिक और औद्योगिक दशा पहिलेसे दस गुनी उन्नतिपर होती क्योंकि इस समयमें अनेक प्रकारकी कलें बन गयी हैं जिनके द्वारा वस्तुओंके बनानेमें अनेक सुविधाएँ हो गयी हैं।

जिन देशोंके मनुष्य किसी चीज़कोभी बनाना नहीं जानते थे वे इन कलोंकेद्वारा सब अनेक भांतिकी चीज़ें बनानेमें बड़े कुशल और निपुण हो गये हैं और अपनी कलाकुशलतासे अन्य देशोंका व्यापार अपने हाथोंमें लेकर श्रीसम्पन्न हो गये हैं, तो क्या भारतवासी जो हजारों वर्षोंसे अनेकों प्रकारकी बहुमूल्यवान वस्तुओंको बनाते थे और इन वस्तुओंको संसारके सभी सभ्य देशोंमें पहुँचाकर अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय देते थे और उनके आदर-सम्मान और प्रसंशाके पात्र बने हुए थे, इन नवीन यंत्र साधनोंद्वारा अपनी पहिली कार्य-कुशलताकी अपेक्षा दस बीस गुने प्रवीण और वैभवशाली नहीं हो सकते थे? आज तो भारतवासियोंपर यह आक्षेप है कि ये लोग शिल्प-कला आदि उद्योगोंकी उन्नति करनेकी योग्यताही नहीं रखते हैं। बड़े खेदकी बात है कि जो मनुष्यजाति भूमण्डलपर विद्या, कला, सभ्यतामें अद्वितीय थी बल्कि इन विषयोंकी अन्य देशोंमें जन्मदाता गिनी जाती थी वही आज ऐसी पददलित, मूर्ख और असभ्य गिनी जाती है।

इस समय भारतवर्षका व्यापार जो भारतमें अन्यदेशोंसे आनेवाली और उससे अन्य देशोंमें जानेवाली चीज़ोंसे मालूम हो सकता है इस प्रकार है सं० १६७४ में, १६४१६४८६४६) रुपयेकी कीमतकी चीज़ें आयीं और २४४७६४५२१६) रु० की चीज़ें यहाँसे बाहर गयीं। इसी तरह सं० १६७५ में १८८५६२४२१७) रु० की चीज़ें बाहरसे आयीं और २५५३२२६१०३) रु० की चीज़ें गयीं और सं० १६७६ में २२१७२६६००८) रु० की चीज़ें आयीं और ३१२१४१८०७६) रु० की चीज़ें गयीं। इन व्यापारिक अंकोंसे सामान्य मनुष्योंको यह भ्रम हो सकता है कि भारतवर्षका व्यापार बड़ी उन्नति दशामें है इसलिये यहाँके मनुष्य बड़े श्रीसम्पन्न और सुखी होंगे परन्तु यह बात नहीं है आनेवाली वस्तुएं अधिकांश बनी हुई हैं जिनके व्यापारका असीम लाभ बनानेवालोंको हुआ है और होता है। [illegible] देशसे जानेवाली वस्तुएँ लगभग सभी वे कची हैं जिनके जानेसे भारतवासियोंको मजदूरी और बोझा ढोनेके बराबर लाभ है। यहाँसे प्रतिवर्ष पचास साठ करोड़ रुपयेकी कीमतका अनाज बाहर चला जाता है जिससे देशमें सदैव ही दुर्भिक्ष रहता है जिसने भारतवासियोंको दीन, दुखी और निर्बल बना दिया है। इसी तरह साठ सत्तर करोड़की रुई प्रति वर्ष बाहर जाती है जिसके कपड़े बनकर भारतवर्षमें आते हैं तब भारतवासी अपनी नंगी पीठको ढक सकते हैं। २६ करोड़ रुपयेके तेलके बीज जाते हैं इन बीजोंसे तरह तरहके तेल तैयार होते हैं, और विलायतके कारखानोंमें जितनी कलें चलती हैं उन सबोंमें इसी तेलसे काम लिया जाता है। १५ करोड़की खालें जाती हैं जिनसे तरह तरहकी चमड़ेकी चीज़ें बनकर भारतवर्षमें आती हैं और आठ दस गुनी कीमतसे बिकती हैं, इन चीज़ोंका पक्का सामान भारतवर्षमेंही क्यों न बनाया जाय और सरकारने इन चीज़ोंके बनाये जानेके लिए अबतक क्यों सुविधाएँ नहीं की? इसका उत्तर देना कठिन है। यदि ये सब चीज़ें इसी देशमें बनने लगें तो भारतवर्षकी चीज़ें जो विलायतसे आनेवाली चीज़ोंसे आधा अन्तर पड़ जाय फिर पचास साठ करोड़-का पूरा रुपया भारतवर्षसे क्यों जावे। किन्तु इस समय भारतवर्षमें बाहरसे बनी हुई चीज़ोंका

आना बन्द नहीं तो कमसे कम चौथाई रह जाय और भारतवर्षकी कच्ची जानेवाली चीज़ें यहींके कारखानोंमें बनकर आनेवाली चीज़ोंकी जगहकी आवश्यकताएँ पूरी करदें तब समझो कि भारतवर्षकी दशा पलटी। अंगरेजी राज्यसे पहिले भारतकी आर्थिक दशा यही थी, अब हम उसी दशाको डेढ़ दो सौ वर्ष अंग्रेजी राज्य होते हुए चाहते हैं। इस बातको सभी जानते हैं कि अंगरेजी राज्यके समय जितना अमन हुआ है उतना पहिले अन्य विदेशी राज्योंमें कभी नहीं रहा। रेल और तारके द्वारा जो देशमें सुविधाएँ हुई हैं वे भी बहुगणनीय हैं पर जो हानि व्यापार, उद्योग धन्धे, शिल्प-कला आदि कार्य्योंकी न्यूनतासे हुई है वह अत्यन्त शोचनीय है।

यह हर्षकी बात है कि सरकारका ध्यान अब इस ओर कुछ हो चला है और इसका कारण यूरोपीय महायुद्ध है, क्योंकि उस समय भारतवर्षमें जितनी चीजें चाही गयीं थीं उतनी नहीं मिल सकीं। तब सरकारको यहांकी औद्योगिक हीन दशापर ध्यान देना पड़ा। इस दशाको सुधारनेके लिए सरकारने एक औद्योगिक कमीशन बैठाया था जिसमें सुधारके उद्देश्यसे बहुतसे विचार प्रगट किये गये हैं, यदि ये विचार कार्य्यमें परिणत हो जावें तो वर्त्तमान शोचनीय दशामें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो जाय। पर भारतके व्यापारकी पूर्ण उन्नति तो स्वराज्य स्थापित करनेपरही हो सकती है।

कन्नोमल



राष्ट्र-संघकी प्रतिनिधि सभा



जर्लैण्डके विख्यात स्वातन्त्र्यप्रिय जेनेवा नगरमें राष्ट्र-संघकी प्रतिनिधिसभाका अधिवेशन समाप्त हो गया। दो वर्ष हुए, फ्रान्सकी राजधानीके गर्भमें राष्ट्र संघका गर्भाधान हुआ था। जन्म लेतेही इसका पहिला कार्य्य अपने पिता का भक्षण हुआ। जिन सिद्धान्तोंको लेकर राष्ट्रपति विल्सनने इन आदर्शोंको संसारके सामने रक्खा था वे सिद्धान्त राजनैतिक दांव पेंचके हथौड़ेकी चोटपर चोट सहकर, कैसे चूर्ण हुए, इसको दिखलानेकी यहां आवश्यकता नहीं है। पर जिन दोषोंको साथ लेकर इसका जन्म हुआ उनका दिखला देना बड़ा आवश्यक है।

५ वैशाख सं० १९७६ विक्र० को जो संगठन सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ था उसके अनुसार इस संघकी दो मुख्य सभायें हैं, एक तो समिति (कौंसिल) और दूसरी प्रतिनिधि-सभा (असेम्बली)। समितिके पांच मुख्य सदस्य माने गये थे, अमरीका, ब्रिटन, फ्रान्स, इटली और जापान। हालमें अमरीकाके निकल जानेसे अब केवल चारही रह गये हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिनिधि सभाको भी इस समिति में चार सदस्य भेजनेका अधिकार है। इस समितिकी प्रतिवर्ष एक बैठक आवश्यक है, पर प्रतिनिधिसभाके कई एक अधिवेशन हो सकते हैं। सभामें संघके सभी राष्ट्र अपने अपने प्रतिनिधि भेज सकते हैं। संघके सदस्योंमें इन राष्ट्रोंके नाम हैं—अमरीका, बेलजियम, बोलविया, ब्रेजिल, ब्रिटिश साम्राज्य (कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड और भारतवर्ष) चीन, क्यूबा, इक्वेडर, फ्रान्स, ग्रीस (यूनान), ग्वाटीमाला, हैती, हेजाज, होंडुराज, इटली, जापान, लाइबीरिया, निकारगुआ, पनामा, पीरू, पोलैण्ड, पुर्तगाल, रूमानिया, सर्व और स्लवराष्ट्र, स्याम, जीकोस्लोम्बेका, और उरुगुवे। इनके अतिरिक्त जिन राष्ट्रोंने युद्धमें भाग नहीं लिया था अर्थात अर्जेन्टाइन, चाइल, कोलम्बिया, हालैण्ड, नार्वे, स्वीडेन, स्विट्जर्लैण्ड, सालवेडर, स्पेन, डेन्मार्क, पराग्वे, फारस, और वेनेजुएला निमंत्रित सदस्य माने गये हैं।

इस संगठनसे स्पष्ट है कि संघ विश्वव्यापी नहीं है। जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस और रूम, इन पराजित राष्ट्रोंको इसमें स्थान नहीं दिया गया है। इसका यह सबसे बड़ा मुख्य दोष है। इतनाही नहीं अब अमरीका भी जिसके राष्ट्रपतिने सबसे प्रथम यह आदर्श संसारके सामने रक्खा, इसके पक्षमें नहीं है।

इस दोषसे जो दूसरा दोष उत्पन्न होता है वह शक्तिका ह्रास है। संघके पास कोई ऐसा उपाय नहीं है जिसके बलपर वह दूसरे राष्ट्रोंको अपनी आज्ञा माननेकेलिए बाधित कर सके। इस तरहके उपाय दो ही तरह हो सकते हैं। इनमें सबसे प्रथम नैतिक बल है, परन्तु यह बल बिना विश्वव्यापकताके नहीं आ सकता। रूस, जर्मनी, और आस्ट्रिया-के विषयमें तो यह कहा जा सकता है कि ये राष्ट्र आज इस अराजकता की गोदमें खेल रहे हैं, पर अमरीकाकेलिए तो ऐसा अनुमान नहीं किया जा सकता। विश्वव्यापिताके विरुद्ध

किसी राष्ट्रको सिर उठानेका साहस नहीं हो सकता। जो राष्ट्र इसमें भाग नहीं ले रहे हैं, उनको यह कहनेका पूरा अधिकार है कि तुम्हारी आज्ञा हम माननी नहीं है। पर यदि वे इसके सदस्य होते तो उन्हें ऐसा कहनेका अवसर बहुत कम मिलता। दूसरा उपाय सैन्यबल हो सकता है। पर संघकी कोई स्वतन्त्र सेना नहीं है। संगठनके समय फ्रान्सके प्रतिनिधिने ऐसी सेना रखनेके लिए प्रस्ताव किया था पर इसपर उसकी हँसी की गयी थी क्योंकि ऐसा करना स्वार्थी सदस्योंके लिए हितकर न था। यह कहा जा सकता है कि मुट्ठीभर सिपाहियोंका स्वार्थी समाजपर दबाव ही क्या हो सकता है? क्या बोलशेविक नेता लेनिनका इस सेनाद्वारा बाल भी बाँका हो सकता था? पर यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि यदि संघ विश्वव्यापी होता तो इसका एक सिपाही भी इसकी विश्वव्यापिनी सत्ताका प्रत्यक्ष चिन्ह हुआ होता। सड़कपर खड़ा पुलिस का एक सिपाही केवल अपने शारीरिक बलसे शान्ति भंग न होने दे ऐसा सम्भव नहीं है, पर जिस सत्ताका वह चिन्ह है उसके सहारे सहस्रों मनुष्योंपर वह अपना आतंक जमा सकता है। पर ऐसी सेना तो दूर रही अपने अपने सदस्योंके सैनिक संगठनकी बागडोर तक भी तो संघके हाथमें है ही नहीं। फिर यदि संघकी युद्धके लिए मुस्तैद रहना तो उस शांति-सन्देशकी क्या गति होती जिसको लेकर संसारकी समर-भूमिपर इसका अवतरण हुआ था। अब तीसरा उपाय इसके हाथमें आर्थिक नीतिका संचालन रह जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह अस्त्र इसके उद्देश्योंके अनुकूल है। किसी देशके व्यापारको बन्दकरके यह उसको भूखों मार सकता है। पर इसमें भी अड़चन पड़ती है। बहुतसे देश ऐसे होंगे जो केवल संघकी आज्ञाका प्रचार करने और उसको मान्य बनानेके लिए आर्थिक क्षति उठानेको तय्यार न होंगे। ऐसी दशामें यह प्रत्यक्ष है कि संघके पास कोई ऐसा बल नहीं है जिसके बलसे वह संसार समाजपर अपना आतंक जमा सके।

संघके सदस्योंकी सूचीमें जितने राष्ट्रोंके नाम हैं यदि उतने भी न्याय और धर्मकी ओर दृष्टि रखकर किसी बातको कहें तो सहसा किसी राष्ट्रको उसके विरुद्ध जानेका साहस नहीं हो सकता। पर इस संघके संगठनमें यह भी नहीं है। कारण यह है कि इसमें प्रजाके प्रतिनिधियों द्वारा काम नहीं होता बल्कि राजमन्त्रियों द्वारा होता है जो सदा अपने राज्यका लाभ अपना उद्देश्य मानते हैं। इसलिये इसको 'राष्ट्र-संघ' की अपेक्षा 'राज्य-संघ' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। गत महायुद्धके कुछ विजयी राज्योंने परोपकारके भावोंसे पूरित सुहावने वाक्योंकी ओटमें राष्ट्रसंघको स्वार्थसाधनका एक द्वार बना रखा है। निस्सन्देह प्रजाहितमें वास्तविक राज्यहित है, पर राज्य इतनी स्वार्थी संस्था है कि उसको इस सरलताका अबतक ज्ञान नहीं हुआ है। आज सहस्रों वर्षोंसे प्रजा और राज्यमें परस्परका युद्ध चल रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि धीरे धीरे राज्यका दुर्ग टूट रहा है पर तब भी आज बड़े बड़े प्रजातन्त्र देशोंमें भी राजा और प्रजा, राज्य और राष्ट्र एक नहीं है। दोनोंके उद्देश्योंमें आकाश पातालका अन्तर है। यदि राज्यको भूमिकी भूख है तो प्रजाको अन्नकी, यदि राज्यको तोप और बन्दूककी आवश्यकता है तो प्रजाको हल और चरखेकी, यदि राज्य-

को ज़री और ज़मीनकी चाह है तो प्रजाको नंगे बदन रखनेके लिए मोटे सूती कपड़ी। इसीलिए राजमंत्री प्रजाके प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। स्वार्थ सदैव प्रजाहित रोकता है। यदि मनुष्यको भर पेट अन्न, शरीर ढकनेको वस्त्र और रहनेको घर मिले तो दूसरोंपर आक्रमण करनेकी उसे नहीं सूझती। पर राज्यका जन्म युद्धसे हुआ है और आक्रमणों-पर उसका अस्तित्व निर्भर है। यही एक उपाय है जिसके द्वारा राज्य प्रजाको अन्धे मदके प्रवाहमें डालकर उसको आत्मदर्शनके ज्ञानसे वञ्चित रखकर, अपनी रक्षा कर सकता है।

राष्ट्रसंघका यह वास्तविक स्वरूप देखकर विल्सनके उद्गारोंपर आंसू बहाये बिना नहीं रहा जाता। इस संघके मायाजालमें कितनेही देश फंस रहे हैं, अन्तमें सिवा पश्चात्तापके और कुछ हाथ नहीं आता। भारतवर्ष भी इसका पूरा सदस्य होनेमें अपना परम भाग्य समझता है। पर हसन इमाम और जाम साहब, जो भारत सरकार द्वारा भेजे गये हैं क्या प्रजाके सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं? ब्रिटिश साम्राज्यने भारतको संघका सदस्य बनानेमें इतनी उदारता क्यों दिखलायी इसका कारण कुछ और ही है। संघके संगठनमें कहा गया है कि यह "स्वतंत्र राष्ट्र और उपनिवेशों" का संघ है। ऐसे संघके सदस्य बनानेमें संसारके सम्मुख भारतकी गणना स्वराज्य प्राप्त देशोंमें है। पर भारतको कैसा स्वराज्य प्राप्त है इसको भारतवासीही जानते हैं। भला इस धूर्तताका भी कोई ठिकाना है!

राष्ट्रसंघका दफ्तर जेनेवा नगरमें स्थापित किया गया है। ऐसा करनेमें भी बड़ी बुद्धिमत्तासे काम लिया गया है। यह नगर यूरोपमें सदा विचार-स्वातंत्र्यकी रक्षाके लिए प्रसिद्ध रहा है। कई कठिन समयमें इसने कितने ही राज्यविरोधी और क्रान्तिकारी उदारधर्मावलम्बीओंको शरण देकर अपना नाम यूरोपीय स्वतंत्रताके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित कराया है। आज इसी प्रसिद्ध नगरकी उच्च अट्टालिकाओंसे 'न्याय और सत्यका' मधुर भीषण नाद संसारको सुनाया जा रहा है। इस संघके निर्माणके विचारका श्रीगणेश ऐसे समयपर हुआ था जब सारा संसार तलवारोंकी झनकारसे गूंज रहा था। तब यदि कोई दूरदर्शी इसके विरुद्ध एक शब्दभी निकालनेका साहस करता तो उससे कहा जाता था कि सन्तोष करो, युद्धका जोश शान्त होनेपर इसके सच्चे लाभोंका पता लगेगा। पर इसके दो वर्षका इतिहास निर्मूल आशाओंपर पानी फेर रहा है जैसा कि इसके प्रथम सम्मेलन-की कार्यवाहीसे प्रतीत होगा।

इस सम्मेलनमें लगभग ४० राष्ट्र शामिल थे। प्रतिनिधियोंकी संख्या १०० के लगभग थी। संसारमें सभी तरहके मनुष्य होते हैं, परमार्थी भी और स्वार्थी भी। सम्मेलन-में भी दोनों रूप उपस्थित थे, पर एक निर्बल तो दूसरा प्रबल। यहांपर एक बात ध्यान रखने योग्य है। जो राष्ट्र युद्धकी लूटके बटवारेसे सम्बन्ध नहीं रखते थे उनके प्रतिनिधि उदार और उच्चविचारोंके थे, पर बटवारेमें हिस्सा लगाने वाले राष्ट्रोंने चुन चुनकर ऐसे प्रतिनिधियोंको भेजा था जो ज़रा ज़रा सी बातपर लड़ने मरनेको कटिबद्ध थे। इस

विरोधोंको छोड़कर अन्य कुछ विषयोंमें सर्वसम्मतिसे प्रस्तावोंका स्वीकृत होना सभाके लिए आवश्यक है। ऐसी दशामें इन लोगोंकी खूब बन आती। कोई बात जरा भी इनके स्वार्थपर आघात पहुंचाने वाली हुई कि इन्होंने झट विरोधकी आग भड़काई।

योरपकी और उदार दलके नेता थे स्विट्ज़रलैंडके प्रतिनिधि 'मोटा' और 'मरोर'। मोटाने अपने प्रथम भाषणमें पराजित राष्ट्रोंको शामिल करनेपर बहुत जोर दिया। जिस विद्वत्ता और उच्च विचारोंसे भाषण परिपूर्ण था उसका प्रभाव सारी सभापर पड़ा। सभाकी इस दशाको देखकर फ्रान्सके प्रतिनिधि विवियानीका खून उबल पड़ा। आपने वाक्चातुरीसे किसी कलाका प्रदर्शन अपने पक्षके समर्थनमें उठा नहीं रखा। आपका कहना था कि जब तक जर्मनी सन्धिकी सारी शर्तें पूरी न कर दे संघमें शामिल नहीं हो सकता। सभाने भी जोशमें आकर तालियाँ पीट दीं। इसके बाद विवाद प्रारम्भ हो गया। इस अवसरपर नीति-चतुर ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड राबर्ट सेसिलने यह कहकर कि जर्मनीको सदस्य होने योग्य बनानेका यथाशक्ति शीघ्र प्रयत्न किया जायगा दोनों पक्षोंको शान्त किया।

मरोरने ब्रुसेल्स सम्मेलनकी सिफारिशोंको कार्य्यमें परिणत करनेकी प्रार्थना की। बड़ी बड़ी सेनाओंको तोड़ना और उनके व्ययको कम करना, आज कल युद्धकी लूटके बटवारे सम्बन्धी लड़ाई झगड़ेको बन्द करके शान्ति स्थापनका प्रबन्ध करना, व्यापारके मार्गकी बनावटी रुकावटोंको हटाकर उसको अन्तर्राष्ट्रीय और स्वतन्त्र बनाना आपसमें मित्रभाव और प्रेमका प्रचार करना इत्यादि मुख्य सिफारिशें थीं। मरोरका समर्थन करते हुए इंग्लैंडके प्रतिनिधि ड्रिंगरने कहा कि "इस सभाके सामने दो मुख्य विषय हैं, एक तो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और दूसरे ब्रूसेल्स सम्मेलनकी कार्य्यवाही। यूरोप आज कल पूरा मोहताजखाना हो रहा है.... सबसे भारी दुःखकी बात तो यह है कि जनताके चित्तसे अभी लड़ाईका भूत गया नहीं है इसी लिए जिन उपायोंसे यूरोपकी आर्थिक दशा सुधर सकती है उनकी आवश्यकता उसकी समझमें नहीं आती है।" ड्रिंगरके भाषणका अन्तिम भाग बड़े मार्केका है। आपने कहा कि—"मेरी रायमें प्रजातन्त्र भावोंको, यदि अपनेको शान्तिके योग्य बनाना है तो न्याय और सत्यके पक्षमें सद्विचारोंके साथ साथ दृढ़ साहस दिखलानेकी भी अवश्यकता है। आतशबाजी की नाई कोरे कोरे उत्तेजक वाक्योंहीसे काम नहीं चलेगा। इन विशेष प्रश्नोंके सम्बन्धमें हमें पूरा साहस दिखलाना पड़ेगा, क्योंकि जब तक हम जनताके अज्ञान और अन्ध विश्वासको दूर नहीं करेंगे तब तक हम उसे समृद्धशालिनी नहीं बना सकते। सत्य, न्याय और दृढ़ता, यह संसारकी वास्तविक बड़ी शक्तियाँ, और हमारे राष्ट्रसंघकी स्वाभाविक नेता हैं।"

परन्तु ड्रिंगर साहबकी इस आतशबाजीका प्रभाव सभापर कुछभी न पड़ा, हाँ इतना अवश्य हुआ कि कनाडाके एक बारूदके गोलेमें आगकी चिनगारी पड़ गयी। गोलेकी आवाज़से सारी सभा काँप उठी। वहाँके प्रतिनिधि रोवेल साहब एकदम बिगड़ उठे। आपने

सभाको अपमान और सभ्यके प्रतिकूल बतलाया। फल यह हुआ कि जांचके लिए एक दूसरे कमीशनके सामने इस प्रश्नको टालकर सभाने मामला सिफर करवाया।

अर्जेन्टाइनके प्रतिनिधिने भी ऐसेही कई एक प्रस्ताव पेश किये, पर उनके साथ होनेमें इतनी अड़चनें डाली गयीं कि उसने हैरान होकर सभासे सम्बन्धही तोड़ दिया। सम्मेलनका परित्याग करते हुए उसने सभापतिको लिखा कि "इस संघमें हमारे देशने शान्ति स्थापनके एक नवीन उपाय तथा राष्ट्रोंकी दशा सुधारनेकी सच्ची भावनाकी उत्पत्तिका अनुभव किया था। इसके संगठनको सुधारनेमें उसको आशा थी कि सब लोग परस्पर मिल जुलकर इसको सर्वांग पूर्ण बना देंगे। इसी लिए बिना किसी संकोचके, उसी जोश और शक्तिके साथ जो प्रायः सर्वसाधारणके हितके लिए काम करनेके ध्यानसे उत्पन्न होती है, हमारा देश संघके काममें भाग लेनेके लिए तयार हुआ। सब स्वतन्त्र राष्ट्रोंको तथा छोटे छोटे राष्ट्रोंको भी बिना रोकके अधिकार दिये हुए संघमें शामिल करना प्रजातन्त्र भावोंके अनुसार समितिके सदस्योंका निर्वाचन कराना तथा सब झगड़ोंका अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा निर्णय कराना ये हमारे मुख्य प्रस्ताव थे। इन सुधारोंको जिनमें हमारे प्रजातन्त्र भाव और शान्ति प्रिय विचार इतने स्पष्ट रूपमें प्रकट हो रहे सभाके सामने हमने इस आशासे रखा था कि उसके महान कार्यमें यह अर्जेण्टाइनकी ओरसे भेंट स्वरूप समझे जायंगे। इनमें कोई प्रस्ताव ऐसा न था जिससे किसी सदस्यकी व्यक्तिगत या सम्मिलित जिम्मेदारीपर आघात पहुंचता हो। इसके प्रतिकूल सारे सभ्य संसारको मिला लेनेसे संघकी पुष्टि होती थी और इसका कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जाता था। हमें विश्वास था कि अवसर मिलतेही इनपर विचार होगा क्योंकि संघके संगठनकी नींवके ये स्वभाविक अंग हैं। पर सभाके वोटने इन प्रश्नोंका अन्तही कर दिया। संघनेजो कुछ कार्य्य किया है उसीसे राष्ट्र इसके प्रति निज सम्मति स्थिर करके इसमें विश्वास कर सकते हैं। परस्परके विश्वासकी दशाहीमें इसकी उन्नति हो सकती है। संघकी सत्ता, और इसके उदार विचारोंकी रक्षा प्रजामतमें जिन प्रश्नोंसे हो सकती है उनपर बिना विचार किये हुएही सभाके सदस्य कुछ दिनोंमें विदा हो जायंगे। मेरी ऐसी बातें थीं जिनकी ओर राज्य और प्रजा दोनोंही की आंखें टकटकी लगाये थीं। इन्हींके हल होनेपर उनसे उच्च आशाओंकी जागृति हो सकती थी।"

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयका प्रश्नभी जैसे तैसे टाल दिया गया। न्यायालयके अस्तित्वमें इसके निर्णयको बाध्य बनानेके लिए जोर दिया गया था, पर पहिले समितिहीने इस बातको न मानकर न्यायालयके भावको निर्जीव बना डाला। सभामें यह प्रश्न फिर उठा। इसपर विचार करने के लिए एक कमेटी बैठायी गयी। इस कमेटीने भी समितिहीका साथ देना उचित समझा। ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड राबर्ट सेसिलने कहा कि दौड़नेके पहिले इस न्यायालयको पैरों चलना तो सीख लेने दो। पर इन वाक्योंसे स्विट्ज़र्लैंडको सन्तोष न हुआ, उसने इसपर फिर वाद विवाद उठाया। तब सभाने इसको अगले सम्मेलन-

के लिए दान दिया। यदि वह रकमें [illegible] खर्च की गई होतीं तभी यह कहा जा सकता था कि [illegible] कुछ कम किया [illegible] भी न हुआ।

हमारी भारत सरकारके प्रतिनिधियोंने क्या किया उसका पता अभी नहीं है।

इस तरह यह सम्मेलन समाप्त हुआ। इसकी कार्यवाही देख कर यही कहना पड़ता है कि "बहुत शोर सुनते थे पहलूमें दिलका, चीरा तो एक कतरये खून निकला"

गङ्गाशङ्कर मिश्र।

भारतवर्षके इतिहास लेखनमें भ्रमात्मक विचार और त्रुटियाँ


तिहासाध्ययनकी उपयोगिता अब प्रायः सर्वत्र स्वीकृत हो रही है और वर्तमान असहयोग आन्दोलनमें शिक्षण संस्थाओंको सम्मिलित करनेका मौलिक सिद्धान्त इतिहासका दुरध्ययन और दुरध्यापन ही है। वास्तवमें इतिहासका उचित रीतिसे अध्ययन और अध्यापन किसी जातिके युवकोंमें राष्ट्रीयताको दृढ़ कर देता है। नेपोलियन बोनापार्टने जिसकी बाल्यावस्था और युवावस्था इतिहास और युद्ध विद्याके अध्ययनमें व्यतीत हुई थी और जो इतिहासाध्ययनके महत्वको भली भांति समझकर और ऐतिहासिक शिक्षाओंके अनुकूल आचरणकर अपनेको इतना कीर्तिशाली बना सका था अपने पुत्र (रोमके राजा) को यह अन्तिम उपदेश भेजा था- "मेरा पुत्र बारम्बार इतिहासको पढ़े और उसपर विचार करे—यही सच्ची फिलासफी है"। इन शब्दोंमें एक ऐसी महान् आत्माने इतिहासको दर्शाया है जिसने ऐतिहासिक शक्तियों और शिक्षाओंको आधार रखकर अपनेको ऐसा प्रभावशाली बनाया और ऐतिहासिक सिद्धान्तोंको भुलाकर अपना पतन किया। नेपोलियनके उपर्युक्त कथनमें अत्युक्तिका नाममात्र भी नहीं है। अतः इस विषयके अध्ययन और अध्यापनकी ओर विशेष ध्यान देना राष्ट्रीय शक्तिको सुदृढ़ करनेका उपाय करना है। परन्तु इसके साथ ही साथ इस विषयके अध्ययनमें भी विशेष प्रयास, विशेष सावधानी और विशेष प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता होती है।

आज भारतवर्षके इतिहास लेखनके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है। उक्त ग्रन्थोंको छोड़कर अब तक जो ग्रन्थ किसी भी भाषामें भारतवर्षके इतिहासके सम्बन्धमें विशेषकर मध्यकालीन और अर्वाचीन भारतके सम्बन्धमें लिखे गये हैं वे प्रायः तिथि और घटनाओंकी सूचियाँ हैं। भारवर्षका इतिहास बालककी बुद्धिका प्रयोग नहीं कराता किन्तु केवल उसकी स्मरणशक्तिका और विशेषकर तिथि और घटनाओंको रट लेनेकी शक्तिका। यही कारण है कि भारतीय शिक्षालयोंके वे विद्यार्थी जो पश्चिमी देशोंके इतिहाससे थोड़ेसे भी परिचित हैं वे भारतीय इतिहासका विशेष अध्ययन न कर पश्चिमी देशोंके इतिहासको पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं। यह बात माननीय है कि पश्चिमी इतिहासका अध्ययन अधिक शिक्षाप्रद है परन्तु अपने इतिहासका विशेष अध्ययन न करना राष्ट्रीय विचारोंके ह्रासका द्योतक है और भारतीय ऐतिहासिक साहित्यकी वृद्धिमें बाधक है। मेरा तो विचार है कि भारतीय इतिहास यदि उचित प्रयास और उचित दृष्टिकोणसे किया जाय तो उतना ही शिक्षाप्रद और हृदयंगम हो सकता है जितना कि किसी भी पश्चिमी देशका इतिहास। भारतीय विद्यार्थियोंमें भारतीय इतिहासाध्ययनसे हटनेकी रुचिका मूल कारण भारतीय इतिहासकी पुस्तकें हैं। लेखकोंने इन पुस्तकोंको (उक्त ग्रन्थोंको छोड़कर) बिना पर्याप्त प्रयास किये ही

लिखा है, कुछ भ्रमात्मक विचार प्रकटकर दिये हैं और सामग्रीकी कमीका आश्रय लेकर अपने ग्रन्थके महत्वको दर्शाया है। पाठकोंके पढ़नेके लिए येही पुस्तकें प्राप्य हैं और इनके पाठक बुद्धिके विकास और उदार विचारोंकी सामग्री न पाकर, स्मरणशक्तिको पछाड़नेका भार पाते हैं जिस कारण ऐसे इतिहासके अध्ययनसे बचते हैं। यह इनका बचना एक उनके लिए सम्भव है अच्छा हो परन्तु संगठित राज्यके लिए बहुत ही हानिकर है। नीचे कुछ भ्रमात्मक विचारोंका उल्लेख किया जाता है। जो विशेषकर मध्यकालीन और अर्वाचीन भारतसे सम्बन्ध रखते हैं।

एक विदेशीय लेखकका एक बड़ा ही विचित्र भ्रमात्मक विचार आजकल प्रायः भारतीय इतिहासको न पढ़नेका पोषक इतिहासके विद्यार्थियोंकी जिह्वाओंपर ही रखा रहता है। वे 'मध्यकालीन भारतवर्ष' के लेखक डाक्टर लेनपूलको प्रमाण देते हुए यह कह उठते हैं कि भारतवर्षका इतिहास जन साधारणका इतिहास नहीं है यह तो राजाओं और बादशाहोंकी नामावली, कुलावली और अचानक निष्कारण उपजी हुई घटनाओंकी अवली है। इस विचारके जन्मदाता लेनपूल महाशय ही हैं। इन महाशयको मध्यकालीन भारतवर्षका इतिहास लिखना था। इलियट और डाउसनकी जिन्हें और विदेशीय यात्रियोंके यूरोपीय भाषाओंमें प्रकाशित ग्रन्थ (जिनका उल्लेख विशेष प्रेमसे आपने अपनी भूमिकामें किया है) इनके हाथमें थीं इन पुस्तकोंमें विशेषकर राजदर्बारोंके लेखकोंकी लिखी हुई पुस्तकोंके अनुवाद और बाहरसे राजदर्बारोंमें आये हुये यात्रियोंके वर्णन ही सम्मिलित हैं। अतः डाक्टर लेनपूलने इससे यह अर्थ निकाल लिया कि भारतवर्षके इतिहासमें राजदर्बारोंके वर्णन, और राजघरानोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ऐसी धारणा सर्वथा भ्रमात्मक और निर्मूल है। मध्यकालीन और अर्वाचीन भारतवर्षमें सर्वदा दो प्रकारकी भिन्न भिन्न भाषाएं प्रचलित रही हैं। एक तो राज्य भाषा, अर्थात् मध्यकालीन भारतवर्षमें फारसी, और अर्वाचीनमें अंग्रेजी, और दूसरी जनसाधारणकी भाषाएं जिनमें जनसाधारण लिखते और बोलते थे। इलियट और डाउसनने भारतवर्षपर बड़ी कृपाकर फारसी अर्थात् राज्य भाषाके ग्रन्थों को जो उन्हें मिले उल्थाकर प्रकाशित कर दिया परन्तु जनसाधारणकी भाषाओंके और लेखकोंकी ध्यान न दिया। शायद उनको यह विचार आया ही नहीं था यदि आया भी तो उन्हें इतना समय न मिला कि वह इस विषयको उठाते। इसका फल यह हुआ कि विदेशी विद्वानोंने यह तात्पर्य निकाल लिया कि भारतवर्षका जनसाधारणका इतिहास है ही नहीं। भारतवर्षके जनसाधारणमें सदैव कई भाषाएं प्रचलित रही हैं, इनका विद्वान् मनुष्य एक जीवनमें नहीं हो सकता, विदेशी लेखकोंको सरलता इसीमें हुई कि अधिकांश इलियट या डाउसन द्वारा और अन्य विदेशियोंकी पुस्तकोंको देखकर सामने रखनेसे भारतवर्षके इतिहासकी सामग्री समाप्त हो गयी। इस सरलताने भारतवर्षके इतिहासपर पानी फेर दिया। वस्तुतः कुछ समयसे भी जनसाधारणकी भाषाओंमें कुछ भी ऐतिहासिक ग्रन्थ ऐसे हैं कि जिनमें इन सबोंके जनसाधारणका

इतिहास लिखा है। विदेशीय विद्वान इन आक्षेपोंको पढ़ें, [illegible] शोध करें तब उनको ज्ञात होगा कि भारतवर्षका [illegible] भी क्या इतिहास रहा था, जो इतिहास कि पश्चिमी देशोंके जनसमूहके इतिहाससे कहीं अधिक विस्तार और [illegible] है और जिसमें यूरोपीय पुनरुत्थान और सुधारकी भाँति अन्यान्य अधिक [illegible] और धार्मिक लहरें मिल सकती हैं, चाहे राजनैतिक लहरें उस अंश तक न मिलें। जब तक ऐसा करके न देखें तब तक भारतीय इतिहासपर हाथ लगाना किसी भी विद्वानकी अनधिकार चेष्टा समझा जाता है। भारतके कुछ विद्वानोंने इस विभागको उच्च [illegible] है, अविरल परिश्रम कर रहे हैं, ईश्वरेच्छासे यह कार्य पूर्ण होगा और भारतवर्षके इतिहासकी अवनतिके लेखकोंकी लगायी हुई कालिमा दूर होगी।

दूसरी त्रुटि भारतवर्षके इतिहास लेखनमें विकासवादका ध्यान न रखनेकी है। विकासवाद इतिहास पुरुषोंको माननीय है और एक वैज्ञानिक तत्त्व समझा जाता है। एक क्षणके लिए यह मान भी लिया जाय कि भारतीय जनसाधारणका कुछभी इतिहास नहीं है, परन्तु राजकीय इतिहासमें भी विकास या क्रमानुकूल घटनाओंको समझा जा सकता है और इसी प्रकार समझना उचित भी है। उदाहरणार्थ पठान बादशाहोंका समय लिया जा सकता है। इन लोगोंने शासनप्रणालीमें बहुतसे परिवर्तन किये बहुतसी नवीन रीतियाँ निकालीं। आरम्भमें कुछ काल तक शासनप्रणालीका विकास हुआ, फिर ह्रास प्रारम्भ हुआ जो बाबरके शासनके लगभग अराजकतामें लोपप्राय हो गया। बाबरकी मृत्यु उसके राज्य स्थापनाके पहले हो गयी, और हुमायूँकी प्रकृति ऐसी न थी और न उसे वैरियोंके कारण इतना समय ही मिला कि वह राज्यको पुनः सम्पन्न करता। वह शेरशाहसे लड़ा और भारतवर्षसे भागा। शेरशाहका राज्य स्थापित हुआ। शेरशाह पठान था और इतिहासका विद्वान था। उसने [illegible] पठान राजाओंके शासनसे शिक्षा ली और जो जो बातें पठान बादशाहोंने भारतवर्षके कल्याणके लिए की थीं और जो धीरे धीरे शान्तिमें लोपप्राय हो गयी थीं उनको उसने फिरसे जीवन दान दिया। ऐसा ज्ञात पड़ता है मानो दैवी गति इन सब बातोंको स्वयं ही रच रही थी। पठान भारतमें एक आदर्श देने आये थे, वह आदर्श कुछ बादशाहोंके समयमें ही पूर्ण विकासको पहुँच गया। उस आदर्शमें कुछ बुराई भी आ मिली और इस आदर्शका [illegible] ह्रास होने लगा। इसकी अन्तिम सीढ़ी आयी ही थी कि बाबर (मुगल [illegible]) आ पहुँचा। परन्तु यदि बाबर और [illegible] १०० वर्षके राजनैतिक [illegible] शेरशाहने आकर [illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible]

कृति इब्राहीमलोदी तक लोपप्राय हो चुकी थी, इसलिए पठानोंकी की हुई भारतीय सभ्यता-के लिए सेवाको पुनर्जीवित करनेके लिए एक शेरशाहकी आवश्यकता थी। सम्भव है मेरे यह विचार भ्रमात्मक हों और इतिहासज्ञोंको न रुचें परन्तु यह केवल एक अपरिपक्व उदाहरण भारतीय इतिहासकी समस्याओं और गुत्थियोंपर विचार करनेका है।

तीसरी त्रुटि लेखकोंमें पर्याप्त राजनीति ज्ञानकी कमी और तदनुकूल भारतीय राजनीति धुरन्धरोंके राजनीति गुणग्राहकताकी कमी है। मेरा विचार है कि अशोक या अकबर किसी भी नेपोलियन, पिट या लायडजार्जसे (अपने समयके) राजनीतिज्ञानमें कम न थे, इनकी राजनीतिज्ञताका प्रभाव इनके कार्योंको एक एक करके मस्तिष्कमें भरकर उन-पर वहीं विचार करनेसे पता चलता है। विन्सेंट स्मिथने अपनी "अकबर" नामक पुस्तकमें अकबरकी राज्यवृद्धिके मूल कारणोंमें राज्याकांक्षा को सबसे उच्च स्थान दिया है। मेरा विचार है कि कई देशोंके जीतनेमें उसे राजनैतिक कारणोंने बाध्य किया था। राज्याकांक्षा भी सम्भव है एक अंश रहा हो परन्तु केवल यह कहकर टाल देना कि राज्याकांक्षा ही अकबरके राज्य बढ़ानेका कारण है, सच्चे इतिहास लेखकका लक्षण नहीं है।

भारतके इतिहास लेखकोंमें (कुछको छोड़कर) एक कमी और है। अधिकतर वे इतिहासके वैज्ञानिक नहीं हैं। अब तक सबसे बड़े भारतीय इतिहासके लेखक भारतके शासन विभागके कर्मचारी रहे हैं और अधिकतर इन्हें भारतीय इतिहास लिखनेकी रुचि कुछ पुरानी पुस्तकें मिल जानेसे हुई है। उदाहरणार्थ एलफिन्स्टन विन्सेंट स्मिथ और मोरलैंडको ले लीजिए। एलफिन्स्टन सिविल सर्विसका पुरुष था। विन्सेंट स्मिथ और मोरलैंड-को लेकर किसी [illegible] ([illegible]) को दिखाइये स्पष्ट कहेगा कि यह ऐतिहासिक विज्ञानके विद्वान् नहीं हैं। विन्सेंट स्मिथने तो अपने 'अकबर'को एक घटनावली बनाकर उसमें कुछ ऐतिहासिक विज्ञानके अंश जोड़ना चाहा है। मोरलैंडकी 'इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर' अभी थोड़े दिन हुए ही प्रकाशित हुई है, इसकी वैज्ञानिक त्रुटियोंका सन्दर्शन करना एक छोटी मोटी पुस्तिका लिखना हो जायगा, परन्तु इस सम्बन्धमें पाठक अगस्त सन् १९२० के 'हिन्दुस्तान रिव्यू'में प्रकाशित [illegible] का लेख और जनवरी सन् १९२१ में प्रकाशित [illegible] लेख पढ़ सकते हैं। तात्पर्य इसका यह है कि वे सज्जन (इनके उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं) [illegible] बनाकर इतिहास नहीं लिखते हैं जैसा कि गिबन, [illegible] ने लिखा है और ऐतिहासिक विज्ञान [illegible] रहे हैं। ये सज्जन भारतवर्षके बड़े पुराने [illegible] पुस्तक लिखनेकी लालसा रखते हैं, और [illegible] पुस्तक लिख देनेकी रुचि रखते हैं।

भारतवर्षमें भी दो एक ऐसी जगहें हैं जहांसे कुछ सामग्री मिल जाती है जैसे [illegible] लाइब्रेरी या [illegible] पुस्तकालय बम्बईमें। परन्तु इस कारणसे, [illegible] लेकर ही पुस्तक लिखडालना मैं उचित नहीं समझता। इसलिये सामग्री [illegible] करनी ही है प्रोफेसर जदुनाथ सरकारकी भांति (देखिये माडर्नरिव्यू जनवरी सन् [illegible]) जब सामग्री अन्वेषण करते करते थक जाँय तब पुस्तक लिखना चाहिये। [illegible] धन और समय दोनोंकी आवश्यकता है, परन्तु [illegible] है कि यह [illegible] उदारतासे और उचित रीतिसे व्यय किये जावें और [illegible] इस ओर ध्यान दें।

इसके पश्चात् एक त्रुटि लेखकोंमें और पायी जाती है। चित्रों और [illegible] व्यय बचानेके लिए बहुत कम लगाते हैं। यही बड़ी भूल है। मानचित्रों और [illegible] चित्रोंके बिना इतिहास ज्ञानका अधिक होना कठिन हो जाता है। [illegible] बड़ी अनुचित रीतिसे लगाये जाते हैं। [illegible] 'मराठा' में [illegible] यात्रियों ([illegible]) [illegible] के मार्गोंके मानचित्र तो दे दिये हैं परन्तु मराठोंके युद्धोंके [illegible] नहीं है। ऐसी भूल ([illegible]) [illegible] इतिहास के वैज्ञानिक नहीं हो सकती थी। [illegible]

सम्राट अकबरके समयमें खाद्य वस्तुओंका निर्ख।



अकबर बादशाहके समयमें आवश्यक पदार्थोंका क्या भाव रहा करता था इस प्रश्नके जाननेके लिए कुछ लोगोंको कौतूहल होगा। इस बातके जाननेका और भी कौतूहल इस कारण होता है कि अक्सर हमारे गांवके वृद्ध लोग जिस समय आपसमें बाज़ारके भावका ज़िक्र करते हैं तब वे अपनी युवावस्थाके अनाजकी चीज़ोंकी दर याद कर कर दुःखमें मग्न हो जाया करते हैं। उनमेंसे एक कहता है कि मैंने रुपयेका पांच सेर घी खाया है, दूसरा मेरे ज़मानेमें एक रुपयेका मन भर शुद्ध, पवित्र दूध मिलता था पर वे दिन अब स्वप्न हो गये। अब तो घी दूध के लाले पड़ गये। हम निरामिषभोजी हैं, अतः बिना घी दूधके अपना इस दारुण समयमें कैसे जीवन निर्वाह कर सकेंगे।

यह ग्राम-वृद्धोंकी दुःख-गाथा अक्सर हमें श्रवण गोचर होती है। इसके साथही साथ वे आजकल के लोगों की अपेक्षा अपने आहारकी मात्रा द्विगुण और त्रिगुण अधिक बताते हैं, और अपनी उद्योग शीलता, सामर्थ्य, नीरोगता और दीर्घजीविताकी भी बहुत ही तारीफ करते हैं। आजके नवयुवक ये सब बातें सुन कुछ आश्चर्य करने लगते हैं और बूढ़ोंका मज़ाक उड़ाते हैं। उन बेचारे बूढ़ोंकी बातका समर्थन करनेके लिए निम्नलिखित ऐतिहासिक प्रमाण पर्याप्त होगा।

सम्राट् अकबरके परम भक्त सचिव, फारसी विद्वान् अबुलफ़ज़लने अपने स्वामीके राजत्वकालका सारा ब्योरा "अकबरनामा" और "आईन" नामकी दो पुस्तकोंमें सविस्तर लिखा है। इनमेंसे प्रथम पुस्तकमें राज्यके वृत्तान्तों और दूसरी पुस्तकमें शासन, व्यवहार और अन्यान्य बहुतसे ज्ञातव्य विषयोंका उल्लेख है। आईनमें जो खाद्य पदार्थोंके भाव लिखे हुए हैं उनकी यदि तुलना आजके भावोंसे की जायतो इन दोनोंमें ज़मीन आसमानका फर्क मालूम होगा।

उस समयके तोलनेका मन आज कलके मनसे हलका हुआ करता था इसका प्रमाण है, टॉमसने 'पठान राजाओंके इतिहास' के ४३० पृष्ठमें दिया है। उनके मतानुसार अकबरके समयका मन आजकलके २७ सेर १२ छटांककी तोलके बराबर होता था उस समय ४० दामोंका एक रुपया माना जाता था। तदनुसार चीज़ोंकी दर जो २०वें आईनमें दी हुई है, नीचेके कोष्ठकसे हमें विदित होगी—

खाद्य पदार्थ	एक मनकी दरसे फी रुपयेसे	आज कलकी तोल
गेहूँ ...	१९४½ पाउण्ड, फी रुपया	९७ सेर २ छटांक अर्थात् २ मन १७ सेर २ छटांक
जौ ...	२०७½ पाउण्ड, फी रुपया	१२८ सेर ६ पाव अर्थात् १ मन, १८ सेर, ६ पाव

सम्राट् अकबरके समयमें खाद्य वस्तुओंका निर्ख।

[illegible]	...	२०½ पाउण्ड की मन	१० सेर
[illegible]	...	१११ पाउण्ड, फी मन	एक मन ३१ सेर
घी	...	१३¾ पाउण्ड,	,,	६ सेर ८ छटांकके लगभग
निमक	...	१३८½ पाउण्ड ,,	१ मन १४ सेरके लगभग
तेल	...	७१¾ ,, ,,	१३½ सेरके लगभग
सफेद चीनी	...	१०½ ,, ,,	८½ सेरके लगभग
मूंगकी दाल	...	२७ ,, ,,	१८½ सेरके लगभग
चना	.	१३६½ ,, ,,	एक मन ३६ सेर

'कुछ चीजोंके भावों के हिसाब' शीर्षक आईन नम्बर २७, भाग पहलेके आधार-पर विन्सेन्ट स्मिथने स्वरचित अकबरके जीवन चरित्र के ३६० पन्नेमें आईनके मनकी तौल-को अंग्रेजी पाउण्डमें परिणितकर चीजोंकी दरका उल्लेख किया है। ऊपरके अङ्कोंपर दृष्टि देनेसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि उस समय यह हमारी सस्यश्यामला वसुन्धरा अतुल धन धान्याकीर्ण थी और आजकलकी नाई भारतके कई करोड़ प्राणी अधपेट भूखे न रहते थे। एक धेलेमें एक आदमीका पूरा निर्वाह हो सकता था। स्मिथका कथन है कि धान्या-दिकी ही कीमत सस्ती न थी, लगभग हर एक वस्तु इसी तरह सस्ती थी। एक बकरी सवा रुपयेमें खरीदी जा सकती थी। एक मन दूध १० आनेमें मिलता था, अर्थात् हमारे हिसाबसे एक रुपयेमें ४४ सेर दूध मिला करता था। मासका भाव फी रुपये १७ सेर था। आईनकी चीजोंकी दरके कोष्टककी प्रमाणिकता स्वीकार करते हुए विन्सेण्ट-स्मिथ आईनके समर्थनमें यूरोपके यात्री रो, टैरी, टौम को रेटकी सम्मतियां भी उद्धृत करते हैं*।

टैरीका कथन है कि बाजारमें मछलियां इतनी सस्ती थीं कि मानों उनका कोई मोल-जोल ही न था और प्रायः सभी पदार्थ सारे राज्यमें इतने बहुतायतसे थे कि [redacted] एक मनुष्य बड़ी आसानीसे भरपेट खा सकता था†।

अकबरके समयकी आवश्यकीय खाद्य पदार्थोंकी दर ऊपरके कोष्ठकमें दी गयी है जिनकी तुलना यदि संवत १६२७ वि० और १९४८ की चीजोंकी दरसे की जाय तो यह मालूम होगा कि मँहगी किस कदर बढ़ गयी है। संवत १६२० वि० में गाजीपुर जिलेके सय-

* "The Historian of Akbar is fully justified in using the evidence of Roe, Terry and Tome Coryat, who all resided in Northern and Western India between 1615 and 1618 Their testimony emphatically confirms that of the Ain respecting the lowness of prices and wages, while adding to it by distinctly affirming the abundance of provisions in ordinary year " Akbar the Great Mogul, p. 391.

† Terry states that fish were purchaseble at such easy rates as if they were not worth the valuing, and that, generally speaking, 'the plenty of all provisions' was very great throughout the whole monarchy' every one there may eat bread without scarceness'.

सम्राट् अकबरके समयमें खाद्य वस्तुओंका निर्ख।

अकबर बादशाह मुगल राजाओंमें सबसे धनी थे। उनकी मृत्युके पश्चात् आगरेके किलेके खजानेका ठीक ठीक हिसाब बनाया गया था जिसमें नगद २०,०००००० सुवर्ण मुद्रासे अधिक द्रव्य था। इस नगद द्रव्य और कोषागारमें जितने रत्न थे उनका मूल्य इतना तो अवश्य होना चाहिए। विन्सेण्ट स्मिथ कहते हैं कि अकबर बादशाह ४०,०००००० सुवर्ण मुद्रा अपने पास छोड़ गये थे जिनकी क्रयशक्ति न्यूनातिन्यून २००,०००००० (बीस करोड़) आजकलकी सुवर्ण मुद्राके बराबर होगी*।

इतना अतुल द्रव्य भारत जैसा समृद्धि-शाली देश ही अपने राजाको दे सकता था। इस सञ्चित द्रव्यको फिर कोई बाहर निकालनेका स्रोत न था। यहांका धन यहां ही खर्च होता था। प्रजापर कर बहुत भारी न था। राजा टोडर मलका बन्दोबस्त किसानकी बेहतरीके उद्देश्यसे ही कार्यमें परिणित किया गया था। अबुल फजलका स्पष्ट कथन है कि इस बन्दोबस्तके पश्चात् रैयत बहुत ही खुशहाल थी। इन सब बातोंसे यह बात असन्दिग्धरूपसे कही जा सकती है कि ब्रिटिश शासनकी अपेक्षा अकबरका शासन भारतवर्षके लिए आर्थिक दृष्टिसे अधिक हितकर था। यद्यपि अकबरके शासनका स्वरूप अनियन्त्रित सत्तात्मक था—अर्थात् वह प्रजाके प्रति सब कुछ मनमाना कर सकता था—तथापि वह केवल अकेलाही सत्ताधीश था। किन्तु ब्रिटिश शासन तो प्रजातन्त्र है जिसका पराधीन देशके प्रति स्वेच्छाचार, एक बुद्धि सम्पन्न किन्तु स्वार्थ परायण प्रजाका स्वेच्छाचार है। अतएव यह असह्य है, और अनर्थकारी है। एक मनुष्यका स्वेच्छाचार सहन किया जा सकता है किन्तु एक जातिका नहीं। ब्रिटिश जाति तो देखनेमें प्रजातन्त्र है किन्तु वास्तवमें अनियन्त्रित सत्ताकी विकराल मूर्ति है—इसके स्वेच्छाचारसे हमारा देश रसातलको जा रहा है।

गंगा प्रसाद महता

---

* "It is legitimate, therefore, to assume that Akbar left behind him fully forty million pounds sterling in coined money, equivalent in purchasing power to at least two hundred millions now." Akabar p. 347

आर्थिक उन्नति[1]।



र्थशास्त्रसे संबंध रखने वाले इतिहास तीन प्रकारके हैं, एक है आर्थि
विचारोंका इतिहास[2] दूसरा है अर्थशास्त्रका अथवा अर्थशास्त्रीय सिद्धा
न्तोंका इतिहास,[3] और तीसरा है आर्थिक इतिहास[4]।
निस्सन्देह अर्थशास्त्रकी उत्पत्ति व उन्नति आर्थिक विचारोंसे ही हुई है ये उसर्क
बीज हैं पर वृक्ष और उसके बीज दो भिन्न पदार्थ हैं यह सदैव ही स्मरण रखना चाहिये।
महाशय हेनी "आर्थिक विचारोंका इतिहास" नामक अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि
भारतवासी हिन्दुओंने संसारको कई आर्थिक विचार प्रदान किये हैं यथा, अनार्य स्नाप ब्याज
न लेना चाहिये, आपत्तिकालको छोड़ उच्च जातिवालोंको उनमें कनिष्ठ जातिवालोंका धन्धा
कदापि न करना चाहिये। पर खेद है कि न तो हेनी और न किसी अन्य आंग्ल लेखक-
ने श्रीमद्भागवत चतुर्थ स्कन्धमें वर्णन किये हुए श्रीनारदीय आर्थिक विचारका तनिक भी
लक्ष किया है पर यह है स्वाभाविक। "अधिकांश संख्याका अधिकांश हित" अर्थशास्त्रका
एकमात्र ध्येय है[5]। पर श्रीनारदीय ध्येय यों वर्णित है :—

तज्जन्म तानि कर्माणि, तदायुस्तन्मनो वचः
नृणां येनेह विश्वात्मा, सेव्यते हरिरीश्वरः
भागवत चतुर्थ स्कन्ध।

अर्थ यह है :—इस संसारमें मनुष्योंका वही जन्मतो जन्म है, वेही कर्म कर्म है, वही
आयुष्य आयुष्य है, वही मन मन है, और वेही वचन वचन है जिससे या जिनमें विश्वात्मा
जो हरि हैं उनकी सेवा होती है। पूज्यते न लिखकर सेव्यते लिखा है। सेवाका कितना उच
स्थान है। ईश्वरः न लिखकर विश्वात्मा लिखा है। अब विश्वका आत्मा सारे विश्व चर,
अचर, खेचर, मानव सबमें ही व्याप्त है। जब सेवा इन सबकी हो तब विश्वात्माकी सेवा
हो सकती है अन्यथा नहीं। अब देखना चाहिये कि पाश्चात्य आर्थिक ध्येय है अधिकांश
संख्याका अधिकांश हित और हमारा नारदीय आर्थिक ध्येय है सर्वस्वका पूर्ण हित। पाठक
स्वयं विचार कर देख सकते हैं कौनसा ध्येय बड़ा है। आर्थिक विचारोंके इतिहासोंमें उन
विचारोंकी खोज की जाती है जिनमें कुछ आर्थिक तत्व हैं। ये विचार शास्त्र नहीं पर शास्त्र
बनता है इन्हीं विचारोंसे।

दूसरे इतिहासमें या तो अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तोंकी ही खोज की जाती है या उन
महानुभावोंके जीवनका संशोधन किया जाता है जिनने अन्यान्य आर्थिक सिद्धान्तोंका
आविष्कार किया है। तीसरे इतिहास अर्थात् आर्थिक इतिहासमें पदार्थोंके उत्पन्न करनेके उन

1. Economic progress. 2. History of Economic Thought. 3. History of the Doctrines of Economics. 4. Economic History. 5. The greatest good of the greatest number is the one Economic maxim.

प्रकारोंका विचार किया जाता है जिनके कारण देशका धन बढ़ा है अथवा उन कारखानोंका इतिहास वर्णन किया जाता है जिनके कारण देशकी सम्पत्ति बढ़ी है। यह इतिहास औद्योगिक इतिहास है।

भारतीय सनातन सिद्धान्तियोंने चार फल माने हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सारा भौतिक ससार इच्छा और उनकी पूर्ति इन दोनोंमें ही लिप्त है पर भारतके सामने धर्मसे प्रारम्भ कर अर्थ कामकी सिद्धि कर मोक्ष प्राप्त करना यह एक विशिष्ट कार्य है और कहीं भलेही आर्थिक उन्नतिकी पराकाष्ठा केवल भौतिक उन्नतिसेही हो जाए पर यहाँ तो आर्थिक उन्नति धर्मके बिना सर्वथा अग्राह्य है। तिसपर भी उन्नतिकी पराकाष्ठा तब समझी जाती है जब धर्मानुसार इस ससारमें अपनी इच्छाओंकी पूर्ति कर अर्थ सिद्धि करली जाय और शाश्वत शान्तिकी सम्पूर्ण सामग्री एकत्र करली जाय। केवल ऐहिक शान्ति प्राप्त कर लेनेसे पूर्ण उन्नति नहीं समझी जाती। धर्म और मोक्ष ये दो चोपदार अर्थ और कामके दोनों ओर खड़े कर दिये गये हैं।

अब यह विचार कर देखना चाहिए कि पाश्चात्य आर्थिक ध्येय "अधिकांश सख्याका अधिकांश हित" और भारतीय सिद्धान्तकी सिद्धि कैसे हो सकती है। इस सबधमें आर्थिक उन्नतिकी मीमांसा करनेसे हमें बहुत कुछ सहारा मिल जायगा।

१ आर्थिक उन्नति क्या है और वह क्यों अपेक्षित है।
२. भारतवर्षमें आर्थिक उन्नति कितनी तथा कैसी हुई है।
३. प्राचीन भारतमें आर्थिक उन्नतिकी क्या दशा थी।
४ आर्थिक उन्नतिका भारतीय ध्येयसे कितना सबध है।
५. भविष्यमें आर्थिक उन्नति किस दिशामें होनी चाहिए।

१ आर्थिक उन्नति क्या है

साधारणत: सार्वजनिक सब प्रकारकी उन्नति आर्थिक उन्नति है। इस उन्नतिके ध्येय, देश विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न हो सकते है पर *सामान्यतः इसके ये ध्येय प्रधान हैं।*

अ हृष्टपुष्ट जनसख्या जो चैनसे अपना जीवन बिता सके आर्थिक उन्नतिका प्रथम ध्येय है। इसके अन्तर्गत कई बातें है यथा स्वच्छ, सुथरे हवादार मकान, आसपासमें छोटे बड़े उद्यान, उदार तथा प्रभावशाली शिक्षण और ऐसी आमदनी जिससे वे अपना निर्वाह भली भाँति कर सकें।

आ. पदार्थोंके उत्पन्न[1] व उपभोग[2] करनेके प्रकार ऐसे होने चाहिएँ कि एक व्यक्ति या समूह के प्रकारसे दूसरे व्यक्ति या समूहको त्रास न हो। इन प्रकारोंकी लागत भी जितनी कम हो सके उतनीही होनी चाहिए। यह आर्थिक उन्नतिका दूसरा ध्येय है।

इ वह आयोजन जिसके द्वारा उत्पन्न पदार्थ उत्पादकोंके पाससे उपभोक्ताओंके पास जाते हैं अत्यन्त नियमित, सरल, विशाल व कमखर्च चालनशील होना चाहिए।

1 Production 2 Consumption

यह तब हो सकता है जब चीज़ोंके इधरसे उधर ले जानेके मार्ग (अत
यथेष्ट हों, उनमें कोई रोक टोक न हो, क्योंकि ऐसा होनेसे चीज़ोंकी कीमत
लागत काटकर जो मुनाफ़ा बचता है वह उसके अधिकारियोंको ही उनके
मतानुसार ठीक समयपर ठीक प्रकारसे मिलता है। यह आर्थिकोन्नतिका तीसरा
सब बातोंके होनेके लिए अन्य कई बातोंकी नितान्त आवश्यकता है।

४. हृष्टपुष्ट सन्तुष्ट जनसंख्या अपने अपने समाजके धर्मका ध्यान रखते हुए
धर्मको सम्पादित कर पदार्थोंको उत्पन्न करती है और क्रयविक्रय[1] के सरल और निर्बाध
द्वारा उत्पन्न पदार्थोंको प्राप्त कर उनका उपभोग करती है। उत्पादकोंको अपना हिस्सा
मिलता है, बीचवाले[2] व्यर्थकी अपना नाका बीचमें नहीं कायम करते। इस सद्व्यवस्थाके
स्वरूपमें सहायता या सेवा ली जाती है वह उसीके हित योग्य प्रकारोंसे खर्च
खर्च की जाती है। अवर्षण, दुर्भिक्ष, महामारी इत्यादि दैविक आपदाओंका पूर्वसेही
हो जाता है। प्रजा पूर्ण शान्तिके साथ ऐहिक व्यापारोंको चलाती है। इस
एक वह स्थिति है जो योग्य शिक्षण प्रणालीद्वारा चित्तको आह्लादित कर उसे विकसित
है और ऐसी दशामें भारतवर्षीय प्रजाद्वारा सनातन प्रथानुसार शाश्वत शान्तिकी
चेष्टा करती है। इस प्रयत्नमें पूर्ण सुगमता हो यह आर्थिक उन्नतिका चतुर्थ ध्येय
आर्थिक उन्नति इन चार पायोंपर विराजमान है। एक भी ऊँचा नीचा कम ज्यादा होनेसे
देवी चलायमान हो जाती है। शान्तिकी जगह अशान्ति आ जाती है। जिस देशमें ये चार
पाये स्थिर, पक्के और एकसे हैं वहीं आनन्दकी वर्षा होती रहती है। अस्तु आर्थिक उन्नतिके
चारों मूल सिद्धान्तोंपर इस तरह विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि
(ऐहिक व पारलौकिक) के लिए यह आर्थिक उन्नति अनिवार्य है और इसी
यह अत्यन्त अपेक्षित है।

२ भारतमें आर्थिक उन्नति

भारतमें जनसंख्याकी वृद्धि हो रही है। पर यह वृद्धि ऐसे मनुष्योंसे नहीं हो
रही है जो हृष्टपुष्ट हों, वरन् ऐसे जनोंसे जिनमेंसे अधिकांशको पेट भर अन्न और शरीरके लिए
काफ़ी वस्त्र नहीं मिलते। यह इष्ट नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी औसत आमदनी और औसत
खर्चका विचार करनेसे शीघ्रही विदित हो जाता है कि भारतकी दशा शोचनीय है। यह
एक सिद्धान्त है कि जिस देशमें प्रथम श्रेणीके मनुष्य अधिक हैं या जिसमें तृतीय श्रेणीके
मनुष्य अधिक हैं [अर्थात् धनाढ्य और गरीब] वह देश चैनका देश नहीं। पर जिस देशमें द्वितीय
श्रेणीके जन अधिक हैं उसमें चैन है। इस चैन वाली श्रेणीका यह अर्थ है कि इस श्रेणीवाले
न अमीर हैं न गरीब हैं, पर पेट भर अन्न और शरीरके लिए काफ़ी वस्त्र, बिना किसी
प्रकारकी अधिक चिन्ताके पाते हैं, सभ्य हैं, शिक्षित हैं, और अग्रिम तथा भावी उन्नतिका सदा

1 Exchange 2 Middlemen 3 Tax

आर्थिक उन्नतिके दूसरे अङ्गका विचार करते हुए हम देखते हैं। सड़कोंके अन्दर अंग्रेजी अच्छी और नयी सड़कें बन गयी और बन रही हैं। इनके और गाड़ियों पहियेसे बहुत अच्छी हो गयी। सूचक और वाहक प्रकार[1] बहुतही योग्य हो गये हैं। नदियोंपर पुल रेल और सड़कोंने भारतवर्षके एक प्रान्तको दूसरेके अति निकटवर्ती बना दिया है। रेल और सड़कोंका चारों तरफ जाल सा फैला हुआ सब हर प्रान्तमें दिखाई देता है। डाकखाने प्राय सर्वत्र खुल गये हैं उनके साथ तारघर भी उपस्थित हैं। वायुयुक्त यन्त्र और वायुयान भी अब यहां चलने लगे हैं। तात्पर्य यह है कि इन सब सामग्रियोंके कारण भारतवर्ष सङ्कुचित सा हो चला है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि ये उन्नतियां उसी प्रकार और उन्हीं दिशाओंमें हुई हैं जिनमें होनी चाहिये।

यह भी विदित है कि उत्पादक अधिकारियोंको उनका पूरा हिस्सा जब कभी मिलता है तब बीचवालों[2] और पूंजीवालों[3] लाभका अधिकांश ले बैठते हैं।

आर्थिक उन्नतिके और पहलुका विचार करते समय समझा जाता है, विचारशक्ति मन्द पड़ जाती है और कहना पड़ता है कि इस भौतिक महत्वाकांक्षाके कारण और इन राक्षसी महत्वाकांक्षाके पूरक मार्ग और प्रकारोंके कारण भारतकी दशा सन्तोषजनक नहीं। जब ऐहिक सुखकी पराकाष्ठा दूर है तब शाश्वत शान्तिकी चेष्टा कौन कर सकता है? पर आर्थिक उन्नति स्वयम्भू है। संसार और काल, चक्र कहलाते हैं। इनकी गति बदलती रहती है और चक्रका भाग जो ऊपर था वह नीचे जाता है और नीचेका ऊपर आता है। इसी नियमसे भारतका कालचक्र ऊपरसे नीचे गया पर अब शीघ्रही नीचेसे ऊपर आने वाला है। आर्थिक उन्नतिको कोई रोके तो रुक नहीं सकती। पर इसकी चालमें यदि कोई सहारा लगादे तो यह जल्दही बढ़ने लगती है। भारतवर्षमें अब आर्थिक उन्नति कई प्रकारसे हो चली है इसमें कोई सन्देह नहीं।

२ प्राचीन आर्थिक उन्नति

प्राचीनताके विषयमें कहा जाता है कि उस समयके कोई इतिहास नहीं, कोई

---

1 The Art of Political Economy

1 Means of communication and Transportation. 2 Middlemen. 3 Capitalist.

यह तब हो सकता है जब चीज़ोंके इधरसे उधर ले जानेके मार्ग (जल स्थल व आकाश) यथेष्ट हों, उनमें कोई रोक टोक न हो, क्योंकि ऐसा होनेसे चीज़ोंकी कीमत बढ़ती नहीं और लागत काटकर जो मुनाफ़ा बचता है वह उसके अधिकारियोंको ही उनके अधिकारांशानुसार ठीक समयपर ठीक प्रकारसे मिलता है। यह आर्थिकोन्नतिका तीसरा पैर है। सब बातोंके होनेके लिए अन्य कई बातोंकी नितान्त आवश्यकता है।

४. हृष्टपुष्ट संतुष्ट जनसंख्या अपने अपने समाजके धर्मका आदर रखते हुए [illegible] कार्योंको सम्पादित कर पदार्थोंको उत्पन्न करती है और क्रयविक्रय[1] के सरल और निर्धारित कार्यद्वारा उत्पन्न पदार्थोंको प्राप्तकर उनका उपभोग करती है। उत्पादकोंको अपना हिस्सा पूर्णतया मिलता है, बीचवाले[2] व्यर्थही अपना नाका बीचमें नहीं कायम करते। इस प्रकारसे जो कर[3] स्वरूपमें सहायता या सेवा ली जाती है वह उन्हीके हित योग्य प्रकारोंसे उनकी भलाईमें खर्च की जाती है। अवर्षण, दुर्भिक्ष, महामारी इत्यादि दैविक आपत्तियोंका पूर्णरूपेण निरोध हो जाता है। प्रजा पूर्ण शान्तिके साथ ऐहिक व्यापारोंको चलाती है। इस स्थितिके उपरान्त एक वह स्थिति है जो योग्य शिक्षण प्रणालीद्वारा चित्तको आह्लादित कर उसे विकसित करती है और ऐसी दशामें भारतवर्षीय प्रजाद्वारा सनातन प्रथानुसार पारलौकिक शान्तिकी प्राप्तिकी चेष्टा करती है। इस प्रकारसे पूर्ण सुगमता हो यह आर्थिक उन्नतिका चौथा भेद है। आर्थिक उन्नति इन चार पायोंपर विराजमान है। एक भी ऊंचा नीचा कम ज्यादा होनेसे यह वेदी चलायमान हो जाती है। शान्तिकी जगह अशान्ति आ जाती है। जिस देशमें ये चारों पाये स्थिर, पक्के और एकसे हैं वहीं आनन्दकी वर्षा होती रहती है। अस्तु आर्थिक उन्नतिके इन चारों मूल सिद्धान्तोंपर इस तरह विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि जीवनसुख (ऐहिक व पारलौकिक) के लिए यह आर्थिक उन्नति अनिवार्य है और इसी कारण यह अत्यन्त अपेक्षित है।

२ भारतमें आर्थिक उन्नति

इतनी अधिक न थी। पृथ्वी माता भी इतनी वृद्धा न थी। अब नगररचना और तद्‌शास्त्र वृद्धिगत होनेके कारण भारतवर्षकी रचना इस प्रकार हो रही है कि कालान्तरमें यह एक ऐसा बाग बन जायगा कि इसके बीच बीचमें आकानात नगर रूपमें होंगे, फिर उद्यान फिर मैदान। यह सन्तोषजनक और सराहनीय स्थितिकी आकांक्षा है। पर नगरमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, यह सभी जानते हैं। इसी कारण गांवोंकी स्वास्थ्यप्रद सुभीताओंको नगरोंमें लानेका प्रयत्न हो रहा है। वर्तमानमें आर्थिक उन्नतिका विचार करते समय प्रत्येक विचारवान पुरुष यह कह सकता है कि इन दिनों जैसी आर्थिक उन्नति भारतमें हो रही है वैसी पहिले नहीं थी। पर यह भी कोई नहीं कह सकता कि यह सर्वांग सुन्दर सर्व प्रकारसे त्रुटिरहित है और अब इसमें सुधार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

आर्थिक उन्नतिके प्रथम ध्येय हृष्ट पुष्ट जनसंख्याके चैनसे रहनेके प्रश्नपर विचार करते समय भारतवर्षकी जनसंख्या पर दृष्टि डालनी होगी।

यहांकी जनसंख्या इस प्रकार है :—

सं०	स्त्री,	पुरुष	दोनों
१८७२ ...	१००,१०६,८१५	१०६,०५५,५४५	२०६,१६२,३६०
१८८१ ..	१२३,९४७,०४०	१२९,९४९,२९०	२५३,८९६,३३०
१८९१ ..	१४०,५४५,०४२	१४६,७६९,६२९	२८७,३१४,६७१
१९०१ ...	१४५,४०९,२३२	१४८,९५१,८२४	२९४,३६१,०५६

अर्थात् जनसंख्याकी वृद्धि होती जाती है। अब यह विचारकर देखना चाहिए कि इस संख्यामें हृष्ट पुष्ट कितने हैं, अथवा क्या अधिकांश हृष्ट पुष्ट हैं और क्या वे अपना निर्वाह चैनसे कर सकते हैं? यहाँ एक व्यक्तिकी आमदनी अन्य देशीय व्यक्तिसे बहुत कम है। निर्वाह प्रकार भी बहुत नीची हालत का है। कितनेही लोगोंको तो आधा पेट भोजन भी नहीं मिलता है। अब माल्थस महाशयके कथनानुसार जनताको चाहिए कि वे उस समय तक संसारकी सृष्टि न बढ़ाएँ जब तक कि वे भावी सन्तानके लिए पेटभर अन्न और शरीरके लिए वस्त्र देनेमें समर्थ न हो लें। जनसंख्यामें काम करनेवालोंकी संख्या बढ़नी चाहिए ताकि उत्पादकगण अधिक होकर अधिक उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें। उत्पन्न करनेके प्रकारोंमें भी रूपान्तर अवश्यही करना पड़ेगा। पूर्ववत् यदि सबही कृषिकी ओर आकर्षित हो जायँगे तो लाभ न होकर हानि होगी। व्यवसायोंकी भिन्नता[1] इन दिनों इष्ट है। कृषिप्रकारोंमें भी सुधार होने चाहिएँ। भिन्न भिन्न व्यवसाय और उद्योगोंकी स्थापना योग्य केन्द्रोंमें होनी चाहिए।

अबाधित (स्वतन्त्र)[2] और बाधित (रक्षित)[3] व्यापारका विचार करते हुए यही कहना पड़ता है कि वर्तमान स्थितिको देख "पहिले घर फिर जग" कहावतका पूर्ण अनुकरण करना चाहिए। यह भी विदित है कि इन दिनों प्रत्येक देश प्राचीन सिद्धान्तोंका

1 Diversity of occupations. 2 Free Trade. 3 Protection.

लेखपत्र नहीं, अतएव जो कुछ उस समयका वर्णन है वह विश्वसनीय नहीं। हम अति प्राचीन कालमें प्रवेश न करके उतनेही कालका विचार करेंगे जिनके विषयमें हमें कुछ अंक और वर्णन उपलब्ध हैं। तथापि मामूली समझवाले इतना तो स्वीकार करेंगे कि प्राचीन भारतवासी वर्तमान निवासियोंसे शरीर सम्पत्तिके हिसाबसे अधिक बलवान्, अधिक हृष्ट पुष्ट, अधिक दृढ़ और अधिक कर्मशील थे। महाशय मोरिसन, नोरलैंड, इत्यादि सज्जन सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारतमें महार्घता इतनी न थी, इतने सार्वभौम दुर्भिक्ष नहीं पड़ते थे। पर इसका कारण वे सूचक और वाहक प्रकारोंका अभाव बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि एक गांवमें समृद्धि होती थी और पासही १०—१२ कोस पर अकाल, क्योंकि तब सड़कें वगैरह न थीं और न कोई उस समयका सच्चा हाल लिखना उन दिनों पसन्द करता था। अस्तु उसी समयके अन्यान्य नगर, गांव और प्रान्तोंमें अन्यान्य चीजोंकी कीमतें देखनेसे पता चलता है कि तब महार्घता भारतवर्षमें इतनी प्रसन्न न थी। पहिले यह होता था कि यदि एक वर्ष अकाल पड़ गया तो दूसरेही वर्ष लोगोंको अधिक सौकर्य हो जाता था। यदि एक चीजकी कीमत चढ़ जाती थी तो अन्य दूसरी चीजोंकी घट जाती थी, पर अब तो सतत अकाल है और एकाध चीजोंको छोड़ प्रत्येक चीजकी कीमत बढ़तीही चली जाती है। इनके कारण और प्रमाण अनेक हैं पर वास्तविक स्थिति अति शोचनीय है। अब दुर्भिक्ष एक वर्षका, या एक प्रान्तका या किसी विशिष्ट पदार्थका नहीं होता। अब तो सततवादी, सार्वभौम सर्व पदार्थोंका दुर्भिक्षराज होता है। ईश्वरसे प्रार्थना है कि इसको तो वहाँसे शीघ्रही विदा करें।

४ आर्थिक उन्नति और नारदीय ध्येय

आर्थिक उन्नति क्या है, यह कैसे हो सकती है और यह क्यों अपेक्षित है इत्यादि बातोंके अनुशीलनसे यह सहजही समझमें आ जाता है कि आर्थिक उन्नतिका ध्येय वही है जो आर्थिक सिद्धान्त "अधिकांश सदस्यका अधिकांश हित" और नारदीय सर्वजय ध्येय है। सच तो यह है कि इस ध्येयकी प्राप्ति आर्थिक उन्नतिद्वारा ही हो सकती है। जहाँ आर्थिक उन्नति पूर्णतया नहीं वहाँ जनसमुदाय पूर्ण सुखी नहीं रह सकती। शान्तिका वहाँ वास नहीं, न ऋद्धि है न सिद्धि। वही देश पूर्ण उन्नत है वही देश समृद्ध है जहाँ आर्थिक उन्नति पूर्णरूपसे सर्वांग विराजमान है। मानवी कर्तव्य पूर्ण तभी हो सकता है जब मनुष्यमात्र परस्पर अपना अपना हित चिन्तन करते हुए दूसरोंके हितकी पूर्ण चेष्टा करेंगे। निदान यह स्पष्ट है कि नारदीय ध्येय सिद्धि और आर्थिक उन्नति एकही बात है। आर्थिक उन्नतिका प्रचार होना चाहिए, ध्येय सिद्धि अपने आपही हो जायगी।

५ [illegible] आर्थिक उन्नति

भारतवर्षमें [illegible]

आर्थिक उन्नतिके प्रश्न पर इस पुस्तक जनसंख्याके क्षेत्रमें रहनेके अनन्तर विचार करते समय आजकलकी जनसंख्या पर दृष्टि डालनी होगी।

यहाँकी जनसंख्या इस प्रकार है :—

सन्		स्त्री,	पुरुष	दोनों
१८७२	...	१००,१०६,८१५	१०६,०५५,५४५	२०६,१६२,३६०
१८८१		१२३,१४७,०८०	१३०,७४९,२५०	२५३,८९६,३३०
१८९१	..	१४०,५७७,०४२	१४६,७३७,६२९	२८७,३१४,६७१
१९०१	...	१४४,४०९,२३२	१४९,९५१,८२४	२९४,३६१,०५६

अर्थात् जनसंख्याकी वृद्धि होती जाती है। अब यह विचारकर देखना चाहिए कि इस संख्यामें हृष्ट पुष्ट कितने हैं, अथवा क्या अधिकांश हृष्ट पुष्ट हैं और क्या वे अपना निर्वाह चैनसे कर सकते हैं? यहाँ एक व्यक्तिकी आमदनी अन्य देशीय व्यक्तिसे बहुत कम है। निर्वाह प्रकार भी बहुत नीची हालत का है। कितनेही लोगोंको तो आधा पेट भोजन भी नहीं मिलता है। अब माल्थस महाशयके कथनानुसार जनताको चाहिए कि वे उस समय तक सन्तानकी सृष्टि न बढ़ाएँ जब तक कि वे भावी सन्तानके लिए पेटभर अन्न और शरीरके लिए वस्त्र देनेमें समर्थ न हो लें। जनसंख्यामें काम करनेवालोंकी संख्या बढ़नी चाहिए ताकि उत्पादकगण अधिक होकर अधिक उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें। उत्पन्न करनेके प्रकारोंमें भी रूपान्तर अवश्यही करना पड़ेगा। पूर्ववत् यदि सबही कृषिकी ओर आकर्षित हो जायेंगे तो लाभ न होकर हानि होगी। व्यवसायोंकी भिन्नता[1] इन दिनों इष्ट है। कृषिप्रकारोंमें भी सुधार होने चाहिएँ। इन भिन्न भिन्न व्यवसाय और उद्योगोंकी स्थापना योग्य केन्द्रोंमें होनी चाहिए।

अबाधित (स्वतन्त्र)[2] और बाधित (रक्षित)[3] व्यापारका विचार करते हुए यही कहना पड़ता है कि वर्तमान स्थितिको देख "पहिले घर फिर जग" कहावतका पूर्ण अनुकरण करना चाहिए। यह भी विदित है कि इन दिनों प्रत्येक देश प्राचीन सिद्धान्तोंका

---

1 Diversity of occupations. 2 Free Trade 3 Protection.

उल्लंघन कर उन नये प्रकारोंका सेवन कर रहा है जिनसे देशमें नित्यके आवश्यक पदार्थों की कमी न पड़े। यहाँ भी उचित है कि स्वतन्त्र व्यापारके सिद्धान्तोंको त्यागकर रक्षित व्यापारप्रणालीका क्रमशः अनुकरण किया जाय। ऐसा करनेसे यह परिणाम होगा कि यहाँकी बढ़ी हुई जनसंख्याको काम करनेको नये नये धन्धे मिलेंगे और उपज भी बढ़ेगी पिपीलिका सदृश जनसंख्या घटकर, सिंह व्याघ्र सदृश जनसंख्या भी बढ़ेगी। इधर कई सालेतक कदाचित् संभव हैं पर यथार्थताका विचार करते समय यही मार्ग योग्य दीखता है।

आर्थिक उन्नतिके दूसरे ध्येयका विचार रखते हुए यह कहना पड़ता है कि इजारेदारियोंके[1] उत्पत्तिप्रकारोंकी, देशहितका उद्देश्य सम्मुख रखते हुए योग्य व्यवस्था होनी चाहिए। प्रकारोंमें इन बातोंका भी समावेश है जैसे कलकारखानोंमें काम करनेवाले श्रमजीवियोंका स्वास्थ्य, उनका वेतन, वहाँ बच्चे और स्त्रियोंका काम करना, उनके रहनेका मकान, काम करनेका समय, उनका खाद्य इत्यादि इत्यादि। अर्थशास्त्रीय कलाका विचार करते समय यह योग्य दीखता है कि इन दिनों स्वतन्त्र होड़[2] को पूरा अवसर न देना चाहिए, क्योंकि इसका परिणाम यह होता है कि स्थिति शोचनीय हो जाती है। सरकारको उस कलाके सिद्धान्तोंके अनुसार उत्पत्ति प्रकारोंमें हस्तक्षेप करना पड़ता है। अधिक पूँजी कतिपय व्यापारियोंके हाथमें पहुँचकर उनमें एक ऐसी शक्ति उत्पन्न कर देती है कि कई उद्योग वे अपने काबूमें कर लेते हैं और हजारों उद्योगीजन उद्योगरहित हो बैठते हैं।

उपयोग करनेके प्रकारोंके विषयमें इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि ऐसे जनोंकी संख्या अधिक न बढ़ने पाए जिनके कारण आवश्यकीय पदार्थोंकी उपज कम हो और ऐश आरामकी चीजें अधिक पैदा होने लगें। यह नहीं कि ये चीजें बिलकुलही उत्पन्न न हों। जनताकी आवश्यकताओं, परिस्थिति इत्यादि बातोंका विचारकर उत्पन्न और उपयोगके प्रकारोंकी योजना होनी चाहिए।

आर्थिक उन्नतिके तीसरे ध्येयका विचार करते समय यह कहते हुए हर्ष होता है कि पहिलेकी अपेक्षा अब बहुत सुविधाएँ हैं। तथापि वाहक और सूचकमार्ग इन दिनों अधिक और सरल होते हुए भी अधिक त्रास देने लगे हैं। इनके कारण निर्भरकी चीजोंकी कीमत बढ़ जाती है। यह भी अयोग्य है कि भाड़ा इस प्रकार नियत किये जाएँ कि भिन्न भिन्न प्रकारके भिन्न भिन्न व्यापारियोंको, देसी और परदेसियोंको इन भाड़ोंके प्रकारसे भिन्न भिन्न प्रकारसे हानि और लाभ हो। अभी हमारे देशमें अमरीकाकी नौबत नहीं आयी है क्योंकि इन सूचक और वाहक मार्गोंमें परस्पर होड़ नहीं और इसी कारण भाड़ा मनमाना नियत कर दिया जाता है। उन मार्गोंका ध्येय देशहित न होनेसे पूँजी लगानेवालोंका अधिकसे अधिक मुनाफा हो जाता है और देशके व्यापार और उपजको धक्का पहुँचता है।

अर्थशास्त्रीय कलाका अधिक प्रचार और प्रसार न होनेसे उत्पादक अधिकारियोंको बटवारे[3] के समय उनके अधिकारानुसार उन्हें उनका भाग न मिलकर पूँजीवालोंको और बीच-

1 Monopolies 2 Free Competition 3 Distribution

वालोंको अधिक लाभ होजाता है और यह स्थिति इतनी बढ़ जाती है कि सट्टेबाजी भी घुस पड़ती है और अनाप सनाप लाभके नशेमें देशका व्यापार तथा उत्पत्ति प्रकार सब शिथिल पड़ जाते हैं। ऐसा न होना चाहिए। योग्य बटवारा वह है जिसमें प्रत्येक उत्पादकगण, अपनी अपनी उत्पादक शक्तिके अनुसार, उपयोगिताके कारण प्राप्त हुए लाभका योग्य हिस्सा पाता है। दूरदर्शिता, समर्थता[1], नियोजकता[2] इत्यादि गुणोंके एवज़ निःसन्देह प्रत्येकको मिलनाही चाहिए। पर ऐसा क्यों हो कि जो दूसरोंकी समर्थता आदि गुणोंका फल है वह उन्हें न मिलकर अनधिकारियोंको ही मिल जाय। ऐसी बातें होनेसे जीवनसग्राम अति दुस्तर कार्य हो जाता है और देशकी उन्नति रुक जाती है।

चतुर्थ ध्येय। जब प्रत्येक भारतवासीको पेट भर अन्न, शरीरके लिए वस्त्र और रहनेको यथेष्ट स्थान मिल जायगा तब अपने अपने मत और धर्मानुसार प्रत्येक अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हुआ विश्राम पाकर शान्ति देवीकी गोदमें बैठकर अपने आप विचारकर प्रस्फूर्ति पाएगा और प्रत्येक भारतवासी अपने हृदयसे उस सार्वभौमसत्ताको आशीर्वाद देगा, जिसके कारण यह सुविधा यहाँ प्राप्य हुई। तदनन्तर अपने अपने कर्तव्योंको पूरा करते हुए अपने शास्त्र, परस्पर हित, लोकसग्रह इत्यादि विषयोंकी विवेचना करते हुए, विश्वात्माकी पूर्ण सेवाका स्वाद लेते हुए, ऐहिक कल्पना और अनुष्ठानोंका विचार और सबध शिथिल करके उस शाश्वत-शान्तिके प्राप्त करनेका विचार, प्रयत्न और चेष्टा करने लगेगा जिसके द्वारा ही सच्चा सुख कभी प्राप्त हो सकता है और जिसके प्राप्त करनेके लिए यह मनुष्यजन्म सबसे श्रेष्ठ साधन है।

बालकृष्णपति वाजपेयी भीमपुरे



1 Efficiency. 2 Organising capacity.

पुस्तकावलोकन

प्राचीन भारत—लेखक, पंडित हरिमंगल मिश्र एम० ए०। प्रकाशक—ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी। पृष्ठ संख्या ४६३, मूल्य ३।॥-)

प्राचीन भारतका सर्वमान्य विस्तृत इतिहास अभीतक नहीं लिखा गया। इसके कई कारण हैं। भारतकी सभ्यता सबसे प्राचीन है। इतने सहस्रों वर्षोंका लगातार इतिहास लिखना यथेष्ट सामग्रीके अभावमें असम्भव है। देशभी इतना विस्तृत है कि सब प्राचीन कालमें सब ऐतिहासिक घटनाओंका समस्त देश पर उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ता था। हिन्दुओंको इतिहास लेखन सामग्रीको एकत्र करना उस ढंगसे पसन्द नहीं था जिससे आधुनिक इतिहास लेखकोंको पूरा सन्तोष हो। फिर भारतवर्षकी विचित्र और ज्योतिमयी सभ्यताका इतिहास जानना कोई असम्भव बात नहीं। खोज करनेवालोंने बहुत सामग्री एकत्र की है और बड़ी छानबीनके साथ उसकी परीक्षा की है। बहुतसी बातोंमें मतभेद होना साधारण बात है फिर भी प्राचीन भारतकी प्रमाणिक और नयी भलक मिल गयी है। अंगरेजीमेंही प्राचीन भारतका इतिहास अभी पूर्ण नहीं हुआ तो फिर अभी देशी भाषाओंमें कैसे हो सकता है? परन्तु हिन्दीको अब यह गौरव प्राप्त हो गया है कि इस भाषामें एक ऊँचे दर्जेका इतिहास तय्यार हो गया। आरम्भकालसे १००० विक्रमाब्दतकका इतिहास प्रस्तुत पुस्तकमें संक्षेपमें दिया गया है। पुस्तक कई वर्षके निरन्तर परिश्रमका फल है। वेद पुराणसे लेकर सक्कन काव्यग्रन्थसे लेकर अंगरेजीकी प्रमाणिक पुस्तकें और सामयिक पत्रोंतकसे लेखनमें सहायता ली गयी है। प्राप्त सामग्रीका अच्छा उपयोग किया गया है। रघुवंश और चन्द्रवंशसे पहिलेका इतिहास देकर दोनोंवंशोंका वर्णन दिया गया है। पुस्तकमें ४० अध्याय हैं और ११ चित्र और मानचित्र भी दिये गये हैं। भूमिका, 'आर्य जातिके लोग', 'श्रीकृष्ण', मौर्यवंश' 'धार्मिक साहित्य' आदि अध्याय विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध घटनावली और अनुक्रमणिकाने पुस्तककी उपयोगिताको बहुत बढ़ा दिया है। इस अमूल्य पुस्तककी स्थानाभावसे विस्तृत समालोचना यहां नहीं हो सकी। हिन्दी प्रेमियोंके लिए यह बड़े सन्तोषकी बात है कि हिन्दीमें भी 'प्राचीन भारत' और 'भारतकी साम्पत्तिक अवस्था' जैसे स्वतन्त्र और उत्तम ग्रंथ निकलने लगे। लेखक और प्रकाशक दोनों पूर्ण रूपसे धन्यवादके पात्र हैं।

सीता—लेखक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा। प्रकाशक—श्रीयुत रामलाल वर्म्मा, मालिक वर्मन-प्रेस, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता। पृष्ठसंख्या २३१ मूल्य २॥), सजिल्द २।॥) और रेशमी जिल्द ३)

बर्म्मन प्रेससे प्रकाशित रमणीरत्नमालाका यह तीसरा रत्न है। भगवती सीता

पृथ्वीराज—लेखक श्रीयुत चन्द्रशेखर पाठक। पाठक एण्ड कम्पनी, नं० ४३, चोरबगान कलकत्ता से प्राप्य। पृष्ठ संख्या १५१।

'ऐतिहासिक ग्रन्थमाला' का यह प्रथम ग्रंथ है। पाठक एण्ड कं० ने ५) वार्षिक मूल्यपर १२ ग्रन्थमालाके ८० पृष्ठ प्रतिमास निकालना निश्चय किया है। वीर, देश-सेवक तथा समाज-सेवक जिन्होंने इतिहासमें अपना नाम अमर कर दिया है उन्हींके चरित्र इस मालामें निकलेंगे। पृथ्वीराजको प्रथम स्थान उपयुक्त ही है। "पृथ्वीराजरासो" और बंगला-के "पृथ्वीराज" महाकाव्यके अतिरिक्त दस बारह अंगरेजीकी प्रामाणिक पुस्तकोंकी सहायतासे इसकी रचना की गयी है। पुस्तक पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है कि इसके लिखनेमें इतिहासकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं किया गया है। प्रामाणिक पुस्तक लिखनेका ही प्रयत्न लेखक महाशयने किया है। इसमें २१ अध्याय हैं और चित्र भी हैं। सूचीपत्रकी आवश्यकता प्रतीत होती है। भाषा सरल है और छपाई उत्तम है। बाल-बाला पाठकोंके अपनाने योग्य है।

असहयोग—प्रकाशक, राष्ट्रीय ग्रंथमाला कार्यालय, ६३ हिवेट रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ६० मूल्य ।≈)

विषय नामसे प्रकट है। इसमें महात्मा गांधीके असहयोगपर प्रकाशित अंगरेजी तथा गुजराती लेखोंका हिन्दी अनुवाद है। लेखोंके चुननेमें बड़ी सावधानी दिखायी गयी है जिससे असहयोगका विचार सब पहलूसे हो गया। पुस्तक सामयिक तथा अच्छी है।

चारुचरितावली—लेखक और प्रकाशक श्रीसिद्धगोपाल काव्य-तीर्थ, बिजनौर। पृष्ठ संख्या १६३, मूल्य १)

यह संस्कृत भाषाकी पुस्तक है। इसमें महात्माओंके जीवनचरित्र और उनके उपदेश दिये हुए हैं। बुद्ध, शंकर, ईसामसीह, मुहम्मद, कबीर, नानक और दयानन्द सरस्वती इन सात महात्माओंका हाल है। इन महात्माओंके उपदेश और सिद्धान्तोंकीभी अच्छी आलोचना की गयी है। भाषा सुबोध और मधुर है। पूर्वभाषण विचारयुक्त है। महात्मा-ओंके चित्रभी दिये गये हैं। संस्कृत विद्यार्थियोंके लिए पुस्तक उपयोगी है। संस्कृतमें ऐसे ग्रंथका प्रकाशित होना हर्षकी बात है। लेखक महाशयने परिश्रमसे इसे लिखा है।

[illegible]

[illegible]

प[illegible]

[illegible] यों हुआ वह ठीक हुआ, परन्तु उसीसे काम नहीं चल सकता। जिसमें ११ महीनोंमें ? करोड़ १२ करोड़ रुपयेके कपड़ेका [illegible] विदेशसे यहाँ आता है। इसका उपाय यही है कि हम अपनी आवश्यकता भर पूरा कपड़ा स्वयं बनावें जिससे परावलम्बिता और आर्थिक हानिसे बच सकें। यद्यपि कपास विलायत जाती है वहाँसे कपड़ा बनकर यहीं आता है इसमें हमको बहुत ऊँचे दामों पर माल खरीदना पड़ता है। यदि यहाँपर यहीं माल तय्यार हो जाय और सामने कुछ रुकावटें दूर हो जायँ तो यहाँ सस्ता होगा, देशवासियोंको काम मिले और व्यवसाय की उन्नति भी हो।

कारखाने और पुतलीघर—

मीलोंमें यह काम चल सकता है। परन्तु इसमें कितनीही बातें बाधक हैं। विलायती व्यवसायी बहुत प्रबल हो चुके हैं, उनकी सफलता पूर्वक बराबरी करना आसान बात नहीं है। उनके पास पूँजी मनमानी मौजूद है, पर इस देशमें वह इतनी सुलभ नहीं है। [illegible] और [illegible] कारीगर बहुत चतुर हैं और उनके मजदूरभी यहाँसे अधिक काम कर सकते हैं। कल पुर्जे हमको विलायतसे मंगाने पड़ते हैं। जो सुभीता विलायतवालोंको कलोंमें उन्नति और सुधार करनेका प्राप्त है वह हमसे अलभ्य है। फिर सरकारकी मदद और व्यापारनीति भी उन्हींको विशेष हितकारी है यहाँ कौशल और व्यवसायका चमत्कार उनको नहीं सुहाता। ऐसी दशामें यह असम्भव है कि कल कारखानोंकी उन्नति इतनी जल्दी नहीं हो सकती कि देशवासियोंकी [illegible] कपड़ेकी माँग पूरी हो सके। फिर

सम्पादकीय

यह भी बात विचारणीय है कि यहाँ की मिलोंमें जो कपड़ा बनता है वह विशेषकर विदेशी सूतका होता है। इसलिए यह कपड़ा पूर्ण रूपेण स्वदेशी नहीं कहा जा सकता। स्वदेशी सूतका मोटा कपड़ा कुछ तो देशमें खपता है और उसका विशेष भाग बाहर अन्य देशोंको भी भेजा जाता है। जन साधारण जैसा महीन कपड़ा पहिनना पसन्द करते हैं वैसा यहाँ और भी कम बनता है। इसके अतिरिक्त

कारखानोंके बढ़नेसे हानि

भी होती है। पाश्चात्य सभ्यताका और विशेषकर आजकलकी व्यवसायिक अवस्थाका यह परिणाम हुआ है कि समाजकी शान्ति भंग हो गयी है। धनवान अधिक धनी होते जाते हैं और निर्धनको सुगमतासे भरण पोषण भी कठिन होता जाता है। पूँजीवालों और मजूरोंमें खूब खिंचा खिंची रहती है। सामाजिक बन्धन विशेष जटिल हो गये हैं और मशीनके उपयोगसे मनुष्य स्वभावमें एक प्रकारकी कठोरता आ गयी है। बड़े बड़े व्यवसायी लोगोंका यही लक्ष्य रहता है कि चाहे जैसे भी हो जल्दी बहुतसा धन एकत्र कर लें। इससे समाजका नैतिक पतन होता है और धनोपार्जनमेंही जीवनकी उद्देश्य सिद्धि रह जाती है। पाश्चात्यदेश अर्थ-दासत्वकी पराकाष्ठापर पहुँच गये हैं और यही कारण देश देशमें परस्पर वैमनस्य और घोर युद्धका कारण होता है। प्राचीन सभ्यतामें जो एक प्रकारका शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेका अवसर था वह अब जाता रहा और दिनप्रतिदिन अशान्ति, कलह, द्वेषके बढ़नेसे समस्त संसार एक संग्रामभूमि बना रहता है। इसका एक कारण मशीन, कल आदिका प्रचार है। हमारा यह मतलब नहीं है कि इनके प्रचारसे कुछ लाभही नहीं। यहाँपर प्रसगवश दोनों ही ओर दृष्टि रखनी है। जिसमें महात्मा गांधीके चर्खेके प्रचारका मूल सिद्धान्त समझमें आ जाय।

इतनी बातका यह नतीजा निकला कि विदेशी व्यवसायीसे मुकाबला करना आसान बात नहीं और फिर जो उन्हीं की चालपर चले तो जो दोष यूरोपके देशोंमें देख पड़ते हैं वेही यहाँ भी अपना घर करलेंगे और इससे अन्तमें देशकी आर्थिक और नैतिक अवस्था आदर्शसे दूर हो रहेगी।

उपाय क्या है ?

यही प्रश्न अब रह जाता है, कल कारखानोंकी वृद्धिसे समाजमें शान्ति नहीं रही और इनके बिना न तो विलायती व्यवसायोंसे हम मुकाबला कर सकते हैं और न सबकी अपनी आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। इस देशमें थोड़े दिन पहले चर्खेका जितना प्रचार था उतना अब नहीं रहा। गावों और शहरोंमें वृद्ध स्त्रियाँ चर्खा चलाया करती थीं परन्तु अब उसका प्रचार एकदम जाता सा रहा है। महात्मा गांधी इसीके प्रचारमें देशकी भलाई देखते हैं। इससे जो लाभ हैं वे स्पष्ट हैं। कलकारखानोंसे जो बड़े जटिल सामाजिक समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं और जो अन्याय अनुचित करती हैं उनका

होगा। इस बजटमें एक बात सन्तोषकी यह है कि विदेशी मालपर कर बढ़ाया गया है जिससे स्वदेशी कारीगरीको उत्तेजना मिलेगी। यह कर आमदनीके लिए है न कि देशी व्यापारकी रक्षाके लिए। सरकारकी नीयत व्यापार रक्षाकी नहीं थी परन्तु आमदनीके साथ व्यापारकी भी रक्षा हो जायगी। डाक विभागमें मनीआर्डर चिट्ठी आदिके दर बढ़ाये हैं। अच्छा हुआ जो हेली साहबके कुछ प्रस्ताव नहीं माने गये। नहीं तो पोस्टकार्डका दाम दो पैसे और चिट्ठीके चार पैसे हो जाते।



होनेपर सरकारी खर्च बढ़ जायगा और प्रजापर सरकारकी बहुत वृद्धि होगी। परन्तु अनुमान यह था कि बहुतसा व्यय जो भारतीयोंके लिए लाभदायक नहीं है उसमें कमी होगी और शिक्षा, रोगनिवारण, कृषि कला कौशल आदि भी उन्नतिमें विशेष धन व्यय होगा। प्रजापरसे यथा संभव कर भार कम होगा। मगर यह आशा पूरी नहीं हुई और साथमें यह बात भी प्रत्यक्ष हो गयी कि भारतीय प्रतिनिधियोंको व्यवस्थापक सभामें वास्तविक अधिकार कितना है, उनके किये क्या हो सकता है और कितनी आवश्यक बातोंमें देश हित साधनकी शक्ति उनको नहीं दी गयी है।

सेना विभागका बढ़ता हुआ खर्च प्रत्येक भारतीयको खटका करता है। गोखले महाशय बजटपर बहस करते समय सेना विभागकी रकम कम करानेमें कोई बात उठा नहीं रखतेथे पर उनकी भी एक न चलती थी। किसी देशमें आमदनीके हिसाबसे सेनाका इतना खर्च नहीं है जितना इस देशमें है। आधीके लगभग आमदनी केवल सेना विभाग द्वारा खर्चकी जाती है। नये बजटमें ६२ करोड़ रुपयोंसे कुछ अधिक सेनाका खर्च अनुमान किया गया है। वैसे तो प्रतिवर्षही यह खर्च बढ़ाया जा रहा है, गतवर्ष अमीर काबुलसे लड़ाई छिड़ जानेसे ३५ करोड़ स्वाहा हो गया। भारतीयोंको आपत्ति यह है कि यदि [illegible] लोगोंको सरकार उचित रीतिसे सैनिक शिक्षा दे तो खर्चकी कमी हो और हमको अपने देशकी रक्षा करनेका बल प्राप्त हो। सरकारको हमपर पूरा विश्वास नहीं है, इसलिए प्रजा-बल बढ़ाना उसको मंजूर नहीं। दूसरी बात यह है कि सेनाकी ऊंची ऊंची नौकरियाँ ... योंको नहीं दी जातीं। फिर यह भी शिकायत है कि धनका व्यय बड़ी निर्दयतासे होता है। फ़ज़ूलखर्ची बड़ी भारी है। सबसे बड़ी बात यह है कि साम्राज्यकी रक्षाका ख्याल करके भी भारतपरही सेना विभागका विशेष भार लादा जाता है। यदि साम्राज्यका विस्तार हो तो हमको क्या लाभ? यहाँकी सेना दूरस्थ देशोंमें जाकर लड़े, यहाँका रुपया खर्च हो और लाभ अंगरेज और उनके व्यापारियोंको हो। सेनाका खर्च तभी कम हो सकता है जब सरकारको हमपर विश्वास अधिक हो और नीतिसे विशेष काम लिया जाय। सरकारकी ओरसे कहा गया है कि सीमाप्रदेश और वजीरिस्तानमें झगड़ा जारी है इसलिए खर्च विशेष होगा। अमीरकाबुलने भी हमसे सन्धि कर ली है। यह भी एक कारण सेना बढ़ानेका होगा। अब अशान्तिका भय विशेष रहेगा। एक और भी कारण बताया गया है जिसके भयसे सरकार सेना वृद्धि करनेका विचार करती है। वह है देश-व्यापी असहयोग-आन्दोलन। माननीय श्रीनिवास शास्त्रीने यह स्पष्ट रूपसे कहा भी है। सरकारको इस आन्दोलनके बारेमें यह सन्देह है कि उसका संबंध बोल्शेवियोंसे है और यह विप्लवकारी है। असहयोग आन्दोलनके संबन्धमें हम यहाँ कुछ नहीं कह सकते। मगर यह बड़े खेदकी बात कि उसको भी एक कारण बनाकर सरकार सेना-व्यय बढ़ाती है।

रेलपर १८ करोड़ खर्च किया जायगा और दिल्लीकी सरकारी इमारतोंपर ४ करोड़। आमदनी खर्चकी और भी जानने योग्य बातें हैं उनका अङ्क सहित फिर उल्लेख

होगा। इस बजटमें एक बात सन्तोषकी यह है कि विदेशी मालपर कर बढ़ाया गया है जिससे स्वदेशी कारीगरीको उत्तेजना मिलेगी। यह कर आमदनीके लिए है न कि देशी व्यापारकी रक्षाके लिए। सरकारकी नीयत व्यापार रक्षाकी नहीं थी परन्तु आमदनीके साथ व्यापारकी भी रक्षा हो जायगी। डाक विभागमें मनीआर्डर चिट्ठी आदिके दर बढ़ाये हैं। अच्छा हुआ जो हेली साहबके कुछ प्रस्ताव नहीं माने गये। नहीं तो पोस्टकार्डका दाम दो पैसे और चिट्ठीके चार पैसे हो जाते।



ज्ञातव्यविषय तथा अंक

जर्मनीपर दंड

मित्रराष्ट्रोंने जर्मनीसे अपना हर्जा इस प्रकार वसूल करना निश्चय किया है:—

सम्वत्	इंगलिस्तान	फ्रान्स	अन्य मित्रराष्ट्र
१९७८	३३,००,००,००० रु०	७८,००,००,००० रु०	३९,००,००,००० रु०
१९७९	३३,००,००,००० „	५८,००,००,००० „	३९,००,००,०००
१९८०	४९,५०,००,००० „	११,७०,००,०००० „	५८,५०,००,००० „
१९८१	४९,५०,००,००० „	११,७०,००,०००० „	५८,५०,००,००० „
१९८२	४९,५०,००,००० „	११,७०,००,०००० „	५८,५०,००,००० „
१९८३	६६,००,००,००० „	१५,६०,००,०००० „	७८,००,००,००० „
१९८४	६६,००,००,००० „	१५,६०,००,०००० „	७८,००,००,००० „
१९८५	६६,००,००,००० „	१५,६०,००,०००० „	७८,००,००,००० „
१९८६	८२,५०,००,००० „	१९,५०,००,०००० „	९७,५०,००,००० „
१९८७	८२,५०,००,००० „	१९,५०,००,०००० „	९७,५०,००,००० „
१९८८	८२,५०,००,००० „	१९,५०,००,०००० „	९७,५०,००,००० „
१९८९ २०१२	९९,००,००,००० „	२३,४०,००,०००० „	११,७०,००,०००० „

जर्मन पदार्थोंके निर्यातपर जो १२½ प्रति सैकड़ाका कर लगाकर जो मिलेगा उसको भी मित्रराष्ट्र लेंगे। यह रकम ऊपर दिये हुए हर्जानेके अतिरिक्त है।

हमारा आयात

गत वर्षके पिछले ११ महीनोंमें जो माल बाहरसे आया उसका मूल्य इस प्रकार था। तुलनाके लिए पिछले दो वर्षोंके उन्हीं ११ महीनोंमें जितनेका माल आया था वह भी दिया जाता है—

पदार्थ	सम्वत् १९७६	सम्वत् १९७७	सम्वत् १९७८
१. भोज्य, पेय और तमाकू	२६,६२,०२,८०६ रु०	३०,३१,६०,६०२ रु०	३१,०५,२०,२०५ रु.
कच्चा माल और बिना बनी चीज़ें	८,८१,१५,६६६ „	१६,०२,६४,१६३ „	१६,२६,१६,२०६ „
तैयार माल	१,१३,५१,०३,६०३ „	१,२०,२६,८३,१०१ „	२,५०,६०,६१,११६ „
फुटकर	०,८०,३३,१०१ „	३,५१,०८,६३० „	१,८६,००,०१८ „
जोड़	१,६३,००,०१,८००	१,८०,११,०६,०३०	३,१०,८२,०६,६८१

सरकारी माल जो विदेशसे खरीदकर मंगाया जाता है, उसके अतिरिक्त है।